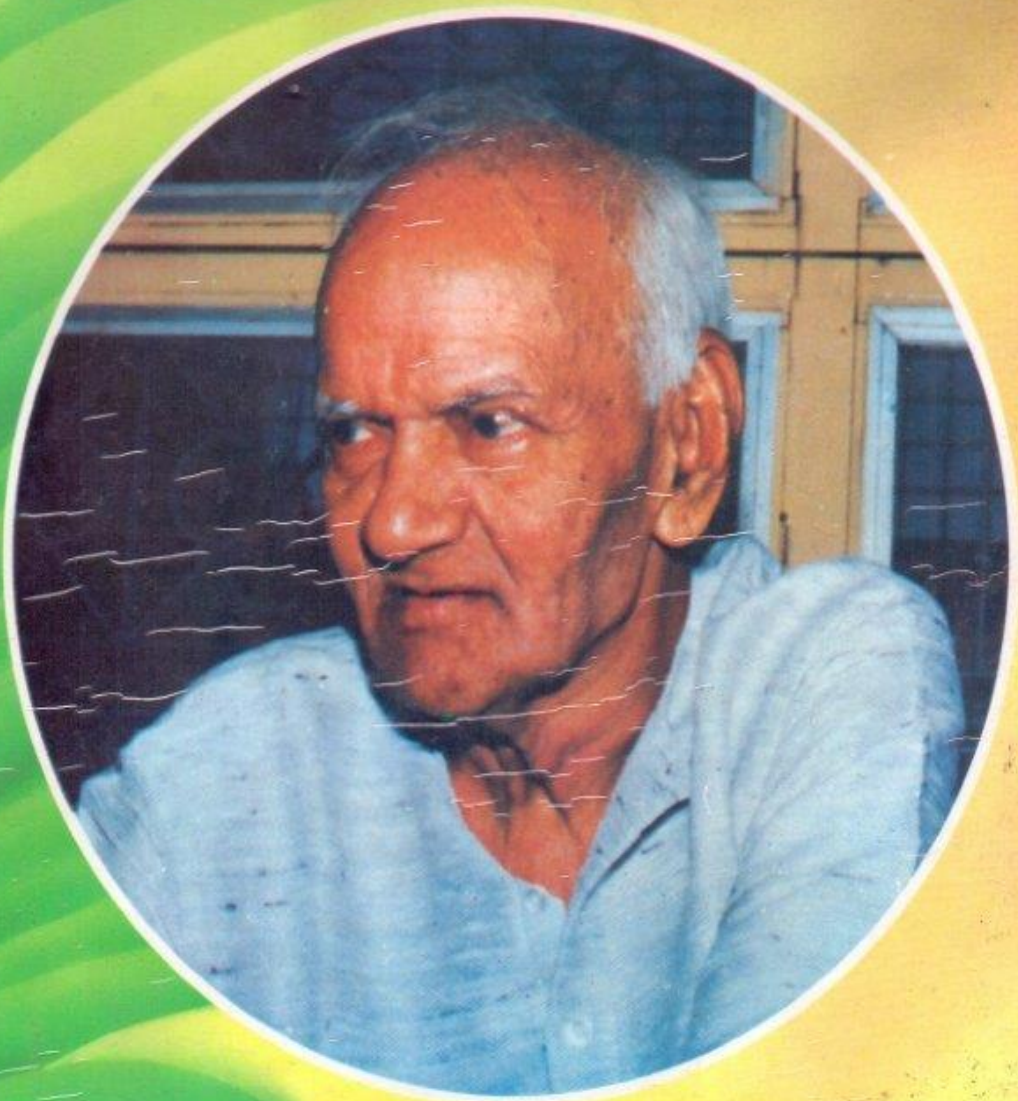


पं० श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

विचारस्यार एवं सूक्तियाँ

(द्वितीय खण्ड)



पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

विचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

सम्पादक
ब्रह्मवर्चस

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org



प्रकाशक :

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा



प्रकाशक

अखण्ड ज्योति संस्थान

मथुरा-२८१ ००३



© सर्वाधिकार सुरक्षित



द्वितीय संस्करण १९९८

www.vicharkrantibooks.org



मूल्य १२५)



मुद्रक

जनजागरण प्रेस, मथुरा



समर्पणम्

ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

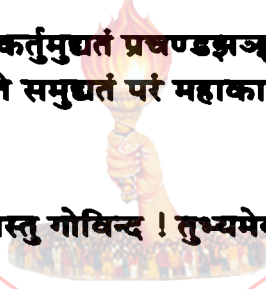
मातृवत् लालयित्री च पितृवत् मार्गदर्शिका ।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै श्रद्धा-प्रज्ञा युता च या ॥

भगवत्याः जगन्मातुः, श्रीरामस्य जगद्गुरोः ।
पादुकायुगले वन्दे, श्रद्धाप्रज्ञास्वरूपयोः ॥

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै गायत्रीरूपिणे सदा ।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम् ॥

असम्भवं सम्भवकर्तुमुद्यतं प्रचण्डझञ्झावृतिरोधसक्षमम् ।
युगस्य निर्माणकृते समुद्यतं परं महाकालमर्मुं नमाम्यहम् ॥

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।



विराट गायत्री परिवार एवं उसके संस्थापक-संरक्षक

एक संक्षिप्त परिचय

इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है कि अवतारी सत्ता एक साथ बहुआयामी रूपों में प्रकट होती है एवं करोड़ों ही नहीं, पूरी वसुधा के उद्धार-चेतनात्मक धरातल पर सबके मनों का नये सिरे से निर्माण करने आती है। परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य को एक ऐसी ही सत्ता के रूप में देखा जा सकता है जो युगों-युगों में गुरु एवं अवतारी सत्ता दोनों ही रूपों में हम सबके बीच प्रकट हुई, अस्सी वर्ष का जीवन जीकर एक विराट् ज्योति प्रज्वलित कर उस सूक्ष्म ऋषि चेतना के साथ एकाकार हो गयी जो आज युग परिवर्तन को सन्निकट लाने को प्रतिबद्ध है। परमवन्दनीया माताजी शक्ति का रूप थीं जो कभी महाकाली, कभी माँ जानकी, कभी माँ शारदा एवं कभी माँ भगवती के रूप में शिव की कल्याणकारी सत्ता का साथ देने आती रही हैं। उनसे भी सूक्ष्म में विलीन हो स्वयं को अपने आराध्य के साथ एकाकार कर ज्योतिपुरुष का एक अंग स्वयं को बना लिया। आज दोनों सशरीर हमारे बीच नहीं हैं किन्तु, नूतन सृष्टि कैसे ढाली गयी, कैसे मानव गढ़ने का साँचा बनाया गया, इसे शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस, गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युगतीर्थ आँवलखेड़ा जैसी स्थापनाओं तथा संकल्पित सृजन सेनानीगणों के वीरभद्रों की करोड़ों से अधिक की संख्या के रूप में देखा जा सकता है।

परमपूज्य गुरुदेव का वास्तविक मूल्यांकन तो कुछ वर्षों बाद इतिहासविद, मिथक लिखने वाले करेंगे किन्तु, यदि उनको आज भी साक्षात् कोई देखना या उनसे साक्षात्कार करना चाहता हो तो उन्हें उनके द्वारा अपने हाथ से लिखे गये उस विराट् परिमाण में साहित्य के रूप में युग संजीवनी के रूप में देखा सकता है जो वे अपने वजन से अधिक भार के बराबर लिख गये। इस साहित्य में संवेदना का स्पर्श इस बारीकी से हुआ है कि लगता है लेखनी को उसी की स्याही में डुबोकर लिखा गया हो। हर शब्द ऐसा जो हृदय को छूता, मन को व विचारों को बदलता चला जाता है। लाखों-करोड़ों के मनों के अंतःस्थल को छूकर उसने उनका कायाकल्प कर दिया। रूसो के प्रजातंत्र की, कार्लमार्क्स के साम्यवाद की क्रान्ति भी इसके समक्ष बौनी पड़ जाती है। उनके मात्र इस युग वाले स्वरूप को लिखने तक में लगता है कि एक विश्वकोश तैयार हो सकता है, फिर उस बहुआयामी रूप को जिसमें वे संगठनकर्ता, साधक, करोड़ों के अभिभावक, गायत्री महाविद्या के उद्धारक, संस्कार परम्परा का पुनर्जीवन करने वाले, ममत्व लुटाने वाले एक पिता, नारी जाति के प्रति अनन्य करुणा बिखेरकर उनके ही उद्धार के लिए धरातल पर चलने वाला नारी जागरण अभियान चलाते देखे जाते हैं, अपनी वाणी के उद्बोधन से एक विराट् गायत्री परिवार एकाकी अपने बलबूते खड़े करते दिखाई देते हैं तो समझ में नहीं आता, क्या-क्या लिखा जाये, कैसे छन्दबद्ध किया जाय, उस महापुरुष के जीवनचरित को।

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी विक्रमी संवत् १९६७ (२० सितम्बर, १९११) को स्थूल शरीर से आँवलखेड़ा ग्राम जनपद आगरा जो जलेसर मार्ग पर आगरा से पन्द्रह मील की दूरी पर स्थित है, में जन्मे श्रीराम शर्मा जी का बाल्यकाल-कैशोर्य काल ग्रामीण परिसर में ही बीता। वे जन्मे तो थे एक जमींदार घराने में, जहाँ उनके पिता श्री पं. रूपकिशोर जी शर्मा आस-पास के, दूर-दराज के राजघरानों के राजपुरोहित, उद्भट विद्वान, भागवत कथाकार थे किन्तु, उनका अंतःकरण मानव मात्र की पीड़ा से सतत विचलित रहता था। साधना के प्रति उनका झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा। जब वे अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराइयों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता अपनाने वाली आत्मविद्या का शिक्षण दिया करते थे, छटपटाहट के कारण हिमालय की ओर भाग निकलने व पकड़े जाने पर उनसे संबंधियों को बताया कि हिमालय ही उनका घर है एवं वहीं वे जा रहे थे। किसे मालूम था कि हिमालय की ऋषि चेतनाओं का समुच्चय बनकर आयी यह सत्ता वस्तुतः अगले दिनों अपना घर वहीं बनाएगी। जाति-पाँति का कोई भेद नहीं। जातिगत मूढ़ता भरी मान्यता से ग्रसित तत्कालीन भारत के ग्रामीण परिसर में एक अछूत वृद्ध महिला

की जिसे कुछ रोग हो गया था, उसी के टोले में जाकर सेवा कर उनसे घरवालों का विरोध तो मोल ले लिया पर अपना व्रत नहीं छोड़ा। उस महिला ने स्वस्थ होने पर उन्हें ढेरों आशीर्वाद दिये। एक अछूत कहलाने वाली जाति का व्यक्ति जो उनके आलीशान घर में घोड़ों की मालिश करने आता था, एक बार कह डठा कि मेरे घर कथा कौन कराने आएगा, मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ। नवनीत जैसे हृदय वाले पूज्यवर उसके घर जा पहुँचे एवं कथा पूरे विधान से कर पूजा की, उसको स्वच्छता का पाठ सिखाया, जबकि सारा गाँव उनके विरोध में बोल रहा था।

किशोरावस्था में ही समाज सुधार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ उनसे चलाना आरम्भ कर दी थीं। औपचारिक शिक्षा स्वल्प ही पायी थी किंतु, उन्हें इसके बाद आवश्यकता भी नहीं थी क्योंकि जो जन्मजात प्रतिभासम्पन्न हो वह औपचारिक पाठ्यक्रम तक सीमित कैसे रह सकता है। हाट-बाजारों में जाकर स्वास्थ्य-शिक्षा प्रधान परिपत्र बाँटना, पशुधन को कैसे सुरक्षित रखें तथा स्वावलम्बी कैसे बनें, इसके छोटे-छोटे पैम्फलेट्स लिखने, हाथ की प्रेस से छपवाने के लिए उन्हें किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। वे चाहते थे, जनमानस आत्मावलम्बी बने, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान उसका जागे, इसलिए गाँव में जन्मे इस लाल ने नारी शक्ति व बेरोजगार युवाओं के लिए गाँव में ही एक बुनताघर स्थापित किया व उसके द्वारा हाथ से कैसे कपड़ा बुना जाय अपने पैरों पर कैसे खड़ा हुआ जाय यह सिखाया।

पंद्रह वर्ष की आयु में वसंत पंचमी की वेला में सन् १९२६ में उनके घर की पूजास्थली में, जो उनकी नियमित उपासना का तब से आगार थी, जबसे महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी ने उन्हें काशी में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी, उनकी गुरुसत्ता का आगमन हुआ अदृश्य छायाधारी सूक्ष्म रूप में। उनसे प्रज्वलित दीपक की लौ में से स्वयं को प्रकट कर उन्हें उनके द्वारा विगत कई जन्मों में सम्पन्न क्रिया-कलापों का दिग्दर्शन कराया तथा उन्हें बताया कि वे दुर्गम हिमालय से आये हैं एवं उनसे अनेकानेक ऐसे क्रियाकलाप कराना चाहते हैं, जो अवतारी स्तर की ऋषिसत्ताएँ उनसे अपेक्षा रखती हैं। चार बार कुछ दिन से लेकर एक साल तक की अवधि तक हिमालय आकर रहने, कठोर तप करने का भी उनसे संदेश दिया एवं उन्हें तीन संदेश दिए- १. गायत्री महाशक्ति के चौबीस-चौबीस लक्ष्य के चौबीस महापुरुषचरण जिन्हें आहार के कठोर तप के साथ पूरा करना था। २. अखण्ड घृतदीप की स्थापना एवं जन-जन तक इसके प्रकाश को फैलाने के लिए समय आने पर ज्ञानयज्ञ अभियान चलाना, जो बाद में अखण्ड ज्योति पत्रिका के १९३८ में प्रथम प्रकाशन से लेकर विचार-क्रान्ति अभियान के विश्वव्यापी होने के रूप में प्रकटा तथा ३. चौबीस महापुरुषचरणों के दौरान युगधर्म का निर्वाह करते हुए राष्ट्र के निमित्त भी स्वयं को खपाना, हिमालय यात्रा भी करना तथा उनके संपर्क से आगे का मार्गदर्शन लेना।

यह कहा जा सकता है कि युग निर्माण मिशन, गायत्री परिवार, प्रज्ञा अभियान, पूज्य गुरुदेव जो सभी एक-दूसरे के पर्याय हैं, की जीवन यात्रा का यह एक महत्त्वपूर्ण मोड़ था, जिसमें भावी रीति-नीति का निर्धारण कर दिया। पूज्य गुरुदेव अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में लिखते हैं कि- "प्रथम मिलन के दिन समर्पण सम्पन्न हुआ। दो बातें गुरुसत्ता द्वारा विशेष रूप से कही गई- संसारी लोग क्या करते हैं और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुँह मोड़कर निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के बलबूते चलते रहना एवं दूसरा यह कि अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने की तपश्चर्या में जुट जाना- जौ की रोटी व छाछ पर निर्वाह कर आत्मानुशासन सीखना। इसी से वह सामर्थ्य विकसित होगी जो विशुद्धतः परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित होगी। वसंत पर्व का यह दिन गुरु अनुशासन का अवधारण ही हमारे लिए नया जन्म बन गया। सद्गुरु की प्राप्ति हमारे जीवन का अनन्य एवं परम सौभाग्य रहा।"

राष्ट्र के परावलम्बी होने की पीड़ा भी उन्हें उतनी ही सताती थी जितनी कि गुरुसत्ता के आदेशानुसार तपकर सिद्धियों के उपार्जन की ललक उनके मन में थी। उनके इस असमंजस को गुरुसत्ता ने ताड़कर परावाणी से उनका मार्गदर्शन किया कि युगधर्म की महत्ता व समय की पुकार देख-सुनकर तुम्हें अन्य आवश्यक कार्यों को छोड़कर अग्निकाण्ड में पानी लेकर दौड़ पड़ने की तरह आवश्यक कार्य भी करने पड़ सकते हैं। इसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के नाते संघर्ष करने का भी संकेत था। १९२७ से १९३३ तक का समय उनका एक सक्रिय स्वयं सेवक-स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बीता, जिसमें घरवालों के विरोध के बावजूद

पैदल लम्बा रास्ता पार कर वे आगरा के उस शिविर में पहुँचे, जहाँ शिक्षण दिया जा रहा था, अनेकानेक मित्रों-सखाओं-मार्गदर्शकों के साथ भूमिगत हो कार्य करते रहे तथा समय आने पर जेल भी गये। छह-छह माह की उन्हें कई बार जेल हुई। जेल में भी वे जेल के निरक्षर साधियों को शिक्षण देकर व स्वयं अंग्रेजी सीखकर लौटे। आसनसोल जेल में वे श्री जवाहरलाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री रफी अहमद क़िदवाई, महामना मदनमोहन मालवीय जी, देवदास गाँधी जैसी हस्तियों के साथ रहे व वहाँ से एक मूलमंत्र सीखा जो मालवीय जी ने दिया था कि जन-जन की साझेदारी बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति के अंशदान से, मुट्ठी फण्ड से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाना। यही मंत्र आगे चलकर एक घण्टा समयदान, बीस पैसा नित्य या एक दिन की आय एक माह में तथा एक मुट्ठी अन्न रोज डालने के माध्यम से धर्मघट की स्थापना का स्वरूप लेकर लाखों-करोड़ों की भागीदारी वाला गायत्री परिवार बनाता चला गया, जिसका आधार था प्रत्येक व्यक्ति की यज्ञीय भावना का उसमें समावेश।

स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान कुछ उग्र दौर भी आये, जिनमें शहीद भगतसिंह को फाँसी दिये जाने पर फैले जनआक्रोश के समय श्री अरविन्द के किशोर काल की क्रान्तिकारी स्थिति की तरह उनसे भी वे कार्य किये, जिनसे आक्रान्ता शासकों के प्रति असहयोग जाहिर होता था। नमक आन्दोलन के दौरान वे आततायी शासकों के समक्ष झुके नहीं, वे मारते रहे परन्तु, समाधि स्थिति को प्राप्त राष्ट्र देवता के पुजारी को बेहोश होना स्वीकृत था पर आन्दोलन से पीठ दिखाकर भागना नहीं। बाद में फिरंगी सिपाहियों के जाने पर लोग उठाकर घर लेकर आये। जरारा आन्दोलन के दौरान उनसे झण्डा छोड़ा नहीं जबकि, फिरंगी उन्हें पीटते रहे, झण्डा झीनने का प्रयास करते रहे। उनसे मुँह से झण्डा पकड़ लिया, गिर पड़े, बेहोश हो गये पर झण्डे का टुकड़ा चिकित्सकों द्वारा दाँतों में भींचे गये टुकड़े के रूप में जब निकाला गया तब सब उनकी सहनशक्ति देखकर आश्चर्यचकित रह गये। उन्हें तब से ही आजादी के मतवाले उन्मत्त श्रीराम मत्त नाम मिला। अभी भी आगरा में उनके साथ रहे या उनसे कुछ सीख लिए अगणित व्यक्ति उन्हें मत्तजी नाम से ही जानते हैं। लगानबन्दी के आँकड़े एकत्र करने के लिए उनसे पूरे आगरा जिले का दौरा किया व उनके द्वारा प्रस्तुत वे आँकड़े तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के मुख्यमंत्री श्रीगोविन्द वल्लभ पंत द्वारा गाँधीजी के समक्ष पेश किये गये। बापू ने अपनी प्रशस्ति के साथ वे प्रामाणिक आँकड़े ब्रिटिश पार्लियामेंट भेजे, इसी आधार पर पूरे संयुक्त प्रान्त के लगान माफी के आदेश प्रसारित हुए। कभी जिनने अपनी इस लड़ाई के बदले कुछ न चाहा उन्हें सरकार ने अपना प्रतिनिधि भेजकर पचास वर्ष बाद ताम्रपत्र देकर शांतिकुंज में सम्मानित किया। उसी सम्मान व स्वाभिमान के साथ सारी सुविधाएँ व पेंशन उनसे प्रधानमंत्री राहत फण्ड के नाम समर्पित कर दीं। वैरागी जीवन का सच्चे राष्ट्र संत होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है?

१९३५ के बाद उनके जीवन का नया दौर शुरू हुआ, जब गुरुसत्ता की प्रेरणा से वे श्री अरविन्द से मिलने पाण्डिचेरी, गुरुदेव ऋषिवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने शांति निकेतन तथा बापू से मिलने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद गये। सांस्कृतिक, आध्यात्मिक मोर्चे पर राष्ट्र को कैसे परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया जाय, यह निर्देश लेकर अपना अनुष्ठान यथावत् चलाते हुए उनसे पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया, जब आगरा में 'सैनिक' समाचार पत्र के कार्यवाहक संपादक के रूप में श्रीकृष्णदत्तपालीवाल जी ने उन्हें अपना सहायक बनाया। बाबू गुलाब राय व पालीवाल जी से सीख लेते हुए सतत स्वाध्यायरत रहकर उनसे अखण्ड ज्योति नामक पत्रिका का पहला अंक १९३८ की वसंत पंचमी पर प्रकाशित किया। प्रयास पहला था, जानकारीयों कम थीं अतः पुनः सारी तैयारी के साथ विधिवत् १९४० की जनवरी से उनसे परिजनों के नाम पाती के साथ अपने हाथ से बने कागज से बने कागज पर पैर से चलने वाली मशीन से छापकर 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका का शुभारंभ किया जो पहले तो दो सौ पचास पत्रिका के रूप में निकली, किन्तु क्रमशः उनके अध्यवसाय घर-घर पहुँचाने, मित्रों तक पहुँचाने वाले उनके हृदयस्पर्शी पत्रों द्वारा बढ़ती-बढ़ती नवयुग के मत्स्यावतार की तरह आज दस लाख से भी अधिक संख्या में विभिन्न भाषाओं में छपती व एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है।

पत्रिका के साथ-साथ 'मैं क्या हूँ' जैसी पुस्तकों का लेखन आरम्भ हुआ। स्थान बदला, आगरा से मथुरा आग गये, दो-तीन घर बदलकर घीयामण्डी में जहाँ आज अखण्ड ज्योति संस्थान है, आ बसे। पुस्तकों

का प्रकाशन व कठोर तपश्चर्या, ममत्व विस्तार तथा पत्रों द्वारा जन-जन के अंतःस्थल को छूने की प्रक्रिया चालू रही। साथ देने आ गयीं परमवंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा, जिन्हें भविष्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अपने आराध्य इष्ट गुरु के लिए निभानी थी। उनके मर्मस्पर्शी पत्रों ने, भाव भरे आतिथ्य, हर किसी को जो दुःखी था- पीड़ित था, दिये गये ममत्व भरे परामर्श ने गायत्री परिवार का आधार खड़ा किया, इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि विचारक्रान्ति में साहित्य ने मनोभूमि बनायी तो भावात्मक क्रान्ति में ऋषियुगल के असीम स्नेह ने ब्राह्मणत्व भरे जीवन ने शेष बची भूमिका निभायी।

‘अखण्ड ज्योति’ पत्रिका लोगों के मनों को प्रभावित करती रही, इसमें प्रकाशित ‘गायत्री चर्चा’ स्तम्भ से लोगों को गायत्री व यज्ञमय जीवन जीने का संदेश मिलता रहा, साथ ही एक आना से लेकर छह आना सीरज की अनेकानेक लोकोपयोगी पुस्तकें छपती चली गयीं। इस बीच हिमालय के बुलावे भी आये, अनुष्ठान भी चलता रहा जो पूरे विधि-विधान के साथ १९५३ में गायत्री तपोभूमि की स्थापना, १०८ कुण्डी यज्ञ व उनके द्वारा दी गयी प्रथम दीक्षा के साथ समाप्त हुआ। गायत्री तपोभूमि की स्थापना के निमित्त धन की आवश्यकता पड़ी तो परमवंदनीया माताजी ने जिनने हर कदम पर अपने आराध्य का साथ निभाया, अपने सारे जेवर बेच दिये, पूज्यवर ने जमींदारी के बाण्ड बेच दिये एवं जमीन लेकर अस्थायी स्थापना कर दी गयी। धीरे-धीरे उदारचेताओं के माध्यम से गायत्री तपोभूमि एक साधना पीठ बन गयी। २४०० तीर्थों के जल व रज की स्थापना वहाँ की गयी, २४०० करोड़ गायत्री मंत्र लेखन वहाँ स्थापित हुआ, अखण्ड अग्नि हिमालय के एक अति पवित्र स्थान से लाकर स्थापित की गयी जो अभी तक वहाँ यज्ञशाला में जल रही है। १९४१ से १९७१ तक का समय परमपूज्य गुरुदेव का गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान में सक्रिय रहने का समय है। १९५६ में नरमेध यज्ञ, १९५७ में सहस्रकुण्डी यज्ञ करके लाखों गायत्री साधकों को एकत्र कर उनसे गायत्री परिवार का बीजारोपण कर दिया। कार्तिक पूर्णिमा १९५८ में आयोजित इस कार्यक्रम में दस लाख व्यक्तियों ने भाग लिया, इन्हीं के माध्यम से देशभर में प्रगतिशील गायत्री परिवार की दस हजार से अधिक शाखाएँ स्थापित हो गयीं। संगठन का अधिकाधिक कार्यभार पूज्यवर परमवंदनीया माताजी पर सौंपते चले गये एवम् १९५९ में पत्रिका का संपादन उन्हें देकर पौने दो वर्ष के लिए हिमालय चले गये, जहाँ उन्हें गुरुसत्ता से मार्गदर्शन लेना था, तपोवन नंदनवन में ऋषियों से साक्षात्कार करना था तथा गंगोत्री में रहकर आर्ष ग्रन्थों का भाष्य करना था। तब तक वे गायत्री महाविद्या पर विश्वकोश स्तर की रचना गायत्री महाविज्ञान के तीन खण्ड लिख चुके थे, जिसके अब तक प्रायः पैंतीस संस्करण छप चुके हैं। हिमालय से लौटते ही उनसे महत्वपूर्ण निधि के रूप में वेद, उपनिषद्, स्मृति, आरण्यक, ब्राह्मण, योगवाशिष्ठ, मंत्र महाविज्ञान, तंत्र महाविज्ञान जैसे ग्रन्थों को प्रकाशित कर देव संस्कृति की मूलधाती को पुनर्जीवन दिया। परमवंदनीया माताजी ने उन्हीं वेदों को पूज्यवर की इच्छानुसार १९९१-९२ में विज्ञानसम्मत आधार देकर पुनर्मुद्रित कराया एवं वे आज घर-घर में स्थापित हैं।

युग निर्माण योजना व ‘युग निर्माण सत्संकल्प’ के रूप में मिशन का घोषणा पत्र १९६३ में प्रकाशित हुआ। तपोभूमि एक विश्वविद्यालय का रूप लेती चली गयी तथा अखण्ड ज्योति संस्थान एक तप-पूत की निवास स्थली बन गया, जहाँ रहकर उनसे अपनी शेष तप साधना पूरी की थी, जहाँ से गायत्री परिवार का बीज डाला गया था। तपोभूमि में विभिन्न शिविरों का आयोजन किया जाता रहा, पूज्यवर स्वयं छोटे-बड़े जन सम्मेलनों के द्वारा विचार क्रान्ति की पृष्ठभूमि बनाते रहे, पूरे देश में १९७०-७१ में पाँच १००८ कुण्डी यज्ञ आयोजित हुए। स्थायी रूप से विदाई लेते हुए एक विराट सम्मेलन (जून १९७१) में परिजनों को विशेष कार्य-भार सौंप परमवंदनीया माताजी को शांतिकुंज, हरिद्वार में अखण्ड दीप के समक्ष तप हेतु छोड़कर स्वयं हिमालय चले गये। एक वर्ष बाद वे गुरुसत्ता का संदेश लेकर लौटे एवं अपनी आगामी बीस वर्ष की क्रिया-पद्धति बतायी। ऋषि परम्परा का बीजारोपण, प्राण प्रत्यावर्तन, संजीवनी व कल्प साधना सत्रों का मार्गदर्शन जैसे कार्य उनसे शांतिकुंज में सम्पन्न किये।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना अपनी हिमालय की इस यात्रा से लौटने के बाद ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की थी, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादनों पर शोध कर एक नये धर्म वैज्ञानिक धर्म के मूलभूत आधार रखे जाने थे। इस सम्बन्ध में पूज्यवर ने विराट परिमाण में साहित्य लिखा, अदृश्य जगत के

अनुसंधान से लेकर मानव की प्रसुत क्षमता के जागरण तक, साधना से सिद्धि एवं दर्शन-विज्ञान के तर्क, तथ्य, प्रमाण के आधार पर प्रस्तुतीकरण तक। इसके लिए एक विराट ग्रन्थागार बना व एक सुसज्जित प्रयोगशाला। वनौषधि उद्यान भी लगाया गया तथा जड़ी-बूटी, यज्ञ विज्ञान तथा मंत्र शक्ति पर प्रयोग हेतु साधकों पर परीक्षण प्रचुर परिमाण में किये गये। निष्कर्षों ने प्रमाणित किया कि ध्यान साधना, मंत्र चिकित्सा व यज्ञोपैथी एक विज्ञानसम्मत विधा है। गायत्री नगर क्रमशः एक तीर्थ, संजीवनी विद्या के प्रशिक्षण का, एकेडमी का रूप लेता चला गया एवं जहाँ ९-९ दिन के साधना प्रधान, एक-एक माह के कार्यकर्ता निर्माण हेतु युगशिल्पी सत्र सम्पन्न होने लगे।

कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ। स्थान-स्थान पर शक्तिपीठें विनिर्मित हुईं, जिनके निर्धारित क्रियाकलाप थे- सुसंस्कारिता व आस्तिकता संवर्धन एवं जन-जाग्रति के केन्द्र बनना। ऐसे केन्द्र जो १९८० में बनना आरंभ हुए थे, प्रज्ञासंस्थान, शक्तिपीठ, प्रज्ञामण्डल, स्वाध्याय-मण्डल के रूप में पूरे देश व विश्व में फैलते चले गये। ७६ देशों में गायत्री परिवार की शाखाएँ फैल गयीं, ४६०० से अधिक भारत में निज के भवन वाले संस्थान विनिर्मित हो गये, वातावरण गायत्रीमय होता चला गया।

परमपूज्य गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण में प्रवेश कर १९८५ में ही पाँच वर्ष के अंदर अपने सारे क्रिया-कलापों को समेटने की घोषणा कर दी। इस बीच कठोर तपसाधना कर मिलना-जुलना कम कर दिया तथा क्रमशः क्रिया-कलाप परमवंदनीया माताजी को सौंप दिये। राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों, विराट दीप यज्ञों के रूप में नूतन विधा को जन-जन को सौंप कर राष्ट्र देवता की कुण्डलिनी जगाने हेतु उनने अपने स्थूल शरीर छोड़ने व सूक्ष्म में समाने की, विराट से विराटतम होने की घोषणा कर गायत्री जयन्ती २ जून, १९९० को महाप्रयाण किया। सारी शक्ति वे परमवंदनीया माताजी के दे गये व अपने व माताजी के बाद संघशक्ति की प्रतीक लाल मशाल को ही इष्ट-आराध्य मानने का आदेश देकर ब्रह्मबीज से विकसित ब्रह्मकमल की सुवास को देवसंस्कृति दिग्विजय अभियान के रूप में आरंभ करने का माताजी को निर्देश दे गये।

एक विराट श्रद्धांजलि समारोह व शपथ समारोह जो हरिद्वार में सम्पन्न हुए, में लाखों व्यक्तियों ने अपना समय समाज के नवनिर्माण, मनुष्य में देवत्व के उदय व धरती पर स्वर्ग लाने का गुरुसत्ता का नारा साकार करने के निमित्त देने की घोषणा की। परमवंदनीया माताजी द्वारा भारतीय-संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने, गायत्री रूपी संजीवनी घर-घर पहुँचाने के लिए पूज्यवर द्वारा आरम्भ किये गये युग संधि महापुरश्चरण की प्रथम व द्वितीय पूर्णाहुति तक विराट अश्वमेध महायज्ञों की घोषणा की गयी। वातावरण के परिशोधन, सूक्ष्मजगत के नवनिर्माण एवं सांस्कृतिक व वैचारिक क्रान्ति ने सारी विश्ववसुधा को गायत्री व यज्ञमय, वासंती उल्लास से भर दिया। स्वयं परमवंदनीया माताजी ने अपनी पूर्व घोषणानुसार चार वर्ष तक परिजनों का मार्गदर्शन कर सोलह यज्ञों का संचालन स्थूल शरीर से किया व फिर भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर, १९९४ महालय श्राद्धारंभ वाली पुण्य वेला में अपने आराध्य के साथ एकाकार हो गयीं। उनके महाप्रयाण के बाद, दोनों ही सत्ताओं के सूक्ष्म में एकाकार होने के बाद मिशन की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ती चली गयीं एवं जयपुर के प्रथम अश्वमेध यज्ञ (नवम्बर ९२) से छब्बीसवें अश्वमेध यज्ञ शिकागो (यू. एस. ए. जुलाई ९५) तक प्रज्ञावतार का प्रत्यक्ष रूप सबको देखने लगा है।

गुरुसत्ता के आदेशानुसार सतयुग के आगमन तक १०८ महायज्ञ देवसंस्कृति को विश्वव्यापी बनाने हेतु सम्पन्न होने हैं। युग संधि महापुरश्चरण की अंतिम पूर्णाहुति उसी के बाद होगी। प्रथम पूर्णाहुति नवम्बर १९९५ में कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर युगपुरुष पूज्यवर की जन्मभूमि आँवलखेड़ा में मनायी गई। उनके द्वारा लिखे गये समग्र साहित्य के वाङ्मय का जो एक सौ आठ खण्डों में फैला है, विमोचन भी यहीं सम्पन्न हुआ। विनम्रता एवं ब्राह्मणत्व की कसौटी पर खरे उतरने वाले वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र ही उनके उत्तराधिकारी कहे जाएँगे, यह गुरुसत्ता का उद्घोष था एवं इस क्षेत्र में बढ़-चढ़कर आदर्शवादी प्रतिस्पर्धा करने वाले अनेकानेक परिजन अब उनके स्वप्नों को साकार करने आगे आ रहे हैं। 'हम बदलेंगे-युग बदलेगा' का उद्घोष दिग-दिगन्त तक फैल रहा है एवं इक्कीसवीं सदी उज्ज्वल भविष्य, सतयुग की वापसी का स्वप्न साकार होता चला जा रहा है, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है। □□□

भूमिका

सूक्तियाँ छोटे तीर के समान हैं, जो बड़े गम्भीर घाव करने में, मर्मस्थल को स्पर्श करने में सक्षम हैं। यह न केवल याद करने में सुगम होती हैं, बल्कि हृदयस्पर्शी इस सीमा तक होती हैं कि जीवन को बदल देने तक की सामर्थ्य इनमें है। परमपूज्य गुरुदेव ने समय-समय पर अपनी अमृतवाणी में भी तथा लेखनी के माध्यम से भी इस तथ्य को समझाने की कोशिश की है कि भारतीय संस्कृति की इस सूत्र-प्रणाली रूपी विशेषता को यदि हृदयंगम कर लिया जाए, तो ज्ञान की विशिष्ट पूँजी हस्तगत हो सकती है। इस खण्ड में वेदों की स्वर्णिम सूक्तियाँ भी हैं, साम्प्रदायिक सद्भाव की प्रतीक विभिन्न धर्मग्रन्थों की वाणी भी, शास्त्रमंथन नवनीत भी, तो महापुरुषों के छोटे-छोटे वाक्यों के रूप में अमृतवाणी, ऋषि-चिन्तन भी है एवं विवेक-संतसई भी।

बड़ी विविधता का समुच्चय यह खण्ड स्वयं में विलक्षण है। एक स्थान पर उन सभी विचारों का संकलन है, जो मनुष्य को महान बनाने की सामर्थ्य रखते हैं। वेदों की सूक्तियों को पूज्यवर ने आत्मसत्ता-परमसत्ता, सत्य और सद्विचार, ब्राह्मणत्व, सज्जनता और सद्व्यवहार, उन्नतशील जीवन, प्रेम व कर्तव्यपरायणता की महत्ता, दुष्प्रवृत्तियों का शमन, अर्थव्यवस्था का सुनियोजन, दुष्टता से संघर्ष, इन छोटे-छोटे लेखों में बाँटकर परिपूर्ण व्याख्या की है। स्वाध्याय में प्रमाद न करो, हे देवो! गिरे हुआ को उठाओ, क्रोध को नम्रता से शान्त करो, सत्कर्म ही किया करो, किसी का दिल न दुखाओ-ये सूक्तियाँ वेदों में स्थान-स्थान पर आयी हैं। संस्कृत की सरल हिन्दी देकर जो व्याख्या प्रस्तुत की गयी है, उससे विषय सीधा अन्दर तक प्रवेश कर जाता है।

‘पंथ अनेक लक्ष्य एक’ प्रकरण में विभिन्न धर्मों के मुख्य ग्रन्थों से उनके मूल उपदेशों को संग्रहीत कर यह जताने का प्रयास किया गया है कि सर्व-साधारण में धर्मों-सम्प्रदायों की भिन्नता, पारस्परिक विरोध की जो भावनाएँ फैली हैं वे निराधार हैं, अज्ञानताजनित हैं। सभी धर्मों के मूल में मूल स्वर एक ही है। अथर्ववेदादि चारों वेद, उपनिषद्, भागवत पुराण, रामचरितमानस, कोधवग्गो, दण्डवग्गो आदि बौद्ध ग्रन्थ, गुरु ग्रंथ साहब, यहूदी भजनावली, मिदराश, यलकुत आदि ग्रन्थ, ताओ तेह किंग, लूका-मत्ती आदि ईसाई ग्रन्थों के उद्धरण, कुरान शरीफ आदि के माध्यम से यह प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है कि जीवनशोधन, सदाचार, सत्य ही धर्म है, अहिंसा और प्रेम, कर्तव्यपरायणता, दाम्पत्य जीवन की पवित्रता आदि सभी विषयों पर सभी ग्रन्थ समान रूप से एक ही बात का प्रतिपादन करते हैं।

शास्त्रमंथन के नवनीत के रूप में मनुस्मृति, नीतिसार, शब्दार्थ चिन्तामणि, महाभारत, स्मृतिग्रन्थादि, सूत्रग्रन्थ, नीतिशतक, योगवासिष्ठ, सुभाषित रत्नभाण्डागार, चरक, सुश्रुत आदि सभी ग्रन्थों का सार अमृतवचनों के रूप में, सूक्तियों के रूप में प्रस्तुत है। यह एक विलक्षण उपलब्धि है कि यह सारा चिन्तन एक ही स्थान पर आ गया है एवं इसके लिए पाठक को ढेरों ग्रन्थों के स्थान पर मात्र वाङ्मय के इन दो खण्डों के स्वाध्याय से वह उपलब्धि हो सकती है जो अतुलनीय है। अमृतकण के माध्यम से स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द, लाला हरदयाल, गाँधीजी, जेम्सएलन, टाल्सटाय, रामकृष्ण परमहंस, स्पिनोजा, विक्टर ह्यूगो, गेटे, जानसन, बेकन, टेनीसन आदि के विचार जो हृदयस्पर्शी हैं, २-२ पंक्तियों में दे दिए गए हैं। ये ‘कोटेशनस’ न केवल वक्ताओं, धर्मोपदेशकों के लिए महत्त्वपूर्ण हैं, जीवनपथ पर प्रगति के मार्ग पर चलने वाले हर व्यक्ति के लिए प्रेरणा के स्रोत हैं। जो भी इन्हें पढ़ेगा, वह अपना जीवन सदा श्रेष्ठ विचारों से ओत-प्रोत रखेगा।

'ऋषि-चिन्तन' परमपूज्य गुरुदेव के मौलिक विचारों का प्रस्तुतीकरण है। सद्विचारों के माध्यम से महामानव कैसे किसी समयविशेष में समुदाय को एक विशिष्ट लक्ष्य की ओर मोड़ देते हैं, इसका परिचय इन छोटे-छोटे विचारसार रूपी गद्य संदेशों द्वारा मिलता है। समय-समय पर अखण्ड-ज्योति पत्रिका, युगनिर्माण योजना, युगशक्ति गायत्री, प्रज्ञा अभियान में प्रथम पृष्ठ पर दिशा-निर्देश के रूप में प्रकाशित होते रहे हैं। सभी का संकलन यहाँ एक साथ कर दिया गया है। आत्मविज्ञान से लेकर व्यावहारिक अध्यात्म के हर क्षेत्र को स्पर्श करने वाले गागर में सागर के समान बहुमूल्य इन विचारों को क्रमबद्ध रूप में यहाँ प्रस्तुत किया गया है। अंधकार को दीपक की चुनौती, तप में प्रमाद न करें, धर्म न तो अवैज्ञानिक है न अनुपयोगी, पतन नहीं उत्थान का मार्ग अपनाएँ, जीवन जीने की कला की सच्ची साधना, जीवन-संग्राम का अनिवार्य सोपान-दृष्टिकोण परिवर्तन, वैभव ही नहीं विवेक भी-इनको पढ़कर मन विधेयात्मक चिन्तन की गंगोत्री में डुबकी लगाने लगता है। आज आवश्यकता ऐसे ही सद्विचारों के प्रवाह की है, जो कलियुग के सूक्ष्मजगत में संव्याप्त प्रदूषित प्रवाह से जूझने की सामर्थ्य दे सकें। यही प्रयास इस वाङ्मय में किया गया है कि पूज्यवर द्वारा लिखित एवं संकलित हर विचारसार एवं सूक्तियाँ एक स्थान पर इन दो खण्डों में समा जाएँ। निश्चित ही इससे सभी विचारशील पाठक लाभान्वित होंगे।

-ब्रह्मवर्चस



विषय-सूची

मितव्ययता	१.१	सेवा-साधना	१०.१
राष्ट्र और संस्कृति	२.१	स्वाध्याय एवं सद्बुविचार	११.१
महापुरुषों की वाणी	३.१	संगठन और सहकार	१२.१
पंच अनेक—लक्ष्य एक	४.१	स्वस्थ जीवन	१३.१
जीवन-शोधन और सदाचरण	४.२	भोग-बिलास	१४.१
सत्य ही धर्म है	४.६	त्याग और बलिदान	१५.१
अहिंसा और प्रेम	४.८	प्रेम-प्रयोगि	१६.१
आत्मा की एकता, आत्मदर्शन	४.१०	महापुरुषों की दिव्य-अनुभूतियाँ और	
मानव-जीवन की सार्थकता	४.१२	दिव्य-संदेश	१७.१
कर्तव्यपरायणता	४.१५	बेदों की दिव्य सूक्तियाँ	१८.१
मनोनिग्रह	४.१७	परमात्मा और उसकी उपासना	१८.१
ब्रह्मचर्य की महत्ता	४.१९	आत्मशक्ति का विकास	१८.२
क्रोध पाप का मूल	४.२०	सद्बुवहार और श्रेष्ठता	१८.४
पारिवारिक जीवन में सुव्यवस्था	४.२२	चरित्र-निर्माण और सदाचार	१८.८
दाम्पत्य-जीवन की पवित्रता—नारी-गौरव	४.२३	मनोनिग्रह—इन्द्रियनिग्रह	१८.११
मांस न खा, मदिरा न पी, जुआ न खेल	४.२५	ईमानदारी और परिश्रम की कमाई	१८.१३
विविध	४.२६	ब्राह्मण, समाज और राष्ट्र	१८.१५
कुछ महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक सूक्तियाँ	५.१	सत्संग से दुरित निवारण	१८.१६
धर्मशास्त्रों की शिक्षाप्रद एवं	५.३	स्वास्थ्य और आरोग्य	१८.२१
प्रेरणाप्रद सूक्तियाँ	५.३	नारी-गौरव	१८.२३
विवेक-सतसई	६.१	विवाह	१८.२४
ईश्वर-भक्ति	६.१	सुखी दाम्पत्य, समुन्नत गृहस्थ	१८.२४
आत्मज्ञान	६.२	द्वेष-निवारण	१८.२६
चेतावनी	६.२	दोष और दुर्गुणों का निषेध	१८.२६
महानता के लक्षण	६.३	आत्मा और परमात्मा	१८.३०
मनुष्यता के लक्षण	६.४	सत्य और सद्बुविचार	१८.३०
सत्य और असत्य	६.६	सज्जनता और सद्बुवहार	१८.३८
सत्संग	६.७	उन्नतशील जीवन	१८.३३
विवेक	६.८	द्वेष नहीं प्रेम करो	१८.३४
प्रेम	६.९	कर्तव्य के पथ पर	१८.३५
मधुरता और नम्रता	६.१०	दुष्प्रवृत्तियों का शमन	१८.३६
कर्तव्य की प्रधानता	६.११	अर्थ-व्यवस्था	१८.३६
शूरवीर	६.१२	परिवार-व्यवस्था	१८.३७
नीति	६.१३	शरीर की सुरक्षा	१८.३८
सामयिक दुरवस्था	६.१५	दुष्टता से कैसे निपटें ?	१८.३८
जीवन-मूल्य	७.१	यज्ञ का महत्त्व	१८.३९
भाव-संवेदना	८.१	गायत्री माहात्म्य	१८.३९
अपना दृष्टिकोण बदलें	९.१		

मितव्ययता

- दान की अपेक्षा देने के ढंग से दाता के चरित्र का पता चलता है। —लेवेटेर
- धनस्य च धर्मकफलं यतो वै ज्ञानं स विज्ञानमनु प्रशान्तिः । —श्रीमद्भागवत ११/५/२०
धन का एक ही सदुपयोग है—धर्म, जिससे ज्ञान, विज्ञान और शान्ति मिले।
- धन पास रहने में उतना आनन्द नहीं मिलता, जितना कि उसके खोने या छिन्ने में कष्ट होता है। —सेन्ट ग्रेगरी
- यदि धन बहुत-सा इकट्ठा हो जाए तो वह पाले हुए शत्रु के समान है। उसका छोड़ना भी कठिन ही जाता है। —वेदव्यास
- श्री मंगलात् प्रभवति प्रागल्भ्यात् संभवति । वाक्यात् कुप्यते मूलं संयमात् प्रतितिष्ठति ।। —वेदव्यास
सम्पत्ति शुभकार्यों से उत्पन्न होती है, चतुरता से बढ़ती है, अत्यन्त निपुणता से जड़ पकड़ती है तथा संयम से स्थिर रहती है।
- समृद्धि के साथ प्रेम और सहयोग का विकास न हो तो वह सम्पत्ति किसी काम की नहीं। —विदुर
- सम्पत्तिवान् होकर भी मनुष्य यदि विपत्ति में पड़े व्यक्तिओं के काम न आए तो उसकी सम्पत्ति किस काम की ? समाज से संग्रहीत, सम्पत्ति का उपयोग समाज कल्याण में ही किया जाना सज्जनों का काम है। —कालिदास
- धन पैदा करना नहीं उसे सही खर्च करने की कला सीखना कठिन है। धन खर्च करना आ जाए तो थोड़े धन से भी मनुष्य सुखी हो सकता है। —एयर्सन
- लोभ उन्हीं लोगों में अधिक पाया जाता है, जिनमें शायद ही कोई सदगुण हो, यह वह घास है जो ऊसर जमीन में उगती है। —ह्यूजेज
- गरीब वह नहीं जिसके पास कम है, बल्कि वह है जो अधिक चाहता है।
- जो धन दया और ममता से रहित हो उसकी तुम कभी इच्छा न करो और उसको कभी अपने हाथ से न छुओ। —सन्त तिरुवल्लुवर
- लालची अपनी योग्यता और मेहनत से अधिक चाहता है। इसलिए उसे अनीति अपनानी और कंजूसी बरतनी होती है। ये दोनों ही आधार ऐसे हैं, जो किसी को भी ले डूबते हैं, इसी कारण लालची कमाते कम और गँवाते अधिक हैं। —सन्त तुकाराम
- लोभी मनुष्य की कामना कभी पूर्ण नहीं होती।
- कृपण लोगों को धन से प्रायः कोई भी सुख नहीं मिलता। इस लोक में तो उसके संग्रह और रक्षा की चिन्ता लगी रहती है और मरने पर वह (पाप से कमाया हुआ धन) नरक का कारण होता है। जिस प्रकार जरा-सा भी कोढ़ सर्वांग सुन्दर रूप को बिगाड़ देता है, इसी प्रकार तनिक-सा भी लोभ यशस्वी के निर्मल यश को और गुणियों के प्रशंसनीय गुणों को कलंकित कर देता है।
- जो आलसी नहीं है, कार्य करने की विधि जानता है, किसी भी प्रकार के व्यसन में आसक्त नहीं है, वीर है, किए हुए उपकार को मानता है और जिसकी मित्रता दृढ़ होती है, ऐसे सज्जन के पास रहने के लिए लक्ष्मी स्वयं ही उपस्थित हो जाती है। —पंचतन्त्र
- तुम धन और यश के पीछे न भागना। उन्हें अपना बल न समझना, वे कुहासे की तरह हैं, जो सघन-दिखता भर है, पर उसमें तथ्य कुछ नहीं होता। उन्हें पाकर न तुम सन्तुष्ट रह सकोगे और न चैन से बैठ सकोगे। जीवन-निर्वाह के लिए दरिद्रों की सेवा-सहायता करो और अपना पुरुषार्थ ईश्वर के कामों में लगाओ।
- बड़े धन से अच्छा नाम अधिक चाहने योग्य है तथा सोने-चाँदी से औरों की प्रसन्नता उत्तम है।
- जो अपने लाभ के निमित्त कंगाल पर आधारित रहता और धनी को जो भेंट देता, वे दोनों की आपत्ति उठाते हैं।

१.२ विचारसार एवं सुक्तिर्वा (द्वितीय खण्ड)

- ईश्वर से प्रार्थना करो कि वह तुम्हें आज की रोटी आज दे तथा परिश्रम करो और जमाखोरी की ओर मन न ललचाने दो। सम्पदा वे नहीं जमा कर सके, जिनके हृदय में करुणा है। तुम न धनी बनो, न धनियों को देखकर ललचाओ।
- जो लोग अपने धन को अल्लाह के मार्ग में खर्च करते हैं और फिर किसी पर अहसान नहीं जताते और न लेने वालों को किसी प्रकार का कष्ट पहुँचाते हैं, उनको उनके दिए का फल उनके पालनकर्ता की ओर से प्राप्त होगा और न तो उन पर किसी प्रकार आतंक होगा और न वे शोकग्रस्त ही होंगे।

—सूरवे बकर १/ २/ ३६/ २

- उत्साहसम्पन्नमदीर्घतुल्यं क्रियाविधिनां व्यसनेष्वतत्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढतीक्ष्णं च लक्ष्मीः स्वयं मार्गसि वाससेतोः॥
उत्साह से सम्पन्न, विलम्ब न करने वाले, काम की रीति जानने वाले, निर्व्यसन, शूर, कृतज्ञ और मित्रता को निभाने वाले को लक्ष्मी दौड़कर अपना निवास स्थान बनाती है।
- मनुष्य धन के अभाव से उतना कष्ट नहीं पाता जितना वह अपनी फिजूलखर्ची के कारण पाता है।
- दरिद्र वह है जिसकी तृष्णा विशाल है। जो स्वल्प में सन्तोष कर सकता है, वही सम्पन्न है और वही प्रगतिशील।
- बहुत जोड़ने की कोशिश मत करो। बहुत जोड़ने का अर्थ बहुत गँवाना है। रेशम के कीड़े और शहद की मक्खी को देखो। बहुत जोड़ने के फलस्वरूप उन्हें कितना गँवाना पड़ता है ?
- हम लोगों को जो कुछ प्राप्त है, उसी में सन्तुष्ट रहना चाहिए और जो अप्राप्य है, उसके लिए दुःख करना वृथा है।
- सबसे बहुमूल्य और सुरक्षित धन अपनी सम्पत्ति है, चाहे वह कितनी ही थोड़ी क्यों न हो, सन्तुष्ट रहना है।
- कोई धनवान होने की लालसा में मतवाले है। किसी को मान पाने की लगन है। कोई महलों तथा ऊँची-ऊँची अट्टलिकाओं के निर्माण और उनकी सजावट में व्यस्त है। कोई अपने चरित्र, चमत्कार से संसार को आश्चर्यचकित कर देना

चाहते हैं। इनके अतिरिक्त और भी बहुत-से अपनी-अपनी इच्छानुकूल वातावरण बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। इन सबसे पूछा जाय कि आपको अपनी इच्छित वस्तु मिल जाने पर क्या फिर किसी बात की आवश्यकता शेष रह जाएगी ? तो क्या उत्तर मिलेगा ? सन्तोष और आत्म-तृप्ति को प्राप्त किये बिना क्या तृष्णा और कामना की दावानल किसी प्रकार बुझ सकती है ?

- जो मनुष्य सामर्थ्यवान होकर भी भलाई नहीं करता, उसे सामर्थ्यहीन होने पर दुःख भोगना पड़ेगा।
- धन का मोह मनुष्य की बुद्धि को अनिश्चयात्मक बना देता है। इसलिए सदैव सावधानी से मन को ठीक रास्ते पर रखें, ध्यान रखो जो कुछ भी धन कमाओ, वह न्याय और धर्म के आधार पर ही होना चाहिए।
- सम्पत्ति एक व्यक्ति की नहीं सारे राष्ट्र की है, उसका मिल-बाँटकर ही उपयोग करना चाहिए।
- सम्पत्ति का अभिमान मत करो, क्योंकि प्रकृति के एक ही झोंके में बड़ी से बड़ी सम्पत्ति क्षणभर में चकनाचूर हो सकती है।
- धन उन्हीं के पास ठहरता है, जो सद्गुणी होते हैं। दुर्गुणी की विपुल सम्पदा भी स्वल्पकाल में नष्ट हो जाती है।
- इदमेव हि पाण्डित्यम् चातुर्यमिदमेव हि।
इदमेवं तुमुक्षित्वं आवावन्ततरो ज्ञवः॥
विद्वत्ता, चतुरता, बुद्धिमत्ता इसी एक बात से परखी जाती है कि मनुष्य का व्यय उसकी आय से कम है या नहीं।
- अमीरी दिल से है धन से नहीं, बड़प्पन अक्ल से है उम्र से नहीं।
- चाहे पोशाक सादी हो या कीमती, अपनी आमदनी के अनुसार ही अपना शृंगार करना अच्छा है।
- धन का प्रदर्शन छोड़ दो, लालच त्याग दो और तुम्हें चोर-डाकू नहीं मिलेंगे।
- सब पवित्रताओं में धन की पवित्रता बड़ी है। जो शरीर और कपड़ों को धोते रहते हैं, उनकी

- सलिनता छूटती नहीं। शुद्ध धन ही मन को शुद्ध बनाता है।
- यदुवासि विशिष्टेष्वो बध्नासि दिनेदिने।
तत्ते वित्तमहं मय्ये क्षेत्रं परस्य रक्षति॥
जो किसी श्रेष्ठ कार्य या श्रेष्ठ व्यक्ति को दिया जाए अथवा जिसका सदुपयोग कर लिया जाए वही धन है। बाकी तो किसी दूसरे का है जिसकी तुम चौकीदारी करते हो।
- यदि तुमको झूठ बोलने से, आत्मा को दुःख पहुँचाने से सम्पत्ति मिले, तो वह ठीक नहीं है। न्याय और परिश्रम का एक-एक पैसा, अन्याय के एक रुपये के बराबर है।
- गृहस्थ के परिमित व्यय पर उतनी ही बुद्धि से काम लेना चाहिए, जितना कि साम्राज्य पर राज्य करने में।
- जिसके पास किसी का कर्ज नहीं, वह बड़ा मालदार है।
- पैसे का आदान-प्रदान ही यदि स्नेह-सहयोग का निमित्त कारण बना रहा तो पतिव्रता के स्थान पर वेश्या को मान मिलता रहेगा।
- जब तक धन, धातु और कागज के रूप में है, तब तक वह कूड़े-करकट के अतिरिक्त कुछ नहीं, पर जब वह योजनाओं और भावनाओं के साथ जुड़ता है, तब वह शक्ति बनता है।
- मन से हर एक को सदैव अपरिग्रही होना चाहिए। आदर्श यही सामने रहना चाहिए कि सच्ची जरूरतें पूरी करने के लिए ही कमावें, जोड़ने, जमा करने या ऐश उड़ाने के लिए नहीं। यदि गरीब आदमी लखपती बनने के मनसूबे बाँधता है तो वह परिग्रही है। धन-वैभव के बारे में यही आदर्श निश्चित किया जाना चाहिए कि सच्ची जरूरतों की पूर्ति के लिए कमावेंगे, उतनी ही इच्छा करेंगे, उससे अधिक संग्रह न करेंगे। धन को जीवन का उद्देश्य नहीं, वरन् एक साधन बनाना चाहिए। 'आत्मोन्नति और परमार्थ' जीवनोद्देश्य तो यही होना चाहिए।
- जीवन-धारण करने योग्य पैसा कमाने के अतिरिक्त शेष समय परमार्थ कार्यों में लगाना चाहिए। पैसे की आज जो सर्वभक्षी तृष्णा हर एक के मन में दावानल की तरह धधक रही है यह सर्वथा त्याज्य है। सादगी और अपरिग्रह में सच्चा आनन्द है। मनुष्य उतना ही आनन्दित रह सकता है, जितना अपरिग्रही होगा। परिग्रही के सिर पर तो अशान्ति और अनीति सवार रहती है। इसी मर्म को समझते हुए योगशास्त्र के आचार्यों ने अध्यात्मपथ के पथिक को अपरिग्रही बनने का कठोर आदेश दिया है।
- आवश्यकता सम्पत्ति की उतनी ही है जितनी सदाशयता की। सदाशयता हमें हिल-मिलकर रहना और मिल-बाँटकर खाना सिखाती है। आपस में स्नेह और सहयोगपूर्वक कैसे रहा जाता है और जो सामने है, उसे मिल-बाँटकर कैसे खाया जाता है ? यह ज्ञान का सार है। सोचने का तन्त्र हमें मिला था, पर सोचने की कला से हम अपरिचित हैं। श्रम करने के लिए उपकरण हमें मिले हैं, पर क्या श्रम किया जाए और क्यों किया जाए ? इसका भान कदाचित ही किसी को है।
- सम्पत्ति के साथ सदाशयता का समावेश आवश्यक है, अन्यथा बासी रखा हुआ उपयोगी भोजन भी सड़ेगा और उसे जो कोई काम में लाएगा वह बीमार पड़ेगा। सम्पत्ति के अभाव में कितने ही लोग कष्ट पाते हैं, पर उससे अधिक वे लोग हैं, जो सम्पत्ति का उपयोग न जानने के कारण दुःखी हैं। सम्पत्तिवानों को दुर्व्यसनो में ग्रस्त देखा जाता है। उपयोग करने पर सुई भी अपने लिए घातक बन जाती है। कुकर्मी की भरमार सम्पन्नता के बाहुल्य से ही होती है। इसलिए सम्पत्ति से अधिक सदाशयता की आवश्यकता है। केवल सदाशयता की सहायता से जिन्दगी हँसते-हँसते कट सकती है, किन्तु केवल सम्पत्ति अपने और दूसरों के लिए संकट खड़े करेगी।



राष्ट्र और संस्कृति

- मेरे बलिदानों को मेरे जीवन से मत तौलो, मेरे देश की परम्पराओं से तौलो, मेरे पूर्वजों के शौर्य, पराक्रम और कीर्ति से तौलो, मेरी माँ के दूध की पवित्रता से तौलो, धर्म की महानता से तौलो। अगर मैं अपने बलिदानों में इनसे घटिया पड़ूँ तो मेरे लिए प्रार्थना करो कि मैं बार-बार जन्म लूँ और अपने बलिदानों को अपने राष्ट्र की इस कीर्ति-कसौटी पर खरा उतरने में समर्थ बनाऊँ।

मेरे प्राणों का इतना मूल्य मत लगाओ, मेरे मन के संकल्पों को इतने अतिरंजित आदर की दृष्टि से मत देखो, मेरे शरीर को पूजा के थाल का इतना दुर्लभ फूल मत घोषित करो—ये सब, दरअसल कुछ नहीं हैं, तुच्छ हैं, निरर्थक हैं—उस मिट्टी के सामने जिसे मैं अपनी मातृ-भूमि कहता हूँ, जिसे मैं अपने देवताओं की धात्री मानता हूँ, जिसके एक कण की तुलना में तीनों लोकों का एक-छत्र साम्राज्य भी मेरे लिए बेहद छोटा है।

—सुभाष चन्द्र बोस

- पुस्तक लिखने, काँच बनाने या अन्य श्रेष्ठ कार्य करने में जितनी बुद्धि लगती है, उतनी ही हल चलाने में खर्च होती है। ऐसे विचार जब तक किसी राष्ट्र या जाति में नहीं आ जाते, तब तक उसका उन्नत होना सम्भव नहीं।

—स्वामी रामतीर्थ

- यदि हम किसी खेत में अच्छी फसल देखें, तो शुरू से ही हमें यह बात ध्यान में रखनी होगी कि वह फसल में नहीं, बल्कि मिट्टी में उत्पन्न हुई है। मरुभूमि में देखा जाता है कि पेड़-पौधे एक-दूसरे से अलग बिखरे हुए रहते हैं और प्रत्येक की प्रवृत्ति होती है कोंटों के वेष्टन से अपने-आपको बचाना। वहाँ धरतीमाता एक रस से सबका परिपोषण नहीं करती। उनके प्राणों में परस्पर ऐक्य का अभाव होता है। मुख्य कारण यह है कि वहाँ मिट्टी के कण-कण में बन्धन है, बालू के कण-कण में विच्छेद है।

- जब हम किसी समृद्ध देश का इतिहास पढ़ते हैं तो उसके हरे-भरे खेतों पर हमारा ध्यान जाता है और उस देश की कृषि-प्रणाली का

भी हम परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए, यत्नपूर्वक अध्ययन करते हैं, लेकिन हम यह बात भूल जाते हैं कि ये हरे-भरे खेत न होते। यदि भूमि में विछिन्नता जो होती तो खेती करने का हम अधिकार माँगते हैं और अच्छी फसल की आशा भी करते हैं, लेकिन हमारी भूमि की प्रकृति में जो विच्छेद है, उसे नहीं देखते उसे नगण्य जानते हैं। यही नहीं, धर्म के नाम पर उस विच्छेद को बनाये रखने की चेष्टा करते हैं।

किसी भी देश में सामाजिक विशिष्टता के आधार पर राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य संघटित नहीं हुआ है। जहाँ जनता विभक्त है, वहाँ किसी विशेष व्यक्ति का एकाधिपत्य बाह्य-बन्धन में लोगों को जकड़े रखता है और यह एकाधिपत्य भी अधिक समय तक नहीं रहता, बार-बार बदलता रहता है।

जहाँ मनुष्य-मनुष्य में विच्छेद है, वहाँ राष्ट्रीय शक्ति के साथ-साथ बुद्धि भी शिथिल हो जाती है। वहाँ कभी-कभी प्रतिभाशाली व्यक्तियों का अभ्युदय हो सकता है, लेकिन उनकी प्रतिभा के दान को धारण और पोषण करने की क्षमता सर्व-साधारण में नहीं होती और इसलिए वह प्रतिभावान पहले विकृत और फिर विलुप्त हो जाता है, ऐक्य के अभाव से मनुष्य बर्बर हो जाता है, क्योंकि सहकारिता ही मनुष्य का सत्य धर्म है, उसकी श्रेष्ठता का आधार है।

—रवीन्द्रनाथ टैगोर

- स्त्रियाँ, लड़के और शूद्र राष्ट्र रूपी वृक्ष की जड़ें हैं। जड़ को योग्य खाद और पानी देकर वृक्ष को अधिक सम्पन्न बनाने का हमारा पहला कर्तव्य होना चाहिए।

—स्वामी रामतीर्थ

- शास्त्र के आशीर्वाद से शस्त्र और शस्त्र के प्रताप से शास्त्र की रक्षा होती है। जिन राष्ट्रों के एक हाथ में शास्त्र और दूसरे में शस्त्र होता है, वे संसार में चिर-विजयी होकर जीते हैं। क्या तुम्हारे पास शास्त्र और शस्त्र का शाश्वत जोड़ा नहीं है ? है तो दोनों को धारण करो और श्रेष्ठ पुरुष बनकर जन-जन को अभय दो, प्रकाश दो।

—द्रोणाचार्य

- हम अपने राष्ट्रीय जीवन को सक्षम, स्वतन्त्र एवं स्वाभिमानपूर्ण रखने के पक्ष को दुर्बल कर बैठे थे। हम भूल गये थे कि हमें संगठित सामाजिक इकाई के रूप में जीना है। अपनी विशाल मानव शक्ति को भुलाकर हम एकान्तिक बन गये थे।
—मा. स. गोल बलकर

- जहाँ मन निःशंक है और स्वाभिमान से माथा ऊँचा रहता है, जहाँ अथक उद्योग अपनी भुजाएँ पूर्णता की ओर प्रसारित करता है, जहाँ विवेक की निर्मल धारा मृत रुद्धियों के शून्य मरुस्थल में विलुप्त नहीं हो गई है और जहाँ मन तेरे नेतृत्व में सतत विकासशील, विचारों और कर्मों की ओर अग्रसर होता रहता है—मेरे पिता ! स्वतन्त्रता के ऐसे स्वर्गस्थल में मेरा देश जाग्रत हो।
—रवीन्द्रनाथ टैगोर

- जब तक देश में किसी प्रकार का संकट न हो और परिस्थितियाँ अनुकूल हों, जब तक प्रत्येक मनुष्य को सीधे अपने ध्येय पर चलते हुए आत्म-निर्माण के कार्यों में लगे रहना चाहिए, पर यदि कोई आकस्मिक आपत्ति उठ खड़ी हो तो उस मार्ग का अनुसरण करना चाहिए जिससे राष्ट्र का हित सर्वप्रमुख हो। देश के आदर्श जीवित रहेंगे तो तुम्हारे व्यक्तिगत उत्थान की परिस्थितियाँ भी अनुकूल होंगी, भले ही उसमें बहुत-सा समय लगे, पर यदि राष्ट्र-धर्म ही नष्ट हुआ तो तुम्हें अपने आपको नष्ट हुआ समझना चाहिए। राष्ट्र की रक्षा और उसके स्वाभिमान को जीवित रखने के लिए तुमसे जितना कुछ बन पड़े सहयोग देते रहना चाहिए।
—गुरु गोविन्दसिंह

- “हमें विश्वास रखना चाहिए कि भारत जरूर उठेगा और महान होगा। चाहे कितने ही संकट आएँ, बाधाएँ उपस्थित हों, वे उल्टे उसे अपने पथ पर अग्रसर होने में सहायक होंगी। उसकी गति अब ऊर्ध्व की ओर है, हास का काल समाप्त हो चुका है। उसके क्षितिजों में उषाकाल आने ही वाला है और जहाँ एक बार पौ फटी, निशा का फिर आगमन नहीं हो सकता। उषा के बाद आकाश में सूर्योदय अवश्यम्भावी है, भारत का भाग्य-भानु उदीयमान होने को ही है, उसकी तेजोद्युति सारे भारत को, सारे एशिया एवं सारे संसार को छा

लेगी। प्रत्येक घड़ी, प्रत्येक पहर उस उज्ज्वल भविष्य को निकटतम ला रहा है, जो भगवान के द्वारा विहित हो चुका है।”

—महायोगी अरविन्द

- जिस राष्ट्रमन्दिर का निर्माण इतने दिनों से अनेक आत्म-विजयी, ऋषि, मुनि, दिग्विजयी सम्राट, कवि, कलाकार, साहित्यकार, स्मृतिकार, पुराणों के रचयिता तथा धर्मशास्त्रों के प्रणेता करते चले आ रहे हैं, आज उस मन्दिर में राष्ट्रपुरुष की मूर्ति स्थापित करके उसे अभिमन्त्रित करना है। भगवान को धन्यवाद दें कि यह सौभाग्य हमको प्राप्त हुआ। इस मन्दिर के प्रथम पुजारी बने। ऐसा प्रबन्ध कर चलें कि पीछे आने वाली पीढ़ियाँ इस मन्दिर में अनन्त काल तक पूजा कर सकें।
—वीनदयाल उपाध्याय

- “यदि स्वदेशाभिमान सीखना है तो सीखो एक मछली से, जो स्वदेश (पानी) के लिए तड़प-तड़प कर जान दे देती है।”

—सुभाष चन्द्र बोस

- राष्ट्र के हित की वृद्धि में लगे रहना ही देवताओं की उपासना करना है।

—स्वामी रामतीर्थ

- मानसिक दासता से बढ़कर हानि देने वाली और कोई दासता नहीं है।
—लाला लाजपत राय

- मेरा देश ही मेरे लिए ईश्वर की महिमा का साकार रूप है।
—वेशबन्धु चितरंजनदास

- “भारत के उच्च वर्गों ! क्या तुम स्वयं को जीवित समझते हो ? तुम, जो पुरातन भारत के मांसहीन एवं रक्तहीन कंकाल मात्र हो, तुरन्त भस्म होकर वायुमण्डल में विलीन क्यों नहीं हो जाते ? तुम स्वयं को शून्य में समाविष्ट करके गायब हो जाओ और अपने स्थान पर नवीन भारत का उदय होने दो। हल थामे हुए किसान की कुटिया में से तथा मछुओं, मोचियों और मेहतरों की झोपड़ियों में से उसका (नवीन भारत का) उदय होने दो। उठने दो उसे परचूनियों की दुकान से और पकौड़ीवाले की भट्टी से। प्रकट होने दो उसे कारखानों से, हाटों से और बाजारों से। उभरने दो उसे कुँजों व वनों से, पहाड़ियों से और पहाड़ों से।

—स्वामी विवेकानन्द

□ हिन्दुओं और मुसलमानों को यह स्मरण रखना चाहिए कि राष्ट्र की रक्षा का कार्य हिन्दू कर्मकाण्ड या मुस्लिम कर्मकाण्ड के बनाये रखने पर निर्भर नहीं है और मजहबी कर्मकाण्ड तथा रस्मोरिवाज की रक्षा करने के स्थान पर देश तथा राष्ट्र की रक्षा करना अपनी तथा मनुष्य जाति की उन्नति के लिए कहीं अधिक आवश्यक है।
—गणेशचक्र विद्याधी

□ राष्ट्र ऊपर उठते हैं और गिरते हैं, लेकिन आलस्य, विलासिता और जड़ता कभी ऊपर उठती ही नहीं। शिवाजी कहते थे कि हम तो धर्म के लिए फकीर बने हैं, लेकिन पेशवा तो पानीपत की लड़ाई के लिए भी सकुटुम्ब सपरिवार गए, मानो किसी बारात में जा रहे हों और वहाँ से कार्य-सिद्धि से हाथ धोकर अपना मुँह लेकर लौटे। गिवन ने कहा है—“रोम चढ़ा है कैसे ? सादगी से, रोम गिरा कैसे ? भोग-विलास से।”
—विनोबा

□ जिस तरह हम यज्ञ में आहुति देते समय कहते हैं कि “इदं इन्द्राय इदं न मम” यह मेरा नहीं है। उसी तरह आज हम जो कुछ उत्पादन करते हैं, चाहे वह खेती में हो, चाहे फैक्ट्री में उसके बारे में हमें कहना चाहिए कि “समाज के लिए है, राष्ट्र के लिए है,” अपने पास जो भी कुछ है, वह सब समाज को अर्पण करना चाहिए। फिर समाज की ओर से अपनी आवश्यकतानुसार जो मिलेगा वह अमृत होगा।
—विनोबा

□ एसाव्यज्यसाकस्य यदनायतवृत्तिता।
वे पराधीनतां यातास्ते वै जीवन्ति के मृतः॥

—शितोपवेश
स्वाधीन होना ही जन्म की सफलता है। यदि पराधीन रहने वाले को भी जीवित माना जाए तो फिर मरा हुआ किसे कहा जाएगा ? अर्थात् वे ही मरे हुए के समान हैं, जो पराधीन बने हैं।

□ जो देश, जो समाज बुराईयों से लड़ने की हिम्मत नहीं रखता, वह अपनी स्वाधीनता कायम नहीं रख सकता। —लाला लाजपत राय

□ आराम उनके प्रति विश्वासघात है जो इस संसार से चले गये हैं और जाते समय स्वतन्त्रता का दीपक सदा प्रज्वलित रखने के

लिए हमें दे गये हैं। यह उस ध्येय के प्रति विश्वासघात है, जो हमने अपनाया है और जिसे प्राप्त करने की हमने प्रतिज्ञा की है। यह उन लोगों के प्रति विश्वासघात है, जो कभी आराम नहीं करते।
—जवाहरलाल नेहरू

□ अपने राष्ट्र को सबसे बड़ा देवता मानना ही सच्चा धर्म है। राष्ट्र के अस्तित्व से ही हमारे मन्दिरों और उनमें स्थापित देवताओं का अस्तित्व है। जहाँ राष्ट्र नहीं वहाँ यह कुछ नहीं। संसार में पहले राष्ट्रदेवता की स्थापना हुई और उसी के वरदानस्वरूप हमारी सभ्यता और संस्कृति का जन्म हुआ।

□ राष्ट्र की पूजा करना ही सबसे बड़ी पूजा है, किन्तु उसकी पूजा-पद्धति अन्य पूजा प्रकारों से सर्वथा भिन्न है। राष्ट्र की पूजा पारस्परिक स्नेह, संगठन और सहयोग से होती है। निर्भीकता, सत्यता, साहस और पुरुषार्थ के प्रसाद से राष्ट्रदेवता प्रसन्न होते हैं। हमें अपने चारित्रिक गुणों के प्रसूनों से ही राष्ट्रदेव का शृंगार करना चाहिए।
—मुद्याधन बोस

□ अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान या उसमें सम्मिलित होने का प्रतिफल सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ति के रूप में प्राप्त होता है।

□ जानते और समझते हुए भी अन्याय का विरोध करने की शक्ति जिसमें नष्ट हो गई, वह जाति अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकती।
—सरतचन्द्र

□ हमारे सामने एक गहरा प्रश्न है। खुराक की तंगी है और इसलिए परेशानी होती है, मुझे लगता है कि अगर हम सच्ची आजादी को हजम कर लेते हैं तो ऐसी परेशानी नहीं होनी चाहिए। मैं क्या पाता हूँ कि जो मैंने बात कही है वह तो बड़ी सीधी है और बिल्कुल व्यवहार की बात है। यानी बाहर से खुराक नहीं माँगना। ऐसी व्यवहार की बात सुनते ही लोग क्यों कौंप उठते हैं ? हमारे पास पानी पड़ा है, जमीन पड़ी है। करोड़ों की तादाद में लोग पड़े हैं, हम क्यों परेशान बनें ?
—महात्मा गाँधी

□ वेदान्त हिन्दू-सभ्यता तथा संस्कृति की पराकाष्ठा है। अपने जीवन को सर्वोच्च और सर्वोत्तम

प्रकार से बिताने के विज्ञान और कला को वेदान्त कहते हैं। यह वह विचार है जो ज्ञान के संसार को प्रकाशित करता है। वेदान्त कहता है कि तुम यह नश्वर शरीर नहीं हो, वरन् सबमें व्याप्त अमर आत्मा हो।

—स्वामी शिवानन्द

- किसी भी विशिष्ट सभ्यता का जन्म यंत्रचालित परिस्थितियों में नहीं, बल्कि मानवीय उच्च आदर्शों की उपलब्धि में होता है। मनुष्य केवल अस्थिचर्म युक्त श्वास-प्रश्वास की क्षमता रखने वाली कठपुतली मात्र नहीं है, केवल सामाजिक इकाई ही नहीं, बल्कि दैहिक अस्तित्व से भिन्न उसका आत्मिक अस्तित्व भी है।

- केवल बौद्धिक उपकरणों से संसार की बिखरी हुई जातियों को एकरस नहीं बनाया जा सकता। सभ्यता का निर्माण जिन तत्त्वों से होता है, वे तत्त्व मनुष्य की क्रियाशील विचार शक्ति में नहीं, बल्कि उसके अन्तःकरण की श्रद्धा में प्रतिष्ठित होते हैं। मेरी धारणा है कि अपनी वसुधैव कुटुम्बकम् की पृष्ठभूमि के होते हुए भारत इस उच्चादर्श को प्रतिफलित करने के लिए सम्बल बन सकता है। यह देश धार्मिक संकीर्णताओं को त्याज्य, आडम्बरपूर्ण कर्मकाण्ड को धार्मिक निवृत्ति के लिए सदा अनावश्यक मानता रहता है। यही प्रगतिशीलता इसकी जीवनशक्ति है।

—डॉ. राधाकृष्णन्

- भारत के पास सारी दुनिया को देने के लिए एक सन्देश है। उसमें एक ऐसी योग्यता है कि धर्म के क्षेत्र में वह संसार में सबसे बड़ा हो सकता है।
- यूरोप के पाँवों में पड़ा हुआ भारत तो मानव जाति को कोई आशा नहीं दे सकता, किन्तु जाग्रत और स्वतन्त्र भारत दर्द से कराहती हुई दुनिया को शान्ति और सद्भाव का सन्देश अवश्य देगा। मैं इसीलिए भारत का उत्थान चाहता हूँ कि सारी दुनिया उससे लाभ उठा सके।

—महात्मा गाँधी

- नये युग का आह्वान हो चुका है। वह व्यक्ति का नहीं, समुदाय का होगा। इस युग का क्रंदन व्यक्ति विशेष का क्रंदन नहीं, सारी मानव जाति का क्रंदन होगा और उस क्रंदन से हमारे भीतर

दया भाव नहीं जागेगा, बल्कि जागेगी हमारी सदियों से सोई हुई न्यायबुद्धि।

हम सब इस नये युग का स्वागत करें, जिसके पदचाप स्पष्ट सुनाई दे रहे हैं। सर्व-साधारण के भाग्य-प्रवाह में हम स्वयं को भी समर्पित होने दें, ताकि नये युग के सृजन में हम भी ईमानदार सहयोगी बन सकें। समय की गति बदली है और युग ने करवट। स्वेच्छा से नियतिवश हमें नयी परिस्थितियों के अनुसार स्वयं को बदलना ही होगा। अच्छा हो यदि हम मिलकर मानवता का जयगान करें।

—डॉ. राधाकृष्णन्

- जब तक हमारी भारत-भूमि में गंगा और कावेरी प्रवाहमान हैं, तब तक सीता-राम की कथा भी अबला स्त्री-पुरुष सबमें प्रचलित रहेगी। माता की तरह यह कथा हमारे मानस की रक्षा करती रहेगी।

वर्तमान समय की आवश्यकता यह है कि हमारे और हमारी भूमि के सन्तों के बीच ऐक्य स्थापित हो, जिससे हमारे भविष्य का निर्माण मजबूत चट्टान पर हो सके, बालू पर नहीं।

—राधाकृष्णन्

- यह जगत् संघर्षात्मक नहीं सृजनात्मक है। बीज वृक्ष के रूप में संघर्ष करने के लिए नहीं, अपने स्वतः के साक्षात्कार के लिए प्रकट होता है। उसके जीवन का उद्देश्य किसी का विनाश नहीं, वरन् किसी के लिए अपने आपको समर्पित कर देना है। सम्पूर्ण सृष्टि एक-दूसरे का सहयोग देती हुई चल रही है। पंच महातत्त्व इसलिए मिलकर एकत्रित नहीं होते कि उन्हें मिलकर किसी से संघर्ष करना है, अपितु इसलिए कि वह उनकी प्रकृति है, उसी के द्वारा वे सृष्टिकर्ता की इच्छा को पूर्ण कर सकते हैं। यदि हम विकासवादी हैं तो सृजन का नियम हमें स्वीकार करना चाहिए, विसर्जन या संहार का नहीं। यदि सम्पूर्ण सृष्टि में सभी प्राणियों की किसी एक शक्ति की प्रेरणा और इच्छा से काम कर रही है तो निश्चित ही वह विधायक है, निर्माणात्मक और भावात्मक है, विनाशक और विधेदक नहीं। अभी प्रलयकाल नहीं सृजन की वेला है।

—धीनबंधन उपाध्याय

- मैं उत्कृष्टतापूर्वक चाहता हूँ कि भारतीय संस्कृति निर्दोष बने, बढ़ती रहे और तेजस्वी रूप धारण करे। यह संस्कृति ज्ञानमय है, संग्राहक है, कर्ममय है। यह संस्कृति सबको अपने अनुकूल बना लेगी, नये-नये प्रयोग करेगी, अनवरत उद्योग करती रहेगी। भारतीय संस्कृति का अर्थ है, सर्वांगीण विकास, सबका विकास। भारतीय संस्कृति की आत्मा छुआछूत को मानती नहीं, हिन्दू-मुसलमान को जानती नहीं। यह प्रेमपूर्वक और विश्वासपूर्वक सबका आलिंगन करके ज्ञानमय और भक्तिमय कर्म का अखण्ड आधार लेकर माँगल्य-सागर की ओर, सच्चे मोक्ष-सिन्धु की ओर आने वाली संस्कृति है।
- बिना चेष्टा के, बिना साधना के स्वतन्त्रता, पेड़ के फल की भाँति नहीं टपक सकती और बिना स्वतन्त्रता के जीना वृथा है।
—**देशबन्धु चितरंजनदास**
- माता जैसी उपकारिणी और क्षमाशीला धरती की जो वन्दना नहीं कर सकता वह संसार का क्या उपकार करेगा ?
—**वेदव्यास**
- अपने वैयक्तिक-स्वार्थ के लिए सामाजिक-हित को उपेक्षित कर समाज व राष्ट्र की क्षति करने वाला व्यक्ति समाजद्रोही होता है। समाजद्रोही एक प्रकार से स्वयं का भी द्रोही होता है। न तो उसे क्षमा ही किया जाना चाहिए और न उसे किसी प्रकार का संरक्षण ही दिया जाना चाहिए। समाजद्रोहियों को क्षमा या संरक्षण देना भी एक सामाजिक अपराध है।
—**डॉ. राममनोहर लोहिया**
- देश की उन्नति इने-गिने बहुत थोड़े लोगों पर निर्भर नहीं कर सकती। देश की उन्नति, देश की प्रगति, देश का अभ्युदय, देश की स्वतन्त्रता, साधारण से साधारण व्यक्तियों के अपने कर्तव्यों और अधिकारों की जिम्मेदारी ठीक तरह समझने पर ही निर्भर है।
- प्रजा को, निर्बल को, सताकर कोई पुण्यवान नहीं होता, जिसे पापी होना हो उसे पाप करने का अखित्यार है। पाप होने की आजादी होने पर भी जो पाप नहीं करता वही पुण्यवान कहलाता है और उससे देश का लाभ होता है।
—**महात्मा गाँधी**
- सामाजिक उद्देश्यों के लिए सुविचारित ऐसा संगठन है, जिसमें उत्पादन और वितरण सुनियोजित तरीके से चलाये जाते हैं, मानव मात्र को शेष पशु-संसार से सामाजिक सन्दर्भ की दृष्टि से ऊपर उठा सकता है, ठीक उसी प्रकार जैसे कि सामान्य उत्पादन द्वारा मनुष्य मात्र के लिए यह विशेष रूप से जैविक दृष्टि से हुआ है। लगातार हो रहे ऐतिहासिक विकास ने दिन-प्रतिदिन ऐसे संगठन की अनिवार्यता को और भी बढ़ा दिया है। इससे इतिहास में एक नये युग की शुरुआत होगी, जिसमें मानव स्वयं और उसके साथ उसकी गतिविधियों के सभी क्षेत्रों और विशेषतया प्राकृतिक विज्ञान में प्रगति और बुद्धि का अनुभव होगा, जो अब से पूर्व की प्रत्येक वस्तु को गहरे साये में छोड़ देगा। —**फ्रेड्रिक एंजिल्स**
- व्यक्तियों के समान ही राष्ट्रों का भी नाश और निर्माण होगा, किन्तु सभ्यता कभी नष्ट नहीं हो सकती।
—**मैजिनी**
- जिस समाज के लोग अपनी परम्पराएँ स्थिर चित्त और पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ निर्धारित करते हैं, जो किन्हीं और के सिद्धान्तों के परतन्त्र नहीं होते, सत्य और समृद्धि का सूर्य वहाँ और केवल वही प्रभासित होता है।
—**बर्ट्रैंड रसेल**
- राष्ट्र अपने समर्थ व श्रेष्ठ नागरिकों के कारण समर्थ और श्रेष्ठ बनते हैं न कि श्रेष्ठ धन और धरती के कारण।
—**रुतो**
- ईमानदार और उच्च नैतिक आदर्शों वाले सौ नागरिक ही राष्ट्र को जिन्दा रख सकते हैं, पर अनैतिक व्यक्ति एक लाख हों तो भी देश को पतन से नहीं बचा सकते।
—**गोल्डामेयर**
- घर ही राष्ट्र का निर्माण करते हैं।
—**जोसेफ कुक**
- केवल घर ही राष्ट्र की नींव डाल सकते हैं।
—**जोसेफ कुक**
- सुदृढ़ राष्ट्र की पहचान सुदृढ़, समर्थ और संयमी मनुष्यों से होती है, सम्पत्ति और वैभव से नहीं।
—**स्वेट मार्बन**

□ जीवन से बढ़कर सौन्दर्य नहीं पर, वह किसी को स्थायी सम्पत्ति के रूप में नहीं मिला। वह तो इस प्रयोग के लिए है कि उससे कौन कितना आनन्द पाता है ? मैंने अनेक मनुष्यों के जीवन-संस्मरण सुने हैं, पर मुझे सबसे प्यारे वे लगे, जिन्होंने अपने आपको देश के हित के लिए पतंगों की तरह जला दिया। राष्ट्र-प्रेम भी कितनी ऊँची वस्तु है, कितना बड़ा त्याग होता है, वह जब मनुष्य केवल जातीय आदर्शों की रक्षा के लिए जीवन जैसी सुन्दर वस्तु को यों लुटा देता है। मानो राष्ट्र-प्रेम के समक्ष वह कोई नगण्य वस्तु रही हो। जो इस सम्पत्ति का उपयोग राष्ट्र-हित में कर सके वे धन्य हैं, उन्हें मेरा शत-शत प्रणाम।
—सुक्रीवस

□ धिक्कार है उस राष्ट्र को, जो धार्मिक मूल्यों के बजाय साम्प्रदायिक फसादों में विश्वास रखता है। वह अपने लिए उचित व निर्दिष्ट पथ को छोड़ दूसरों के पथ को अच्छा मान उसका अनुसरण करता है।

□ धिक्कार है उस राष्ट्र को, जो वर्तमान उपलब्ध परिस्थितियों एवं सामाजिक दशा में उचित प्रतीत होने वाले विवेकसम्मत कार्य करने के बजाय परम्पराओं से चिपककर उसी लीक पर चलता रहता है।

□ धिक्कार है उस राष्ट्र को, जो अपने नागरिकों की बाहरी शान-शौकत को ही सम्पत्ति, उनके धिनौने कृत्यों को ही गुण समझ सम्मान देता है तथा अधिकाधिक श्रम कर जीविकोपार्जन करने वाले की तुलना में न्यूनतम श्रम कर अधिकाधिक धनोपार्जन करने वालों को अधिक सम्माननीय स्थान देता है।

□ धिक्कार है उस राष्ट्र को, जो अपनी कथनी में तो अन्याय का विरोध करता है, नीति पर चलते रहने की डींग मारता है, परन्तु वास्तव में क्रियात्मक रूप में अन्याय के सामने सिर झुकाता रहता है तथा अनैतिक मूल्यों को संरक्षण प्रदान करता रहता है।

□ धिक्कार है उस राष्ट्र को, जो अपने महापुरुषों के जिन्दा रहते तो मान्यता देता नहीं, न उनकी मृत्यु हो जाने पर, बाद में उनकी समाधि पर औसू बहाता है और समाधियों पर औसू बहा

लेने व अच्छे कार्यों के संकल्प कर लेने भर को अपनी श्रद्धांजलि मान लेता है।

□ धिक्कार है उस राष्ट्र को, जो अन्याय को चुपचाप सहन करता जाता है व आततायी के विरुद्ध उसी समय आवाज उठाता है, जब उसे अपनी गरदन पर तलवार लटकती दिखती है।

□ धिक्कार है उस राष्ट्र को, जिसका दर्शन मात्र शब्दजाल, जिसका धर्म मात्र आडम्बर है, वह जिसका बुद्धिजीवी वर्ग बेजुबान, नेतृत्व व मार्गदर्शक अन्या तथा जिसका वकील केवल बड़बोला है। धिक्कार है उस राष्ट्र को, जिसका प्रत्येक प्रान्त एक अलग देश, जिसका प्रत्येक समूह एक अलग राष्ट्र है, जिसके लोग अपने को राष्ट्र का घटक नहीं, वरन् किसी सम्प्रदाय, प्रान्त वर्ग का ही माने रहते हैं।

□ कायरता मनुष्य का बहुत बड़ा कलंक है। कायर व्यक्ति ही संसार में अन्याय, अत्याचार तथा अनीति को आमन्त्रित किया करते हैं।

संसार के समस्त उत्पीड़न का उत्तरदायित्व कायरों पर है। किसी भी राष्ट्र में कायरता का समावेश देखकर ही आक्रान्ता उसे विजय करने के लिए अग्रसर होते हैं, जिन राष्ट्रों के जनगण अपनी सारी दुर्बलताओं को अपने पैरों तले दबाकर वीरभावों से ओत-प्रोत रहते हैं, उस राष्ट्र की ओर संसार का कोई आततायी देखने का साहस नहीं करता और यदि कोई दुःसाहस करता भी है तो वह अपने समग्र अस्तित्व को मिटकर मिट्टी में मिल जाता है। अपनी, अपने सम्मान और अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए वीर बनो, बलिदानी बनो और बनो उस लौह-पुरुष की भाँति, जिससे टकराकर आततायी चूर-चूर हो गये।
—जनरल अवारी

□ कामना करती हूँ ऐसे स्वस्थ समाज की, जिसकी सम्पत्ति हैंसी और किलकारी भरते बच्चे प्रसन्न और उल्लसित नर-नारियाँ हों। जिसके हर युवक में अदम्य साहस, स्वाभिमान, तारुण्य और पुरुषार्थ हो लोक-मंगल के लिए। उस समाज में श्री, सौन्दर्य और शान्ति हो।

ऐसा सुन्दर समाज किसी के आदेश और आज्ञा से नहीं बनाया जा सकता, वह सृजनात्मक कार्यों से निर्मित हो। वह स्वयं अपने हाथों से गढ़े गये हों।

यह कार्य थोड़ा कठिन है, यह जानती हूँ। ध्वंस के लिए दो मिनट बहुत हैं, पर निर्माण में समय लम्बा लगता है, किन्तु यदि प्रतीक्षा के लिए अवधि न होती, उल्लंघन के लिए रेखाएँ, जीतने के लिए बाधाएँ और पार करने की सीमाएँ न होती तो ऐसा लगता है कि परमात्मा ने मनुष्य को जो आनन्द का पुरस्कार प्रदान किया है, उसमें कुछ कमी आ जाती। इसलिए प्रयत्न और पुरुषार्थ के मार्ग कभी बन्द नहीं किये जाते। सृजन की शक्तियों को निरन्तर क्रियाशील रहना चाहिए।

मानती हूँ कई बार निराशा आयेगी और अपने आवास बनायेगी, किन्तु आशा का द्वार बन्द मत होने देना। भगवान् दिन का सृजन कर रहे थे तो संध्या आ गई और वे महापुरुष निराश नहीं हुए। अनेक उज्ज्वल नक्षत्र गढ़कर उन्होंने रात के सौन्दर्य को दिन से द्विगुणित कर दिया। परिश्रम करते-करते जब थकावट ने आ घेरा तो उन्होंने शीतल पवन का आह्वान किया, जिससे जीवन में एक नूतन प्रेरणा खेलने लगी। आशा का द्वार ऐसा ही है, जब तक वह खुला रहता है, तब तक सृजन और निर्माण के सुन्दर जखीरों की कमी नहीं होने पाती। न होना निराश, न बन्द करना द्वार गति के तो एक दिन अपने कल्याण का दिव्य और भव्य समाज भूर्तिमान होगा निश्चय ही। आओ हम सब उस दिव्य संतति और संस्कृति के निर्माण में लग जायें, जिसमें बस तेजस्विता ही तेजस्विता हो। जहाँ मूर्धन्य और आत्म-शक्ति सम्पन्नता की कोई कमी न हो। —इलेन कैजर

□ मेरी यह दृढ़ धारणा है कि कोई मनुष्य उस समय तक बड़े काम अथवा राष्ट्रोन्नति करने में समर्थ नहीं हो सकता, जब तक उसके आचरण सच्चे न हों और उसके वचनों का मूल्य न हो। —महात्मा गाँधी

□ युग कोई ऐसी वस्तु नहीं जो एक नियत समय पर ही आवेगी और फिर चिरकाल के लिए दृष्टिपथ से ओझल हो जाएगी। हम अपना सतयुग और कलियुग अपनी प्रेरणा से आप बना सकते हैं। जब मनुष्य इस जाग्रत जीवन के अधिकार को भूलकर सूक्ष्म स्थान पर पहुँच जाता है, वासना, कामना, संस्कार आदि से

नाता तोड़ लेता है, उसी समय सतयुग का पुनः उदय हो जाता है। इस समय पृथ्वी तल पर रहने वाली मानव-जाति बुद्धि, मन और शरीर को ही सर्वप्रधान मानती है। इसी के चक्कर में पड़कर वह नाना प्रकार की लीलाएँ किया करती है। वह स्वर्गलोक की खोज-खबर लेना बिल्कुल भूल गई है। इसलिए आज हमें नये सिरे से अनुष्ठान करना होगा। शक्ति को पुनः जगाना होगा। अहंकार का सिर हमें नीचा करके रखना होगा। हम दिव्यलोक के अधिकारी हैं। इस बात का हमें फिर से ज्ञान प्राप्त करना होगा। इसी से नवयुग की, सतयुग की स्थापना होगी। तब हम ज्ञान रूपी अमृत का कलश लेकर संसार में ही अमरलोक की लीला करेंगे।

□ प्रकृति प्रकोपों-विक्षोभों के काले बादल सारे संसार के ऊपर मँडरा रहे हैं। उसकी कुछ बूँदें विभिन्न क्षेत्रों में बरसनी आरम्भ हो चुकी हैं, जिनका प्रमाण विभिन्न प्रकार के दुर्भिक्षों के रूप में मिल रहा है। अगले दिनों वे और भी उग्र होंगे, इसके स्पष्ट संकेत मिलने लगे हैं। मानवीय दुष्कृत्यों की, अदूरदर्शी प्रयासों की इतनी भयंकर प्रतिक्रियाएँ हो सकती हैं, यह पहली बार अनुभव किया जा रहा है।

□ देशभक्त का जीवन कँटीला होता है। वह पग-पग पर दुखों का आह्वान करता है। वेदनाएँ उसकी सहचरी होती हैं। फिर किस प्रकार वह पति के कर्तव्य को पूर्ण कर सकता है ? ऐसे समय में न तो वह अच्छा और सच्चा देशभक्त ही रह सकता है और न सच्चा पति ही।

□ अगली पीढ़ियों को अभिभावकों द्वारा दिया जा सकने वाला एक ही श्रेष्ठतम उपहार है कि वे उन्हें श्रेष्ठ नागरिक और सराहनीय समाजसेवी बनने के योग्य बनायें।

□ अखिल विश्व मानव की उत्तमोत्तम संस्कृतियों ने भी अपना सर्वोच्च संस्कार भारतीय संस्कृति में पाया है, क्योंकि भारतीय संस्कृति उस दिव्य, शाश्वत और चिन्मय तत्त्व से अनु-कल्याण का शीर्ष बिन्दु है। मानव-जीवन के सर्वांगीण विकास की पूर्णता इसी भारतीय संस्कृति में उपलब्ध होती है।

- भगवान निराकार, सर्वव्यापी एवं जन्म-मरण से रहित हैं। विकृत परिस्थितियों को सन्तुलित करने के लिए उनकी प्रेरणा से तूफानी आन्दोलन उभरते रहते हैं। ये आन्दोलन ही अवतार कहलाते हैं। धर्मचक्र प्रवर्तन, महाभारत संयोजक, स्वतन्त्रता संग्राम की तरह प्रज्ञा अभियान भी एक ऐसा ही आन्दोलन है।
महामानव सन्त, सुधारक और शहीद का जीवन जीते हैं। वे अपने चरित्र और प्रयासों से असंख्यों को जँचा उठाते, आगे बढ़ाते हैं। वे देवात्मा या ऋषि अवतारी-सत्ता के ही अंश होते हैं।
- भारतीय दर्शक ने अपने अमेरिकावासी मित्र को धन्यवाद देते हुए कहा—“मित्र ! आपकी कृपा से विश्व के अद्वितीय सौन्दर्य को निकट से देखने का सौभाग्य मिला इसके लिए धन्यवाद।” इस पद से टमसन रिचे प्रसन्न होने की बजाय खिन्न हो गये और बोले—“काश ! मैं आपसे सहमत हो पाता। मैं भारत में दस वर्ष रहा हूँ। हिमालय-सा सौन्दर्य इस तुच्छ पेरिस में कहाँ है ? भारतीय अध्यात्म की ज्ञान गंगा से तो सारा विश्व पवित्र हो सकता है।”
- गाँधीजी कहते थे कि जब जनता यह अनुभव कर सकती है कि अपनी मर्जी का भाग्य अपने हाथों बना सकते हैं, तब समझना चाहिए कि पूरा स्वराज्य मिल गया।
- जिस मनुष्य से अपने देश को कोई लाभ नहीं, उससे मिट्टी का खिलौना अच्छा है, जो बच्चों का दिल तो बहलाता है।
- अपने हृदय में अपने कार्य की पवित्रता पर पूर्ण विश्वास रखने वाले तथा दरिद्र और विपत्तिग्रस्त भाइयों को मुक्त करने के लिए अपने प्राणों तक का उत्सर्ग कर डालने का साहस रखने वाले वीर पुरुषों की ही आज भारतवर्ष को आवश्यकता है।
- आध्यात्मिक दृष्टि से हमारे देश को तभी वस्तुतः प्राधान्य मिलेगा, जब उसमें सुवर्ण की अपेक्षा सत्य की, ऐश्वर्य की अपेक्षा निर्भयता की, देहशक्ति की अपेक्षा परोपकार की समृद्धि दिख पड़ेगी।
- शान्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए और युद्ध करके भी उसे प्राप्त करना चाहिए और कभी-कभी बलप्रयोग से भी उसे स्थापित करना चाहिए। यह बात एक घर और एक राष्ट्र दोनों ही के लिए लागू है।
- राष्ट्रों की सम्पत्ति तो सद्गुणी मनुष्य ही है—रेशम, कपास या स्वर्ण नहीं।
- परमानन्द का अनुभव करने के लिए क्षेत्रीय भाव लाने की भी आवश्यकता है अर्थात् देश के हेतु प्राण न्योछावर करने के लिए प्रतिक्षण तत्पर रह जायें।
- ‘किसी देश में उस समय तक एकता और प्रेम नहीं हो सकता, जब तक लोग एक-दूसरे के दोषों पर जोर देते रहेंगे।’
- जिस देश के लोग अपने कार्यों में ईमानदारी का प्रयोग करना छोड़ देते हैं, वह देश सब प्रकार दीन-हीन और नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।
- धिक्कार है उस राष्ट्र को, जिसका हर सूबा अपने को एक राष्ट्र समझता है। धिक्कार है उस सूबे को जिसका हर कबीला अपने को एक सूबा समझता है।
- क्या आपमें परमात्मा का अंश है ? क्या आपको यह मालूम है कि शरीर निज का नहीं, आप परमात्मा के साधन-मात्र हैं। यदि आपको यह अनुभव हो गया है, तो आप सच्चे राष्ट्रवादी हैं और तब ही आप इस महान् राष्ट्र का उद्धार कर सकेंगे।
- जिस देश को राजनीतिक उन्नति करनी हो, वह यदि पहले सामाजिक उन्नति नहीं कर लेगा, तो राजनीतिक उन्नति आकाश में महल बनाने जैसी होगी।
- श्रुति का एक वाक्य है—“माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्यः।” (भूमि मेरी माता है, मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ)। यह वाक्य व इसका विराट् भावार्थ देखकर मन श्रद्धा से भर उठता है—उन ऋषियों की प्रज्ञा के प्रति जिन्होंने अपना सारा जीवन तप-तितिक्षा में होम करके एक ही आकांक्षा मन में रखी कि सारी धरित्री का कल्याण हो, क्योंकि हम सब उसके बेटे हैं। हम अकेले अपने बारे में, परिवार के बारे में

सोचकर वहीं तक सीमित न रहें, अपितु वसुधा को एक कुटुम्ब मानते हुए समष्टि के हित की चिन्ता करें। भारत कभी जगद्गुरु था, तो इसी कारण। कभी देव-संस्कृति का सन्देश घर-घर, जन-जन तक पहुँचा था तो इसी कारण। तत्कालीन आर्य, श्रेष्ठ व्यक्ति, उदार विचारधारा का एक श्रेष्ठ जीवन जीने वाला ब्राह्मण था। क्या वह प्रक्रिया पुनः दुहराई नहीं जा सकती ? बीज-वंश परम्परा में सदियों तक सुरक्षित रहते हैं। हम ऋषियों की सन्तान हैं, देवपुरुष हैं, यह गर्व हमें है। स्वाभाविक है, होना भी चाहिए किन्तु क्या हम अपने प्रसुप्त को जगाकर पुनः वह स्वर्णिम अतीत लौट सकते हैं ? क्या पुनः भारत विश्वमानवता का मार्गदर्शन कर सकता है ? मोटी दृष्टि यही कहती है कि अभी तो हम आकण्ठ कर्ज में डूबे रहते हैं, अभी सम्यता के क्षेत्र में आगे बढ़ लें यही बहुत है, किन्तु सूक्ष्म दृष्टि कहती है कि यदि साधना पुरुषार्थ द्वारा इस सोये दैत्य भारत की क्षमताओं को जगाया जा सके तो आने वाले कुछ वर्षों में ही आस्थासंकट मिटता व चारों ओर ऋतुम्भरा प्रज्ञा का साम्राज्य छाया दिखाई देने लगेगा। दुर्गम हिमालय की ऋषिसत्ताएँ यही सब करने को आतुर भी हैं, परोक्ष जगत के ऋषि प्रयासों के साथ निमित्त बनने हेतु हम सभी का पुरुषार्थ जुड़ जाए तो इक्कीसवीं सदी-उज्ज्वल भविष्य का, संस्कृति पुरुष का कथन सार्थक-सत्य ही दिखाई पड़ेगा। यह युग-साधना ही आज महाकाल को सबसे अभीष्ट है।

- ऐसा कहा जाता है कि भूत-प्रेत होते हैं, श्मशान में रहते हैं, उन्हें एकाकी खण्डहर पसन्द हैं। वे भूतकाल की विसंगतियों में ही उलझे-विपन्न बने सुब्ध होते रहते हैं—दूसरों को भी उसी आग में जलाते रहते हैं। स्वयं वे भूतकाल से डरते हैं व दूसरों को भी डराते हैं, जलते व जलाते हैं। चाहते बहुतों से हैं किन्तु दे किसी को कुछ नहीं पाते। क्या वास्तव में ऐसे भूत होते हैं ? हमें देखना होगा कि यह भूत की कल्पना कहीं हमारे अपने ऊपर-वर्तमान स्वरूप पर तो लागू नहीं हो रही। कहीं हम स्वयं की भूतों में निरत रहते ही तो भूत नहीं बन गए हैं।

पंचतत्त्वों को भूत—पंचभूत कहा जाता है। हमारा शरीर इन्हीं पंचभूतों का बना है व इनकी सतत क्रियाशीलता हेतु इन्हें पदार्थों के ईंधन की आवश्यकता पड़ती है। भोजन हेतु स्थूल आहार इन्हीं पंचभूतों के लिए लिया जाता है। शरीर का अन्त होते ही यह माटी की काया इन्हीं पंचतत्त्वों में समा जाती है, किन्तु आत्मा शरीर नहीं है। उसको आहार व पोषण, विचारों की श्रेष्ठता, भावना की उत्कृष्टता से मिला है। उसका भोजन देवों का भोजन है इसीलिए शरीर को पंचभूतों की इस काया को भूत तथा चेतना को देव कहते हैं।

- हम सबका मूलभूत स्वरूप देव-प्रधान है। हमारा लक्ष्य भी देवत्व की पराकाष्ठा पर पहुँचना है। देवों की सम्पदा, विचारणा और भावना की उत्कृष्टता होती है। यह सम्पदा जहाँ भी अधिक होगी, वहीं स्वर्गीय वातावरण बनेगा। मनस्थिति में देवत्व होगा तो परिस्थितियाँ भी स्वर्गोपम दृष्टिगोचर होने लगेंगी। जो सतत देते रहते हैं, देना ही जिनका स्वभाव है, उन्हें देवता कहते हैं। देव, सत्कर्मों में सहायता करने के निमित्त निरन्तर दौड़ते रहते हैं—सबको बाँटते ही रहते हैं। इसी कारण वे सम्मान पाते और औरों को वरदान दे पाने के सुपात्र बनते हैं। अमृत पीते, अमरत्व का आनन्द पाते व चहुँओर उल्लास बिखेरते हैं।

हमें यह देखना है कि हम क्या बनना चाहते हैं—भूत या देव ? भूतयोनि से निकलकर देवयोनि में प्रवेश करना पूर्णतया अपनी इच्छा और पुरुषार्थ पर निर्भर है। उचित यही है कि हम संकल्प-शक्ति जुटाएँ व अन्दर का देवत्व जगाएँ। आत्मिक प्रगति का यही राजमार्ग सबके लिए समान एक जैसे अवसर लिए सामने खड़ा है।

- संस्कृति की धवल धारा में जीवन के कमल खिलते हैं, जिनकी सुवास से धरा स्वर्ग बनती है व उल्लासमय देवत्व विकसित हो उठता है। आज हमारा जीवन मुरझाया, धरा की सुवास मन्द पड़ी देखते हैं, देवत्व की साँसें रुकी पाते हैं तो उसका एक ही कारण है—संस्कृति की सुरसरि का अवरुद्ध होना। आज की कुण्ठित प्रतिभाएँ, लुप्त आत्म-विश्वास, धरती पुत्रों द्वारा अपनी ही माता की छाती चीरकर किया जा

रहा रक्तपान इसी का परिणाम है। पतन को कैपकैपा देने वाले इन वीमत्स दृश्यों का मात्र एक ही कारण है—ऋषियों की अमर देन का विस्मरण।

विस्मृति से उबारने, अमृत पुत्रों को जीवन-बोध कराने हेतु आज से प्रायः ८६ वर्ष पूर्व एक गरिमामय व्यक्तित्व का उदय हुआ, जिन्हें आप हम सभी परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य के नाम से जानते हैं। विश्वामित्र, भगीरथ, दधीचि और महाअथर्वण जैसी अगणित ऋषिसत्ताएँ उनमें एकाकार हो उठीं। गायत्री उनकी मेधा बनी। यज्ञ ने प्रचण्ड पुरुषार्थ का रूप लिया। जीवन की प्रत्येक श्वास सांस्कृतिक नवोन्मेष के विजयध्वज का ताना-बाना बुनती रही। उनके उत्कृष्ट तप की हुंकार सुन

अगणित बलिदानियों की संगठित वाहिनी वासन्ती वेश धारण कर देव-संस्कृति के मृनरुद्धार हेतु आकुल हो उठी।

विचारक्रान्ति की लाल मशाल प्रज्वलित कर, जिन्होंने दुर्बलताओं से ग्रस्त, पतन के गर्त में समा जाने को विवश, असंख्य अनेक पाँवों को आदर्शों का हिमालय लौंघ जाने का बल दिया, जिन्होंने सामूहिक मन पर गहन प्रयोग कर चेतना के रूपान्तरण द्वारा मनुष्य में देवत्व को जगाने की प्रक्रिया का शुभारम्भ किया। सूक्ष्म चेतनालोक में स्पन्दित जिनका महिमामय व्यक्तित्व देवसंस्कृति की विजय और उज्ज्वल भविष्य की वापसी का गान गुंजायमान कर रहा है।



महापुरुषों की वाणी

- जिनके हृदय में दया-धर्म बसते हैं, जो अमृत-वाणी बोलते हैं और जिनके नेत्र नम्रतावश झुके रहते हैं, असल में वे ही ऊँचे हैं।
—**मनुस्मृत**

- जो महापुरुष हैं, वे संसार के ज्ञान को अपने ही माहात्म्य से ग्रहण करते हैं और उन्हें अपने ही जीवन में चरितार्थ कर जगत में उसकी सच्चाई का प्रकाश चमका देते हैं।
—**रवीन्द्रनाथ टैगोर**

- धर्म को परिष्कृत करने एवं लोगों के नैतिक स्तर को ऊँचा करने के लिए महापुरुषों की सब युगों में बड़ी आवश्यकता होती है।
—**हरिनाथ उपाध्याय**

- जैसे सूर्य आकाश में छिपकर नहीं विचर सकता, वैसे ही महापुरुष भी संसार में छिपकर नहीं रह सकते।
—**वेदव्यास**

- सम्पदा की प्राप्ति पर महापुरुषों का हृदय कमल की भाँति कोमल होता है। अर्थात् वे दुखियों पर पसीजकर उनकी सहायता करते हैं, परन्तु जब वे विपत्तियों से घिर जाते हैं, अपनी उस विषम स्थिति का सामना करने के लिए उनका चित्त चम्रनों की तरह इतना कठोर हो जाता है कि उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ने पाता।
—**गुरुदेव**

- वेदान्त-ज्ञान को जानने वाली एक स्त्री अपने एक हाथ में अग्नि और दूसरे में पानी लेकर किसी सड़क से जा रही थी। लोगों ने उसके पास आकर कहा—“एक हाथ में अग्नि और दूसरे में पानी ले जाने का तुम्हारा क्या तात्पर्य है ?” यह प्रश्न करने वाला एक बड़ा धर्म-प्रचारक था। उसने उत्तर दिया—“मैं इस अग्नि से तुम्हारे स्वर्ग में आग लगाने और इस पानी से तुम्हारे नरक की अग्नि को ठण्डा करने जा रही हूँ।”

जो व्यक्ति यह ज्ञान रखता है कि वह स्वयं ही स्वर्ग और नरक है, उसके लिए ये बाहरी स्वर्ग और नरक किसी भी प्रकार से आकर्षक या भयावने नहीं लगते। वह इनसे परे हो जाता है। इस जाग्रत अवस्था के तमाम भोगों का तो

उस पर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता। यह जगत उसके लिए स्वप्न के समान मिथ्या लगने लगता है।
—**स्कन्ही रामजी**

- एक आदमी अलाव जलाता है तो दूसरे कई व्यक्ति भी उसके पास आ बैठते और अपनी ठंड मिटा लेते हैं। इसी प्रकार महत्मानव आत्मकल्याण के लिए जो श्रेष्ठ जीवनचर्या निर्धारित करते हैं, उनके सम्पर्क में आने वाले अन्य अनेक लोग भी अपना कल्याण कर लेते हैं।
—**रामकृष्ण परमहंस**

- जो मनुष्य साधु होते हैं उन्हें अहं दिखाई ही नहीं देता, वे लोग आत्मा ही देखते हैं। उन्हें कहते हैं: महात्मा। उनके जीवन में आत्मा का ही प्रकाश होता है।
—**रवीन्द्रनाथ टैगोर**

- जो ममता व आसक्तिरहित है, जिसे अहंकार नहीं है, जिसे बड़प्पन का भान नहीं है, जो छोटे-बड़े चल-अचल सभी जीवों पर समभाव रखता है, जो लाभ-हानि में, सुख-दुःख में जीवन-मरण में, निंदा-स्तुति में व मान-अपमान में समान रूप से अविचलित है, वही महापुरुष है।
—**भगवान् महावीर**

- जो चेला मौँडते फिरते हैं, उनको घटिया किस्म का मनुष्य समझना चाहिए। इसी प्रकार जो अपने को सिद्धपुरुष बतलाते फिरते हैं और अपनी अलौकिक शक्तियों का बखान करते रहते हैं, वे भी घटिया आदमी ही होते हैं।
—**रामकृष्ण परमहंस**

- जब तक हम स्वयं अपने छोटे-छोटे दीपकों को न जलाएँ, तब तक आकाश का दीप-जगत व्यर्थ है और जब तक हम स्वयं अपनी तैयारियों न करें, तब तक संसार की तैयारियों की सारी विधि उसी तरह प्रतीक्षा करती रहती है, जैसे वीणा अँगुली के स्पर्श की राह देखती है।
—**रवीन्द्रनाथ टैगोर**

- परमात्मा की सुन्दर सृष्टि को व्यक्तिगत मानापमान, द्वेष और हिंसा से किसी को भी आलोडित करने का अधिकार नहीं है।
—**विनायक**

- जिसे उचित-अनुचित का विचार है, वही वास्तव में जीवित है, पर जो योग्य-अयोग्य का ख्याल नहीं रखता उसकी गिनती मुर्दों में की जाएगी।

—सन्त तिरुक्कुरार

- आज की शिक्षा का दोष यह है कि वह सब कुछ बताती है, पर जीवन का सत्य क्या है इसे छुपा जाती है। इसे बदला जाना चाहिए।

—डॉ. हेनरी कार

- धन की तीन गतियाँ हैं—दान, भोग और नाश। जो न देता है, न भोगता है, उसकी तीसरी गति होती है।

—मरुति

- मनुष्य की बुद्धि अब तक विपरीत बनी हुई है और अभी न जाने कब तक बनी रहेगी ? मनुष्य को जो करना चाहिए वह न करके उल्टा ही करता है। श्रेय को समझता हुआ भी उससे विमुख होकर चलता है। सेवा, तप, त्याग, दया, क्षमा आदि के मानवीय गुणों का कोई मूल्य अंकन नहीं करता और यदि करता भी है तो बहुत ही बेमन से कुम्पता के साथ थोड़ा-सा। इतना थोड़ा जो नहीं के बराबर ही समझा जाये।

इसके विपरीत यह पशुबल के सम्मुख नमन करता है। जो संसार का संसार के घाट उतारता या उतारने को उद्यत रहता है, उसकी वन्दना करता है, उसका यश गाता है। उपद्रवी की पूजा करना और निरुपद्रवी की उपेक्षा करना मनुष्य की उल्टी बुद्धि ही नहीं तो क्या है ? मानवता तथा मनुष्यता का अर्थ है अन्यायी के विरुद्ध असन्तोष और सज्जन के प्रति श्रद्धा रखना।

—संत तुकाराम

- बाहरी मदद पर कभी भरोसा मत करो, केवल अपने पर, अपनी अन्तरात्मा पर भरोसा करो, इसी की आवश्यकता है।

—स्वामी रामतीर्थ

- आवश्यकता चावल की होती है, परन्तु चावल बोने से वह उपजता नहीं। चावल प्राप्त करने के लिए बोना पड़ता है धान। धान में से छिलका यद्यपि अनावश्यक है, परन्तु छिलके बिना धान नहीं उगता। इसी प्रकार शास्त्र-विहित आचारों का पालन किये बिना कभी धर्मलाभ नहीं होता।

—रामकृष्ण परमहंस

- आचारधर्म का स्वर्णसूत्र है—परस्पर सहिष्णुता, क्योंकि यह असम्भव है कि हम सब एक ही तरह विचार करें, हम तो अपने विभिन्न दृष्टिकोणों से सत्य को अंशतः ही देख सकते हैं, सदैविवेक बुद्धि सबके लिए एक ही वस्तु नहीं होती, इसलिए वह व्यक्तिगत आचरण के लिए बहुत अच्छा पथ-प्रदर्शक जरूर है, लेकिन उस आचार को बलपूर्वक सब लोगों पर लादना व्यक्ति मात्र के बुद्धि स्वातन्त्र्य में अक्षम्य और असह्य हस्तक्षेप है।

—महात्मा गाँधी

- यदि परिस्थिति अनुकूल हो तो सीधे अपने ध्येय की ओर चलो, लेकिन यदि परिस्थितियाँ अनुकूल न हों तो उस मार्ग का अनुसरण करो, जिसमें सबसे कम बाधा आने की सम्भावना हो।

—सन्त तिरुक्कुरार

- शत्रु, ऋण, अग्नि और रोग को कभी थोड़ा नहीं समझना चाहिए, ये बढ़ते ही जाते हैं, इसलिए इन्हें कम करने का यत्न करना चाहिए।

—मीमा

- विद्वान् लोग प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करके निम्न प्रकार स्वयं परम गुणमय सुखदायक विचारचक्र का उपभोग करते हैं, उसी प्रकार वे दूसरों को भी उसका अनुभव कराते हैं। विद्वानों को चाहिए कि अपने सत्य, उपदेश, विद्या, धर्म और आनन्द से प्रजा को भी लाभ पहुँचावें। राजा तथा अन्य सब मनुष्यों को उचित है कि भृग्या एवं मद्यपानादि दुष्कर्मों में न पड़ें तथा दुर्व्यसनों से दूर रहकर धर्मयुक्त गुण, कर्म और स्वभावों में वर्तित हुए सदा अच्छे-अच्छे काम किया करें।

- वे ही लोग धन्यवाद के पात्र एवं कृतकृत्य हैं, जो ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्या के द्वारा अपनी सन्तानों के शारीरिक तथा आत्मिक बल को पूर्णतया बढ़ाते हैं, जिससे कि वे माता, पिता, पति, सास, श्वसुर, राजा, प्रजा, पड़ोसी, इष्ट-मित्र एवं अपनी सन्तानों के साथ यथायोग्य धर्मानुकूल व्यवहार करने में समर्थ होते हैं।

- सब मनुष्यों को सर्वदा सच्चे, मीठे, कल्याणकारी और प्रियवचन बोलना चाहिए। उन्हें यह निश्चय कर लेना चाहिए कि उनकी जानकारी में जो बात जैसी हो, वे उसे जीभ से उसी प्रकार प्रकाशित करें, उसके विपरीत नहीं। सब

लोगों को अपनी ही वस्तु को अपनी बतानी चाहिए, दूसरों की चीजों को नहीं। अर्थात् उन्हें धर्मानुकूल पौरुष से जितना प्राप्त हुआ है, उतने ही में सन्तोष रखें। सब दिन सुगन्धादि द्रव्यों का अच्छी प्रकार स्वीकार कर उनसे सारे जगत के उपकार के लिए होम किया करें तथा मिथ्यावादकों को छोड़कर सत्य ही भाषण करें।

- प्रत्येक तो केवल अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।
- सच तो यह है कि इस अनिश्चित एवं क्षणभंगुर जीवन में परायी हानि करके काम से स्वयं वंचित रहना और दूसरों को भी रखना मनुष्यता के विरुद्ध है।
- जो यथार्थ वक्ता, धर्मात्मा और सबके लिए प्रयत्न करता है, उसी को आप्त समझा जा सकता है।
- जो छलादि दोषों से रहित धर्मात्मा, विद्वान और सत्य का उपदेश करने वाला पुरुष सब पर कृपादृष्टि करके अविद्यान्धकार को निवृत्त कर अज्ञानी लोगों के आत्माओं में सर्वदा विद्यारूपी सूर्य का प्रकाश करे, उसे आप्त कहते हैं।
- जिससे सब लोगों के दुराचार और दुःख दूर हों तथा श्रेष्ठ आचरण एवं सुख की वृद्धि हो, ऐसे कर्म को परोपकार कहते हैं।
- ये मनुष्य परम धन्य हैं, जो अपने ही समान दूसरे लोगों के सुख में सुख, दुःख में दुःख का अनुभव कर धार्मिकता को कभी नहीं छोड़ते।
- जितने मनुष्येतर प्राणी हैं, उनमें दो प्रकार का स्वभाव देखा जाता है—बलवान से डरना और निर्बल को डराना तथा उसे पीड़ा देकर अर्थात् उसके प्राण तक निकालकर अपना मतलब साध लेना। जिस मनुष्य का ऐसा ही स्वभाव है, उसे तो इन्हीं में गिनना उचित है। मनुष्य का निजी गुण तो निर्बलों पर दया करना तथा उन्हें पीड़ा देने वाले अधर्मी बलवानों से तनिक भी भय या शंका न करके उन्हें उस दुष्कर्म से हटाकर तन-मन-धन से सर्वदा निर्बलों की रक्षा करना है।

—स्वामी दयानन्द सरस्वती

- दया ईसाइयों से सीखनी चाहिए, कड़ाई के साथ बाह्य/विधियों का पालन मुसलमानों से तथा प्राणीमात्र के साथ प्रेम का पाठ हिन्दुओं से सीखना चाहिए।

—रामकृष्ण परमहंस

- यदि शत्रु चाहते हो कि तुम्हारा कोई विरोध न करे तो मन को हमेशा शान्त रखो और हृदय में पवित्र विचारों को स्थान दो

—स्वामी रामतीर्थ

- झूठ को इज्जत देकर जितना ऊँचा बनाये रखोगे, उसमें उतनी ही ग्लानि, उतना ही अनाचार, उतना ही क्रीचड़ होता रहेगा।

—शरतचन्द्र

- जो पुत्र बूढ़े माता-पिता की, पति अपनी साध्वी स्त्री की, पिता अपने छोटे बच्चों की, शिष्य गुरु की, समर्थ पुरुष ब्राह्मणों की और शरणागत की रक्षा नहीं करता, वह जीता हुआ ही मुर्दे के समान है।

—भगवान श्रीकृष्ण

- जो आदमी हमेशा अमृत ही अमृत पीता है, उसे अमृत उतना मीठा नहीं लगता है जितना कि जहर का प्याला पीने के बाद अमृत की दो बूँदें।

—महात्मा गाँधी

- सन्मार्ग पर चलते हुए यदि लोग बुरा कहें तो यह उससे अच्छा है कि कुमार्ग पर चलते हुए लोग तुम्हारी बड़ाई करें।

—शेखसादी

- किसी भी मनुष्य का सही मूल्यांकन करना हो तो उसकी त्रुटियों या कमजोरियों को उस समय अलग करके फेंक दो, क्योंकि ये चीजें उसकी अपनी नहीं हैं। त्रुटियाँ तो मानव मात्र की सामान्य दुर्बलताएँ हैं, महान सदगुण ही मनुष्य की अपनी चीजें होती हैं।

—स्वामी विवेकानन्द

- मनुष्य और पशु में मात्र इतना ही अन्तर होता कि मनुष्य अपने आत्माभिमान की रक्षा सम्पूर्ण सांसारिक सुखों का त्याग करके भी करता है, परन्तु पशु थोड़े-से सुख के लिए परतन्त्रता की जंजीर अपने गले बाँध लेता है।-

- ईमानदारी जीवन का ऐसा आधार सिद्धान्त है, जिस पर कि मनुष्य की प्रतिष्ठा निर्भर है।

—प्रेमचन्द

- जीवन को नियम के अधीन कर देना आलस्य पर विजय पाना है। जीवन को परिश्रम के

अधीन कर देना, प्रमाद को सदा के लिए विदा कर देना है।
—स्वामी अखण्डानन्द

□ जो ताकते हैं, वे खड़े रह जाते हैं; जो चल पड़ते हैं; वे समय की सीढ़ियों के सहारे सितारों तक जा पहुँचते हैं। —रवीन्द्रनाथ टैगोर

□ 'दुनिया क्या कहेगी' ? ऐसा सोचना ही कमजोरी है। तुम्हें जो अच्छा जान पड़े वही करो। जीवन का रहस्य यही है।

□ मृत व्यक्ति वापस नहीं लौटते, गत रजनी फिर नहीं आती, अतः मृत भूतकाल की पूजा छोड़कर, आओ सप्राण वर्तमान की पूजा करें। विलीन विनष्ट पथ के अनुसन्धान में शक्ति क्षय न करके, आओ, सुप्रशस्त नवीन मार्ग पर जो सामने है, चल पड़ें। इसी में बुद्धिमत्ता है।

—स्वामी विवेकानन्द

□ सात कदम एक साथ चलने से ही सत्पुरुषों में मैत्री हो जाती है।

□ नीति कहती है कि मित्रता या शत्रुता बराबर वालों से करें।
—बाल्मीकि

□ क्या तुम्हें खेद होता है ? क्या तुम्हें इस बात पर खेद होता है कि देवताओं और ऋषियों के लाखों वंशज आज पशुवत हो गये हैं ? क्या तुम अनुभव करते हो कि अज्ञानता सघन मेघों की तरह इस देश पर छा गई है ? क्या इससे तुम छटपटाते हो ? क्या इससे तुम्हारी नींद उचट जाती है ? क्या यह भावना मानो तुम्हारी शिक्षाओं में से बहती हुई तुम्हारे हृदय रक्त में बिँध गई है ? क्या इसने तुम्हें लगभग पागल-सा बना दिया है ? सर्वनाश के दुःख की इस भावना से क्या तुम बेचैन हो और क्या इससे तुम अपने नाम, यश, स्त्री, बच्चे, सम्पत्ति और यहाँ तक कि अपने शरीर की भी सुघ-बुघ भूल गये हो ? क्या तुम्हें ऐसा हुआ है ? देश-भक्त होने की यही है प्रथम सीढ़ी केवल प्रथम सीढ़ी।
—स्वामी विवेकानन्द

□ पांडित्य के दर्प को छोड़कर बच्चे की तरह सरल रहने वाला ही ब्राह्मण है।

□ काम एक शक्ति है, तुम चाहो तो उसे ऊर्ध्वगामी बनाकर जीवन को उल्लास से भर लो।
—स्वामी दयानन्द सरस्वती

□ यदि काँटों पर पड़ जाने से परमेश्वर की याद आती हो, तो जब देखो कि संसार के काम-धन्धों में उलझकर राम भूलने लगा है, झटपट अपने को नुकिले काँटों पर गिरा दो और कुछ नहीं तो पीड़ा के बहाने याद आ जाएगी।

और हम उस समय स्वभावतः यह उद्गार प्रकट करने लगते हैं—यह शरीर, मन, वचन, बुद्धि सब कुछ वही है और जो कुछ वह है, वही मैं हूँ।
—स्वामी रामतीर्थ

□ मुझे गाली दी। मुझे मारा। मुझे हराया। मुझे लूट लिया। जो ऐसा सोचा करते हैं, उनका बैर कभी शान्त नहीं होता।

□ हमारी साधना किसी जातिविशेष के लिए नहीं होगी। जितनी जातियाँ हैं, उन सबकी मुक्ति और शुभकामना ही हमारी चिन्ता का मुख्य उद्देश्य होगा।

□ पूछे बिना उत्तर न दें। पूछने पर असत्य उत्तर न दें, क्रोध को शान्त करें, अप्रिय बात को भी प्रिय बनाकर बोलें।

□ यदि विचरण करते हुए अपने से श्रेष्ठ व अपने जैसे साथी को न पाये तो आदमी दृढ़तापूर्वक अकेला ही रहे। मूर्ख की संगत अच्छी नहीं।

□ न माता-पिता, न दूसरे रिश्तेदार आदमी की उतनी भलाई करते हैं, जितनी भलाई सन्मार्ग पर गया हुआ चित्त करता है।

□ जैसे एक कानी कौड़ी के लिए लाखों सुवर्ण मुद्राएँ (मोहरें) खर्च कर दी अथवा एक रोगमुक्त राजा ने अपथ्य रूप केवल एक आम खाकर अपना सारा राज्य गँवा दिया। (वैसे ही जीवात्मा क्षणिक सुख के लिए अपना तमाम भव बिगाड़ लेती है)।

□ कुबुद्धि वशात् (अज्ञातवशात्) पापकृत्य करके जो मनुष्य धन प्राप्त करते हैं, वे कर्मबन्ध में बँधे हुए और बैर (की सौकलों) में फँसे हुए (मृत्यु समय) धन को यहीं छोड़कर (परलोक) नरक गति में जाते हैं।

३.५ विचारसार एवं सुक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

- जो अपराध हमने किये हैं, उनसे भली-भाँति घृणा न करें, तब तक दूसरे के दोष देखने या बताने का हमें हक ही नहीं हो सकता।
- दो आदमी बगीचे में घूमने-फिरने गये थे। एक आदमी यह हिसाब करने लगा कि इस बगीचे में कितने पेड़ हैं ? बगीचे के दाम कितने हैं, इत्यादि। दूसरा आदमी मालिक के साथ मेल-जोल करके आम तोड़कर खाने लगा। इनमें यह पिछला आदमी चतुर था। ऐसा संसार में आकर भगवान के विषय में तर्क युक्ति विचार आदि करने से कुछ फल नहीं। जो उसको प्राप्त कर आनन्दानुभव कर सकता है, वही धन्य है।
- संसार कच्चा कुआँ है। इसके किनारे पर खूब सावधानी से खड़ा होना चाहिए। तनिक असावधानी होते ही कुएँ में गिर पड़ोगे, तब निकलना कठिन हो जाएगा।
- हमारे माता-पिता, भ्राता और सगे-सम्बन्धियों की भाँति जाएँ भी हमारी आत्मीय रक्षिकाएँ हैं और हमें अमृततुल्य—श्रेष्ठ औषधियाँ (दूध, दही, घी रूप में) प्रदान करती हैं।
- “पहले केवल तीन ही रोग थे—इच्छा, भूख और शरीर का क्षय, लेकिन भोजन के निमित्त पशुओं के वध के बाद से मनुष्य समाज में पूरे सौ रोगों का आक्रमण हो गया।

—महात्मा बुद्ध

- “विश्वचेतना अवतार ले चुकी है। नई पीढ़ी का सबसे बड़ा कर्तव्य यह है कि वह इस चेतना में आत्मा का प्रवेश कराये। हमें ऐसे आदर्शों एवं ऐसी संस्थाओं को अस्तित्व में लाना है, जिनके भीतर से विश्वात्मा अपनी अभिव्यक्ति कर सके।”
- वास्तव में देव-भावना से जीवन को अलम करके ही हम दुःख और विपत्तियों का आक्रमण होने लगता है, किन्तु देव-भावना को जीवन के साथ एकाकार करते हमारे हृदय से मुक्ति का आनन्द-स्रोत फट पड़ता है और तब हमें अनुभव होता है कि यह संसार कितना सरस, कितना पवित्र और कितना मनोरम है ?

—रामकृष्ण परमहंस

- “फलासक्ति छोड़ो और कर्म करो”, “आशारहित होकर कर्म करो”, “निष्काम होकर कर्म करो” यह गीता की वह ध्वनि है, जो भुलायी नहीं जा सकती। जो कर्म छोड़ता है, वह गिरता है। कर्म करते हुए भी जो उसका फल छोड़ता है, वही चढ़ता है।
- महात्मा गाँधी
- बुराई की शक्ति को सीमाबद्ध करें और भलाई की शक्ति को सारे संसार में फैलाने दें, मनुष्य जाति के लिए यही सच्चा धर्म और यही सच्चा स्वार्थ है।
- नमक
- धार्मिक संस्कार तो हमारा वंशानुगत गुण है, उसे पैदा नहीं करना, वरन् उस पर चढ़ी अज्ञान की राख को हटाना भर है। यदि इतना करलें तो अपनी धार्मिक तेजस्विता फिर से पहले जैसी प्रखर हो सकती है।
- स्वामी विवेकानन्द
- कमरे में सदियों से अन्धकार भरा हो, हम भीतर जाकर रोने-चिल्लाने लगे “हाय यहाँ तो घोर अन्धकार है” तो क्या अन्धेरा दूर हो जाएगा ? दीपक ले आइए अन्धकार स्वयं ही विलुप्त हो जाएगा।
- रामकृष्ण परमहंस
- उपवास करने से चित्त अन्तर्मुख होता है, दृष्टि निर्मल होती है और देह हल्की बनी रहती है।
- कका कालेकर
- जब जाति का हृदय-सरोवर सूखता है तो यह रचना को छोड़कर आलोचना में जा फँसता है। हिन्दुओं का भी यही हाल हुआ। छठीं सदी के बाद रचना कम, आलोचनाएँ ज्यादा हुई तथा समाज का सर्वांगीण पतन होता चला गया।
- महायोगी अरविन्द
- हमारे देश में बहुत-से धर्म हैं। हम उन सबका आदर करें। हम आपस में न लड़ें और धर्मों को अपने बीच दीवार न बनाएँ और हम सब मिलकर काम करें।
- जवाहरलाल नेहरू
- किसी भी जीव को सताओ मत, क्योंकि वह भी तुम्हारी तरह एक आत्मा है।
- संत एकनाथ
- सारा विश्व एक ही परमात्मा का विस्तार है, सब मनुष्य एक जाति है, फिर सबके लिए धर्म अलग-अलग कैसे हो सकते हैं ?

—स्वामी विवेकानन्द

- काम के समान व्याधि नहीं। मोह के समान बैरी नहीं। क्रोध के समान आग नहीं और ज्ञान से परे सुख नहीं। —**वाणक्य**
- ईर्ष्या, लोभ, क्रोध और अप्रिय किंवा, कटुवचन इनसे सदा अलग रहो। धर्मप्राप्ति का यही मार्ग है। —**सन्त तिष्ठकस्तुवर**
- हे भगवन् ! मेरे जीवन के शेष दिन किसी पवित्र वन में शिव-शिव-शिव जपते हुए बीतें। साँप और फूलों का हार, बलवान, बैरी और मित्र, कोमल पुष्प शय्या और पत्थर की शिला, रत्न, पत्थर, तिनका और सुन्दर कामिनी—इन सबमें मेरी सम दृष्टि हो जाय। —**भट्टकवि**
- अतिथि की भाँति दीन-दुखी, पीड़ित, रोगी इत्यादि की सेवा करना भी समाज पूजा का एक अंग है। दरिद्र नारायण भी एक महान् देवता हैं। उनका हम पर वह उपकार है, जिसका कभी बदला नहीं चुकाया जा सकता। —**विनोद**
- व्याकुल होकर उसके लिए रोने से ही वह मिलता है, लोग लड़के-बालक के लिए, रुपये-पैसे के लिए कितना रोते हैं, किन्तु भगवान के लिए क्या कोई एक बूँद आँसू टपकाता है ? उसके लिए रोओ, आँसू बहाओ, तब उसको पाओगे।
- करोड़ों के हृदय को अनुसंधान करने और उनमें ऐक्य भाव पैदा करने के लिए एक साथ राम-नाम की धुन जैसा कोई सुन्दर और सबल साधन नहीं है।
- प्रार्थना या भजन जीभ से नहीं, हृदय से होता है। इसी से गूँगे, तुतले, मूढ़ भी प्रार्थना कर सकते हैं।
- प्रार्थना का आमन्त्रण निश्चय ही आत्मा की व्याकुलता का घोटक है, प्रार्थना का एक चिन्ह है। प्रार्थना हमारे अधिक अच्छे, अधिक शुद्ध होने की आतुरता को साबित करती है।
- पशु से मिटकर पशु के चालक बनो, गौचारक श्रीकृष्ण का स्वरूप प्राप्त करो। गौ से मिटकर गोपाल बनो, यही तुम्हारा लक्ष्य है।
- जब हम भोग इच्छा से परे होंगे तभी आनन्द मिलेगा। पहले कामना ही सहायक थी, अब वही बाधक है।
- हम जब व्यक्तित्व से परे होंगे तभी वास्तविक व्यक्तित्व प्राप्त होगा। 'अहं', पहले सहायक था, अब वही विघ्नकर्ता है।
- अभी हमारे लिए क्या प्राप्त करना शेष रहा है, जानते हो ? देखो—
—प्रथम तो प्रेम—क्योंकि अभी तक हमने केवल द्वेष आत्म-संतोष की ही साधना की है।
—ज्ञान ? क्योंकि अभी तक हम केवल आकलन, अवलोकन और विचारशक्ति को ही प्राप्त कर सके हैं।
—आनन्द ? क्योंकि अभी तक हम केवल दुःख-सुख तथा उदासीनता को ही प्राप्त कर सके हैं।
—शक्ति ? क्योंकि अभी तक निर्बलता, प्रयत्न और विजय-पराजय तक ही हम पहुँच सके हैं।
—जीवन ? अर्थात् प्राण। अभी तक मानव केवल जन्म, मृत्यु और वृद्धि ही देख सका है।
—अद्वैत ? क्योंकि अभी तक मानव-जाति को युद्ध और स्वार्थ-साधना करने की विद्या ही आती है।
—एक शब्द में कहें तो अभी हमें भगवान को प्राप्त करना है। हमें अपने को उसके दिव्य स्वरूप की प्रतिमा बनाकर आत्मा का पुनर्निर्माण करना है।
- काल, आत्मा और सृष्टि यह तीनों हमारे क्षेत्र हैं। आशा, सर्जन, कल्पना, भावी दर्शन हमारे उत्साहक हैं। शक्ति, विचारणा और विश्वास हमारे सर्वसाधक शस्त्रास्त्र हैं।
- जब हम मानवता से परे होंगे, तभी मानवीय बन सकेंगे। 'पशु' पहले हमारा साथी था, अब वही बाधक है।
- वेदान्त दर्शन के प्रचार का अत्यन्त सर्वोत्तम मार्ग इसको अपने आचरण में लाना है, अब कोई शाहेराह (राज्यपथ का सुगम मार्ग) नहीं है।
- अभी तक मानव ने जो कुछ प्राप्त किया है, उसी की पुनरावृत्ति करते रहना हमारा कर्तव्य

१.७ विचारसार एवं सुक्तियाँ (द्वितीय अण्ड)

- नहीं। हमें तो केवल नवीन साक्षात्कार और मानव ने अभी तक स्वप्न में भी जिसकी कल्पना नहीं की है, ऐसी प्रभुता प्राप्त करनी है।
- यदि कोई मनुष्य तुम्हें जल पिलावे और उसके बदले में तुम भी उसे जल पिलाओ, तो तुम्हारा यह काम कुछ भी नहीं है। शोभा इसी में है कि उपकार करने वाले के साथ भी तुम उपकार करो।
 - सत्पुरुष आसक्त नहीं होते। वह काम-भोगों के लिए बात नहीं बनाते। उन्हें चाहे दुःख हो चाहे सुख, वे विकार को प्राप्त नहीं होते।
 - एक आदमी संग्राम में लाखों आदमियों को जीत ले और एक दूसरा अपने आपको जीत ले। यह दूसरा आदमी ही सच्चा संग्राम विजयी है।
 - जो आदमी अपना द्वेष दिखलाने वाले की तरह समझे, जो संयम के समर्थक मेधावी पंडित की संगति करे उसका कभी अकल्याण नहीं हो सकता है।
 - जो पार पहुँचते हैं वे तो मनुष्यों में छोड़े ही हैं। बाकी आदमी तो किनारे पर ही दौड़ते रहते हैं।
 - जो अभिवादनशील हैं, जो नित्य बड़ों की सेवा करता है, उसकी आयु, बुद्धि तथा बल में वृद्धि होती है।
 - सारथी द्वारा सुरक्षित घोड़ों की तरह जिनकी इन्द्रियाँ शान्त हैं, जिसका अभिमान नष्ट हो गया है, जो आश्रयरहित है—ऐसे पुरुष की देवता भी स्मृहा करते हैं।
 - न दुष्ट मित्रों से संगति करे, न अधर्मी पुरुषों की संगति करे। अच्छे मित्रों की संगति करे। उत्तम पुरुषों की संगति करे।
 - लाम का रास्ता दूसरा है और निर्वाण का दूसरा। इसे इस प्रकार जानकर बुद्ध का शिष्य भिक्षु-संस्कार की इच्छा न करे, विवेक व एकान्तचर्या की वृद्धि करे।
 - जिसका चित्त मलरहित है, जिसका चित्त स्थिर है, जो पापविहीन है, उस जागरूक पुरुष के लिए भय नहीं है।
 - यदि पाप बने तो दुबारा फिर न करे, उसमें रत न होवे। पाप का संचय दुःख का कारण होता है।
 - जो फटे-पुराने वस्त्रों को धारण करता है, जो दुबला है, जिसकी नसें दिखाई देती हैं, जो वन में अकेला ध्यान करता है, वह ब्राह्मण नहीं बनता। जिसके पास कुछ नहीं है, जो अक्रोधी है, व्रती है, सदाचारी है, तृष्णारहित है, संयमी है वही ब्राह्मण है।
 - जिस प्रकार दवा के बिना बीमारी को सहन करना कठिन है, उसी प्रकार ज्ञान के बिना सांसारिक प्रभुता सँभालना भी दुस्साध्य है। मनुष्य चारों ओर अज्ञान से घिरा हुआ है, इस लिए वह भोग-लिप्ता में पड़ जाता है।
- महात्मा बुद्ध
- संसार में न तो कोई किसी का मित्र है, न शत्रु है। जो मनुष्य किसी को अपना शत्रु मानकर उस पर क्रोध करते हैं, वे वास्तव में अपनी ही हानि करते हैं, संसार विष्णुमय है। शरीर का एक अंग दूसरे अंग का शत्रु कैसे हो सकता है ?
- प्रज्ञाव
- काम, क्रोध, मद और लोभ जब तक मन में बसे हैं, तब तक पंडित और मूर्ख दोनों ही एक समान हैं।
- गोस्वामी तुलसीदास
- अगर गिरो तो अपने कुकर्मों को दोष दो, अगर ऊँचे चढ़ो तो परमात्मा के गुण गाओ।
- वेदव्यास
- जो चीज सरलता से मिल जाती है, वह महान नहीं होती। महान चीजों को प्राप्त करने के लिए तो दुर्गम मार्ग से चलना होता है।
- लोकमान्य तिलक
- जिन परिवर्तनों को हम आज संसार में देख रहे हैं, वे अपने आदर्श और अभिप्राय में बौद्धिक, नैतिक और भौतिक हैं। आध्यात्मिक क्रान्ति अपने समय की प्रतीक्षा कर रही है और इस बीच अपनी लहरें जहाँ-तहाँ उछाल रही हैं। जब तक यह आ नहीं जाती, तब तक अन्य सबका मर्म भी समझ में नहीं आ

सकता, तब तक वर्तमान स्थिति की सभी व्याख्याएँ तथा मनुष्य की भविष्यता विषयक भविष्यवाणियाँ निरर्थक हैं, क्योंकि इस क्रान्ति की प्रकृति, शक्ति और क्रिया ही हमारी मानवता का आगामी युगचक्र निर्धारित करेगी।

—महायोगी अरविन्द

- यदि कभी इस पृथ्वी पर साम्यवाद सफलतापूर्वक स्थापित होता है तो वह आत्मिक बन्धुत्व के आधार पर ही हो सकता है, जिसमें अहंकार का विनाश हो जाएगा। बलात् लादी हुई संघबद्धता और मशीनी कामरेडवाद एक न एक दिन विश्वव्यापी टैंक-टैंक फिस्स में समाप्त हो जाएगा।

—महायोगी अरविन्द

- आराम करना उनके प्रति विश्वासघात करना है, जिन्होंने अनवरत श्रम करके हमें उठ सकने योग्य और सुख पा सकने योग्य बनाया। यह विश्वासघात इन असंख्य लोगों के प्रति भी है जो कभी-कभी आराम कर ही नहीं पाते।

—जवाहरलाल नेहरू

- धन फलदायक नहीं होता और न नाम, यश फलदायक नहीं होता और न विद्या। प्रेम ही सर्वत्र फलदायक है। चरित्र ही कठिनाइयों की संगीन दीवारों को तोड़कर अपना रास्ता बना लेता है।

- खलों की विद्या विवाद के लिए, धन मद के लिए और शक्ति दूसरों को सताने के लिए होती है। इसके विपरीत सज्जनों की विद्या ज्ञान के लिए, धन दूसरों को देने के लिए तथा बल (दुर्बलों की) रक्षा के लिए होता है।

—माणक्य

- लोग कर्म से अक्सर इसलिए कतराते हैं कि वे अंजामों से डरते हैं, क्योंकि कर्म का मतलब है जोखिम और खतरा, लेकिन डर दूर से ही भयंकर दिखाई देता है। नजदीक से देखा जाय तो इतना बुरा नहीं होता और बहुत बार तो डर ऐसा मुहावना बन जाता है, जो जिन्दगी की लज्जत और खुशी बढ़ाता है।

—जवाहरलाल नेहरू

- ब्राह्मण जो कुछ भी जानते हैं उसे सिखाकर, जो ज्ञान के अनुभव उन्होंने प्राप्त किये हैं, उसे दान देकर, भारतवासियों को उन्नत बनाने में सचेष्ट रहें। सांसारिक कार्यों में लगे रहना यथार्थ ब्राह्मण का कार्य नहीं है।

- त्याग और सेवा ही भारतवर्ष के जातीय आदर्श हैं। इन भावों को पुनः जगा देना पर्याप्त है, शेष सब स्वतः ठीक हो जाएगा।

—स्वामी विवेकानन्द

- मनुष्य का मूल्यांकन करने के लिए उसके कथन को अथवा पिछले कामों को जानना पर्याप्त नहीं। देखना यह होगा कि वह क्या बनने जा रहा है।

—महायोगी अरविन्द

- प्रतिज्ञाहीन जीवन बिना नींव का घर है या यों कहिए कि कागज का जहाज है। प्रतिज्ञा न लेने का अर्थ है—अनिश्चित या डौंवाडोल रहना।

—महात्मा गाँधी

- वाणी का वेग, मन का वेग, क्रोध का वेग, तृष्णा का वेग, उदर का वेग, उपस्थ का वेग इन प्रचण्ड वेगों को जो सह सकता है, उसका भविष्य सब प्रकार उज्ज्वल है।

—महात्मा बुद्ध

- शान्ति और संतुष्टि चाहते हो तो सांसारिक कामनाएँ कम कर अपने संकल्प को कहने दो। परमात्मा के अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं चाहिए।

—स्वामी रामतीर्थ

- वेदान्त हिन्दू सभ्यता तथा संस्कृति की पराकाष्ठा है। अपने जीवन को सर्वोच्च और सर्वोत्तम प्रकार से बिताने के विज्ञान और कला को वेदान्त कहते हैं। यह विचार है जो ज्ञान के संसार को प्रकाशित करता है। वेदान्त कहता है कि तुम यह नश्वर शरीर नहीं हो वरन् सब में व्याप्त अमर आत्मा हो।

—स्वामी शिवानन्द

- आनन्द जीने में है—शक्तियों का उपयोग करने में है, ज्ञान के उपार्जन में है, अनौचित्य से लड़ने में है और उस शौर्य-साहस का परिचय देने में है, जो आदर्शवादी बनने के लिए प्रस्तुत करना पड़ता है।

—स्वामी विवेकानन्द

- सब छोटे-बड़े नहीं हो सकते, सब गरीब-अमीर नहीं हो सकते, लेकिन सादे सब हो सकते हैं और यदि इस तरह सब एक जैसे हो जाएँगे, तब रामराज्य की कल्पना साकार करना कठिन नहीं होगा।

—महात्मा गाँधी

- जीवन का पहला और स्पष्ट लक्षण है विस्तार। यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो तुम्हें

फैलना ही होगा। जिस क्षण तुम जीवन का विस्तार बन्द कर दोगे, उसी क्षण जान लेना कि मृत्यु ने तुम्हें घेर लिया है, विपत्तियाँ तुम्हारे सामने हैं।
—स्यामी विवेकानन्द

- जाद्व्यं विद्यो हरति सिन्धवति नाधि सत्यं
मानोन्मत्तिं विधत्ति पापमनाकरोति।
चेतः प्रसादयति विदुः तनोति कीर्तिः,
सत्संगतिः कथय किं करोति पुंसां॥

—मर्तुहरि २३/नीति.

सत्संगति बुद्धि की जड़ता नष्ट करती है, वाणी को सत्य से सींचती है, मान को बढ़ाती है, पाप दूर करती है, चित्त को प्रसन्नता देती है, संसार में यश फैलाती है, सत्संगति मनुष्य के लिए क्या नहीं करती ?

- बुद्धि को झुकाने तथा मोड़ने की मशीन विज्ञान नहीं सत्संग बनाता है, उसमें मानव जहाँ चाहे घूम सकता है, बुरों के संग रसातल एवम् सन्तों के संग से वह भू-मण्डल का सूर्य भी बन सकता है,
—विनोबा

- सत्संग से दुर्जनों में साधुता आती ही है, साधुओं ही में दुष्टों की संगत से दुष्टता नहीं आती। फूल के गन्ध को मिट्टी ही ले लेती है, मिट्टी की गन्ध को फूल नहीं धारण करते।
—बाणक्य

- मानव का अन्तःकरण ही ईश्वर की वाणी है।
—बायरन

- जो मनुष्य परमात्मा का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, वह परमात्मा का ही स्वरूप हो जाता है और इस तरह सिद्ध है कि गुरु के आसन पर मनुष्य नहीं—परमात्मा स्वयं आसीन रहते हैं।
—निराला

- हे धीरपुरुष ! आशा, तृष्णा और स्वच्छन्दता का त्यागकर तू स्वयं ही इन कौटों को मन में रखकर दुःखी हो रहा है।
—भगवान महावीर

- यह जीवन का सच्चा सुख है—ऐसे उद्देश्य में जिसे तुम स्वयं ही महान समझते हो, काम आ जाना, इसके पहले कि तुम धूरे पर रद्दी की तरह उठाकर फेंक दिए जाओ, काम करते-करते पूर्ण रूप से घिस जाना। प्रकृति की एक शक्ति बन जाना कहीं अच्छा है, बजाय इसके कि तुम रोग और आपत्तियों की एक ज्वरपीड़ित

स्वार्थपूरित, क्षुद्रपीड़ा बने हुए रोते फिरो कि दुनिया तुमको सुखी बनाने की ओर ध्यान नहीं देती है।
—जार्ज बर्नार्ड शॉ

- मनुष्य का सच्चा जीवन तब प्रारम्भ होता है जब वह यह अनुभव करता है कि केवल भौतिक जीवन अस्थिर है और वह सुख नहीं दे सकता।
—टासत्याय

- सज्जनों ने किसी गुप्त प्रयोजन की सिद्धि के लिए लोकाराधन-लोकरंजन अपना परम ध्येय बनाया है।
—भवभूति

- अपने हृदय में उत्साह, प्रामाणिकता एवं क्रियाशीलता की ज्योति जलाए रखें। यह स्वर्णिम-ज्योति न केवल आपके अन्तः को ही आलोकित कर प्रकाशमय बनाए रखेगी वरन् आपके परिवार व समाज को भी उज्ज्वल बना देगी। आपकी ही यह स्वर्णिम प्रकाश किरण समाज में मधुरता, रस, आकर्षण, स्नेह, व्यवस्था की लय बना रखेगी। इससे प्रकाशित पथ ऐसा होगा जिस पर घोर अन्धकार में भी अन्य व्यक्ति निर्भयता से चलते रहेंगे।
—रवीन्द्रनाथ टैगोर

- समस्याओं के बारे में यह मत कहो कि वे बहुत कठिन हैं। कठिन न होती तो समस्याएँ ही क्यों कहलाती ? कठिनाई की चर्चा किये बिना जो हल खोजते हैं, वे ही उन्हें सुलझा पाते हैं।
—मार्शल फ़िश

- रात-दिन परिश्रम में लगे रहना, लाभ के लक्षण है। निरन्तर काम में लगे रहने से मनुष्य की वृद्धि हो जाती है। प्रमादियों को, आलसियों को लक्ष्मी नहीं चाहती। जो लोग उत्साहहीन होते हैं, वे भी सदा निर्धन ही रहते हैं।

- कोमल स्वभाव, सबका भला चाहना, किसी का बुरा न चेतना, क्षमा करना, धैर्य रखना, किसी का तिरस्कार न करना, ये काम आयु को बढ़ाने वाले हैं।
—विश्वर

- प्रायः दुश्चिन्ताओं का कोई आधार नहीं होता। केवल किसी अस्पष्ट की आशंका व्यक्ति को अस्वस्थ कर देती है। यह रोग उस परिपक्व वय के व्यक्ति को जकड़ लेता है, जो नैसर्गिक उद्देश्यों का अस्वाभाविक रीति से विरोध करता है। चिन्ता से बढ़कर, आज के मनुष्य का और

कोई बड़ा शत्रु नहीं हो सकता। चिन्ता करने वाले व्यक्ति को जीवन के महत्वपूर्ण कार्य करने वाला समय ही नहीं मिलता। उसका सारा समय तो व्यर्थ की उधेड़-बुनों में ही चला जाता है। जितना अधिक वह अपनी भूलों और असफलताओं पर विचार करता है, उतना ही अधिक उसका मस्तिष्क असन्तुलित होता है। हमारी चिन्ता का एक बड़ा कारण यह है कि हम चाहते हैं कि दूसरे सदा हमारे बारे में चिन्तित रहें और जब वह ऐसा नहीं करते, हम स्वयं चिन्तित हो जाते हैं। इसका उपाय इसके अलावा कुछ नहीं है कि हम सदैव अपने को कार्यव्यस्त और बहिर्मुखी रखें।

—सायकाम विद्यालंकार

- हम जो कुछ हैं, जैसे हैं, ठीक उसी रूप में दूसरों के सामने रखने में मनुष्य जीवन की सारी सम्भाव्य विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। संसार एक बार में ही उसके सत्यस्वरूप को देखकर समझ लेता है और सदा के लिए विश्वास कर लेता है, किन्तु जो अपने कृत्रिमता का जामा पहनकर संसार के सामने जा सकता है, लोग उसे छली, कपटी और वंचक समझकर अविश्वास करने लगते हैं। अविश्वास सारी आपत्तियों का मूल है।

- सबल व्यक्ति स्पष्ट रहने से स्वयं अपने को भी ठीक से देख पाता है और सुधार का प्रयत्न करता है। इसके विपरीत कृत्रिम व्यक्ति अपने को छिपाने और दूसरों को धोखा देने के प्रयत्न में लगा रहने से अपना सुधार नहीं कर पाता और दिन-दिन हेय बनता जाता है। —कणावा

- अपने कष्ट की अतिरंजित कल्पना द्वारा हम अनावश्यक कष्ट न्योत लेते हैं। सबकी पीठ पर पड़ने वाली शुद्धिकारक छड़ी से भला हमें ही क्यों बख्शा जाये ? अपनी स्थिति की तुलना हम अपने साथी मानवों के अधिसंख्यक भाग से करें तो हम जान पायेंगे कि हम तो बड़े खुशकिस्मत हैं। —हेलन कैलर

- संसार में पवित्र-चिन्तन का एक स्रोत बहा दो। मन ही मन कहो “संसार में सभी सुखी हों सभी शान्ति लाभ करें, सभी आनन्द पाएँ।” इस प्रकार पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण चारों ओर पवित्र चिन्तन की धारा बहा दो। ऐसा जितना करोगे,

उतना ही तुम अपने को अच्छा अनुभव करने लगोगे। बाद में देखोगे दूसरे सब लोग स्वस्थ हों यह चिन्तन ही स्वास्थ्य लाभ का सहज उपाय है। दूसरे सब लोग सुखी हों—ऐसी भावना ही अपने को सुखी करने का सहज उपाय है।

—स्वामी विवेकानन्द

- अशांति आत्मा के लिए पाप का पश्चात् सबसे घातक चीज है। विस्मृत और अशांत हृदय न केवल अपने संचित शुभगुणों को बनाए रखने की शक्ति खो बैठता है, अपितु शत्रु के प्रलोभनों को प्रतिरोध करने के साधन से भी हाथ धो बैठता है।

- पक्षी जाल में इसलिए फँसते हैं कि जब वे देखते हैं कि उनके पाँव जाल में पड़ गये हैं, तो वे बेतहाशा छटपटाते हैं और छुटकारा पाने के लिए असंयत हलचल करते हैं, जिससे वे और अधिक उलझ जाते हैं।

इसलिए जब किसी बुराई से छुटकारा अथवा किसी अच्छाई को पाने की तुम्हारी तीव्र इच्छा हो, तो सबसे पहले अपनी आत्मा को स्थिर और शान्त बनाओ, अपनी बुद्धि और मन को उद्वेग-मुक्त कर उचित उपायों का प्रयत्न करो बिना चिन्ता, क्षोभ और अशान्ति के।

—रोम्बो रोले

- सज्जनों और बादलों का स्वभाव एक जैसा ही होता है। वे अपने उपार्जन को लोककल्याण के लिए लुटाते रहते हैं।

- अपने पूर्वजों के खारे कुएँ का पानी पीते रहना और दूसरे मीठे कुएँ की अवहेलना करना दुराग्रह मात्र है।

—स्वामी विवेकानन्द

- जीवन भले ही नश्वर हो, पर उसके दो लक्ष्य अटल हैं—एक अपने लिए हिम्मत और दूसरों के लिए हमदर्दी।

—एडम गौरडोन

- व्यक्ति को नहीं, उसकी बात को परखो।

—अरबी कहावत

- जो अपने हिस्से का काम किये बिना ही भोजन चाहते हैं वे चोर हैं।

—महात्मा गाँधी

- व्यस्त मनुष्य को आँसू बहाने के लिए अवकाश नहीं रहता।

—बायरन

- जीवन का रहस्य भोग में नहीं है, अनुभव के द्वारा शिक्षाप्राप्ति में है। —स्वामी विवेकानन्द
- जो तुम पर हमला करते हैं, उन शत्रुओं से तुम मत डरो। उन मित्रों से डरो, जो तुम्हारी चापलूसी करते हैं। —जनरल ओब्रगीन
- गृहस्थ के लिए दूसरों के अन्यायों को चुपचाप सह लेना घोर पाप है। —स्वामी विवेकानन्द
- जिन भारों को मनुष्य सहन करता है, उनमें मूर्ख की बात का सुनना और सहना सबसे कठिन है। —स्टीवेंसन
- अपने लक्ष्य को कभी मत भूलो अन्यथा जो कुछ मिलेगा तुम उसी में सन्तोष मानने लगोगे। —जार्ज बर्नार्ड शॉ
- अब तक कोई भी बहुत-सी और बड़ी-बड़ी गलतियाँ किए बगैर कहीं कोई महान नहीं बना। —लेडस्टन
- असफलता अपराध नहीं है। अपराध है उद्देश्य का छिछला होना। —जे. आरत्र लोवेच
- शिक्षामात्र आत्मोन्नति के लिये होती है।
- उन्नति का मूल मन्त्र है—आत्म-संयम। उन्नति का अर्थ है—आत्म-ज्ञान।
- मिथ्या ज्ञान से हम हमेशा डरते रहें। मिथ्या ज्ञान वह ज्ञान है, जो हमको सत्य से दूर रखता है। —महात्मा गाँधी
- जिस लेखक की अन्तरात्मा में ही विश्व-श्रोता का आसन है, वही बाहरी श्रोताओं से नकद-विद्राई मिलन के लोभ को सँभाल सकता है। —रवीन्द्रनाथ टैगोर
- वह सबसे सुखी है, चाहे राजा हो या किसान, जो अपने घर में शांति पाता है। —गेटे
- हर आदमी दीर्घायु चाहता है, किन्तु वृद्ध होने की कामना कोई नहीं करता। —स्विफ्ट
- उत्तम कर्म से मनुष्य दो पल भी जीवित रहे यह श्रेष्ठ है, पर दुष्ट कर्म करने वाले का पल भर में मर जाना अच्छा है। —वाणक्य
- मनुष्य के अंतरंग का भ्रूंगार है चातुर्य, वस्त्र तो केवल बाहरी सजावट है। —रामबास

- अच्छे कार्य को करने में धन की आवश्यकता कम पड़ती है, अच्छे हृदय और संकल्प अधिक। —यूर
- यदि तुम्हारे अपने दरवाजे की सीढ़ियाँ मैली हों तो अपने पड़ोसी की छत पर पड़ी गन्दगी की आलोचना मत करो। —कनफ्यूशियस
- आशा और आनन्द का सम्मान सच्ची दौलत है भय और रज्ज का सच्ची गरीबी। —ह्यूम
- हमारी अन्तस्थ भावनाओं को जाग्रत करने की जिसमें सामर्थ्य होती है, वह कवि है। —महात्मा गाँधी
- अपने सद्गुणों की याद से बढ़कर कोई पिता और वसीयत नहीं छोड़ सकता। —हैमिल्टन
- महान व्यक्ति न किसी का अपमान करता है और न उसको सहता है। —होमर
- किसी के छिपे ऐवों का ढिंढोरा मत पीटो, क्योंकि उसकी बदनामी करने से तुम भी विश्वास के योग्य नहीं रहोगे। —लेखसायी
- शरीर और गुणों में बड़ा अन्तर है। शरीर क्षण-भंगुर है, लेकिन गुण कल्पान्त तक बने रहते हैं। —वाणक्य
- जो जागता है, वही अपने सपनों के बारे में बता सकता है। —सेनेका
- अच्छे काम में किया गया परिश्रम अवश्य ही सफल होता है, ज्ञानी समर्थ पुरुष कभी नीच विचार वालों की राह पर नहीं चलते। —कालियास
- इतिहास के अनुभवों से हम सबक नहीं लेते, इसी से इतिहास की पुनरावृत्ति होती है। —विनोबा
- खामोश रहो या ऐसी बात कहो जो खामोशी से बेहतर है। —पाइथागोरस
- शत्रु द्वारा की गयी प्रशंसा सर्वोत्तम कीर्ति है। —टॉमस मोर
- मानव आत्मा की कोई जाति नहीं होती। —रवीन्द्रनाथ टैगोर
- शान्ति मानव की सुखद व स्वाभाविक स्थिति है, युद्ध उसका पतन है, उसका कलंक है। —टॉमसन

- शालीनता का मोल नहीं लगता, पर उससे सब कुछ खरीदा जा सकता है। —लेडी माटेयू
- नारी के बिना पुरुष की बाल्यावस्था असहाय है, युवावस्था सुखरहित है और वृद्धावस्था सान्त्वना देने वाले सच्चे और वफादार साथी से रहित है। —जीन
- कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे से इतना नहीं छला गया जितना स्वयं से। —जिरेबिले
- फूल चुनकर इकट्ठा करने के लिए मत ठहरो, आगे बढ़े चलो, तुम्हारे पथ में निरंतर फूल खिलते रहेंगे। —रवीन्द्रनाथ टैगोर
- बातचीत का पहला अंश है सत्य, द्वितीय सुन्दर समझ-बूझ, तृतीय सुन्दर विनोद और चतुर्थ वाक-चातुर्य। —सर डब्लू टैपेल
- छोटी-छोटी वस्तुओं की अपेक्षा बड़ी वस्तुओं का बलिदान करना सरल है। —मानटेन
- छटाँक भर वैज्ञानिक विचार, मनमर अज्ञानपूर्ण उत्साह से बढ़कर है। —हेवर्ड
- हर आदमी काम में जुटा रहे, अपने स्वभावानुकूल सर्वोच्च काम में लगा रहे और इस चेतना के साथ मरे कि उसने हर दर्जे का काम किया। —सिडनी स्मिथ
- जिस तरह बिल्लीरी पत्थर अपने पास वाली चीज का रंग धारण कर लेता है, उसी तरह चेहरा भी दिल की बात को प्रकट करने लगता। —सन्त तिळकेश्वर
- दो धर्मों का कभी भी झगड़ा नहीं होता, सब धर्मों का अधर्म से ही झगड़ा है। —विनोबा
- जिस समाज में अधिकांश अच्छे लोग रहते हैं, उसे सभ्य समाज कहा जाता है, पर मेरी दृष्टि में उससे भी सभ्य वे लोग हैं, जो बुरे लोगों को भी निबाह लेते हैं और प्रेमपूर्वक उन्हें अच्छा बनाने का प्रयत्न करते हैं। —अब्राहम लिंकन
- क्या तुम निशाना चूक गये हो ? यदि चूक ही गये हो तो क्या हुआ, अब भी तो निशाना चमकता हुआ दिखाई दे रहा है। क्या तुम दूर तक दौड़ते हुए थक गये हो ? थोड़ी देर दम ले लो और पुनः प्रयत्न करो। —एला वेलर बिल काक्स
- यदि किसी मनुष्य को सफल, बलशाली और आदर्श जीवन बनाना है—ऐसा जीवन जो प्रलोभन और आफत की आँधी का दृढ़ता से मुकाबला करेगा, तो उसे थोड़े-से सरल और अटल नैतिक सिद्धान्तों को बनाना चाहिए। इनमें से चार ये हैं—न्याय, ईमानदारी, सच्चाई और कृपा। ये चार नैतिक सत्य जीवन बनाने के लिए वैसे ही आवश्यक हैं जैसे कि एक घर बनाने के लिए एक समचतुर्भुज की चार रेखाएँ।
- कमर में सुनहरी चारस बाँधने से चाकरी में खड़े रहने की अपेक्षा जौ की रोटी खाना और जमीन पर बैठना अच्छा है।
- जिसके पास फर्ज नहीं है उसका तो हक नहीं है, अर्थात् सब हक अपने फर्ज में से निकलता है—फर्ज नहीं तो हक नहीं। मैं फर्ज अदा करता हूँ तो उसका नतीजा मिलता है, वही हक है।
- दो दुश्मनों के दरमियान अगर कुछ बात कहो, तो इस भाँति कहो कि यदि वे आपस में दोस्त भी हो जावें तो भी तुम्हें लज्जित न होना पड़े। दो मनुष्यों की दुश्मनी आग के समान है और जो बातें बनाता है, वह आग में ईंधन डालता है। जब दो दुश्मन आपस में सुलह कर लेते हैं, तब वे दोनों ही चुगलखोर को बुरी नजर से देखते हैं। जो शख्स दो आदमियों के बीच में आग लगाता है, वह खुद अपने तई उसमें जलता है। अपने मित्रों से इस तरह चुपचाप बात करो कि तुम्हारे खून के प्यासे शत्रु तुम्हारी बात न सुन लें। अगर दीवार के सामने भी कुछ बात करो, तो होश रखो कि दीवार के पीछे कान न लग रहे हों।
- जब तुम्हें किसी काम के आरम्भ के समय ऐसा सन्देह उठ खड़ा हो कि इस काम को किस ढंग से जारी करें, तब तुम्हें वह ढंग अख्तियार करना चाहिए, जिससे तुम्हें नुकसान न पहुँचे। कोमल स्वभाव के मनुष्य से कड़ाई से बातें न करो और वह शख्स जो तुमसे मेल रखना चाहता है, उससे लड़ाई-झगड़ा मत करो।
- जब तक रुपया खर्च करने से काम निकल सके, तब तक जान को खतरे में न डालना

- चाहिए। जब हाथ से किसी तरह काम न निकले तब तलवार खींचना भी मुनासिब है।
- जबर्दस्त के साथ लड़ाई मत ठानो। जबर्दस्त के सामने अपने हाथ बगल में दबालो।
- खुश करने की कला, खुश रहने की आदत के साथ जुड़ी हुई है। दूसरों के प्रिय बनने के लिए आवश्यक है कि अपने आपसे सन्तुष्ट रहना सीखें। —**हैजलिट**
- यदि कोई अप्रसन्न रहता है तो यह उसका अपना दोष है। ईश्वर ने तो प्रत्येक मनुष्य को प्रसन्न रहने के लिए उत्पन्न किया है। —**स्वामी वयानन्द सरस्वती**
- जो आयु या योग्यता में बड़े हों, हम उनकी बातों को पूरे ध्यान व श्रद्धा से सुनें, फिर भी अगर उनसे सहमत न हों तो उसे अधिकार है कि उनके उपदेश भुलाकर अपना मार्ग ठीक कर लें। —**लासा लाजपत राय**
- विलक्षण बुद्धि वाले महापुरुषों की महानता का एक चिन्ह है कि वे बहुधा बिना जाने ही दूसरों की बातों को ऋणस्वरूप ले लेने की अपार योग्यता रखते हैं। मध्यम श्रेणी के लोग ही ऋण लेने में लज्जा और भय का अनुभव करते हैं, क्योंकि वे नहीं जानते कि स्वयं अपना सिक्का ढालकर अपने ऋण को कैसे चुकाया जाए ?
- जीवन को जमा करना उसे बरबाद करना है, जीवन को बटोरना उसे गँवाना है। जीने का अर्थ ही है देना। साझेदारी अध्यात्म का नियम है। कृपणता अध्यात्म का प्रतिपक्ष है। आध्यात्मिक पुरुष आदर्श सज्जन होता है। बर्नार्डशा की सज्जन की परिभाषा यहाँ सहज ही याद आती है—“सज्जन वह है, जो सदा उससे कुछ ज्यादा ही देने का प्रयत्न करता है, जितना उसने लिया है। तुममें से सर्वोत्तम है। उसमें दूसरों को साझीदार बनाओ। एक दिन यह शरीर, यह पार्थिव घर नष्ट हो जाएगा, किन्तु हम जानते हैं कि यह आत्मिक ध्येय के लिए बनाया गया था। जीवन के ये आत्मिक मूल्य सर्वदा जीवित रहेंगे। उनमें दूसरों को साझीदार बनाओ। संसार में सर्वोच्च वस्तु है प्रेम, जो अपने को ही मुक्तहस्त लुट देता है, उस असीम जीवन को सेवा में, जिसे ऋषिगण पूजते हैं। —**सन्त वास्वानी**
- उस वक्त को हमेशा याद रखो, जिस दिन तुम्हारा जन्म हुआ था, उस दिन सब लोग हैंस रहे थे और तुम रो रहे थे, परन्तु अपने जीवन को तुम इस प्रकार ढालो कि जिस दिन तुम्हारी मृत्यु हो सब लोग रोते हों और तुम हैंसते जाओ। —**बर्ट्रान्ड रसेल**
- यही जीवन-संग्राम का युग है और यदि हमको संसार में जीवित रहना है, तो हमें विवश होकर नवीन और पुरुषोचित सिद्धान्तों के अनुकूल बनना पड़ेगा। —**प्रेमचन्द**
- मनुष्य को ऐसे रहना चाहिए कि मरने के समय वह कह सके—‘कि मेरा जीवन और मेरी सारी शक्ति संसार के सबसे पवित्र कार्य, मानव-जाति की भलाई में लगी थी।’ —**निकोलाई अस्तोवस्की**
- जीवन मेरे लिए छोटा-मोटा दीपक नहीं, एक बड़ी मशाल है, जो इस समय मेरे हाथ में महाकाल ने दी है और मैं चाहता हूँ कि इसके पहले कि मैं उसे अपनी अगली पीढ़ी को दूँ, वह अधिक से अधिक प्रकाश बिखेर दे। —**जार्ज बर्नार्ड शा**
- मनुष्य को मृत्यु से नहीं डरना चाहिए, हाँ, इस बात से जरूर डरना चाहिए कि कहीं वह अपनी सबसे बड़ी शक्ति, दूसरों के लिए प्राण देने की स्वतन्त्र इच्छाशक्ति को पहचाने बिना न मर जाये। —**स्वाइजर**
- विकार उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों में रहकर भी जिसका चरित्र विकारग्रस्त नहीं होता, वही वास्तविक धीर पुरुष है। —**कालियास**
- वर्तमान की साधना ही भविष्य को सफल बनाती है। जो इस समय अभी ही अपने लक्ष्य की ओर निर्दिष्ट मार्ग पर चल पड़ता है, वह सभी चिन्ताओं से मुक्त होकर निर्भय, आनन्दित और उल्लसित जीवन का अधिकारी बनता है। —**स्वामी विवेकानन्द**
- मनुष्य अपने आपको पहचानने से भगवान् को पहचान सकता है। मैं कौन हूँ ? भली-भाँति विचार करने पर मालूम होता है कि ‘मैं’ नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। हाथ, पैर, खून, मांस इत्यादि इनमें से ‘मैं’ कौन है ? जिस प्रकार प्याज का छिलका अलग करते-करते छिलका ही निकलता जाता है, शेष कुछ बचता

ही नहीं, उसी तरह विचार करने पर 'अपनत्व' के नाम से कुछ बचता नहीं, अन्त में जो कुछ रहता है, वही आत्मा या चैतन्य है। अहम् भाव दूर हो जाने पर भगवान के दर्शन होते हैं। मैं दो तरह का होता है। एक है पक्का 'मैं' और दूसरा कच्चा 'मैं'। मेरा मकान, मेरा घर, मेरा लड़का—यह सब कच्चा 'मैं' है और पक्का 'मैं' है—मैं उनका दास, मैं उनकी सन्तान और मैं वही नित्य-मुक्त-ज्ञान स्वरूप हूँ।

—रामकृष्ण परमहंस

- ज्ञानी ब्रह्म को जानना चाहता है। भक्त के लिए भगवान सर्वशक्तिमान, ऐश्वर्यपूर्ण भगवान है, परन्तु वास्तव में ब्रह्म और शक्ति अभिन्न हैं, वे ही सच्चिदानन्दमयी हैं। जैसे मणि और उसकी ज्योति। मणि की ज्योति कहने से ही मणि का बोध होता है और मणि कहने से ही उसकी ज्योति का। बिना मणि को सोचे उसकी ज्योति की धारणा नहीं हो सकती, वैसे ही बिना मणि की ज्योति का विचार किये—सोचे, मणि की भी धारणा नहीं हो सकती। एक ही सच्चिदानन्द की शक्ति के भेद से उपाधि-भेद होता है, इसलिए उनके विविध रूप होते हैं।

- तारा वह तो तुम्हीं हो। जहाँ कहीं कार्य (सृष्टि, स्थिति, प्रलय) है वही शक्ति है, परन्तु जल के हिलकोरे, बुलबुले आदि होने पर भी जल। सच्चिदानन्द ही आद्यशक्ति है—जो सृष्टि, स्थिति, प्रलय करती है। जैसे कप्तान कोई काम नहीं करते तब भी वही और जब वे लाट साहब के पास चले हैं, तब भी वही हैं। केवल उपाधि का भेद है।

—रामकृष्ण परमहंस

- हे सत्य, हे अन्तरात्मा के बीच निवास करने वाले अन्तर्हीन सत्य, सब कुछ—आप ही आप हैं। इस आत्मा में जो आप हैं, इसलिए फिर देश-काल, गम्भीरता-निविडता की कोई सीमा नहीं। यह आत्मा अनन्तकाल तक रहने वाली है, सत्यम् मन्त्र इसका द्योतक है। आप हैं और केवल आप ही हैं। आत्मा की अतल-स्पर्श गम्भीरता से यह मन्त्र निकलता है, मानो वह हमारे मन एवं संसार के अन्यान्य समस्त शब्दों को अपने में भरकर सबके ऊपर प्रकाशमान हैं। सत्य, सत्य। उसी सत्य में मुझे पहुँचा

दीजिए, हमारी उसी अन्तरात्मा के गूढ़तम अनन्त सत्य में, जहाँ आप हैं और कोई भी नहीं।

—रवीन्द्रनाथ टैगोर

- पारस को छूने से जब लोहा एक बार सोना बन जाता है, तब उसे भूमि में गाढ़ देने व कतवार में फेंक देने से वह सोना ही बना रहता है, फिर लोहा नहीं होता। इसी प्रकार से परमपिता परमात्मा की कृपा प्राप्त हो जाने पर जब एक बार हृदय शुद्ध हो जाता है, तब चाहे वह शहर में रहे या वन में एकान्तवास हो, उसका फिर कुछ भी नहीं बिगड़ सकता है।
- राजहंस दूध पीता है और पानी छोड़ देता है। दूसरे पक्षी ऐसा नहीं कर सकते। उसी प्रकार साधारणजन ईश्वर को प्राप्त नहीं कर पाते। केवल महान आत्माएँ ही माया को छोड़कर परमात्मा के दर्शन पाकर दैवीसुख का अनुभव करती हैं।

—रामकृष्ण परमहंस

- विश्वचेतना के आकार धारण करने की चेष्टा का नाम जीवन है और जीवन का लक्ष्य है सौन्दर्य।

—जयशंकर प्रसाद

- जीवन को सफल बनाने के लिए शिक्षा की जरूरत है डिग्री की नहीं, हमारी डिग्री है—हमारा सेवाभाव, हमारी नम्रता, हमारे जीवन की सरसता। अगर यह डिग्री नहीं मिली, अगर हमारी आत्मा जाग्रत न हुई, तो कागज की डिग्री व्यर्थ है।

—प्रेमचन्द

- उपासना में चरित्र द्वारा जो हम ग्रहण करते हैं, वही हमारा प्रधान खाद्य है। वहाँ चाञ्चल्य नहीं, वहाँ वैचित्र्य का अन्वेषण नहीं। वहाँ हम शान्त होते हैं, शुद्ध होते हैं और ईश्वर में प्रतिष्ठित होते हैं।

- जो साधक आत्मा में क्रीड़ा करता है, आत्मा में ही रमण करता है, फिर सामाजिक जीवन में क्रियाशील रहता है, वही ब्रह्मवेत्ताओं में वरिष्ठ माना जाता है।

—रवीन्द्रनाथ टैगोर

- भला काम करने का स्वभाव ऐसा साधन है, जिसे शत्रु छीन नहीं सकता, चुरा भी नहीं सकता।

—ओरिलियस

- कोई भी मूर्ख आलोचना कर सकता है, दोष दे सकता है और शिकायत कर सकता है। बहुत-से मूर्ख ऐसा ही करते हैं।

महापुरुष की महत्ता का पता इस बात से लगता है कि वह छोटे आदमियों के साथ किस रीति से व्यवहार करता है ? —*कालाङ्गल*

- घोड़ों की दोनों आँखों के सामने अँधेरी पहिनाए बिना उसे चलाया नहीं जा सकता। षड्रिपु (काम, क्रोध आदि) को भी ऐसा ही समझना चाहिए। उनको वश में किए बिना मनरूपी घोड़ा ईश्वर की दिशा में अग्रसर नहीं हो सकता। —*रामकृष्ण परमहंस*

- संसार में सब कुछ एक-सा नहीं रहता, बदलता रहता है, पर वह सब गणितीय नियम पर। इसका अर्थ है प्रकृति में कोई सचेतना विद्यमान है, वही पर्दे के भीतर से व्यवस्थाएँ जुटाती रहती है। —*गैलीलियो*

- मैं आत्मा की खेती करता हूँ। ज्ञान के हल से श्रद्धा के बीज बोता हूँ। मेरी इस खेती से अमरता की फसल लहलहाती है। —*महात्मा बुद्ध*

- जिसके चित्त में तरंगें उठती ही रहती हैं, वह सत्य के दर्शन कैसे कर सकता है ? चित्त में तरंग का उठना, समुद्र के तूफान जैसा है, तूफान में जो उस पर काबू रख सकता है, वह सलामत रहता है। ऐसे ही चित्त की अशान्ति में जो राम-नाम का आश्रय लेता है, वह जीत जाता है। —*महात्मा गाँधी*

- वह देह और आत्मा की भौति है। आनन्द अद्वैत की विश्व के साथ आत्मा की और परम प्रेमी के साथ विश्वात्मा के अद्वैत की सत्यता की अनुभूति है। —*रवीन्द्रनाथ टैगोर*

- न शरीर तट है, न मन तट है, उन दोनों के पीछे जो चैतन्य है, साक्षी है, द्रष्टा है, वह अपरिवर्तित नित्यबोध मात्र ही वास्तविक तट है, जो अपनी नौका को उस तट से बाँधते हैं, वे ही अमृत प्राप्त करते हैं। —*स्वामी विवेकानन्द*

- मनुष्य नित्य ही बहुत कुछ देखा करता है। जब जागता है देखता रहता, सोने पर भी देखता रहता है स्वप्न रूप में। यही क्यों जन्म-जन्मान्तरों से वह देखता चला आया है और आगे भी देखता रहेगा, किन्तु उसके देखने

की जिज्ञासा न कभी खत्म हुई और न आगे ही होगी। वह बहुत कुछ देखने पर भी और कुछ देखने की इच्छा रखेगा।

मेले में किसी बहुत बड़ी तस्वीरों की दुकान पर कोई जाता है। वह तस्वीरों के एक बहुत बड़े ढेर में से एक तस्वीर उठाता, देखता और रख देता है, इस प्रकार वह सैकड़ों-हजारों तस्वीरें देख लेने पर भी आगे देखना चाहता है क्यों ? इसलिए कि उसे अभी तक अपना अभीष्ट चित्र न दिख सका, पर जैसे ही उसे अभीष्ट चित्र मिल जाता है, वह तुप्त हो और आगे देखना बन्द कर देता है।

- ईश्वर तो कल्पवृक्ष है। वह सभी की इच्छा पूरी करेगा, किन्तु उससे माँगना पड़ेगा। संसारी के और सर्वत्यागी के ज्ञान में बड़ा अन्तर होता है। संसारी व्यक्ति का ज्ञान है—दिए का उजाला, जिससे घर के भीतर ही प्रकाश होता है—अपनी और घर की चीजों के सिवा और कुछ वह समझ नहीं पाता। सर्वत्यागी का ज्ञान सूर्य का प्रकाश है। उस प्रकाश में भीतर-बाहर सब चीजें दिख पड़ती हैं। —*रामकृष्ण परमहंस*

- “अन्य व्यक्ति को मारने के लिए तलवार, ढाल आदि शस्त्रों की आवश्यकता पड़ती है, पर अपने को मारना हो तो एक नहन्नी (नाखून काटने वाली) ही काफी होती है। इसी प्रकार जन-समाज को उपदेश देने के लिए मनुष्य को अनेक शास्त्रों के अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है, पर यदि स्वयं धर्म प्राप्त करना हो तो केवल एक ही धर्म-वाक्य के ऊपर विश्वास रखकर वैसा किया जा सकता है।”

“संसार में रहकर जो ईश्वर की साधना कर सकते हैं, वे ही सच्चे वीर कहे जा सकते हैं।”

“चकमक पत्थर चाहे सौ वर्ष तक जल में पड़ा रहे तो भी उसकी अग्नि नष्ट नहीं होती। उसे जल से निकालकर लोहे पर मारते ही चिनगारी निकलने लगती है। इसी प्रकार ईश्वर पर विश्वास रखने वाले व्यक्ति चाहे हजारों अपवित्र—संसारी लोगों के बीच में पड़े रहें, तो भी उनकी श्रद्धा और भक्ति में किसी प्रकार की कमी नहीं पड़ सकती।” —*रामकृष्ण परमहंस*

- पार्थिव जगत में मानव को जो सार्वभौमता प्राप्त हुई है, उसे आत्मा की शक्ति के द्वारा

ही नियन्त्रित किया जा सकता है। शुष्क विज्ञान मानवीय मूल्य की सहायता के बिना समाज का कल्याण नहीं कर सकता। विज्ञान सार्थक तभी हो सकता है, जब उसका प्रयोग करने वाले उच्च आदर्शों से प्रेरित हों। दूसरे शब्दों में, जैसे मनुज बाह्यजीवन में समृद्ध हुआ है वैसे ही जब तक वह अपने भीतर के जीवन को भी सम्बोधित और विकसित नहीं कर लेता, तब तक पृथ्वी पर सच्ची एकता, सहृदयता, प्रेम और सौंदर्य के स्वर्ग की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। यह केवल आध्यात्मिकता के विकास से ही हो सकती है। पाश्चात्य लोग इस सत्य का अनुभव करने लगे हैं, किन्तु उनकी चेतना इतनी बहिर्मुखी हो गई है कि आत्मा, भगवान, अमृतत्व पर उन्हें विश्वास नहीं हो पाता, लेकिन जब तक मनुष्य भगवान के शासन को स्वीकार नहीं करता, उसके जीवन में मधु वसन्त की बयार नहीं बह सकती।

—महायोगी अरविन्द

- ऊँचे पर्वतों पर एक मंदिर था। तीर्थयात्री लम्बी यात्राएँ करके उसके दर्शन को जाते और बड़ी श्रद्धा के साथ अपना मस्तक उसके दरवाजे पर धरते हुए श्रद्धा भरी पूजा की थाली अर्पित करते। मूर्ति ने यह सब देखा तो उसके अहंकार का ठिकाना न रहा। उसने मन ही मन कहा मेरे बिना मनुष्यों का उद्धार नहीं, वे मूर्ख जो मुझे पत्थर मारा करते हैं, यहाँ आकर मेरे गौरव को देखें कि मैं कितनी महान हूँ। मंदिर के गुम्बज में से कोई अदृश्य सत्ता हँस पड़ी। उसने कहा—री मूर्ख। तू रही पत्थर की पत्थर ही। मनुष्य तुझे पूजने नहीं आते वे तो अपने अन्तर के सत्य के आगे मस्तक झुकाने आते हैं। निकटतम सत्य को दूर जाकर पूजने की तो इनकी पुरानी आदत है। —बल्लातोल

- नौका जल में रह सकती है, किन्तु जल नौका में नहीं रहना चाहिए। उसी प्रकार साधक संसार में रहे, किन्तु संसार का माया-मोह साधक के भीतर न रहे।

—रामकृष्ण परमहंस

- माया किसे कहते हैं, यह जानते हो ? पिता, माता, भाई-बहिन, पुत्र, भानजी, भतीजी आदि आत्मीयजनों के प्रति प्रेम-भाव रखना माया है।

और सब भूतों (प्राणियों) के ऊपर समान प्रेम-भाव रखने का नाम दया है।

- इस स्थूल शरीर के लिए स्वास्थ्य का सुझाव दो तो वह शरीर निश्चय ही स्वस्थ हो जायगा। इस कारण शरीर को ईश्वरीय चेतना से भरने का संकल्प करो तो मनुष्य निश्चय ही भविष्य-वक्ता बन जाएगा। यदि इसमें गुलामी और कमजोरी के विचार आर्यें तो यह स्थूल शरीर निश्चय ही कमजोर और गुलाम बन जाएगा। मनुष्य बनाई हुई वस्तुओं का स्वयं कारीगर है, जितना कि वह अपने शरीर के लिए सभी वातावरण में उत्तरदायी है।

—स्वामी रामतीर्थ

- कर्म में रहकर ही हम कर्म से महान हो सकते हैं। परित्याग करके या पलायन करके किसी प्रकार भी यह सम्भव नहीं है।
- स्वयं जीवन की ही ऐसी शर्त रहती है कि, आत्मत्याग के कई अवसर इनसान की जिन्दगी में आएँ। बिना दूँढ़े ऐसे अवसर हमारे सामने आकर कितनी बार हमसे जवाब-तलब करने लगते हैं और कितनी बार हम उनसे बचकर निकल भागते हैं। यह कतराकर निकल भागना यों हमें बड़ा सुखद और सुरक्षाप्रद मालूम होता है, मगर यह कायरता ही नहीं, वांछनीय मौत है। जिन्दगी के आमन्त्रण को ठुकराकर हम वास्तव में अपनी ही खेती को सीमित करते हैं। जीवन की अनिश्चित अवधि एक लम्बे एवं उर्वर खेत के सिवा और क्या है ? संयोग से मिली जीवन की जितनी चुनौतियों से हम मुक्त जाते हैं, उतनी ही क्षति हम अपने पल्ले बाँध लेते हैं। इन चुनौतियों में कुछ तो महान प्रतीत होती हैं और कुछ बड़ी तुच्छ। किन्तु आत्मानन्द का सौरभ दोनों में एक ही होता है—कुम्हलाए गुलाब में और ताजे खिले गुलाब में इन एक ही होता है, जो फर्क नजर जाता है, वह मात्र भ्रम है।

—स्वाइत्जर

- मनुष्य जीने के लिए है और वह जीना भी चाहता है, जीता भी है, किन्तु क्या कोई यह कह सकता है कि वह ठीक से जीता है ? जीने से हमारा मतलब उल्लासपूर्ण जिन्दगी से रहता है।

- एक जिन्दगी, एक उल्लासपूर्ण जिन्दगी, एक प्राणपूर्ण जिन्दगी। वह जिन्दगी जो न केवल अपने लिए ही प्यारी हो, बल्कि और सब लोगों के लिए भी प्यारी हो।

किन्तु वह कौन-सी कला है कि इस प्रकार की उल्लासपूर्ण जिन्दगी जी जा सके ? यह कला एक बहुत ही साधारण कला है। उसके लिए न किसी तप की आवश्यकता है और न योग साधना आदि की। जीवन की सामान्य गति में ही उल्लासपूर्ण जिन्दगी की कला स्वयंसिद्ध हो जायेगी और वह कला है दूसरों के लिए जीना, केवल अपने लिए नहीं। जब दूसरों के लिए जीएँगे तो हमारी जिन्दगी दूसरों की हो जाएगी और बस उसको प्यार करने लगेंगे, जिससे सारे आनन्दों के द्वार खुल जाएँगे। —इलियट

- दूसरे का धनहरण करने में जो पंगु है, परनारी को कुदृष्टि से देखने में जो नेत्रहीन है, दूसरों की निन्दा करने में जो गूँगा है, वही संसार में सबका प्रिय पात्र होता है।
- संसार में श्रेष्ठ वही है जो संसार के अधीन होकर न रहे। इस संसार में घुसते जाना सरल है, लेकिन इससे निकलना ज्ञानी सत्पुरुष की सहायता बिना अति कठिन है।
- सत्पुरुषों का दर्शन अच्छा है। सत्पुरुषों की संगति सुखकर है। मूर्खों का दर्शन न होने से आदमी सुखी रहता है।
- बुद्ध की मृत्यु के समय उपस्थित शिष्य-समुदाय विलाप कर रहा था। साँसें फिर लौटीं। वे बोले—मेरे प्रति प्रीति दिखाने का यह तरीका नहीं। यदि तुम में से कोई सच्चा अनुयायी हो तो मेरे साथ रहे, सदा जीवन भर वही काम करते रहना चाहिए जो मैंने किया। इससे कम में प्रेम की सार्थकता बनी नहीं।
- महाप्रभु ईसा को जब भी ठहरना होता, पतितों और तिरस्कृतों के यहाँ ठहरते। सम्पन्न लोग उनका उपहास करते और कहते जब कुलीनों और सम्पन्नों के यहाँ ठहरने की आपको सुविधा है तो नीच लोगों के यहाँ क्यों डेरा डालते हैं ? ईसा कहते रोगियों के यहाँ ही चिकित्सक को जाना चाहिए। जो नीरोग हैं, उनके यहाँ उनका जाना व्यर्थ है।

- जब तुम उन्नति का उद्योग कर रहे हो तो बड़ों के साथ रहो और जब शिखर पर पहुँच जाओ तो छोटे मनुष्यों के साथ रहो।

- भारतीय संस्कृति के प्रवाह का उद्गम वे चिरन्तर, शाश्वत और सनातन सत्य रहे हैं, जिनकी अनुभूति प्रतिभा-सम्पन्न आर्य जाति के ऋषियों ने अपने तप के द्वारा की थी।

- वे सन्मुष्टाः शुक्तिपरा मङ्गल्यते मङ्गल्यताः।

धर्म पंचानमासुस्तानुपास्य पृथक् च॥

धर्म मार्ग पर चलने में यदि कोई शंका, सन्देह उत्पन्न हो तो वेदाभ्यासी, महात्मा, सन्तोषी शक्तिसम्पन्न जिनका जीवन ही धर्माचरण पर आधारित है, उनका आश्रय और मार्गदर्शन प्राप्त कर धर्म में प्रवृत्त हो।

- न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वत्रात्मिदं जगत्।

ब्रह्मणा पूर्वं सृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम्॥

मनुष्य और वर्णों में कोई अन्तर, विशेषता नहीं, क्योंकि यह सब एक ही ब्रह्म द्वारा रचे हैं, विभिन्नता, पृथकता, वर्ण-भेद केवल कर्म के आधार पर दिखाई देते हैं।

- सत्यमेकजतं यस्य दया दीनेषु सर्वदा। कामक्रोधी वशी यस्य साधुः तत् कथ्यते बुधैः॥

सत्यव्रती, दीनों पर दया करने वाले, काम, क्रोध को वश में रखने वाले को ही विद्वान साधु कहते हैं।

- यथाशक्ति चिकीर्षन्ति, यथाशक्ति च कुर्वन्ते।

न किञ्चिदयमन्यन्ते, नराः पण्डितबुद्धयः॥

जो मनुष्य शक्ति के अनुसार इच्छा करते हैं, शक्ति के अनुकूल काम करते हैं और किसी का निरादर नहीं करते वे मनुष्य पण्डित बुद्धि होते हैं।

- स्वां श्रीमान् मदं कुर्यान्त सुखी तृण्योऽपि सः।

तन्मित्रं यत्र विश्वासः पुरुष स जितेन्द्रियः॥

लक्ष्मी वही श्रेष्ठ है जिसमें मद न हो, सुखी वही है, जिसने तृष्णा को जीत लिया है, मित्र वही जिसमें विश्वास है और पुरुष वही है जो जितेन्द्रिय है।

- यदायानसंभतेमाननाईस्तदासर्वजीवतिजीवसोके।

यदायानसंभतेमहर्षीतदाजीवन्मृतइत्युच्यतेसः॥

—महाभारत कर्णपर्व ६६। ८१

जब तक सम्माननीय व्यक्ति मानपूर्वक संसार में जीवित है तभी तक वह जीवित है। जब

उसका तिरस्कार होने लगा तो वह जीवित ही मृतक के समान है।

- सच्चा बलिदान सदा दूसरों के लिये मरने से होता है। उसमें न तो नफा-नुकसान का हिसाब होता है, न किसी बदले की आशा रखी जाती है और न किसी तरह की निराशा या पछतावे के लिए कोई गुञ्जाइश रहती है।

—बल्लभ भाई पटेल

- अनुभवति हि मूर्ध्ना पावपस्तीप्रमुञ्चं ।
क्षमयति परित्यापं छायाया संश्रितानाम् ॥

—कालिदास

वृक्ष अपने सिर पर गर्मी सहन करके भी अन्य प्राणियों को अपनी छाया में आश्रय देकर गर्मी से बचाता है।

- शत्रुओं से बचो पर मित्रों से सावधान रहो।
- भाषा मनुष्य की तरह अपूर्ण ही है। वह कृतार्थ वहाँ है, जहाँ बस संकेत करती है, वह सत्य को साग्रह देती नहीं, केवल साभार लेना वाहती है।

—जैनेन्द्र

- ऐ भारत ! क्या दूसरों की हों में हों मिलाकर, दूसरों की ही नकल कर, दूसरों का ही मुँह ताककर इसी घृणित, जघन्य निष्ठुरता, इसी दासों की सी दुर्बलता से तुम बड़े अधिकार प्राप्त कर सकोगे ? क्या इसी निन्दनीय कापुरुषता से तुम वीरभोग्य स्वाधीनता लाभ करोगे ?

ऐ भारत ! यह न भूलना कि तुम्हारी स्त्रियों का आदर्श सीता, सावित्री, दमयन्ती है, यह न भूलना कि तुम्हारे उपास्य सर्वत्यागी उमानाथ शंकर हैं, यह स्मरण रखना है कि तुम्हारा विवाह, तुम्हारा धन और तुम्हारा जीवन इन्द्रिय-सुख के लिए—अपने व्यक्तिगत सुख के लिए नहीं, यह न भूलना कि जन्म से ही 'माता' के लिए बलिस्वर पर रखे गये हो।

यह न भूलना कि तुम्हारा समाज उस विराट महामाया की छाया मात्र है और यह भी न भूल जाना कि नीच, मूर्ख, दरिद्र, चमार और मेहतर तुम्हारा रक्त हैं तुम्हारे भाई हैं।

ऐ वीर, साहस का अवलम्बन करो। गर्व से कहो कि मैं भारतवासी हूँ और प्रत्येक भारतवासी मेरे भाई हैं। भारत के दीन-दुखियों के साथ एक होकर गर्व से पुकारकर

कहो—प्रत्येक भारतवासी मेरा है, भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत की देव-देवियाँ मेरे ईश्वर हैं, भारत का समाज मेरे बचपन का झूला, जवानी की फुलवारी और बुढ़ापे की आशा है। भाई कहो कि भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है, भारत के कल्याण में मेरा कल्याण है और रात-दिन तुम्हारी यही रट लगी रहे—

हे गौरीनाथ, हे जगदम्बे, मुझे मनुष्यत्व दो।
मेरी दुर्बलता और कापुरुषता दूर करा दो।
मैं मुझे मनुष्य बना दो।

—स्वामी विवेकानन्द

- हजरत मुहम्मद साहब अक्सर दुआ (प्रार्थना) में फरमाया करते थे—“खुदाबन्द ! मुझे गरीब के साथ जिन्दा रख, गरीब के साथ उठा और गरीबों ही के साथ मेरा हश्न कर।” हजरत आयशा ने पूछा “या रसूल अल्लाह ! क्यों ?” उन्होंने उत्तर दिया—“ऐ आयशा ! किसी गरीब को अपने दरवाजे से मायूस यानी बिना कुछ दिए न फेरोगी, छुआरे का एक टुकड़ा ही क्यों न हो ? ऐ आयशा ! गरीबों से मुहब्बत रखो और इनको अपने से नजदीक करो तो खुदा भी तुमको अपने से नजदीक करेगा।”

- एक बार एक आदमी ने हजरत मुहम्मद साहब से मिलने की इजाजत चाही। आपने फरमाया—“अच्छा आने दो !” वह अपने कबीले का अच्छा आदमी नहीं है। लेकिन जब वह आपकी खिदमत में हाजिर हुआ तो आपने निहायत नरमी के साथ उससे बात-चीत की। हजरत आयशा को इस पर ताज्जुब हुआ। उन्होंने पूछा या रसूल अल्लाह ! आप तो इसको अच्छा नहीं समझते थे, फिर ऐसी नरमी और प्रेम के साथ आपने उससे बातें की ? आपने फरमाया—खुदा के नजदीक सबसे बुरा शख्स वह है जिसकी बदजुबानी की बजह से लोग इससे मिलना-जुलना छोड़ दें।

- हे प्रभु ! तू अपने वचन के अनुसार मुझे सँभाल, मुझको झूठ के मार्ग से दूर कर और करुणा करके अपनी व्यवस्था मुझे दे, मैंने सच्चाई का मार्ग चुन लिया है। तेरे नियमों की ओर मैं चित्त लगाये रहता हूँ, मैं तेरी चेतावनियों में लवलीन हूँ।

- मुझे मनुष्यों के अँधेरे से छुड़ा ले। तब मैं तेरे उपदेशों को मानूँगा। अपने दास पर अपने मुख का प्रकाश चमका और अपनी विधियाँ मुझे सिखा। मेरी आँखों से जो यह धारा बहती रहती है कि लोग तेरी व्यवस्था को नहीं मानते।
- उत्तम हो कि मेरा चाल-चलन तेरी आज्ञाओं के मानने के लिए दृढ़ हो जाए। जब मैं तेरी सब आज्ञाओं की ओर चित्त लगाये रहूँगा, तब मेरी आशा न टूटेगी। जब मैं तेरे धर्ममय नियमों को सीखूँगा, तब तेरा धन्यवाद सीधे मन से करूँगा।
- मैं सारे मन से तेरी खोज में लगा हूँ। मुझे अपनी आज्ञाओं की बाट से भटकने न दे। मैंने तेरे वचन को अपने हृदय में रख छोड़ा है कि तेरे विरुद्ध पाप न करूँ।
- धन्य हैं वे जिनका मन अहंकाररहित है, क्यों स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है ? धन्य हैं वे जो अपनी भूलों के लिए पश्चात्ताप करते हैं, क्योंकि वे शान्ति पायेंगे। धन्य हैं वे जो नम्र हैं, क्योंकि वे पृथ्वी के अधिकारी होंगे। धन्य हैं वे जिन्हें धर्म की क्षुधा और पिपासा है, क्योंकि तृप्त किये जावेंगे। धन्य हैं वे जो दयावान हैं, क्योंकि उन पर दया की जाएगी। धन्य हैं वे जिनके हृदय पवित्र हैं क्योंकि वे परमेश्वर का दर्शन करेंगे। धन्य हैं वे जो ऐक्य का प्रचार करते हैं, क्योंकि वे परमेश्वर के सच्चे पुत्र कहलावेंगे। धन्य हैं, वे जो धर्म के लिए कष्ट सहते हैं, क्योंकि स्वर्ग पर उन्हीं का अधिकार होगा।
- दुनियादार कहते हैं—जैसे को तैसा, लात का जवाब लात और धूँसे का धूँसा, पर मैं तुमसे कहता हूँ कि दुष्टों से भी बदला मत लो, जो तुम्हारे दाहिने गाल पर थप्पड़ मारे उसकी ओर दूसरा गाल फेर दो। जो तुम्हारा कुर्ता लेना चाहे उसे अपना लिहाफ भी दे दो। जो तुमसे कोसभर बेगार लेना चाहे उसके साथ दो कोस चले जाओ। जो तुमसे माँगे उसे दे दो। ऋण बाँटने में मुँह न मोड़ो।
- लोग कहते हैं कि मित्र से मित्रता करो, शत्रु से द्वेष, पर मैं तुम से कहता हूँ कि अपने

बैरियों से प्रेम रखना और सताने वालों के लिये प्रार्थना करना, इससे तुम परमात्मा की श्रेष्ठ सन्तान सिद्ध होगे, तुम्हारा पिता धर्मी और अधर्मी दोनों के यहाँ मेह बरसाता है, सूर्य भले और बुरे दोनों पर ही उदय होता है। यदि तुम अपने मित्रों से ही प्रेम करो तो नीचे लोगों में और तुममें क्या अन्तर रह जाएगा ? यदि तुम अपने भाइयों को ही नमस्कार करो तो क्या बड़ा काम करोगे ? ऐसा तो सब कोई करता है। तुम्हें ऐसा ही उदार बनाना चाहिए, जैसा कि परमपिता परमात्मा है। —महात्मा ईसा

- संकल्प ही संसार में अमोघ शक्ति है। दृढ़ इच्छाशक्ति वाले पुरुषों के शरीर से मानो एक प्रकार का तेज निकला करता है और उनका मन जिस अवस्था में रहता है वैसा ही वे दूसरे के मन को भी बना देते हैं और जब एक शक्तिशाली पुरुष की शक्ति से बहुत लोगों के भीतर एक ही प्रकार का भाव उत्पन्न होता है, तभी हम शक्तिशाली होते हैं। आप सब लोग एक अन्तःकरण के हो जाइए क्योंकि प्राचीनकाल में देवता लोग एक मन होने से ही अपना भाग प्राप्त करने में समर्थ हुए थे। आप आर्य, द्रविण, ब्राह्मण, अब्राह्मण आदि तुच्छ विषयों को लेकर विवाद में फँसे रहेंगे उतना ही भावी भारत के उपयुक्त शक्ति-संग्रह से बहुत दूर रहेंगे। भारत का भविष्य एक बात पर निर्भर करता है, वह है—एकता।

—स्वामी विवेकानन्द

- यह एक बड़े सौभाग्य की बात है किसी मनुष्य को महान पुरुषों का सत्संग प्रेम या समीप रहना प्राप्त हो। योग्य व्यक्तियों को तुमने यदि अपना बना लिया, तो सचमुच तुमने एक शक्ति सम्पादित कर ली, जो बहुत मूल्यवान और महत्त्वपूर्ण है। तुम ऐसे व्यक्तियों को प्रेमपात्र बनाने का सदैव प्रयत्न-सहायता कर सकते हैं और बुराइयों से बचाने की एवं निराशा में आशा का संचार करने की क्षमता रखते हैं।
- खुशामदी और चापलूसों से घिर जाना आसान है। मतलबी दोस्त तो पलभर में इकट्ठे हो सकते हैं, पर ऐसे व्यक्तियों का मिलना कठिन है, जो कटु समालोचना कर सकें, जो खरी सलाह दे सकें, फटकार सकें और खतरों से

सावधान कर सकें। राजा और साहूकारों की मित्रता उन धार्मिक पुरुषों की है, जिनकी आत्मा महान है। जिसके पास पूँजी नहीं है, वह कैसा व्यापारी ? जिसके पास सच्चे मित्र नहीं वह कैसा बुद्धिमान ? उन्नति के साधनों में इस बात का बड़ा मूल्य है कि मनुष्य के श्रेष्ठ मित्रों का सहयोग प्राप्त हो। बहुत-से शत्रु उत्पन्न कर लेना मूर्खता है, पर उससे भी बढ़कर मूर्खता यह है कि भले व्यक्तियों की मित्रता को छोड़ दिया जाय।

- निर्मल बुद्धि और श्रम में श्रद्धा यही दो वस्तुएँ तो किसी मनुष्य को महान बनाने वाली हैं। उत्तम गुणों को अपनाने से नीच ऊँचे बन सकते हैं और दुर्गुणों के द्वारा बड़े छोटे हो जाते हैं। निरन्तर की लगन, सावधानी समय का सदुपयोग छोटे को बड़ा बना सकते हैं, हीन मनुष्यों को कुलीन कर सकते हैं।

—सन्त तिष्ठन्त्युपर

- सत्संग-प्रेमी सज्जन व्यवहार बुद्धि के लिए निरन्तर विवेकपूर्वक सावधान रहते हैं। सतोगुणी प्रकृति दृढ़ रहने के लिए दूषित संग और तमोगुणी व रजोगुणी आहार नहीं करते हैं। अशुद्ध विचारों का निरन्तर सज्जन रहकर विरोध एवं परित्याग करते हुए शुद्ध सात्त्विक विचारों को ही अपने मन व मस्तिष्क में स्थान देते हैं।
- सत्संगी सदा शान्त, प्रसन्नचित्त, उत्साही, गम्भीर और दुःखों के बीच में सहनशील और निर्भय रहता है।
- सत्संगी को मोह नहीं होता, प्रेम होता है। मोही वह है, जो अपना सुख चाहता है। प्रेमी वह है जो प्रेमास्पद को ही सुखी देखने के लिए सब कुछ करता है।
- सत्संगी किसी सम्बन्धी की मृत्यु में रोता नहीं, लेकिन किसी के दुःख में उसे बहुत दुःख होता है और दुःखी के दुःख-निवारण के लिए उसके सभी प्रयत्न या कर्म होते हैं।
- सत्संगी में गरीबों व दुःखियों की सेवा के लिए तन, मन, धन से तत्परता रहती है। रात-दिन, जाड़ा-गर्मी, वर्षा आदि द्वाँडों में भी सेवा के अवसरों में आलस्य या प्रमाद नहीं रहता। पापीजनों से भी घृणा नहीं होती।

- सत्संगी किसी की निन्दा नहीं करता और निन्दा करने वालों से बहुत बचता है, लेकिन अपनी निन्दा तथा अपने निन्दकों से विरोध या द्वेष नहीं करता, क्योंकि अपनी निन्दा से सत्संगी की बहुत उन्नति होती है, कई सद्गुणों का अभ्यास दृढ़ होता है, विनम्रता, सहनशीलता और निरभिमान आदि सद्भाव पुष्ट होते हैं।

- सत्संगी अपनी सेवा नहीं कराता, बल्कि सेवा करता है। कभी-कभी दूसरों की प्रसन्नता के लिए, भाव विकास के लिए ही दूसरों की भी अपने प्रति सेवा का अवसर दे देता है।

- प्रातः काल उठकर निम्न चार बातों का स्मरण करो—

(१) हम उस इष्टदेव की शरण हैं, जो सृष्टि-मात्र के समस्त सम्प्रदायों का एकमात्र आधार है। —उस इष्टदेव का नाम है 'प्रेम'

(२) हम उस गुरु की वन्दना करते हैं, जिसका किसी भी प्राणी से विरोध नहीं है।

—उस गुरुदेव का नाम है 'ज्ञान'

(३) हम उस पिता को धन्यवाद देते हैं, जिसने इस शरीर को कर्तव्य की वेदी पर बलिदान हो जाने की शिक्षा दी है।

—उस पिता का नाम है 'धर्म'

(४) हम उस माता के सदैव ऋणी हैं, जिसकी गोद में हमें कोई भी सांसारिक क्लेश, पीड़ा नहीं दे सकते। —उस माता का नाम है 'शान्ति'

- रात्रि को सोते समय निम्न चार बातों का स्मरण करो—

(१) हम उस रात्रि में हैं, कि जिसने समस्त चराचर पर अपना मोहन मन्त्र डाल रखा है।

—उस रात्रि का नाम है 'प्रकृति'

(२) हम उस निद्रा का आह्वान कर रहे हैं, कि जो जाग्रत अवस्था में भी, हमको हमारा पता नहीं देती। —इस निद्रा का नाम है 'समाधि'

(३) हम वह स्वप्न देखना चाहते हैं, कि जिसमें यह जगत् भी स्वप्न ही नजर आता है।

—उस स्वप्न का नाम है 'अनुभव'

(४) हमें उस आलस्य की प्रतिज्ञा है, कि जिसे प्राप्त करके मनुष्य किसी से बोलना भी नहीं चाहता।

—उसका नाम है 'सन्तोष'

—गोस्वामी श्री विन्नुजी

- “इतने हमारे, बाकी हमारे नहीं” जब यह अलगावन वाली बात आ जाती है तब धर्म, अधर्म बन जाता है।
- धर्म में व्यापक वृद्धि होती है, धर्म विराट और सम्प्रदाय संकीर्ण होता है। हम कह चुके हैं विचार जब मिट जाता है, तो उसका सम्प्रदाय बन जाता है। धर्म में संकीर्णता, सम्प्रदायों में संघर्ष होता है, धर्म संघर्ष के लिए नहीं है। मनुष्य से मनुष्य को मिलाने के लिए है।
- पूछा जाएगा कि अधर्म क्यों धर्म के रूप में आता है ? बात साफ है, आयेगा तो भगवान के नाम से ही आयेगा। शैतान का अपना स्वरूप इतना भद्दा है कि वह भगवान का ही नाम-रूप लेगा। इसलिए दुनिया धर्म है, जिनके कारण विरोध होता है, सत्य नहीं होता, वे सब अधर्म हैं।
- “उत्तिष्ठत, जाग्रत ।” उत्थान करो, जाग्रत होओ—यह श्रुति का आदेश है। परम पिता का हरेक के अन्तःस्थल में गूँज रहा उद्घोष है। इसे हममें से किसने सुना, किसने नहीं, पता नहीं किन्तु यह वाक्य बार-बार गूँजा है और इसने हमारे अन्तर्कपाटों को हर बार खटखटाया है। संसार में प्रायः हर बाधा ने, हर दुःख ने, हर विच्छेद ने शत-शत बार हमारी अन्तरात्मा की तंत्रिकाओं को आघात कर झंकृत किया है और उससे केवल एक ही वाणी निकली है—“उत्थान करो, जाग्रत होओ ।” हमारे अपने नवजागरण के लिए अन्तः में प्रतिष्ठित वह आत्म-देव निखिल अनिमेष नेत्रों से प्रतीक्षा कर रहा है कि कब वह प्रभा आयेगी और कब रात्रि का अन्धकार दूर होकर हमारे अपूर्ण विकास को निर्मल नवोदिन आलोक से प्रकाशमान-उदीयमान कर देगा। पुष्प को प्रभात होते ही कहना नहीं पड़ता कि रजनी गयी, प्रभात हो गया-तुम अब प्रस्फुटित होओ। यह आत्म-विस्तार की एक सहज प्रेरणा है, जो पुष्प को प्रफुल्लित-विकसित कर देती है। मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जो सोचता है कि क्यों नहीं विश्वव्यापी आनन्द किरण वर्षा से, ऐसी ही स्वाभाविकता से वह भी विकसित हो उठता ? क्यों अपनी पंखुड़ियों को संकुचित किये बैठा है ? प्रभातकालीन सूर्य से लेकर

प्रकृति का कण-कण—निखिल जगत प्रतिक्षण हमसे कहता है—अपने को विकसित करो—अपने आपे का समर्पण करो, अपने स्वार्थों की ओर से मुँह मोड़कर एक बार विश्व-वसुधा की ओर भी देखो, इस सुख-दुःख से भरे विचित्र संसार में अचिन्त्य, अगोचर ब्रह्मसत्ता के प्रति अपने आपको अर्पित कर दो।

- संकट एवं विग्रह बादलों की तरह आते और चले जाते हैं। वैभव का भी कोई ठिकाना नहीं वह हँसोड़ों की तरह आँख-मिचौनी खेलता और अँगूठा दिखाकर, जब चाहे तब भाग खड़ा होता है। खुद जीवन-प्रवाह तक तो अस्थिर है। बबूले की तरह जो अभी-अभी उछलता-फुदकता था, वह अपना अस्तित्व खोकर न जाने कहाँ चला जाता है ? जो दिखता है, वह अन्धड़ों की तरह प्रवाह मात्र है। लहरों को मिलाने वाले बालक की तरह संव्याप्त चंचलता को आश्चर्यचकित, हतप्रभ होकर देखना पड़ता है। यहाँ समस्त गुत्थियाँ अनसुलझी और समस्त पहेलियाँ अनबूझ ही बनी रहती हैं।

इस ध्यानमान अन्तरिक्ष में सुस्थिर ध्रुवतारा एक ही है वह है—धर्म। धर्म अर्थात् कर्तव्य, फर्ज, चट्टान से बँधी नाव, नदी के उफ़ान में भी यथास्थान खड़ी रहती है। पहाड़ों को अन्धड़ भी नहीं गिरा पाते। जिसने अपनी निष्ठा कर्तव्य के साथ बाँध ली, उसे किसी खतरे से पराजित नहीं होना पड़ता। धरती सदी और गर्मी शान्तिपूर्वक सहती है। निष्ठावान जिन्दगी न संकट के सामने झुकती है, न वैभव उन्मत्त होती है। इस सर्वव्यापी असत् में एक ईश्वर ही सत् है। इस प्रवाह में एक धर्म ही स्थिर है। जो सत् को पकड़ता है और स्थिर रहता है, वही जीवन की ऐसा जीता है, जैसा जिया जाना चाहिए।

- तुम पेट को भोजन देते हो, पर देखो कान को भी भोजन दे देना। पेट भूखा रहेगा तो शरीर क्षीण होगा और कान भूखे रहेंगे तो बुद्धि मन्द हो जाएगी। श्रेष्ठ पुरुषों के अभिवचन सुनने का जब अवसर आवे तो अन्य कार्यों को छोड़कर भी वहाँ पहुँचो, क्योंकि उनके वचन तुम्हें वह वस्तु दे सकते हैं, जो रुपया-पैसा की अपेक्षा हजारों गुनी अधिक मूल्यवान होगी।

- जो लोग जीभ से अच्छा खाने में तो कुशल हैं, पर कानों से सदुपदेश सुनने का आनन्द नहीं जानते, उन्हें बहरा ही कहना चाहिए। ऐसों का जीना और मर जाना एक समान है।
- जिन्होंने बहुत सदुपदेश सुने हैं, इस पृथ्वी पर देवता रूप हैं। धर्मात्मा मनुष्यों की शिक्षा एक सुदृढ़ लाठी के समान है, जो सहारा देती रही है और बुरे अवसर पर गिरने से बचा लेती है। अशिक्षित लोग भी धर्मात्माओं के सत्संग से उतनी शक्ति प्राप्त कर लेते हैं, जिससे अपने को सँभाल सकें और विपत्ति के समय पैरों पर खड़े रहें।
- जो शक्ति अपराध के द्वारा प्राप्त की जाती है, उसका उपयोग किसी भी भले काम की साधना में नहीं के बराबर होता है। —टेलीटस
- क्रोध को छोड़ दे। घमंड को नष्ट कर दें। सब बन्धनों को काट दें। जो नाम और रूप से नहीं चिपटता और जो किसी को अपना नहीं कहता उसको दुःख नहीं सताता।
- क्रोध को प्रेम से जीते, दुष्ट को भलाई से जीते, लोभी को दान से जीते, झूठ को सत्य से जीते। —क्रोध बग्गो
- कुकर्मियों के कारण मत कुढ़। कुटिल काम करने वालों के विषय में डाह न कर, क्योंकि वे घास की भाँति मुझा जाएँगे। —भजन संहिता ३७/ १। २
- उलीचो, उलीचो, इस नाव को उलीचो। उलीचने में तुम्हारी यह नाव हल्की हो जाएगी और तभी जल्दी-जल्दी चलेगी। राग और द्वेष का छेदन करके ही तुम निर्वाण पद पा सकोगे। —धम्मपड
- एक दिन शील और ज्ञान के जीना सौ वर्ष के दुःशील और असमाहि जीने से अच्छा है। —सहस्रबग्गो
- जिसके हाथ में घाव नहीं है, वह उस हाथ में विष रख सकता है। जिसके मन में स्वार्थ नहीं उसके लिए कुछ भी विष अर्थात् पाप नहीं है। —पापबग्गो
- जो शुद्ध, पवित्र, निर्दोष, पुरुष को दुःख देता है, पाप उसी मूर्ख को लगता है। जैसे वायु की ओर फेंकी हुई धूलि अपने ही ऊपर आ पड़ती है। —पापबग्गो
- संसार उसे प्यार करता है जो शीलवान है, ज्ञानी है, धर्मात्मा है, सत्यवादी है और अपने निश्चित कार्य में लगा रहता है। —पियबग्गो
- सच बोलें, क्रोध न करें, जरूरतमंद को अपनी वस्तुएँ दे दें, इन तीन बातों से मनुष्य देवताओं के निकट स्थान पाता है। —क्रोधबग्गो
- काया को कोप से बचा, काया को संयम में रख, काया को दुराचार से निकाल और काया से अच्छे काम कर। —क्रोधबग्गो
- अपने को जीतने वाला समस्त प्रजा को जीतने वाले से अच्छा है। जो पुरुष आत्मजित और नियमित आचार का है, उसकी विजय को कोई पराजित नहीं कर सकता। न देव, न गंधर्व न और न ब्रह्मा। —सहस्रबग्गो
- धीर, बुद्धिमान, शिक्षित, सदाचारी और श्रेष्ठ पुरुषों का संग करो। जिस प्रकार चन्द्रमा नक्षत्रों के मार्ग पर चलता है, इसी प्रकार सतपुरुष और ज्ञान का अनुसरण करो। —सुख बग्गो
- यह मन ताको बीजिये, मुठि सेवक भल सोइ। सिर ऊपर अबरा सहै, तऊ न दूजा होइ।। प्रेम हजारी कापड़ा, तामें भैल न समाइ। साखी कासी कांबली, भावै तहाँ बिछाइ।। प्रेम बियोगी तन बिकल, ताहिन न भीन्हें कोइ। तंबोली के पान ज्यों, दिन-दिन पीला होइ।। जिहि हिरदै हरि आइयों, सो ब्यू छांना होइ। जतन-जतन कर दाविये, तऊ उजाला होइ।। —सन्त कबीर
- एक भारी भूल की अपेक्षा धर्म-सत्य बात अधिक भयंकर होती है। —डॉ. भगवानदास
- सत्य के मार्ग पर चलो और तब तुम्हें अपनी सारी कठिनाइयाँ सरल मालूम होने लगेंगी। —मोहम्मदसाहब
- काम की अधिकता नहीं, अनियमितता आदमी को मार डालती है। —महात्मा गाँधी
- वे समस्त महान कार्य इच्छित मार्ग पर चले जाते हैं, जो अपनी कमियों के होते हुए भी भलीप्रकार प्रारम्भ होते हैं। —मैसिंजर

३.२३ विचारसार एवं सुक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

- हमारा सबसे बड़ा काम, निश्चित रूप से यह नहीं है कि दूर की धुँधली वस्तु को देखें, किन्तु जो चीज साफ-साफ पास ही दिखाई देती है उसे करें। —कालाङ्गल
- रहने का तरीका साधारण और विचारों में उच्चता होनी चाहिए। —मिल्टन
- हम सभी ईश्वर से दया की प्रार्थना करते हैं और वही प्रार्थना हमें दूसरों पर दया करना भी सिखाती है। —शेक्सपियर
- प्रत्येक कार्य में यह गुंजायश होती है कि उससे बढ़कर कार्य किया जा सके। —एमर्सन
- कर्तव्य-पालन करने में ही संसार की सर्वोच्च प्रसन्नता विद्यमान है। —कम्प्यूशियस
- देने वाला ही सब कुछ पाता है, न देने वाला तो अपना भी सड़ाकर नष्ट कर देता है। —कम्प्यूशियस
- सज्जनों और विचारशील लोगों द्वारा अपनी भूल स्वीकार की जाना सरल है। उनके द्वारा आत्म-सुधार भी सम्भव है, किन्तु दुष्ट प्रकृति के व्यक्ति कड़ाई से ही नवते और दंड से ही सुधरते हैं। —वाणक्य
- भावना ही मनुष्य का जीवन है, पर उसे इतना निर्बल न बनने दो कि आततायी भी सता जाये। —लेटो
- हे भिक्षुओ जब तक तुम संयमी रहोगे, मित्र भाव रखोगे, मिल-बाँटकर खाओगे, सत्य और धर्म पर दृढ़ रहोगे, तब तक असीम विपत्तियाँ आने पर भी तुम्हारी पराजय नहीं होगी। —महात्मा बुद्ध
- शुभ कार्य करने में शीघ्रता करो, ऐसा न हो जुबान बन्द हो जाय, हिचकियाँ आने लगेँ और शक्ति जवाब दे जावे।
- शुभ कार्य को अपने हाथों से शीघ्र करो किसी और का मुँह देखना और पीछे की आशा करना झूठ है।
- हर मनुष्य एक नदी के समान है, जो अपनी ही गति में बहता चला जा रहा है। इन सब नदियों की गति में गति मिलाकर चल सकना असम्भव है और इनके विपरीत बहना भी।

तब क्या किया जाय ? बहना तो है ही। हाँ बहना है और अवश्य बहना है। बिना बहे काम भी तो नहीं चल सकता। इसका एक आसान रास्ता यही है कि न तो किसी की गति में गति मिलाई जाये और न किसी की गति के विपरीत अपना बहाव चलाया जाय। सभी नदियों के प्रवाह से अपने अनुरूप गति लेकर नई, एक अलग गति का सृजन करना चाहिए, जिससे कोई भी नदी हमें गति का चोर न कह सके और न किसी से संघर्ष हो।

अपनी इस निर्मित गति से बहे चलो, बहे चलो और पहुँच जाओगे अपने अभीष्ट स्थान पर।

—कगवा

- अतीत एक तथ्य है, वर्तमान अस्थिर है और भविष्य अज्ञात। अज्ञात से कुछ लोगों को डर लगता है इसलिए वे वर्तमान से चिपके रहना चाहते हैं या बीते को वापस लाना चाहते हैं, किन्तु प्रकृति के नियम और काल के क्रम के विपरीत काम करने वाले सफल नहीं हो सकते।

भविष्य से डरिये मत, बल्कि उसके निर्माण में रुचि लीजिए। सँजोये सपनों को सँवारिए, कल्पना को कर्म से गढ़िए और योजना को युक्ति से पूरा कीजिए। —वीनदयाल उपाध्याय

- आत्म-विश्वास तथा दृढ़-निश्चय के द्वारा मनुष्य की सब कठिनाइयाँ सरल बन जाती हैं।

—मदनमोहन मालवीय

- जिस शिक्षा-दीक्षा ने हमको अमानुष बना दिया है, उसे नष्ट करके ही हम मनुष्य बन सकेंगे।

—देशबन्धु चितरंजनदास

- दैवी ज्ञान हुए बिना मनुष्य को अपनी कीमत नहीं मालूम होती और इसलिए अपने विषय में वह औरों से जानना चाहता है, जबकि अपने सम्बन्ध में वह अपनी आत्मा से विश्वस्त किन्तु दृढ़तापूर्वक जानकारी कर सकता है। सांसारिक दृश्य पर देव मोहित नहीं होते, क्योंकि निरन्तर अन्तर्दृष्टि रखने के कारण उन्हें अपने भीतर ही उससे अधिक महत्वपूर्ण चीजें मिल जाती हैं।

—महर्षि रमण

- हमें मिलकर सोचने की आदत उत्पन्न करनी चाहिए।

- धर्मशास्त्रों में मातृ-भूमि को परमपूजनीय बतलाया है। जो धर्म के रहस्य को समझते हैं वे अपने हृदय में यह विश्वास करते हैं कि अपनी मातृ-भूमि से प्रेम करना ही धर्म का सबसे छोटा और सबसे बड़ा अंग है।

—महायोगी अरविन्द

- ब्राह्मण जो कुछ भी जानते हैं, उसे सिखाकर, जो ज्ञान अनुभव उन्होंने प्राप्त किये हैं उसे दान देकर, भारतवासियों को उन्नत बनाने में सचेष्ट रहें। सांसारिक कार्यों में लगे रहना यथार्थ ब्राह्मण का कार्य नहीं है।

—स्वामी विवेकानन्द

- जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रेम और बलिदान को प्रधान समझना चाहिए। अगर आप उन मनुष्यों के जीवन पर दृष्टि डालेंगे, जिन्होंने इतिहास में अपना नाम अमर बना लिया है तो आपको मालूम होगा कि उनकी सफलता का मूल कारण प्रेम और बलिदान की भावना ही है।

- तुम चाहो वही अपने को बना सकते हो श्रेष्ठ या नीच, पवित्र या पापी, चतुर या मूर्ख। अपने आपको बनाने वाले तुम स्वयं ही हो। अपनी जीवन रेखा को तुम स्वयं ही लिखते हो।

—ऐनी बीसेण्ट

- मनुष्य को न तो अपने जीवन से प्रेम करना चाहिए न उसके सुखों से। अन्तःकरण की वाणी की आज्ञापालन करना ही मनुष्य के लिए प्रेम की चीज है।

—सात्ता हरबवास

- उपवास वही है जिसमें कोई भी स्वार्थयुक्त कामना न हो।

—स्वामी रामतीर्थ

- हमारा वर्तमान रूप हमारे पूर्व कार्यों का परिणाम है, इसी प्रकार आज हम जो कर रहे हैं उससे अपना भावी रूप बना रहे हैं। इसलिए हमें समझ-बूझकर कोई कर्म करना चाहिए।

- अपने हृदय में अपने कार्य की पवित्रता पर पूर्ण विश्वास रखने वाले दरिद्र और विपत्तिग्रस्त भाइयों को मुक्त करने के लिए अपने प्राणों तक का उत्सर्ग कर डालने का साहस रखने वाले वीर पुरुषों की ही आज भारतवर्ष की आवश्यकता है।

—स्वामी विवेकानन्द

- विशुद्ध श्रद्धा और विष्कपट प्रेम से जो भगवान के समीप जाते हैं, उन्हें भगवान मिल जाते हैं।

—रामकृष्ण परमहंस

- इन्द्रियों के विषय या भोग-विलास में सुख नहीं है। सुख तो तुम्हारे भीतर है, जो ब्रह्मचर्य में ही मिल सकता है।

—स्वामी रामतीर्थ

- अपने गुणगान करने वाला और दूसरों में दोष देखने वाला दंभी है। वह अपने से छोटे लोगों में आनन्द पाता है, क्योंकि उनसे उसे अपने कार्यों और गुणों की प्रशंसा सुनने को मिलती है। दंभी की अपेक्षा और कोई खुशामद से प्रसन्न नहीं होता, इसलिए वह अपने खुशामद करने वाले साथियों द्वारा थोड़े समय में ही नष्ट हो जाता है।

—स्पिन्कैजा

- अपनी सम्पत्ति के सिवाय और किसी को न देखने वाला कंजूस अन्धा होता है। अपने अन्त को न देखकर अपने आरम्भ को ही देखने वाला अपव्ययी व्यक्ति अन्धा होता है। दूसरे लोगों को रिझाने वाली स्त्री अपनी झुर्रियाँ भी नहीं देख पाती अन्धी है। अपना अज्ञान न देखने वाला विद्वान अन्धा होता है। उसी प्रकार परमात्मा को न देखने वाला चोर अन्धा है।

—विक्टर ह्यूगो

- श्रद्धा का अर्थ आत्म-विश्वास है और आत्म-विश्वास का अर्थ है ईश्वरविश्वास, जो तमाम विपत्तियों से घिर जाने पर भी विचलित नहीं होता वही सच्चा श्रद्धावान है।

- जो बुद्धिवादी सर्वज्ञता का दावा करने लगता है, उसे भयंकर राक्षस समझना चाहिए।

- भूल करना मनुष्य का स्वभाव है। अपनी भूल को मंजूर कर लेना और अपने आचरण से दुबारा भूल न होने देना ही सच्ची मर्दानगी है।

—महत्मा गाँधी

- सारे धर्म भगवान के चरण हैं, इतना जानने वाला व्यक्ति ही धर्म के रहस्य को जानता है। उसके लिए न पुराण पढ़ने की जरूरत है और न कुरान।

—विनोबा

- जिन लोगों के मस्तिष्क में कुसंस्कार घुस जाते हैं वे तो बिल्कुल बेकार हो जाते हैं, मृत्यु के कीड़े उनके शरीर में प्रवेश कर जाते हैं और उनका दिमाग फिर जाता है।

—स्वामी विवेकानन्द

३.२५ विचारसार एवं सूक्तिर्वाँ (द्वितीय खण्ड)

- भक्ति तीन प्रकार की होती है—(१) पत्थर की सी—जो डूब जाती है और बाहर से गीली भी हो जाती है परन्तु भीतर से सूखी ही रहती है। (२) कपड़े की सी—जो सब तरफ से गीली हो जाती है और डूब भी जाती है, परन्तु फिर भी पानी से अलग ही रहती है। (३) शक्कर सी—जो पानी के साथ घुल-मिल कर एक हो जाती है। यही भक्ति सर्वश्रेष्ठ है।
- ईश्वर पर अपनी मर्जी मत लादो, शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति में ईश्वर की मर्जी को ही अपनी मर्जी बना लो। —स्वामी रामतीर्थ
- मनुष्यों को मनुष्य होने के कारण प्यार करना चाहिए न कि उनकी सम्पत्ति, विद्या या अधिकार के कारण। —लाला लाजपतराय
- जातीय महानता की मानसिक पहचान इस बात से होती है कि उस जाति की माता और बच्चों की रक्षा और शिक्षा किस प्रकार की है ? —स्वामी रामतीर्थ
- प्रार्थना, कृपा और विरोध का तब तक कोई अर्थ नहीं होता, जब तक उनके पीछे दृढशक्ति न हो।
- अपनी संकल्पशक्ति की वृद्धि करो। संकल्प-शक्ति की वृद्धि करने का ही नाम प्रार्थना है। प्रार्थना में ऐसी शक्ति है, जिसके द्वारा सारी रुकावटों पर विजय प्राप्त हो जाती है। —लोकमान्य तिलक
- हिन्दी में लेखन में कोई कठिनाई नहीं, वह तो हम सबकी मातृ-भाषा है। जो कुछ मित्रों से या घर में बोलें यदि वही देवनागरी में लिख लें तो लिखना आ गया है। —आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी
- संसार की सेवा करना ही ईश्वर-इच्छा पूरी करना है। यही मोक्ष का मार्ग है। इसके लिए संसार छोड़ने की नहीं संसार में रहने की जरूरत है।
- उत्तम पुस्तकों का नरक में भी स्वागत करना चाहिए, क्योंकि जहाँ वे होंगी वहीं स्वर्ग बन जाएगा।
- तुम अपनी शक्तियों को संगठित करो और अपने बिखरे बल को एकत्र करो, तब काम

करने में लग जाओ। ऐसा करने पर कोई तुम्हारी माँगों को पूरा करने से विरक्त नहीं हो सकता है। —लोकमान्य तिलक

- कठोर कार्य ही व्यक्ति को सहनशील, सहिष्णु, वीर, बलवान बनाने के लिए ईश्वर द्वारा भेजे जाते हैं। —लोकमान्य तिलक
- जिस शख्स को जातीय इज्जत और आत्म-सम्मान का ध्यान नहीं है, वह मनुष्य नहीं पशु है। —लाला लाजपतराय
- जिसे शान्ति की तलाश है उसे अपने भीतर निगाह दौड़ानी चाहिए। —महात्मा गाँधी
- अच्छी बातें जहाँ से मिलें, वहाँ से ग्रहण करना चाहिए और अपनी बुराइयों को बिना किसी पक्षपात के छोड़ देना चाहिए। —लाला लाजपतराय
- अपने देश से, अपने आप को, अपनी स्त्री या बच्चे को तथा अपनी सम्पत्ति को प्रेम करता है, वह तुच्छ और अपूर्ण देशभक्त है। —महायोगी अरविन्द
- जीवन एक संगीत है, उसके सभी तार ठीक रखो, नहीं तो उसका साज बिगड़ जाएगा।
- आचार की उन्नति करना आर्थिक उन्नति से कहीं अधिक महत्त्व रखता है। —मदनमोहन मालवीय
- धर्म हो चाहे राजनीति, दोनों में साहस की आवश्यकता होती है। मन की दृढता के बिना साहस नहीं आता। —लोकमान्य तिलक
- कोई भी महान कार्य चालाकी से नहीं होता। प्रेम, सत्यपालन और उत्साह द्वारा ही समस्त कार्य पूरे होते हैं, इसलिए अपने पुरुषार्थ का उपयोग करो। —स्वामी विवेकानन्द
- अर्थ ही, स्रोत पाठ ही प्रार्थना नहीं है, न शरीर को भूखों मारना उपवास। प्रार्थना तो उसी हृदय से निकलती है, जिसे ईश्वर का श्रद्धापूर्वक ध्यान है और उपवास का अर्थ बुरे या हानिकारक विचार कर्म या आहार से परहेज रखना है।
- वही हिन्दू है जो ईश्वर में विश्वास करता है, आत्मा को अमर मानता है तथा पुनर्जन्म, कर्म सिद्धान्त और मौत में विश्वास करता है साथ

ही अपने दैनिक जीवन में सत्य और अहिंसा का अभ्यास करने का प्रयत्न करता है।

—महात्मा गाँधी

- इच्छाशक्ति के सामने सभी शक्तियाँ कमजोर हैं क्योंकि इच्छाशक्ति स्वयं ईश्वर के यहाँ से आती है और शुद्ध और दृढ़ इच्छाशक्ति सर्व शक्तिमान है।

—स्वामी विवेकानन्द

- शरीर को रोगी और दुर्बल रखने के समान दूसरा कोई पाप नहीं है।

—लोकमान्य तिलक

- जिस मनुष्य ने प्रेम करना नहीं सीखा उसे ईश्वर का अनुभव भी नहीं हो सकता।

—स्वामी रामतीर्थ

- घृणा राक्षसों की सम्पत्ति है, क्षमा मनुष्यत्व का चिन्ह है और प्रेम देवताओं का स्वभाव।

—भर्तृहरि

- भारतवर्ष का धर्म उसके पुत्रों से नहीं उसकी कन्याओं से ठहरा हुआ है। यदि भारत रमणियाँ अपना धर्म छोड़ देती तो अब तक भारत नष्ट हो गया होता।

—स्वामी दयानन्द सरस्वती

- दान पर अपना गुजारा करने का अधिकार उसी व्यक्ति का है जो तन, मन से समाज और देश की सेवा करता है।

—उड़िया बाबा

- लोभ और मोह को छोड़ने पर ही मनुष्य अपने को वश में कर सकता है।

- निर्धन होकर बहुत-सी कामना करना और बलहीन होकर क्रोध करना शरीर को सुखा देने वाले काँटे हैं।

- राग, द्वेष, मोह, हर्ष, शोक, अभिमान, क्रोध और आलस्य अज्ञान से उत्पन्न होते हैं, इसलिए इन्हें छोड़ना चाहिए।

- उदार होना, दृढ़ रहना, बड़ों का मान करना और मीठे वचन बोलना सर्वप्रिय बनने के साधन हैं।

—श्रीधर

- कर्मफल की कामना से जो लोग काम करते हैं, कामना के कारण बन्धन में पड़ जाते हैं।

- मनुष्य समाज की सबमें मूल्यवान सम्पत्ति को उज्ज्वल रखने का मुख्य साधन है आचरण। इसलिए श्रुति कहती है उसकी चर्चा, उसका विस्तार, स्वाध्याय करो, प्रवचन करो। सत्य, तप,

दम, शम, अग्निहोत्र, अतिथि सेवा, सन्तानोन्निति।

- परमात्मा व्याख्यान से नहीं मिलता, न बुद्धि से और न ज्यादा पढ़ने-सुनने से, बलहीन भी उसे नहीं पा सकते, आलसी भी नहीं। तप और संन्यास के बाहरी चिन्ह को धारण करने वाले पुरुष भी उसे नहीं पा सकते। त्याग आदि उपायों द्वारा जो लगातार साधना करते हैं, परमात्मा उन्हीं को मिलता है।

- परमात्मा सत्य, तप, उचित ज्ञान और अखण्ड ब्रह्मचर्य की साधना से मिलता है। यह परमात्मा हमारे ही अन्दर है, जो संयमी और जिनके दोष दूर हो गये हैं, वे ही इनका दर्शन कर सकते हैं।

- जैसे जल से अग्नि को बुझाया जाता है, उसी प्रकार ज्ञान से मानसिक दुःख को शान्त करना चाहिए। मन के शान्त हो जाने पर शारीरिक दुःख भी दूर हो जाता है।

- सत्य बोलना सब प्राणियों को एक जैसा समझना, इन्द्रियों को वश में रखना, ईर्ष्या-द्वेष से बचना, क्षमाशील, लज्जा, दूसरे को कष्ट न देना, दुष्कर्मों से अलग रहना, ईश्वर-भक्ति, मन की पवित्रता, साहस, विद्या ये तेरह सत्य धर्म के लक्षण हैं, इनका पालन सबसे उत्तम धर्म है।

- ऐसे वचन बोलो जो दूसरे को प्यारे लगे। दूसरों को बुरा-भला कहना, दूसरों की निन्दा करना, बुरे वचन बोलना, यह सब त्यागने के योग्य हैं। दूसरों का अपमान करना, अहंकार और दंभ ये अवगुण हैं।

- भोजन अकेले न खाए, धन कमाने का विचार करे तो किसी को साथ मिला ले। यात्रा भी अकेला न करे। जहाँ सोते हों वहाँ अकेला जागरण न करे।

—श्रीधर

- काम, क्रोध और लोभ ये तीनों नरक के दस्त्राजे हैं। ये आत्मा के नाश करने वाले हैं। इसलिए इनसे बचना चाहिए।

- जीवनभर में आनन्द प्राप्त करने के लिए बुद्धि ने जितने साधन जुटाये हैं, उनमें मित्रता की प्राप्ति सबसे महत्त्व की वस्तु है।

—ए. पी. क्यूरस

१.२० विचारसार एवं सुक्तिर्वा (द्वितीय खण्ड)

- मृत्यु नवीन जीवन का आरम्भ है। —नारायण
- मित्रतापूर्ण परामर्श अनेक शत्रुओं को कम कर देता है। —वेन्सपियर
- जिस मनुष्य ने अपने आपको जीत लिया है, वही अपना मित्र है, परन्तु जिसने अपने आपको नहीं जीता वह शत्रु है।
- जिस मनुष्य ने अपने आपको जीत लिया, उसमें परमात्मा एकरस होकर रहता है। सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख, मान-अपमान का उसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वह हमेशा शान्त रहता है।
- जिस आदमी का जीवन उचित प्रकार व्यतीत हुआ है, उसे मृत्यु का भय नहीं होता है। —फुलर
- कर्तव्य का पथ यश का मार्ग है। —टेनीसन
- जो न किसी से प्रसन्न होता है और न किसी से द्वेष करता है। जिसे न शोक होता है और न किसी प्रकार की आकांक्षा होती है। जिसने शुभ और अशुभ दोनों प्रकार का परित्याग कर दिया है, वही भक्तिवान है। उसे भगवान प्यार करते हैं।
- अपना कर्तव्य-पालन करना श्रेष्ठ है, चाहे वह दूसरों की अपेक्षा उच्चकोटि का क्यों न हो। अपना कर्तव्य करते हुए अपना जीवन व्यतीत कर देना अच्छा है। दूसरे के कर्तव्य को अपना लेना भय का कारण है।
- जो तुम्हारे लिए निश्चित है, उसे करो। कर्म न करने से, कर्म करना श्रेष्ठ है। कर्म न करने से शरीर का स्वास्थ्य भी स्थिर नहीं रह सकता।
- जिसने आशा को छोड़ दिया है। चित्त और आत्मा को वश में कर लिया है और सारी भोग सामग्री से विरक्त हो गया है, ऐसा व्यक्ति शरीर से कर्म करता हुआ भी पाप से बचा रहता है।
- जिसके पास श्रद्धा है, जिसने मन और इन्द्रियों को वश में कर लिया है, उसे ही ज्ञान मिलता है। ज्ञान पाकर वह शीघ्र ही शान्ति पा लेता है।
- जिसके पास ज्ञान नहीं है, श्रद्धा नहीं है और मन संशय से भरा हुआ है, वह नष्ट हो जाता है। संशय वाले पुरुष के लिए न सुख है, न लोक है और न परलोक है।
- योगीपुरुष आत्म-शुद्धि के लिए मन, बुद्धि और केवल इन्द्रियों से भी काम करते हैं, परन्तु वे इन कर्मों को आसक्ति छोड़कर ही करते हैं।
- पुराने कपड़े पहनकर भी नई किताबें खरीदो। —क्रिस्चियन
- शुद्ध बुद्धि से किए गये स्वार्थहीन काम ही यज्ञ कहलाते हैं। —लोकमान्य तिलक
- पुस्तकों के अध्ययन ने अनेक बार मनुष्य के जीवन को बना दिया है। —एयर्सन
- विद्वान के लिखने की स्याही खून से ज्यादा पवित्र है। —मुहम्मद अली
- जिनसे किसी प्रकार की सेवा मिलने की आशा न हो ऐसे लोगों की भी जो प्रतिष्ठा करता है, वही सज्जन है। —क्रिस्चियन
- स्वार्थ समाप्त होने पर ही शोक, दुःख और निराशाओं से छुटकारा मिलता है। —सन्त वास्वानी
- उदार हृदय पुरुष अपने से नीचे आदमियों के साथ भी व्यवहार में नम और शिष्टाचार पूर्ण होते हैं। —फुलर
- परिश्रम व्यापार का जीवन है और उन्नति का आधार। —डिकेन्स
- बिना ताले का द्वार एक बदमाश के लिए प्रलोभन है। —टेलर
- जब तक कोई आदमी प्रलोभनों में न पड़े, तब तक उसे जीवन-कला में सफल नहीं समझना चाहिए। —जार्ज इलिफट
- दूसरों की बुद्धि पर ही चलने वाले मूर्ख होते हैं। नई व पुरानी बातों की परीक्षा करके जो चलते हैं वे ही बुद्धिमान कहलाते हैं। —कालियास
- हार, जीतने की पहली सीढ़ी है। जो हार चुका है वह अवश्य विजयी हो सकता है। —नेपोलियन

- कोई बात बहुत दिनों से चली आ रही है।
सिर्फ इसलिए वह अच्छी नहीं हो जाती।
—**शरतचन्द्र**
- मनुष्य के सारे कामों में पश्चात्ताप ही एक
दैवीय कार्य है और अपने दोष का ज्ञान न
होना ही सबसे बड़ा दोष है।
—**कालिदास**
- ठीक सिद्धान्तों से गलत परिणाम निकालने
वाला मूर्ख है और मिथ्या सिद्धान्तों से ही
परिणाम निकालने वाला पागल है।
- लो जिससे कि तुम्हारे द्वारा किसी बहुत बड़े
अनर्थ की सृष्टि न हो जाय।
—**मेरीकरेली**
- कमजोरों के लिए जो पत्थर मार्ग का रोड़ा
होता है, बलवान उसको ऊपर चढ़ने की सीढ़ी
बना लेते हैं।
—**कालिदास**
- निर्दोष हृदय के पास डर नहीं रहता।
—**वेन जान्सन**
- निःस्वार्थ सेवा, परोपकार, दया, प्रेम, त्याग,
उदारता आदि दैवीय गुणों से सम्पन्न व्यक्ति ही
मनुष्य कहलाने के अधिकारी है।
—**जयसुख**
- सत्य की महानता में विश्वास करने से लोग
भूल से बच जाते हैं। पवित्रता या पूर्णता में
विश्वास करने से वे पाप से बच जाते हैं।
भलाई में विश्वास करने से वे बुराई से बच
जाते हैं।
- बिना किसी प्रकार के विश्वास के कोई मनुष्य
अपने जीवन को व्यवस्थित नहीं बना सकता।
—**जे. वी. एस. हार्वेन**
- जो स्वयं अपने को भूल जाते हैं, परमात्मा भी
उनको भूल जाता है।
—**डयमा**
- जो चीज हमारे लिए बेकार है और जिसे हम
फेंक सकते हैं उसके दान करने में हमारा कोई
त्याग नहीं है। त्याग तो आत्म-त्याग और
बलिदान में है।
—**टेलर**
- आज का दिन और हमारा कर्तव्य इन दोनों
पर हमारा अधिकार है, लेकिन भविष्य और
कार्य का फल ईश्वर के है।
—**गोरेस ग्रील**
- जिसे अन्याय पर क्रोध आता है और जो
अपमान को सह नहीं सकता वह पुरुष है।
- समझदार मनुष्य वही है जो अपनी छोटी-मोटी
गलतियों को भी ध्यान से देखता और उसे
सुधारने में प्रवृत्त रहता है।
—**लैनिंग**
- किसी की निन्दा न तो खुशी से सुननी चाहिए
और न उसे याद रखना चाहिए, क्योंकि उससे
उस समय तो अपनी ईर्ष्या या अहंकार की
तृप्ति हो जाती है, पर अन्त में बहुत हानि
होती है। दूसरों की निन्दा को सुनने वाला चोर
के समान निन्दित समझा जाता है।
—**केन्डर क्रीड**
- आत्म-प्रेम उतना भयंकर पाप नहीं है, जितना
भयंकर पाप आत्म-विस्मरण है।
—**क्रेन्सलीयर**
- थोड़े-से तिरस्कार पर नाराज हो जाना हमारे
अहंकार को प्रकट करता है या हमारी बुद्धि
की कमी को।
- जितनी गहरी व्यथा होनी उतने ही कम शब्द
जबान से निकलेंगे।
—**एलसमथ**
- हमें अपनी शक्ति को संचित करना चाहिए, न
कि उसे व्यर्थ नष्ट। शक्ति का संचय भगवत
प्राप्ति का सहायक है।
—**नारायण**
- शक्तिमय ही शक्ति के बन्धन से दुर्बलों की मुक्ति
दिलाते हैं।
- किसी के भी विषय में कड़ुई बात कहना
अन्याय है, पर अश्रद्धेय को श्रद्धा करना भी
अन्याय है।
—**शरतचन्द्र**
- सारी उन्नति के लिए विश्वास सर्वप्रथम
आवश्यक वस्तु है। किसी काम के आरम्भ ही
से शंका करना असफलता को निमन्त्रित करना
है। सन्देह सारी प्रेरणाओं को खत्म कर देता है
और जिस प्रयत्न में प्रेरणा नहीं होती वह व्यर्थ
जाता है।
—**डॉ. पद्मभित्तिरामैया**
- आदमी जो कुछ करता है यदि उस पर उसका
विश्वास नहीं होता तो उस काम को करने में
उसका हाथ सुस्त पड़ जाता है और उसको
उत्साह नहीं रहता।
—**प्लॉक**
- यदि परमेश्वर की इच्छा होती तो उसने कुछ
लोगों को हाथ दिए होते और कुछ लोगों के
सिर ही सिर होते। कुछ राहु और कुछ केतु
निर्माण होते, किन्तु भगवान ने प्रत्येक मनुष्य
को सिर और हाथ दोनों दिए हैं। इसका अर्थ

है कि ज्ञान और कर्म का योग होना चाहिए। ज्ञान की अग्नि में जो कर्म की आहुतियाँ देता चलता है, वही सच्चा यजमान है, उसी के जीवन में यज्ञ जैसी तेजस्विता होती है।

—स्वामी विवेकानन्द

- अपनी बात को हम कितना ही सही क्यों न मानें, पर साथ ही यह भी ध्यान रखें कि मत-भेद वाले पक्ष भी हमारी तरह अपनी बात को सही समझने वाले हो सकते हैं। सत्य तक पहुँचने के लिए मस्तिष्क खुला रहना चाहिए और 'ही' की कट्टरता में 'भी' की सम्भावना के लिए गुंजायश छोड़नी चाहिए। —अरस्तू

- बुद्धिमत्ता इसी में है कि हम उस खुदा की बातें कम करें, जिसे हम समझ नहीं सकते, उन इनसानों की बातें अधिक करें जो हमारे निकटतम हैं तथा जिन्हें हम समझ सकते हैं।

—खलील जिब्रान

- मनुष्यता में जो कुछ महान और सत्य है, वह सदा हमारे द्वार पर प्रतीक्षा करता रहता है कि हम उसको नियंत्रित करें। उससे यह प्रश्न करना कि वह किस देश का है, हमारा काम नहीं है किन्तु उसका अपने घर में स्वागत करना और जो कुछ उत्तम से उत्तम वस्तु हमारे पास हैं, वह उसके सम्मुख भेंट करना ही हमारा कर्तव्य है। 'अतिथि देवो भव।'

—रवीन्द्रनाथ टैगोर

- पैसे की गरीबी उतनी दुःखदायी नहीं, जितनी कि प्रगति के लिए आकुलता की कमी। जो अपनी दुर्दशा से सन्तुष्ट है, उनके लिए सुखद अवसर कहाँ से, कैसे और क्यों आवेगा ?

—डेल कारनेगी

- तुम जहाँ भी हो, वही पूरी तरह डटो। चित्त को हाथ के काम में रस लेने के लिए सधाओ। जो काम सामने है, उसी पर अपना सारा ध्यान केन्द्रित कर दो। उसे अधूरा मत छोड़ो। जिस उत्साह से आरम्भ किया था उसे अन्त तक बनाये रहो। परिणाम जो भी हो काम में ईमानदारी, सावधानी और सुरुचि का ऐसा समावेश करो कि वह तुम्हारी प्रतिष्ठा में चार-चौद लगा सकें। इस प्रकार की गई कर्म-देवता की उपासना किसी को भी विश्वस्त और प्रगतिशील बनाने का वरदान देती है।

—स्वेट मार्डन

- जगत अपूर्ण होने से ही चञ्चल है, मानव-समाज अपूर्ण होने से ही सचेष्ट है और हमारा आत्म-बोध अपूर्ण होने से ही हम आत्मा को और अन्य समस्त को विभिन्न रूप में ही जानते-देखते हैं, किन्तु असल में जगत के इस चाञ्चल्य में ही शान्ति है, दुःख-चेष्टा में ही सफलता है और भेद में ही प्रेम है।

- इस बात का हमें ध्यान रखना होगा कि अपूर्णता का गौरव ही दुःख है, अपूर्णता की सम्पदा है, दुःख ही एकमात्र मूलधन है। मनुष्य सत्य-पदार्थ जो भी कुछ पाता है, वह दुःख के द्वारा ही पाता है और इसी में उसका मनुष्यपन है। मनुष्य की क्षमता अल्प है, किन्तु ईश्वर ने उसे भिक्षुक नहीं बनाया। वह केवल माँगकर ही कुछ नहीं पाता, दुःख उठाकर पाता है और जो कुछ धन है, वह तो उसका नहीं है, वह सब विश्वेश्वर का है, किन्तु दुःख तो बिल्कुल ही अपना है। उस दुःख के ऐश्वर्य से ही अपूर्ण जीव पूर्ण स्वरूप के साथ अपने गर्व के सम्बन्ध की रक्षा कर रहा है, उसे लज्जित नहीं होना पड़ा। —रवीन्द्रनाथ टैगोर

- मनुष्य को परमात्मा ने केवल एक यन्त्र नहीं बनाया है, जो अपनी एक विधि और एक रीति से अपना क्रम करता चले, न उसके काम में कोई बाधा आये और न कोई असफलता मिले।

मनुष्य को परमात्मा ने एक स्वतंत्र बुद्धि वाला चेतन प्राणी बनाया है। उसके हाथ-पाँव काम करने के लिए और विवेक काम के औचित्य को समझने के लिए दिया है। उसकी इच्छा है कि मनुष्य अधिक से अधिक परिश्रमी, कर्मठ और धैर्यवान बने इसीलिए उसके सभी काम निर्विघ्न नहीं होते चलते।

यदि सारे काम बिना बाधा से सहज रूप में होते चलें तो कर्म-कौशल का महत्त्व ही समाप्त हो जाये। मेरा विश्वास है कि जिस काम को करने में मनुष्य को बाधाएँ नहीं आती, उसे अपनी कार्य-कुशलता को परिचय देने का अवसर नहीं रहता, वह काम मनुष्य के करने योग्य नहीं होता। —मदनमोहन मालवीय

- मनुष्य जाति का बहुत कुछ दुःख-सुख उन अनुमानों से उत्पन्न होता है, जो प्रत्येक व्यक्ति

दूसरों के विचारों के सम्बन्ध में करता है, हम सबको उस प्रशंसा में आनन्द आता है, जिसे हम सुनते नहीं और उस तिरस्कार पर क्रोध आता है जिसे हम देखते नहीं।

- जान-बूझकर सुख के पीछे दौड़ने में कुछ कृत्रिमता है। जीवन का शोकजनक कार्य तो कुछ भयंकर बुराइयों से बचना है, जिनके सामने हमारी प्रकृति हमें उपस्थित कर देती है—मृत्यु, रोग, थकावट, पृथक्त्व और घृणा व तिरस्कार।
—सत्यानन्द

- जिस वस्तु के नाश से बड़ा दुःख होता है, उसके प्राप्त होने से पूर्व सुख या दुःख कुछ भी नहीं होता। अतएव उसकी प्राप्ति के पूर्व की अवस्था को ध्यान में रखकर मन को दुःखी नहीं करना चाहिए।
—देवर्षि नारद

- (ललचाने वाला) मन्द-मन्द स्पर्श यद्यपि बहुत ही आकर्षक होता है, किन्तु संयमी उसके प्रति अपने मन को आकृष्ट न होने देवे, क्रोध को दबावे, अभिमान को दूर करे, कपट (मायाचार) का सेवन करे और लोभ को छोड़ देवे।

- गंगा सागर में मिलने के लिए जाती है, परन्तु जाती हुई जगत् का पाप-ताप निवारण करती और किनारे के पेड़ों को पोसती जाती है अथवा सूर्य भगवान नित्य परिक्रमा करते हुए संसार का अंधकार दूर करते और कमलों को विकसित करते जाते हैं। इसी प्रकार आत्म-ज्ञानी सन्त अपने सहज कर्मों से संसार में बँधे बन्धियों को छुड़ाते, डूबे हुआ को निकालते और दुःखियों का दुःख दूर करते हैं।
—श्री ज्ञानेश्वर

- (यह मेरा परम सौभाग्य है कि) महापुरुष मीठा उपालम्भ अथवा कठोर शब्दों में भर्त्सना करते हैं। इससे मेरा परम-कल्याण होगा। ऐसा मानकर उसका विवेकपूर्वक पालन करें।
—भगवान् महावीर

- धन्य हैं वे लोग, जिनको इस पवित्र और लोक प्रेम से पूर्ण धर्म का उपदेश प्राप्त हुआ है। मेरी यह प्रार्थना है कि इस ब्रह्म-ज्योति की सहायता से सब धर्मशीलजन अपने ज्ञान को विशुद्ध और अविचल कर और अपने उत्साह को नूतन और प्रबल कर सारे संसार में इस

धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार करें और समस्त जगत् को यह विश्वास करा दें कि सबका ईश्वर एक ही है और वह अंश रूप में न केवल सब मनुष्यों में, किन्तु समस्त जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज अर्थात् मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट-पतंग वृक्ष और विटप सबमें समान रूप से अवस्थित है और उसकी सबसे उत्तम पूजा यही है कि हम प्राणी मात्र में ईश्वर का भाव देखें, सबसे मित्रता का भाव रखें और सबका हित चाहें। सार्वजनिक प्रेम से इस ज्ञान के प्रचार से ईश्वरीय शक्ति का संगठन और विस्तार करें। जगत् से अज्ञान को दूर करें, अन्याय और अत्याचार को रोकें और सत्य, न्याय तथा दया का प्रचार कर मनुष्यों में परस्पर प्रीति सुख और शान्ति बढ़ावें।

—मदनमोहन मालवीय

- स्त्री अहिंसा की मूर्ति है। अहिंसा का अर्थ है कष्ट सहने की अनन्त शक्ति और यह तभी आती है, जब हृदय प्रेम से भरा-पूरा होता है।

- स्त्री-धर्म का पालन वही स्त्री करती है जिसका पति अंगर गिरता हो तो उसे बचाये, न कि उसके साथ-साथ स्वयं गिर पड़े। यदि पति बलात्कार करने आवे तो उसे थप्पड़ मारकर भी रोकना उसका धर्म है।

- निर्मल अन्तःकरण को जिस समय जो मालूम हो, वही सत्य है। उस पर दृढ़ रहने से शुद्ध सत्य की प्राप्ति होती है।
—महात्मा गाँधी

- यादृशैः सन्निविशते यादृशांश्चोपसेवते ।
यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग् भवति पूरुषः ॥

—विदुर नीति ४/१३

मनुष्य जैसे लोगों के साथ रहता है, जैसे लोगों की सेवा करता है और जैसा होना चाहता है, वैसा ही हो जाता है।

- भोगे रोगभयं कुले मृत्तिभयं विते नृपालाभयं,
मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम् ।
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताभयं,
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥

—भर्तृहरि

भोगों में रोग का भय है, ऊँचे कुल में पतन का भय है, धन में राज का, मान में गरीबों का, बल में शत्रु का तथा रूप में वृद्धावस्था का भय है। शास्त्र में वाद-विवाद का, गुण में

दृष्ट व्यक्तियों का तथा शरीर में काल का भय है। इस प्रकार संसार में मनुष्यों के लिए सभी वस्तुएँ भयपूर्ण हैं, भय से रहित तो केवल वैराग्य ही है।

- पावर्तः पशुत्वात् नृपानामधिरोहति ।
स्वस्वदेवात्मनोऽपि देहिनास्तद्वरं स्वः ॥ —कण्व
जो धूल पैर से ठुकराए जाने पर उड़कर ठोकर मारने वाले के सिर पर चढ़कर बैठ जाती है, वह अपमान सहकर भी निश्चिन्त बने रहने वाले देहधारी मनुष्य की अपेक्षा श्रेष्ठ है।
- गुणाः सर्वत्र भूषण्यो भित्तुर्वशो विरक्तः ।
वासुदेवं नमस्कृतिं वसुदेवम् न ते जनाः ॥
गुणों का ही सर्वत्र सम्मान होता है, गुणी के वंश का नहीं। लोग वासुदेव (कृष्ण) की ही वन्दना करते हैं, उनके पिता वसुदेव की नहीं।

—कण्व

- मानवी गुरु कान में मंत्र फूँकते हैं और देवी गुरु आत्मा में तेज।
- परोपकारी परमात्मा लोग ईश्वर के नजदीक के सम्बन्धी हैं और दूसरे संसारी मनुष्य तो उसके केवल उत्पन्न किये प्राणी मात्र हैं।
- जिस घर में सौंप अधिक हों उस घर में रहने वाला मनुष्य जिस प्रकार बड़ा सावधान रहता है, उसी प्रकार संसार में रहने वाले मनुष्यों को विषय-वासना और लोभ में पड़ने से सावधान रहना चाहिए।
- शान्ति और सद्गुणयुक्त जीवन व्यतीत करने के लिए लोगों की प्रशंसा और निन्दा का ध्यान देना छोड़ दो।
- सोने और पीतल को कसीटी पर रगड़ने से मालूम हो जाता है कि कौन सोना है और कौन पीतल है ? उसी प्रकार संकट और सम्पत्ति की कसीटी पर रगड़ने से सच्चे ढोंगी साधुओं की परीक्षा हो जाती है।
- हवा चन्दन के वृक्ष से भी गुजरती है और सड़े हुए मुरदे पर से भी, लेकिन वह किसी से मिलती नहीं। दोनों प्रकार की गन्ध, अलग रहती है। उसी प्रकार मुक्त पुरुष संसार में रहते हैं, लेकिन संसारी मनुष्यों में मिल नहीं जाते।
- धर्म क्यों बिगड़ते हैं ? मेह का पानी साफ होता है, लेकिन यदि वह गन्दी छतें, गन्दे नल

और नालियों में होकर बहे तो वह भी गन्दा हो जाता है।
—रामकृष्ण परमहंस

- वही ऋषि और ब्रह्म है जो अपने ज्ञान से दूसरों को सन्मार्ग पर लाता है।
- सर्वे हि वयं केतारः सर्वे पण्डितमनिनः ।
सर्वे पदरथमिच्छन्ति स बृहन् अवसीदति ।

—महाभारत

- जहाँ सब लोग नेता बनने के इच्छुक हैं, जहाँ सब सम्मान चाहते हैं और पण्डित बनते हों, जहाँ सभी महत्वाकांक्षी हों, वह समुदाय पतित और नष्ट बिना न रहेगा।
- जो गुणवान हैं उनकी प्रशंसा होती है।
- जिस विद्या से लोग जीवन-संग्राम में शक्तिमान नहीं होते, जिस विद्या से मनुष्य के चरित्र का विकास नहीं होता और जिस विद्या से मनुष्य परोपकार, प्रेमी और पराक्रमी नहीं बनता, उसका नाम विद्या नहीं है।
- सच्चाई जीवन को उस सुदृढ़ शिला के समान बनाती है, जिससे टकराने वाला टूट जाता है, पर स्वयं वह अक्षुण्ण बनी रहती है।
- स्वामी विवेकानन्द
- यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारा कोई विरोध न करे तो मन को हमेशा शान्त रखो और हृदय में पवित्र विचारों को स्थान दो।

—स्वामी रामतीर्थ

- कुतुबनुमा की सुई हमेशा उत्तर की ओर रहती है, इसी से समुद्र में जहाजों को अड़चन नहीं पहुँचती। इसी प्रकार जिसका ध्यान ईश्वर की तरफ है, वह संसार रूपी समुद्र में नहीं भटक सकता है।
- रामकृष्ण परमहंस
- यदि दिल में लगा हो तो एक महामूर्ख भी किसी काम को पूर्ण कर सकता है, पर बुद्धिमान मनुष्य वह है, जो प्रत्येक कार्य को अपनी रुचि के कार्य में परिणत कर सकता है। कोई भी काम छोटा नहीं है।

—स्वामी विवेकानन्द

- मुक्ति आध्यात्मिकता की सबसे गूढ़ पहली है, उसे समझना हो तो मुक्त-पुरुष के जीवन का चिन्तन करो।

—संत ज्ञानदेव

□ विद्या मनुष्य के लिए एक दोषहीन अविनाशी निधि है। उसके सामने दूसरे प्रकार की दौलत कुछ भी नहीं है। —सत्ता तिरुक्कुर

□ उपहास और विरोध से डरकर न कोई सुधारक हुआ, न आगे होगा। —प्रेमचन्द

□ शुद्ध न्याय में शुद्ध दया होनी चाहिए। न्याय का विरोध करने वाली दया, दया नहीं, बल्कि क्रूरता है। —महात्मा गाँधी

□ ईश्वर अपने दिए हुए पुण्यों के बदले में कृतज्ञता चाहता है, सूर्य और पृथ्वी के बदले में नहीं। —रवीन्द्रनाथ टैगोर

□ **इहैव नरकव्यापेक्षिकिस्ता न करोति यः।**
नरक निरीषय स्थाने व्याधिर्यः किं करिष्यति।।
जो मनुष्य इस जन्म में ही नरक रूपी व्याधि की चिकित्सा नहीं करता, वह रोगाकुल फिर औषधिरहित स्थान में जाकर अपनी क्या चिकित्सा कर सकता है ? अर्थात् जन्म, मृत्यु, जरा आदि व्याधियों की चिकित्सा इस मनुष्य जन्म में ही सुलभ है, अन्यत्र नहीं।

—कुलार्णव तन्त्र

□ मेरा मजहब हकपरस्ती (स्वत्व पूजा) है। मेरी मिल्लत कोमपरस्ती है। मेरी इबादत खलकपरस्ती है। मेरी अदालत मेरा अन्तःकरण है। मेरी जायदाद मेरी कलम है। मेरा मन्दिर मेरा दिल है। मेरी उमंगें सदा जवान हैं। —लाला लाजपत राय

□ हमारे यहाँ तो भगवान् बिना मुरली या डमरू के पूरे नहीं समझे गये, मानव का तो प्रश्न ही क्या है, यह अकारण नहीं है कि विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती के हाथ में पुस्तक के साथ-साथ वीणा भी बताई जाती है, संगीत आत्मा का प्रकार है, मनुष्य को तो उससे अनिवार्य सम्बन्ध रखना ही चाहिए।

—डॉ. राधे

□ 'गलती न करने वाली मशीन' और 'गलती करने वाले मनुष्य'—इन दोनों में से किसी एक को पसन्द करना पड़े तो मनुष्य को ही पसन्द करना पड़ेगा। गलतफहमी से बहुधा मनुष्य का जन्म होता है, पर मशीन से किसी भी दशा में मनुष्य नहीं निकल सकता। —रवीन्द्रनाथ टैगोर

□ सुनता और पढ़ता हूँ कि इच्छाएँ 'इत्थंलम्' कहना नहीं जानती और चाहें का चक्र कभी नहीं थमता। मगर मैं तो कामनाओं के वृत्त में दौड़ने का रसिक हूँ। पाने का अपना आनन्द होता होगा, किन्तु चाहने का सुख भी छोटा नहीं है—यदि चाह छोटी न हो। इसलिए चाहता हूँ—

मनुष्य को पंगु और बौना बनाने वाली गरीबी मिटे, जीविका के लिए जीवन रहन न रखना पड़े, रोटी इनसान को न खाये।

मशीनें श्रम की कठोरता को घटाएँ, उत्पादकता को बढ़ाएँ, मगर वे श्रम का अवसर न छीनें, न आदमी को अपना पुर्जा बना पाएँ। पृथ्वी का दोहन विवेकपूर्वक हो, प्रकृति से द्रोह न किया जाए।

दरिद्रता, दैन्य व अत्याचार को मिटाने का वीरावेश भड़के, परन्तु क्रूरता, बहादुरी का मुखौटा पहनकर न धूमे।

समाज और व्यक्ति, राष्ट्र और विश्व में परस्पर श्रेय हो, परस्पर विरोध नहीं।

सुख विलासिता का, सादगी रसहीनता और मनहूसियत का, तप वर्जनाओं का, कला कृत्रिमता का पर्यायवाची न बने। सत्य संख्या में न दब जाए, सौन्दर्य अलंकरण में न छिप जाए, विज्ञान हिंसा का दास न हो। —दत्तोपन्ना

□ आकाश की ओर देखकर मैंने अनुभव किया—यह संसार विशालतम है और अपनी ओर देखकर सोचा—मनुष्य लघुतम है। अपनी लघुता को तब से सृष्टि की विशालता में घुलाये जा रहा हूँ, क्योंकि तब मैं स्वयं भी लघु न रहकर विराट बन जाता हूँ।

—रामकृष्ण परमहंस

□ सत्य का कोई एक निश्चित रूप नहीं। देश, काल के अनुसार सत्य की मान्यता बदलती रहती है, किन्तु सत्य में निहित जो एक कल्याणकारी तत्त्व है—वह चिरन्तन है, एक है, अपरिवर्तनशील है। जिस बात में भी यह शिव-तत्त्व निहित होता है, वह बात सदा सत्य है। वैसे सत्य का कोई मौलिक रूप नहीं है।

इसी तराजू से यदि तौल कर देखा जाये तो आज बहुत-से सत्यों का थोथापन सामने आ जाएगा। फिर किसी एक सत्य पर किसी एक

देश का आधिपत्य नहीं है। न कोई जातिविशेष ही किसी सत्य पर अपना इजारा जाहिर कर सकती है।

कोई एक बात देश के लिए सत्य और कल्याणकारी हो सकती है और दूसरों के लिये नहीं, पर यह सबके लिए समान रूप से सत्य है कि विश्व-शांति तभी सम्भव है, जब प्रत्येक व्यक्ति एवं देश अपनी सीमाओं और अपने साधनों में संतुष्ट रहे। —मदनमोहन मालवीय

- उपवास और प्रार्थना के समान शक्तिशाली वस्तु दुनिया में और कोई नहीं है। उनसे हमारे जीवन में आवश्यक अनुशासन पैदा होता है। आत्म-त्याग की भावना बढ़ती है तथा नम्रता और संकल्प की दृढ़ता उत्पन्न होती है।

—महात्मा गाँधी

- कलकत्ता के कोई एक प्रसिद्ध रईस एक दिन श्रीरामकृष्ण देव के दर्शन करने आये और तरह-तरह का तर्क देना शुरू कर दिया। श्रीरामकृष्ण देव ने उससे कहा, “वृथा तर्क से क्या लाभ होगा ? सरलता के साथ श्रीभगवान का भजन करते जाओ, तो अपना कुछ कल्याण भी होगा।” यह बात उस दाम्भिक पुरुष को अच्छी न लगी और वह पूछ बैठा, “आप ही क्या सब कुछ जान चुके हैं ?” श्रीरामकृष्ण देव अति नम्रभाव से हाथ जोड़कर बोले, “मैं कुछ भी नहीं जान सका हूँ, पर झाड़ू अपवित्र होकर भी जहाँ झाड़ती है, उस स्थान को साफ ही करती है।”

—स्वामी ब्रह्मानन्द

- जो मनीषी हैं, वे स्तुति से न तो प्रसन्न होते और न निन्दा से अप्रसन्न ही होते हैं। जो लोग उनके निंदक अथवा प्रशंसक होते हैं, वे ऐसों के आचार-व्यवहारों को छिपाकर रखते हैं। वे पूछने पर भी अहितकर विषय के सम्बन्ध में हितकारी पुरुष से कुछ नहीं कहते और जो उनके ऊपर आघात करते हैं, उनसे वे बदला लेने की भी इच्छा नहीं रखते। ऐसे लोग अप्राप्त वस्तुओं का दुःख न करके समय पर प्राप्त वस्तु से ही काम चला लिया करते हैं। बीती हुई बातों के लिए न तो वे दुःखी होते हैं और न उनका स्मरण करते हैं। —श्रीधर

- आज के युग ने सन्तुलन खो दिया है। हमने प्रकृति पर विजय तो प्राप्त की, प्राकृतिक

शक्तियों का अपने लिए उपयोग करना तो सीखा, लेकिन समाज की उपेक्षा करने लगे, फलतः सन्तुलन भी खोने लगा।

इस सन्तुलन को स्थिर करने का दायित्व उन सृजनशील व्यक्तियों पर है, जो समाज को जागरूक बना सकें, उसकी चेतना को जगा और आज की समस्याओं तथा समाधानों को प्रस्तुत कर विकास की दिशा में समाज को अग्रसर कर सकें। —आचार्य नरेन्द्र देव

- उत्तिष्ठित ! जाग्रत ! प्रातःकाल भगवान मरीचिमाली स्वयं ही आकर हमारी निद्रा पर आघात करते हैं। समस्त रात्रि की गम्भीर निद्रा एक मुहूर्त में भंग हो जाती है, किन्तु सन्ध्या के मोहान्धकार को कौन दूर करेगा ? दिनभर की चिन्ताएँ और कर्म की व्यस्तता से चित्त को बाहर निकालकर निर्मल, उदार शान्ति के क्षेत्र में किस प्रकार पहुँचाया जाय ? समस्त दिन एक मकड़ी की भाँति जाले पर जाला बुनकर हम नाना दिशाओं में जकड़े हुए हैं। चिरन्तन सत्य को एकदम ओट में रखे हैं। इस समस्त जाल को काटकर चेतना का अनन्त में जाग्रत करके किस प्रकार रखें ? इसलिए ओ भगवन् उठ जाग ! जब दिन नाना कर्म, नाना प्रवृत्ति के भीतर एक-एक लपेट द्वारा हमें जकड़ता रहता है, तो ऐसे समय में यदि बीच-बीच में अपनी चेतना को सतर्क न करते रहें, “उत्तिष्ठित जाग्रत” का मन्त्र हमारी अन्तरात्मा में ध्वनित न होता रहे तो हम उसमें उलझकर अंग हो जाएँगे। इसलिए जीवन के सब कर्मों के मध्य भी इकतारे की यह धुन उठती रहे।

- जब मैं यहाँ से प्रस्थान करने लगूँ, तो मेरे अन्तिम शब्द ये हों “जो कुछ मैं देख चुका हूँ, वह अद्वितीय है। मैंने आलोक-सागर में विकसित सहस्रार कमल के अदृश्य मधु का रसास्वादन किया है और इसलिए मैं धन्य हूँ”—ये मेरे अन्तिम शब्द हों।

अनन्त आकारों के इस क्रीड़ा-भवन में जीभर खेल चुका हूँ और मैंने निराकार की झँकी देखी है। मेरा संमस्त शरीर, मेरा अंग-अंग उस स्पर्शातीत के स्पर्श से पुलकित है। सो यदि मेरा अन्त आता है, तो आने दो—ये मेरे अन्तिम शब्द हों।

—रवीन्द्रनाथ टैगोर

- मैं इस सारी समस्या पर एक भारतीय और एक हिन्दू की दृष्टि से विचार करता हूँ और यह सोचकर ही मैंने अस्पृश्यता को हाथ में लिया है। भले ही लोग इसे पाप समझें। मैं विचारशील लोगों को इस थोथे पावित्र्यवाद पर आक्रमण करने के लिए आह्वान करता हूँ। कई लोगों का यह ख्याल है कि मानवजाति के एक वर्ग को छूना इसलिए पाप है कि वह किसी वातावरण, वंश, कुल या वर्ग विशेष को छूना पाप है और वे अपनी पूरी शक्ति से इस ख्याल को धर्मसिद्ध करने में लगे हुए हैं तो मैं हिन्दू होने के नाते यह सिद्ध करना अपना पवित्र कर्तव्य मानता हूँ कि यह लोग पापी नहीं हैं, वरन् इन लोगों को छूने और बराबरी का व्यवहार करने को पाप समझना पाप है।

—महात्मा गाँधी

- “तप ज्योति है, जीव ज्योति स्थान है, मन, वचन, काया के योग—सुवा है, अग्नि प्रज्वलित करने का साधन है, कर्म जलाये जाने वाला ईंधन है, संयम योग शान्ति पाठ है। मैं इस प्रकार का यज्ञ करता हूँ, जिसे ऋषियों ने श्रेष्ठ बताया है।”

—भगवान महावीर

- सफलता का मूल रहस्य इसी में है कि साधनों को भी उतना ही महत्त्व दिया जाय जितना कि साध्य को।

—स्वामी विवेकानन्द

- दूसरों का डाला अंकुश गिराने वाला होता है और अपना बनाया उठाने वाला।

—महात्मा गाँधी

- प्रियजनों से भी मोहवश अत्यधिक प्रेम करने से यश चला जाता है और दुनिया में बदनामी होती है।

- जब तुम किसी दुर्बल मनुष्य को सताने के लिए उद्यत होओ, तो सोचो कि अपने से बलवान मनुष्य के आगे जब तुम भय से काँपोगे तब तुम्हें कैसा लगेगा ?

—सन्त तिळवल्लुवर

- “भरे कहने पर आप पूर्ण विश्वास रखें,” ऐसा कहने वाला मनुष्य मानव जाति का कष्टर शत्रु है।

—स्वामी विवेकानन्द

- हर आदमी अपने मत को सच्चा और बच्चे को अच्छा समझता है, लेकिन इसलिए दूसरे

का मत या बच्चे को बुरा कहना उचित नहीं है।

—शेखसादी

- मोहम्मद साहब की तलवार की मूँठ पर ये वाक्य खुदे हुए थे—तेरे साथ अन्याय करे उसे क्षमा कर दे। जो तुझे अपने से काटकर अलग कर दे उससे मेल कर। जो तेरे साथ बुराई करे उसके साथ तू भलाई कर और सदा सच्ची बात कह—चाहे वह तेरे ही खिलाफ क्यों न जाती हो ?

- यदि ‘भोमिन’ होना चाहता है तो अपने पड़ोसियों का भला कर और ‘मुस्लिम’ होना चाहता है तो जो कुछ अपने लिए अच्छा समझता है, वही मनुष्यमात्र के लिए अच्छा समझ, क्योंकि निःसन्देह अधिक हँसने से दिल सख्त हो जाता है।

- शरीर के लिए किसी औषधि की जरूरत ही न हो, अगर खाया हुआ खाना हजम हो जाने के बाद नया खाना खाया जाए।

—सन्त तिळवल्लुवर

- अगर तुझे एक क्षण का भी अवकाश मिले तो तू उसे शुभकार्य में लगा, क्योंकि कालचक्र अत्यन्त क्रूर और उपद्रवी है।

—जयास बिन दलहर्स

- असफलता सिर्फ यह साबित करती है कि सफल होने का हमारा इरादा काफी मजबूत नहीं था।

- बिना आचार के कोरा बौद्धिक ज्ञान वैसा ही है, जैसा कि खुशबूदार मसाला लगाया हुआ मुर्गा।

- एक क्षण भी बगैर काम के रहना ईश्वर की चोरी समझो। मैं दूसरा कोई रास्ता भीतरी या बाहरी आनन्द का नहीं जानता हूँ।

—महात्मा गाँधी

- ईश्वर के रहस्य को तू तभी समझ सकेगा, जबकि अपने दिल को साफ बना लेगा।

—जामी

- अगर मुझे यह विश्वास हो जाता है कि मैं हिमालय की किसी गुफा में ईश्वर को पा सकता हूँ तो मैं तुरन्त वहाँ चल देता, पर मैं जानता हूँ कि मैं इस मनुष्य जाति को छोड़ कर उसे और कहीं नहीं पा सकता।

—महात्मा गाँधी

३.१५ विचारसार एवं सुक्तिर्नी (द्वितीय खण्ड)

□ बादशाह को हजरत मूसा ने उपदेश किया कि भलाई वैसी ही गुप्त रीति से कर, जैसे मालिक ने तेरे साथ की है। उदारता वही है, जिसमें निहोरे का मेल न हो, तभी उसका फल मिलता है।

□ यदि वयस्क लोग उन उपदेशों पर स्वयं अमल करें जो वे बच्चों को देते हैं, तो दुनिया अगले सोमवार को ही स्वर्गतुल्य हो जाय।

— आर. किंग

□ दुनिया में इज्जत के साथ जीने का सबसे छोटा और सबसे शर्तिया उपाय है कि हम जो कुछ दिखाना चाहते हैं, वैसे ही वास्तव में हों भी।

— सुकरात

□ कोई कितना ही बड़ा हो, अन्धों की तरह उसके पीछे न चलो। अमुक आदमी कहे सो वेदवाक्य, ऐसा मानने वाले को कोई समझदार कहेगा क्या ?

— स्वामी विवेकानन्द

□ जो अन्याय करता है, वह सहने वाले की अपेक्षा हमेशा अधिक दुर्दशा में पड़ता है।

— लैटो

□ किसी कठिनाई से बाहर निकलने के लिए पहला कदम यह है कि हम इस बात की कुछ जानकारी प्राप्त करें कि हम उसमें कैसे पड़ गये ?

— एनन

□ आज विश्व की कठिनाई यह नहीं है कि लगभग सभी राष्ट्र अणु-आयुधों से सज्जित हैं। बल्कि यह है कि जब भी ये देश परस्पर विचार-विनिमय, सम्मेलन-समागम हेतु बैठते हैं, तब उनकी वाणी में तर्क व सौजन्य तो नहीं क्रोध का आवेश अधिक होता है। भले ही वे भौतिक दृष्टि से आज प्रकृति के चरमबिन्दु पर पहुँच गए हों, किन्तु उनकी अन्तः की दुनिया हाहाकार से, आपाधापी से भरी है। संसार आज अपनी जलती हुई देह को क्षारोदक से शीतल करने हेतु उद्विग्न है, किन्तु मन की शीतलता आए बिना बाह्योपचार व्यर्थ है। मन की शीतलता तभी आ सकती है, जब मानव अपना दुराग्रह से बचना-बचाना मानवता के लिए अनिवार्य हो गया है। यही है वह एकमात्र उपाय जो आसन्न विपत्ति से, दुःखद त्रासदी से विश्व को बचा सकता है।

□ सत्य और अहिंसा अपने आप में अटल आदर्श सिद्धान्त हैं, पर उनका व्यावहारिक स्वरूप क्या हो ? इसे समझना जरूरी है। सहिष्णुता, उदारता, अनेकान्तवाद एक ही सत्य के विभिन्न नाम हैं। वस्तुतः यह भारत की सबसे विलक्षणता का नाम है। जिसे हम संस्कृति के नाम से जानते हैं, जो दुराग्रही नहीं है, जो अपने पर भी संदेह करने की निष्पक्षता रखता है, वह अनेकान्तवादी है। वह समझौतों को अपमान नहीं मानता। भारतीय संस्कृति का निर्वाह करने वाले हर नागरिक की यह विशेषता ही उसे सर्वोच्च पद प्रदान करती है, उसकी गरिमा बढ़ाती है। विश्वनेतृत्व का तो हम सपना न देखें, पर अपनी विस्मृत गरिमा को पहचानकर विश्व मानवता का प्रारम्भिक ढँचा ऐसा तो खड़ा कर ही सकते हैं, जिसमें चारों ओर शान्ति हो, न विग्रह हो, न क्लेश, धर्मान्धता हो, न मान्यताओं का दुराग्रह।

— रामचारी सिंह बिनकर

□ गुफा में रहकर भी आकाश में महल बनाये जा सकते हैं और जनक की तरह महलों में रहने वाला भी विरक्त योगी हो सकता है, अपने मन को साधने की बात है तो वह गुफा में भी हो सकती है और शान-शौकत के बीच रहते हुए भी। मन, महत्वाकांक्षाओं के पंख लगाकर आकाश में विचरण करता रहे तो गुफा में रहने से कोई फायदा नहीं, उससे शान्ति नहीं मिल सकती। अपने देशवासियों की सेवा करते हुए यदि कोई मोह उत्पन्न नहीं होता तो उससे वैभव के बीच रहकर भी परम शान्ति मिल सकती है।

मेरा भी लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है, पृथ्वी के नश्वर राज्य की मुझे जरूरत नहीं है, मैं भी पारलौकिक राज्य की कामना करता हूँ, पर उसके लिए गुफा चुनने की आवश्यकता नहीं हुई। मेरी गुफा मेरे साथ है। आत्म-दर्शन की व्याकुलता मेरे हृदय में है, सत्य को पाना ही मेरा इष्ट है, उसके लिए मैंने देशसेवा को ही अपनी साधना चुनी, इसी जरिये मानवता की सेवा करना चाहता हूँ। प्राणिमात्र के साथ दोनों को एक-भाव से देखता हुआ मैं किसी से घृणा या राग नहीं करता, मुझे लोग घृणा से देखेंगे तो भी उनसे प्यार ही करूँगा। मानव जाति की

सेवा से ही मुझे मुक्ति मिलेगी ऐसा मुझे विश्वास है।
—महात्मा गाँधी

- ईश्वर के सहस्र अर्थात् अनेक नाम हैं अथवा यों कहिए कि वे नामहीन हैं। जो नाम हमको अच्छा मालूम हो, उसी नाम से हम ईश्वर को भजें, उसकी प्रार्थना करें। कोई उसे राम नाम से पहचानते हैं, तो कोई कृष्ण नाम से, कोई उसे रहीम कहते हैं, तो कोई गौड। यह सब एक ही चैतन्य को भजते हैं, परन्तु जिस प्रकार सब तरह का भोजन सबको नहीं रुचते, उसी तरह सब नाम सबको नहीं रुचते। वह ईश्वर अन्तर्यामी सर्वशक्तिमान होने के कारण हमारे हृदय में भावों को पहचानकर हमारी योग्यता के अनुसार हमारे जवाब देता है। अर्थात् प्रार्थना या भजन जीभ से नहीं, वरन् हृदय से होता है, इससे गूँगे, तोतले, मूढ़ भी प्रार्थना कर सकते हैं। जीभ पर अमृत हो और हृदय में हलाहल हो तो जीभ का अमृत किस काम का? कागज के गुलाब से सुगन्ध कैसे निकल सकती है? इसलिए जो सीधे तरीके से ईश्वर को भजना चाहता हो, वह अपने हृदय को मुकाम पर रखे। हनुमानजी की जीभ पर जो राम था, वही उनके हृदय का स्वामी था और इसी से उनमें अपरिमित बल था। विश्वास से जहाज चलते हैं। विश्वास से पर्वत उठाये जाते हैं, विश्वास से समुद्र लौंघा जाता है, इसका अर्थ यह है कि जिसके हृदय में सर्वशक्तिमान ईश्वर का निवास है, वह क्या नहीं कर सकता? वह चाहे कोढ़ी हो, चाहे क्षय का रोगी हो, जिसके हृदय में राम बसते हैं, उसके सब रोग सर्वथा नष्ट हो जाते हैं।

—महात्मा गाँधी

- जब तू दूसरों के मनोभावों को झट से समझ जाता है तो क्या तुझे विश्वास है कि दूसरे लोग तेरे मनोगत भावों को न समझ सकेंगे? यदि ऐसी ही बात है तो तू दूसरों से लाग-लपेट की बातें क्यों करता है? स्पष्ट क्यों नहीं अपने मनोगत भावों को प्रकट करता?
- दूसरों में तू जिन गुणों को देखकर प्रसन्न होता है, यदि वे ही गुण तेरे नित्य नैमित्तिक जीवन के साथी बन जाएँ तो फिर तेरी प्रसन्नता का क्या ठिकाना रहेगा?

—आचार्य इन्द्र

- तूने यदि, कर्म, उपासना, ध्यान, जप, तप, संयम, तीर्थ, व्रत या अन्य उपायों द्वारा अपने को अखिलेश के पादपद्म के पास पहुँचने का अधिकारी नहीं बना लिया, तो साक्षात् ब्रह्मा से भी यदि तेरी भेंट हो जाय तो उससे भी तेरा कुछ उपकार नहीं होने का। यदि उपर्युक्त किन्हीं उपायों से तूने अपने को अधिकारी बना लिया है तो रास्ता चलता गड़रिया भी तुझे ऊँचा उपदेश देने के लिए पर्याप्त होगा।
- तू दूसरों से क्यों पूछता है कि मेरे सम्बन्ध में आपकी क्या राय है? अपने को सदा ही पूछता रह कि मैं क्या कर रहा हूँ? बस, हो गया, इसके सदृश परखने वाला संसार में दूसरा कोई नहीं।
- कोकिला घोर जंगल में सुमधुर स्वर क्यों बोलती है? मालती का पुष्प अरण्य में किसे रिझाने को खिलता है? वृक्ष सुस्वादु फल किस लालच से देते हैं? नीम खाकर भी गौएँ मीठा दूध किसके भय से देती हैं? ऐसा करना इन सबका स्वभाव ही है। इसी प्रकार सत्पुरुष किसी को दिखाने के लिए उत्तम कार्य नहीं करते, उत्तम कार्य करना और सबके साथ सद् व्यवहार करना उनका स्वाभाविक गुण ही है।
- आत्मा असली जिन्दगी और चोखी नगदी है। यह अनुभव करो और ये भौतिक सुख ज्वाला के पास आता है, जैसे नदी समुद्र में मिलती है, जैसे छोटा कर्मचारी किसी महान सम्राट का आदर-सम्मान करता है, ठीक उसी तरह सुख तुम्हारे पास तब आयेंगे, जब तुम अपने सच्चे स्वरूप, अपने परमेश्वरीय प्रताप को, सच्चे तेजस्वी आत्मा को पूरी तरह से जान और अनुभव कर चुकोगे।
- लोग कहते हैं—“हम चाहते हैं जीवन। कौरी कल्पनाएँ हमें नहीं चाहिए।” अरे, जीवन क्या वस्तु है? तुम कौन-सा जीवन चाहते हो? स्वप्नावस्था का या गाढ़ी निद्रावस्था का या जाग्रत अवस्था का? यह सब तो केवल दिखाऊ है। वास्तविक सच्चा जीवन तुम्हारा अपना आपा व आत्मा है, ऐसे कठोर नियम हैं, जो इन्द्रियों के द्वारा तुम्हें सदा विषयानन्द न भोगने देंगे। अपने आपको इन्द्रियों का दास बनाकर इन्द्रियलोक के हाथ बेचकर क्या तुम्हारे

लिए सुखी होना सम्भव है। नहीं यह असम्भव है। प्रकृति निर्दय, कानून इन्द्रियों के भोग में तुम्हें सुखी न होने देंगे। —स्वामी रामतीर्थ

- प्रेम आत्मिक और मोह शारीरिक है। अर्थात् जब तक आत्मिकगुणों के प्रति आकर्षण है, तब तक वह प्रेम का आकर्षण है, जब शारीरिक सौन्दर्य या भोग की ओर आकर्षण होने लगे तो समझो कि यह मोह का आकर्षण है और अपने को सँभालो। एक सुन्दर पुष्प को हम देखते हैं, उसके दैवीय सौन्दर्य पर मुग्ध होते हैं, उसमें ईश्वरीय छटा के दर्शन करते हैं, यह प्रेम हुआ। जब इसे तोड़कर सूँघने या माला बनाकर धारण करने का मन हुआ तो समझो, मोह के शिकार हो रहे हैं। दूसरे प्रेम में जिसे हम प्रेम करते हैं, उसके प्रति त्याग, उत्कर्ष, सेवा करने का भाव होता है, मोह में भोग, सुख-सेवा लेने की चाह रहती है। प्रेम स्वयं कष्ट उठाता है, प्रेमपात्र को कष्ट पहुँचाना नहीं चाहता है। उसकी उन्नति चाहता है अधोगति नहीं। मोहित व्यक्ति अपने सुख की अनियंत्रित इच्छा के आगे प्रेम पात्र के कष्ट के और दुःख की परवाह नहीं करता, उसकी रुचि अच्छे खान-पान, साज-शृंगार, नृत्य, नाटक, सिनेमा, आमोद-प्रमोद में होगी। जहाँ कि एक प्रेमी उसके मानसिक, नैतिक और आत्मीयगुणों तथा शक्तियों के विकास में उसकी योजनाओं और कार्यक्रम में मग्न रहेगा।

प्रेम से मोह, मोह से भोग, भोग से पतन, यह अधोमुख जीवन का उत्तरोत्तर क्रम है, प्रेम से सेवा, सेवा से आत्म-शुद्धि, आत्म-शुद्धि से आत्मोगति ऊर्ध्वगति जीवन का क्रम है। प्रेम से हम मोह की तरफ बढ़ रहे हैं या सेवा की तरफ यही हमारे आत्म-परीक्षण की पहली सीढ़ी है। —सर्वोदय

- यदि तेरी आत्मा प्रतिष्ठा की प्यासी है, यदि तेरे कानों को प्रशंसा के उद्गारों से सुख होता है तो जिस धूलि से, भौतिक पदार्थों से तेरा पिंड बना है, उससे ऊपर उठ और किसी उच्च तथा प्रशंसनीय वस्तु को अपना लक्ष्य बना।

इस वट-वृक्ष को देख, जिसकी शाखाएँ अब आकाश तक फैल गई हैं। यह किसी दिन पृथ्वी के गर्भ में एक छोटे-से बीज के रूप में था।

प्रतिस्पर्द्धियों को बुरे और नीच उपायों से दबाने की इच्छा से घृणा कर, उनसे श्रेष्ठ बनकर ही अपने को ऊँचा उठाने का प्रयत्न कर, जिससे तुझे इस उच्चता की लड़ाई में यदि सफलता न मिले तो सम्मान अवश्य प्राप्त हो।

बचाए जाने पर भी ताड़ के पेड़ की तरह ऊँचा उठता चला जाता और आकाश में विहार करने वाले गरुड़ की तरह ऊँची उड़ान भरता हुआ भगवान भुवन-भास्कर के तेज पर भी अपनी दृष्टि रोपता है।

वह रात के स्वप्न में महान पुरुषों के आदर्शों को देखता और दिनभर बड़े हर्ष के साथ उनका अनुसरण करता है।

वह बड़े-बड़े मंसूवे बाँधता और प्रसन्नतापूर्वक उनको पूर्ण करता है। इससे उसकी कीर्ति चारों ओर छा जाती है।

परन्तु मत्सरी मनुष्य का हृदय नेकी और कटुता से भरा रहता है। उसकी जबान जहर उगलती है, वह अपने सहवासी के उत्कर्ष को देखकर बेचैन हो जाता है।

स्वयं उसके हृदय में भलाई के प्रति प्रेम नहीं होता, इसलिए उसे यह विश्वास बना रहता है कि और लोग भी मेरी ही तरह हैं।

जो उससे आगे बढ़ते हैं, उन्हें वह समझता है कि कुछ नहीं है। उनके समस्त कार्यों को वह सबके सामने भाड़े के रूप में पेश करता है।

वह हमेशा दूसरों के बुरे कामों की ताक में रहता है, परन्तु मनुष्य का अति द्वेष उसका पीछा नहीं छोड़ता और वह स्वयं मकड़ी की तरह अपने ही बनाए जाल में फँस जाता है।

—श्री हरिभाऊ उपाध्याय

- मनुष्य दुःख नहीं चाहता, फिर भी जीवन में दुःख ही नहीं, उसका उपभोग भी है। दुःख से अनुभव-समृद्ध बन जाते हैं, हमारा व्यक्तित्व या गीता की परिभाषा में कहें तो हमारा 'अध्यात्म' बढ़ता है। (गीता में 'स्वभावी अध्यात्म उच्छते व्याख्या की गई है, वहाँ स्वभाव से मनुष्य के

कर्तव्य का मतलब निकलता है और इसी को अध्यात्म भी कहा जाता है। हमदर्दी के कारण हमारा व्यक्तित्व हमारे शरीर से अलहदा होकर, इन्द्रियों का बन्धन तोड़कर और संकुचितता से निकलकर विकसित है और हमारी देह से भिन्न व्यक्तियों, मूर्तियों, घटनाओं और तंत्रों के साथ एकरूप हो जाता है। व्यक्तित्व का यह विकास ही आनन्द है। साधारणतौर पर अस्वस्थ या स्वस्थ दशा में मनुष्य को अपनी शक्ति का भान नहीं रहता। दुःख या संकट के मौके पर उसकी शक्ति प्रकट होती है। शक्ति का यह जन्म उसे कष्टदायक भले ही हो, फिर भी अनुभव लेने की अपनी शक्ति का ज्ञान हो जाना तो मनुष्य के लिए कम सन्तोष देने वाला नहीं होता। विज्ञान के प्रयोग, युद्ध के पराक्रम और जीवन के तजुर्वे ये सभी हमें अपने अध्यात्म के विकास का आनन्द प्रदान करते हैं। जिस व्यक्तित्व के विकास की जो कला या कौशल है वही योग है। शिक्षा का उद्देश्य भी अध्यात्म का विकास ही है।

- व्यक्तित्व का विकास या तादात्म्य होना ही आनन्द का स्वरूप है। जब यह आनन्द भूल से इन्द्रियों को तृप्त करने की कोशिश करता है तब इस धारा को संकुचित कर डालती है। इसके अन्त में विरसता, ग्लानि, दुःख और पछतावा ही हाथ लगता है। —*काका कालेलकर*
- ऐसा मत सोचिये कि इस संसार में दुःख ही दुःख है, तुम यहाँ भी स्थायी सुख प्राप्त कर सकते हो यदि अपनी अतृप्त तृष्णाओं का परित्याग कर दो। यथार्थ में बड़ी आपत्ति तृष्णा है, वह न तो कभी शान्त होती है और न शिथिल पड़ती है। कामनाएँ पूर्ण होने पर भी सन्तोष नहीं होता, वरन् पहले से भी और अधिक प्यास बढ़ती है। कहते हैं कि मनुष्य अपूर्ण है, किन्तु यदि वह अपनी वासना छोड़ दे तो इसी जीवन में पूर्ण हो सकता है।
- तृष्णा एक बन्धन है, जो आत्मा को जन्म-मरण के जाल में जकड़े हुए है, जिसे सांसारिक वस्तुओं की तृष्णा हरदम सताती रहती है, भला वह भव-बन्धनों से किस प्रकार पार हो सकेगा? प्रपञ्च का फेरा तभी तक है, जब तक कि विभिन्न प्रकार की इच्छाओं ने प्राणी

को बाँध रखा है। खोज करनी है, उनके लिए सर्वोत्तम साधन यह है कि अपनी इच्छा को वश में करें। इस संसार में सन्तोष से बढ़कर और कोई धन नहीं है, स्वर्ग में भी कोई सम्पदा इसकी समता नहीं कर सकती। कोई मनुष्य देखने में कितना ही स्वाधीन क्यों न प्रतीत हो, पर वह विचारा वास्तव में एक कैदी के समान है, जिसके मन में तृष्णा का डेरा पड़ा है। चाहे वह कितना ही बड़ा धनी क्यों न हो, भिखारी से ही उसकी तुलना की जा सकती है।

- यदि तुम संसार में कुछ श्रेष्ठ कर्म करना चाहते हो तो आवश्यक है कि तृष्णा और वासनाओं का परित्याग कर दो। कर्म करो, अपने कर्तव्य में त्रुटि मत रखो, परन्तु फल के लिए प्यासे मत फिरो। जो करेगा उसे मिलेगा, किन्तु जो पाने के लिए व्याकुल फिरेगा उसे आपत्तियों के पहाड़ सिर पर उठाने पड़ेंगे। जो चाहता है कि स्वर्ग का राज मेरे पाँवों तले पड़ा रहे उसे चाहिए कि अपनी तृष्णा का परित्याग कर दो। —*सन्त तिठवल्लुवर*

- काला मनुष्य गेरा नहीं हो सकता, इसी प्रकार कुरूप का सुन्दर, गूँगे का वाचाल, पंगु का द्रुतगामी होना कठिन है, इच्छा करने से कुरूपता नहीं जाती पर हाँ, मूर्खता अवश्य चली जाती है। इसलिए चतुर मनुष्य अपनी अविद्या और कुटेवों को ढूँढ़कर त्यागने और उनके स्थान पर सद्ज्ञान एवं सत्स्वभावों को अपने अन्दर धारण करने का प्रयत्न करते रहते हैं। जो व्यक्ति प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहता है, उसे चाहिए कि अपने सद्गुणों की वृद्धि करने में जी-जान से जुट जावे। जो शिक्षा ग्रहण नहीं करता, उद्योग नहीं करता, परिश्रम नहीं करता, अपनी त्रुटियों को ढूँढ़कर उनका संशोधन नहीं करता निश्चय समझिए कि वह जीवन फल प्राप्त न कर सकेगा। हम पूछते हैं, कि तुम क्या चाहते हो? या यह लोग तुमसे प्रसन्न रहे और मित्र भाव बरतें? या यह कि सब लोग अप्रसन्न होकर तुम्हारे ऊपर टूट पड़ें? सुनो, तुम दूसरों के साथ जो बरताव करोगे तो भी तुमसे वैसा ही व्यवहार करेंगे। जो न्याय का व्यवहार करता है, वह चतुर है, क्योंकि दूसरे भी उससे न्याय का व्यवहार करेंगे।

सज्जन को ही सुख-शान्ति और सहानुभूति भरा व्यवहार प्राप्त होता है। जो निर्दयी, अन्यायी और अहंकारी है, उसे स्वयं भी दूसरों के अन्याय, अहंकार का भागी बनना पड़ेगा। दूसरों को दुःख देने वाला सुखी जीवन नहीं बिता सकता।

- सुख-वैभव, ऐश्वर्य और कीर्ति सब लोग चाहते हैं, परन्तु तन-मन से परिश्रम किए बिना स्थायी रूप से इनमें से एक भी वस्तु प्राप्त नहीं हो सकती। आलस्य सुख का शत्रु और उद्यम आनन्द का सहचर है, जो इस तथ्य को भली-भाँति समझता है, वह भाग्यवान है, वही बुद्धिमान है, वही चतुर है, बहुतों की जवान पर रहना, बहुतों के हृदय में रहना, बहुतों के साथ रहना, संसार में धर्म बढ़ाना और पतितों को पवित्र करना, यही तो चतुरता के लक्षण हैं।

—समर्थ गुरु रामदास

- जिस समय एक मनुष्य यह सोचने लगता है कि—“यह संसार मिथ्या है, कोई वस्तु स्थायी नहीं, मुझे मर जाना है, जीवन एक स्वप्न मात्र है”—उस समय उसको अपने जीवन में कोई दिलचस्पी नहीं रहती। वह उदासीन हो जाता है। संसार की जिम्मेदारियाँ उसको बोझ सम मालूम होती हैं। न उसको घरवालों से प्रेम, न उसको जाति का कुछ ख्याल। उसका देश चाहे रसातल में चला जाय, वह कुछ परवाह नहीं करता। उसे चाहे कोई गालियाँ दे, चाहे मारे-पीटे उसके लिए सब बराबर हैं। अपने देश-बन्धुओं का दुःख उसके लिए कल्पना मात्र है। देश-हितैषिता क्या वस्तु है ? यह बात उसके दिमाग में भी नहीं घुस सकती। उसकी जन्म-भूमि का धन चाहे कहीं का कहीं चला जाए, उसके करोड़ों भाई चाहे भूखे मर जाएँ, उसको इसका कुछ दुःख नहीं होता।

स्मरण रखिए, यह वह विषय है कि जिसके खाने से मनुष्य का मनुष्यत्व जाता रहता है। धैर्य, क्षमा, वीरता, साहस, सत्य आदि दैविक गुण कभी भी विकास को प्राप्त नहीं हो सकते, जब तक कि मनुष्य इस विषय को अपने शरीर से न निकाल दे। उस व्यक्ति के सिर पर कोई जिम्मेदारी नहीं रहती जो बोझ उठाने से घबड़ाता है, उसके अंग-प्रत्यंग बड़े बड़े

हैं ? वह अवश्य ही भीरु हो जाएगा, विरोधों का सामना करने की शक्ति जाती रहेगी। वह मिलकर काम नहीं कर सकेगा। संघ (organization) से उसे घृणा होगी। ऐसी दशा में ये दैविक गुण भी उसके लिए निकम्मे हो जाते हैं और वह मनुष्य शरीर रखता हुआ भी पशुवत हो जाता है।

—स्वामी सत्यदेव जी परित्राजक

- जीवन ईश्वर है या ईश्वर जीवन, इस प्रश्न पर ताओ धर्म के दार्शनिक बहुत समय तक विचार करते रहे और अन्ततः वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि जीवन मनुष्य के लिए ईश्वर का सर्वोपरि उपहार है, इसकी गरिमा इतनी बड़ी है जितनी इस संसार में अन्य किसी सत्ता की नहीं। इसलिए उसे ईश्वर के समतुल्य माना जाय तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति न होगी।

- ईश्वर की झोंकी जीवनसत्ता की संरचना और सम्भावना को देखकर की जा सकती है। यदि उसकी ठीक तरह उपासना की जा सके तो वे सभी वरदान उपलब्ध हो सकते हैं, जो ईश्वर के अनुग्रह से किसी को कभी मिल सके हैं। यह प्रत्यक्ष देवता है जो हमारे इतना समीप है कि मिलन से उत्पन्न असीम आनन्द की अनुभूति अहर्निश की जा सके।

- जीवन का उद्देश्य है, अपने अन्तराल में छिपे दिव्य का, अद्भुत का, सुन्दर का दर्शन कराना। उस ईश्वरीय जीवन के साथ जोड़ देना जो इस ब्रह्माण्ड की आत्मा है। पूर्ण है और वह सब है, जिसमें मानवीय कल्पना से भी कहीं अधिक सौन्दर्य का, सुखद का सागर लहराता है।

- ईश्वर को समझना हो तो जीवन को समझो। ईश्वर को पाना हो तो जीवन को प्राप्त करो। हम जीवनरहित जिन्दगी जीते हैं, इससे आगे बढ़ें, गहरे घुसैं, निर्मल करें और उस महान अवतरण को प्रतिबिम्बित करें जो प्रेम के रूप में आत्म-सत्ता के अन्तराल में आलोक की एक किरण जैसा विद्यमान है। आत्मा का दिव्य से ओत-प्रोत करने की साधना से ही वह सब प्राप्त हो सकता है, जिसे जीवन का लक्ष्य और धारदान कहा गया है।

—सन्त वास्वाणी

- एक समय यह मान्यता थी कि जिसे भगवान में आस्था नहीं, वह आस्तिक नहीं हो सकता। जो व्यक्ति भगवान में आस्था न रखता, उसे नास्तिक माना जाता था, परन्तु अब यह मान्यता इस रूप में स्वीकृत की जाती है कि भगवान में आस्था न रखने वाला व्यक्ति ही नहीं, अपितु स्वयं अपने आप में 'आस्था' न रखने वाला व्यक्ति आस्तिक नहीं माना जा सकता, अपने आप पर जो व्यक्ति अविश्वास व अनास्था रखता है, वह नास्तिक है।
- आस्तिकता का अर्थ केवल मात्र भगवान में आस्था रखना ही नहीं, अपितु स्वयं अपने आप में आस्था रखना भी होता है। आत्मा ही तो परमात्मा है। अतः अपने आप पर विश्वास रखना, आस्थावान रहना उस परमात्मा के प्रति आस्थावान रहना ही है।
- अपने में आस्था रखिए। अपने परिवार के सदस्यों में, पड़ोसियों में, समाज के हर व्यक्ति के प्रति आस्थावान बने रहें तो सारे संसार में आप कर्मठ बने रहेंगे।
- अनेक देशों में विध्वंसकारी आयुधों के निर्माण में हो रही प्रतिस्पर्धा एक-दूसरे पर अविश्वास, एक की दूसरे के प्रति अनास्था के ही तो परिणाम हैं। अपनी 'आस्था' गँवाकर आस्तिक बने रहने की बात सोचना एक ढोंग ही है। आस्थाहीन व्यक्ति आस्तिक हो ही नहीं सकता।
- यदि आप मानते हैं कि अनन्त कल्याणकारी परमसत्ता ही विश्व में सर्वत्र काम कर रही है, यदि आप मानते हैं कि वह सर्वव्यापी परम तत्त्व ही सबमें विराजमान है, ओत-प्रोत है, आपके हमारे मन और आत्मा में व्याप्त है तो फिर एक-दूसरे के प्रति अविश्वास को कहाँ स्थान होगा ? और जब हर मनुष्य अपने आप व एक-दूसरे पर विश्वास करने लगेगा, आस्थावान बन जाएगा तो यह धरती ही स्वर्ग बन जाएगी व हर मनुष्य देवता।
- स्वामी विवेकानन्द
- हे विश्वकर्मन् ! आज हम तुम्हारे सिंहासन के सम्मुख खड़े यह बात सुनाने आये हैं कि हमारा संसार आनन्दमय है, हमारा जीवन उत्साहमय है। यह तुमने बहुत अच्छा किया कि हमें क्षुधा, तृष्णा के आघात से जाग्रत

रखा। तुम्हारे जगत में तुम्हारी बहुधा शक्ति के असीम लीला क्षेत्र में हमें जगाये रखा। यह भी अच्छा ही हुआ कि तुमने हमें दुःख देकर सम्मानित किया। विश्व के असंख्य करके हमें गौरवान्वित किया। उन सबके साथ हम तुम्हारे समक्ष प्रार्थना करने आये हैं। तुम्हारी प्रबल सामर्थ्य सदैव वसन्त के दक्षिण-पवन की तरह प्रवाहित रहे। मानवता के स्वर्णिम इतिहास से युक्त इस महाक्षेत्र पर यह पवन बहता रहे। अपने विविध फूलों के परिमल को वहन करता हुआ हमारे राष्ट्र के शब्दहीन, प्राणहीन, शुष्क, प्रायः चित्त अरण्य के सारे पुष्प सुगन्धित करे, हमारे हृदय की प्रसुप्त शक्ति फल-फूल किसलय में सार्थक होने के लिए जाग उठे।

- हमारे मोह के आवरण उठाओ, उदासीनता की निद्रा से हमें जगाओ। यही इसी क्षण अनन्त देशकाल में धावमान चिरचांचल्य के बीच हम तुम्हारे आनन्द रूप को देख सकें। तुम्हें प्रणाम करते हुए हम सृष्टि के उस क्षेत्र में प्रवेश करने की आज्ञा माँगते हैं, जहाँ अभाव की प्रार्थना, दुःख का क्रन्दन, मिलन की आकांक्षा और सौन्दर्य का निमन्त्रण हमें सतत आह्वान देते हैं, जहाँ विश्व-मानव का महायज्ञ हमारी आहुतियों की प्रतीक्षा कर रहा है।

—रवीन्द्रनाथ टैगोर

- दुनिया में पैदा हुए विद्वानों में से चाहे हमारी बुद्धि सबसे प्रखर क्यों न हो फिर भी हम ईश्वर तक नहीं पहुँच सकते। बुद्धिमान होकर भी मनुष्य दस गुना अधिक स्वार्थी बन सकता है। हृदय का संस्कार हुए बिना उच्चतम बौद्धिक शिक्षा पाकर भी मनुष्य घोर अधार्मिक हो जाते हैं। यदि हृदय और बुद्धि में विरोध उत्पन्न हो तो तुम हृदय का अनुसरण करो, क्योंकि बुद्धि केवल एक तर्क के क्षेत्र में काम कर सकती है। वह उसके परे नहीं जा सकती। वह केवल हृदय है जो हमें उच्चतम भूमिका में आरूढ़ करता है। वहाँ तक बुद्धि कभी नहीं पहुँच सकती। बुद्धि से कभी अन्तःस्फूर्ति नहीं प्राप्त हो सकती। अन्तःस्फूर्ति का कारण केवल ज्ञानोद्भासित हृदय ही है। केवल बुद्धि प्रधान किन्तु हृदयशून्य मनुष्य कभी स्फूर्तिमान नहीं हो सकता। प्रेममय पुरुष की समस्त क्रियाएँ उसके हृदय से ही अनुप्राणित

होती है। एक शिक्षित व्यक्ति एक साथ ही बुद्धिमान और शैतान हो सकता है, किन्तु जिसके हृदय में वह शैतान कभी घुस नहीं सके, वही वन्दनीय है चाहे वह अपढ़ किसान ही क्यों न हो?

—स्वामी विवेकानन्द

- हमारे ऋषि कह गये हैं कि “आनन्द से ही सभी जीवों की उत्पत्ति होती है। उसी से वे विकास पाते और अन्त में आनन्द में ही लीन हो जाते हैं।” इसका अर्थ यह नहीं कि ऋषियों को प्रकृति के नियमों का ज्ञान नहीं था अथवा वे कल्पना जगत में इतना विचरण करते थे कि उन्हें वस्तुस्थिति का ज्ञान नहीं रहता था। वायु, अग्नि और मृत्यु भी प्रकृति के कठोर अनुशासन में बँधे हैं, यह भी वे जानते थे। फिर भी उनका अन्तःकवि हृदय आनन्दविभोर होकर गीत गाता था। आनन्द से ही सब जीव उत्पन्न होते हैं, विकास पाते हैं और आनन्द में ही लीन हो जाते हैं। “आनन्द रूपममृतं यद्विभाति” यह कहते हुए वे सृष्टि के आनन्द स्वरूप का ही वर्णन करते थे। आनन्द की पूर्णता की स्वाभाविकता ही इसी में है कि वह इस रूप में जो नियम-व्यवस्था है, विधि-अनुशासन है, अपनी अनुभूति करें—आनन्द स्वयं प्रकट होने के लिए रचना करता है। गायक का आनन्द संगीत में, नर्तक का नृत्य में, कवि का छन्दों के रूप में प्रकट होता है। मनुष्य का असीम आनन्द भी कई रूपों में प्रकट होकर मनुष्य को निर्माता की पदवी दे देता है।

यह आनन्द जिसे प्रेम-रस भी कहते हैं, स्वभाव से ही द्वित्वमय है। यह व्यक्ति को तो उसकी अनुभूति करता है, आस-पास परिकर को भी उसके अन्तः के उल्लास का परिचय देता है। गायक गीत गाते हुए श्रोता भी होता है। प्रेमी अपनी प्रिय वस्तु के माध्यम से अपने ही रूप की छाया देखता है। प्रिय वस्तु से वियोग की कल्पना भी उसी के आनन्द की कृति है, जो वियोग के बाद फिर मिलन की इच्छा बन जाती है। परमात्मा का यह शाश्वत स्वरूप इन सबके अन्दर विद्यमान है। प्रेम साधना से, आत्मीयता विस्तार से आनन्द, उल्लास को बिखेर कर हम सब उसका प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं—यह एक शाश्वत सत्य है।

—रवीन्द्रनाथ टैगोर

- जिस प्रकार एक भिक्षुक एक हाथ से सितार बजाता है, दूसरे से ढोलक बजाता है और साथ ही मुँह से भजन भी गाता है, उसी प्रकार ऐ मनुष्यो ! तुम अपना कर्तव्य कर्म करो, किन्तु सच्चे हृदय से ईश्वर का नाम जपना न भूलो।
- जिस प्रकार एक स्त्री धनियों के घर के काम-काज में लगी होती हुई भी अपने पति का स्मरण करती है, उसी प्रकार संसार के धन्यों में लगे रहते हुए भी मनुष्यों को ईश्वर का चिन्तन दृढ़ता के साथ करते रहना चाहिए।
- जिस प्रकार धनियों के घरों की सेविकाएँ उनके लड़कों का पोषण करती हैं और अपने खास पुत्रों की तरह उनको लाड़-प्यार करती हैं, किन्तु वे नौकरानियों के पुत्र नहीं हो जाते, उसी प्रकार तुम लोग भी अपने पुत्रों के पोषणकर्ता समझो, उनका असली पिता तो वास्तव में ईश्वर है।
- जिसको उथले तालाब का स्वच्छ पानी पीना है, उसे हलके हाथ से पानी पीना होगा। यदि पानी कुछ भी हिला तो नीचे का मैल ऊपर चला आवेगा और सब पानी गन्दा हो जाएगा, उसी प्रकार यदि तुम पवित्र रहना चाहते हो तो विश्वास और सावधानी के साथ ईश्वर से प्रेम करो। व्यर्थ के विवादों में अपने समय को नष्ट न करो, नहीं तो नाना प्रकार की शंका-प्रतिशंकाओं से तुम्हारा मस्तिष्क गन्दा हो जाएगा।
- रामकृष्ण परमहंस
- भवसागर को तैरकर पार करते हुए चिन्ता किस बात की ? देखो पार तो वह कटि पर हाथ धरे खड़े हैं। जो कुछ चाहते हो उसके वही तो दाता हैं। उनके चरणों में जाकर लिपट जाओ। वह जगत स्वामी तुमसे कोई मोल न लेंगे। केवल तुम्हारी श्रद्धा, भक्ति से ही तुम्हें अपने कंधे पर उठा ले जाएँगे। जहाँ भगवान् शन्न हैं, वहाँ भक्ति और मुक्ति की चिन्ता क्या, वहाँ दैत्य और दरिद्र कहाँ, वही भवरोग की औषधि हैं। जन्म, जरा और व्याधि इससे दूर हो जाती है। परमात्मा की शरण में जाओ, उन्हीं के बनो। उनके स्मरण में मग्न हो जाओ। इस देह से ही मुक्ति प्राप्ति करो। उठो आँखें खोलो। यह नरतनु बड़ी भारी निधि है। ईश्वर-त्नाम कर इससे सार्थक करो।

□ जीवन का लक्ष्य है प्रभु की प्राप्ति। इसके लिए मनुष्य शरीर ही एकमात्र साधन है। इस साधन को प्राप्त करके सबसे बड़ी बुद्धिमत्ता की बात यही हो सकती है कि भगवान को प्राप्त कर हम अपने जीवन को सफल बनाने के लिए सच्चे मन से संलग्न हों। —सन्त तुकाराम

□ पाप के स्वरूप में एक भयानक आकर्षण होता है, ऐसा आकर्षण जैसा एक शलभ के लिए दीपशिखा में। शिखा के सम्मोहन में फँसकर पतंगा अपने पंख जलाकर भी उसी की ओर रेंगता रहता है। यहाँ तक कि आखिर जलकर खाक ही हो जाता है। क्या कारण है कि पाप के प्राणहन्ता सौन्दर्य की ओर मनुष्य दौड़ता रहता है। इसका प्रमुख कारण है सच्चे सौन्दर्य का साक्षात्कार न होना, यदि मनुष्य को शिव-सौन्दर्य का दर्शन हो जाय तो वह पाप के झूठे आकर्षण से कदापि प्रेरित न हो। मनुष्य यदि एक बार सच्ची आँखों से अपनी आत्मा की ओर देख ले तो उसे संसार के सारे पापों से घृणा हो जाए और वह निर्विकार हो उठे।

□ मनुष्य की इस सौन्दर्य-विषयक भ्रान्ति ने ही इस स्वर्ग पृथ्वी को बहुसंख्यक व्यक्तियों के लिए नरक में परिणत कर रखा है। ऐसे लोग ईश्वर की प्रशंसनीय कृति-सुन्दरता को अपनी पाप-दृष्टि से कलुषित कर देते हैं। उनको प्रत्येक क्षण अपने निम्न स्वार्थ, पाशविक वासना, जघन्य रुचि की पूर्ति के अतिरिक्त और कोई विचार आता ही नहीं। इसके परिणाम स्वरूप वे स्वयं तो पतन के गर्त में गिरते ही हैं, अपने निकटवर्तीजनों के लिए भी काँटे बोते हैं। जिसे आत्म-कल्याण की तनिक भी इच्छा हो उसे सदैव पाप से घृणा करके सत्यवृत्तियों का चिन्तन ही करते रहना आवश्यक है।

—रामकृष्ण परमहंस

□ बीस चापलूसों की अपेक्षा एक निन्दक भला है, जो कमियाँ दर्शाता रहकर कसौटी का कार्य करता है। जिनमें निन्दा सहन करने की शक्ति नहीं है अथवा जिनके निन्दक नहीं हैं, उनकी प्रगति में सन्देह है। प्रशंसकों और चापलूसों द्वारा वस्तुस्थिति को सदैव बढ़ाकर प्रस्तुत किये जाने से अहं, दंभ और प्रदर्शन की वृत्ति

पनपती है। इससे व्यक्ति का पतन अवश्यम्भावी है। —हराल्ड हास

□ उद्योगे नास्ति दरिद्रिबं जपतो नास्ति पातकम्।
मीने च कस्यो नास्ति, नास्ति जागरिते भयम्॥

—वाणक्य ३/११

पुरुषार्थ करने से दरिद्रता नहीं रहती, जप करते रहने वाले को पाप नहीं लगता, मीन होने से कलह नहीं होता और जागने वाले (सावधान) के निकट भय नहीं आता।

□ तयस्य विरा अणुबन्धु कुत्रह कुम् . . .

ब उसा इकाह मुञ्च मुत्तम्।

—सूर्ये बकर १/२/२२

धर्म इसी में नहीं है कि नमाज में अपना मुख पूरब की ओर फेर लो अथवा पश्चिम की ओर फेर लो वरन् वास्तविक शुभकार्य तो उन लोगों के हैं, जो अल्लाह, मृत्यु, धर्म पुस्तक और अवतारों पर ईमान लाये। जिन्होंने सम्बन्धियों, अनाथों, निर्धनों, यात्रियों तथा भिखमंगों को धन दिया, अपने वचन को पूरा किया तथा जाने पर संकटकाल को पूरा किया तथा सताये जाने पर संकटकाल में दृढ़ रहे। यही लोग हैं, जो सच्चे निकले और सदाचारी हैं।

□ जो व्यक्ति ऊँचे विचारों की सुखद संगति में रहते हैं, वे कभी अकेले नहीं हो सकते।

—फिलिप सिडनी

□ हमारी प्रकृति पेचीदी है, अतः मनुष्य से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुओं की बावत व्यापक कथन करना आरक्षित है। जो आदमी एक-दो उदाहरणों ही से और अति शीघ्र सर्वव्यापी परिणाम निकालता है, वह अक्सर झूठा होता है, अर्थात् गलत बात कहता है। जिस कथन का समर्थन तथ्य से नहीं होता वह निरर्थक है। अटकल और निन्दा के वचन, चाहे जैसी सुन्दर भाषा में कहे गये हों, सत्य स्वरूप नहीं जानी चाहिए। —यूनियस

□ सेवा के लिए पैसों की जरूरत नहीं होती, जरूरत है अपना संकुचित जीवन छोड़ने की, गरीबों से एकरूप होने की। धन-सम्पत्ति, शारीरिक सुख और मान, बढ़ाई, प्रतिष्ठा आदि को न चाहते हुए, ममता, आसक्ति और अहंकार से रहित होकर मन, वाणी, शरीर और धन से सुख देना सेवा ही है। —रक्तिन

१.४३ विचारसार एवं सुक्तिर्वा (द्वितीय खण्ड)

- अपनी बुराइयाँ दूँढ़ने वाला पुरुष रण में विजयी योद्धा से भी अधिक वीर होता है।
—मिल्टन
- उत्तम व्यक्ति शब्दों में सुस्त और चरित्र में चुस्त होता है।
—कम्प्यूशियस
- जैसे विशाल पर्वत हवा के झोंकों से हिलते-डुलते नहीं वैसे ही बुद्धिमान लोग निन्दा-स्तुति के कारण अपने कर्तव्य से विचलित नहीं होते।
- पापी को मित्र न बनाओ और न अधर्म पुरुष को। कल्याण करने वाले को मित्र बनाओ और श्रेष्ठ पुरुषों के साथ रहा करो।
- तू परमेश्वर और अपने प्रभु से अपने सारे मन, सारे जीव और अपनी सारी बुद्धि के साथ प्रेम कर।
—मसी २२
- धन्य है वे जो नम्र हैं, वे पृथ्वी के अधिकारी होंगे।
—मसी ५
- तुम परमेश्वर और भोग दोनों की सेवा नहीं कर सकते, विषय न बटोरो, कल के लिए चिन्ता न करो, कल अपनी चिन्ता आप करेगा।
—महात्मा ईसा
- विद्या धर्म रक्षा के लिए है न कि धन जमा करने के लिए। जिसने धन कमाने के लिए अपनी नामबरी और विद्या खर्च कर दी, वह उसके समान है—जिसने खलियान बनाया और उसे बिल्कुल जला डाला।
- खून न करना, व्यभिचार न करना, चोरी न करना, झूठी गवाही न देना, ठगाई न करना और अपने पिता और माता का आदर करना और अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम करना।
—मसी १६
- चरित्रहीन मूर्ख, चरित्रहीन विद्वान से अच्छा है क्योंकि मूर्ख तो अन्धा होने के कारण पथ-भ्रष्ट हुआ, पर विद्वान दो आँखें रखते हुए भी कूप में गिरा।
- अगर तुझको ईश्वर की आँखों-सी दृष्टि मिल जाए तो तुझे अपने से बढ़कर कोई पतित न दिखाई पड़ेगा।
- किसी आदमी की विद्या-बुद्धि का हाल तुम एक दिन में भले ही मालूम कर लो, पर उसके मानसिक दोषों का पता तुम्हें वर्षों तक नहीं

चल सकता। इसलिए किसी विद्या आदि पर मोहित होकर उस पर एक साथ विश्वास मत करो।

- बड़ी महत्वाकांक्षाएँ सँजोने वाले लोगों से ईसा ने पूछा—क्या तुमने इतनी सम्पदा जुट ली है कि इच्छित किला बना सको ? साधनों के बिना जो बड़ी व्यवस्थाएँ बनाता है, उसे अधूरी छोड़नी पड़ती है। जल्दी बनाने की उतावली करने से तो यह अच्छा है कि संयम और साधना एकत्रित करो। योग्यता बढ़ाना और मुत्तैदी अपनाना वास्तविक साधन जुटाना है।
अच्छा यह है कि तुम और कुछ न बनाकर सिर्फ अपने को ही बनाओ। तुम्हारा किला भीतर ही सुरक्षित है। वहाँ रहने वाले को किसी खतरे का समना नहीं करना पड़ता।
—लूटकाट ६ : १७-१८

- प्राणियों में मनुष्य ही एक ऐसा है जो रोता हुआ जन्मता है, शिकायतें करता हुआ जीता है और पछताता हुआ मरता है।
—वाल्टर टेम्पल
- अगर मनुष्य को यह मालूम हो कि उसके लिए क्या निश्चित है और क्या अच्छा है तो फिर उसका विकास हो ही न सकेगा। अनिश्चित में से उपयुक्त को खोज निकालने की आशंका ने ही मनुष्य को बुद्धि और प्रगति का अनुदान दिया है।
—सुकरात
- अच्छे दृष्टान्त हमको अच्छे कार्य करने के लिए प्रेरित करते हैं एवं महान आत्माओं का इतिहास हमें उदार विचार के लिए प्रोत्साहित करता है।
—सेनको
- हर व्यक्ति यह व्रत ले ले कि वह नित्य ही अपनी शक्ति-सामर्थ्य के अनुसार कार्य करेगा और पवित्र तथा परोपकारी जीवन व्यतीत करने में कोई कसर न उठा रखेगा तो मैं विश्वासपूर्वक कहता हूँ कि उसका जीवन अपूर्व आनन्द तथा आशातीत उत्साह से भर जाएगा।
—बासिलेटन
- एक दीप से दूसरे सैकड़ों दीपक जलते और प्रकाश फैलाते हैं, उसी प्रकार महान आत्माएँ अकेली आती, पर सैकड़ों को जाग्रत कर जाती हैं।
—सुकरात

- मैंने तीन मूल्यवान, चीजें इस संसार में पाई और अपनाई। (१) सज्जनता। (२) मर्यादा का पालन। (३) उदारता। इन तीन साधनों को अपनाकर ही मैं जहाज जैसा भारी और उपयोगी जीवन जी सका। —**लोआत्से**
- विज्ञान की अति, मानवता का सर्वनाश न कर डाले, मुझे इसी बात की चिन्ता है। —**आइन्स्टीन**
- जब लोग चित्र और प्रतिमाएँ पूजते रहे, मैंने ज्ञान को सर्वोत्तम देवता मानकर उसकी उपासना की। जीवन का हर क्षण कुछ नया जानने की उत्कण्ठ में डूबा रहा, इस अदम्य लालसा ने मेरे छीटे-से जीवन में प्रकाश बिखेर दिया। वही रोशनी मैं सारे संसार को देना चाहता हूँ। मनुष्यता का सर्वोत्तम वरदान है ज्ञान पाना और लोकमंगल की भावना से उसे औरों तक पहुँचाना।
- जब तुम अपने श्रम का दान करने की इच्छा रखकर कठिन परिश्रम करते हो तो अच्छे हो, अपनी भलाई के लिए परिश्रम करते हो तो भी अच्छे हो, अपने लाभ की आकांक्षा रखकर काम करने पर तुम जड़ के समान हो जो केवल पृथ्वी से लिपटकर उसका स्तनपान अपने लिए करती है। जब तुम दूसरों के लिए कुछ करते हो तो फल के समान हो जो केवल परहित के लिए ही है। वह हमें संकेत करता है 'ऐ मनुष्य ! दूसरों को देने के लिए ही सरस, परिपक्व और सुस्वादु मैं बना हूँ। ऐसा तुम भी बनो।' —**कलील विमान**
- दुष्ट मनुष्य सदा शत्रु के हाथ में गिरफ्तार है। वह चाहे कहीं जावे, किन्तु अपनी सजा के चंगुल से रिहाई नहीं पा सकता। अगर दुष्ट आदमी आफत से बचने के लिए आसमान पर भी चला जावे, तो भी अपनी दुष्टता के कारण आफत से नहीं बच सकता।
- किसी ने एक बुद्धिमान मनुष्य से पूछा— भाग्यवान कौन है और अभाग्य कौन है ? उसने उत्तर दिया—भाग्यवान वह है जिसने बोया और खाया' अभाग्य वह है जो मर गया और छोड़ गया। —**लेखक**
- जब मानव कोई अपराध करता है, तब भगवान एकाध साक्षी दूँढ़ लेते हैं। —**बुल्गर**
- जीवन में कोई स्थिति ऐसी खराब नहीं है कि उसका सुधार न हो सके। —**पिकनिक पेपर्स**
- जिन स्वप्नों को कार्यरूप में परिणत किया जाता है, वे पवित्र बन जाते हैं और जिस कार्य को चमकीले स्वप्नों के साथ किया जाता है, वह सुन्दर बन जाता है। —**एडीलेड प्रोफेक्टर**
- वे समस्त महान कार्य इच्छित मार्ग पर चले जाते हैं, जो अपनी कमियों के होते हुए भी भलीप्रकार प्रारम्भ होते हैं। —**नेल्सन**
- श्रेष्ठ व्यक्ति कभी नहीं मर सकता है। —**कैली मार्क्स**
- किसी बुराई को सहना ही सबसे बड़ी बुराई है। —**बायस**
- जो मनुष्य अपने कर्तव्य को अच्छी तरह करने की शिक्षा प्राप्त कर लेता है, वह मनुष्य से सम्बन्धित हर कार्य को भली-भाँति सम्पन्न कर सकता है। —**स्वेट मार्डन**
- अपनी छाप रखो, नकल कभी मत करो। सारे जीवन के संस्कारों की सञ्चित शक्ति से तुम स्वयं अपनी देन प्रदान कर सकते हो। दूसरे की नकल की हुई योग्यता तुम्हारे पास एक अस्थायी अर्द्ध-सम्पत्ति होती है। पर यदि तुम उत्तमोत्तम कार्य करना चाहते हो तो उसे केवल तुम्हारा निर्माता ही सिखा सकता है।
- अल्पबुद्धि वाले लोग भाग्य पर और परिस्थितियों में विश्वास करते हैं, दृढ़चित्त लोग कारण और कार्य में विश्वास करते हैं। —**एमर्सन**
- "हमारे दैनिक कार्यों और कर्तव्यों की पूर्णता में वह कुञ्जी है, जिससे हमारे लिए सुख और शान्ति के द्वार खुलते हैं। जो व्यक्ति ठीक समय पर वहाँ पहुँचेगा, वही उस स्वर्गिक आभा के दर्शन कर सकेगा।"
- "उस सितारे की भाँति, जो दूर आकाश में अनवरत चमक रहा है, जो न दम लेता है, न ठहरता है, प्रत्येक व्यक्ति को इस प्रकार अपने दैनिक कर्तव्यों को पूरा करने में अपने सम्पूर्ण

साहस और दृढ़ता के साथ लगातार लगा रहना चाहिए। —जेम्स ऐलन

- न्यायोचित कर्मानुकूल व्यवहार करने पर ही सच्चे और सरल कर्म को जाना जा सकता है।

—रस्किन

- अच्छा स्वभाव हमेशा सुन्दरता के अभाव को पूरा कर देगा, लेकिन सुन्दरता अच्छे स्वभाव के अभाव की पूर्ति नहीं कर सकती। —एडीसन

- “परिस्थितियों से पूर्ण समझौते का अर्थ मृत्यु है। परिस्थितियों पर शासन करने की इच्छा ही जीवन के प्रति सही दृष्टिकोण है।” —जीन ड्यूवे

- जो व्यक्ति उच्च विचारों की सुखद संगति में रहते हैं, वे कभी एकाकी नहीं हो सकते।

—फिलिप सिडनी

- प्रथम हम विश्वास करें कि न्याय ही शक्ति का आवास है और फिर उस विश्वास के आधार पर ही अन्त तक अपने कर्तव्य को समझकर करते चलें।

—अब्राहम लिंकन

- दान में ही प्राप्ति निहित है। क्षमा करने से ही हम क्षमा पाने के अधिकारी होते हैं। आत्मोत्सर्ग ही चिरन्तन जीवन का मार्ग है।

—सन्त फ्रांसिस

- यदि हम पहले यह जान लें कि हम कहाँ खड़े हैं और किधर जा रहे हैं तो यह निर्णय अच्छी तरह कर सकते हैं कि हमें क्या करना है और उसे कैसे किया जा सकता है ?

—अब्राहम लिंकन

- हमारा सबसे बड़ा काम निश्चित रूप से यह नहीं है कि दूर की धुंधली वस्तु को देखें, किन्तु जो चीज साफ-साफ पास ही दिखाई देती है उसे करें।

—कार्लाइल

- मनुष्य के जीवन की तीन बड़ी घटनाएँ विवाद से पूर्णतः परे होती हैं—प्रथम जन्म, द्वितीय विवाह और तृतीय मृत्यु।

—आर्स्ति औमिले

- बुरा काम करना कमीनापन है, बिना खतरा उठाए अच्छा काम करना साधारण बात है, लेकिन उत्कृष्ट मनुष्य ही है जो कि महान और नेक कामों को अपना सब कुछ होम कर भी कर दिखाता है।

—प्लूटार्क

- “ऐसा कोई वास्तव में महान पुरुष नहीं हुआ जो वास्तव में सदाचारी न रहा हो।” —फ्रैंकलिन

- अन्याय का सच्चा दण्ड, दण्ड देना नहीं है। अन्याय को नष्ट कर देना ही उसका दण्ड है।

—सुकरात

- मित्र के सामने सारा गुप्त भेद मत खोल दो, कौन जाने वह कब तुम्हारा शत्रु हो जावे ? इसी भाँति शत्रु को भी हर तरह की तकलीफें मत दो, कौन जाने वह कभी तुम्हारा मित्र ही हो जावे ? वह भेद जिसे तुम गुप्त रखना चाहते हो, किसी को भी मत बताओ, चाहे वह विश्वास योग्य ही क्यों न हो ? अपनी गुप्त बात जितनी अच्छी तरह तुम खुद छिपा सकते हो, दूसरा हर्गिज न छिपा सकेगा। किसी भी गुप्त बातों को एक शब्द से कहना और उसे दूसरे से कहने की मनाही करने से एकदम चुप रहना भला है। ऐ भले आदमी ! पानी को निकास पर ही रोक। जब वह नदी के रूप में बहने लगेगा तब तू उसे न रोक सकेगा। जो बात सब लोगों के सामने करने लायक नहीं है उसे परेशीदगी में भी मत कर। —शेखसादी

- अच्छे स्वभाव की स्त्री हृदय को सुख देने वाली होती है, लेकिन बुरे स्वभाव की स्त्री से तो भगवान ही बचाये, तंग जूती की अपेक्षा तो नंगे पाँव रहना बेहतर है और घर की लड़ाई से तो यात्रा की मुसीबत ही अच्छी है।

—शेखसादी

- यदि तेरा भाई अपराध करे तो जा और अकेले में बातचीत करके उसे समझा, वह यदि न सुने तो और एक-दो जन को अपने साथ ले जा, यदि वह उसकी भी न माने तो मंडली से कह दे, यदि वह मंडली की भी न माने तो उसे अन्य जाति और महसूल लेने वाले के साथ जा। मैं तुम से सच कहता हूँ, जो कुछ तुम पृथ्वी पर लोगे वह स्वर्ग पर मिलेगा।

—मसी १८

- पत्थर सैकड़ों वर्षों में कहीं लाल बन पाता है, उसे एक क्षण में पत्थर से नहीं तोड़ डालना चाहिए।

—शेखसादी

- जो कोई तुम में बड़ा होना चाहे, वह तुम्हारा सेवक बने और जो कोई तुम में प्रधान होना चाहे, वह तुम्हारा दास बने और जैसे कि

मनुष्य का पुत्र इसलिए नहीं आया उसकी सेवा टहल की जाए, पर इसलिए आया कि आप सेवा-टहल करें और बहुतों को छुड़ाने के लिए अपने प्राण दें।
—मची २०

- धन्य हो तुम जब मनुष्य मेरे लिए तुम्हारी निन्दा में काम करें, सताएँ और झूठ बोलते हुए तुम्हारे विरोध में सब तरह की बुरी बातें कहें तब तुम आनन्दमग्न रहो। तुम्हारे लिए स्वर्ग में बड़ा फल है। उन्होंने नबियों को जो तुमसे पहले हुए थे, इसी रीति से सताया था।

—मची ६

- मैं तुम्हें भेड़ों की तरह भेड़ियों में भेजता हूँ सो सौंपों की तरह बुद्धिमान और कबूतरों की तरह भोले बनो। पर लोगों से चौकस रहो, क्योंकि वे तुम्हें महासभाओं में सौंपेंगे और अपनी पञ्चायतों में तुम्हें कोड़े मारेंगे। मेरे नाम के कारण सब लोग तुमसे बैर करेंगे, पर जो अन्त तक धीरज धरे रहेगा उसी का उद्धार होगा।

—महात्मा ईसा

- पवित्र वस्तु कुत्तों को न दो और न अपने मोती सुअरों के आगे डालो। ऐसा न हो कि वे उन्हें पाँव तले रौंदें और फिरकर तुमको फाड़ें।
- यदि तुम न फिरो और बालकों के समान न बनो तो स्वर्ग के राज्य में प्रवेश न करने पाओगे। जो कोई अपने आपको इस बालक के समान छोटा करेगा। वह स्वर्ग के राज में बड़ा होगा।

—मची

- यह न समझो कि मैं पृथ्वी पर मिलाप कराने को आया हूँ, मैं मिलाप कराने को नहीं तलवार चलाने को आया हूँ। मैं तो आया हूँ कि मनुष्य को उनके पिता से और बेटी को उसकी माँ से और बहू को उसकी सास से अलग कर दूँ। मनुष्य के बैरी उसके घर के ही लोग होंगे। जो माता या पिता नहीं और जो बेटा या बेटी को मुझसे अधिक प्रिय जानता है, वह मेरे योग्य नहीं और अपना क्रूस लेकर मेरे पीछे नहीं चले वह मेरे योग्य नहीं। जो अपना प्राण बचाता है, वह उसे खोयेगा और जो मेरे कारण अपना प्राण खोता है वही उसे बचायेगा।

—महात्मा ईसा

- अगर कोई निर्बल शत्रु तुम्हारे साथ मित्रता करे और तुम्हारी आज्ञानुसार चले तो तुमको समझना चाहिए कि वह अपना बल बढ़ाना चाहता है, क्योंकि कहा है—मित्रों की सच्चाई पर भी विश्वास न करना चाहिए, तब शत्रुओं की लल्लो-चप्पो से क्या भली उम्मीद की जा सकती है ? जो निर्बल शत्रु को तुच्छ समझता है वह उसके माफिक है, जो आग की छोटी-सी चिनगारी की परवाह नहीं करता। अगर तुममें शक्ति है तो आग को आज ही बुझा दो, क्योंकि जब वह प्रचण्ड रूप धारण करेगी, तब संसार को जला देगी, जबकि तुझमें शत्रु को बाण से छेदने की शक्ति हो, तब तू उसको कमान खींचने का मौका मत दे।

- जो साधु ईश्वर के लिए एकान्तवास नहीं करता उसका एकान्तवास धुँधले शीशे की तरह है, जिसमें कुछ दिखाई नहीं देता।

—शेखसादी

- मैं स्पेंगलर के इस कथन से सहमत नहीं हूँ कि पश्चिमी-सभ्यता पतन की ओर जा रही है। स्पेंगलर समाज की तुलना पेड़-पौधे या किसी एक प्राणी से करते हैं। पौधा या प्राणी बढ़ता है, पनपता है और एक निश्चित समय पर मर जाता है। वृद्धि एवं क्षय का यह सिद्धान्त मानव-समाज पर लागू नहीं हो सकता। समाज चेतन-प्राणियों की एक संस्था है। इतिहास के अध्ययन से मैं इस निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि कोई भी समाज स्वाभाविक मौत नहीं मरता। उसकी हत्या की जाती है या फिर वह आत्म-हत्या कर लेता है। सामाजिक-चेतना का स्वाभाविक विनाश सम्भव नहीं है।

—अर्नाल्ड टायनबी

- सभ्यता का प्रारम्भ कबसे हुआ ? तब से जब मनुष्य ने पहली बार जमीन को अर्थपूर्ण दृष्टि से कुरेदा और उसमें बीज बोये।
- धर्म का उदय कहाँ से हुआ ? जब मनुष्य ने अपने बोये बीजों पर बादलों को जल बरसाते और सूरज को गरमी देते देखा।
- कला का जन्म कैसे हुआ ? जब बोये बीजों के फलित होने पर मनुष्य के मन में कृतज्ञता उपजी। जब उसने धरती, बादल और सूरज का भाव-विभोर होकर अभिवन्दन किया।

□ दर्शन की उपज का क्या कारण था ? जब मनुष्य ने अपना उपार्जन आवश्यकता से अधिक मात्रा में खाया और अपच की पीड़ा को झुठलाने के लिए दिमाग को कसरत कराने की तरकीब ढूँढ़ निकाली। —*जलील गिब्रान*

□ तीन सरल किन्तु प्रबल आवेगों में मेरे जीवन का शासन किया है—प्रेम की साध, ज्ञान की खोज और मानव-जाति के दुःख-दर्द के लिए असहनीय करुणा। इन आवेगों ने जबर्दस्त औंधियों की तरह मुझे अनिश्चित राहों पर, वेदना के गहरे सागर पर इधर से उधर भटकाया है, बहुधा निराशा के ठेठ कगार तक पहुँचाया है।

मैंने प्रेम को ढूँढ़ा है। प्रथमतः इसलिए कि वह आह्लाद देता—ऐसा परम आह्लाद कि बहुधा मैं चंद घन्टों के उस आनन्द के लिए शेष सारे जीवन की कुर्बानी चढ़ाने को तैयार हो गया हूँ। दूसरे, मैंने प्रेम को इसलिए ढूँढ़ा है कि वह एकाकीपन से राहत देता है। उस भयंकर एकाकीपन से जिसमें अकेली काँपती हुई चेतना विश्व के कगार पर से ठंडे, अथाह, निष्प्राण गर्त को ताका करती है और अन्ततः मैंने उसे इसलिए ढूँढ़ा है कि प्रेम-मिलन में मुझे मानो रहस्यमय मिनिएचर में उस स्वर्ग का पूर्वाभास मिला है, जिसकी कल्पना संत और कवि करते आए हैं तो यह है जो मैंने ढूँढ़ा और यद्यपि मनुष्य-जीवन में यह अविश्वसनीय सौभाग्य प्रतीत हो सकता है, यह है जो आखिरकार मैंने पाया।

उतने ही आवेग के साथ मैंने ज्ञान को ढूँढ़ा है। मैंने चाहा है कि मनुष्यों के हृदयों को समझ मैंने जानना चाहा है कि तारे क्यों चमकते हैं ? मैंने उस पीथागोरीय शक्ति को पाने का यत्न किया है, जिसके द्वारा संख्या सतत, परिवर्ती सृष्टि-प्रवाह पर शासन करती है। इसका कुछ अंश, ज्यादा नहीं, मैंने हस्तगत किया है।

प्रेम और ज्ञान, जितना भी मिल पाए, मुझे ऊपर स्वर्ग की ओर ले गए, किन्तु करुणा हर बार मुझे पृथ्वी पर लौट लाई। अकालग्रस्त बच्चे, आततायियों की यंत्रणाओं से कुचले गए मानव, अपने ही बेटों द्वारा बेकार का बोझ

समझे जाने वाले बेबस बूढ़े और तमाम तन्हाई, गरीबी और दर्द—इनसे जीवन विद्रूप बन गया है। मैं बुराई को हलका करना चाहता हूँ, किन्तु कर नहीं पाता हूँ और दर्द भोगता हूँ।

यह रहा है मेरा जीवन। मैंने इसे जीने योग्य पाया है। अगर मुझे अवसर दिया जाय तो मैं बड़ी प्रसन्नता से इसे फिर से जीऊँगा।

—*बर्ट्रैंड रसेल*

□ ओ मर्त्य ! तुम जीवन से खेलो। खतरों की तलाश करो, अगर वह न मिले, तो उसे जन्म दो। अथाह में झाँको और हँसो।

ओ मर्त्य ! जीवन से खेलो। अपने आप से खेलो। अपनी कामनाओं से खेलो। तर्कबुद्धि के शिखर पर चढ़ जाओ। फिर उसकी हँसी के साथ तुम भी हँसो। ऊँचाई-निचाई तुम्हारे लिए विनोद बन जाएगी। जीवन तुम्हारे लिए खेल बन जाएगा।

—*जेकब क्लार्किन*

□ बड़प्पन पाने की वितृष्णा में कुछ काम मैं ऐसे कर रहा था, जो सम्भवतः सामयिक सफलता तो दे सके होंगे, पर रहा बहुत घाटे में। इन प्रयासों में मेरी आत्मा मुझे क्षुद्रता अपनाने और आत्म-गौरव गँवाने का दोषी ठहराती रही। ऐसे अवसर सात प्रकार के थे। जैसे—

(१) जब मैं दरिद्रता ओढ़े दूसरों की अनुकम्पा पाने के लिए इस आशा से गिड़गिड़ाते हुए पहुँचा कि किसी की कृपा पाकर मैं निहाल हो सकूँगा।

(२) जब मैंने निर्बलों के सामने अपना बड़प्पन और गर्व इस प्रकार प्रदर्शित किया मानो मेरी शक्ति विकास का एक भाग न होकर दुर्बलों से स्पर्धा करने के लिए ही मिली हो।

(३) जब कठिनाइयों से भरी कर्मठता और सरलता से मिलने वाली विलासिता में मैंने कठिनता से मुँह मोड़ा और सस्ते सुख पर टूट पड़ा।

(४) जब मैंने अपराध तो किया किन्तु पश्चात्ताप की आवश्यकता न समझी। परिमार्जन के बदले मैंने पाप का समर्पण किया और कहा कि ऐसा तो चलता ही रहता है। दूसरे भी तो वैसा करते हैं।

(५) जब मैंने अपनी दुर्बलताओं से समझौता कर लिया और उन्हें बनाये रहने तथा छिपाये रहने की योजना बनाई।

(६) जब मैंने कुरुपों से घृणा की, किन्तु यह नहीं जाना कि घृणा भी तो एक कुरुपता ही है।

(७) जब मैंने दूसरों के मुँह से प्रशंसा उगलवाने की तरकीब सोची, इतना ही नहीं प्रशंसा और अच्छाई को एक मान लेने की नासमझी भी अपनाई। —**अलील जिब्रान**

□ पर्वत में ऊँचाई है, अगाध गहराई नहीं है और सागर में अगाध गहराई है, ऊँचाई नहीं है, लेकिन अलंघनीय होने के ये दोनों ही कारण मनस्वी में बने रहते हैं। यानी मनस्वी पर्वत के समान ऊँचे, सागर के समान गम्भीर होते हैं, उनका पार पाना आसान काम नहीं है। —**माघ**

□ प्रत्येक व्यक्ति एक महान ग्रन्थ है, यदि आप उसे पढ़ना जानते हैं। —**बैनिंग**

□ कौन कितना आगे बढ़ा यह नहीं, वरन् महत्त्व की बात यह है कि किस तरह बढ़ा ? यदि हाथों ने बिना दूसरों का ग्रास छीने और पैरों ने बिना दूसरों का सिर कुचले प्रगति की है तो ही उस बढ़ने की सार्थकता है। —**टालस्टाय**

□ हमें अन्तरिक्ष में उड़ने का शौक-सा लगा है, पर पैरों तले की जमीन के नीचे क्या है, यह देखना भूल ही गये हैं। समुद्र की तलहटी में इतने बहुमूल्य रत्न भरे पड़े हैं, जिन्हें अब तक मनुष्य के हाथ लगे हीरे, पत्थरों अपेक्षा कई गुना कहा जा सकता है। पृथ्वी पर जितनी धातुएँ मौजूद हैं, उससे हजारों गुनी मात्रा में वे समुद्र में दबी पड़ी हैं। समुद्री खाद्य-पदार्थों का यदि उपयोग किया जा सके तो वे पृथ्वी की उपज से कम नहीं अधिक ही बैठेंगे। ऐसे सम्पत्ति भण्डार की उपेक्षा करके शून्य आकाश में विचरना और निर्जीव ग्रह-नक्षत्रों के चक्कर काटना वैज्ञानिकों का चिन्तन दोष है, जिसे सुधारकर अपव्यय को उपयोगिता की दिशा में मोड़ा जा सकता है। —**स्काउट कारपेन्टर**

□ जीवन को सत्य बनाने के लिए आवश्यक है कि हम विश्वास करें कि इस अनिश्चय का, इस अँधेरे का जिससे हम संघर्षरत हैं, किसी

दिन प्रकाशपूर्ण हल प्राप्त हो जाएगा और क्षण भी हमारे पास उस ज्ञान के ऐसे छोटे-मोटे चिन्ह हैं, जो प्रकाश से आँखें चार होने पर हमें मिलेगा। —**हेलेन केलर**

□ मनुष्य का सच्चा जीवन तब प्रारम्भ होता है, जब वह यह अनुभव कर लेता है कि शारीरिक जीवन अस्थिर है और वह सन्तोष नहीं दे सकता। —**टालस्टाय**

□ पाप में पड़ना मानव प्रकृति है, उसमें डूबे रहना, शैतान प्रकृति है। उस पर दुःखित होना सन्त प्रकृति है और सब पापों से मुक्त होना ईश प्रकृति है। —**सांगफ्रेलो**

□ “हँसी की बात नहीं, यह जीवन का सत्य है कि जो मनुष्य सांसारिक विषयों की हानि देखकर रोता है, वह मूर्ख है। ऐसी हानि होने पर ही आत्मा का विचार करने तथा ईश्वर का ध्यान करने का अवसर मिलता है और सत्य का दर्शन भी प्रभु तभी कराता है।” —**टालस्टाय**

□ पुष्प की सुगन्ध वायु की विपरीत दिशा में नहीं जाती, पर ज्ञान की गन्ध तो दुनिया में फैलती और सुवास मिलती है। —**हर्बर्ट स्पेन्सर**

□ पवित्रता और प्राणिमात्र के प्रति प्रेम से ही मुक्ति मिलती है। —**महात्मा ईसा**

□ जिस प्रकार हीरे की खान से हीरा, पत्थर की खान से पत्थर और कोयले की खान से कोयला निकलता है, उसी प्रकार योग्य व्यक्ति योग्य सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं। —**बेकन**

□ निर्माण की दिशाएँ भिन्न होती हैं। पुरानी लीक पर चलकर कोई नई राह नहीं बनी। —**नेपोलियन**

□ प्रत्येक व्यक्ति अपने पेशे का ऋणी है क्योंकि, उसी से उसकी जीविका चलती है। इसलिए उसका कर्तव्य है कि वह अपने पेशे के प्रति ईमानदार रहे और ऐसा कोई काम न करे जिससे उसके पेशे का अपमान हो। —**बेकन**

□ न्याय से बढ़कर कोई रक्षक नहीं, विचार से बढ़कर कोई राजा नहीं, पदार्थ से बढ़कर कोई खड्ग नहीं और सत्य से बढ़कर कोई सत्य नहीं है। —**मुकर्रात**

- विद्वत्ता युवकों को संयमी बना देती है। यह बुढ़ापे का आराम है, निर्धनता में धन का काम देती है और धनवानों के लिए आभूषण का काम करती है।
—सिसरो
- “गुणों का विकास एकान्त में अच्छी तरह होता है और चरित्र का निर्माण संसार के भीषण कोलाहल में होता है।”
—ग्रेट
- नैतिकता, प्रतिष्ठाओं में सबसे अधिक मूल्यवान है।
- कर्म ही हमारे पुत्र है।
—बाहरन
- कृतज्ञता एक कर्तव्य है जिसे पूरा करना चाहिए, किन्तु जिसे माँगने का किसी को अधिकार नहीं।
- “लेखक केवल वही हो सकता है जो मात्र यही नहीं कहता कि जीवन कैसा है, बल्कि वह इस बात को भी बताता है कि जीवन कैसा होना चाहिए ?”
- “विचार दो प्रकार के होते हैं, एक तो वे जिनसे आपका शरीर, आत्मा, आपका मन पुष्ट होता है और दूसरे वे जिनसे आपका शरीर व आपकी आत्मा गिरते हैं और निर्बल व हीन होते हैं। पहले प्रकार के विचारों को हम रक्षक कह सकते हैं, जबकि दूसरे प्रकार के विचारों को भक्षक।”
—स्वेट मार्डन
- परिस्थितियाँ कमजोर व्यक्तियों पर शासन करती हैं, लेकिन बुद्धिमानों के हाथ में वे साधन बन जाती हैं।
—सैमुअल लवर
- जब कभी किसी निर्धन व्यक्ति में मैं अधिक कृतज्ञता पाता हूँ तो मुझे यकीन हो जाता है कि यदि धनी होता तो उसमें उतनी ही दानशीलता होती।
—पोप
- निरन्तर देते रहने वाला ही सदैव पाता भी रहता है। न देने वाला तो अपने आपको सड़ाकर स्वयं तो गन्दा होकर समाप्त होता ही है साथ ही अपनी दुर्गन्ध से दूसरों को भी अप्रसन्न कर असुविधाजनक स्थिति में डालता है।
—कन्यशिवस
- मनुष्यो ! पृथ्वी पर जो भक्ष और पवित्र पदार्थ हैं, उनमें से ही भोजन करो और शैतान के

- अनुचर मत बनो, क्योंकि वह तो तुम्हारा प्रत्यक्ष शत्रु है।
—सूरवे बकर १/२/२१
- दान पर उन भिक्षुओं का अधिकार है, जो अल्लाह के मार्ग में स्थिर हैं और पृथ्वी पर चलने-फिरने की शक्ति नहीं रखते। निर्बुद्धि उनके न माँगने के कारण उन्हें धनाढ्य समझते हैं। तू उनको उनकी आकृति से पहिचान। यह लोग चिपटकर नहीं माँगते और जो कुछ भी तुम लोग धन में से दान में व्यय करेंगे अल्लाह को उसका बोध हो जाएगा।
—सूरवे बकर १/२/३०/१९
- जो असत्य बातों का भेद लेते फिरते हैं, त्याज्य धन का ग्रहण करते हैं। पुनः यदि तेरे समीप आवें तो उन्हें आज्ञा दे अथवा उनसे मुँह फेर ले और यदि तू मुँह फेर लेगा तो वह तुझको कभी हानि न पहुँचा सकेगा।
—सूरवे भाइया २/६/१६/१८
- हे पैगम्बर ! इन लोगों से कहो, कि देश में भ्रमण करो और फिर देखो कि झूठ बोलने वालों की क्या गति हुई ?
—सूरतुल अनजाम् २/१९/२/१९
- हे विश्वासियों ! पुस्तक वालों के अनेकों विद्वान और साधु, मनुष्यों का धन व्यर्थ खाते हैं और अल्लाह के मार्ग से भटके हुए हैं और जो लोग सोना-चाँदी गाढ़कर रखते हैं, किन्तु अल्लाह के मार्ग में खर्च नहीं करते उनका दारुण दुःख के दण्ड का समाचार सुना कि जिस दिन उन पर दोजख की अग्नि दिखावेंगे, जिससे उनके माथे और करवटें पृष्ठ भाग जलायेंगे। अपने निमित्त गाढ़ते थे, लो अब उसका स्वाद चखो।
—सूरवे तोबा २/१९०/१५
- हे मज्दा आहुर, आप सद्भावनाओं और सत्यवृत्तियों के अनादि आलोक हैं। हम आपकी शरण आते हैं इसलिए कि हमें पवित्र, श्रद्धालु और धार्मिक बनाएँ।
हे अधिष्ठाता, हमें विश्व-प्रेम और कर्तव्यनिष्ठा के पथ पर ले चलिए, जब हमारा मन पाप की ओर झुके और फिसलने के लिए मचले तो इतना सहारा देना कि उन विषमताओं को हटाने वाला भक्ति भरा आलोक हमारे अन्तःकरण में उदित हो सके।

हे मज्जा ! आपका यह संकेत विस्मरण न हो जाय कि धर्मनिष्ठ ही श्रेय को प्राप्त करता है। आपकी इस वाणी को हमारे ज्ञानी हर जिज्ञासु के अन्तस्तल तक पहुँचाने में समर्थ हों। अज्ञानियों को इतना बल मत देना कि वे लोगों को देर तक पथभ्रष्ट करते रह सकें। आप हमें बहुत देते हैं पर इतना और भी दें कि पवित्र बुद्धि, आत्म-संयम और सद्भावों के साथ जुड़े हुए आनन्द का आस्वादन कर सकें। हे अश, आप हमें उस सम्पदा से सुसम्पन्न कर दें जो आत्मा को ज्ञान के प्रकाश और सत्कर्मा के आनन्द से भरा-पूरा बनाये रहती है।

—जिन्दावस्ता

- परमात्मा का नामरट लगाना ही यदि आस्तिकता है तो मुझे नास्तिक कहलाने में कोई एतराज नहीं। मैंने यह सोचा और जाना है कि अपने आपको समझना और अन्तरात्मा को विकसित करना पूजा करने से अधिक श्रेयस्कर है। मैं अपने पर आस्था रखता हूँ, उसी पर अगाध श्रद्धा करता हूँ क्योंकि वही मेरा भगवान है। मैं सोचता हूँ कि यदि अपने आप को भगवान बनाया जा सके तो फिर आस्तिकता का असली प्रयोजन पूरा हो जायेगा। पर यदि आस्तिकता की परिभाषा यह है कि व्यक्ति कितना ही निकृष्ट बना रहे और थोड़ा पूजा-पाठ करके अपने को पवित्र होने और समुन्नत होने का उद्देश्य पूरा हो सकता है तो मुझे उस मान्यता से इनकार करना होगा और यदि यह मतभेद मुझे नास्तिक घोषित करे तो अपने को नास्तिक कहलाने में भी मुझे कोई एतराज नहीं है।

—टायनवी

- क्या आप उस नित्य सुख की तलाश में हैं, जिसका कभी नाश नहीं होता ? क्या आप उस प्रसन्नता को ढूँढ़ रहे हैं जो स्थायी है और जिसके बाद दुःख के दिन शेष नहीं रह जाते ? क्या आप प्रेम, जीवन और शान्ति के स्रोतों के लिए लालायित हैं ? अगर ऐसा है, तो आप तमाम बुरी तृष्णाओं और स्वार्थपूर्ण भावनाओं का परित्याग कर दीजिए। क्या आप दुःख के रास्तों में ठोकर खा रहे हैं ? क्या आपको दुःख और शोकों ने उद्धिग्न कर रखा है ? क्या आपका मार्ग कंटकाकीर्ण है ? क्या आप उस विश्राम के स्थान की तलाश में हैं जहाँ क्रन्दन और रोदन

बन्द हो जाता है ? अगर ऐसा है, तो आपको अपने स्वार्थ का दमन करके हृदय को शीतलता देने चाहिए।

ऐ श्रम से चूर हुए भाई ! आओ अपने समस्त प्रथाओं को छोड़कर अनन्त अनुकम्पा के स्थायी केन्द्र परमात्मा की तलाश करो। सत्य के सरोवर को ढूँढ़ रहे हो तो स्वार्थ की निर्जन मरुभूमि में भटकने से क्या लाभ ? इस पापमय जीवन की गठरी को पीठ पर लादकर सत्य की शोध के पथ पर भला कैसे चल सकोगे ? इसलिए आओ ! वापस आओ। विश्राम करो और अपने पथ का आदि-अन्त जान लो। अपना और अपनी प्रिय वस्तु का स्वरूप जान लो तब आगे बढ़ना।

तुम्हारा प्रभु न तो पर्वतों की कन्दराओं में कैद है और न किन्हीं नदी-नालों में घुला हुआ है। जरा आँख खोलकर देखो, तुम्हारे आस-पास फैली हुई धूलि के कणों में भी मौजूद है। वायु के साथ मिलकर वह हर घड़ी तुम्हारे मस्तक पर हाथ फेरता रहता है।

ऐ थके हुए बन्धु ! दर-दर भटकने की अपेक्षा उसकी दया को प्राप्त करो। स्वार्थ की मृगतृष्णा में भटकना छोड़ो, आओ ! सत्य की शीतल सरिता में स्नान करो और आपनी प्यास बुझाओ।

—जेम्स ऐलन

- “आज की दुनिया में जब मनुष्य राष्ट्र अपनी क्षुद्र सीमाओं में घुट रहा है, तुच्छातितुच्छ स्वार्थ को लेकर पशुता को लज्जित कर रहा है और संहार पर तुला हुआ है। इस बात की और भी आवश्यकता है कि हम अपने भीतर दैवीय विभूतियों का हरदम अभय का विकास करें और इस प्रकार विश्व-कल्याण में अपना सच्चा हार्दिक योग प्रदान करें। भयत्रस्त, आपद्ग्रस्त मानवता की वास्तविक मुक्ति का एकमात्र यही मार्ग है। इसमें से कुछ के भीतर भी यदि इन दैवीगुणों का सही-सही विकास हो सका तो संसार की काया पलट जाएगी तथा मानवता अभाव और कष्टों से घिरी एक बार खुली हवा में सुख की साँस लेगी। सधर्म की एक धारा-सी छूट पड़ेगी और उसमें हमारे भीतर जो कुछ भी खोटापन होगा, संकीर्णता होगी वह सब बह जाएगी और संसार के परदे पर जो

आज गर्द जम गया है, वह सब एक झटके में झड़ जाएगा। इस प्रकार आत्माहुति के साधनों की संख्या ज्यों-ज्यों बढ़ेगी, त्यों-त्यों संसार से युद्ध का नामोनिशां मिट जाएगा, दुःख, अवसाद, अन्याय, उत्पीड़न, पूँजीवादियों के अत्याचार सबके सब सदा के लिए मिट जाएँगे और फिर जेल और पागलखाने की जरूरत भी न रहेगी, परन्तु इस उच्च आदर्श की प्राप्ति तब तक हो ही कैसे सकती है, जब तक हम में से एक-एक अपने आपको और अपने सर्वस्व को भगवत्कार्य और भगवत्संकल्प को सिद्ध करने में होम न कर दे। समाज में, परिवार में एक व्यक्ति जहाँ इस शुभ योजना में लग जाएगा वहाँ संक्रामक की तरह यह चीज आस-पास के व्यक्तियों और वातावरण को प्रभावित किए बिना न रहेगी। इसलिए समय और सुयोग की प्रतिज्ञा न कर हमें इस पवित्र अनुष्ठान में अविलम्ब लग जाना चाहिए, इसी में हमारा और विश्व का वास्तविक कल्याण है।

—लोकेश किशोर

- यदि तुम अनुभव करते हो कि मैं जीवित हूँ और क्रियाशील हूँ तो उठो, जीवित मनुष्यों की जिन्दगी जीने का प्रयत्न करो। निर्दोष, सर्वांगपूर्ण, आनन्दमय और उन्नतिशील जीवन पसन्द करो। जीवित प्राणियों की स्वाभाविक इच्छा मजबूत बनने की, महान बनने की और सुखी बनने की होती है, तुम्हें भी ऐसी ही आकांक्षाओं से भरा-पूरा होना चाहिए।

उठो, अपने चारों ओर नवजीवन के बीज बोओ। पवित्रता का वातावरण निर्माण करो। यदि तुम दूसरों को धोखा दोगे, झूठ बोलोगे, षड्यंत्र रचोगे, ठगोगे तो इससे अपने आपको ही पतित बनाओगे, अपने को ही छोड़, तुच्छ और कमीन साबित करोगे। किसी दूसरे को अपनी सारी शक्तियाँ लगाकर भी तुम अधिक अनिष्ट नहीं कर सकते, परन्तु इन हरकतों से अपना सर्वनाश जरूर कर सकते हो।

ईमानदारी पर कायम रहो और उचित साधन से अपनी उन्नति के लिए प्रयत्न करो। अपनी ताकत को संसार के सामने प्रकट करो, क्योंकि बलवान को ही सुखी और उन्नतशील जीवन जीने का अधिकार है। यदि अपनी शक्ति का कोई सबूत पेश नहीं कर सकोगे तो दुनिया

तुम्हें एक असहाय, अनाथ, दुर्बल और अभागा समझेगी और तुम्हारे नाम के साथ बेचारा की उपाधि जोड़ देगी।

इसलिए मैं कहता हूँ कि—संघर्ष करो ! जीवित रहने के लिए संघर्ष करो। अपने अधिकारों को प्राप्त करने और उनकी रक्षा के लिए संघर्ष करो। विश्वास रखो इस आत्मोन्नति के धर्म-युद्ध में तुम्हें वह आनन्द मिलेगा, जो दुनिया की और किसी चीज से नहीं मिल सकता। जीवितों की भाँति जीवित रहने के चन्द घण्टे, मुर्दा जिन्दगी के हजार वर्षों से बेहतर हैं।

—प्रिन्स क्रोपाटकिन

- अपने मस्तिष्क को दृढ़, निष्पक्ष तथा उदार भावों की खान बनाइए, अपने हृदय में पवित्रता, उदारता और योग्यता लाइए, अपनी जुबान को चुप रहने तथा सत्य और पवित्र भाषण के लिए तैयार कीजिए, पवित्रता और शान्ति प्राप्त करने का यही मार्ग है और अन्त में प्रेम भी इसी तरह प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार जीवन बिताने में आप दूसरों पर विश्वास जमा सकोगे। उनको अपने अनुकूल बनाने की आवश्यकता न होगी। बिना विषाद के आप उनको ज्ञान दे सकोगे बिना अभिलाषा तथा चेष्टा के ही बुद्धिमान लोग आपके पास पहुँच जावेंगे और लोगों को अनुभूत करने का उद्योग किए बिना ही आप उनके हृदय को वशीभूत कर लेंगे, क्योंकि प्रेम के विचार, कार्य और भाषण कभी नष्ट नहीं होते।

जिस तरह से प्रभात की किरणों से अपने लाभ के लिए पुष्प अपनी पंखुड़ियाँ खोलता है, उसी तरह से सत्य के ओजस्वी प्रकाश को प्रवेश कराने के लिए अपनी आत्मा को बराबर खुलकर विकसित होने दीजिए। उच्च अभिलाषाओं के पाँवों पर चढ़कर ऊपर उड़िये, निर्भीक होइए और उच्च से उच्च बातों की सम्भावना में विश्वास कीजिए। विश्वास रखिए कि बेदाग और पवित्र जीवन सम्भव है और पूर्ण शुद्धता के साथ जिन्दगी व्यतीत करना भी सम्भव है।

दूसरों की भलाई में अपने को नष्ट कर दीजिए। जो कुछ आप करते हैं, उसी में अपने

को भुला दीजिए। यही अपरिमित सुख की कुंजी है। स्वार्थपरता से बचने का सदैव ख्याल रखिए। विश्वास के साथ अन्तःकरण से त्याग करने का दिव्य पाठ सीखिए। इस प्रकार आप सुख के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच जाएँगे और अमरत्व की चमकीली चादर ओढ़ कर पूर्ण सुख से सर्वदा धनरहित प्रकाश में अपना जीवन बिता सकेंगे।
—जेम्स ऐलन

- सुस्त जीवन में लोग निश्चेष्ट और डरपोक हो जाते हैं। शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए जो प्रयत्न किए जाते हैं, उनका आनन्द ऐसे मनुष्यों को स्वप्न में भी दुर्लभ है। संग्राम का आनन्द इस वाक्य को सुनकर ऐसे लोग भौचक्के से रह जाते हैं, परन्तु सच पूछे तो इस अकर्मण्यता का छा जाना ही मृत्यु अब निकट ही है। यदि जड़ संसार की ये बातें सत्य हैं तो चैतन्य संसार में भी इन्हें सत्य समझो। विचारशील मनुष्य यदि अपने हृदय में देखें तो उसे महाभारत का सच्चा दृश्य दिखाई दिए बिना न रहेगा। पाप-वासनाओं से पराजित होकर उनके दास बन जाते हैं, इसके विपरीत बलवान् आत्मा इन वासनाओं को पराजित कर उन्हें काबू में रखती है। इस घोर युद्ध में विजय प्राप्त करने का अनुपम आनन्द उन्हीं विजयी आत्माओं को प्राप्त होता है।

- जो मनुष्य अपनी वर्तमान स्थिति से संतुष्ट हो अकर्मण्य बन रहे हैं, उन लोगों से न तो कुछ लौकिक उन्नति ही हो सकती है और न पारलौकिक ही। उन्नति का मूलमंत्र यही है कि मनुष्य के हृदय में असंतोष हो। अपनी वर्तमान स्थिति में जो-जो दोष हैं, जो-जो असुविधाएँ अथवा तकलीफें हैं, उनसे हृदय में जब तक सच्चा असंतोष न पैदा हो जाय, तब तक उन्नति की कल्पना ही नहीं हो सकती। जब तक हम लोग अपने अवनत और गिरे हुए चरित्र को देख उससे असंतुष्ट होकर उसकी उन्नति का उपाय न करेंगे, तब तक सुख की बातें कोसों दूर हैं।

- मनुष्य ऐसे असंख्य सुधार करना चाहता है, जिनमें भीतरी त्याग का नाम भी नहीं होता। हर एक आदमी यही सोचता है कि मेरे सुधारों से संसार सदैव के लिए सुधर जाएगा और

परन्तु असल बात तो यह है कि इस तरह काम नहीं चल सकता, स्थायी सुधार नहीं हो सकता। सुधार तो उसी को कहा जा सकता है, जो मनुष्य के हृदय को सुधारने का यत्न करता हो, क्योंकि हर एक बुराई उसी जगह से पैदा होती है। जब संसार स्वार्थ तथा कलह को तिलांजलि देकर पवित्र प्रेम का पाठ पढ़ लेगा, तब उसमें सर्वव्यापी आनन्द और सुख का सतयुग प्रवेश करेगा।

- धनाढ्यों का गरीबों से घृणा करना और गरीबों का अमीरों को तुच्छ समझना बन्द होने दीजिए। लोभी को त्याग और कामातुर को पवित्रता का पाठ सीखने दीजिए, अनुदार हृदय वालों को क्षमा का पाठ सीखने दीजिए, द्वेषियों को दूसरों के साथ सुख मनाना और झूठी शिकायत करने वालों के अपने आचरण पर लज्जित होना सिखला दीजिए। अगर सभी स्त्री-पुरुष इसी मार्ग पर चलने लगे तो फिर क्या पूछना है, वह सतयुग का समय बिल्कुल निकट हो जाय। इसलिए जो अपने हृदय को पवित्र बनाता है, वही दुनिया का सबसे अधिक परोपकारी है। अपने ऊपर विजय प्राप्त करने और अपने को सुव्यवस्थित बनाने में निरंतर संलग्न रहने से ही मनुष्य सच्चा ज्ञान और सच्चा प्रेम प्राप्त कर सकता है, केवल पवित्र आत्मा वालों को ही परमात्मा के दर्शन होते हैं।

—जेम्स ऐलन

- तुम शिक्षा पाने के योग्य हो, तुममें से प्रत्येक आत्मिक शक्तियों और मानसिक विकासों का एक ऐसा पुंज है, जिसमें केवल शिक्षा ही प्राण डाल सकती और उसको उत्तेजित कर सकती है। शिक्षा के बिना वे सारी शक्तियाँ न केवल दबी रहेंगी, किन्तु निकम्मी हो जाएँगी या यदि प्रकट होंगी तो कुसमय और विरुद्ध जिनसे लाभ के स्थान में और हानि होगी। शिक्षा ही आत्मा का भोजन है, जिस प्रकार हमारे शरीर और इन्द्रिय बिना प्राकृतिक भोजन के न बढ़ सकते और न स्थिर रह सकते हैं, उसी प्रकार हमारा आत्मिक और मानसिक जीवन भी फैलने और विकास पाने के लिए विज्ञान के विशाल समुद्र में शिक्षा के पोत को चाहता है।

- हमारा जीवन एक पुष्प के समान है। भूमि वही है, एक ही प्रकार का खाद सबको दिया जाता है परन्तु प्रत्येक पुष्प जाति अपनी भिन्न-भिन्न आकृति, छवि और स्वभाव रखता है। प्रत्येक मनुष्य मानव जाति का एक अंग है, जीवन को जातीय जीवन से पुष्ट करता है और बढ़ता है, यह पुष्टि और वृद्धि का काम शिक्षा के द्वारा पूर्ण होता है, जो जातीय और समाजिक उन्नति के परिणाम को साक्षात् या एक-दूसरे के द्वारा प्रत्येक मनुष्य तक पहुँचा देती है।

अतएव तुम्हारे वास्तविक जीवन के लिए शिक्षा एक आवश्यक वस्तु नहीं है, किन्तु अपने सजातीय भाइयों के साथ, उन पूर्वजों के साथ, जो तुमसे पहले हो चुके हैं, सच्चा सम्बन्ध और पवित्र मेल शिक्षा के बिना तुम उत्पन्न ही नहीं कर सकते। शिक्षा मनुष्य जीवन का आधार है। जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त हमें अपना ज्ञान बढ़ाने के लिए, शिक्षा के लिए प्रयत्न करने रहना चाहिए।

- इस बात को मत भूलना कि सार्वजनिक उन्नति करना ही हमारा उद्देश्य है, अर्थात् मनुष्य जाति के सब अंगों में अधिक गहरा और अधिक फैला हुआ मेल-जोल उत्पन्न करके अपने आपको तथा दूसरों को धार्मिक उच्च भावों की सीमा तक पहुँचाना ही हमारे जीवन का उद्देश्य है, बिना इसको पूरा किए हम कभी विश्राम न लेंगे। इस पृथ्वी पर तुम इसलिए भेजे गये हो कि ईश्वर का एक नगर बसाओ, उसमें सार्वजनिक कुटुम्ब की स्थापना करो। इस महान कार्यसम्पादन करने के लिए तुमको लगातार परिश्रम और उद्योग करने की आवश्यकता है। जब तुम में से प्रत्येक, मनुष्य मात्र को मातृ-दृष्टि से देखने लगेगा और सब आपस में एक कुटुम्ब का आचरण करने लगेंगे, प्रत्येक मनुष्य अपनी भलाई दूसरों की भलाई में समझेगा, अपने जीवन को सबके जीवन के साथ और अपने लाभ को सबके लाभ के साथ मिलावेगा, जब हर एक मनुष्य इस संयुक्त कुटुम्ब के लिए स्वार्थ-त्याग करने पर उद्यत होगा और वह कुटुम्ब किसी व्यक्ति को भी अपने से पृथक् न समझेगा, उस समय वे बहुत-सी बुराइयाँ जो अब मनुष्य जाति के दुःख

और उद्वेग का कारण हो रही हैं, उसी प्रकार शांत हो जावेंगी, जिस प्रकार सूर्योदय के होते ही निविड़ तमोराशि छिन्न-भिन्न हो जाती है। तभी ईश्वर की इच्छा पूर्ण होगी क्योंकि उसकी यह इच्छा है कि मनुष्य जाति के बिखरे हुए अंग प्रेम के द्वारा आपस में मिल-जुलकर धीरे-धीरे एक हो जाएँ और जिस प्रकार वह आप एक हैं, उसी प्रकार उसकी सन्तान भी एक ही हो जाए। —मैजिनी

- दूसरे का धर्म भले ही श्रेष्ठ मालूम हो उसे ग्रहण करने में मेरा कल्याण नहीं है। सूर्य का प्रकाश मुझे प्रिय है, उस प्रकाश में मैं बढ़ भी रहा हूँ। सूर्य मुझे वन्दनीय है, परन्तु इसीलिए यदि मैं पृथ्वी पर रहना छोड़कर उसके पास जाना चाहूँगा तो जलकर खाक हो जाऊँगा। —विनोबा

- शरीर और कीर्ति दोनों नाशवान हैं और मृत्यु भी सदा निकट रहती है, इस कारण धर्मसंग्रह करना उचित है। —घणकव

- चाहे संसार भर के सारे बड़े-बड़े उपदेशक आ जाएँ, चाहे स्वयं ईश्वर आकर उपदेश करने लगे, परन्तु जब तक आप स्वयं अपने को उपदेश देने को तत्पर नहीं होंगे, तब तक दूसरों के उपदेशों से रंचमात्र लाभ नहीं होगा। स्वर्ग आपके भीतर ही है और तब भी आप गली-गली उसे विषयों में ढूँढ़ते-फिरते हैं। जो वस्तु भीतर मौजूद है, उसे आप बाहर तलाश करते हैं यह कैसा आश्चर्य है ?

—स्वामी रामतीर्थ

- अन्दर से अच्छा बनना ही वास्तव में कुछ बनना है। अन्तर को घटाकर जीवन को बाहर से बनाना, सजाना ठीक उसी प्रकार की क्रिया है, जैसे कोई विद्यार्थी किसी प्रश्न के मूल अर्थ को छोड़कर उसी भूमिका के बल पर ही परीक्षा पास करना चाहता है।

मनुष्य जीवन की बाह्य बनावट उसे कब तक साथ देगी ? जो कपड़े अथवा जो प्रसाधन यौवन में सुन्दर लगते हैं, यौवन ढलने पर वे ही उपहासास्पद दिखने लगते हैं। मनुष्य को जीवन का शृंगार ऐसे उपादानों से करना चाहिए जो आदि से अन्त तक सुन्दर बने रहें और मनुष्य को आकर्षित बनाये रहें।

मनुष्य जीवन का अक्षय शृंगार है, आन्तरिक विकास। हृदय की पवित्रता एक ऐसा प्रसाधन है जो मनुष्य को बाहर-भीतर से एक ऐसी सुन्दरता से ओत-प्रोत कर देता है, जिसका आकर्षण न केवल जीवनपर्यन्त अपितु जन्म-जन्मान्तरों तक सर्वदा एक-सा बना रहता है।

—अश्विनी कुमार वच

- जब तक हम स्वयं अपने छोटे-छोटे दीपकों को न जलाएँ, तब तक आकाश का दीप-जगत व्यर्थ है और जब तक हम स्वयं अपनी तैयारियों न करें, तब तक संसार की तैयारियों की सारी विधि उसी तरह प्रतीक्षा करती रहती है, जैसे वीणा अँगुली के स्पर्श की राह देखती है।

—रवीन्द्रनाथ टैगोर

- जो मनुष्य ज्ञान-विज्ञान की तह में पहुँचने के लिए पढ़ता है, उसके लिए पुस्तकें और पढ़ाई जीने के तख्तों की तरह हैं, जिन पर से होकर वह ऊपर चढ़ता है। जो सीढ़ी वह चढ़ चुकता है, उसे पीछे छोड़ देता है, लेकिन अधिकांश मनुष्य, जो अपने दिमाग को तथ्यों से भरने के लिए ही पढ़ते हैं जीने के तख्तों का उपयोग ऊपर चढ़ने के लिए नहीं करते, बल्कि उन्हें उखाड़कर अपने कन्धों पर रख लेते हैं, ताकि उन्हें उठाये-उठाये फिर सकें और बोझ ढोने का आनन्द ले सकें। ये लोग नीचे ही रह जाते हैं, क्योंकि जो चीज उन्हें ढोने के लिए बनी थी, उसे वे स्वयं ढोने लगते हैं।

—ओपेनहायर

- दैवी ज्ञान हुए बिना मनुष्य को अपनी कीमत नहीं मालूम होती और इसलिए अपने विषय में वह औरों से जानना चाहता है जबकि अपने सम्बन्ध में वह अपनी आत्मा से विश्वस्त, किन्तु दृढ़तापूर्वक जानकारी कर सकता है। सांसारिक दृश्य पर देव मोहित नहीं होते, क्योंकि निरन्तर अन्तर्दृष्टि रखने के कारण अपने भीतर ही उससे अधिक महत्त्वपूर्ण चीजें मिल जाती हैं।

—महर्षि रमण

- सिर्फ दो तरह के लोगों को आत्म-ज्ञान हो सकता है। उनको जिनके दिमाग विद्वत्ता आदि दूसरों से उधार लिए विचारों से बिल्कुल लदे हुए नहीं हैं और उनको जो तमाम शास्त्रों और साइन्सों को पढ़कर यह महसूस करते लगे हैं कि वे कुछ नहीं जानते हैं।

—श्रीरामानन्द

- जब ज्ञान इतना घमंडी बन जाय कि रो न सके, इतना गम्भीर बन जाय कि हँस न सके और इतना आत्म-केन्द्रित बन जाये कि अपने सिवा किसी को चिन्ता न कर सकें तो वह ज्ञान-अज्ञान से भी अधिक खतरनाक होता है।

—खलील जिब्रान

- मन रूपी पखेरू, तभी तक विषय-वासना के आकाश में उड़ता है, जबकि वह ज्ञान रूपी बाज के झपेट में नहीं आ आता।

—महात्मा कबीर

- ज्ञान मनुष्य का परम मित्र है, मूर्खता उसका निकृष्ट शत्रु है।

—टेम्पल

- ज्ञान धन से उत्तम है, क्योंकि धन की तुमको रक्षा करनी पड़ती है और ज्ञान तुम्हारी रक्षा करता है।

—अली

- विषयों का सुख और आत्मा की शांति—इन दोनों में से किसी एक को हमें चुनना है। अगर संसार में रहकर आत्मिक शांति प्राप्त करनी है, अगर दिव्य जीवन तक पहुँचना है, अगर मृत्यु के इस संसार से मुक्त होना है—तो भौतिक जीवन के फलों को नहीं चखना चाहिए।

—एमर्सन

- पाप कर्म स्वच्छ दूध के समान तत्काल ही विकार नहीं लाता, वह तो राख से ढँकी अग्नि के समान शनैः-शनैः जलते हुए मूर्ख आदमी का पीछा करता रहता है।

—महात्मा बुद्ध

- आप चाहे कितने भी निर्धन क्यों न हों, मगर आपका मन इसे स्वीकार नहीं करता, तो आप अधिक समय निर्धन नहीं रहेंगे। यदि आपने निर्धनता को भगा देने के लिए कमर कस ली है, यदि आपको यह प्रबल विश्वास है कि आप उस ईश्वर की संतान हैं, जो सब समृद्धियों का दाता है और जो आपको भी मधुर वरदान देगा—तो बस, समृद्धि का द्वार आपके लिए खुल जाएगा। आप शायद विश्वास न करेंगे कि ऐसी असम्भव बात कैसे हो सकती है ? किन्तु आप क्या हैं ? सभ्यता का विकास करते हुए मनुष्य ने आज तक यही सब किया है।

—स्वेट मार्टिन

- आत्म-सम्मान, आत्म-संयम ये दोनों पूर्ण शक्ति प्राप्त कराते हैं। मनुष्य सर्वोत्कृष्ट विजयी वह है जो अपने आप पर विजय प्राप्त करता है।

—अर्लस्टालिंग

- आदमी धर्म के लिए झगड़ेगा, उसके लिए लड़ेगा, उसके लिए मरेगा, सब कुछ करेगा, पर उसके लिए जियेगा नहीं। —जवाहरलाल नेहरू

- खुद ही अपनी परीक्षा कर, अपने को अपने आप उठा, इस प्रकार तू विचारशील ही अपनी रक्षा स्वयं करता हुआ, दुनिया में सुखपूर्वक विहार करेगा। —महात्मा बुद्ध

- मनुष्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह जितना अधिक सम्भव है, बाहरी परिस्थितियों पर शासन करे और जितना कम हो सके उनसे शासित रहे। —ग्रेटे

- अगर जिस रास्ते से चल रहे हैं, वह सँकरा है और प्रतिकूल परिस्थितियों के तीखे आघात प्रतिकूल आपको परेशान कर रहे हैं, उस समय भी अपना धैर्य मत छोड़िये। आपके भीतर जो एक चैतन्य शक्ति समाई हुई है, वही आपका प्रकाश, पथ-प्रदर्शक सुहृद और साथी है। उस पर विश्वास करते हुए आगे बढ़ते चलिये, विपरीत परिस्थितियाँ आपका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकेंगी।

याद रखिये—आपके संकल्प में उतनी जीवट है जितनी समुद्र के हाहाकार में। उसके आगे कोई आँधी, कोई तूफान आपकी राह न रोक सकेगा। अन्धकार में भी आपको प्रकाश मिलेगा, अकेलेपन में भी आपका साहस स्थिर रहेगा, पर अपने अडिग विश्वास को छोड़िये मत।

विश्वास है कि आप आगे बढ़ेंगे। उन्नति के उच्च शिखर पर चढ़ेंगे। देश, जाति और धर्म का उच्च-आदर्श भावी-पीढ़ी के आगे रखेंगे। सब कुछ करने का अजस्र स्रोत आपके अन्दर छिपा हुआ है। इस शक्ति को जगाने का उपक्रम कीजिये। अपनी शक्तियों पर विश्वास कीजिये—आपका भविष्य कीर्तिमान होकर आ रहा है। —कागावा

- कभी-कभी दोष देखने की इच्छा मेरी भी होती है और मैं वैसा करता भी हूँ। बेहतर शुरुआत

की दृष्टि से सर्वाधिक सुलभ साधनों का सहारा लेना सर्वोत्तम होता है। दोष-दर्शन के लिए सर्वाधिक सुलभ और समीपतम व्यक्ति खोजने पर अपना ही स्मरण हो आता है। आरम्भ में मैं अपने आप से ही करता हूँ और फिर इससे आगे बढ़ ही नहीं पाता। —डेविड ग्रेसन

- हम सभी दोषों से भरे हैं, मगर दोषयुक्त होने का प्रयास करना हम सबका कर्तव्य है।

—महात्मा गाँधी

- ज्ञात-अज्ञात पाप ही अन्तःकरण की मलीनता है। जब तक अन्तःकरण मलरहित, पापरहित नहीं होगा, तब तक वास्तविक-दृष्टि दिव्यदृष्टि का उदय नहीं होगा। —शंकराचार्य

- विजय निश्चित है, क्योंकि धर्म के साथ भी भगवान और उनके साथ विजय रहती है।

—मा. स. गोलबलकर

- मस्तिष्क संस्थान के अंशों पर चिन्ता ऐसे घाव कर डालती है, जिनका दूर करना अति कठिन होता है। जिस प्रकार एक ही स्थान पर पानी की बूँद लगातार पड़ती रहे तो उससे गड्ढा हो जाता है, ठीक इसी प्रकार एक ही बात की चिन्ता सोचते रहने से मस्तिष्क के कोश विकृत हो जाते हैं। —स्वेट माईन

- जहाँ धर्म नहीं वहाँ लक्ष्मी नहीं, स्वास्थ्य आदि का भी अभाव होता है, धर्मरहित स्थिति में बिल्कुल शुष्कता होती है, शून्यता होती है।

—महात्मा गाँधी

- निस्संदेह मनुष्यों में अत्यधिक पशुता, दुष्टता और क्रूरता है। यद्यपि दुनिया भर में धर्म की मान्यताएँ हैं, आचरण-संहिताएँ हैं धर्म-प्रेरक व्यक्ति और संस्थाएँ हैं, विचार-दर्शन में उपस्थिति के बावजूद मनुष्यों की यह स्थिति और प्रवृत्ति है, तो धर्म की अनुपस्थिति में उनकी क्या दशा होती या हो सकती है ?

- अन्याय के प्रति विद्रोह करना ईश्वर की आज्ञा का पालन करना है। —मैक्सिम

- सम्पत्ति शक्ति का चिह्न है। इसलिए सम्पत्ति को पूर्ण बनाने के लिए उसे गतिवान एवं प्रवाह पूर्ण होना चाहिए, क्योंकि सच्ची शक्ति गतिवान और प्रवाहयुक्त होती है। —रवीन्द्रनाथ टैगोर

- शक्तिहीन न्याय अयोग्य है, न्यायहीन शक्ति अत्याचार है, शक्तिहीन न्याय का विरोध किया जाता है। न्यायहीन शक्ति की आलोचना होने लगती है, इसलिए न्याय और शक्ति को परस्पर संयुक्त कर देना चाहिए, जिससे जो न्यायपूर्ण है, वह शक्तिशाली बने और जो कुछ शक्तिशाली है वह न्यायपूर्ण हो सके। —**मैसकल**
- कठिनाइयों पर विजय पाने के संघर्ष ही से व्यक्तित्व बढ़ता है। —**हेरल्ड डाउन**
- जो अपने को तुच्छ समझता है, वह केवल अपना ही मूल्य नहीं घटाता, किन्तु समस्त मनुष्य जाति को अप्रतिष्ठित करता है। —**रवीन्द्रनाथ टैगोर**
- बिना मातृत्व प्राप्त किये कोई भी स्त्री मनोवैज्ञानिक रूप से पूर्ण नहीं हो सकती। —**जे. बी. एस. हाल्डेन**
- यदि दुनिया की भूलें और उसके दोषों को दूर करना चाहते हो तो इस कार्य में माताओं को प्रवृत्त करो। —**सोमन्त**
- बच्चे का भावी भाग्य बनाना सदा माता का कार्य होता है। —**नेपोलियन**
- जीवन का मूल शब्द विश्वास है, बिना विश्वास के जीवन की सारी तस्वीरें और उद्देश्य विलीन हो जाते हैं। —**हेरल्ड डाउन**
- प्रत्येक जाति की मुख्य कीर्ति उसके लेखकों से उत्पन्न होती है। —**एस. जॉनसन**
- जो लेखक अपने पाठक को अधिक ज्ञान प्रदान करता है और उसका समय कम लेता है, वही बड़ा लेखक है। —**सिडनी स्मिथ**
- विपत्ति मनुष्य को पक्का करती है और सच्चे-झूठे की पहिचान करती है। —**सुकरात**
- नैतिक प्रतिष्ठा ही सारी प्रतिष्ठाओं में सबसे अधिक मूल्यवान है। कर्म ही हमारे पुत्र हैं। —**वाइरन**
- शंकाएँ कायरता का चिह्न हैं और विश्वास वीरता का। —**कुल्लर लिटन**
- आजकल आधी से अधिक बीमारियाँ शरीर को भूल जाने और मस्तिष्क से ज्यादा काम लेने से उत्पन्न होती हैं। —**कुल्लर**
- जब तक लज्जा हमारी निगरानी करती है, तब तक हृदय में सदगुण बने रहते हैं। —**बर्क**
- जो लोग अपने और ईश्वर के बीच में जान-बूझकर पाप कर्म करने का पर्दा डालते हैं, वे शान्तिपूर्वक नहीं रह सकते। —**जार्ज इलियट**
- कुरीति के अधीन होना कायरता है और उसका विरोध करना पुरुषार्थ है। —**महात्मा गाँधी**
- केवल रीति-रिवाज ही से सदाचार बनता है। —**एनाटन**
- लज्जाहीन मनुष्य नहीं रह जाता है। —**प्लाटस**
- अगर हृदय मन्दिर में प्रेम का प्रकाश है तो संसार शिवमय है, क्योंकि प्रेम ही वास्तविक शिवमूर्ति अर्थात् कल्याण का रूप है। —**प्रताप नारायण मिश्र**
- कभी न कभी माता का सदाचार और पिता का पाप बच्चे पर अवश्य आता है। —**डिकोस**
- बदमाशों की बातें देखने और सुनने से ही बदमाशी प्रारम्भ होती है। —**कन्फ्यूशियस**
- कोई भी आदमी अकस्मात् न बहुत भला बन जाता है और न बहुत बुरा। भलाई और बुराई दोनों ही की ओर आदमी धीरे-धीरे बढ़ता है। —**सिडनी**
- ईमानदार आदमी यदि डरपोक होगा तो दुष्ट आदमी अपनी दुष्टता में सबल हो जाएँगे। —**बाल्सेन**
- डरपोक आदमी अपनी मृत्यु के पहले भी अनेक बार मरते हैं, पर वीर पुरुष मृत्यु का आनन्द सिर्फ एक ही बार लेते हैं। —**शेक्सपियर**
- कायर अपने से ऊपर वालों की चापलूसी करता है, पर जिनको दबा लेता है, उनका अपमान करता है। —**जूलियस**
- संयम और मेहनत मनुष्य के दो उत्तम वैद्य हैं। परिश्रम भूख को बढ़ाता है और संयम अधिक खाने से रोकता है। —**रुसो**
- किसी के साथ बदला लेना मनुष्य का कार्य नहीं, वह कार्य तो केवल भगवान का ही है। —**बैरोनेस ओगो**
- कर्म से प्राणी बाँधा जाता है और शिक्षा से उसका छुटकारा हो जाता है।

३.५० विचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

- प्रसन्न होने के लिए बलवान बनो। —**लॉगफ़ैलो**
- अपने ज्ञान को मूल्यवान बनाने के लिए बुद्धिमत्ताजनित प्रसन्नता को अपनाना चाहिए। —**एमर्सन**
- भोग भोगने से भोग की वृत्ति बढ़ती ही है, घटती नहीं।
- भोग-विलास, सैर-सपाटे से आत्मा सन्तुष्ट नहीं होती। क्या कभी चटनी और अचार खाकर किसी की भूख बुझी है। —**प्रेमचन्द**
- एक मूर्ख लड़के को होशियार बनाने की अपेक्षा एक बुरे लड़के को अच्छा बनाना सरल है। —**जे. बी. एस. हार्वेन**
- प्रत्येक बुराई निकृष्टता को देती है और प्रत्येक अच्छाई उच्चता को, इसलिए हमें अपने कार्यों की दूनी चौकसी करनी चाहिए, ताकि हमारे कार्यों को उच्चता का जन्म मिले। —**एस्टर फ्रीड**
- मनुष्य को भय से उसी समय तक भयभीत होना चाहिए, जब तक कि वह नहीं आता, आये हुए भय को देखकर उससे डर जाना उचित नहीं। —**नेपोलियन**
- वही पुस्तक उत्तम है जो आशा से खोली जाय और लाभ के साथ बन्द की जाय। —**एस्केट**
- एक उत्तम पुस्तक एक महात्मा का मूल्यवान जीवन-रक्त है। —**मिल्टन**
- जो अपने बच्चों को शिक्षा दिलाते हैं, उन्हें यह ध्यान रखना चाहिए कि लड़के पुरुष बनेंगे और लड़कियाँ स्त्री। इस ध्यान को भुला देने से हमें ऐसी नसल प्राप्त होगी जो स्त्री और पुरुष दोनों के ही लक्षणों से युक्त होंगे। —**डोमर**
- जिसकी आत्मा में प्रकाश आ गया है सिर्फ वही दूसरों की आत्मा को प्रकाश दे सकती है। जो लकड़ी स्वयं नहीं जलती, वह दूसरी लकड़ियों को भी नहीं जला सकती। —**रवीन्द्रनाथ टैगोर**
- परमेश्वर के प्यारे वे हैं जो उसकी सृष्टि से प्यार करते हैं। —**आल्फ्रेड वाइल्ड**
- यदि आप प्रतिबन्धों से बचना चाहते हैं तो अपना सुधार कीजिए। —**डिमात्यनीज**
- प्रत्येक घटना के उत्तम पहलू को देखने की आदत लाखों रुपये की वार्षिक आमदनी से ज्यादा कीमत है। —**जॉनसन**
- भूतकाल और वर्तमान को भावी काल के बनाने में लगाओ। —**सेज़िक डोवर**
- प्रसन्नता का सच्चा स्रोत परोपकार है, जो सदैव भलाई और सहानुभूति से भरा रहता है, वह सदा प्रसन्न रहता है। —**गाडविन**
- प्रेम स्वर्ग का रास्ता है। —**कलस्टाय**
- प्रसन्नता ही स्वास्थ्य को बनाती है। —**मर्फी**
- प्रभु, अपने प्रकाश और अपने सत्य को भेजो जो मेरा मार्ग-दर्शन करे।
- प्रभु, मेरे हृदय में जो अन्धकार है, उसे अपना प्रकाश प्रदान करो, मुझमें जो नीचता है उसे उच्चता में बढ़ा दो और मेरी सहायता करो। —**मिल्टन**
- प्रभु मेरे विचारों और संकल्पों के मूल स्रोतों की रक्षा करो और मेरी आत्मा को अपने से भर दो। —**विशप केन**
- प्रभु, मुझे असत्य में से सत्य में, अन्धकार में से प्रकाश में और मृत्यु में से अमृत में ले चलो।
- धनी हृदय हुए बिना सम्पत्तिवान पुरुष एक भिक्षुक के बराबर है।
- प्रार्थना से बहुत-सी बातें हो जाती हैं, जिनको दुनिया स्वप्न में भी नहीं सोचती। —**टेनीसन**
- मनुष्य की दया के ऊपर अत्याचार करना संसार के सब पापों से बढ़कर है। —**भरतचन्द्र**
- दूसरे के दोष को देखकर दण्ड देने के पूर्व अपने दोष को देखो। —**महात्मा ईसा**
- प्रेम मनुष्यत्व का दूसरा नाम है। —**महात्मा बुद्ध**
- कृतघ्नता से बढ़कर संसार में दूसरा कोई पाप नहीं है। —**डिकेन्स**
- प्रेम साधारण घर को भी आनन्दगृह में बदल देता है। —**बासर**
- सिर के बाल सफेद हो जाने से ही कोई आदमी वृद्ध नहीं होता, वृद्ध उसी को कहते हैं, जो तरुण होने पर भी ज्ञानवान हो। —**मनु**

- ❑ बुद्धिमान मनुष्य कभी बैठकर अपनी हानि के लिए रोते नहीं, बल्कि प्रसन्नतापूर्वक अपने कष्टों को दूर करने का उपाय ढूँढ़ते हैं।
—जेक्सपियर
- ❑ अधिक वाक्पटुता की अपेक्षा स्पष्ट भाषण अति उत्तम है।
—स्विनबर्न
- ❑ दया के बराबर कोई धर्म नहीं, क्षमा के बराबर कोई शूरता नहीं, आत्मज्ञान के बराबर कोई ज्ञान नहीं, सत्य के समान कोई गुण नहीं।
—हितोपदेश
- ❑ ज्ञान, बिना समझ के मूर्खता है, बिना विधि के निसार है, बिना दया के धर्मोन्माद है, बिना धर्म के मृत्यु है।
—विशपली
- ❑ लोगों को दिखाने के लिए यदि धर्म का आचरण करोगे तो भगवान से तुम कुछ भी न पाओगे।
—महत्मा ईसा
- ❑ परनिन्दा मनुष्य के हृदय की शुद्धता को ही प्रकट करती है, इसके सहारे कोई अपनी प्रशंसा नहीं पा सकता।
—भगवान श्रीकृष्ण
- ❑ तुम अपनी वर्तमान स्थिति में ही पड़े-पड़े मत सड़ते रहो, उसमें यथाशक्ति शान्तिपूर्वक समुचित से अधिक सुधार करते जाओ तथा शक्ति के अनुसार उसे उत्तम अवस्था में ले जाने का प्रयत्न करो।
—लोकमन्य तिलक
- ❑ साम्प्रदायिकता धर्म के वेश में सांसारिकता का विकृत रूप है।
—रवीन्द्रनाथ टैगोर
- ❑ सेवा का महत्त्व उसकी छोटी अथवा बड़ी होने में नहीं है उसका महत्त्व तो इस बात में है कि वह पवित्र या अपवित्र भाव से की गई है अथवा शुद्ध या अशुद्ध भाव से। ईमानदारी के साथ मेहनत करना पवित्र सेवा का कार्य है। बफादारी के साथ काम करना ही सच्ची तारीफ और सच्ची सेवा है।
—एच. पानडाइक
- ❑ जो लोग यह कहते हैं कि पुत्र प्राप्ति के लिए स्त्री की आवश्यकता है, वे उसका अपमान करते हैं।
—शरतचन्द्र
- ❑ जो आदमी किसी से मजाक करता है, वह उसे अपना शत्रु बना लेता है।
—गेटे
- ❑ वह दिन बेकार खोया जिस दिन तुम्हारे हाथों कोई सेवाकार्य नहीं हुआ।
—एनन
- ❑ जीवन की खोज में केवल एक ही बात मूल्यवान है और वह है—मानव सेवा। —बेसी
- ❑ यदि आप जीवन को प्यार करते हैं तो समय का अपव्यय क्यों करते हैं ? क्या आपको नहीं मालूम कि उसी के द्वारा जीवन का गठन हुआ है।
—फ्रैंकलिन
- ❑ बुद्धिमान होने के लिए कल की प्रतीक्ष मत करो।
—कांग्रीव
- ❑ निर्दोषिता के सिवाय और किसी में साहस नहीं होता। पवित्र प्रयोजन के सिवा और किसी में स्थिरता नहीं होती।
—सर्व
- ❑ आत्म-प्रतिष्ठा, आत्म-ज्ञान और आत्म-संयम इन्हीं तीनों से जीवन को शक्ति प्राप्त होती है।
—टेनीसन
- ❑ मन की अपेक्षा हृदय से सोचने को ही सच्चाई कहते हैं।
—एनन
- ❑ न्याय और सत्य के पक्ष में ईमानदारी के साथ डटकर खड़े हो जाने के लिए तैयार हो जाओ, चाहे जैसी भी आँधी चलती हो। —वेडेन पावल
- ❑ जिसका मन सच्चाई से भरा है, वह विकास न होने पर भी देश की महान सेवा कर सकता है।
—मोतीलाल नेहरू
- ❑ मनुष्य का जीवन कर्म की सहनशीलता से बना और जीवन उसी अनुपात में सफल है, जिसके अनुसार वह उच्च कर्म अथवा सन्तोषपूर्ण लगन में ढाला गया है।
—एच. पी. लिडन
- ❑ समय पर किये जाने वाले कर्म का त्याग करना मूर्खता और दुर्बलता का सूचक है।
—भगवान श्रीकृष्ण
- ❑ तुम मनुष्य हो, मन में निराशा के भाव न लाओ, सावधान होकर रहो कहीं ऐसा न हो कि आया हुआ सुयोग व्यर्थ हो जाय। सदुपाय कभी व्यर्थ नहीं जाते।
—मैथिलीशरण गुप्त
- ❑ समय का सदुपयोग न करने से मनुष्य दीन और दुनिया कहीं का नहीं रहता, इसलिए समय व्यर्थ न खोओ।
—कामना
- ❑ जानते और समझते हुए भी अन्याय का विरोध करने की शक्ति, जिसमें से नष्ट हो गई है, वह जाति अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकती।
—शरतचन्द्र

३.५८ विचारसार एवं सुक्तिर्वा (द्वितीय खण्ड)

- वह आदमी महान है जो अपनी शक्तिभर कार्य करता रहता है। —**फ्रायडे**
- साहस हृदयों से उत्पन्न होता है, संख्या से नहीं। —**श्राइडेप**
- मनुष्य की महानता की परीक्षा यही है कि वह स्वयं अपने मार्ग के दोष को देख सकता और उन्हें दूर कर सकता है। —**पल्लबक**
- संतजन जगत् के कल्याण के ही लिये जन्म लेते हैं। वे लोग परउपकार में ही अपने शरीर को कष्ट दिया करते हैं। —**संत तुकाराम**
- परार्थ को ही जिस मनुष्य ने अपना स्वार्थ बना लिया है, वह सब सत्पुरुषों में श्रेष्ठ है। —**भर्तृहरि**
- बलवान् और बुद्धिमान मनुष्यों को बल इसलिए दिया है कि वे दुर्बलों को कुचलें नहीं, बल्कि उनकी सहायता तथा पथ-प्रदर्शित करें। —**रस्किन**
- दैत्य का-सा बल रखना बुरा नहीं है, दैत्य की तरह उसका प्रयोग करना बुरा है। —**जेम्सपियर**
- हमारा व्यवहार ही हमारे हृदय की सच्चाई का प्रामाणिक सबूत है। —**नारायण**
- ईमानदारी का नाप कथनी से नहीं करनी से होता है। —**जूलियस**
- अपने उद्धार के लिए अपना दोष या मूर्खता स्वीकार करना आवश्यक है। —**डॉ. पद्मविंसीतारमैया**
- आनन्द कल्पना में है वस्तु में नहीं, महाकुरूप गुड़िया को भी बच्चे कल्पना से सुन्दर बना लेते हैं। —**रवीन्द्रनाथ टैगोर**
- भगवान पर और अपने आप पर पूरा विश्वास करो और किसी में नहीं। लेकिन दोनों को अलग भी न करो। —**डिकेन्स**
- प्रयत्न में जो आनन्द है, वह प्राप्ति में नहीं। —**विनोबा**
- विचार की पूर्णता और उसकी अभिव्यक्ति ही कर्म कहलाती है। —**एम्सर्टन**
- ऐश्वर्य का मूल असन्तोष है। —**वेबव्यास**
- व्यक्ति का आचरण ही उस व्यक्ति का सच्चा मित्र है। —**गेटे**
- आचरण का ओछापन अच्छाई और सद्गुणों का घातक है। —**सेनेका**
- जहाँ से मनुष्य की सहानुभूति का स्रोत दूसरों के लिए उमड़ पड़ता है, वहीं से सुख का उद्गम होता है। —**जरबुस्त्र**
- दुःख को दबा लेने की अपेक्षा सुख को छिपा लेने वाला महान है। —**लेवेटर**
- उत्तम जीवन बिताने के लिए स्पष्ट दृष्टि, बहुमुखी सहानुभूति, सुन्दर साहस और अनन्त सन्तोष की आवश्यकता सदा बनी रहती है। —**डेवलाफ एलिस**
- जो दुःख नहीं भोग सकते वे इस योग्य नहीं हैं कि आनन्द का अनुभव कर सकें। —**कर्टिनी**
- संसार में जो आनन्द मिलता है, वह भोगने के लिए नहीं, बल्कि आगामी परिश्रम के लिए दृढ़ बनने के हेतु मिलता है। —**फिश**
- भलाई और सच्चाई द्वारा ही सच्चे सुख की इमारत खड़ी की जाती है। —**क्रेलरिज**
- आलस्य मानव की कुप्रवृत्तियों को जन्म देता है। —**अनातोले फ्रान्स**
- आलस्य से यदि पाप या बुरे भाव न उत्पन्न हों तो भी विषाद तो अवश्य उत्पन्न होगा। —**सिडनी स्मिथ**
- आलस्य मूर्खों के लिए छुट्टी का दिन है। —**चेस्टर फ्रीड**
- हो सकता है कि कोई काम तुम्हें बुराई की ओर ले जा रहा हो, लेकिन काम न करना कभी अच्छाई की ओर नहीं ले जा सकता। —**डोम मोर**
- यदि हम पूर्ण बनना चाहते हैं तो मित्रों की आलोचना तथा शत्रुओं के कटुवाक्यों के भीतर अपनी कमियों को देखने की आदत डालें। —**डायोजेनेस**
- अपराध करने वाला व्यक्ति अपराध करने के बीज को अपने वंश में फैला देता है जो कि माता-पिता के झगड़े, अनैतिकता, क्रूरता, दोषपूर्ण अनुशासन और अवज्ञा से अंकुरित होता है और फलता-फूलता है। धीरे-धीरे यह स्कूल, कारखाने और फुर्सत के समय के उपयोग या दुरुपयोग में भी प्रविष्ट हो जाता है। —**डॉ. मेन्सहर्ड**

- बुराई को घृणा करो, बुराई करने वाले का नहीं। —**जेक्सपियर**
- आठ से लेकर सोलह वर्ष तक की उम्र में अपराध करने की वृत्ति आती है। —**जेफ्टसवरी**
- गुजरे हुए जमाने में जो अपराध हम कर चुके हैं, उसके लिए शोक करते रहना ठीक नहीं है। ठीक तो यह है कि वर्तमान में हमसे कोई अपराध न हो जाय इसकी कोशिश करें। —**लॉगफैलो**
- अहसान न मानने वाला प्राणी पृथ्वी पर बोझ के सम्मान है। —**कवि गिरधरदास**
- कोई भी आदत ऐसी नहीं होती जिसका कि सुधार न हो सके। —**पिक्विक पेयर्स**
- पर्याप्त दूर तक आगे न देखना जीवन में सबसे बड़ी भूल है। —**कैडिन्स**
- अज्ञान ही दुर्गतियों का मूल कारण है। —**लेटो**
- अज्ञानी अवस्था में किसी बात के ज्ञान का ढोंग करना और फिर उस सम्बन्ध में इलाज बताना विनाशकारी है। —**जार्ज इलियट**
- अज्ञान अहंकार को बढ़ाता है। जो अपने को बड़ा समझते हैं, उनसे बड़ा और कोई अज्ञानी नहीं है। —**गेटे**
- कोई बात बिना कारण नहीं होती। —**वाल्टेयर**
- दूसरों के आचरण देखकर मनुष्य जितना सीखता है उतना और प्रकार से नहीं। —**बर्क**
- आचरणहीन ज्ञानी पुरुष सामान्य लोगों को आलसी बनाने के लिए एक बहुत बड़े कारण हो सकते हैं। ज्ञानियों को तो आचारवान होना ही चाहिए। —**सोक्रेटिस तिलक**
- जो उपकार जताने का इच्छुक है, वह द्वार खटखटाता है, जिसमें प्रेम है, उसके लिए द्वार खुला है। —**रवीन्द्रनाथ टैगोर**
- ज्ञान, समझ के साथ बुद्धिमत्ता है, विधि के साथ शक्ति है, उदारता के साथ परोपकार है, धर्म के साथ सद्गुण और शान्ति है। —**हीनफार**
- यदि कोई बात मालूम नहीं है तो उसे दूसरे से पूछने में लज्जा अथवा आलस्य न करना चाहिए। इस सरल रीति से योग्यता के सीखे मार्ग पर पहुँच जाओगे। —**शेक्सपीयर**
- ज्ञान की चर्चा से ज्ञान की इच्छा बढ़ती है, धर्म की साधना से धर्म की प्यास भी उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है, पुण्य के अनुशीलन से पुण्य का लोभ भी क्रमशः उग्र होता जाता है। —**शरतचन्द्र**
- विद्वत्ता से मैंने अपनी मूर्खता को समझा। —**लुकमान**
- जीवनमुक्त वह पुरुष है, जिसमें साधारण क्षणिक उत्तेजनापूर्ण भावों का अभाव है। —**स्वामी रामतीर्थ**
- जीवन का महान उद्देश्य ज्ञान नहीं, कर्म है। —**इक्विस**
- जो ज्ञान केवल दिमाग में ही रह जाता है और हृदय में प्रवेश नहीं करता, जीवन के अनुभव में झंकट के समय व्यर्थ ही प्रमाणित होता है। —**महात्मा गाँधी**
- शरीर जल से पवित्र होता है, मन सत्य से, आत्मा धर्म और भक्ति से और बुद्धि ज्ञान से पवित्र होती है। —**गुरु**
- काम करो, संसार का धर्म काम है, कीर्ति की प्राप्ति शुभ काम करने ही से होती है। —**डेविल विल्फी**
- परमेश्वर की इच्छा यह है कि तुम पवित्र बनो, व्यभिचार से बचे रहो, तुममें से हर एक पवित्रता और आदर के साथ भगवान की प्रार्थना करना जाने, तुम सब आपस में प्रेम करो, क्योंकि परमेश्वर प्रेम को ही शिक्षा देते हैं। —**महात्मा ईसा**
- जिन्होंने वासनाओं को जीता है, वे ही मुक्त हुए हैं, जिन्होंने ईर्ष्या का त्याग किया है, उन्हीं को प्रेम की प्राप्ति हुई है और जिन्होंने धैर्य धारण किया है, वे ही शुभ परिणाम को प्राप्त कर सके हैं। —**इसन बसरी**
- शरीर नाशवान है इसलिए उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। चिन्ता तो सदैव स्थिर रहने वाले यज्ञ की करनी चाहिए। —**श्रीकृष्ण**
- विषय, इच्छा, क्रोध, मोह, नित्य प्रति ज्ञानी के पास से हटते जाते हैं।

१.६१ विचारसार एवं सुक्तिर्नी (द्वितीय खण्ड)

- विरोध करने वाला कभी भी उत्साहित मनुष्य का मत परिवर्तन नहीं कर सकता। —**सिल्वर**
- हमारा कर्तव्य स्थान वही है, जहाँ हम हैं, न कि वहाँ जहाँ हम रहना चाहते हैं।
—**आचार्य गिडबानी**
- अपनी शक्ति के अनुसार लोगों के दुःख को दूर करना ज्ञानी पुरुष का कर्तव्य है। —**शोपेनहॉवर**
- बुराईयों से बचते रहने की कोशिश करना और अनिवार्य बातों से लाभ उठाना यही कर्म की कुशलता है। —**रस्किन**
- कर्तव्य की पुकार पर हमें कर्तव्य पालन के लिए उठ खड़ा होना चाहिए। —**डिकोस**
- हमारा सबसे बड़ा काम दूर की धुँधली वस्तु को देखना नहीं है, बल्कि जो साफ-साफ दिखाई देती है और पास ही है उसे कर डालना है।
—**क्रस्ताइल**
- कर्म करना ही जीवन है और चुप बैठे रहना मृत्यु।
—**सुइस मारिस**
- काम में घुल-मिल जाने से निराशा नहीं आती।
—**टेनीसन**
- क्रमशः कार्य को उदारतापूर्ण करना ही उसका इनाम पाना है।
—**वाल्वा**
- कार्य को वचन के अनुसार बनाओ और वचन को कार्य के अनुसार। दोनों में फर्क न रहे।
—**जेक्सपियर**
- कोई महान वस्तु बिना उत्कण्ठा के प्राप्त नहीं होती।
—**हेगेल**
- आशा छोड़ बैठने से मनुष्य आक की तरह भावी फल से भी हाथ धो बैठता है।
—**प्लबक**
- सच्चा आशावादी वही है जो कर्म जगत् में निराशाओं के बीच आशावादी बना रहे।
—**हरिभाऊ उपाध्याय**
- जिसने आज्ञापालन करना नहीं सीखा है, वह ठीक तरह से आज्ञा देना भी नहीं जानता।
—**टामस ए कैंपिस**
- आज्ञा-पालन और समर्पण सारे सद्गुणों को उत्पन्न करते हैं और अहमन्यता और हठ सारे पाप।
—**मान्देन**
- दूसरे काम से सुख मिलेगा इसलिए ईश्वर द्वारा निर्धारित कार्य से भाग खड़ा होना व्यर्थ है। हमें सुख वही ढूँढ़ना चाहिए, जहाँ से कि वह मिलता है, सच्चा सुख आज्ञापालन से ही मिलता है।
—**जार्ज इलियट**
- बच्चों को सबसे पहला पाठ आज्ञापालन का ही सिखाना चाहिए।
—**फुलर**
- युवक जैसा बनना चाहे वैसा ही बन सकता है यदि वह प्रतिज्ञा करले और उसके अनुसार आचरण करना आरम्भ कर दे।
—**बन्सटन**
- आज्ञापालन सफलता की कुंजी है। —**ईस विलस**
- मनुष्य की इच्छाएँ देखकर उसे जाना जा सकता है।
—**मैन्टन**
- ईश्वर का साक्षात्कार तभी होता है, जब हम समर्पण करने के लिए जाते हैं, उससे माँगने के लिए नहीं।
—**रवीन्द्रनाथ टैगोर**
- परमात्मा पूजा से नहीं, प्रेम से मिलता है।
—**स्वामी दयानन्द सरस्वती**
- किसी भी जाति का हो, सबके साथ प्रेम का बर्ताव करो, ईश्वर को प्रसन्न करने का यही रास्ता है।
—**महात्मा गाँधी**
- निष्कपट भाव से ढूँढ़ने वाला और सच्चे हृदय से सेवा करने वाला मनुष्य ही ईश्वर को प्रसन्न करता है।
—**पाणिनि**
- कामातुरता और ईर्ष्या जब अपने उच्चशिखर पर पहुँच जाती है, तब लज्जा खत्म हो जाती है।
—**डेलीफेक्स**
- बिना उत्साह के कोई महान कार्य आज तक कभी पूरा नहीं हुआ।
—**एमर्सन**
- तृष्णा सुख का भयंकर शत्रु है। —**नारायण**
- यदि दुःख के बाद सुख न आता तो उसे कौन सहता ?
—**डॉ. जॉनसन**
- वह मूर्ख है जो अपना नुकसान देखकर रोता है। नुकसान होने पर ही आत्मा को विचार करने और ईश्वर को पूजने का समय मिलता है और सत्य का दर्शन भी होता है।
—**टालस्टाय**
- आपत्तियाँ आने पर उनका वीरता के साथ सामना करो और उनसे विचलित न होओ।
—**मारकस अनटोनियस**

- मनुष्य कष्टों के कारणों को दूर करने का प्रयत्न करके कष्टों को कम कर सकता है। यही उसके करने योग्य कार्य है।

—रवीन्द्रनाथ टैगोर

- कठिनाइयों की सृष्टि करना बुद्धिमानी नहीं है, उन पर विजय प्राप्त करना पुरुषार्थी मनुष्यों का काम है।

—प्रेमचन्द

- मन की तृप्ति पर दरिद्रता और अमीरी दोनों ही समान हो जाते हैं।

—मर्तुकरि

- जिनके पास कुछ नहीं है वे गरीब नहीं हैं। गरीब तो वे हैं, जिनकी अभिलाषाएँ अधिक हैं।

—डेनियक

- सदाचारी होना अमीर के भाग्य में नहीं लिखा है, गरीब ही सदाचारी हो सकता है।

- ऋण लेने का स्वभाव दरिद्रता को निमंत्रण देता है।

- मनुष्य का चरित्र ही उसकी भावी सफलता या विफलता का निर्णायक है।

—रहीम

- उच्च जीवन से उच्च चरित्र वाले उत्पन्न होते हैं।

—पोप

- चरित्र से बढ़कर और कोई उत्तम पूँजी नहीं है।

—स्पाइलस

- हमारे जीवन का एक प्रधान उद्देश्य होना चाहिए और सारे अन्य सहायक उद्देश्य हमारे मुख्य लक्ष्य की पूर्ति के ही लिए होने चाहिए।

—नामनि रिचर्ड

- प्रजातंत्र का अन्त भोग-विलासी स्वभाव से हो जाता है।

—गानेस्कू

- झूठ को इज्जत देकर जितना ऊँचा बनाये रखोगे, उसमें उतनी ही ग्लानि, उतना ही अनाचार, उतना ही कीचड़ इकट्ठा होता रहेगा।

—शरतचन्द

- जिससे कभी पहले दुःख नहीं हुआ, वह सुख अनुभव नहीं कर सकता।

—पर्सबक

- नीच विचार सुख में भी दुःख देते हैं, लेकिन उच्च विचार दुःख में भी सान्त्वना देते हैं।

—काल्डन

- उच्चवृत्तियों की ओर ध्यान रखने वाला बड़ा बन जाता है, पर जो ओछी वृत्तियों का ही ध्यान करता है, वह ओछा बन जाता है।

—मैनसियस

- जो मनुष्य उपेक्षा कर सकता है, उसे दरिद्र बनते देर नहीं लगती।

—ऑनसन

- बिना उत्साह के कोई सद्गुण सुरक्षित नहीं रह सकता।

—सीली

- और भी अधिक होता है—डॉट के बाद प्रोत्साहन, वर्षा के बाद धूप।

—गेटे

- मजबूत बनो और मर्द बनो। जो दुष्ट होते हुए भी मजबूत और मर्द हैं, मैं उनकी इज्जत करता हूँ, क्योंकि उसकी शक्ति किसी न किसी दिन उसे अपनी दुष्टता छोड़ने के लिए बाध्य कर देगी और उसे रास्ते पर ले आयेगी।

- तुम्हारा भाग्य तुम्हारे हाथ में है। जो, जो शक्ति और सहायता तुम चाहते हो, वह सब तुम्हारे भीतर मौजूद है। इसलिए अपना भाग्य अपने आप ही बनाओ।

—स्वामी विवेकानन्द

- द्वेष करने वाला अपने भोजन को विषाक्त कर देता है और फिर उसे खाता है।

—नारायण

- जिस बात को मनुष्य अपने लिए उचित नहीं समझता है दूसरों के साथ भी वैसा व्यवहार न करे, यही वास्तविक धर्म है।

—बीष्ण

- दूसरों की अन्धाधुन्ध नकल करना छोटे मन वाले लोगों का काम है।

—ग्रेवाइक

- दुःख से घबराकर आत्महत्या करना तो दुःख को जीतना नहीं है।

—शरतचन्द

- परिस्थितियों के प्रति व्यक्ति की प्रतिक्रिया का नाम ही चरित्र है।

—डॉ. पद्मभित्तीतारमैया

- राष्ट्र का बल उसके लोगों का सुज्ञान और सुव्यवस्थित घर है।

—सिडनी

- सम्पत्ति को अपने अधिकार में करने की अपेक्षा लोग सम्पत्ति के अधिकार में हो गये हैं।

—सीनी

- धीमी-धीमी वर्षा बहुत देर तक होती है, किन्तु एकदम आने वाला तूफान थोड़ी देर रहता है।

—जेक्सपियर

- दान, पछतावा, संयम, संतोष, दीनता, सच्चाई और दया ये बैकुण्ठ के सात दरवाजे हैं।
- जीवन का अर्थ है दान।
- घर ही राष्ट्र का निर्माण करते हैं।

—जोजेफ़ कुक

- जो ईश्वर को जानते हैं, वे नम्र होते हैं परन्तु जो अपने को जानते हैं, वे भी अभिमानी नहीं हो सकते।

—फ़्लोबेले

- अच्छी शिक्षा और सच्ची सभ्यता का यह एक प्रमाण है कि हम प्राचीनता की प्रतिष्ठा करते हैं।

—सिडनी

- स्त्रियाँ माता की प्रतिमा हैं। जब तक उनका उद्धार न होगा, हमारे देश का उद्धार होना असम्भव है।

—स्वामी विवेकानन्द

- झूठ बोलना कायरता का चिन्ह है।

—सर्वन

- मिथ्या को बार-बार हिला-डुलाकर सचेत करते रहने से उसकी आयु बढ़ जाती है। अपनी असहिष्णुता से उस मिथ्या की आयु और बढ़ाने के समान कोई दूसरा पाप नहीं है।

—शरतचन्द्र

- सामाजिक व्याधि को हम बाहरी प्रयत्नों से दूर नहीं कर सकते। सुधार तो मन के ऊपर प्रभाव डालने से ही हो सकता है। शिक्षा द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से उसके लिए प्रयत्न करना होगा। आन्दोलन द्वारा सनसनी फैलाकर किसी सामाजिक बुराई को दूर करने की कोशिश से कोई लाभ नहीं हो सकता।

- सारे संसार को अपने साथ लिए बिना संसार का एक परमाणु भी आन्दोलित नहीं हो सकता।

—स्वामी विवेकानन्द

- जो जाति अपना गौरव और आत्माभिमान छोड़ चुकी, वह सांसारिक वैभव को फिर नहीं पा सकती।

- दरिद्रता ही संसार में सब बुराइयों की जड़ है। इसके कारण ही मनुष्य के उच्च भावों का विनाश होता है।

- जो सुखी रहकर संसार को सुखी करना चाहते हैं, वे असफल होते हैं। सफलता पाने के लिए तो अपने सुख को छोड़ना पड़ता है।

- शारीरिक क्षीणता कमजोर दिमाग का चिन्ह है।

—लाला हरदयाल

- जिसका देह और मन शुद्ध न हो, उसका मन्दिर में जाकर भगवान की पूजा करना व्यर्थ है। जिनके देह और मन दोनों पवित्र हैं, भगवान उन्हीं की प्रार्थना सुनते हैं।

—स्वामी विवेकानन्द

- बुद्धि और आचरण का जितना ही सदुपयोग होगा, मनुष्य दरिद्रता, मूर्खता और रोग से उतने ही मुक्त होंगे।

- शुष्क ज्ञान भारत के लिए एक शाप सिद्ध हुआ है, जिसने इस देश के इतिहास के रूप को बिगाड़कर सत्यानाश कर दिया है। इस मिथ्या ज्ञान के फेर में पड़कर बड़े-बड़े आदमी भी बकवादी और बातूनी हो गये हैं।

—लाला हरदयाल

- अपने को निर्बल समझने वाला ही निर्बल है।

- शास्त्र का मुख से उच्चारण करना लाभकारी नहीं है। लाभकारी तो शास्त्र पर अमल करना है।

- जो मनुष्य मार के डर से गाली खाकर बैठा रहता है, वह न तो मनुष्य है, न पशु।

- आशावाद आस्तिकता है, सिर्फ नास्तिक ही निराशावादी हो सकता है। आशावादी ईश्वर से डरता है, विनयपूर्वक उसे अपनी पुकार सुनाता है और भीतरी पुकार के अनुसार बरतता है। वह मानता है कि ईश्वर जो करता है, अच्छे के लिए ही करता है।

—महात्मा गाँधी

- जो तुम दूसरों से चाहते हो, उसे पहले तुम स्वयं करो।

—रामकृष्ण परमहंस

- ईश्वर उपासना का सर्वोत्कृष्ट उपाय अपने मित्र में ईश्वर को पूजना है।

—स्वामी रामतीर्थ

- वीरता बातें करने में नहीं है, बात को पूरा करने में है।

—महात्मा गाँधी

- हृदय के प्रबल उच्छ्वास से ही हृदय में स्फूर्ति पैदा होती है। बुद्धि और विचारशक्ति अच्छी चीजें हैं, लेकिन वे दूर तक नहीं जा सकतीं। भावों से ही गम्भीर रहस्यों का उद्घाटन होता है।

—स्वामी विवेकानन्द

- जो व्यक्ति को देखना छोड़ चुके हैं, वे ही अनन्तता को जान सकते हैं। उन्हें सारा संसार परिवार की तरह दिखाई पड़ता है।

—स्वामी रामतीर्थ

- जब तक तुम स्वयं अपने अज्ञान को दूर करने के लिए कटिबद्ध नहीं होते, तब तक कोई तुम्हारा उद्धार नहीं कर सकता।

—स्वामी रामतीर्थ

- जीवन एक संग्राम है। इस जीवन में वही विजयी होता है, जो सीना तानकर आफतों का मुकाबला कर सकता है, आफतों की घनघोर घटाओं में बिजली की तरह मुसकरा सकता है, परिस्थितियों का दास न बनकर उनका स्वामी बनता है तथा जो टूट जाना पसन्द करता है पर झुकना नहीं।

—श्रुति

- कर्तव्य कर्म को छोड़कर जो कृष्ण-कृष्ण जपा करते हैं, वे तो भगवान के द्वेषी हैं क्योंकि भगवान कर्म करने के लिए ही तो अवतार लेते हैं।

—वेदव्यास

- जहाँ सिर्फ कायरता और हिंसा के बीच किसी एक के चुनाव की बात हो तो, वहाँ मैं हिंसा के पक्ष में राय दूँगा।

- कुरीति के अधीन होना पामरता है और उसका विरोध करना पुरुषार्थ।

—महात्मा गाँधी

- जब तक हृदय में स्वार्थपरता रहती है, तब तक भगवान से प्रेम नहीं हो सकता।

—स्वामी विवेकानन्द

- जो ईश्वर से डरता है उसे मृत्यु से भय नहीं रहता।

- असत्य और पाखण्ड से भरे हुए लोगों को ही अछूत कहा जा सकता है।

- ब्राह्मण धर्म का अर्थ है ब्रह्मज्ञान। इसलिए ब्राह्मण धर्म उस ज्ञान का नाम है, जिसके द्वारा मनुष्य को ईश्वर-दर्शन अथवा आत्म-दर्शन होता है।

- जिस प्रकार बिना भूख के खाया हुआ अन्न नहीं पचता, उसी प्रकार बिना दुःख के सुख भी नहीं पचता।

- सती स्त्रियो ! तुम अपने दुःख को सँभालकर रखना, वह दुःख नहीं सुख है। तुम्हारा नाम लेकर बहुतेरे पार उतर गये हैं और उतरेंगे।

—महात्मा गाँधी

- जहाँ उद्योग की प्रतिष्ठा नहीं होती, वहाँ हमेशा ही नाश और अवनति रहती है, विद्या, काल, ज्ञान वहाँ झाँकते हैं भी नहीं, परन्तु जहाँ उद्योग को अपनाया जाता है, वहाँ का मुर्दापन चला जाता है और चैतन्यता चमकने लगती है।

- व्यक्तित्वयुक्त आदमी सदा अपने मन पर काबू रखते हैं और अपने आपको अपनी मानसिक अवस्थाओं के वशवर्ती नहीं होने देते।

- उत्तम पुरुषों की संगति करनी चाहिए, क्योंकि अच्छी संगति में पड़कर बुरे लोग भी अच्छे हो जाते हैं। पान के बीड़ों के साथ महुए या पलास के पत्ते भी बड़े लोगों के हाथों में पहुँच जाते हैं।

- बाहर से जो ईंधन डाला जाता है, वह भीतर आत्म-शक्ति को शनैः-शनैः जगाने में समर्थ होता है।

- निगुणेष्वपि सर्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः।
नहि संश्लेष्टे ज्योत्स्नां चन्द्रावाण्डालवेम्भनः॥
गुणहीन प्राणियों पर भी सज्जन दया ही किया करते हैं। चन्द्रमा चाँडाल के घर पर से अपनी चाँदनी हटा नहीं लेता।

- विपत्तियों में धैर्य, विभव में क्षमा, सभा में वाक्कुशलता, युद्ध में वीरता, शास्त्रों में व्यसन सज्जनों में ये बातें स्वभाव से ही होती हैं।

- काम-काज में भले ही भूल हो जाने दो पर अपने भलमनसाहत में त्रुटि न होने दो।

- अनगढ़ लोग हर संकट के लिए दूसरों को दोष देते हैं। विवेकवान अपने दोषों को ढूँढ़ते हैं और तब ज्ञानी प्रकृति के उठते रहने वाले ज्वार-भाटों की विलक्षणता भर देखते हैं।

- महान व्यक्तित्व झोंपड़ों में भी शोभा पाते हैं, पर निकृष्टजन महलों में भी अभागे बन्दी की तरह जीवन बिताते हैं।

- चमकीली आँखों, सुन्दर सूरतों और चतुर प्रतिमाओं की मण्डली से मिलना तो सहज होता रहता है, पर ऐसी विभूतियाँ कदाचित् ही

३.६५ विचारसार एवं सुक्तिर्वाँ (द्वितीय खण्ड)

उपलब्ध होती हैं, जो आत्मा से कुछ कह सकें या उसकी बात सुन सकें।

- ❑ महापुरुषों की विशिष्टताओं से अपरिचित रहना—बालकपन का जीवन बिताना ही है।
- ❑ हम बड़ी बातें यानी किताबी बातों की चर्चा कर सकते हैं और स्वाभाविक बातचीत या मामूली बातें हमारे मुँह से ठीक तौर से नहीं निकलती, तो समझना होगा कि दैवयोग से हम पंडित, शिक्षक या उपदेशक तो हो गए हैं, परन्तु हमारा भीतर का आदमी मर गया है।

—रवीन्द्रनाथ टैगोर

- ❑ महापुरुष इंच-इंच योद्धा होता है, वह चट्टान की तरह कठोर और शेर की तरह निर्भीक होता है।
- ❑ वित्ते त्यागः क्षमा शक्तौ दुःखे वैभविष्मिता ।
निर्वन्मता सदाचारे स्वभावोऽयं महात्मनाम् ।।
धन में त्याग (धन की स्थिति में श्रेष्ठ कार्यों में नियोजन), शक्तिवान होकर क्षमाशील रहना, दुःख में दीनता का अभाव और सदाचार पालन में दम्भ का अभाव—महापुरुषों का स्वभाव होता है।
- ❑ महामानव प्रायः अपने जीवनकाल में नहीं पहचाने जाते हैं। चले जाने पर ही उनकी गरिमा जानी जाती है। वह गरिमा भी अनन्त काल तक रहती है और असंख्यों का हित-साधन करती है।
- ❑ भजन और योगसाधन से स्वर्गमुक्ति जैसे लाभ मिल सकते हैं, पर शान्ति और सन्तोष पाने के लिए सेवाधर्म अपनाये बिना काम नहीं चलता।
- ❑ साधुओं को निर्धन देखकर उन पर हँसो मत। निश्चय जानो संसार के सर्वोच्च सम्पत्तिशाली यही महात्मा हैं। इनका वैभव अपार है।
- ❑ दीपक के प्रकाश का लाभ सारा घर उठाता है, पर उस उजाले से समीपवर्ती नीचे की तली वंचित ही रह जाती है। महापुरुषों की महत्ता का लाभ सारा संसार उठाता है, पर उनके सगे-सम्बन्धी वस्तुस्थिति समझ न पाने के कारण विरोध-उपहास ही करते रहते हैं।
- ❑ अच्छा सोचना और अच्छी योजना बनाना बुद्धिमानी है, भाग्यवान वे हैं, जो महान कार्य

करने पर तुल जाते हैं और उन्हें पूरा करके छोड़ते हैं। वे ही अजर-अमर हुए जिन्होंने जीवन ठीक तरह से जाना।

- ❑ कम्प्यूशियस एक दिन अपने शिष्यों में भले आदमियों की व्याख्या-विवेचना कर रहे थे। उसने कहा—अच्छा आदमी वह जिसे सब लोग ही पसन्द करें। सच्चा आदमी वह जिसका भलाई करना सहज स्वभाव हो। भव्य वह जिसने अच्छाई में पूर्णता प्राप्त कर ली हो। महान वह जिसकी अच्छाई दूसरों को प्रभावित करने लगे। महान व्यक्ति जब जीवनों पर युगान्तरकारी प्रभाव डालते हैं, तब उनकी संज्ञा ऋषि हो जाती है। जिन ऋषियों का व्यक्तित्व हमारी समझ से परे हो जाता है, उन्हें सिद्ध या दिव्यात्मा कहते हैं।
 - ❑ महान मन वाले व्यक्ति विचारों पर विवाद करते हैं। मध्यम मन वाले वस्तुओं पर, लेकिन क्षुद्र बुद्धि वाले व्यक्तियों पर बहस करते हैं।
 - ❑ जो मनुष्य साधु होते हैं, उन्हें अहं दिखाई ही नहीं देता, वे लोग आत्मा ही देखते हैं, उन्हें कहते हैं महात्मा। उनके जीवन में आत्मा का ही प्रकाश फैला रहता है।
 - ❑ बड़े-बड़े सन्त वे नहीं हैं जो अद्भुत काम करते रहते हैं, बल्कि सन्त वह हैं, जो सामान्य काम को भी अद्भुत एकाग्रता के साथ करते हैं।
 - ❑ दार्शनिक चॉंग द्वी की उत्क्रियों चीन के लोगों को अभी भी कण्ठस्थ हैं। वे कहते थे, मुझे अमीर बनाने का प्रयत्न करते हैं, वे मेरी आत्मा को गिराते हैं, पर जो मेरा यश-गान करते हैं, वे तो मूर्खित करके सब कुछ लूट ले जाते हैं। बर जब काटती है तो लोग उसे मार डालते हैं पर कटु-भाषियों पर न जाने क्यों अभी तक दया ही की जाती रही है।
- वे लोगों को अक्सर समझाया करते थे—दुष्टों से दूर रहो, पर यथासम्भव उन्हें दुश्मन न बनाओ। भले आदमियों की संगति में तो रहो, पर उनकी हँस में हँस न मिलाओ। कर्म में कठोर रहो, पर हृदय में कोमलता भरे रहो। अपने साथ सख्ती बरतो, पर दूसरों के साथ उदार ही बने रहो। अपनी सफलताओं की डींगें

- उसके सामने न हँको, जो अभी-अभी असफलता की ठोकर खाकर आया है और कराह रहा है।
- आँख जहाँ ब्रह्माण्ड एवं शरीर के परस्पर आदान-प्रदान का माध्यम है, वही वह आत्मा-परमात्मा के अनन्त प्रणय का सेतु भी है।
- छिपकर किया गया अपराध जीवनपर्यन्त हृदय में काँटे की तरह चुभता रहता है।
- प्रवृत्त वाक्चित्रकथं ऊड्वान् प्रतिभानवान् ।
आशु ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित उच्यते ।।
जिसने विद्याओं का अध्ययन किया है, जो शंकाओं का समाधान करने में समर्थ है, शास्त्रों की व्याख्या कर सकता है, तर्कशील और कुशल वक्ता है, वही पण्डित कहला सकता है।
- आरोग्य परम लाभ है, संतोष परम धन है। विश्वासी पुरुष ही परम बन्धु है। निर्वाण ही परम सुख है।
—सुख वर्गो
- अन्याय के बड़े लाभ से, न्याय से थोड़ा ही प्राप्त करना उत्तम है।
- धर्मी पेट भर खाना पाता है, पर दुष्ट भूखे ही रहते हैं।
- ओछे और अनर्थकारी को देखो, वह टेढ़ी बातें बकता फिरता है। उसके मने में उलट-फेर की बातें रहती हैं, वह लगातार बुराई गढ़ता है और रगड़ा-झगड़ा उत्पन्न करता है। इस कारण उस पर विपत्ति अचानक आ पड़ेगी। उसका पल भर में ऐसा नाश हो जाएगा कि कोई उपाय न रहेगा।
- मुट्ठी में लगे हुए आम को यदि दबाया जाय तो उसका कुछ रस बाहर निकल पड़ता है, पर गुठली और छिलका हाथ में ही लगा रहता है। कष्ट पड़ने पर सत्पुरुषों की आँखों से आँसू तो निकल पड़ते हैं, पर उनका धर्म विचलित नहीं होता।
- लोहे की कील मिट्टी में तो आसानी से गढ़ जाती है, पर पत्थर में नहीं गढ़ती। सदुपदेश सज्जनों पर तो प्रभाव करते हैं, पर दुष्टों पर उनका असर नहीं होता।
- एक छोटे पौधे के आस-पास बाड़ खड़ी करके उसकी रक्षा करनी पड़ती है कि कहीं उसे पशु न चर जाएँ, किन्तु जब वह बड़ा हो जाता है, तो उसके नीचे अनेक पशु विश्राम करते रहते हैं। इसलिए आरम्भ में बुरी संगत से बचना चाहिए, किन्तु जब आत्मा महान हो जावे तो दुर्जनों से कुछ हानि नहीं होती।
- सीखते-सीखते समुद्र पार कर सकते हैं। इसी प्रकार ब्रह्मरूपी समुद्र में तैरने के लिए पहले बहुत से निष्फल प्रयत्न करने पड़ेंगे फिर पार हो सकोगे।
- अगर तुम माया के सच्चे स्वरूप को पहचान लोगे तो वह तुम्हारे पास से ऐसे भाग जाएगी, जैसे मनुष्य को देखकर चोर भाग जाते हैं।
- आग के पास रखने पर गीली लकड़ी भी सूख जाती है और कुछ समय बाद वह सूखी की तरह जलने लगती है। सत्पुरुषों का सत्संग लोभ आदि विषयों का गीलापन सुखाकर मनुष्यों को इस योग्य बना देता है कि उनमें विवेक रूप अग्नि प्रज्वलित हो सके।
- आग को यों ही पड़ा रहने दिया जाय तो उस पर राख जम जाएगी और थोड़ी देर बाद वह बुझ जाएगी, किन्तु यदि उसे कुरेदते रहें और नया ईंधन डालते रहें तो वह फिर न बुझेगी। अकेला बैठने वाला मनुष्य बुद्धिहीन हो जाता है, किन्तु सत्पुरुषों की संगति करने वाला सदैव चैतन्य बना रहता है।
- सत्पुरुषों का सत्संग ऐसा समझिये जैसे चावल का मॉड़। चावल का मॉड़ पीने से नशा उतर जाता है और सत्पुरुषों के सत्संग से विषय-वासनाओं की उन्मत्तता चली जाती है।
- वर्षा का जल जबकि मकान की छत पर गिरकर पनालों द्वारा पृथ्वी पर गिरता है, तो वह पानी आता तो आकाश से है, किन्तु पनालों द्वारा नालों में चला जाता है। इसी प्रकार सदुपदेशों का प्रचार साधु करते हैं, किन्तु वह ईश्वर से ही प्राप्त होते हैं।
- काजल की कोठरी में कितनी ही सावधानी के साथ रहिए, पर कहीं न कहीं दाग लग ही जाएगा। इसी प्रकार दुष्ट स्वभाव के मनुष्यों के

- साथ रहने से मन में कुछ न कुछ दुर्भाव पैदा हो ही जाते हैं।
- जो किसी से द्वेष नहीं करता, जिसमें अहंकार की मात्रा नहीं और जो विषयों से निवृत्त हो चुका है, वही सच्चा विवेक पुरुष है।
 - स्वार्थ साधन और ईश्वर-प्राप्ति दोनों एक साथ नहीं हो सकते।
 - आशाएँ चाहे वे सत्य हों चाहे झूठी, पर वे मनुष्य को दुःख झेलने की शक्ति देती हैं।
 - अपने आपको जान लेना ही सच्चा अन्तर्ज्ञान है। अपने आपको जान लेने के बाद हमें मालूम हो जाता है कि हम क्या हैं और हमें क्या होना चाहिए ?
 - हमें उत्तम अवसरों का इन्तजार नहीं करना चाहिए, बल्कि साधारण समय को ही उत्तम अवसर में बदल देना चाहिए।
 - दोष स्वीकार कर लेने से साहस प्रकट होता है और अस्वीकार करने से डरपोकपन बढ़ता है।
 - परसेवा असल में अपनी ही सेवा है, क्योंकि समाज के हित में व्यक्ति का हित भी समाया ही रहता है।
 - रोग वे दंड हैं जो स्वास्थ्य के सम्बन्ध में भूल करने या संयम से दूर रहने के कारण भोगने पड़ते हैं।
 - प्रेम के बिना वेद झगड़े की जड़, धर्म से वे सिर पर पैर के काम, स्वर्ग शेखचिल्ली का महल, मुक्ति प्रेम की बहिन।
 - उत्कर्ष और सफलता उद्योगी मनुष्यों के अनुचर हैं।
 - न्याय, ईमानदारी, सच्चाई और कृपा ये चार नैतिक सत्य जीवन बनाने के लिए उसी प्रकार आवश्यक हैं, जिस प्रकार घर बनाने के लिए दीवाल।
 - सफलता की सबसे बड़ी योग्यता यही है कि जो कुछ तुम अच्छी तरह कर सकते हो उसे करो, किन्तु प्रसिद्धि की तनिक भी चिन्ता न करो।
 - यदि तुम सुनो कि अमुक व्यक्ति ने तुम्हारी निन्दा की है तो उस पर विश्वास करने के पहले तुम उसकी जाँच कर लो।
 - कर्मफल छोड़कर काम करने से ही शान्ति मिलती है।
 - कुसंस्कारों से भरे हुए आस्तिक का होने की अपेक्षा नास्तिक होना ज्यादा अच्छा है, क्योंकि उनमें कुछ न कुछ जीवन तो होता है, उनके सुधार की आशा की जा सकती है।
 - सत्य तुम्हारी आत्माओं की शक्ति है और असत्य अन्तरात्माओं का विष है।
 - **सज्जना एव साधूनां प्रभवन्ति गुणोत्करम्। पुण्याणां सौरभं प्रायस्तन्वते दिव्यमासताः॥**
सज्जनों के पक्ष का सज्जन ही प्रसार करते हैं। पुण्यों के सौरभ को वायुदेव ही सब दिशाओं में फैलाते हैं।
 - यदि किसी मनुष्य को सफल, बलशाली और आदर्श जीवन बनाना है—ऐसा जीवन जो प्रलोभन और आफत की आँधी का दृढ़ता से मुकाबला करेगा, तो उसे थोड़े-से सरल और अटल नैतिक सिद्धान्तों को जानना चाहिए। इनमें से चार ये हैं, न्याय, ईमानदारी, सच्चाई और कृपा। ये चार नैतिक सत्य जीवन बनाने के लिए आवश्यक हैं।
 - “राष्ट्रों की सम्पत्ति तो सद्गुणी मनुष्य ही हैं—रेशम, कपास या स्वर्ण नहीं।”
 - “व्यसनों के प्रति विरोध का नाम ही सद्गुण नहीं है, अपितु व्यसनों की ओर प्रवृत्ति न हो जाना ही सद्गुण है।”
 - “धन से सद्गुण उत्पन्न नहीं होते वरन् सद्गुणों से ही धन एवं अन्यान्य इच्छित वस्तुएँ प्राप्त होती हैं।”
 - मनुष्य अपने से प्रेम करता है यह अच्छी बात है, किन्तु यह कम बुरा नहीं कि वह अपने से घृणा कभी नहीं करता।
सौ बार अपने से प्यार करो तो एक बार घृणा भी—कब, जब तुम्हारी आत्मा अनंत में अविश्वास करे और जहाँ पर वह है, वहाँ से बढ़ने में प्रमाद करे। जब वह चले तो लेकिन अपंग की भाँति लँगड़ा-लँगड़ाकर। जब किसी कार्य के चुनाव में वह सरलता की ओर झुके।

जब पाप करते हैं, जब अपनी दुर्बलतावश धैर्य को गुण समझकर संतोष करे। जब किसी कुरूप मुख को देखकर हँसे और यह न समझना चाहे कि यह विद्रूपता स्वयं उसकी दी है और तब भी जब वह अपनी प्रशंसा से प्रसन्न हो और कभी-कभी प्रशंसक के अभाव में आत्म-प्रशंसा में प्रवृत्त हो जाए। मनुष्य तुम अपने से प्रेम करो यह अच्छा है किन्तु, कभी-कभी, घृणा करना उससे भी अच्छा होता है।

□ यदि आप यह जानना चाहें कि आप उन्नति कर रहे हैं या नहीं, तो इसके लिए अधिक आत्म-विवेचना करने की आवश्यकता नहीं है। इस बात को आप केवल यह देखकर समझ सकते हैं कि आपकी रुचि उत्तरोत्तर परिमार्जित हो रही है या नहीं। यदि आपकी रुचि सुसंस्कृत और निर्मल हो रही है तो आश्वस्त होकर अपने से कह सकते हैं कि मैं उन्नति कर रहा हूँ।

□ आप अब जानना चाहेंगे कि रुचि-परिमार्जन के लक्षण क्या हैं ? रुचि-परिमार्जन के लक्षण बहुत सूक्ष्म नहीं होते, बड़ी आसानी से देखे और समझे जा सकते हैं। जब आप देखें कि आशा और निराशा के क्षणों में आप आशा के क्षणों को पसन्द करते हैं या सफलता और असफलता के प्रभाव में से असफलता के प्रभाव को नापसन्द करते हैं, तो समझ लीजिए कि अवश्य ही आपकी रुचि परिमार्जित हो रही है और इस प्रकार उन्नति की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

□ हे वत्स ! यदि तुम्हें कभी अपने कर्तव्य-अकर्तव्य के अथवा सदाचार के विषय में सन्देह उपस्थित हो, तो जो विचारशील, तपस्वी, कर्तव्य-परायण, मृदु-स्वभाव, धर्मात्मा, विद्वान्, गुरुजन हों, उनकी सेवा में उपस्थित होकर अपना समाधान करो और उनके आचरण और उपदेश का अनुसरण करो।

□ इतिहास साक्षी है कि व्यक्ति महापुरुष तभी बने हैं, जब उन्होंने धन को तिलांजलि देकर दरिद्रता अपनायी है।
—एमर्सन

□ प्रवानं प्रचन्तं गृहमुपगते सम्प्रभविविधिः, प्रियं कृत्वा मीनं सवसि कथनं चायुषकृते।

अनुत्तेको सव्यां निरभिभवसारा-परकवाः
सतां केनोद्विष्टं विषमं मसिधारन्नतमिवम् ॥

—मृदुहरि

दान को गुप्त रखना, घर पर आए हुए मनुष्य का सत्कार करना, परोपकार करके मौन रहना, दूसरों के किए हुए उपकारों का सभा में गर्व न करना, धन पाकर गर्व न करना और पराई चर्चा निरादर की बात बचाकर करना, यह असि-धार के समान कठिन व्रतधारण करना महापुरुषों का सहज स्वभाव होता है।

□ उदेति सविता रक्तो रक्त एवास्त मेति च सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता ॥

सूर्य उदय होते हुए भी लाल रहता है और अस्त होते हुए भी। महान् पुरुष सम्पत्ति और विपत्ति में एक से रहते हैं।

□ यशो रक्षन्ति न प्राणान् पाषाद्विष्यति न द्विषः।

अन्विष्यन्त्यर्थिनो नार्थम् नित्योऽयं महात्मनाम् ॥
यश की रक्षा करते हैं, प्राणों की नहीं। पाप से डरते हैं, शत्रु से नहीं। याचकों को दूँदते हैं, धन को नहीं। यही महात्माओं का स्वभाव है।

□ आपकी बाह्य परिस्थिति कितनी ही सामान्य क्यों न हो, यदि आपका अन्तःकरण असामान्य है तो निश्चय जानिये कि आप अपनी बाह्य स्थिति को भी असामान्य बना सकेंगे।

□ शरीर की उपयोगिता निःसन्देह अधिक है, पर उसे इतना न सजाओ कि आत्मा की महिमा फीकी पड़ चले।

□ आइन्स्टीन के सूत्रों का विशद् विवेचन करने वाले बायोफिजिसिस्टों का मत है कि जो हमें दिखाई नहीं पड़ता, वह परोक्ष जगत कितना विराट है, उसकी कल्पना उस आयाम में पहुँचकर, दिगकाल के परे जाकर बोध होने पर ही की जा सकती है। सारा जगत कम्पन तरंगों का समुच्चय है एवं विचार तरंगें उन्हीं का अंग हैं, उनकी गति प्रकाश की गति से भी कहीं अधिक तीव्र है, इसी कारण मानवीय कल्पनाशक्ति अद्भुत एवं अगणनीय है।

□ किसी सुसंस्कृत व्यक्ति को पहचानने के लक्षण स्पष्ट हैं, वह अपने को भुलाकर दूसरों का ख्याल रखता है, वह यथाशक्ति दूसरों की मदद करता है और हर तरह के संग-साथ में अपने शिष्टाचार से पहचान लिया जाता है।

३.६६ विचारसार एवं सूक्तियों (द्वितीय खण्ड)

- सच्चा कलाकार वह जो अपना स्वरूप संसार के सामने ऐसा रखे, जिससे अज्ञान भी भावना और प्रेरणा ग्रहण कर सकें।
- विवेकानन्द ने कहा था—मुझे भक्ति की परवाह है, न मुक्ति की। मैं ऐसा दासन्ती जीवन जीना चाहता हूँ, जिससे हर ओर प्रसन्नता और खुशहाली का वातावरण बने।
- मनुष्य ईर्ष्या से अन्धा बनता है। दूसरों के पाप तो आँखों के सामने रखता है, पर अपने पाप पीठ पीछे। दूसरों को क्षमा कर दो, प्रभु तुम्हें क्षमा करेगा।
- जिस प्रकार हवा की संगति से धूल आकाश तक पहुँच जाती है और जल के संयोग से नीचे आकर कीच में मिल जाती है, उसी प्रकार सुसंगति से मनुष्य का उत्थान और कुसंगति से पतन होता है।
- जब तुम्हारा मन अनुचित कार्यों में लगना चाहे, तुम्हारे सदाचार में उत्साह में कम मालूम पड़े। तब तुम महान पुरुषों के चरित्रों को पढ़ो, तुम अवश्य पुनः सावधान हो जाओगे।
- दर्पण में अपना मुख देखकर उसमें जो कुछ दोष होता है, उसे निकालकर तुम अपने मुख की कांति बढ़ाने का प्रयत्न करते हो। तुम्हारा चरित्र भी एक प्रकार का दर्पण है, जिसमें कि तुम अपने स्वभाव से भूषण-दूषण और गुण-दोषों को भलीप्रकार देख सकते हैं, जिसे देखकर तुम दूषणों का नाश और भूषणों में वृद्धि करने के लिए सचेत हो जाओगे। इसलिए महान पुरुषों के चरित्रों का अध्ययन करो और अपने को सच्चरित्र बनाओ।
- जीवन तो वही है जो अनेकों को प्रकाश दे। प्रकाश उसी का नाम है, जिसकी चमक से अनेकों में आशा भर उठे।
- बड़े लोगों के जीवन से लाभ उठाना एक ही जीवन में दो जीवनों का आनन्द लूटने के बराबर है।
- चन्दन स्वयं घिसकर सुगन्ध देता है, भले मनुष्यों का यही काम है।
- पाप से घृणा करो, असंयम से द्वेष करो, दुष्ट आचरणों से बैर करो, कुविचारों का अपमान करो और अन्याय से लड़ पड़ो।
- यदि तुम्हें महान पूर्व पुरुषों की भाँति कर्म करने का अवसर न मिले तब भी कम से कम अपने विचार तो उनकी भाँति रखने चाहिए और उनकी आत्मा के महत्त्व का अनुसरण करना चाहिए।
- स्वयं ठगाओ, दूसरों को ठगाने से सुख उत्पन्न होता है और ठगने से दुःख।
- तुमको सबसे पहले आत्मज्ञान का ध्यान रखना जरूरी है। सुचरित्रों से आत्मज्ञान मिल सकता है। सुचरित्र मनुष्य वही होता है जो सत्य, दया, ब्रह्मचर्य, परोपकारादि व्रतों का यथायोग्य पालन करता है। प्राणों के जाने के समय भी सत्य को नहीं छोड़ता है। स्वयं मरते हुए भी किसी को कष्ट नहीं पहुँचाता है।
- कार्लाइल ने लिखा है—तत्त्वज्ञानियों को यह खोजते सदियाँ हो गयीं कि “मैं कौन हूँ ?” इस व्यर्थ की बात में सिरफोड़ी करने की अपेक्षा यह सोचा या बताया गया होता कि हमारा कर्तव्य क्या है और उसे कैसे निभाया जा सकता है ? तो कहीं अच्छा होता।
- भगवान् की तरह ऋषि भी युग की आवश्यकता के अनुरूप अवतार लेते हैं। समस्याओं का समाधान नये रूप से ही होता है। पुराने समाधान नये व्यवधानों से नहीं निपट पाते।



पंथ अनेक लक्ष्य एक

ईश्वर और उसकी उपासना

वैद-शास्त्र—

- वेनस्तत्त्वश्रयिष्ठितं गुहा सद्यः विश्वं भवत्येकनीकम् ।
तस्मिन्निवर्तुं सं च वि धैति सर्वं २३ स ओतः प्रोतश्च
विभुः प्रजातु ॥

—यजु. ३२/८

हे मनुष्यो ! जो बुद्धि-बल के द्वारा जाना जा सकता है, जो संसार में सर्वत्र व्याप्त, नियामक तथा प्रलयकर्ता है, उसकी उपासना से कभी भी विमुख मत होना ।

- भिद्यते हृदयग्रन्थिश्चिद्यन्ते सर्वसंज्ञयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्मृष्टे परावरे ॥

—मुण्डकोपनिषद् २/२ : ८

उस ईश्वर को जाने बिना हृदय की गोंठें नहीं खुलतीं, संशय दूर नहीं होते । जो उसे जान लेता है, उसके सम्पूर्ण विकार नष्ट हो जाते हैं ।

जैन धर्म—

- सदाशिवः परब्रह्म सिद्धात्मा तयतेति च ।
शब्दस्तदुच्यतेऽवयवदिकमेवैवयादिभिः ॥

—हरिभद्रः योगवृष्टि समुच्चय २८

शिव, ब्रह्मा, सिद्धात्मा, तथागत आदि के द्वारा उसी परमात्मा का नाम लिया जाता है । शब्द भेद होने पर भी वह परमात्मा एक है ।

पारसी धर्म—

- मैं वो मज्जा अहुत्त । पदरी जस्तई वोह मनः ह्य ।
मशब्दो दाबोइ अहबो । अस्वत्तत्वा ह्यत्तु चा मनः
हो । आयप्ता अवात हया । याइश्च स्तुतो वशीत्
छाये ॥

—अवेस्ता, यस्त हा २८/२

हे होरमज्द ! (परमात्मा) तू मेरे तन और मन पर अपना आशीर्वाद बरसा दे, ताकि मैं पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकूँ । तेरे न्याय का सदैव पालन करूँ ताकि मुझे भी तू प्रकाश की ओर ले चले ।

अत् चा तोई बर्जे म् छायामा ।
योई ईम् फौरैम् कौनाउन् अहुम् ।
मज्दोत्वा अहुरोइहो । आ मोयस्वा बरनाअवाचा ।
ह्यत् हया मनोबवत् । यथा धितिश्च अहुत् मजेथा ।

—यस्त हा ३०/६

परमात्मा (मज्दा) की उपासना से हम सादगी, ताजगी और प्राणशक्ति प्राप्त करें । हम संसार

को आगे बढ़ाएँ । परमात्मा के प्रेम का सन्देश सभी को सुनाएँ । “प्रभु सब कुछ जानता है । उससे कोई बात छिपाई नहीं जा सकती । उसे कोई धोखा नहीं दे सकता ।”

—ता. बाबा बाधरा, २६ अ

ईसाई धर्म—

- “सच्चा बुद्धिमान वही है जो भगवान को पाने के लिए सांसारिक पदार्थों को दुर्गन्धित गोबर की तरह त्याग देता है ।”

- सबसे ऊँचे बैठे हुए भगवान की ओर उठकर देख और प्रार्थना कर कि वह तेरी गलतियों और पापों को क्षमा कर दे । अन्य लोगों को सांसारिक कामनाओं में लिप्त रहने दे, तू तो भगवान की आज्ञा पर चल ।

—टामस क्रोथिस : ३

इस्लाम धर्म—

- बलामन अस्सम बक्कू सिल्लाहि
व हुव मुहसिनुम् फल्लहू अण्णहू जिन्व रब्बिही
व ता खौफुन् अशैहिम् व ता हुम यहन्नून्

—कुरान शरीफ २/११२

जो परमेश्वर के आश्रित होकर नेकी का मार्ग अपनाता है, खुदा उसे अच्छा फल देता है । उन्हें संसार में किसी तरह का भय नहीं रहता ।

सिख धर्म—

- तमि घट तेरे तू सभना माहि ।
तुम ते बाहरी कोई नाहि ॥
हरि मुखवात्ता मेरे मन जायु ।
हउ तुम सासाही तू मेरा हरि प्रभु बायु ॥
जह जह देखा तह हरि प्रभु सोइ ।
सच तेरे वसि कूजा अबरु न कोइ ॥
जसि बसि मही असि सभते भरपूर ।
जन नानक हरि जपि झगरा हज़ूर ॥

—श्री गुरु ग्रन्थ साहब

हे परमेश्वर ! तू सब जगह सब प्राणियों में बस रहा है । तुझसे विलग कुछ भी नहीं है । तू सुख देने वाला है, मैं तेरा गुणगान करूँ । तू ही मेरा पिता है । जहाँ देखता हूँ तू ही दिखाई देता है । जल, थल, पृथ्वी आदि में तू ही तो समाया है । हम हमेशा तुम्हारा ही ध्यान करते हैं ।

जीवन-शोधन और सदाचरण

वेद—

- परि माग्ने दुश्चरिताद्वायस्वा मा सुचरिते भज ।
उवायुषा स्वायुषोदस्थाममृतौ २५नु ।।
—यजु. ४/ २८/ ॥
हम दुराचरण से सदैव दूर रहें। हम चरित्रवान् हों। जीवनमुक्त तथा दीर्घायु पुरुषों से उत्तम आदर्श ग्रहण कर हम भी सदाचारी बनें और उत्तम जीवन तथा पूर्ण आयु प्राप्त करें।
- प्र पदोऽत्र नेनिग्धि दुश्चरितं यच्चचार शुद्धैः शकैरा
क्रमतां प्रजानन् ।
तीर्त्वा तमांसि बहुधा विपश्यन्जो नाकमा क्रमतां
तृतीयम् ।।
—अथर्व. ६/ ५/ ३
हे मनुष्यो ! तुमने जो दुष्कर्म किये हैं, उनका भलीप्रकार प्रायश्चित्त करो फिर सदाचरण द्वारा ज्ञानवान् बनो और अज्ञान युक्त पापों को हटाते हुए परमात्मा की प्राप्ति करो।
- मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः ।
यान्त स्थुर्नो अरातयः ।। —अथर्व. १३/ १/ ५६/ ॥
हम सन्मार्ग से कभी विचलित न हों। सदैव श्रेष्ठ कर्म करते रहें। काम, क्रोध आदि मनोविकार हमारे पास न आवें।
- अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छक्यं
तन्मे राध्यताम् । इदमहमनृतात्सत्यमुपैषि ।।
—यजु. १/ ५
हे परमेश्वर ! हम सदैव अपने व्रत का पालन करें, ऐसी हमें शक्ति दो। हमारा यह व्रत हो कि हम कभी असत्य न बोलें।
- जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधुसूक्तम् ।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ।।
—अथर्व. १/ ३४/ २
मैं अपनी जिह्वा से मधुर शब्द ही बोलूँ। मेरे हृदय चित्त और व्यवहार में भी मधुरता हो।
- इच्छन्ति देवाः सुखन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।
यन्ति प्रमादमत्तन्त्राः ।। —ऋ. ८/ २/ १८/ ॥
श्रेष्ठता और ऐश्वर्य सदैव पुरुषार्थी को मिलता है, आलसी व्यक्ति का कोई भी सम्मान नहीं करता। सुखप्राप्ति के लिए आलस्यरहित होना अनिवार्य है।

- प्रति पन्थामपद्महि स्वस्तिगामनेहसम् ।
येन विश्वाः परि द्विषो वृत्ति विन्दते वसु ।।
—यजु. ४/ २६
हम उस मार्ग पर चलें जिसमें उपद्रव न हों। जो सुखपूर्वक हमें जीवन-लक्ष्य तक पहुँचा दे। उस सन्मार्ग पर अपने दोषों का निवारण करते हुए आगे बढ़ें।
 - इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं ययि ।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेष उतानृतम् ।।
—ऋ. १०/ ६/ ८
मेरे भीतर जो पाप भरे हैं उन्हें भलीप्रकार धोकर दूर कर दूँ। अपशब्द और झूठा आचरण मुझमें प्रवेश कर गया है, उसे भी निकालकर दूर करूँ।
- शास्त्र**
- सोभाक्रोधःप्रभवतिलोभात्कामःप्रवर्तते ।
सोभान्मोहश्चमायाचमानःस्तम्भःपरासुता ।।
—महाभारत शान्ति पर्व १५८/ ४
हमें लोभ कभी भी न करना चाहिए, क्योंकि लोभ से काम, क्रोध, मोह, माया, मिथ्याभिमान, उद्वण्डता और पराधीनता जैसे दोष उत्पन्न होते हैं।
 - सोभाक्रोधःप्रभवतिपरदोषैरुदीर्यते ।
क्षमयातिष्ठतेराजन्समयाविनिवर्तते ।।
—महाभारत शान्ति पर्व १६३/ ७
लोभ से क्रोध उत्पन्न होता है और पराये दोष देखने से वह बढ़ता है। इसे जीतने का अस्त्र है क्षमा। क्षमा से क्रोध शान्त हो जाता है।
 - प्रक्षान्तचित्ताः सर्वेषां सौम्याः कामजितेन्द्रियाः ।
कर्मणा मनसा वाचा परद्रोहमनिच्छवः ।
दयार्द्रपनसो नित्यं स्तेयहिंसापराङ्मुखाः ।
गुणेषु परकार्येषु पक्षपातमुदाचिताः ।
सदाचारावदाताश्च परोत्सवनिजोत्सवाः ।
पश्यन्तः सर्वभूतस्य वामुदेवममत्तराः ।
दीनानुकम्पिनो नित्यं धर्मं परहितैषिणः ।
—स्कन्द पुराण २/ २/ १०/ १००
वैष्णव वह है। जिसका चित्त शान्त हो। सबके प्रति विनम्र और दयालु हो। इन्द्रियजयी हो। जो मन, वचन, कर्म से किसी से बैर न रखता हो। चोरी और हिंसा से सदैव दूर रहे। जो सदाचारी हो और परोपकार ही जिसका जीवन हो।

- सन्नते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वेषा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥
—गीता ५/ २५

पाप और संशयवृत्ति का जो परित्याग कर देते हैं और दूसरों की भलाई करना ही जिनका जीवन ध्येय बन जाता है, उन्हें ही परमात्मा की प्राप्ति होती है।

- अहिंसा सत्यमस्तेयमक्रोधमलोभता ।
भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः ॥
—भागवत ११/ १७/ २१

मनुष्य को चाहिए कि वह मन, वाणी और शरीर से किसी को सताये नहीं, किसी को मारे नहीं, सत्य पर चले। चोरी न करे। काम, क्रोध लोभ से दूर रहे और वही कर्म करे, जिससे प्राणिमात्र को प्रसन्नता मिलती हो।

- परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा ।
परनिंदा सम अथ न निरीसा ॥
परहित सरित धर्म नहीं भाई ।
पर पीड़ा सम नहीं अधर्माई ॥
परहित बस जिनके मन माहीं ।
तिन कई जग कष्ट दुर्लभ नाहीं ॥
अथ कि विमुक्तता सम कष्ट आना ।
धर्म कि दया सरित हरि जाना ।
—रामचरित मानस

जैन धर्म—

- पायच्छित्तं विणओ वेयावच्चं तथेव सज्जाओ ।
ज्ञाणं उस्सण्णो वि य अम्मिंतरो तवो होई ॥
—उत्तराध्ययन ३३/ २

प्रायश्चित्त, विनयशीलता, धर्म और गुरुजनों के प्रति आदर-भाव, स्वाध्याय और आत्म-चिन्तन—ये सभी आन्तरिक तप के अंग हैं।

- रुवे अत्तिरे य परिग्गहे य सत्तोवस्तो न उवेई तुट्ठिं ।
अतुट्ठिं दोत्तेण दुही परस्स लोभाविस्से आययई
अवत्तं ॥
—उत्तराध्ययन ३२/ २६

सौन्दर्य से कभी तृप्ति नहीं होती वरन् आसक्ति बढ़ती है। इससे दुखी होकर लोगों को लोभ सताने लगता है और वह दुष्कर्म करने लगता है।

- तमाहु सोए पडिबुद्ध जीवी ।
सो जीवइ संजम जीविण्ण ॥ —दसवैकालिक २/ १५
संयमी पुरुष ही संसार में जागते हैं, अर्थात् यहाँ की सच्चाई और रहस्य वही जानते हैं जो संयमशील होते हैं।

- कोहं माणं च मायं च सोभं च पापवड्ढणं ।
बने चत्तारि दोत्तें इ इच्छन्तो हियमण्णो ॥
—दसवैकालिक ८/ ३७
आत्मकल्याण की इच्छा करने वालों को काम, क्रोध, अभिमान और लोभ की प्रवृत्तियों को त्याग देना चाहिए।

- उवसमणे हने कोहं माणं मववया जिणे ।
मायं च अण्णवमाणुण सोहं संतोसहे जिणे ॥
—दसवैकालिक ८/ ३६

क्रोध को शान्ति से जीतो, अभिमान को नम्रता से जीतो, माया को सरलता से और सन्तोष से लोभ को जीतना चाहिए।

- इह इतरियम्मि आउए जीवियए बहुपण्णवायए ।
विहुणाहि रयं पुरेकइं समयं गोयम, मापमायए ॥
—उत्तराध्ययन ४/ १०

हे गौतम ! तेरी आयु बहुत कम है और विघ्न-बाधाएँ अधिक हैं, इसलिए पलभर भी प्रमाद न कर और अपने कुसंस्कारों व बुरे कर्मों को हटा बाहर कर।

- जीवदया दम सच्चं अचोरियं बंभचेरसंतोसे ।
समइंसण्णणे तओ य सीलस्स परिवारो ॥
—कुवकुव : शीलपाहुड/ १८

जीवों पर दया करना, इन्द्रियनिग्रह, सत्य बोलना, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, सन्तोष, समदृष्टि, ज्ञान और तपश्चर्या ये सब शील और सदाचार के अंग हैं।

बौद्ध धर्म—

- अक्कोपेन जिने कोथं असाधुं साधुना जिने ।
जिने कवरियं दानेन सच्चेनासीकवादिनम् ॥
—कोष वग्गो १७/ ३

क्रोध को क्षमा से जीते, साधुता से असाधुता को, कन्जूस को दान से जीते और सत्य से असत्य को जीतना चाहिए। हे भिक्षुओ ! क्रोध और लोभ आये तो मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा और कर्मों की कर्तव्य-भावना से दूर कर दो।

४.४ विचारसरणी एवं सुक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

- अतना हि कर्तं पापं अतना तत्किञ्चित्सति ।
अतना अकर्तं पापं अतना न वितुष्यति ।।
शुद्धिं अशुद्धिं पश्यतं नाभ्यो अभ्यं वितोषये ।।

—अथर्वगो १२/ ६

किया हुआ पाप अपना ही अन्तःकरण अपवित्र करता है। निष्पाप व्यक्ति ही शुद्ध अन्तःकरण वाले होते हैं। अतः अपनी शुद्धि, अपनी पवित्रता अपने आप ही रखनी चाहिए। कोई दूसरा सक्षयता करेगा तो हमारा जीवन निर्मल बनेगा यह सोचना भ्रान्तिमूलक है।

- कायपुण्यं स्वच्छेय्य कायेन संवृतो सिया ।
कायपुण्यं हिंसा कायेन सुचरितं चरे ।।

—क्रोध वग्गो १७/ ११

हे मनुष्यो, शरीर को दुराचार से बचाकर संयमशील बनो। इससे अपनी शक्ति का विनाश नहीं होता।

सिद्ध धर्म—

- तं नरं किमा पुराणं सुनि कीना ?
अनज्ज्ञानी भवति नहिं उपधी भूखे वा न वीना ।
कामु न विसरियो, क्रोध न विसरियो सोपु न
सूट्यो देवा ।
परिनिष्ठा मुख ते नहिं छूटी निष्कल भई सब सेवा ।
हिंसा तक मन ते नहिं छूटी जीवद्वया नहिं पासी ।
परमवन्द्य साथ संगति निश्चि कथा पुनीत न चासी ।।

—गुठ नानकवेव

उस व्यक्ति का पुराण सुनना भी बेकार है, जिसके हृदय में भक्ति न हो, भूखे को जो खिलाये नहीं, काम, क्रोध और लोभ जिसके छूटे न हों। जिसने दूसरों की निन्दा करना न छोड़ा हो उनकी सेवा का भी कुछ फल न निकलेगा। जो हिंसक हो, जीवों पर दया न करता हो, साधु-सन्तजनों की संगति न की हो, वह पुराण सुने भी तो कोई फल मिलने वाला नहीं।

पारसी धर्म—

- अत् ता मइन्पू पओउरुये । या येमा खफना
अकवातेम् ।
मनश्चिवा वचश्चिवा । श्वओष नोई छी वश्यो अकेन्वा ।
ओस्या हुदोक्षो । अरेख बोख्याता नोइत पुण्डोक्षो ।।

—यत्न भा ३०/ ३

सृष्टि के आदि में दो स्थितियाँ (मैन्पू) थीं, एक यह कि मन, वचन और कर्म से सत को

ग्रहण करना और दूसरी असत को ग्रहण करना। बुद्धिमान और समझदारों ने पहली स्थिति को ग्रहण किया। बुरे लोगों ने असत को अपनाया।

- अत्वा यदा अजेवोन् कजेना जयइती अजेवोन् ।
अत् मया तद्व्योसजम् । बोदु मन्हुम बोदवीवाइते ।।
अजेव्यो सत्ते व्युरा । योई अवाइ इवेन
अस्तयो हुक्म् ।।

—यत्न भा ३०/ ८

तुम्हें अपनी शक्ति और स्वरूप का ज्ञान तब होगा, जब अपने पाप और दुष्कर्मों का फल भोगना पड़ेगा। जब यह सत्य प्रकट होगा तो सच्चे रास्ते पर आओगे।

- “तुम यदि अपने मन से बदले की भावना निकाल दोगे तो नरक की भयंकर यातना से बच जाओगे।”

—पहेलवी टैक्सट से

- “जब आदमी नाराज होता है तो प्रेम और सद्बिचार (वहमन) उससे दूर चला जाता है और जब तक वहमन पास रहता है क्रोध नहीं आता है।”

—सिद्ध गुप्तनिक विचार/ ८

यहूदी धर्म—

- “जिसके काम निर्दोष और हृदय शुद्ध है, जिसका मन सदाचार में सुख पाता है, जो झूठ नहीं बोलता, वही सच्चा ईश्वरनिष्ठ है।”
- “अपनी जीभ से अपशब्द न बोल, तेरे मुँह से छल की कोई बात न निकले, बुराई को छोड़ और भलाई कर, प्रेम और आत्मीयता का व्यवहार कर। यहोवा की आँखें धर्म करने वालों पर लगी हैं।”
- तुम अपने आपको पवित्र करो और सदैव पवित्र बने रहो, क्योंकि तुम्हारा परमात्मा यहोवा भी पवित्र है।

—यहूदी मजनावली २४/ १, ३४/ ८

—तैविमस २०/ ७-८

- अपराधों को त्यागकर पश्चात्ताप करो। तभी अधर्म के दण्ड से बच सकोगे। अपना मन, अपनी आत्मा बदल डालो। अपने सारे अपराध दूर करो।

—यहेजकेल १८/ ३०-३१

- “जो आदमी किसी आदमी से घृणा करता है वह परमात्मा से घृणा करता है।”

—सिफरे जुता मिनती १८

- पवित्र रहो और संयमी बनो। तुम्हारे कार्य भी पवित्र/हों और विचार भी। बुरे विचारों से ही दुष्कर्म पैदा होते हैं। — ता. योमा २६ अ
- दीनों को दान देते समय मधुर शब्द बोलो, दान देने से बोल अमोल होते हैं। — ता. सुक्का ४६ ब
- जो अपना कर्ज नहीं चुकाता, मजदूरों को उचित पारिश्रमिक नहीं देता, उसका दान देना भी बेकार ही है। — यलकुत शिमेओनी, प्रो ६४७
- वह दान जो स्वार्थ और निज की सुख-सुविधा के लिए दिया जाता है वह निष्फल जाता है। — निवराश, जिनेसिरा रब्बा ३१/ १८
- जो गलत चल रहा है, उसे नेकी की राह पर चलाने की कोशिश करो। — ता. तमीव २८ अ

ताओ धर्म—

- दूसरों के मन की बात जान ले—वह चतुर है। अपने को जान ले—वह आत्मज्ञानी है। दूसरों को जीत ले—उसे समर्थ कहते हैं। अपने को जीत ले—वह परम समर्थ है। जो तेज चलता है—उसे मंजिल मिल जाती है। जो निष्पाप है—वही सुखी है। — ताओ तेह किंग ३३
- ज्ञानी वह है जिसके शब्द करुणापूर्ण हों। वाचालता विश्वसनीय होने का लक्षण नहीं। वह कभी किसी से विवाद नहीं करता। जो विवाद करते हैं वे ताओ वाले (ईश्वरनिष्ठ) नहीं। सहज कर्म करने वाला ही ज्ञानी होता है। — ताओ तेह किंग ८१

- जो मूर्तिमान धर्म बन गया, वह बालक जैसा सरल, पवित्र और निष्कलंक होता है। — साओते
- अपने दोष-दुर्गुण झटककर बाहर निकाल दे, बिल्कुल रीता हो जा, कोरा हो जा, तू जहाँ है वही निश्चिन्त रह। — ताओ तेह किंग १६

कनफ्यूशियस धर्म—

- जीवन का सारतत्त्व है प्रेम, आधार है सदाचार। — कनफ्यूसी
- जो आदमी खुद सुधार नहीं कर सकता उसे क्या हक कि दूसरों को सुधार की बात समझाये। — कनफ्यूशियस

ईसाई धर्म—

- प्रभु ईसा ने उससे कहा—ऐ फरीसियो ! तुम प्याले और थाली ऊपर-ऊपर से मौंजते हो पर तुम्हारे अन्दर जो दुष्टता का अन्धकार भरा है उसे दूर क्यों नहीं करते ? — लूका ११/ ३७/ ४०
- किसी पर दोष मत लगा—तुझ पर भी दोष लगेंगे। जिस पैमाने से दूसरों को नापेगा उसी से तू भी नापा जाएगा। — मत्ती ७/ १-५
- “दाहिने हाथ से इस प्रकार दान कर कि तेरा बायाँ हाथ भी न जान सके। अन्तर्यामी परमात्मा तुझे इसका फल देगा। वह सब कुछ देखता है।” — मत्ती ६/ २-४
- “बड़ी-बड़ी बातें करने से कोई निर्मल तथा सदाचारी नहीं बन जाता। जीवन की पवित्रता और शुद्धाचरण से ही भगवान प्रसन्न होते हैं। सदाचारी जीवन से ही मन को शान्ति मिलती है, इससे परमात्मा में दृढ़ विश्वास पैदा होता है। हम दूसरों को सुधार का उपदेश करते हैं, किन्तु अपने दोषों को परिष्कार नहीं करते। अपने को तुच्छ समझकर सदैव सत्कर्म करते रहना ही आत्मदर्शी पुरुष का लक्षण है।” — टामस कैम्पस (इन्टीटेन ऑफ काइस्ट)
- मृत्यु से मत भागने की कोशिश कर। तुझे डरना है तो अपने पापों से डर। — टामस कैम्पस

इस्लाम धर्म—

- **अस्तजीन युफिकुल किडस्तारीभि-
बड्पूराभि बड्ककभि मीनअस्
मैज बड् मदीन अदिन्नास्
बड्स्ताह् युडिमुडस् मुहसिनीन०।**

—कुरान शरीफ ३/ १३४
खुशहाली हो या तंगदस्ती, जो अल्लाह की राह में धन लगाते हैं, जिन्हें गुस्सा नहीं आता, माफ कर देने का जिनका स्वभाव होता है, अल्लाह उन्हें बेहद प्यार करता है।

- **ब जरु जाहिरडस् इस्मि ब बालिन्द,
इन्मडस्तजीन यमिसबूबड्स्इस्म
सपुजजीन बिना, कानू पत्तरिफून०।**

—कुरान शरीफ ६/ १२०
पाप का प्रतिफल इनसान को अवश्य ही भोगना पड़ता है, इसलिए अपने बाह्य और आन्तरिक पापों का परिष्कार करें।

४.६ विचारसार एवं सुक्तियों (द्वितीय खण्ड)

- व सा तक्रबुद्धिप्रनाइहन्नु कान फाहिसतनः;
व सा आ सवीलनु ।।
—कुरान शरीफ १७/ ३२
- व्यभिचारी मत बने। वह गन्दा और गलत रास्ता है।
- ऊपर उठना चाहते हो तो इन तीनों का अनुसरण करो—
(१) आत्मग्लानि।
(२) फिर पाप न करने का निश्चय।
(३) आत्म-शोधन। —जुनैद बगदादी
- मीठी जुबान और नम्रता में यह तासीर है कि तुम बजरिये एक बार हाथी को जहाँ से चाहो गुजार दो। —शेखसादी
- झूठ से बचो। खयानत से बचो। किसी की निन्दा न करो। तर्क न करो। विषयों से दूर रहो। —शाहजुजा करमानी

सत्य ही धर्म है

वेद—

- सा मा सत्योक्तिः परि पातु विश्वतो
द्यावा च यत्र तत्तन्महानि च ।
विश्वमन्यन्मि विश्वते यदेजति विश्वहापो
विश्वाहोदेति सूर्यः ।।
—ऋ. १०/ ३७/ २
- सत्य के सहारे आकाश, सारा संसार और उसके सम्पूर्ण प्राणी हैं, उसी से दिन निकलता, सूर्य उदय होता और जल प्रवाहित होता है। वही सत्य हमारे अन्तःकरण में भी ओत-प्रोत हो।
- सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सव्यासस्य वचसी पस्पृधाते ।
तयोर्वत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्तोभोऽजति हन्यासत् ।।
—ऋ. ७/ १०४/ १२
- सत्य मनुष्य का पालन करता है और असत्य विनाश। ये दोनों एक-दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी हैं। यह जानकर मेधावीजन सत्य का पालन करते हैं।

शास्त्र—

- सत्यं च सभता वै ब्रह्म सचैव न संशयः ।
अमात्सर्यं ब्रह्मा वै ब्रह्मिस्ति तिष्ठाऽनसूयता ।।
त्यागो ध्यानमथार्थत्वं धृतिश्च सत्तं वया ।
अहिंसा वै ब्रह्मराजेन्द्रसत्याकारात्मबोदश्च ।।
—महाभारत शान्तिपर्व १६२/ ८-६
- हे राजेन्द्र, इन्द्रिय-निग्रह, मत्सर का न होना, क्षमा, लज्जा, सहनशीलता प्रियदर्शन, विषयसक्ति

का त्याग, ईश्वर, आराधना, सन्मार्ग का अनुसरण, अविचलित धैर्य और अहिंसा ये सभी सत्य के ही स्वरूप हैं। केवल सत्य बोलना ही सत्य नहीं कहा जा सकता।

- स वै सत्यमेव ब्रवेत् । एतद्वै देवा
व्रतं धरन्ति यत्सत्यम् तस्यात्ते यज्ञो
यज्ञो ह भवति य एवं विदितितत्त्वं ब्रवेत् ।।

—अतपय ब्राह्मण १/ १/ १/ ४.५

सत्य का अनुशीलन करने वाले देवत्व को प्राप्त करते हैं। विद्वान् पुरुष सत्य का धारण करने से ही यश पाते हैं।

- व्रतं ब्रह्मिण्यसि सत्यं ब्रह्मिण्यसि ।
तन्मात्रमवतु तद्वक्तारमवतु
अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम् ।।

—ऐतरेय उपनिषद् शान्ति पाठ

मैं वह बोलूँगा जो ठीक होगा, सत्य होगा और व्रत होगा। सत्य बोलने वाले की वह सत्य ही रक्षा करता है।

- आहुः सत्यं हि परमं धर्मं धर्मविदो जनाः ।
सत्यमेकपदं ब्रह्म सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः ।।
सत्यमेवाव्ययं देवाः सत्येनाव्यायते परम् ।।

—वाल्मीकि रामायण/ अयो. कां. १४/ ३, ७/ ११

सच्चे धर्मनिष्ठ सत्य को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। सत्य से ज्ञान मिलता है, सत्य साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर है।

- उद्विजन्ते यथा सर्पाश्चरादनुतवादिनः ।
धर्मः सत्यपरो लोके मूलं सर्वस्य चोच्यते ।।

—वाल्मीकि रामायण/ अ. कां. १०६/ १२/

सत्य ही संसार में सर्वोत्तम है, यही स्वर्ग का मूल कारण है। झूठ बोलने वालों से लोग ऐसे ही कतराते हैं जैसे साँप के भय से। इसलिए सदैव सत्य बोलना ही अच्छा होता है।

- नास्ति सत्यात्परो धर्मो नानृततात्पात्सकंपरम् ।
श्रुतिर्हि सत्यं धर्मस्तस्मात्सत्यं न सोपयेत् ।।

—महाभारत शान्तिपर्व १६२/ २३

सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं, झूठ से बढ़कर दूसरा पाप इस संसार में नहीं है। धर्म का आधार सत्य है इसलिए कभी भी सत्य से विमुख न हों।

- सत्येनार्कः प्रतपति सत्ये तिष्ठति मेदिनी ।
सत्यं चोक्तं परो धर्मः स्वर्गः सत्ये प्रतिष्ठितः ।।

अश्वमेध सहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् ।
अश्वमेध सहस्रादि सत्यमेव विशिष्यते ॥
सत्य से सूर्य तपता है, पृथ्वी टिकी हुई है ।
सत्य ही धर्म है । सत्य से स्वर्ग मिलता है ।
सत्य की तुलना सौ अश्वमेध फल से की जाए
तो सत्य ही बड़ा रहेगा ।

- सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेव धर्मो विधीयते ॥

—स्कन्द पुराण ३/२/६/८८॥

सत्य बोले पर मीठा बोले, कटु सत्य न बोलना चाहिए । ऐसा भी न बोलना चाहिए जो झूठ हो । शास्त्रानुसार यही धर्म है ।

- तनतिय तनय धाम धन धरनी ।
सत्य संघ कहे तृण सम धरनी ॥
नहि असत्य सम पातक गुंजा ।
गिरि सम छोटि कि कोटिक गुंजा ॥
सत्य मूल सब सुकृत सुहाये ।
वेद पुरान विदित मनु गाये ॥
धर्म न दूसर सत्य समाना ।
आगम निगम पुरान बखाना ॥

—रामचरित मानस

जैन धर्म—

- पुरिसा सच्चमेव समभिजाणादि ।
सच्चस्स आणाए से उबद्धिये मेघवी मारंतर ॥

—आ. सु १/३/३

सच बात यदि कड़ुवी हो, उससे किसी को दुःख पहुँचता हो या प्राणियों की हिंसा होती हो तो उसे कदापि न बोलें । कड़ुवा सत्य भी एक प्रकार का पाप है ।

- तहेव फरुसा भासा गुरुभूओबघाइणी ।
सच्चा बि सा न बत्तवा जओ पावस्स आगमो ॥

—दशवैकलिक ६/११

हे मनुष्यो ! तुम सत्य को ही सार रूप समझो और उसी का जीवन में व्यवहार करो । जो ऐसा करता है, वही मृत्यु को भलीभाँति जीत पाता है ।

बौद्ध धर्म—

- एकं धम्मं अतीतस्स मुसावाविस्स जणुनो ।
वित्तिण्णपरलोकस्स नत्थि पापं अकारियं ॥

—लोकवग्गो १३/१०

जो सत्य का त्याग करता है और असत्य बोलता है, वह धर्म के विपरीत आचरण करता

है । जिसे इस प्रकार परलोक की चिन्ता न हो वही बड़ा पाप कर सकता है ।

पारसी धर्म—

- अस्या मासा नमें इहा ।
उस्तानजस्तो रफेग्रस्या ।
मइन्येउश् मज्दा पओउबीम ।
स्ये तस्या उषा वीस्वैंग श्यओधना ।
बइहेउश् खतुम् मनइहो ।
या क्न्वीषा नैउश्वा उर्बानम् ॥

—यस्न हा २८/१

हे होरमज्द ! आप ही आदि और सर्वश्रेष्ठ हैं । मैं हाथ जोड़कर आपसे विनय करता हूँ कि मेरे सभी कार्य सत्य से परिपूर्ण हों । मुझे तुम्हारा ही प्रेम प्राप्त हो ताकि सम्पूर्ण पृथ्वी को ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित कर दूँ ।

- कतारैम् अषवा वा । इंवो वा बरन्वइते मज्जो ।
वीदो बोदुषे भ्रओतू । या अवीदो अइपी-दैवावयत् ।
ज्दी नै मज्जदा अहुरा । बइहेउश् फवक्ता मतइहो ॥

—यस्न हा ३१/१६

संसार में सत्य और असत्य दो मार्ग हैं, जिसमें समझदार व्यक्ति सत्य चुन लेते हैं और दूसरों को भी उसी का उपदेश देते हैं । पर अज्ञानी नासमझ असत्य पर चलकर दूसरों को भी पतित कर देते हैं । हे होरमज्द ! तू मुझे अपना प्रेम दे ।

- परमात्मा कहता है जो सत्य की उपासना करता वह मेरी उपासना करता है । समुद्र, पृथ्वी, पशु, वनस्पतियों की उपासना भी अच्छी उपासना है । इसलिए हमारे घरों में सत्य प्रतिष्ठित हो ।

—वेदीयाव १६/४७

- हुज्वरे नाइश् बओषो रास्ती तोइ नरैपीश् अरैजीश् ।
अओबसा दैजीत्—अरेता पैबो—तन्बो ।

कू अषवा अहुरो ।

यै ईश् ज्यार्तेउश् हंमियात्—

तत् मज्जा तवा क्षत्रेम् ।

वर्त—इतोइश्वा ।

या अरैज ज्योइ दाही दिग ओवे बस्यो ॥

—यस्न हा ५३/६

हे परमेश्वर ! जो तेरे अनुयायियों को गलत रास्ते की ओर प्रेरित करते हैं, उन्हें मैं सत्य पर परदा डालने वाला पापी मानता हूँ । हे सत्यस्वरूप ! सदाचारी पुरुषों का तू ही साथ

देता है। जो दीन हृदय वाले नम्र और विनयशील पुरुष होते हैं, उनकी रक्षा तू ही करता है।

- किसी से झूठ न बोलो,
जो लोग झूठ बोलते हैं, बात को बढ़ा-चढ़ाकर कहते हैं उनकी बातें मत सुनो।

—पहेलवी टैक्सट्स से

यहूदी धर्म—

- परमात्मा यहोवा ने कहा है कि बस अब उपद्रव और उत्पात बन्द करो। न्याय बरतो धर्माचरण करो।

तुम्हारे पास सत्य का तराजू हो, सत्य के ही बाँट हो।

यहोशफात—४५/ ६-१२

कम्प्यूट्रियस धर्म—

- मनुष्य सच्चाई और सरलता से अपने सुधार का प्रयत्न करे।
- ढोंग न करो, इससे सत्य की प्रतिष्ठा न होगी। सच्चा व्यक्ति कर्मठ होता है, जो कहता है सो करता है, व्यर्थ अपशब्द नहीं बोलता। लोग उसका सम्मान करते हैं तो भी उसे जरा भी अभिमान नहीं आता।

—क्रॉयफ़्ट्स

ताओ धर्म—

- जो कड़े वचन सहता है वह देश का सच्चा स्वामी है।
- जो जनता के दुःख को स्वयं उठाये वह राजा सच्चा है।
- सत्य के बोल उलटे दीखते हैं यह एक गूढ़ रहस्य है।

—ताओ तेह किंग ७८/ १३/॥

ईसाई धर्म—

तुम्हें जो कुछ कहना है “हाँ” या “ना” में कह दो। सत्य के शब्द बहुत थोड़े होते हैं।

—ईसामसीह

इस्लाम धर्म—

- बस तक्लूअल्लाह अल्लाहि-इस्लाम अल्लाह—
—कुरान शरीफ ४/ १७१
- अल्लाह की शान में कभी झूठ का प्रयोग मत करो, सदैव सच बोलो।
- तुम सच्चाई को लाजिम पकड़ो, हमेशा सच बोलो, इसी से नेकी की राह मिलेगी।

—बुखारी और मुस्लिम

- अल्लाह से मुहब्बत वह करता है, जो सच बोलता है।
—बैहकी

- यह बड़ी खयानत है कि तुम दूसरों से झूठ बोलते हो जबकि वह तुम्हें सच्चा समझता है।

—अबी दाऊद

- अच्छी मीठी बात भी एक सिदका है। —बुखारी

सिख धर्म—

- रे मन डीगि न डोखीये सीधे मारिगि धाओ।
पाठे बाधु डराउणा आगे अग्निनि तत्ताओ॥

—गुरु नानक

- जिन्ही तपु पठागिया से सुखीए जुग धारि।
हउमै भितना मारिकै अणु रखिआ उर धारि॥
साधउ बखरु सादीये साधु सवा तपु रासि।
साँची दरगह बैसाई भगति सची अरवासि॥
तचो सचा आखिये सचे सचा धानु।
जिनी सचा मनिआ तिन मनि तपु धिआनु॥

—गुरु ग्रन्थ साहब/ ३४

जिन्होंने सत्य को पहचान लिया उसे चारों युग में सुखी ही समझना चाहिए। इसलिए तृष्णा का त्याग कर सत्य को धारण करें। सत्य बोलने से कभी पीछे न हटें। सदैव सच बोलें, सुनें और मानें वही परमात्मा के सच्चे भक्त हैं।

अहिंसा और प्रेम

वेद—

- पशु पाहि, गां मा हिं सीः, अजां मा हिं सीः।
आव मा हिं सीः, इमं मा हिं सीः, छिपादंपशुम्॥

—यजु. १३/ ४७-४८

पशुओं की रक्षा करो। गाय और बकरी को मत मारो। भेड़ को मत मारो। दो पैर वाले मनुष्य तथा पक्षी को मत मारो। घोड़े को, गधे और पशुओं को मत करो। हिंसा करना महान अधर्म है।

- यन्नूनमश्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा।
अस्य प्रियस्य शर्मण्यहिंसानस्य सशिवरे॥

—ऋ. ६/ ६४/ ३

हम मित्र के द्वारा दिखाये गये मार्ग का अनुसरण करें। हमारा मित्र अहिंसक हो। उससे हम कल्याण प्राप्त करें।

शास्त्र—

- अनुमन्त्रा विशसिता विहता अन्धविह्वली।
संस्कर्ता चोपकर्ता च आरक्यवेतिपातकाः ॥

—मनुस्मृति १/१११

मांस खाने की सम्मति देने वाला, काटने वाला, मारने वाला, बेचने वाला, खरीदने वाला, पकाने वाला, लाने वाला और खाने वाला ये सभी हिंसक होते हैं। केवल मांस खाने वाला ही घातक नहीं होता।

- अहिंसापरमोधर्मस्तथाहिंसापरंतपः।
अहिंसापरमसत्यंयतोर्ध्वमवसति ॥

—महाभारत अनुव्रतपर्व ११५/२३

अहिंसा ही परम धर्म है, अहिंसा ही श्रेष्ठ तप और अहिंसा ही सत्य है क्योंकि उसी से धर्म में मन लगता है।

- नहिंस्यात्सर्वभूतानिमैत्र्यव्यवपत्तयेऽप्येव।
नेहजीवितमासाधयेत्कुर्वीतकोनचित् ॥

—महाभारत शान्तिपर्व २७८/५

कभी किसी प्राणी की न तो हिंसा करे, न उसे पीड़ा पहुँचावे। सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति प्रेम और अहिंसा का भाव रखे। नाशवान शरीर को लेकर किसी से बैर रखना अच्छा नहीं होता।

जैन धर्म—

- जावन्ति लोप पाणा तता मयुवा धावरा।
ते जाण मज्जाणं वा न हने नो विधावए ॥

—सप्तवैकलिक ६/१०

संसार में जितने भी स्यावर, जंगम जीव हैं उनमें से किसी की भी जान या अनजान में हिंसा न तो तुम स्वयं करो न किसी और को ऐसा करने की प्रेरणा दो।

- अज्झत्थं सच्चओ सर्वं दिस्स पाणे पियावए।
न हने पाणिणो पाणे धववेराओ उवरए ॥

—उत्तराव्ययन ६/७

हमारे ही समान जीवों में भी एक ही आत्मा विद्यमान है। सभी जीव हमारी तरह ही अपने प्राणों से प्यार करते हैं। इसलिए किसी से बैर न करें और प्राणियों की हिंसा न हो जाय इस बात से सदैव डरते रहें।

- तेसिं अच्छण जोएण निब्बं होयव्वयं सिया।
पणसा कायवक्केण एवं हवइ संजय ॥

—सप्तवैकलिक ८/३

सच्चा संयमशील पुरुष वह होता है; जो मन, वचन और शरीर से किसी प्राणी की हिंसा

नहीं करता, सब जीवों के प्रति अहिंसक भावनाएँ रखता है।

- इष्टो यथात्मनो देहः सर्वेषां प्राणिनां तत्त्वा।
एवं ज्ञात्वा सदा कार्या वर्था सर्वा सुधारिणाम् ॥

—रविचरणः पद्मपुराण १४/१८६

जिस प्रकार हमें अपना शरीर प्यारा है, उसी प्रकार सब प्राणिमात्र अपने शरीर से प्यार करते हैं। यह जानकर सभी जीवों पर दया करनी चाहिए।

बौद्ध धर्म—

- सच्चो तत्तप्पि दण्डस्त सच्चो धावन्ति मनुष्ये।
अत्तमं उपमं कत्वा न हनेच्च न धातये ॥

—दण्ड वग्गो १०/१

दण्ड से सभी भय खाते हैं, मृत्यु से सभी प्राणी डरते हैं। इसलिए अपने ही समान दूसरों को समझकर हे मनुष्यो ! कभी किसी को न तो मारना, न मारने के लिए उकसावा देना।

- न तेन अरियो ह्येति येन पाणानि हिंसति।
अहिंसा सच्चपण्णनं अरियो ति प्युज्यति ॥

—अम्मदट वग्गो १६/१५

प्राणियों की हिंसा करना कोई धर्म नहीं है। जो कभी हिंसा नहीं करता वही सच्चा धर्मीनिष्ठ है।

सिक्ख धर्म—

- तउ किउ पुरगी मरि ?

देव कसेव कसो मति जूठे जूय जो न विचरि।
ओ सनि मडि एक सुदाइ बसत हे इउ-तउ किउ पुरगी मरि ॥

मुस्ता कइहु निमाउ सुदाई, तेरे मनका भरु न जाई।
फरि जीउ जानिआ देह बिनासी नाटी कउ-विसमिप्पि कीआ।

जोति सरुप अनाहत लागी कहु हसायु किआ कीआ ॥

तु नापक पाकु नहीं सुझिआ, तिसका भरु न जानिआ।

कठि कबीर पितति ते धूका, दोजक सिउ मनु मानिआ ॥

—गुरु ग्रन्थ साहब। ३३

पारसी धर्म—

- 'मनुष्यों का कर्तव्य है कि वे पशुओं की दुष्ट और आलसी लोगों से रक्षा करें और उन्हें प्रसन्न रखें। उन्हें अच्छी और गरम जगह में बाँधें। उनके लिए घास-भूसी का ठीक प्रबन्ध

४.१० बिचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

करें। छोटे बछड़ों को उनकी माताओं से दूर न करें।”
—शयस्त ता शयस्त २०। ६

यहूदी धर्म—

- “दुष्ट कहा जाएगा वह आदमी, जो भाई के खिलाफ हाथ उठाता है, फिर भले ही उसे मारे नहीं।”
“किसी की रोजी मत छीनो, यह उतना ही बुरा है जितना चोरी और डाका।”
- “किसी के आत्मसम्मान को चोट नहीं पहुँचानी चाहिए, यह उतना ही बड़ा पाप है जितना किसी का खून करना।”
—ता. बाबा मेतजिया ५८ व
- “तज्जार वाले हय्यीम”
—मिदराश जिने सिस रब्बा ३१। १८

प्राणियों का कष्ट अपना समझकर उनकी हिंसा मत करो।

- “अपने पैर के नीचे चींटी की वैसी ही हालत समझो जैसी हाथी के पैर के नीचे तुम्हारी हो सकती है।”
—जेबसादी

इस्लाम धर्म—

- ब मन् अहया हाफकअन्मा अहपऽऽन्मात-जमीअन,
—कुरान शरीफ ५। ३५
जिसने किसी की जान बचायी उसने मानो इनसानों को जिन्दगी बख्शी।

आत्मा की एकता, आत्मदर्शन

वेद—

- यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।।
—कजु. ४०। ७
जो मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियों में अपना ही आत्मा समाया हुआ देखता है, उसे न मोह सताता है और न शोक।

शास्त्र—

- यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मैवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।
—ईश-उपनिषद् ६
जो मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियों में अपना ही आत्मा बिखरा हुआ देखता है तथा अपनी आत्मा में सम्पूर्ण प्राणियों को देखता है, वह कभी किसी से घृणा नहीं करता।

- आत्मावलोकने यत्नः कर्तव्यो भूतिमिच्छता।
सर्वदुःखशिरश्छेद आत्मालोकेन जायते।।
—योगवासिष्ठ ५। ७५। ४६
अपना कल्याण जो चाहते हैं उन्हें आत्मदर्शन के प्रयत्न में लगना चाहिए। इसी से सम्पूर्ण दुःखों का नाश होना सम्भव है।
- आत्मैव स्यात्मानो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।
आत्मात्मना न चेत्त्रातस्तदुपायोऽस्ति नेतरः।।
—योगवासिष्ठ ५। १६२। १८
आत्मा ही अपना मित्र है और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है, इसलिए प्रयत्नपूर्वक अपनी आत्मा की रक्षा अपने आप ही करना चाहिए।
- आत्मानं रश्मिं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।।
—कठोपनिषद् १। ३। ३

मनुष्य का शरीर रथ के समान है और आत्मा उस रथ का रथवान। मनुष्य की बुद्धि सारथी और मन ही लगाम है। अर्थात् जो बुद्धि द्वारा मन को नियन्त्रण में रखकर चलते हैं, उन्हीं का जीवन सफल होता है।

- विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।।
—गीता ५। १८
ज्ञानीजन ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ता, चाण्डाल आदि सभी को समभाव से देखते हैं क्योंकि वे सब में एक ही आत्मा समाया हुआ देखते हैं।
- तीय राम मय सब जग जानी।
करहुं प्रणाम जोरि जुग पानी।।
जइ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बंदउँ सबके पदकमल सदा जोरि जुग पानि।।
—रामचरितमानस

- यह सारा संसार परमात्मा से ओत-प्रोत है, यह जानकर सदैव सबके साथ विनयपूर्ण बर्ताव करना चाहिए।
- आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेयात्मनि स्वसरे वृष्टे श्रुते यते विज्ञात इव सर्व विदितम्।
—वृहदारण्यकोपनिषद्—२

हे मैत्रेयी ! आत्मा ही सुनने, जानने और विचार करने योग्य है। इसी के हित और कल्याण का सदैव ध्यान करना चाहिए। जो इसे जान लेता है, उससे संसार का कुछ भी छुपा नहीं रह जाता।

- अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो
गुहायाम् ।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः
प्रसादान्महिमानमात्मनः ।।

—कठोपनिषद् १/२/२०

यह आत्मा अणु से भी लघु और महान से भी महान है। यह प्रत्येक प्राणी के भीतर छिपा हुआ है। इच्छा, त्याग, मन और इन्द्रियनिग्रह के द्वारा इसके दर्शन प्राप्त होते हैं। यह सभी सुखों का मूल है।

सिख धर्म—

- रे मन ऐसो करि संन्यासा ।
बन से सवन सभै करि समझो मन ही माहि उवासा ।।
तप को जटा जोग को मंजु नेम के नखन बढ़ाओ ।
म्यान गुरु आत्म उपदेशहु, नाम विभूति लगाओ ।।
अल्प अहार सुस्पती निद्रा, दया, छिमा तन प्रीत ।
सीस संतोख सवा निरबाहियो, होबो त्रिगुण अतीत ।।
काम क्रोध हंकार सोध हठ मोह न मन सो स्यावे ।
तब ही आत्मतत्त्वको वरसै, परम पुरुष कहं पावे ।।

—गुरु गोविन्दसिंह (विचित्र नाटक)

ईश्वरप्राप्ति के लिए आत्मदर्शन आवश्यक है इसके लिए लगनपूर्वक नियमित गुरुसेवा, ईश्वर-उपासना, मिताहार, स्वल्पनिद्रा, दया, क्षमा, स्वास्थ्य, शील, सन्तोष को धारण करें और काम, क्रोध, मद, मोह का त्याग करें तभी आत्म तत्त्व के दर्शन हो सकते हैं।

जैन धर्म—

- हरेरे य पाणे बुद्धे य पाणे ।
ते आत्तो पमाइ सम्बलोए ।। —भगवान महावीर
संसार के सभी छोटे-बड़े जीव भी ऐसे ही हैं जैसे हम। ये केवल शरीरगत हैं। ये सब हमारी आत्मा के ही स्वरूप हैं।
□ समयया सब भूएसु सत्तमित्तेसु बाजने ।
पाणाइबाय विरई जावप्पीपावे बुक्कर ।।

—उत्तराध्ययन १६/२४

मित्र अथवा शत्रु कोई भी हो, सभी के प्रति समभाव रखना ही अहिंसा है, क्योंकि जैसे हम हैं वैसे ही दूसरे भी हैं।

- अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्जेण बज्जओ ।
अप्पाणमेव अप्पाणं जहत्ता सुहमेह ए ।।

—उत्तराध्ययन ६/३४

अर्थात् बाहरी शत्रुओं के साथ लड़कर अपनी शक्ति बर्बाद न कर। अपनी आत्मा से ही युद्ध कर, इसी से तुझे सच्चा सुख मिलेगा।

- अप्या कर्ता विकता य, दुक्खाण य सुहण य ।
अप्या भित्तमभित्तं च, दुप्पट्ठिय—सुप्पट्ठिओ ।।
—उत्तराध्ययन २०/३०
सुख और दुःख का कारण आत्मा है। सदाचारी आत्मा सुखी रहता है, कुमार्गगामी आत्मा ही शत्रुरूप बनकर दुःख देता रहता है।

बौद्ध धर्म—

- माता यथा नियं पुतं आयुसा एक-मुत्त मनुरक्खे ।
एवंअपि सम्बभूतेसु मानस भावये अपरिमाणं ।।
—अभिधम्म पिटक
माता जिस प्रकार अपने इकलौते बेटे की रक्षा करती है, इसी प्रकार हमें सभी प्राणियों के प्रति प्रेमपूर्ण व्यवहार करना चाहिए।
□ अत्ता हि अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिया ।
अत्तना हि सुदन्तेन नाथं सम्पत्तिं दुक्कमं ।।

—अचवग्गो १२/४

हम स्वयं ही अपने स्वामी हैं, हमारा स्वामित्व किसी दूसरे के हाथ में कैसे हो सकता है ? इसलिए भलीप्रकार अपना दमन कर मनुष्य अपना दुर्लभ स्वामित्व अर्थात् निर्वाण प्राप्त कर सकता है।

पारसी धर्म—

- छेभ्राइ बोउरुस-बचाने दोइबी मोइ या बे अकिफ़ ।
ता क्षत्रिया अहुरा । या बह; हेइश् अविश्मन-इहो ।
फ़्रो स्यू आर्मइते । अबादजेनो फ़दक्षया ।।

—यत्न हा ३३/१३

हे होरमज्द (परमेश्वर) ! मैं प्रसन्नता और विशाल दृष्टिकोण चाहता हूँ। मुझे क्षयक वरदान दे। यह सत्य का मार्ग है। हे प्रकाशवती आर्मइते तू हमें सत्य के द्वारा अन्तरात्मा के दर्शन करा। हे दयामय ! मुझे सत्य दे, प्रेम दे, करुणा दे।

हम अपने से पूछें—

- 'मैं कौन हूँ ?
मैं किसका हूँ ?
मनुष्य जीवन का लक्ष्य क्या है ?
मैं सत को पूजता हूँ/या असत को ?
मेरा धर्म क्या है ?
मैं क्या करूँ और क्या न करूँ ?
प्रकाश का स्रोत कहाँ है ? अन्धकार क्या है ?"

—पहेलवी टैक्सट से

ताओ धर्म—

- “चमक-दमक मनुष्य को अन्धा बना देगी।
शब्द उसे बहरा बना देगा।
स्वाद जीव को बुरा कर देगा।
शिकार उसे हिंसक बना देगा।
बहुमूल्य वस्तुएँ लोभी बनाती हैं।
प्रतिष्ठा और लज्जा से भीरुता आती है।
यही कारण है कि ज्ञानीजन सदैव आत्मचिन्तन करते हैं, इन्द्रियों की चिन्ता नहीं।

—ताओ तेह किंग

कम्प्यूशियस धर्म—

- तू कुंग पूछता है :
“एक शब्द में मनुष्य का कर्तव्य बताइये ?”
कांग फ्यूत्सी कहता है :
“भाईचारा, प्रेम।”
- हम सब एक आत्मा हैं, मत वह व्यवहार दूसरों से करो जो तुम स्वयं नहीं चाहते।

—कम्प्यूशियस

ईसाई धर्म—

- “परमेश्वर की आज्ञा है कि तू पड़ोसी को भी अपने समान ही प्यार कर।”

इस्लाम धर्म—

- इन्न हाजिही उम्मतुकुम् उम्मतैब्बाहियत
बै अना रम्मुकुम् फअुप्रुनि।
व त क्तजुअमप्रुहम् बैनुहम्, कुस्तुन इत्तैना
राजिअुन।

—कुरान शरीफ २१/ ३६

बेशक सभी इनसान एक जाति के हैं, परवरदिगार सबको एक समान पालता है। देखने में अलग-अलग होने पर भी तुम्हारा लक्ष्य एक है।

मानव जीवन की सार्थकता

वेद—

- अदित्सन्तं धिदाष्टुणे पूषन्धानाय चोदय।
पणेशिधि भ्रवा मनः॥

—ऋ. ६/ ५२/ ३

हे देवताओ ! हम कभी कंजूस न बनें। हमारा मन दान करने की ओर प्रेरित हो, हमारा हृदय कोमल और उदार हो।

- यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपास्ते।
तया मामद्य मेधयान्ते मेधाविनं कुठ स्वाहा॥

—ऋ. ३२/ १४

जिस मेधावी बुद्धि को धारण करने से विद्वान् तत्त्वदर्शी और आत्मज्ञानी आदि यश प्राप्त करते हैं, हम भी उसे धारण करें। हम मेधावी बनें, यह हमारा संकल्प हो।

- व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयान्ते वक्षिणाम्।
वक्षिणा व्रद्धामाप्नोति व्रद्धया सत्यमाप्नोते॥

—ऋ. १६/ ३०

व्रत से मनुष्य को अधिकार की योग्यता मिलती है। दूसरे उत्साह बढ़ता है और आन्तरिक श्रद्धा प्रदीप्त होती है। इससे परमात्मा के दर्शन होते हैं, अतएव हम भी श्रद्धावान् बनें।

- न पिशाचैः सं शक्नोमि न स्तेनैर्न वन्यभिः।
पिशाचास्तस्मान्मश्वन्ति यमहं ग्राममाविशे॥

—अथर्व. ४/ ३६/ ७

मैं दुराचारी, चोर, बदमाश और जंगल में छुपे डकैतों के साथ कभी सन्धि नहीं कर सकता। मैं जहाँ जाता हूँ, वहाँ से ये सभी भाग जाते हैं। अर्थात् मनुष्य को चाहिए कि दुष्ट दुराचारियों के उन्मूलन में पूर्ण तत्पर रहे और उन्हें कभी अपना सहयोग न दें।

- स्वयं वार्षिस्तर्षं कश्यपस्य स्वयं यजस्य स्वयं जुषस्य।
महिमा तेभ्येन न सन्महे॥

—ऋ. २३/ १६

हम अपने स्वास्थ्य का सुधार स्वयं करें, स्वयं शक्तिशाली और बलवान् बनें। स्वयं ही वस्तुएँ पैदा करें, उनका सेवन करें। हाँ अपना बड़प्पन तथा गौरव स्वावलम्बन से प्राप्त करें, इसके लिए औरों के सहयोग की अपेक्षा न करें।

- पश्येम श्रवः शतं जीवेम श्रवः शतम्।
शृणुयाम श्रवः शतं प्र ब्रवाम श्रवः शतमदीनाः।
स्याम श्रवः शतम् भूयश्च श्रवः शतात्॥

—ऋ. ३६/ २४

हम सौ वर्ष तक देखें। सौ वर्ष जीवित रहें। सौ वर्ष तक सुनें। सौ वर्ष बोलें। सौ वर्ष तक धन-धान्य से परिपूर्ण रहें और सौ वर्ष से भी अधिक जीवित बने रहें।

शास्त्र—

- विज्ञानसारविद्यस्तु मनःअग्रहवाचनः ।
सोऽध्वनः पारमान्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥—

—कठोपनिषद् १/३/६

जो मनुष्य अपने विवेक से सच-झूठ का विचार करके सदा अच्छे कर्म करता है, उसी का मानव-जीवन सफल होता है। वही विष्णु-पद प्राप्त करता है।

- श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्ती सम्परीत्य विविनक्ति धीरः ।
श्रेयो हि धीरोऽपि प्रेयसो नृणीते प्रेयो मन्वो
योगक्षेमाद्ब्रूणीते ॥

—कठोपनिषद् १/२/२

संसार में श्रेय और प्रेय दो मार्ग हैं। दोनों मनुष्य के पास आते हैं। बुद्धिमान व्यक्ति तो विवेक के द्वारा श्रेय को चुनता है, किन्तु मूर्ख लोग प्रेय की ओर चले जाते हैं।

- संसारविषयवृक्षोऽयमेकमास्पदमापदाम् ।
अहं सम्पोह्येभित्यं वीर्यं यत्नेन नाशयेत् ॥

—योगवासिष्ठ २/११/६६

इस संसार में दुःख और आपत्तियाँ उन्हें परेशान करती हैं जो मूर्ख होते हैं अतः प्रयत्नपूर्वक अज्ञान को दूर भगाना चाहिए। हम अज्ञानी न बनें।

- न कदाचन दीनात्मा नोद्धतात्मा कदाचन ।
न प्रमत्तो न खिन्नात्मा नोद्विग्नो न च हर्षवान् ॥

—योगवासिष्ठ ५/७७/३२

जो न कभी दीन होता है, न उद्धत। न कभी प्रमाद करता है, न खिन्न होता है। जो न उद्विग्न होता है न हर्षित, वही जीवन्मुक्त कहा जाता है।

- यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥

—गीता १८/५

यज्ञ, दान और तप से मनुष्य का जीवन शुद्ध, निर्मल एवं पवित्र बनता है। अतएव इन्हें कभी भी न त्यागना चाहिए।

- कामैरहताधीर्दान्तो मृदुः शुचिरकिञ्चनः ।
अनीहो मितशुक्लः शान्तः स्थितो मन्थरगो मुनिः ॥

—भागवत ११/११/३०

जिसकी बुद्धि विभिन्न कामनाओं से कलुषित न हो, संयमी हो, मधुर स्वभाव वाला हो, पवित्र हो, संग्रहवृत्ति का जिसने परित्याग कर दिया हो। स्वल्पाहारी और शान्त स्वभाव वाला हो,

जिसे केवल भगवान पर ही भरोसा हो, उसे ही जीवन्मुक्त कहते हैं।

- काम-क्रोध मद-मान न मोहा ।
लोभ न छोह न राग न द्रोहा ॥
जिनके कपट दंभ नहीं माया ।
जिनके हृदय बसहु रघुराया ॥

—रामचरित मानस

- रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥

—गीता २/६४

जिस मनुष्य के राग और द्वेष समाप्त हो जाते हैं, जिसकी इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं, वे लोग सांसारिक सुखोपभोग भोगते हुए भी आत्मिक प्रसन्नता प्राप्त कर लेते हैं।

- या निश्चा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निश्चा पश्यतो मुनेः ॥

—गीता २/६६

जब संसार के सभी लोग सोते हैं तब भी संयमी पुरुष जाग्रत रहता है। जब दूसरे लोग दिन मानते हैं, उसे मननशील रात्रि मानते हैं।

- मुनहु सखा कछ कृपा निधाना ।
जेहि जय सो स्यंदन आना ॥

सौरज धीरज तेहि रय चाका ।

सत्य शील दृढ़धजा पताका ॥

बल विवेक दम परहित धेरे ।

छमा कृपा समता जु जेरे ॥

ईश भजन सारथी मुजाना ।

विरति चर्च संतोष कृपाना ॥

दान परतु बुधि सक्ति प्रबंध ।

बर विन्यान कठिन को बंध ॥

अमल अवल मनत्रोण समाना ।

सम यमनि सिलीमुख जाना ॥

कवच अमेघ विप्र गुठ पूजा ।

यहि समविजय उपाय न दूजा ॥

सखा धर्ममय अस रब जाके ।

जीतन कई न करहुँ रिपु ताके ॥

—रामचरित मानस

अर्थात् उस व्यक्ति को इस संसार में कोई नहीं जीत सकता, जिसके जीवन-रथ में शौर्य और धैर्य के पहिये लगे हों, सत्य, शील और दृढ़ता की पताका हो, बल, विवेक, परोपकार और इन्द्रियदमन के चार घोड़े जुड़े हों, क्षमा और

दया से वे नियन्त्रित हों। जीवन-रथ का सारथी है ईश्वर-भजन। वैराग्य की ढाल और संतोष की कृपाण हो; दान, विज्ञान, अचल मन, यम, नियम आदि अनेक अस्त्रों से सुसज्जित होकर जो जीवन-संग्राम में उतरते हैं, उन्हीं की इस संसार में जीत होती है।

जैन धर्म—

- धम्मो मंगल मुक्खिदुट्ठं अहिंसा संजमो तवो।
देवावित्तं नमसति जस्स धम्मो सया मणो॥

—दशवैकलिक ११/११

अहिंसा, संयम और तप इसी का नाम धर्म है। धर्म मनुष्य के लिए मंगलकारक होता है। जो धर्मशील होते हैं उन्हें देवता भी नमस्कार करते हैं।

- मुहुत्तुक्खा ठ ध्वंति कंटया,
अओमया तेवित्तओ सुउत्तरा।
वाया उरुत्ताणि उरुत्तराणि,
वेराणुबन्धीणि महम्मयाणि॥

—दशवैकलिक ६/३/७

पैर में लोहे का काँटा चुभ जाए तो उसका दर्द थोड़ी ही देर में मिट जाता है किन्तु व्यंग्य शब्द हृदय में ऐसे चुभते हैं कि जीवन भर कष्ट बना रहता है। अतएव कभी अपशब्द किसी को न कहना ही मनुष्य के लिए श्रेयस्कर होता है।

- सत्थेहि भूएहि दयाणुकंपी जतिक्खमे संजय बंभपारी।
साक्खजोगं परिवर्णयंतो चरेण्ण भिक्ख
सुसमाहिइन्दिमे॥

—उत्तराध्यायन २१/१२

सब प्राणियों पर दया करें। कठोर वचन भी सहन करें और प्रतिकार न लें। संयम और ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करें। इन्द्रिय-निग्रह करें। निष्पाप जीवन जियें।

बौद्ध धर्म—

- करणीयमत्थ कुसत्तेन यंतं सत्तां पवं अभिसमेच्च।
सक्को उच्च च सुज्जु च सुवचो वस्स मुदु अनतिमानी॥
सन्नुत्सको च सुभरो च अप्पकिच्चो च सत्सहुक्कुत्ति।
सन्तिन्नियो च नियको च अप्पगम्भो कुत्तेसु
अननुगिद्धो॥

—अभिधम्म पिटक

जो मनुष्य शान्तपद प्राप्त करना चाहता है उसे कल्याणकारी, योग्य और सरल बनना चाहिए। बात सुन्दर, मीठी व विनययुक्त करे। सन्तोषी

हो, रहन-सहन सादी वृत्ति का हो। उसकी इन्द्रियाँ शान्त हों, किसी प्रकार की आसक्ति न हो।

- न परो परं निक्खुब्बेय नातिमज्जेय कत्थचिदं कम्बि।
व्यारोत्तना पटिपत्तप्पा नाब्भमज्जस्स दुक्खमिच्छेय्य॥

—अभिधम्म पिटक

कोई किसी को ठगे नहीं। किसी का अपमान न करे। बैर या प्रतिशोधवश किसी को दुःख देने की बात न सोचना ही मानव-धर्म है।

- न वे कदरिया देवतोकां वज्जिन्ति वात्ता ह्वे
नप्पसंसप्पि वानं।
धीरो च वानं अनुमोदमानो तेनेव सो होति सुखी
परत्थ॥

—लोकवग्गो १२/११

देवलोक उन्हें कदापि नहीं मिलता, जो कंजूस होते हैं। मूर्ख दान का खण्डन करते और ज्ञानीजन अनुमोदन करते हैं। इसी से इहलोक और परलोक में सुख मिलता है।

- न जटाहि न गोत्तेन न जप्पा होति ब्राह्मणो।
यन्धि सच्चं च धम्मो च सो सुखी सो च ब्राह्मणो॥

—ब्राह्मण वग्गो २६/११

ब्राह्मण न तो जटा से होता है, न गोत्र से, न जन्म से। जिसके जीवन में सत्य, धर्म और पवित्रता है वही सच्चा ब्राह्मण है।

पारसी धर्म—

- वाइवी अथा तौम् अवीम्। बइहेउश् आयस्ता मनइहे,
वाइवी तु आर्मइते। वीस्तात्याइ ईचम् महम्याचा।
वोस्तु मज्जा क्षयाचा। याईं यौत्रा सवीम् आरावा॥

—यस्त झ २८/७

हे सत्यस्वरूप परमात्मा ! तुम मुझे प्रेम दो, शक्ति दो और वीरता को भी। हम तेरे अनुयायी होकर सर्वत्र तुम्हारे नाम का ही प्रचार करते रहें।

- मज्जो दवात् अहुरो। इउर्वतो अमेरेतातत्त्वा।
बूरोइश् आ अचख्याचा। ख्यापइयात् खंभ्रइया सरो।
बइहेउश् वज्जहरे मनइहे। ये होइ महन्तू श्यओवना-
इश्वा उर्वहो

हे मनुष्यो ! मन, वचन और कर्म से परमात्मा के आदेश का पालन करते हुए सत्यमार्ग पर चलते रहो। इससे तुम्हें पूर्णता की प्राप्ति होगी। अमरता, शक्ति एवं प्रेम मिलेगा।

यहूदी धर्म—

- १—किसी की निन्दा मत करो।
- २—मन में न लोभ करो, न लालच।
- ३—किसी पर क्रोध न करो।
- ४—चिन्ता मत करो।
- ५—भोग-विलास से दूर रहो।
- ६—न हो डाह, न हो ईर्ष्या।
- ७—आलसी मत बनो।
- ८—उद्यमी बनो।
- ९—दूसरों की सम्पत्ति मिट्टी के समान मानो।
- १०—पर-नारी का चिन्तन तक न करो।
- मनुष्य जीवन की सफलता के इन दस नियमों का पालन करना चाहिए।

—दीनार्थ मैनो की खिरत २०। ३-७

- जीभ के वश में जीवन भी है, मृत्यु भी।
जो उसका उपयोग करना जानता है उसी को फल मिलेगा।
- जो संयमित शब्द बोलता है, वह विपत्तियों से बचा रहता है।
- दुष्ट का मुख कठोर होता है।

—यहूदी नीति वचन १८। २१, २२। २३-२६

ताओ धर्म—

- “जो लोग मेरे प्रति अच्छा व्यवहार करते हैं उनके प्रति मैं अच्छा व्यवहार करता हूँ। जो मेरे प्रति अच्छा व्यवहार नहीं करते, उनके प्रति भी मैं अच्छा व्यवहार करता हूँ। इसी तरह लोग अच्छे बनते हैं।”

—ताओत्से

- निर्माण और सुरक्षा,
कर्म में अहंभाव का त्याग,
कर्म करे पर फलाशा नहीं,
विकास के पथ पर उत्तरोत्तर बढ़े—
यही मनुष्य मात्र का परम धर्म है।

—ताओ तेह किंग। १०

ईसाई धर्म—

- जो कोई दान दे, वह सरलता के साथ दान दे।
- जो कोई दया करे, वह प्रसन्नतापूर्वक करे।
- प्रेम वह है जो निष्कपट हो।
- बुराई से घृणा करनी चाहिए।

- भलाई से विमुख न हो।
- सबके साथ भाईचारा और प्रेम का व्यवहार करो।
- प्रतिस्पर्द्धा हो तो आदर-सत्कार में।
- आलसी न बनें।
- दुःख के समय भी आशावान बने रहो।
- अतिथि सत्कार व सज्जनों की सहायता करो।
- सताने वालों को भी सताओ नहीं।
- भले काम करो, सबसे मेल रखो।
- प्रतिशोध की भावना का परित्याग करो।
- भलाई से बुराई को जीतो।

—रोमियो १२। ८-२१

कर्तव्यपरायणता

- **वेद—**
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ११ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोस्ति न कर्म सिप्यते नरे।।

—ऋजु. ४०। २

हे मनुष्यो ! तुम संसार में निष्काम कर्म करते हुए सौ वर्ष जीने की इच्छा करो। इस प्रकार तुम न तो बुरे कर्म करोगे और न ही कर्मों के प्रति तुम्हारी आसक्ति बढ़ेगी।

- **देवस्य सवितुः सवे कर्म कृष्वणु मानुषाः।**
शं नो भवन्त्यप्य ओषधीः शिवाः।।

—अथर्व. ६। २३। ३

जीवन, प्रेरणा और प्रकाश देने वाले परमात्मा की प्रेरणा से हम सदैव अपने नियम कर्म पूरे करते रहें, ताकि अन्न और जल आदि पदार्थों का हम सुखोपभोग कर सकें।

- **न किञ्चिच्चमन्न नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः समममान एति।**
अनूनं पात्रं निहितं न एतत् पक्कारं पक्वः पुनरा विशाति।।

—अथर्व. १२। ३। ४८

जो जैसा कर्म करता है वैसा ही फल उसे मिलता है। यहाँ मित्रता, सिफारिश आदि की कोई बात नहीं चलती।

शास्त्र—

- आस्तेभगआसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठतिष्ठतः ।
शेतेनिपद्यमानस्यचरातिचरतो भगः ।
चरेवेति चरेवेति ।।
कस्मिन्शयानोभवतिसंविद्यमानस्तुद्वापरः ।
उत्तिष्ठन्त्वेताभवतिकृतसंपद्यतेचरन् ।।
चरेवेति चरेवेति

—ऐतरेय ब्राह्मण ७/१५

जो बैठा है, उसका भाग्य भी बैठा है। जो चल पड़ा उसका भाग्य भी उन्नति की ओर गतिमान हुआ। जो आलसी है उसका भाग्य भी सदैव सोता ही रहता है। जो उद्यम करने के लिए निकल पड़ते हैं, उनका भाग्य फलता-फूलता है, इसलिए सदैव चलते रहो, चलते रहो। सोना कलियुग, जागना द्वापर, उठना त्रेता है और चलना ही सतयुग है। इसलिए सतयुग लाने के लिए सतत कर्मशील बनो।

- कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ।।

—गीता २/४७

हे मनुष्यो ! कर्म करना ही तुम्हारे अधिकार की बात है। फलप्राप्ति की भावना का परित्याग कर दो, तभी तुम अकर्मों से बचे रह सकोगे। फल की कामना से किये गये कर्म दुःख का कारण होते हैं।

- अत्रैकं पीठं यत्नं वर्षाभिलेखरा गतिः ।
सर्वदुःखस्यप्राप्ती न काचिदुपपद्यते ।।

—योगवासिष्ठ २/६/१४/

संसार में दुःख मिटाने का एकमात्र साधन पुरुषार्थ ही है। पुरुषार्थी को किसी प्रकार का अभाव नहीं रहता।

- आसत्स्यं यदि न भवेज्जन्मनर्थः
को न त्याद्रुपयनको बहुश्रुतो वा ।
आसत्स्यादियमवनिःससागरान्ता
सम्पूर्णा नस्पशुभिश्च निषिद्ध्य ।।

—योगवासिष्ठ २/५/३०

इस संसार में अनर्थ की जड़ आलस्य है, यह न होता तो सभी धनवान होते, सभी विद्वान होते। आलस्य का ही दुष्परिणाम है कि इस धरती में असंख्य निर्धन और मूर्ख भरे पड़े हैं।

- योगस्यः कुठ कर्माणि संग त्यक्त्वा धनंजय ।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा सफलं योग उच्यते ।।
—गीता २/४८
- कर्म में सफलता मिले या असफलता, हे अर्जुन ! आसक्ति भाव त्यागकर केवल कर्म किये जा। इन दोनों को तू एक मान। इसी समभाव को ही 'योग' कहा जाता है।

बौद्ध धर्म—

- "राहुल, यदि शरीर से कोई कर्म करना चाहे तो तुझे यह देख लेना चाहिए कि उक्त कर्म से न तो खुद को पीड़ा मिलती हो और न वह दूसरों के लिए पीड़ादायक हो। बुरे कर्म—दूसरों को पीड़ा पहुँचाने वाले कर्म, तुम कभी मत करना ।"
- "यदि वचन से कर्म करे तो भी इसी प्रकार निरीक्षण कर। यदि मन से कोई काम करना चाहे तो भी इसी प्रकार पर्यवेक्षण कर। वही कर्म कर जो न अपने लिए पीड़ादायक हो न औरों के लिए पीड़ादायक हो। —मज्झिम निकाय

जैन धर्म—

- जह भिडसे वासितं गरुवं तुवं अहो वयइ एवं ।
आसव-कय-कम्म-गुठ जीवा बब्बति अहर गइं ।।
तं चेव तव्विमुक्कं जसोवरि ठाइ जायसइ हुभावं ।
जह तह कम्म विमुक्कं सोयणपइदिठया होति ।।
—आतासूत्र ६/१
- तुम्हीं में मिट्टी लगा देने से जिस प्रकार वह भारी होकर जल में डूबने लगती है, ठीक वैसे ही व्यभिचार, हिंसा, झूठ, कपट, चोरी, माया, मोह आदि दुष्कर्मों की मिट्टी आत्मा पर चढ़ने पर वह अधोगामी बन जाता है। इसलिए हम सदैव नेक व शुभकर्म ही करें, बुरे कर्म दुःख का कारण होते हैं।

- जमियं जगई पुक्खे जणा, कम्मोहि सुप्पन्तिपणिणो ।
सममेव कओहिं गाहई, णो तस्सा मुक्खेज्जपुठ्ठे ।।

—सूय कृतांग १-२-१४

मनुष्य अपने संचित कर्मों के फलस्वरूप ही संसार में चक्कर लगाते हैं। कर्मों के अनुसार ही विभिन्न योनियों में जन्म लेते रहते हैं। कर्म फल भोग किये बिना जीव को छुटकारा नहीं मिलता।

पारसी धर्म—

जब तुम अपने हाथ-पैर और मन से सत्कर्म करने में जरा भी देर न लगाओगे तभी सच्चे ईश्वरनिष्ठ कहलाओगे। गलत काम से हमेशा दूर रहना। सदैव शुभकर्म ही करना ताकि ब्याज समेत अपना कर्ज चुका सको।

यहूदी धर्म—

हे आलसी उठ, चींटी के पास जा, वह कैसे काम करती है इस पर ध्यान दे और सोच। उनको तो कोई कहने, बताने वाला भी नहीं है, तो भी वे धूपकाल में अपना आहार इकट्ठा करती हैं।

वे कटनी के दिनों में खाद्य संचित करती हैं। हे आलसी तू कब तक सोता रहेगा ? तेरी नींद कब टूटेगी ?

कुछ और सो ले,

थोड़ी-सी नींद, एक झपकी और ले ले। तब तेरी कंगाली बटमार की तरह और तेरी घटी हथियारबन्द की तरह आ पड़ेगी।

—यहूदी नीतिवचन ६-६-११

□ जो काम में ढिलाई करता है, वह निर्धन हो जाता है।

काम-काजी लोग अपने हाथ अपना धन कमाते हैं।

—यहूदी नीतिवचन १०-४-५

कन्ययूथियस धर्म—

□ महान पुरुष वे होते हैं जो अपना कर्तव्य और कर्म करने में प्रमाद नहीं करते। जो कभी आलस्य नहीं करते।

—कन्ययूथीसी

इस्लाम धर्म—

□ जो भी आदमी तन्दुरुस्त है और काम कर सकता है, वह यदि अपने या दूसरों के लिए काम नहीं करता, तो खुदा उस पर कभी रहम नहीं करता।

□ अल्लाह उस पर खुश होता है, जो अपनी रोजी खुद मेहनत से कमाता है और किसी से भीख नहीं माँगता।

—मोहम्मद साहब

मनोनिग्रह**वेद—**

□ यथाज्ञानमुक्त वेतो धृतिश्च यज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्यान्तः ऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः
शिवसंकल्पमस्तु ॥

—यजु. ३४/३

मन ही ज्ञान देने वाला, चेतनशील, धैर्यवान तथा अविनाशी है। वह सभी प्राणियों के हृदय को प्रकाशित करता है। इस मन के बिना कोई काम नहीं किये जा सकते हैं, इसलिए हमारा मन उत्तम विचारों से युक्त हो।

□ सुचारुचिरस्थानि च यन्मनुष्यान्नेनीयतेभीशुभिर्वाजिनः
इव।

इत्यतिष्ठं यदतिरं जयिष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

—यजु. ३४/६

मन ही कर्म कराता है। सारथी जिस प्रकार रथ को चलाता है, उसी प्रकार मानव जीवन का संचालक मन है। वह जरारहित है और तेज गति वाला है। वह मन शुभ विचारों वाला हो।

□ अयेहि मनसस्तोऽयं ज्ञान परस्वर।

परोभिर्भुज्यते आ चक्षुः शृणुया जीयते मनः ॥

—अथ. १०/१६४/१

मन को अपवित्र करने वाले बुरे संकल्प मुझसे बहुत दूर रहें। मेरा चित्त कभी मलिन न हो। मेरा अन्तःकरण निष्पाप बने, मेरा मन शुभ विचारों वस्त्र हो।

□ परोऽयेहि मनस्तथा किमस्तस्मि शंतसि।

येहि न त्वा क्षम्ये कृष्णं वयानि सं पर नृषेभु
षोभु मे मनः ॥

—अथर्व. ६/४५/१

बुरे विचार मुझसे सदैव दूर रहें ताकि मैं कोई दुष्कर्म न करूँ। मेरा मन बुरी बातों की ओर न जाने पाये, इसलिए मैं उसे सदैव अच्छे कार्यों में लगाये रखूँगा। अपने घर और पशुओं की समृद्धि में लगा रहूँगा।

शास्त्र—

□ इन्द्रियाणि इवागदुर्विचर्यांतेषु नोबलम्।

आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तव्यमदुर्विचरिणः ॥

—कठोपनिषद् १/३/४

विषयों की सड़क पर चलती हुई छोड़े स्त्री इन्द्रियों स्वेच्छाचारिणी न हों। जब तक आत्मा

का शरीर, इन्द्रियों और मन से मेल उत्पन्न नहीं होता, तब तक सच्चा सुख नहीं मिल सकता।

- अध्यात्मविद्याधिगमः साधुसंगम एव च।
वासनासम्परित्यागः प्राणस्यन्धनिरोधनम्।
एतास्ता युक्तयः पुष्टाः सन्ति चित्तजये क्लृप्ताः॥

—योगवासिष्ठ ५/६२/३६

धार्मिक पुस्तकों का स्वाध्याय, सत्संग, वासनाओं का त्याग और प्राणायाम आदि से चित्त की पवित्रता बढ़ती है।

- इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तवस्य हरति प्रज्ञां बाधुर्नाविबाम्भसि॥

—गीता २/६७

जिस प्रकार पानी में चलती हुई नाव को हवा जिधर चाहती है उधर ही खींच ले जाती है, उसी प्रकार विषयों में ही घूमने वाला मन भी बुद्धि को विभ्रमित कर देता है।

- सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥

—गीता १२/४

भगवान की प्राप्ति उन्हें ही होती है, जो मन द्वारा इन्द्रियों को वश में रखकर सदैव समबुद्धि से सभी प्राणियों के कल्याण में लगे रहते हैं।

- चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्विभ्रमम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोऽपि सुदुष्करम्॥

—गीता ६/३४

हे कृष्ण ! यह मन वायु के समान बड़ा चंचल है और मनुष्यों को क्षण भर में मथ डालता है। इसे वश में करना कठिन है।

- असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥

—गीता ६/३५

हे अर्जुन ! सचमुच मन को वश में करना कठिन है किन्तु निरन्तर अभ्यास और वैराग्य से उसे भी वशीभूत किया जा सकता है।

- न वेहो न च जीवात्मानेन्द्रियाणि परं तथा।
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः॥
मनस्तु सुखदुःखानां महतां कारणं द्विज।
जाते तु निर्मल स्यस्मिन्सर्वं भवति निर्मलम्॥
प्रमत्तैर्बहु तीर्थेषु स्नात्वा स्नात्वा पुनः पुनः।
निर्मलं न मनो यावत्तावत्सर्वं निरर्थकम्॥

—देवी भागवत १/१८/३६

हे शुकदेव ! बन्धन और मोक्ष का कारण मन है। उसके लिए न इन्द्रियाँ दोषी हैं न

जीवात्मा। सुख-दुःख का कारण भी वही है। बार-बार तीर्थस्नान करने से भी कोई लाभ नहीं, यदि मनुष्य का मन निर्मल और पवित्र नहीं बनता।

- निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

—रामचरितमानस

कपट, छल और छिद्रान्वेषण से रहित निर्मल मन वाले व्यक्ति ही परमात्मा को प्राप्त करते हैं।

बौद्ध धर्म—

- मनोपुद्बन्गमा धम्मा . मनोसेद्वय मनोमया।
मनसा चे पदुद्वेन भासति वा करोति वा।
ततो नं दुक्खमन्वेति चक्कं व बहसो पवं॥

—यमक वग्गो-१

संसार में जो भी प्रवृत्तियाँ दिखाई दे रही हैं उनका कारण मन है। दूषित मन वाले का दुःख पीछा नहीं छोड़ता। जिसका मन निर्मल होता है वही सुख पाता है।

- परवज्जानुपस्तिस्स निब्बं उज्झानसम्बिनो।
आसवा तस्स बद्दन्ति आरा सो आसवक्खया॥

—मलवग्गो १८/१६

दोषदर्शी और सदैव दूसरों पर खीझते रहने वालों के मनोविकार बढ़ जाते हैं। उनके मन का मिटना कठिन हो जाता है।

सिख धर्म—

- धाइयो रे मन बह दिस धाइओ।
माइआ मगन सुआदि लौभि मोहिओ।
तिनि प्रभि आपि भुलाइओ।
हरिकषा हरिजस साध संगति सिउ
इहु मुलु न इहु मन साइओ।

—गुरुग्रन्थ साहब

यह मन बड़ा बलवान है। दसों दिशाओं में जहाँ भी उसे सुख दिखाई देता है उधर ही दौड़ता है। परमात्मा की प्रीति के लिए अपने मन को साधना जरूरी है।

यहूदी धर्म—

- 'सबसे अधिक अपने मन की रक्षा कर, क्योंकि जीवन का मूल स्रोत वही है। न तो तू दाहिनी ओर जा, न बायीं ओर, अपने पाँव को बुराई के रास्ते से हट ले।

—यहूदी नीतिवचन/४/२३-२७

- “यदि तू अपना मन शुद्ध करे, अनर्थ के कार्यों को रोके और उन्हें दूर करे, अपने डरे में दुष्टता न रहने दे, तब तू निश्चय ही अपना प्रायश्चित्त कर सकेगा और तेरे सभी भय मिट जाएँगे”।
—अथर्व ११/ १३-१५

ताओ धर्म—

- ‘विषय वासना में रमना महान पाप है।
असन्तोष सबसे बड़ा दुःख है।
लोभ ही अनर्थ का कारण है।
सन्तोष में शाश्वत सुख है।
इसलिए अपना मन निर्मल करो।’

—ताओ तेह किंग ४६

इस्लाम धर्म—

- प्रथम सोपान—मन को सही दिशा में लगाने का।
द्वितीय सोपान—सांसारिक कामनाओं का त्याग।
तृतीय सोपान—आचरण को ऊँचा उठाना।
चौथा सोपान—जो अपराध करे उसकी सच्चे हृदय से परमेश्वर से क्षमा-याचना करे। —तक़्त तस्तारी

ब्रह्मचर्य की महत्ता

वेद—

- यदाबन्धु यावायना धिर्यं ब्रह्मचर्यं
तत् ते बन्धाम्बाधुने वर्धते ब्रह्मचर्यं धीर्यं
तत् तस्मात्तस्मात् ।।
—अथर्व. १/ ३५/ १

हम ब्रह्मचर्य से रहकर अपने शरीर में वीर्य धारण करते हैं। यह वीर्य आयु, तेज, बल और पूर्ण आयुष्य प्रदान करने वाला है। इससे हमारा बल बढ़ता है और शुभ संकल्प जाग्रत होते हैं।

- ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणिभिश्चते ।।

—अथर्व. ११/ ७/ १०

ज्ञान प्राप्त करने के लिए जो आचरण किया जाता है वह ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य के तप से राजा अपना राज्य पुष्ट रखता है और गुरुजन अपने शिष्यों को ज्ञानवान बनाते हैं।

- ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृणुमवाप्सत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वशतपरात् ।।

—अथर्व. ११/ ७/ १८

ब्रह्मचर्य के आचरण से लोग दरिद्रता और आलस्य को हटाकर उन्नति की ओर बढ़ते हुए सुख प्राप्त करते हैं।

- परं मृत्यो अनु वेदि पन्थां गच्छे ब्रह्मचर्येण
देवयानात् ।।

मृत्युं गच्छे मृत्युं गच्छे वेदं गच्छे नः ब्रह्मचर्येण
देवयानात् ।।

—यजु. ३५/ ७

हे मनुष्यो ! जीवनपर्यन्त श्रेष्ठ पुरुषों का अनुसरण कर पूर्ण आयु प्राप्त करो। ब्रह्मचर्य से रहकर परिपक्व अवस्था में विवाह कर उत्तम सन्तान को जन्म दो। हमारी सन्तान भी ब्रह्मचर्य पालन से विमुख न हो।

शास्त्र—

- तेजस्येव ब्रह्मचर्यं वेदां तपो ब्रह्मचर्यं।
वेदु तत्त्वं प्रतिष्ठितम् ।।

—प्रश्नोपनिषद् १/ १/ १५

तप, ब्रह्मचर्य और सत्य का पालन करने से ही ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है।

जैन धर्म—

- बंधेन ब्रह्मचर्य-नियम-मान-बंधन-
परित — तपसा — निवृत्त भूषं ।

—प्रश्न त्वंर द्वार ४/ १

ब्रह्मचर्य ही सर्वोत्तम तपस्या है। नियम, ज्ञान, दर्शन, चरित्र, संयम और विनय का आधार भी ब्रह्मचर्य ही है।

- नन पञ्चमयजन्ती कायरागविहङ्गनी।
बन्धेनरओ भिक्खु बीकडं तु विवर्षण ।।

—प्रश्न त्वंर द्वार १६/ २

ब्रह्मचारी को चाहिए कि वह नारियों का चिन्तन न किया करे और चित्त में विकार पैदा करने वाले विषय प्रसंगों की याद न किया करे। इससे विषय-वासना बढ़ती है और ब्रह्मचर्य टूट जाता है।

बौद्ध धर्म—

- ब्रह्मचर्यं ब्रह्मचर्यं असन्ना योष्वने वनं।
सेवित चापस्तिवीणा व पुताणां अनुसुवं ।।

—अश्वमयो ११/ ११

जो लोग ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करते और युवावस्था में धन अर्जित नहीं करते, उनका दूटी हुई कमानों की तरह पतन हो जाता है और बाद में सिर धुन-धुन कर पछताते हैं।

यहूदी—

- “परायी स्त्री से व्यभिचार न कर, यह कार्य घृणित है और धिनीना है। ब्रह्मचर्य का पालन किया कर।” —*तैत्तिरीय २०/१०-२१*

इस्लाम धर्म—

- **कल तद् खुशुअिना इन्हु कान फाहिस्तनु;**
ब साज सबीकनु। —*कुरान शरीफ १७/३२*
व्यभिचार की ओर तुम्हारे पाँव न बढ़ें, वह बड़ा गन्दा और गलत रास्ता है।
- **ब यह फजुअककलुन;** —*कुरान शरीफ २४/२१*
इन्द्रियों की रक्षा करो अर्थात् ब्रह्मचर्य का पालन करो।
- “औख का व्यभिचार है परायी बहु-बेटी को गन्दी नजर से देखना। इसलिए तू ब्रह्मचर्य-पूर्वक रहा कर।” —*बैहकी*

क्रोध पाप का मूल

वेद—

- **परा हि मे विह्वलः पतन्ति बल्यष्टवे।**
बयो न बल्यरीक्य॥ —*ऋ० १/२५/४*
हमारा स्वभाव और हमारे धर्म की हानि न हो इसलिए क्रोधी मनुष्य हमसे उसी तरह दूर रहें जैसे उड़ाये गये पक्षी दूर चले जाते हैं। हम भी कभी क्रोध न करें।

शास्त्र—

- **वाच्यावाच्यं प्रकुपितो न विजानाति कर्हिचित्।**
नाकार्यमस्ति कुन्वस्य नावाच्यं विद्यते कश्चित्॥
—*वाल्मीकि रामायण सुन्दरकाण्ड ५५/६*
क्रोधी मनुष्य कैसा भी अपशब्द मुँह से निकाल सकता है और बुरा से भी बुरा कर्म कर सकता है।
- **कुन्वः पापं न कुर्यात्कः कुन्वो हन्वाहुरुनयि।**
कुन्वः पठयया वाचा नरः साधूनविविषेत्॥
—*वाल्मीकि रामायण सुन्दरकाण्ड ५५/५*
जो पाप न करे ऐसा कोई क्रोधी व्यक्ति नहीं हो सकता। क्रोधी बड़ा से बड़ा दुष्कर्म कर सकता है। क्रोध ही पाप का मूल है। कठोर स्वभाव के व्यक्ति अपने कटुवचनों से दूसरों का अपमान करते हैं। इसलिए क्रोध कभी भी न करना चाहिए।

- **त्रिविधं नरकस्येवं द्वारं नाशनमात्मनः।**
क्रोधः क्रोधस्तथा लोभस्तस्यावेत्तव्यं त्यजेत्॥

—*गीता १६/२१*

क्रोध, क्रोध और लोभ ये तीनों मनुष्य की आत्मा को अधोगामी बनाते हैं इसलिए इनसे सदैव दूर रहना चाहिए।

- **भूतैराकम्पयमानोऽपि धीरो देवबलानुगेः।**
तद्विद्वान्न पक्षेभ्योर्गाम्पक्षिणं कितेर्व्रतम्॥

—*भागवत ११/७/३७*

पृथ्वी से मैंने धैर्य और क्षमा का गुण सीखा। उस पर लोग कितना उत्पात करते हैं? खोदते हैं, फावड़ा और कुदाली चलाते हैं पर वह न तो किसी से बदला लेती है, न रोती-चिल्लाती है। बुद्धिमान मनुष्य भी वैसे ही कभी क्रोध नहीं खास्ती, धैर्य नहीं खोते।

जैन धर्म—

- **अहे द्यमि कोहेनं मानेन अहमा गर्ह।**
माया न्मं दमिमतो लोहमो दुग्धो पर्व॥
—*उत्तराख्यन ६/५४/२*
क्रोध मनुष्य को नीचे गिराता है। अभिमान से अधोगति मिलती है। माया से सद्गति का नाश होता है। लोभ से इस लोक और परलोक में भी भय रहता है।
- **पासेदून कसायं अन्नी पातवि संय जघा पच्छा।**
पासेदून तचनरं गिरासबो जस्सवे कोषो॥
—*शिवकोटी : भगवती आराधना १३६४*
जिस प्रकार आग ईंधन को जलाकर खाक कर डालती है, उसी तरह क्रोध मनुष्य को नष्ट करके स्वयं भी नष्ट हो जाता है।
- **सुट्ट विपियो सुहुतेण होवि वेत्तो जणत्स कोषेण।**
पथिवो विजतो जस्सवि कुन्वस्य अकप्पकरणेण॥
—*भगवती आराधना १३७०*
क्रोध के कारण अपना परमप्रिय हितैषी भी क्षण भर में शत्रु बन जाता है। मनुष्य का यश भी क्रोध से ही नष्ट हो जाता है।

बौद्ध धर्म—

- **यो वे उप्पत्तितं कोथं रथं धम्मं व धारये।**
तन्महं सारथिं ब्रूहि रत्तिग्गाहो इतरो ज्जो॥
—*कोषवग्गो १७/२*
जीवन-रथ का सच्चा सारथी वह है, जो उठते हुए क्रोध को रोक लेता है।

पारसी धर्म—

- जो दएवा (राक्षस) थे वे यह नहीं समझ सके कि सत या असत में से कौन ग्रहणीय है और उन्होंने सन्देश में असत चुन लिया। वे अशेषमा (क्रोध) और हिंसा के मार्ग पर चले इसलिए उन्होंने मनुष्य का आध्यात्मिक जीवन दुःखमय बना दिया। —यस्य हा ३०/६
- “क्रोध में आकर या प्रतिशोध की भावना से ऐसा काम मत कर जिससे तेरी आत्मा पतित होती हो।” —पहेलवी टैक्सदस से

इस्लाम धर्म—

- गुस्सा ईमान को ऐसे खराब कर देता है, जैसे कि ऐलवा शहद को खराब कर देता है। —बैहकी
- पहलवान और ताकतवर उसे नहीं कहते जो पहलवान को पछाड़ दे, बल्कि असली पहलवान वह है, जो गुस्से के वक्त अपने नफ्स पर काबू रखे। —कुखारी और मुस्लिम
- ‘किसी बन्दे ने कोई ऐसा घूँट नहीं पिया, जो अल्लाह के नजदीक गुस्से से बढ़कर हो, जिसे कोई बन्दा अल्लाह की रजा की खातिर पी जाए।’ —मसज्द अहमद
- (१) बर्दबारी, गुस्से में मगलूष न होना, उसमें न डूबना और (२) जल्दी में अपराध न करना ये दोष-गुण अल्लाह को बहुत प्यारे हैं। —सहीह मुसलिम

- गुस्सा आये उस वक्त आदमी खड़ा हो तो बैठ जाए, फिर भी न रुके तो लेट जाए। —अहमद

धन से ही धर्म—धन से ही अधर्म**वेद—**

- भूरिवा भूरि वेहि नो मा दधं भूर्या भर।
भूरि धेद्विच दित्तसि।।
—ऋ. ४/३२/२०
हे परमेश्वर ! तू अतुलित धन का स्वामी है, हमें भी विपुल धन दे। मुझे पूर्ण ऐश्वर्य प्रदान कर।
- यत्सोम चित्रमुक्थं विष्यं पार्थिवं वसु।
तन्मः पुनान आ भर।।
—ऋ. ६/१६/१९
ऐश्वर्य के भण्डार परमेश्वर से हम अद्भुत ऐश्वर्य और पार्थिव धन की याचना करते हैं।
एत धन से हम पवित्र कार्य करें।

- परि चिन्मल्लं द्रविणं ममन्यावृतस्य पथा नमस्त विवातेतु।
उत स्त्रेन क्रतुना सं बवेत श्रेयासं दधं मन्त्रं जगुध्यातु।।

—ऋ. १०/३१/८

मनुष्य श्रमपूर्वक धन कमाकर उसे धर्मानुष्ठा में खर्च करे तो इससे बड़ा सुख मिलता है और मनुष्य मात्र का कल्याण होता है।

शास्त्र—

- पुंसोऽयं संवृतेर्हस्तुरसन्तोषोऽर्थकामयोः।
सन्तोषो मुक्तये स्मृतः।।
धन और भोग से मनुष्य को कभी सन्तोष नहीं मिलता। इसी से मनुष्य को जन्म-मरण का चक्कर में फँसना पड़ता है। मुक्ति वही पाता है, जो जितना मिले उसी में सन्तोष के काष लेता है।
- न धर्मः प्रीयते तातातवानैर्दत्तैर्महाफलैः।
न्यायस्यैवैर्यथासुस्मैश्च द्यापूतैस्तुष्यति।।
—महाभारत अश्व. ६०/६८
परमात्मा अन्याय से कमाये धन के दास से भी प्रसन्न नहीं होता, जितना कि न्यायपूर्वक पेटा किये अन्न के सात्त्विक दान से।

जैन धर्म—

- जह्म साहो तह्म लोहो साहो झोहो पवह्मई।
दो मासकयं कय्यं कोडीए वि न निहय्यं।।
—दशवैकलिक २/१९
धन का ज्यों-ज्यों लाभ होता है, त्यों-त्यों लाभ बढ़ता जाता है। पहले जिसे दो मासे झीमे की जरूरत थी बाद में उसे करोड़ों की आकांक्षा होने लगती है फिर भी सन्तुष्टि नहीं मिलती।

बौद्ध धर्म—

- न तं दलहं बन्धनमाहु धीरा यथायसं दारुजं बब्बजं च।
सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु पुत्तेसु वारेसु च या अपेक्खा।।
—तण्डा बग्गे २४/१२
लोहा, लकड़ी या रस्सी के बन्धन को बुद्धिमान लोग बन्धन नहीं मानते। सबसे बड़ा बन्धन तो सोने, चाँदी आदि धनों का होता है; जो मनुष्य को जन्म-मरण में फँसाये रहता है।

यहूदी धर्म—

- धिक्कार है उसे, जो पराया धन छीनकर धनवान बनता है। इससे वह आखिर कब तक धनवान रहेगा ?

४.२२ विचारसार एवं सुक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

- धिक्कार है उन्हें जो अन्याय से अपना घर भरना चाहते हैं।
—हवक्कूक २/ ६-१५
- धन की आकांक्षा कभी तृप्त न होगी। अधिक धन-संग्रह का फल अच्छा नहीं होता। सम्पत्ति बढ़ती है तो खाने वाले भी बढ़ जाते हैं।
- मेहनती, चाहे कम खाये चाहे ज्यादा, हमेशा सुख से सोता है पर धन बढ़ जाने से धनी को नींद ही नहीं आती।
—सभा उपदेश ५/ १०-१२

ताओ धर्म—

- धन के पीछे पड़ते रहने से अच्छा है उससे विरत होना।
यदि धन रत्न-खजाने से भर लिया तो उसकी रक्षा आखिर कौन करेगा ?
जहाँ अधिक धन होता है, वहाँ अभिमान और चिन्ताएँ भी उतना ही अधिक होती हैं।

—ताओ तेह किंग

ईसाई धर्म—

- “सुई के छेद से ऊँट का निकल जाना आसान है पर धनी लोगों का स्वर्ग में प्रवेश कठिन है।”
—लुका १८/ १८-२५
- “जहाँ तुम्हारा धन रहेगा, वही तुम्हारा मन रहेगा।”
—लुका १२/ ३३-३४

इस्लाम धर्म—

- बेईमानी से जो अनाथ-गरीबों का धन हड़प कर अपना घर भरते हैं, वे अपने पेट में आग भरते हैं। उन्हें दोजख (नरक) की आग में जलना पड़ेगा।
—कुरान शरीफ ४/ १०
- अपनी दौलत को न तो बिल्कुल गाड़कर रखो न उसे बिल्कुल खुला छोड़ दो अर्थात् फिजूलखर्ची में उड़ा दो।

—कुरान शरीफ १७/ २६

पारिवारिक जीवन में सुव्यवस्था

वेद—

- उच नः सुनयो मिः शुच्यस्तनृनस्ये ।
शुच्यैका चकन्तु नः ॥

—श्रु. ३३/ ७७

माता-पिता मिलकर अपने पुत्रों को ज्ञानवान तथा सुख देने वाले बनावें। यह उत्तरदायित्व उनकी है ?

शास्त्र—

- यस्य पुत्रो वशीभूतो भार्या उन्मानुगामिनी ।
विषये यस्य सन्तुष्टिस्तस्य स्वर्ग इहैव हि ॥

—वाणक्यनीति २/ ३

जिसका पुत्र इच्छावर्ती और स्त्री आज्ञाकारिणी हो, जिसके परिवार में प्रचुर धन-सम्पत्ति हो उसका घर ही स्वर्ग के समान है। उसका जीवन सदैव सन्तुष्ट रहता है।

- यं मातापितरौ क्लेशं सहते सम्भवे नृणाम् ।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥
तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा ।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥

—मनुस्मृति २/ २२७-२२८

पुत्र को जन्म देने, उसका लालन-पालन करने में माता-पिता को कितना कष्ट उठाना पड़ता है, इसका बदला सौ साल में भी चुकाया नहीं जा सकता। इसलिए सदैव वही कर्म करने चाहिए, जिससे माता-पिता और गुरुजनों को प्रिय लगे। यही जीवन की सबसे बड़ी तपश्चर्या है।

जैन धर्म—

- सर्वान्देवान्ममस्यन्ति नैकं देवं समाधिताः ।
जितेन्द्रिया जितक्रोधा दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥

—हरिभद्रः योगबिन्दु ११८/

गृहस्थ जीवन के सुख के लिए इन्द्रियों पर तथा क्रोध पर काबू रखें। एक देवता के आश्रित न होकर सभी देवताओं का आदर करें। इसी से संसार के दुरितों से पार जाया जा सकता है।

बौद्ध धर्म—

- पाणं न हने न यादिम्वमादिये,
मुत्ता न भासे न च मज्जपोसिया ।
अन्नसचरिया विरेमेय्य मेयुना;
रतिं न भुज्जेय विकास भोजनं ॥

—सुच निपात, धम्मनिक सुच २५

गृहस्थ को चाहिए कि वह किसी प्राणी की कभी हिंसा न करे, चोरी न करे, झूठ न बोले, शराब आदि मादक पदार्थों का सेवन न करे, व्यभिचार से दूर रहे और रात्रि में कभी असमय भोजन न करे।

पारसी धर्म—

- धरती माता वहाँ खुश होती है, जहाँ मनुष्य पवित्र मकानों में सुन्दर पुत्र-पुत्रियों समेत मिल-जुलकर रहते हैं, जहाँ अग्नि जलती रहती है, पशु धन की कमी नहीं होती, नौकर अच्छे होते हैं और जीवन के लिए अच्छी और उपयोगी वस्तुएँ संग्रहीत होती हैं।

—बेदीदास ३/२

- तुम्हारा पारिवारिक जीवन सुखी रहे इसलिए हे स्त्री-पुरुषो ! सदैव सत्य मार्ग का अनुसरण करो। असत्य की ओर आकर्षित नहीं होना, ऐसा करोगे तो जीवन दुःख और बुराइयों से भर जाएगा और परिवार की सारी शान्ति-व्यवस्था लड़खड़ाकर चौपट हो जायगी। असत के अनुसरण से परिवार का आध्यात्मिक तथा बौद्धिक जीवन नष्ट हो जाता है। अर्थात् स्त्री-पुरुषों को सदैव मिल-जुलकर प्रीतिपूर्वक रहना चाहिए।

—यस हा ६३/६

- 'मेरा धर्म क्या है ?—

परिवार बसाकर, ईमानदारी से वंश वृद्धि करना।'

—पहेलवी टैक्सदस से

यहूदी धर्म—

- जो अपने माता-पिता को कोसता है, उसका दिया बुझ जाता है, चारों ओर घोर अन्धकार छा जाता है।

—यहूदी नीतिवचन २०/२०

कन्फ्यूशियस धर्म—

- मनुष्य परिवार में पूर्ण प्रेमप्रसार करे। माता-पिता का आदर और उनकी भलीप्रकार सेवा करे, इससे सन्तान को सुख मिलता है। सन्तान का प्रेम, पत्नी का प्रेम वीणा और बाँसुरी की तरह मधुर होता है। भाई-भाई के स्नेहपूर्ण बन्धनों से पारिवारिक जीवन में मधुरता आती है।

—कॉन्फ्यूसी

इस्लाम धर्म—

- व बस्सयनाउक्क वैहिइइस्तान् ।

हमसतह उम्मुह वदअतह कुरहन् ।।

अल्लाह का हुक्म है कि आदमी अपने माँ-बाप के साथ नेक सलूक करे। उसकी माँ कितनी तकलीफों से उसे जन्म देती है और पालन-पोषण करती है।

—कुरान शरीफ

**दाम्पत्य जीवन की पवित्रता—
नारी-गौरव****वेद—**

- अश्वी नौ मधुसंकाशे अनीकं नौ समञ्जनम् ।
अन्तः कृणुष्व मां इदि मन इन्मी सझसति ।।

—अथर्व. ७/३६/१

हम पति-पत्नी दोनों एक-दूसरे को प्यार भरी दृष्टि से देखें। हमारे बीच में अविश्वास और संकोच का भाव पैदा न हो। हम एक हृदय और दो शरीर हों। हमारे मन समान हों।

- इहेमाविन्न सं गुद चक्रवाक्ये इप्स्यती ।

प्रजयेनी स्वस्तकी विश्वमायुष्यं श्रुताम् ।।

—अथर्व. १४/२/६४

हम पति-पत्नी परस्पर इस प्रकार प्रीतिपूर्वक रहें जैसे चक्रवाक पक्षी। हम दोनों सदैव साथ-साथ रहें और उत्तम सन्तान से युक्त होकर आयु-पर्यन्त सुख भोग करें।

- अश्वी रास्तासीन्नाम्बाऽ उन्मीकः ।

पूचासि धर्माव वीक्ष ।।

—ऋग्वे. ३८/३

हे स्त्री ! तू सृष्टि-संचालन का प्रमुख आधार है। तू गृहस्थ का गौरव है। पृथ्वी के समान पालन करने वाली माता है। तू गृह-कार्यों में पूर्ण मनोयोग से लगी रहे।

- इहे रस्ते हव्ये काव्ये चन्ने ज्योतेऽशिते सरस्वति नहि विभुति ।

एता ते अज्ये नामानि देवेभ्यो ना मुकूतं कृतम् ।।

—ऋग्वे. ८/४३

हे नारी ! तू प्रशंसनीय गुणयुक्त, रमणीय, कमनीय, श्रेष्ठ शील से ज्योतिर्मान, शीतल, चरित्रवती, विज्ञानमती, पूजनीय तथा सर्वगुण सम्पन्न है। तू अपने पति को उत्तम उपदेश दिया कर।

- आहं शिवायि ते मनो राजाश्वः पुष्ट्वायि ।

रेण्यच्छिन्नं यथा तृणं मयि ते वेष्टतां मनः ।।

—अथर्व. ६/१०२/२

जिस प्रकार घोड़े से गाड़ी सम्बद्ध रहती है हम पति-पत्नी भी परस्पर एक-दूसरे के समीप बने रहें। जिस प्रकार वायु वेग से दूध घास का तिनका उसी घास से लिपट जाता है वैसे ही हम भी प्रीतिपूर्वक रहें।

- इवे राये रमस्व सहसे युग्मऽ ऊर्जे अपत्याय ।
सम्राडसि स्वराडसि सारस्वती त्वोत्सी प्रावताम् ॥

—यजु० १३/३५/

विवाह के बाद पति-पत्नी दोनों साथ-साथ रहें।
उनमें प्रेम बना रहे। विद्वान होकर पुरुषार्थ से
धन कमाएँ और श्रेष्ठ सद्गुणों से युक्त होकर
एक-दूसरे की रक्षा करें। धर्माचरण द्वारा, पुत्र-
पौत्रों के साथ सुखपूर्वक रहें।

- मम पुत्राः शत्रुहणोऽग्रे मे दुहिता विराट् ।
उताहमस्मि सज्जया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः ॥

—ऋ. १०/१५६/३

मेरा पुत्र शत्रुओं का नाश करता है, पुत्री मेरी
तेजस्विनी और मैं स्वयं भी विजयशालिनी हूँ।
मेरा पति भी शत्रुञ्जयी और यशस्वी है।

- अहं केतुरहं मूर्धाहमुग्रा विवाचनी ।
ममेवमु कर्तुं पतिः सेहानाया उपाचरेत् ॥

—ऋ. १०/१५६/२

मैं ध्वजा के समान गर्वन्त हूँ। मैं गृहस्थ का
मस्तिष्क हूँ। मुझमें बल है, वर्चस्व है।
विरोधियों को मैं पराभूत करती हूँ। मेरा पति
मेरी बुद्धि के अनुसार आचरण करता है।

शास्त्र—

- सन्तुष्टौ भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥

—मनुस्मृति ३/६०

जिस कुल में पति-पत्नी एक-दूसरे से सन्तुष्ट
रहते हैं, वह कुल निश्चय ही सुख पाता है।

- सखा भ्राता सुहृद् भृत्यौ गुरुर्भिर्भगं सुखम् ।
शास्त्रमायतनं दासः सर्वं भर्तुः कुलाङ्गना ॥

—योगवासिष्ठ

स्त्रियाँ अपने पतियों की सखा भी होती हैं, बन्धु,
मित्र और सेवक भी। स्त्री ही गुरु होती है। धन
सुख, शास्त्र आदि सभी पत्नी ही होती है।

- यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफताः क्रियाः ॥

—मनुस्मृति ३/५६

जहाँ नारियों का सम्मान होता है, वहीं देवता
निवास करते हैं। जहाँ उनका आदर नहीं किया
जाता वहाँ के सारे कर्म निष्फल हो जाते हैं।

- जामयो यानि गेहानि क्षपन्त्यप्रतिपूजिताः ।
तानि कृत्याहस्तानीव विनश्यन्ति सप्तमताः ॥

—मनुस्मृति ३/५८

जिस घर में स्त्रियों का निरादर और अपमान
किया जाता है, उस घर का पूरी तरह से
सर्वनाश ही हो जाता है।

- शास्त्रार्थं गुरुमन्त्रादि तथा नोत्तारणक्षमम् ।
यथैताः स्नेहशालिन्यो भर्तृणां कुलपोषिताः ॥

—योगवासिष्ठ

शास्त्र, गुरु, मन्त्र आदि साधनों से भी मोह
झगर से पार जाना सम्भव नहीं है, पर यह
कार्य स्नेह से भरी कुल की स्त्रियाँ सहज ही
में पूरा कर देती हैं।

इस्लाम धर्म—

- अल्लाह कहता है कि औरतों की इज्जत करो।
वे तुम्हारी माँ हैं, बेटियाँ हैं, चाचियाँ हैं।

—मौहम्मद साहब

पारसी धर्म—

- हे वर और वधू ! तुम धर्म की बातें भली
प्रकार जानते हो। अपने जीवन का मूल्य
समझना। सच्चे हृदय से प्रेमपूर्वक रहना। सत्य
में तुम दोनों एक-दूसरे से बढ़चढ़कर हो। इसी
से सुख और प्रसन्नता की प्राप्ति होगी। सत्य
से हे वर और वधू ! तुम दोनों का ही परम
कल्याण होगा।

—यस्न हा ५३/५

- जहाँ दाम्पत्य जीवन में हार्दिक प्रेम होता है
वहाँ का जातीय जीवन बड़ा सुखी एवं समुन्नत
रहता है। इसलिए जो भी सम्मार्ग पर चलेगा
वही सत्य को प्राप्त कर सकेगा, जो ऐसा नहीं
करेगा उसे अन्त में दुःख ही भोगना पड़ेगा।

—यस्न हा ५३/७

यहूदी धर्म—

- भली पत्नी किसे मिलती है ? उसका मूल्य
मूँगों से भी बहुत अधिक है। उसे पति के मन
में उसका विश्वास है। वह उसके साथ भला
व्यवहार करती है। घरभर को भोजन खिलाती
है। रात को उसका दिया नहीं बुझता। उसके
पति का सम्मान होता है। उसके पुत्र उसे
'धन्य धन्य' कहते हैं। उसका पति उसे
सर्वश्रेष्ठ मानकर स्यार करता है। उन्हें अपने
परिश्रम का फल मिलता है।

—यहोवा नीतिवचन ३१/१०-३१

- झगड़ालू पत्नी के साथ बँगले में रहने की अपेक्षा अकेले किसी छत के कोने में पड़ा रहना अधिक अच्छा होता है।
—नीतिवचन २१/ ६

कन्यपूशियस धर्म—

- पति-पत्नी प्रेम के धागे में बँधे रहते हैं। पति गाता है, पत्नी दुहराती है। वे प्रेम से रहेंगे तो उनकी सन्तान भी अच्छी, गुणी और शीलवान होगी। प्रेम और पवित्रता न होगी तो सन्तान अयोग्य होगी और राष्ट्र का पतन हो जाएगा।
—कौण्टपूतली

ईसाई धर्म—

- ईसा ने कहा—क्या तुमने यह नहीं पढ़ा कि जिसने उन्हें बनाया उसे प्रारम्भ में ही स्त्री पुरुष बनाकर कहा—पति-पत्नी दोनों मिलकर एक देह होंगे। सो अब उन्हें एक शरीर बनकर रहना चाहिए। परमात्मा ने जिन्हें जोड़ा है मनुष्य उन्हें कभी अलग न करें।
—मती १९/ ३-६

मांस न खा, मदिरा न पी,

जुआ न खेल

वेद—

- शेरभक्त शेरभ पुष्पों यन्तु यातवः पुनर्हन्ति किमीविनः।
यस्य स्व तन्मत्त यो वः प्राडितु तन्मत्त स्वा मांसाग्न्यत्त।।
—अथर्व. २/ २४/ १

ओ नृशंस ! हिंसक !! हत्यारे !!! तुम्हारे अनुयायी हमसे सदैव दूर रहें। तुम्हारे अस्त्र तुम्हें ही पीड़ित करें। तुम अपने ही सम्बन्धियों, प्रोत्साहन देने वालों को खाओ, अपना ही मांस भक्षण करो।

- इत्यु पीतासो युष्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम्।
ऊर्ध्वं गन्ता जरन्ते।।
—अ. ६/ २/ १२

शराब पीने वाले मदहोश होकर आपस में लड़ते हैं और नंगों की भाँति रात भर इधर-उधर पड़े रहते हैं और शोरगुल मचाते रहते हैं।

- अक्षैर्मा वीध्यः कृषिमित्कृषस्य विन्दे रमस्वबहु धन्यमानः।
तत्र गन्तः कितव तत्र जाया तन्ने वि वष्टे
सन्नितायमर्थः।।
—अ. १०/ ३४/ १३

हैं जुआरी ! तू खेती कर ले और धन-धान्य कमाकर अपने पशुधन द्वारा स्त्री-पुत्रों के स्मृत सुख प्राप्त कर, पर जुआ न खेल।

शास्त्र—

- नमस्तयतियोगांसनचडम्भान्नचास्तयेत्।
तमित्रंसर्वभूतानांमनुःस्वायम्भुवोऽब्रवीत्।।

—महाभारत अनुशासन पर्व ११५/ १०

स्वायम्भुव मनु का कथन है कि संसार का सच्चा हितैषी वह है जो न तो मांस खाता है और न पशुओं की हिंसा करता या करवाता है।

जैन धर्म—

- मंसासनेण बह्वर्हं दग्धो दग्धेण मग्गमहिस्सई।
जुयं पि रमइ तो तपि बणिणए पाउवइ बोसे।।

—वसुनन्दि भावकाचार ८६

मांस खाने से दर्प बढ़ता है। दर्प एक प्रकार का उन्माद है, जिसके वशीभूत होकर मनुष्य, शराबखोरी तथा जुआ आदि अनेकों दुष्कर्मों में फँस जाता है।

- मग्गेण णरो अबसो कुण्णइ कम्माणि पिंदविज्जाई।
इहसोए परसोए अणुहवइ अणंतयं दुक्खं।।

—वसुनन्दि भावकाचार ७०

शराब पीकर मनुष्य घृणित कर्म करते हैं, इससे इहलोक तथा परलोक में भी दुःख भोगना पड़ता है।

- जं किञ्चित्तस्स दब्बं अजाण माणस्स हिप्पइ परेहिं।
सड्डिक्ख किञ्चि सज्जं इदो तस्मै धावई खल्लंतो।।

—वसुनन्दि भावकाचार ३७

शराबी का धन दूसरे लोग छीन ले जाते हैं। हीश में आता है तो इधर-उधर मारा-मारा धूमता है।

- ण गणेई इद्वमिन्नं ण गुरुं ण व पायरं पियरं वा।
जुल्लंभो जुज्झाई कुण्णइ अकप्पाई बहुयाई।।

—वसुनन्दि भावकाचार ६३

जुआरी व्यक्ति न तो अपने इष्ट-मित्रों की ओर देखता है, न गुरुजनों की ओर। न माता का सम्मान करता है, न पिता का। वह अनेक प्रकार से पाप में ही लगा रहता है।

पारसी धर्म—

- गौ मांस मत खाओ। दूसरे पशुओं का भी मांस मत खाओ। इनका मांस खाओगे तो तुम पाप में फँसेगे। यदि तुम मांस खाते हो तो हत्यारे भी तुम्हीं कहे जाओगे।

—पहेलवी टैक्स्टस से

४.२६ विचारसार एवं सुक्तियों (द्वितीय खण्ड)

- “शराब से आदमी की बुद्धि मारी जाती है। खून खराब हो जाता है। जिगर में अनेक रोग पैदा हो जाते हैं। आँखें कमजोर और कानों में बहरापन आने लगता है। वाक-शक्ति शिथिल पड़ जाती है और खाना अच्छा नहीं लगता। आलस्य छाया रहता है, भरपूर नींद नहीं आती है। शरीर भारी रहता है। खुद परेशान रहता है और घर वालों को भी मारता-पीटता और सताता है। बाहर वालों से झगड़ा मोल लेता है। कड़वे शब्द बोलता है। निन्दा करता है। झूठ बोलता है। परिवार वालों के साथ अभद्र व्यवहार करता है।”

—दीनार्थ मैनोकी खिरत १५/ १०-१८

यहूदी धर्म—

- “मदिरा के कारण याजक और नवी भी डगमगाते हैं।”
- मदिरा ने उन्हीं को पी लिया है, जिन्होंने यह समझा कि उन्होंने शराब पी है। भोजन वस्त्र कैसे दुर्गन्धित हो जाते हैं ? स्थान अपवित्र हो जाता है।

—यसूयाह २८/ ७-९

इस्लाम धर्म—

- शराब और जुआ दोनों ही बड़े गुनाह हैं, जो कोई तुमसे इनके बारे में पूछे उसे कहना कि इसमें फायदा नहीं नुकसान अधिक है।
- कुरान शरीफ २/ २१९
- शैतान शराब और जुए के द्वारा तुम्हें आपस में लड़ाना चाहता है, इससे तुम्हारे बीच घृणा फैल जाएगी। इसलिए इनसे सदैव दूर रहकर अल्लाह की याद किया करो।

—कुरान ५/ ९१

विविध

वेद—

- इमानि यानि पन्वेन्द्रियाणि मनःबुद्ध्यानि मे हृदि ब्रह्मणा संक्षितानि ।
- धैर्यं ससृजे चोरं तैरिषाप्तिरस्तु ।।
- अथर्व. १९ / ९ / ५
- शरीरस्थ पाँच इन्द्रियों और छठवें मन से ही लोग अनेक दुष्कर्म करते हैं, किन्तु यदि इनका नियन्त्रण रखे और शुभ कर्म करें तो इन्हीं के द्वारा सुख और शान्ति प्राप्त कर सकते हैं।

शास्त्र—

- अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
एतं सामासिकं धर्मं चतुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ।।

—मनुस्मृति १०/ ६३

अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, पवित्रता और इन्द्रियनिग्रह करना, यही सम्पूर्ण प्राणियों का श्रेष्ठ धर्म है।

- धर्मावर्धः प्रभवति धर्माव्रभवते सुखम् ।
धर्मेण स्रभते सर्वं धर्मसारमिवं जगत् ।।

—वाल्मीकि रामायण अरण्यकाण्ड ६/ ३०

धर्म से धन मिलता है। धर्म से ही सुख मिलता है। धर्म से कुछ भी असम्भव नहीं। संसार का सार धर्म ही है।

- संतोषः साधुसंगश्च विचारोऽयं शमस्तथा ।
एत एव भवाम्भोधाखुपायास्तारणे नृणाम् ।।

—योगवासिष्ठ २/ १२/ १०

संतोष, सत्संग, विचार और शम—यही चार संसार की व्यथाओं से छुटकारा दिलाने वाले उपाय हैं।

- अमृतत्वं विषं याति सदैवामृतवेदनात् ।
शत्रुर्मित्रस्त्वयायाति मित्रं संविंति वेदनात् ।।

—योगवासिष्ठ ३/ ३०/ १३

यह विष, विष कदापि नहीं, यह तो अमृत है, इस प्रकार सोचने से विष भी अमृत बन जाता है, वैसे ही जो शत्रुओं को भी सदैव मित्र भाव से देखते हैं, उनके शत्रु भी मित्र बन जाते हैं।

- प्रत्यक्षगुणवादीयःपरोक्षेचापिनिन्दकः ।
समानवःश्ववत्सोकेनष्टोकोपरावरः ।।

—महाभारत शान्तिपर्व—११४/ १२

उस मनुष्य के लोक और परलोक दोनों बिगड़ जाते हैं, जो सामने तो किसी की प्रशंसा करता है और पीठ पीछे निन्दा करता है। ऐसा मनुष्य कुते के समान होता है।

- पापस्ययदधिष्ठानंतच्छुण्वनराशिप ।
एकोलोभोमहाप्राप्तेलोभात्पापंभवर्तते ।।

—महाभारत. शान्तिपर्व १५८/ २

मनुष्य को पाप की ओर ले जाने वाला लोभ ही होता है। वह मनुष्य को ग्राह के समान खा जाता है, अतएव लोभ से बचने का प्रयत्न करना चाहिए।

- ध्यायतो विषयान् पुंसः संगतस्तैरुपजायते ।
सङ्गतस्तज्जयते क्षणः कामाक्रोषोऽभिजायते ।।

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥

—गीता २/ ६२-६३

इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करते रहने से भोगों में आसक्ति हो जाती है, इससे क्रोध और क्रोध से मोह पैदा हो जाता है। मोह से स्मृति का विनाश होता है और बुद्धि नष्ट हो जाती है। बुद्धि नाश से सर्वनाश ही समझना चाहिए।

□ द्विषतामपियेद्रेषान्बदन्तिकदाचन ।

कीर्तयन्तिगुणान्येचेतेनराःस्वर्गगमिनः ॥

—पद्म पुराण, भू. ६६/ ३४

स्वर्ग का अधिकार उन्हें मिलता है, जो अपने दुश्मनों की भी बुराई नहीं करते बल्कि गुणों का ही बखान करते रहते हैं।

□ योर्वेनसाध्यतेधर्मःश्रयिष्णुःअकीर्तितः ।

यःपरार्येपरित्यागःसोऽस्योमुक्तिलक्षणम् ॥

—पद्म पुराण सृष्टि. १६/ २४६

सुखोपभोग के लिए खर्च किए हुए धन का अस्तित्व जल्दी ही समाप्त हो जाता है, किन्तु दूसरों के हित व कल्याण के लिए लगाया गया धन सार्थक होता है उसी से मुक्ति सम्भव है।

□ सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः ।

भूतानि भगवत्यात्मन्येव भागवतोत्तमः ॥

—भागवत ११/ २/ ४५

जो सम्पूर्ण प्राणियों में उसी परमात्मा को समाया हुआ देखता है वही सच्चा ईश्वरनिष्ठ है।

□ खं वायुमग्निं सस्त्रिं महीं च ज्योतीषि तत्त्वानि
दिशो द्रुमावीन् ।

सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनमः ॥

—भागवत ११/ २/ ४९

आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, नक्षत्र, प्राणी, दिशाएँ, पेड़-पौधे, नदी-समुद्र समेत सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड परमात्मा का ही विराट् स्वरूप है। यह जानकर ईश्वर-भक्त सभी को श्रद्धाभाव से प्रणाम करता है।

□ मोह निता सब सोबनिहरा ।

देखिअ सपन अनेक प्रकार ॥

एहि जग जाभिनि जागहिं जोगी ।

परमारथी प्रपंच बियोगी ॥

जानिअ तबहिं जीव जग जागा ।

जब सब विषय विलास बिरागा ॥

होइ विवेक मोह भ्रम भागा ।

तब खुनाथ चरन चित सागा ॥

—रामचरित मानस

जैन धर्म—

□ पाणे न नाइवाएज्ज अविन्नं पि यनायए ।

साइयं न मुसं बूया एस धम्मे कुसीमओ ॥

—सूत्रकृत १/ ८/ १८

आत्म-निग्रही पुरुषों और साधुजनों का यह लक्षण है कि वे किसी को सताते-मारते नहीं, बिना दिये कोई वस्तु नहीं लेते और कभी भी असत्य का बर्ताव नहीं करते।

□ जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुप्पये जिए ।

एणं विणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ ॥

—उत्तराध्ययन

मनुष्य भीषण संग्राम में हजारों-लाखों शत्रुओं पर विजय कर ले तो भी उसे सच्चा विजेता नहीं मानते जब तक वह अपनी आत्मा को नहीं जीतता।

□ जं जं मणेण बद्धं जं जं बायाए भासियं पावं ।

जं जं कायेण कयं मिच्छा मि दुक्कइं तस्स ॥

—पंचप्रति। संथारा। अन्तिम

मैंने शरीर, मन और वाणी से जो पाप किए हों वे सब निष्फल हों। अर्थात् मैं उनका प्रायश्चित्त करूँ।

□ बाहिर संगम्याओ गिरिसरि कंदराइ आबासो ।

सयलो णाणज्जयणो निरत्थओ भावरहियाणं ॥

—कुंद-कुंद : भावपाहुड ८६

मनुष्य चाहे धन-धान्य छोड़कर गुफा या नदी तालाब के किनारे रहे पर यदि उसके भाव शुद्ध नहीं तो उसका सारा जप, तप, ज्ञान आदि बेकार है।

बौद्ध धर्म—

□ यो सहस्सं सहस्सेन संगामे मानुसे जिने ।

एकं च जेय्यमत्तानं स वे संगामजुत्तमो ॥

—सहस्सवग्गो ८/ ४

किसी युद्ध में हजारों आदमियों को जीतने की अपेक्षा अपने आपको जीत लेना अच्छा है। वही सच्चा विजेता है जो अपने आपको जीते।

□ न तेन पण्डितो होति यावता षड् भासति ।

खेमी अवेरी अमयो पण्डितो सि पवुच्चति ॥

—धम्मट्ट वग्गो १६/ ३

अधिक बोलना ही पण्डित होने का लक्षण नहीं है, जो सदैव सबके हित की बात सोचे, किसी से डरे नहीं वही सच्चा पण्डित है।

सिख धर्म—

- काहे भइया सनिआसी
अन्तरु मलि निरमलु नहि कीना, बाहरि भेख उदासी।
हिरदे कमल पटि ब्रह्मु न चीनियां, काहे भइया
सनिआसी।
काइ जपउ रे काइ तपउ रे काइ बिसोबहु पार्थी।
सख चउरासीह जिनि उपाई सो सिमरहु निरबाणी।
काइ कमण्डलु कापडिया रे अठ सठि काइ फिराही।
बबति बिसोचनु मुनु रे प्राणी कज बिनु गाहु कि पाही।

—गुरुग्रन्थ साहब-२७

आन्तरिक मलों का शोधन नहीं किया तो बाहरी वेशभूषा बनाने से क्या लाभ ? हृदय कमल में परमात्मा के दर्शन न दिये तो संन्यास भी व्यर्थ है। हृदय से उपासना न की तो जप-तप सभी बेकार है। जिसने परमात्मा को नहीं जाना वह कमण्डलु और रँगारे कपड़े पहने घूमे तो भी कोई लाभ मिलने का नहीं।

पारसी धर्म—

- अनुमर्तजे बजेनयाइ।
अनुस्तजे बजेनयाइ।
अनु-बर्स्तजे बजेनयाई।।

—आर्वाँ अरुष्टी सूर यस्त्र १८

मेरे विचार, वाणी और कर्म सभी धर्ममय हों।

यहूदी धर्म—

- जिस प्रकार दुग्ध-मंथन से घृत निकलता है, नाक मसल देने से खून निकल आता है, वैसे ही क्रोध भड़काना ही उत्पात की जड़ है।

—यहूदी नीतिवचन ३०। ३३

- सहायता करो उनकी जो निर्धन हैं, उन्हें भी वह साधन दो, जिससे वे भी अपनी गुजर कर लें।

—ता. बाबा कता ११२ अ

ईसाई धर्म—

- “तू अपनी तलवार ध्यान में रख, तेरी तलवार तुझे ही खा जायेगी।”

—मत्ती २६। ४९

सावधान ! परमात्मा से आशीर्वाद लो कि कहीं प्रलोभन में न फँसें। आत्मा तो बलवान है पर इन्द्रियों बड़ी दुर्बल है।

—मत्ती २६। ४९

- “क्यों इस बात की चिन्ता करते हो कि हम क्या खायेंगे, क्या पियेंगे, क्या पहनेंगे ? क्या भोजन और कपड़ों का महत्त्व जीवन से अधिक है। ?”
“आकाश की चिड़ियों को देखो। न वे बोती हैं, न काटती हैं और न ही जौड़कर रखती हैं तो भी स्वर्ग में रहने वाला पिता उन्हें खिलाता है। तुम्हारा मूल्य तो उनसे अधिक है।”

—मत्ती ६। २६। २६

इस्लाम धर्म—

- अल्लाहुं सिब्याहि रब्बिह् आल कीमब।

वह परमात्मा ही उपासनीय है जो सारे संसार को पालता है।

—कुरान शरीफ १२

- वह अल्लाहताला (परमेश्वर) छिपे हुए को भी जानता है, जो प्रकट है उसे भी जानता है। उसकी शान सबसे ऊँचे दर्जे की है।

—कुरान शरीफ ३८

- पृथ्वी और आकाश पड़ सभी जगह अल्लाह का राज्य है। वह जो चाहता है पैदा करता है। स्वेच्छा से किसी को बेटा, किसी को बेटियाँ देता है।

—कुरान शरीफ २.४६



कुछ महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक सूक्तियाँ

- यहाँ तक धर्म, नीति, सदाचार, कर्तव्य परायणता, उदारता, क्षमा, दया आदि के सम्बन्ध में विभिन्न मत-मतान्तरों की जिन मान्यताओं, सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है, उन सबसे यही प्रकट होता है कि संसार में प्रचलित प्रमुख धर्मों (मजहबों) में कोई वास्तविक मतभेद या विरोध नहीं है। मानव-जीवन को श्रेष्ठ, सुसंस्कृत तथा धर्ममय बनाने का सभी समर्थन करते हैं। कोई मजहब ऐसा नहीं जो पर-पीड़ा, अपहरण, चोरी, डाका, व्यभिचार आदि को प्रशंसनीय बतलाता हो। सभी धर्मों ने संसार की एक नियामकसत्ता का अस्तित्व स्वीकार किया है और अपने अनुयायियों को आदेश दिया है कि उस सर्वशक्तिमान सत्ता के निर्देश को मानने और तदनुसार आचरण करने से ही उनका मानव जन्म सफल हो सकता है। भारतीय मनीषी इस विषय में बहुत गहराई तक गये हैं और यहाँ के वेद, उपनिषद्, शास्त्र आदि परमात्म-तत्त्व की महिमा तथा मनुष्यों को उसके निर्देशों का पालन करने की प्रेरणा से भरे हुए हैं। इन शास्त्र-वाक्यों से हम मानव-धर्म और आध्यात्मिक जीवन की श्रेष्ठ से श्रेष्ठ शिक्षा प्राप्त करके अपने जीवन को सफल बना सकते हैं। नीचे कुछ ऐसी ही महत्त्वपूर्ण सूक्तियों का संकलन दिया जा रहा है—

- इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा इषि यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्तो अंग वेदयदि वा न वेद ।।

—ऋ. १०/१२६/७

हे मनुष्यो ! इस संसार में जो कुछ दिखाई दे रहा है, उसे धारण करने वाले तथा विनाश करने वाले और जिसने इसका निर्माण किया है और नियामक है और अन्त में यह संसार जिसमें लय हो जाता है, उस परमात्मा को अवश्य जानो ।

- पञ्चस्वन्तः पुरुषऽ आ विवेश तान्यन्तः पुरुषे अर्पितानि ।।

—यजु. २३/६२

वह परमात्मा ही पंचभूतों में व्याप्त है। सम्पूर्ण प्राणियों में उसी की सत्ता समायी हुई है।

- तदेवाग्निस्तदादित्यस्तदायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ।।

—यजु. ३२/१

अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, जल और प्रजापति के रूप में वह परमात्मा ही सर्वत्र व्याप्त है।

- यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति ।
तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किंचन ।।

—अथर्व. १०/८/१६

जो सूर्य का भी धारणकर्ता है, जो सृष्टि के अन्त में प्रलय कर देता है, उसका कोई पार नहीं पा सकता। मैं उसी परमात्मा को सर्वश्रेष्ठ मानता हूँ।

- यो भूतं च भवं च सर्वं यश्चापितिष्ठति ।
स्वर्ग्यस्य च केवलं तस्यै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।।

—अथर्व. १०/८/१६

भूत, भविष्यत वर्तमान में जो सदैव एक-सा बना रहता है, जो संसार का नियामक है, उस सुखस्वरूप परमात्मा को हम प्रणाम करते हैं।

- यः श्रमात् तपसो जातो लोकान्सर्वान्समानशे ।
सोमं यश्चक्रे केवलं तस्यै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।।

—अथर्व. १०/७/३६

जिसने स्वेच्छा से इस जगत् की उत्पत्ति की और फिर उसी में समा गया, जिसका स्वरूप आनन्दमय है, उस सुखस्वरूप परमात्मा को प्रणाम करता हूँ।

- यस्य वातः प्राणापानी चक्षुरीरितोऽभवन् ।
दितो यश्चक्रे ब्रह्मानीतास्तस्यै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।।

—अथर्व. १०/७/३४

जो श्वास-निश्वास क्रिया के द्वारा मनुष्यों के शरीर में प्राण और अपान प्राणों को धारण करता है, जो प्रकाश किरणों के माध्यम से सृष्टि-संचालन की क्रिया देखता रहता है, जिसकी बनायी हुई विशाल दिशाएँ व्यवहार में आती हैं, उस सुखद परमात्मा को हम प्रणाम करते हैं।

- यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्गवः ।
अग्निं यश्चक्रे आस्यं १ तस्यै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।।

—अथर्व. १०/७/३३

सूर्य और चन्द्रमा जिसके नेत्रवत् हैं, अग्नि जिसका मुख है, हम उस परमात्मा को प्रणाम करते हैं।

५.२ विचारसार एवं सूक्तियों (द्वितीय खण्ड)

- दुहे सायं दुहे प्रातुहे मध्यन्दिनं परि ।
दोहा ये अस्य संयन्ति तान् विद्वमानुपदस्वतः ।।

—अथर्व. ४/ ११/ १२

परमात्मा ही एक ऐसा है जो सम्पूर्ण कालों में सभी पदार्थों का स्वामी रहता है। उसके भण्डार में किसी बात की कमी नहीं है। इससे हमें परमात्मा से ही सुख की याचना करनी चाहिए।

- नैनं प्राप्नोति शपथो न कृत्या नाभिज्ञोचनम् ।
नैनं विष्कम्भमश्नुते यस्त्वा विषयत्याज्जन ।।

—अथर्व. ४/ ६/ ५

पवित्र अन्तःकरण से की हुई ईश्वर की उपासना से आत्मबल बढ़ता है और सांसारिक सुखों की भी उपलब्धि होती है।

- आदंगा कुविदंगा श्रुतं या भेषजानि ते ।
तेषामसि त्वमुत्तममनास्त्रावमरोगणम् ।।

—अथर्व. २/ ३/ २

सम्पूर्ण रोग-शोक और आपत्तियों का निवारण करने वाला एक परमात्मा ही है। अतः हम उससे अलग कभी न हों।

- यन्मे छिद्रं यन्नुषो हृदयस्य मनसो
वातितृष्णं बृहस्पतिर्मे तदधातु ।
शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ।।

—यजु. ३६/ २

जो ईश्वर की आज्ञा का पालन कर अहिंसा धर्म स्वीकार करता है, उसकी इन्द्रियों वशवर्ती हो जाती हैं। इसलिए हम सदैव ईश्वर उपासना करते हैं।

- अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।
गोभाजऽइत्किंसासथ यत्सनवथ पूरुषम् ।।

—यजु. ३५/ ४

यह संसार क्षणभंगुर नाशवान है, यहाँ किसी पदार्थ में सच्चा सुख नहीं है। आत्मा-परमात्मा के संयोग से उत्पन्न सुख ही सच्चा सुख है। अतएव हमें सदा परमात्म-देव की उपासना करनी चाहिए।

- न त्वाबौ२ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो
न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो
गव्यन्तस्त्वा हवामहे ।

—यजु. २७/ ३६

परमात्मा के समान शुद्ध और पवित्र इस संसार में और कोई नहीं। इसलिए हमारा उपास्य

देवता वही हो। उसी से पार्थिव और अपार्थिव सभी प्रकार के सुख प्राप्त करना सम्भव है।

- देवस्य चेततो महीं प्र सवितुर्हवामहे ।
सुमति २३ सत्यराघसम् ।।

—यजु. २२/ ११

जो प्रकाशवान परमात्मा समस्त सृष्टि का आदि कारण है, हे मनुष्यो ! तुम उसकी आराधना से विवेक-बुद्धि प्राप्त करो। जड़-पदार्थों की ओर आकर्षित होने से तुम्हें दुःख मिलेगा इसलिए चेतन स्वरूप ईश्वर ही उपासनीय है।

- इमे हि ते ब्रह्मकृतः सु ते सत्ता मधी न भव आसते ।
इन्मे कामं जरितारो बसूयवो रथे न पादमा दधुः ।।

—साम. १६७६

जिस प्रकार मधुमक्खी अपना सारा ध्यान छते में ही लगाये रहती है, उसी प्रकार परमात्मा को पाने के लिए सम्पूर्ण विषय-विकारों से अपने चित्त को हटाकर परमात्मा के ध्यान में लगाना पड़ता है।

- यः स्नीहितीषु पूर्वः संजग्मानासु कृष्टिषु ।
अरक्षद्वाशुभे गयम् ।।

—साम. १३८०

यद्यपि इस संसार में कोई जीवित बना नहीं रहता, समय पर सभी मर जाते हैं किन्तु ईश्वर-उपासना और यज्ञ-होम आदि कर्मों से जो प्राण मिलता है, उससे साधक दीर्घजीवी होते हैं।

- वयं ते अस्य राघसो वसोर्वसो पुरुस्पृहः ।
नि नेदिष्यताम इषः स्याम सुन्ने ते अग्निगो ।।

—साम. १२३६

हे परमात्मा ! जब तक जीवें तब तक आपकी कृपा से उत्तम धन और धान्य के उपभोग से सुख प्राप्त करें और अन्त में हमें मोक्ष मिले।

- पवमानस्य विश्वविद्य ते सर्गा असुक्षत ।
सूर्यस्येव न रश्मयः ।।

—साम. ६५८

जिस प्रकार सूर्य की किरणों के माध्यम से आँखों को दिखाई देता है, उसी प्रकार परमात्मा से ज्ञान प्रादुर्भूत कर लोगों में सदबुद्धि का प्रकाश पैदा करता है, इससे लोग सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त होते हैं।

- इन्द्रमिहेवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
इन्द्र २३ सभीके बनिगो हवामहे इन्द्रं धनस्य सप्तये ।।

—साम. २४६

प्रत्येक शुभकर्म के प्रारम्भ में परमात्मा का ध्यान करना, उससे ही सहायता की याचना

करनी चाहिए। व्यापार आदि धन-लाभ के अवसरों में भी ऐसा ही करें।

- आ वो राजानामध्वरस्य रुद्र होतारं
सत्ययज रोदस्योः ।
अग्निं पुरा तनयिलोरोचिताद्विरप्यरूपमवसे
कृणुध्वम् ।।

—साम. ६६

मृत्यु कब आ जाएगी, इसका कुछ भी पता नहीं अतः जितना जल्दी सम्भव हो परमात्मा की शरण ले लो अन्यथा बाद में पछताना ही पड़ेगा।

- अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्नताम्यादधुः ।
उपो धु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो निरः ।।
—साम. १५१५

जो मनुष्य अपने सम्पूर्ण शुभकर्म परमात्मा को समर्पित कर देता है और निष्काम भाव से सांसारिक कर्तव्यों का पालन करता है, उसी को परमात्मा की अनुमति प्राप्त होती है और उन्हीं की वृद्धि होती है इसलिए हमारी स्तुतियाँ भी उन्हीं परमात्मा को प्राप्त हों।

- न यस्येन्द्रो वरुणो न मित्रो
व्रतमर्यमा न भिनन्ति रुद्रः ।
नारातयस्तभिर्दं स्वस्ति हुवे देवं
सवितारं नमोभिः ।। —ऋ. २/३८/६
इस संसार में जो कुछ सर्वश्रेष्ठ और सर्वशक्तिमान है, वह परमात्मा ही है। इसलिए वही सब प्रकार से उपासना के योग्य है। उसकी तुलना संसार में कोई नहीं कर सकता अतएव हम सदैव उसी की प्रार्थना करें।

- स पर्यगाधुक्रमकायमत्रणमस्नाविर शुद्धमृपापविद्धम् ।
कविर्ननीषी परिभुः स्वयम्भूर्याधातव्यतोऽर्यान्व-
दधाच्छास्वतीध्वः समाध्वः ।।
—ईश उपनिषद्-८

वह परमात्मा आकाश की तरह सर्वत्र व्याप्त है, शुद्ध है। उसका कोई शरीर नहीं है, वह अक्षत और स्नायुरहित है। निर्मल और पाप से मुक्त है। वह सबको देखने वाला तथा सबकी इच्छाओं के जानने वाला है। सबसे अच्छा भी वही है, वही स्वयम्भू है। अपनी उत्पत्ति का कारण वह आप ही है। उसी ने संसार में यथायोग्य कर्तव्यों और पदार्थों का विभाजन किया है।

- विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि परा सुव ।
युद्धभद्रं तन्न ऽ आ सुव ।।

—यजु. १/३०/३

हे प्रकाश-स्वरूप परमेश्वर ! आप लोगों को सद्बुद्धि प्रदान करते हैं। आपकी कृपा से हमारी बुराइयों दूर हों और सुख प्राप्ति के साधन मिलें।

धर्मशास्त्रों की शिक्षाप्रद एवं प्रेरणाप्रद सूक्तियाँ

- भवानीशंकरौ बन्धे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां बिना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम् ।।
मैं श्रद्धा और विश्वास रूपी भवानी और श्री शंकरजी को प्रणाम करता हूँ, जिनके बिना सिद्ध पुरुष अपने में स्थित ईश्वर को नहीं देख पाते।

- मन-वाणी-शरीर का जो सुन्दर व्यवहार है, वही धर्म है। दया (निःस्वार्थ भाव से दूसरे के दुःख दूर करने का यत्न करना), दूसरे का अनिष्ट चिन्तन न करना, किसी के द्रव्य तथा स्त्री पर मन न चलाना गुरु व शास्त्रवचनों पर श्रद्धा रखना, ये मन के सुन्दर चरित्र हैं।

- सत्यप्रिय और हितकारी वचन बोलना, धर्मग्रन्थों का स्वाध्याय करना यह वाणी का सुन्दर चरित्र है।

- दान देना, सत की रक्षा करना और ब्रह्मचर्य से रहना यह शरीर का सुन्दर व्यवहार है।

- यतोऽध्वयुदयनिश्रेयस सिद्धिः स धर्मः ।। —वैशेषिक
जिस व्यवहार से इस लोक में आनन्द भोगते हुए परलोक में कल्याण प्राप्त हो वही धर्म है।

- आरम्भोन्याययुक्तोयःसहिधर्मइतिस्मृतः ।
अनाचारस्त्वधर्मैतिपतच्छिष्टानुशासनम् ।।

—महाभारत वनपर्व २०७/७७

न्याययुक्त कार्य धर्म और अन्याय युक्त कार्य अधर्म है, यही श्रेष्ठ पुरुषों का मत है।

- येनोपायेन मर्त्यानां लोक यात्रा प्रसिध्यति ।
तदेव कार्य ब्रह्मै हिदं धर्मः सनातनः ।।

—शब्दार्थ विन्तामणि

जिस उपाय से मनुष्य का जीवन-निर्वाह भले प्रकार हो जाए, वही करना वह सनातन धर्म है।

- धर्मकार्ययतन्शक्त्यानोचेत्यानोतिमानवः ।
प्राप्तोभवतितत्पुण्यमत्रमेनास्तिसंशयः ।।

—महाभारत उ. ६३/६

श्री कृष्ण चन्द्र विदुर जी से कहते हैं कि—
धर्म के कार्य को सामर्थ्य भर करते हुए यदि
सफल न हो सके तो भी उसके पुण्यफल को
प्राप्त हो जाता है।

- ब्राह्मे मुहुर्ते बुध्येत धर्मायै चानुचिन्तयेत् ।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेव च ।।

—मनु. ४/६२

- ब्राह्ममुहूर्त [१॥ घण्टा रात रहे] में उठे, धर्म
और अर्थ जिस प्रकार प्राप्त हो वह बिचारे।
धर्म और अर्थ के उपार्जन में शरीर के क्लेश
को भी विचारना। यदि धर्म अर्थ अल्प हुआ
और शरीर को क्लेश अधिक हुआ तो ऐसे
धर्म और अर्थ को न करे, उस समय ईश्वर
का चिन्तन करे कारण कि वह समय बुद्धि के
विकास का है।

- वाङ्मनोजलशौचानि सदा येषां द्विजन्मनाम् ।
त्रिभिः शौचेरुपेतो यः स स्वर्ग्यो नात्र संशयः ।।

—वृहत् पराशर स्मृति ६/२१६

वाणी का शौच, मन का शौच और जल का
शौच से जो युक्त है, वह स्वर्ग का भागी है
इसमें संशय नहीं।

- कठोरता, मिथ्या, चुगलखोरी, व्यर्थ की बक-बक
इन चार विषयों से बची वाणी शुद्ध है।
□ ईर्ष्या, द्वेष, छल, कपट से रहित मन शुद्ध है।
स्नान करने से शरीर शुद्ध है।
□ सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम् ।
योऽयं शुचिर्हि स शुचिर्न मृदारिशुचिः शुचिः ।।

—मनु. ५/१०६

सारी पवित्रताओं में धन सम्बन्धी पवित्रता
(ईमानदारी) बड़ी है। जो धन के द्वारा पवित्र
है वह पवित्र है। मिट्टी, जल से पवित्रता
वास्तविक पवित्रता नहीं। अर्थात् ईमानदारी का
पैसा जिसके पास है वास्तव में वही पवित्र है।

- सम्पन्नतरमेवानन्दरिद्राभुञ्जतेसदा ।
शुत्स्वादुतांजनयतिस्त्रिधाद्येषुदुर्लभा ।।

—महाभारत ३४/५०

अन्न का असली स्वाद दरिद्री (मेहनती)
पुरुषों को मिला करता है, कारण कि क्षुधा
अन्न में स्वाद पैदा करती अर्थात् जोर से

भूख लगने पर खाने में स्वाद आता है, वह
स्वाद धनवान को दुर्लभ है।

- कृच्छ्रेष्वपि न तत्कुर्यात्तापूनां यदसम्मतम् ।
जीर्णाशी च हिताशी च मिताशी च तथा भवेत् ।।

—विष्णु धर्मोत्तर पुराण ३/२३३/२६६

सज्जन पुरुषों के विरुद्ध व्यवहार विपत्तिकाल
में भी न करे और हमेशा जीर्णाशी (भूख
लगने पर खाने वाला) मिताशी (अन्दाज का
खाने वाला) और हिताशी (जो पदार्थ
लाभदायक हों उसको खाने वाला) होवे। इस
व्यवहार से इस लोक और परलोक में सुख
प्राप्त होता है।

- न हि मांसं तृणात्काष्ठानुपसादपि जायते ।
हते जन्तौ भवेन्मांसं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ।।

—स्कन्द पुराण ६/२६/२३२

यह मांस तृण, काष्ठ और पत्थर से उत्पन्न
नहीं होता, जीव के मरने पर प्राप्त होता है
इसलिए इसको त्याग दें।

- सुरांभस्त्यान्मधुमांसमासवंकृत्सरोवनम् ।
धूर्तैर्भवति तस्येतन्नैतद्देवेषुकल्पितम् ।।

—महाभारत शान्तिपर्व २६५/६

शराब, मछली, पशु का मांस, द्विजातियों में
जीव का बलिदान इनको धूर्तों ने यज्ञ में प्रवृत्त
किया है, वेदों में कहीं नहीं कहा।

- नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते बन्धितम् ।
न च प्राणिबधः स्वर्ग्यस्तस्यान्मांसं विवर्जयेत् ।।

—मनुस्मृति ५/४८

प्राणी की हिंसा किये बिना मांस नहीं मिलता
और प्राणी का वध स्वर्ग देने वाला नहीं अतः
मांस न खाना चाहिए।

- देवमार्तस्यन्नयनस्थितश्चान्तस्यचासनम् ।
तृषितस्यचपानीयंदुषितस्यचभोजनम् ।।
चक्षुर्दधान्मनोवधाद्वाचंदधात्सुभाषिताम् ।
उत्थापचासनंदधादेवधर्मःसनातनः ।।

—महाभारत वनपर्व २

रोगपीड़ित को शयन के लिए स्थान, थके को
आसन, प्यासे को पानी, भूखे को भोजन देना
चाहिए। आये हुए को प्रेमदृष्टि से देखें, मन से
चाहे, मीठी वाणी बोलें, उठकर के आसन दे
यह सनातन धर्म है।

- दानमेकं कलौयुगे मनुस्मृति १/ ८६
कलियुग में दान ही मुख्य धर्म है।
- न्यायार्जितं धनं चापि विधिबद्धयत्नवीर्यते।
अर्थिभ्यः श्रद्धयायुक्तं दानं मेतदुद्बलितम्।।
ईमानदारी से पैदा किया हुआ पैसा विधिपूर्वक अर्थी चाहने वाले को श्रद्धा के साथ देना—दान है।
- विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गृहमगते।
क्रीडत्येवधयः सर्वायास्यायः फल्पा गतिम्।।

—व्यास ४/ ५०

विद्या-विनय से युक्त ब्राह्मण को घर आते देखकर घर का अन्न क्रीड़ा करता है। प्रसन्न होता है कि हमारी इस सुपुत्र के पास पहुँचने पर परमगति होगी।

- यद्यदिष्टतमं लोके यज्वापिदयितं नृहे।
तत्तद्गुणवते देवं तदेवावयमिच्छन्।।
—वसुस्मृति ३/ ३२
संसार में जो जो पदार्थ हमें रुचिकर हों वे पदार्थ गुणवान को देना चाहिए।
- न्यायेनार्जनमर्वाणां वर्द्धनं चाभिरक्षणम्।
सत्याग्रप्रतिपत्तिश्च सर्वशास्त्रेषु पठ्यते।।

—मत्स्य पुराण २७४/ १

न्यायानुसार द्रव्य का इकट्ठा करना, इकट्ठे किए हुए को बढ़ाना, फिर बढ़े हुए को सुपुत्र को देना ऐसा सब शास्त्रों का आदेश है।

न्यायार्जितस्य वित्तस्य दानात्सिद्धिस्तमश्नुते।

—शिवपुराण १३/ ६५

न्यायानुसार कमाये हुए वित्त के दान करने से सिद्धि प्राप्त होती है।

- सत्कर्मनिरतायापि देयं यत्नेन नारद।
—नारद पुराण १२/ १८
सदाचार के लिए यत्न से देना चाहिए।
- मातापित्रोर्गुरो मित्रे विनीते चोपकारिणि।
दीनानां विनिश्चितेभ्यो वस्तु सफलं भवेत्।।

—वसुस्मृति ३/ १६

माता, पिता, गुरु, मित्र, विनीत, उपकार करने वाला दीन, अनाथ और सदाचारी विद्वान इनको दिया हुआ दान सफल है।

- ये शान्तदान्ताः श्रुतिपूर्णकर्णा जितेन्द्रियाः प्राणिषा
जिवृत्ताः।
प्रतिग्रहे संकुचिताग्रदस्तास्ते ब्राह्मणस्मास्तरक्षितुं
समर्थाः।।

—वशिष्ठ स्मृति ६/ २२

सर्वत्र विनयी, वेदपाठी, जितेन्द्रिय अहिंसक, भिखमंगेपन से बचे हुए ऐसे ब्राह्मण संसार

समुद्र से पार करने को समर्थ हैं, ऐसों की धन आदि से सेवा करनी चाहिए।

- इह चत्वारि दानानि प्रोक्तानि परमार्थिभिः।
विचार्य नानाशास्त्राणि शर्मणेऽत्र परत्र च
भीतेभ्यश्चाभयं देयं व्याधितेभ्यस्तथोपधम्।।
देया विद्यार्थिनां विद्या देयमन्नं क्षुधातुरे।।

—शिव पुराण छद्म संहिता ख. ५५/ १२२

इस लोक में बड़े-बड़े ऋषियों ने अनेक शास्त्रों को विचार कर चार दान निश्चित किए जो इस लोक व परलोक में कल्याणदायक हैं। वे चार दान ये हैं कि विपत्तिग्रस्त की विपत्ति छुड़ाना, रोगी को चिकित्सा का दान, विद्यार्थी को विद्यादान, भूखे को अन्न दान देना चाहिए।

- पाषण्डिनो विकर्मस्थान् वैश्रास्रव्रतिकाञ्छशठान्।
हैतुकान्बकवृत्तींश्च बाह्याभेदापि नार्थयेत्।।

—मनुस्मृति ४/ ३०

पाषण्डी—शास्त्र विरुद्ध वेषधारी (जैसे मनुष्य की खोपड़ी), विकर्म स्थान—निषिद्ध कर्म करने वाले, हैतुकान्—भ्रम पैदा करने वाले, वैदालवृत्ति वाले, (जैसे बिल्ली चूहे के घात में ताकती रहती है) और बकवृत्ति वाले (जैसे बगुला मछली पकड़ने को नीचे को दृष्टि कर चुपचाप खड़ा रहता है) का वाणी मात्र से भी आदर न करे।

- शक्तः परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि।
मध्यापातो विधास्वादः स धर्मप्रतिरूपकः।।

—मनुस्मृति ११/ ६

जो धनी पुरुष अपने पुरुषों (माता, पिता, भाई आदि जन) को दुःखी देखते हुए औरों को द्रव्य देता है। (नष्ट के लिए) वह शहद पाते हुए अन्त में विष खाने के फल को प्राप्त होता है।

- भृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौषधेद्विकम्।
तत्पुत्रसुखोदकं जीवतश्च मृतस्य च।।
पुत्री-स्त्री इत्यादि को क्लेश दान देकर जो परलोक के लिए दानादि करते हैं, वह उभय लोक में दुःख देने वाला है।

- योऽसाधुभ्योऽर्चमावाय साधुभ्यः संप्रयच्छति।
त कृत्वा प्लवमात्मानं संतारायति तावुभी।।

जो पुरुष नीचे कर्म करने वाले से द्रव्य लेकर सज्जन पुरुषों को देता है, वह अपने आत्मा को नौका बनाकर उन दोनों को (जिससे लिया और जिसको दिया) दुःख से पार कर देता है।

- अव्रताश्वानधीयाना यत्र भैक्षचरादिजाः ।
तं ग्रामं दंडयेद्राजा चौरभक्तप्रदं बुधे ॥
—अत्रि संहिता २२
जिस ग्राम में अव्रती (ब्राह्मणोचित कर्मों से रहित) ब्राह्मणों का जीवन-निर्वाह भिक्षा द्वारा होता है, उस ग्रामवासियों को राजा चोर के समान दण्ड दे ।
- विद्वद्भोग्यमविद्वान्सो येषु राष्ट्रेषु भुंजते ।
तेष्वनावृष्टिमिच्छन्ति महद्वाजयते भयम् ॥
—योग वासिष्ठ ३/ २३
जिस देश में विद्वानों के भोगने योग्य पदार्थों को मूर्ख भोगते हैं, वहाँ अनावृष्टि होती है, बड़ी विपत्ति पड़ती है ।
- नष्टश्रीषे व्रतघ्नये विप्रे देवविवर्जिते ।
वीर्यमानं रुदत्यन्मं भयावृषे दुष्कृतं कृतम् ॥
—वेद व्यास ४/ ५१
भ्रष्टाचारी, शास्त्र शून्य, विप्र को देने पर अन्न रोता है कि मेरा बड़ा दुरुपयोग हुआ ।
- नास्ति दानात् परं मित्रमिह लोके परत्र च ।
अपात्रे ह्यपि यद्वत्तं दहत्यासप्तमं कुतम् ॥
—अत्रि संहिता
इस लोक और परलोक में दान के बराबर कोई मित्र नहीं परन्तु वह दान यदि कुपात्र को दिया जाता है तो सात पीढ़ी को जलाता है ।
- ये केचित्पापनिरता निम्बिताः सुजनैः सवा ।
न तेभ्यः प्रतिगृह्णीयाच्च च दद्याद्द्विजोत्तमम् ॥
—नारद पुराण १२/ १८
जो पापी हैं, श्रेष्ठजनों से निन्दित हैं, उनसे न तो कुछ ले और न कुछ उनका दें अर्थात् पापियों से असहयोग रखे ।
- नात्मनमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः ।
आमृत्योः क्षियमन्विच्छेन्नैनं मन्येत दुर्लभाम् ॥
—मनुस्मृति ४/ १३७
प्रयत्न करने पर यदि धन न मिले तो अपने को भग्यहीन न समझे । मरणपर्यन्त यत्न करता रहे । इस लक्ष्मी को दुर्लभ न समझे ।
- अक्षरपैतव कर्मणि श्रान्तः श्रान्तः पुनः पुनः ।
कर्माप्यारभयामं हि पुरुषं श्रीनिम्बिते ॥
—मनुस्मृति अ. ६
कर्म करते हुए थका हुआ पुरुष बार-बार कर्म करे, कर्म के आरम्भ करने वाले को लक्ष्मी प्राप्त हो जाती है ।

- उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीर्देवेन देयमिति
कापुरुषा वदन्ति ।
देवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या यत्न कृते यदि
न सिद्ध्यति कोऽत्रदोषः ।
—वाणक्यनीति
सिंह के समान उद्योगी पुरुष को लक्ष्मी प्राप्त हो जाती है “जो कुछ होता है प्रारब्धानुसार होता है” इस प्रकार कायर पुरुष कहा करते हैं । प्रारब्ध को छोड़कर सामर्थ्यानुसार पुरुषार्थ करे । यत्न करने पर यदि कार्यसिद्धि न हो तो कोई दोष नहीं ।
- उत्साहवन्तो हि नराय लोके लीवन्ति कर्मवन्ति दुष्करेषु ।
हिम्मत वाले पुरुष कठिन कार्य करने पर नहीं घबड़ाते ।
- नक्षत्रमिति पृच्छन्तं वासमर्थोतिवर्तते ।
अर्थो ह्यर्थस्य नक्षत्रं किं करिष्यन्ति तारकाः ॥
नक्षत्र (मुहूर्त) की अधिक पूछताछ करने वाले का अर्थ (प्रयोजन-कार्य) नष्ट हो जाता है, अर्थ ही अर्थ का नक्षत्र है ये तारे क्या करेंगे ?
- हीनाः पुरुषकारेण जनयन्ति गृहस्थितिम् ।
सत्त्वोद्यम समर्थानां नास्त्यं व्यवसायिनाम् ॥
अर्थात् पुरुषार्थ से हीन पुरुष गृहदशा दिखाया करता है । सामर्थ्यवान उद्योगी पुरुषों को कोई भी कार्य असाध्य नहीं ।
- साहसे लक्ष्मीर्भवति —वाणक्य सूत्र २/ ५०
उद्योगी पुरुष के यहाँ लक्ष्मी का निवास रहता है ।
- धिगुज्जीवितं चोद्यमवर्धितस्य ।
—स्कंद पुराण ४/ १/ ६५
उद्यमहीन का जीवन धिक्कार है ।
- जीवन्मृतः कस्तु निरुद्यमो यः । —प्रश्नोत्तर मणियात्मा
जो निरुद्यमी है वह जीता हुआ ही मरे में शुमार है ।
- न तवस्ति जगत्कोशे शुभकर्मानुपातिना ।
यत्कील्लेणेन शुभेन नत्पासायते जनैः ॥
संसार रूपी कोश में ऐसा कोई रत्न नहीं जो शुद्ध पुरुषार्थ से किए हुए शुभकर्म द्वारा न प्राप्त हो सके ।
- कः केन हन्यते जन्तुर्जन्तुः कः केन रक्ष्यते ।
हन्ति रक्षति धैर्यात्पा ह्यसत्तायु समाचरन् ॥
—विष्णु पुराण १८/ १३
कौन किसको मारता है ? कौन किसकी रक्षा करता है ? यह जीव ही बुरा-भला आचरण

करता हुआ अपने को मारता है, रक्षा करता है।

- शुभकृत्युभमानोति पापकृत्यापमश्नु ते।

विभीषणः सुखं प्राप्तस्त्वं प्राप्तः पापभीदृशम् ॥
शुभकर्म करने वाला शुभ (सुख) को प्राप्त करता है पापकर्म करने वाला पाप (दुःख) को प्राप्त होता है। देखो विभीषण को सुख प्राप्त हुआ और तुमको (रावण) ऐसा दुःख (कैंकरीली जमीन पर पड़े हो) प्राप्त हुआ है।

- सुख-दुःखदो न चान्योऽस्ति यतः स्वकृतं भुक् पुमान्

—भागवत् १०/५४/३८

सुख-दुःख देने वाला और कोई नहीं मनुष्य अपने किए हुए कर्मों के फल भोगता है।

- उद्यमी नीतिकुशलतो धर्मयुक्तः प्रियंवदः।

गुरुपूजारतो यत्र तस्मिन्नेव बसाम्यहम् ॥

—कार्तिक माहात्म्य

दरिद्रता देवी कहती है कि जिस घर में परिश्रमी, नीतिनिपुण, धर्मात्मा, प्रिय वचनवादी और बड़ों की सेवा करने वालों का निवास है उस घर में मैं नहीं रहती।

- राज्ञी दिवा गृहे यस्मिन् दम्पत्योर्कलहो भवेत्।

निराशा यान्यतिथयस्तस्मिन् स्थानेरतिर्मय ॥
जिस घर में रात-दिन स्त्री-पुरुष में कलह रहती है, आये हुए महानुभावों का सत्कार नहीं होता उस स्थान में मेरा (दरिद्रता का) निवास रहता है।

—कार्तिक माहात्म्य

- बसामिनित्यं सुभगे प्रगल्भे दक्षे नरे कर्मणि वर्तमाने।

अक्रोधने देवपरे कृतज्ञे जितेन्द्रिये नित्यमुदीर्णसत्वे ॥

—महाभारत अनुशासन पर्व ११/६

लक्ष्मी देवी का कहना है कि जो पुरुष बोलने में चतुर, कर्तव्य कर्म में लगे हुए, क्रोधरहित, श्रेष्ठों के उपासक, उपकार के मानने वाले, जितेन्द्रिय और पराक्रमी हैं, उनके यहाँ मेरा निवास रहता है।

- पित्रोपातां श्रियं भुङ्क्ते पित्रा कृच्छ्रात्समुद्भूतः।

विज्ञायते च यः पित्रा मानवः सोऽस्तु नो कुलं ॥

—मार्कण्डेय पुराण १२५/२६

पिता के पैदा किए द्रव्य को भोगने वाला, पिता के द्वारा विपत्ति से छूटने वाला (ऐसा काम कर बैठता है कि जो पिता को निबटारा करना पड़ता है) पिता के नाम से जिसका

परिचय दिया जाता है ऐसा पुरुष हमारे कुल में पैदा न हो।

- स्वयमार्जितवित्तानां ख्यातिं स्वयमुपेयुषाम्।

स्वयं निस्तीर्ण कृच्छ्राणां या गतिः सास्तुमे गतिः ॥
स्वयं वित्तोपार्जित करने वाले, स्वयं नाम पैदा करने वाले, स्वयं विपत्ति से छूटने वाले पुरुषों की जो सद्गति होती है, हे प्रभु ! वह मेरी गति हो।

- को वीरस्य मनस्विनः स्वविषयः को वा विदेशस्तथा।

यं देशं श्रयते तमेव कुरुते बाहुप्रतापार्जितम् ॥

यद्बद्धा नखलांगलप्रहरणः सिंहो वनं गच्छते।

तस्मिन्नेव हतद्विप्रेच्छधिरैस्तुष्णां छिनत्पात्मनः ॥

—सुभाषितरत्न भांडागार

वीर और धीर पुरुष को स्वदेश और विदेश कुछ नहीं, जिस जगह पहुँच जाते हैं, वही अपने पराक्रम से, सब कुछ कर दिखाते हैं। दाँत, नख, पुच्छ से काम लेने वाला सिंह जिस वन में पहुँच जाता है उसी में मारे हुए हाथी के खून से अपनी प्यास बुझा लेता है।

- न दैवप्रमाणानां कार्यसिद्धिः। —वाणक्यसूत्र २/२६
दैव (प्रारब्ध) के भरोसे रहने वालों की कार्य-सिद्धि नहीं होती।

- निरुत्साहो दैवं श्रयति —वाणक्य सूत्र
निरुद्यमी मनुष्य दैव को दोष देता है।

- अकृत्यामानुषंकर्मयोदैवमनुवर्तते।

वृथाश्राम्यतिसम्प्राप्यपतिवत्सीबभिवान्गना ॥

—महाभारत अनुशा. ६/२०

पुरुषार्थ न करके जो दैव के भरोसे पर रहता है वह अन्त में पछताता है। जैसे नपुंसक पति को प्राप्त कर स्त्री।

- ये समुद्योगमुत्सृज्य स्थिता दैवपरायणा।

ते धर्ममर्थं कार्यं च नाश्रयन्त्यात्मविद्विधः ॥

—योगवासिष्ठ २/७/३

जो उद्योग को छोड़कर दैव का भरोसा करते हैं, वे अपने ही दुश्मन हैं और धर्म, अर्थ, काम सबको नष्ट कर देते हैं।

- गुरुश्वेदुद्धरत्यज्ञमात्मीयात्पौरुषादृते।

उष्ट्रं दान्तं बलीवर्दं तत्कस्यानोद्धरत्यसी ॥

—योगवासिष्ठ ५/४३/१६

यदि गुरु किसी व्यक्ति का उसके अपने पुरुषार्थ बिना ही उद्धार कर सकते हैं तो

वे ऊँट, हाथी बैल का उद्धार क्यों नहीं कर देते ?

□ धर्माधिकारमोक्षणामारोग्यं युक्तमुत्तमम् ।।

आरोग्यता ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की उत्तम जड़ है।

□ वृत्त्युपादान् निषेवेत येत्युष्मविरोधिनः ।

शुष्ममध्ययनं चैव सुखमेवं समस्तुते ।।

धर्म के अविरोधी जीविका के जो उपाय हैं, उनका सेवन न करें। मन का बुरे विषयों से हटाना, सद्ग्रन्थों का अध्ययन इस प्रकार से सुख प्राप्त करता है।

□ कासेदित भित्तमधुरार्थं वादी ।

समय पर, हितकारी, मर्यादित, मधुर शब्दों में सार्थक बोले।

□ सर्वगन्धर्परित्यज्य शरीर्यनुपासयेत् ।

तदभावे हि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम् ।।

वरक-निदानस्थान ६/१०

अन्य सब विषयों को छोड़कर शरीर की रक्षा करे, शरीर सुरक्षित न होने पर शरीरधारियों के सारे भावों का अभाव हो जाता है।

□ नित्यं हिताहारविहारसेवी समीप्यकारी विषयेव्यसक्तः ।

दाता सत्यः सत्यपरः क्षमावानाप्तोद्य सेवी च भवत्यरोगः ।।

—वरक २/४५

नित्य हितकर आहार (भोजन), विहार (शारीरिक परिश्रम) करने वाला, विषयों में अनासक्त, सोच-समझकर करने वाला, दानी, राग-द्वेष रहित, सत्यवादी, क्षमाशील, सदाचारी विद्वानों का उपासक पुरुष रोग से निर्मुक्त रहता है।

सत्यवादी, अक्रोधी, सध और मैथुन से बचा हुआ, अहिंसक, परिश्रमी, शान्तचित्त, प्रियवादी, यजनकर्ता, पवित्रतापरायण, धीर, दानकर्ता, तपस्वी, गौ, देवता ब्राह्मण, आचार्य, गुरु, वृद्ध इनकी सेवा में परायण, निष्पुरुतारहित, दयापरायण, उचित काल में जागने सोने वाले, नित्यप्रति दूध, घी खाने वाला, देशकाल के प्रमाण को जानने वाला, युक्तिश, अहंकाररहित, सदाचारी, एक धर्मावलम्बी, अध्यात्मज्ञानवेत्ता, वृद्धों का सेवक, आस्तिक, जितेन्द्रियों का उपासक, धर्मशास्त्र परायण पुरुष यद्यपि रसायन सेवन न करे तो भी रसायन सेवन का फल प्राप्त करता है। —वरक—विक्रित्ता स्थान १/४

□ त्रिवर्गं शून्यं नारथं भजेतं चाविरोधयन् । —२/३०

कोई भी कार्य हो परन्तु त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) से शून्य हो तो धर्म प्राप्त हो या अर्थ प्राप्त हो या इन्द्रियों का भोग ही प्राप्त हो जिस कार्य से इन तीनों में से कोई न हो तो उसको न कर।

□ उद्धत वेषधरो न भवेत् । —चाणक्य नीति १/६६

विचित्र वेष न धारण करे, जिसे देखकर लोग अँगुली उठाने लगे अर्थात् सादगी में रहे।

□ न व्यसनपरस्य कार्यावाप्तिः ।।

व्यसनी का कार्य सिद्ध नहीं होता।

□ इन्द्रियवशवर्तिनी नास्ति कार्यावाप्तिः ।।

जो इन्द्रियों के गुलाम हैं इनके कार्य की सिद्धि नहीं होती।

□ भाग्यवन्तमपरीक्ष्यकारिणं श्रीः परित्यजति ।

—२/२४

बिना विचारे कार्य करने वाले भाग्यवान का भी लक्ष्मी साथ छोड़ देती है।

□ यः संसदि परावोचं वंसति स स्ववोचं प्रख्यापयति ।

—२/४७

जो सभा में दूसरे के दोष कहता है, वह मानो अपने दोषों को बहुत करके प्रगट करता है।

□ कदाचिवपि चरित्रं न संभयेत् ।

किसी काल में भी सदाचार का उल्लंघन न करें।

□ शत्रुं जयति सुप्रज्ञताः ।

सदाचारी शत्रु को जीत लेता है।

□ लोके प्रशस्तः स मतिमान् ।

लोक में जिसकी सत्कीर्ति है वह बुद्धिमान है।

□ माताऽपि दुष्टा त्याज्या ।

दुष्ट माता का भी त्याग कर देना चाहिए फिर और की तो बात ही क्या है ?

□ यशःशरीरं न विनश्यति ।

यश रूपी शरीर कभी नष्ट नहीं होता।

□ स्नेच्छानामपि सुवृत्तं ग्राह्यम् ।

स्नेहों से भी सुन्दर चरित्र सीख लेना चाहिए।

□ अयशोभयं भयेत् ।

भयों में बड़ा भय बदनामी है।

□ सर्वेणां भूषणं धर्मः ।

सबसे बड़ा आभूषण धर्म है।

- जिह्मयसी वृद्धि विनाशौ ।
वृद्धि और विनाश जिह्म के आधीन है ।
- इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहरिषु ।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेषु बाजिनाम् ॥

—मनुस्मृति २/८८

जिस प्रकार सारथी अपने रथ के घोड़ों को वश में रखता है। वैसे ही विद्वान विषयों में दौड़ने वाली इन्द्रियों को यत्नपूर्वक वश में रखे ।

- वैशुष्यं साहसं क्रोध ईर्ष्यासुयार्धबुधम् ।
बाष्पज्ज्वलं पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोदकः ॥ ४८ ॥
चुगलखोरी, उतावलापन से काम करना, क्रोध, (दूसरे का अनिष्ट चिन्तन) ईर्ष्या (किसी की बढ़ती देखकर जलन पैदा होना), असूया (किसी के गुण में दोष लगाना), किसी के धन को हर लेना, बाजी और दण्ड की कठोरता ये ८ क्रोध से उत्पन्न होने वाले व्यसन हैं ।

- व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुष्यते ।
व्यसनमथोऽथो ब्रजति स्वर्गस्य व्यसनी मृतः ॥ ५१ ॥
व्यसन और मृत्यु के बीच में व्यसन अत्यन्त दुःखदाई कहा है। व्यसनी मरकर नीचे नरक में जाता है और अव्यसनी स्वर्ग प्राप्त करता है ।
- व्यस्यते न श्रेयस इति व्यसनम् ॥

—श्रीटिल्य अर्धशास्त्र ८/१/१२

व्यसन मनुष्य को कल्याण के रास्ते से गिरा देता है ।

- सर्वो दण्डजितो लोको दुर्लभो हि शुचिर्नरः ।
दंडस्य हि भयात्सर्वं जगन्भोगाय कस्ते ॥

—मनुस्मृति ७/२२

दण्ड से जीता हुआ सारा जगत् समार्ग में स्थित रहता है, क्योंकि स्वभाव से शुद्ध मनुष्य दुर्लभ है और दण्ड के भय से सारा संसार वस्तुओं को मर्यादा में भोगने में समर्थ होता है ।

- कृतं त्रेतायुगं चैव द्वापरं कलियुगं च ।
राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि राजा हि युगमुष्यते ॥ ३०१ ॥
सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग ये चार युग राजा की चेष्टा-वर्ताव हैं। राजा से ही सत्य आदि युगों की प्रवृत्ति होती है इसलिए राजा को युग कहते हैं ।
- कासोबाकारणं राज्ञो राजाकासकारणम् ।
इतितेतंसंयोजनापूज्याकासस्य कारणम् ॥

—महाभारत शान्तिपर्व ६६/७६

समय राजा का कारण है या राजा समय का कारण है। यह संशय तुम मत करो। राजा ही

युग समय का कारण है। श्री रामचन्द्र के राज्य में त्रेता की जगह सतयुग हो गया ।

- योजन्ति तेन शरीरेण तत्तं नेवं यशो ध्रुवम् ।
नाचिनोति स्वयंकल्पः स बाष्पं क्रोधं एव सः ॥

—भा. १०/७२/२०

सज्जन जिसकी सराहना करें ऐसे यश को समर्थ होते हुए भी जो पुरुष इस अनित्य शरीर द्वारा इकट्ठा नहीं करता वह सोचने योग्य और निन्दनीय है ।

- कीर्तिर्हि पुरुषलोके तं जीवयति मातुषत् ।
अकीर्तिर्जीवितं हि तं जीवतोऽपि शरीरेणः ॥

—महाभारत वनपर्व ३००/३२

कीर्ति पुरुष को माता के समान जिलाती है बदनामी जिन्दे को ही मार देती है ।

- तीर्थ स्नानार्थिनी नारी पतिपादोक्तं पियेत ।
शंकरस्यापि विष्णोर्वा प्रयाति परमं पदम् ॥

—वसिष्ठ ३/१३५

तीर्थस्नान की इच्छा करने वाली स्त्री अपने पति के चरणोदक का आचमन करे तो शंकर या विष्णु के लोक को प्राप्त होती है ।

- सुवेचनानरं दृष्ट्वा प्रातरपि स्मरन्तु स्मृत् ।
मन्थते च परं तां धीराश्च चार्याः पतिव्रताः ॥

—पद्म पुराण १/५०/५६

जो सुन्दर पुरुषों को भ्राता, पिता या पुत्र की दृष्टि से देखती है वह स्त्री पतिव्रता है ।

- भ्रात्रा स्वसा दुष्टिना वा न विविक्षासतो भवेत् ।
वत्सवानिन्द्रियभ्रात्रो विद्वान्तमपि कथंति ॥

—मनुस्मृति २/२१५

माता, बहिन, लड़की इनके भी साथ एकान्त में न बैठे क्योंकि बलवान इन्द्रियों का समूह विद्वानों को भी वश में कर लेता है ।

- न जीर्णमस्य द्वासा भवेच्च विषये सति ॥

—मनुस्मृति ४/३४

धन रहते हुए कभी पुराने और मैले वस्त्र धारण न करे ।

- हीनमङ्गनस्तिरिक्तं गन्धिघाहीनाम् बन्धोऽधिकम् ।
रूपविण्हीनांश्च जातिहीनांश्च नाधिपेत् ॥

—मनुस्मृति ४/१४१

हीन अंग वाले, अधिक अंग वाले, विघाहीन, अवस्था में बूढ़े, कुरूप और निर्धन तथा जातिहीन वालों का उपहास न करो ।

- कोशेनधर्मकामश्चपरलोकस्तथास्ययम् ।
तंवधर्मेणसिप्सेतनाधर्मेणकदाचन ।।

—महाभारत शान्ति पर्व १३०। ५०

द्रव्य से धर्म और काम की प्राप्ति होती है। इहलोक और परलोक बनता है, परन्तु उस धन को धर्म (न्याय) के द्वारा पैदा करे अधर्म के द्वारा कदापि नहीं।

- अकृत्वा परस्तापमगत्वा खलमग्निरम् ।
अनुत्पुण्य सतावर्त्त यत्स्वल्पमहितद्वयम् ।।

—सुभाषित रत्न भांडागर

किसी को दुःख न देकर, नीचों के गृह न जाकर, सज्जनों का मार्ग न त्यागकर, जो थोड़ा भी मिले वह बहुत है।

- बरं दारिद्र्यमन्यायप्रभवाद्बिभर्षादिह ।
कृत्ताभिप्सता देहे पीनता न तु शोफतः ।।

—सुभाषित रत्न भांडागर

अन्याय से पैदा किये द्रव्य से दरिद्र अवस्था में रहना अच्छा। किसी बीमारी से फूल जाने की अपेक्षा शरीर का पतला-हलका होना अच्छा है।

- दयस्तः कर्मणोऽर्जस्य कुतस्याभिजनस्य च ।
वेषवाग् बुद्धिसारूप्यमाचरन्विचरेदिह ।।

—मनुस्मृति ४। १८

अवस्था, कर्म, धन, वेद, कुल इनके अनुरूप वेष, वाणी, बुद्धि करता हुआ विचार करे।

- बुद्धिवृद्धिकराण्याश्च धन्यानि च हितानि च ।
नित्यं शास्त्राण्यवेक्षते निगमांश्चैव वैदिकान् ।।

—मनुस्मृति ४। १८

शीघ्र बुद्धि को बढ़ाने वाले, धन देने वाले, हित करने वाले शास्त्र का अध्ययन करे। ज्ञान के तत्त्व का नित्य विचार किया करे।

- अनेकस्तंशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम् ।
सर्वस्य शोचनं शास्त्रं सत्यं नास्त्यप्य एव तः ।।

—वाणक्यनीति

अनेक संशय को छेदन करने वाला, परोक्ष अर्थ को दिखाने वाला और सबका नेत्र, शास्त्र है। जिसके यह शास्त्ररूपी नेत्र नहीं वह अन्धा है।

- तद्वद्ब्राह्मणो भवति यवहः स्वाध्यायं नाधीते ।
तस्मात्स्वाध्यायोऽप्येत्यः ।। —शतपथ ११। ५। ७

उसी दिन वह ब्राह्मण अब्राह्मण हो जाता है। अर्थात् ब्राह्मत्व से गिर जाता है, जिस दिन स्वाध्याय नहीं करता।

- बद्रूपः पुष्पमध्यस्थो यथा सारं समुद्धरेत् ।
तथा सर्वेषु शास्त्रेषु सारं गृह्णन्ति पण्डिताः ।।

—सुभाषित रत्न भांडागर

भौरा पुष्प में से सार-सार ले लेता है, उसी प्रकार चतुर पुरुष सब शास्त्रों में से सार-सार ले ले।

- सत्यं ब्रूयादियं ब्रूयाच्चब्रूयात्सत्यमृप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेव धर्मः सनातनः ।।
सत्य बोले और प्रिय बोले, अप्रिय सत्य न कहे। मिथ्या प्रिय न कहे यह सनातन धर्म है।

- न यमं यममित्याहुरात्मा नै यम उच्यते ।
आत्मा संयमितो येन तं यमः किं करिष्यति ।।

—आपस्तम्ब १०। ३

यमराज, यमराज नहीं, अपना आत्मा ही यमराज है। जिसने अपने आत्मा (मन) को काबू में कर लिया अर्थात् बुरे विचारों से हटा लिया उसका वह यमराज क्या करेगा ?

- येन केन च धर्मेण भूदुना वारुणेन च ।
उद्धरेद्वहीनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत् ।।

—पराशर स्मृति ७। ४१

विपत्ति में कठिन या नरम जिस किसी धर्म से गिरी हुई स्थित से उद्धार कर ले। समर्थ होकर फिर धर्म का आचरण करे।

- कामः क्रोधो भयो हर्ष लोभो दर्पस्तथैव च ।
रिपवः षड् विजेतव्याः पुरुषेण विपश्चिताः ।।

—विष्णु धर्मोत्तर पुराण ३। २३३। २५७

काम, क्रोध, भय, हर्ष (अधिक हर्ष में धर्माधर्म का विचार नहीं करता), लोभ, दर्प, विद्वानों को इन छह बैरियों को जीतना चाहिए।

- न हायनैर्न पत्तिर्नैर्न वित्तेन न बन्धुभिः ।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूयानः स नो महान् ।।

—मनुस्मृति २। १५४

न अधिक वर्षों से, न सफेद बालों से, न धन और बन्धुओं से कोई बड़ा है। ऋषियों ने ऐसा माना है कि जो ज्ञानवान है वही बड़ा है।

- विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः ।
वैश्यानां धान्यचनतः शूद्राणामेव जन्मतः ।।

—मनुस्मृति २। १५५

ब्राह्मणों में ज्ञान से, क्षत्रियों में बल से, वैश्यों में धन-धान्य से और शूद्रों में जन्म से श्रेष्ठता होती है।

- यस्य बाह्यमनसी शुद्धे सम्यग्गुण्ये च सर्वदा ।
स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम् ॥

—मनुस्मृति २/ १६०

जिसके मन और वाणी सुरक्षित और शुद्ध हैं अर्थात् ईर्ष्या, द्रोह आदि से रहित मन है, अनृत, चुगलखोरी रूखेपन से रहित वाणी है, वही वेदान्त के फल को प्राप्त होता है।

- यं मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम् ।

न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि । २ । २२७ ।
माता-पिता जो क्लेश सन्तान की उत्पत्ति में सहन करते हैं उसका बदला सन्तान सदा चुकाती रहे तो भी चुकना कठिन है।

- शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ।

न शोचन्ति तु यत्रैता बर्धते तद्धि सर्वदा ॥ ५७ ॥
जिस कुल में स्त्रियों दुःख पाती हैं उसका शीघ्र ही नाश हो जाता है और जिस कुल में वह सुखी रहती हैं वहाँ सदा धनादि की वृद्धि होती है।

- तृणानि भूमिरुदकं वा क्वचतुर्थी च सृजता ।

एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन । ३ । १०१ ॥
चटाई आदि बिछाना, ठहरने के लिए भूमि, जल, सत्य और प्रिय वाणी से सज्जनों के गृह से कभी दूर नहीं होते अर्थात् इन वस्तुओं के द्वारा अतिथियों का सत्कार होता रहता है।

- उपासते ये गृहस्थाः परपाकमबुद्धयः ।

तेन ते प्रेत्य पशुतां ब्रजन्त्यन्नादिवायिनाम् । १०४ ॥
अच्छा भोजन मिलेगा इस लोभ से जो दूसरे के अतिथि बनते हैं, वह मरने पर अन्नदाताओं के पशु बनते हैं।

- न हीदृशमनापुण्यं लोके किञ्चन विद्यते ।

यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥ ४ । १३४ ॥
परस्त्री सेवन के समान दूसरे काम इस संसार में मनुष्य की आयु कम करने वाला नहीं है।

- अधार्मिको नरो यो हि यस्य चाप्यनृतं धनम् ।

हिंसारतश्च यो नित्यं नेहसी सुखमेधते ॥
जो अधर्मी है, जिनका मिथ्याभाषण ही धन है, जिसकी रुचि सदा हिंसा में ही रहती है, उसको संसार में सुख नहीं मिलता।

- अन्नादे भूणह्य मार्षि पत्यौ भार्यापचारिणी ।

गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि किंश्चिदपि ॥

—८/ ३१०

जो ब्रह्महत्या करने वाले का अन्न खाता है, वह उसके पाप का भागी होता है, स्त्री के

- कृत्वा पापं हि संतप्य तस्यात्पापाव्यमुच्यते ।

नैवं कुर्या पुनरिति निवृत्त्या पूयते तु सः ॥ ११ । २३० ॥
मनुष्य पाप करके फिर सच्चे दिल से पछताने से और मैं फिर ऐसा न करूँगा, ऐसा कहने से निवृत्ति रूप संकल्प करने से उस पाप से छूट जाता है।

- मातृवत् परबारांश्च परग्रह्याणि शोच्यवत् ।

आत्मवत्सर्वभूतानि य पश्यति स पण्डित ॥

—वाणक्य नीति

पराई स्त्रियों को माता के समान, पराये धन को मिट्टी के समान, सब जीवों को अपने समान जो देखता है, वह पण्डित है।

- ब्राह्मणस्य तपो ज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणम् ।

वैश्यस्य तु तपो वार्ता तपः शूद्रस्य सेवनम् ॥

—११/ २३५

ज्ञान होना यह ब्राह्मण का तप है, रक्षा करना यह क्षत्रिय का तप है, खेती, वाणिज्य, पशुपालन यह वैश्य का तप है, सेवा करना यह शूद्रों का तप है।

- मूर्खा यत्र न पूज्यन्ते धार्यं यत्र तु संश्रितम् ।

दम्पत्योः कलहो नास्ति तत्र श्रीः स्वयमागता ॥

—वाणक्य नीति

मूर्खों का जहाँ आदर नहीं होता, जहाँ अन्न का संग्रह रहता है, स्त्री-पुरुषों में जहाँ कलह नहीं होता वहाँ लक्ष्मी आती है।

- प्रथमे नार्जिता विद्या द्वितीये नार्जितं धनम् ।

तृतीये नार्जितं पुण्यं चतुर्थे किं करिष्यति ॥

—वाणक्य नीति

बाल्यावस्था में विद्या नहीं पढ़ी, जवानी में धन प्राप्त नहीं किया, वृद्धावस्था में धर्म प्राप्त नहीं किया तो मरने के समय क्या करेगा ?

- कः कालः कानि मित्राणि को देशः को ज्ययाऽऽगमी ।

कश्चाहं का च मे शक्तिरिति विन्यं मुहुर्मुहुः ॥

—वाणक्य नीति

समय कैसा है ? मेरे मित्र कौन-कौन हैं ? देश कैसा है ? आमदनी और खर्च कितना है ? मैं किसका हूँ ? मेरी सामर्थ्य कैसी है ? इस प्रकार बार-बार विचार करें।

- संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते ।

मुक्ताकारतया तदेव नत्तिनीपत्रस्थितं राजते ॥

स्वात्पां सापराश्रुतिमध्यपतितं तन्मौक्तिकं जायते ।
प्रायेणमध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते ॥

—मर्तुहरि नीतिशतक

गरम तवे पर जल की बूँद यदि छोड़ो तो नामो-निशान नहीं रहता, वही जल की बूँद यदि कमल के पते पर छोड़ो तो मोती-सा हो जाता है, वही जल की बूँद यदि समुद्र के बीच सीप में पड़ जाए तो साक्षात् सच्चा मोती हो जाता है इससे सिद्ध होता है कि प्रायः करके अधम, मध्यम, उत्तमः गुण संसर्ग से होते हैं।

- निगृहीतेतेष्विष्यन्नामो यमैव च ।
तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च ॥

—भ्यासस्मृति ४/३१

इन्द्रियों को बुरे विषयों से रोककर घर में रहे तो वही उसका कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य और पुष्कर आदि तीर्थ हैं।

- सुखं वा यदि वा दुःखं कर्तुमिच्छित् क्लिप्तो परे ।
ततस्तत्तु पुनः पश्चात् सर्वमात्मनि जायते ॥

—व्यासस्मृति ३/२१

जो सुख-दुःख दूसरे के लिए किया जाता है वह पीछे करके अपने ऊपर पड़ता है।

- गंगाविपुष्यतीर्थेषु यो नरः स्नाति सर्वथा ।
यश्चरोति तत्तां संसर्गाद्योः सत्सर्गमोचरः ॥

—पद्म पुराण अष्ट २३/६

गंगादि पुण्य तीर्थों में स्नान करना और सत्पुरुषों का संग करना इसमें सत्संग श्रेष्ठ है।

- साक्षरा विपरीताश्च राक्षसास्ता इति स्मृताः ।
तस्याद्वैविपरीतं च कर्म नैवाचरेयति ॥

—शिव पुराण विद्येश्वर संहिता ६/२०/३५

यदि साक्षर विद्वान् होकर विपरीत चले तो वह राक्षस है (साक्षरा को उलट पढ़ो तो राक्षसा हो जाएगा) तिस कारण बुद्धिमान को विपरीत आचरण न करना चाहिए।

- श्रुति स्मृतिस्त्वेतिहासाः पुराणं च शिवात्मज ।
प्रमाणं वेत्ततो दुष्टद्वये दोषो न विद्यते ॥

—स्कन्द पुराण १/२/३३/११

श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण यदि इनको प्रमाण माना जाता है तो दुष्ट के वध में दोष नहीं।

- परोक्षद्विषयो ये च परेषां कारिणस्त्वये ।
परोक्षद्विषिनो ये च तेषां काशी न सिद्ध्यते ॥

—वीर मित्रोदय—तीर्थ प्रकाश

दूसरे के अनिष्ट चिन्तन वाले, दूसरे की बढ़ती को देखकर कुढ़ने वाले, दूसरे को दुःखदायी,

ऐसे पुरुषों का काशीवास सिद्धि का देने वाला नहीं।

- परदारपक्ष्यपरोक्षपराङ्मुखः ।
गंगा झूठे कदाप्य मामयं पावयिष्यति ॥

—जयसिंह कल्पद्रुम

पराई स्त्री, पराये धन, परनिन्दा से जो बचा है गंगा महारानी कहती है कि ऐसा पुरुष आकर मुझे कब पवित्र करेगा ?

- मर्यादितारस्तिष्ठ मर्यादितान्नं रक्षोवपायैव
न केवलं विभो ।

—भागवत् ५/१६/५

श्री रामचन्द्र जी का जो अवतार है वह केवल रावण को मारने के लिए नहीं वरन् मनुष्य के शिक्षा के लिए है। अर्थात् श्री रामचन्द्र जी ने भरत आदि के साथ जो व्यवहार किया है यह हम सबको करना चाहिए।

- धर्माय यस्तोऽर्थाय कामाय स्वजनाय च ।
पंचथा विभज्यति विद्वान् न च मोक्षते ॥

—भागवत् ८/१६/३६

धर्म के निमित्त, यश के लिए, बढ़ाने के निमित्त, अपने शरीर के आराम के लिए और स्वजनों की सहायता के लिए इस प्रकार पाँच प्रकार से द्रव्य खर्च कराया हुआ इस लोक और परलोक में सुख पाता है।

- पुंस्तस्मिन्नां विहितः सुखो ह्यनुभावितः ।
न तेषु विस्तस्यमानेषु त्रिवर्गोऽर्थाय कस्यते ॥

—भागवत् १०/५/२८

स्वजनों को आराम देते हुए धर्म, अर्थ, काम-सेवन ठीक है। स्वजनों के क्लेश भोगते हुए त्रिवर्ग सुखकारक नहीं।

- माता वा जनको वापि भ्राता वा तनयोऽपि वा ।
अधर्मं कुरुते यस्तु स एव रिपुर्विद्यते ॥

—नारद पुराण ८/११५

माता-पिता, भ्राता, पुत्र भी यदि अधर्मी हैं तो बैरी समझना चाहिए।

- येपापानि न कुर्वन्ति मनोवाक्कर्मबुद्धिभिः ।
ते तपस्विभ्योऽप्यनो न शरीरस्य शोचणम् ॥

—महाभारत वन पर्व २००/६६

मन, वाणी, शरीर के पाप से जो बचे हैं, वे बड़े महात्मा हैं, बड़ी तपस्या कर रहे हैं केवल शरीर का सुखाना तप नहीं।

- आरोग्यसाधोत्साधानाम् —पद्म पुराण ५/८५/६४
लाभों में सबसे बड़ा लाभ आरोग्यता है।

- परोपकारः पुण्यानाम् ।।
पुण्यों में बड़ा पुण्य परोपकार है।
- शौचानामर्यशौचं धनानामभयं यथा ।।
ईमानदारी का पैसा पास होना सबसे भारी पवित्रता है। दानों में सबसे बड़ा दान सत्पुरुषों को विपत्ति से छुटाना है।
- यस्योपदेशतः पुण्यं पापं वा कुर्वति जनाः ।
सतद्भागी भवेन्मर्त्य इति शास्त्रे पुनिश्चितम् ।।

—पद्म पुराण ७।१।१६

जिसके उपदेश से मनुष्य पाप और पुण्य करता है वह उपदेश्य उस पाप-पुण्य का भागी होता है।

- वृत्तेन भवत्यायौ न धनेन विधया ।
सुन्दर व्यवहार (आचरण) से आर्य (श्रेष्ठ) माना जाता है धन व विद्या से नहीं।

—महाभारत उद्योग पर्व ६०।५३

- वृत्तस्थो योऽपि चाण्डालस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ।।
—पद्म पुराण सृष्टि खण्ड अ. ५०
सदाचार सम्पन्न यदि चाण्डाल है, तो देवता भी उसको ब्राह्मण समझते हैं।
- पठकाः पाठकाश्चैव वेद्यान्वे शास्त्रचिन्तकाः ।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खायः क्रियावानुसर्षितः ।।

—महाभारत वन पर्व ३१४।११०

पढ़ने वाले, पढ़ाने वाले और भी जो शास्त्र चिन्तक हैं, इन्हें व्यसनी समझो, पर जो शास्त्रानुसार चलने वाला है वह पण्डित है।

- चतुर्वेदोऽपि तुर्वृतः स शूद्रादतिरिच्यते ।
योऽग्निहोत्रपरो दान्तः स ब्राह्मण इति स्मृतः ।।
चारों वेदों का जानकर यदि दुराचारी है तो वह शूद्र से भी गया-बीता है। जो अग्निहोत्री (काम, क्रोध-लोभादि को हनन करने वाला) और इन्द्रियनिग्रही है वह ब्राह्मण है।

- अन्यायेन परधनादि ग्रहणं स्तेयम् ।
—मनुस्मृति ६।६२
अन्याय से दूसरे का धनादि लेना चोरी है।

- न्यायागतोऽर्थः
—चाणक्य सूत्र २।५४
न्यायानुसार आया हुआ धन असली धन है।

- न धर्मपर एव स्यान् धर्मार्थपर मोक्षनः ।
न कामपर मोक्षा स्यात् सर्वान्सेवेत सर्वदा ।।

—महाभारत वन पर्व ३३।३६

केवल धर्म में ही मत लगे रहो (निर्वाह 'के लिए आजीविका की ओर देखो तथा शरीर की रक्षा करो) और केवल धन कमाने में ही मस्त

मत रहो (शरीर की रक्षा करते हुए परलोक के लिए कुछ धर्म का संग्रह कर लो) और दिन भर शरीर को सजाते, ऐश-आराम में ही मत गुजरो (जीवन-निर्वाह का उपाय धर्मानुकूल करते रहो)। सबका (धर्म, अर्थ, काम) सब काल में अविरुद्धरूप से सेवन करो।

- कुक्षेति न वतमसोपसृष्टं बक्ष्यन्ति निष्ठुरभाषिणं च ।
सूर्योदये चास्तमिते श्रयानं विपुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः ।।

—चाणक्य नीति

मलिन वस्त्रधारी, मैले दाँत वाले, बहुभोजी, निष्ठुरभाषी, सूर्योदय व सूर्यास्त के समय सोने वाले यदि विष्णु भगवान क्यों न हों लक्ष्मी साथ छोड़ देगी।

- धर्माविरोधिनी कार्या कामसेवा सदैव नु ।

—विष्णु धर्मोत्तर पुराण २।६।३

धर्मानुकूल कामसेवन करना चाहिए।

- सत्यमेव जयते नानृतम्
सत्य की जय होती है झूठ की नहीं।

- विवर्जनं स्य कार्याणां भेतस्तु सत्पुरुषकृतम् ।

—महाभारत विराट पर्व १४।३६

खोटे कार्यों का परित्याग कर देना सत्पुरुषों का व्रत है।

- परिनिर्णयबाष्पाहो निर्णीतमिदमेव हि ।

नोपकारात्परो धर्मनापकारावर्धपरम् ।।

—स्कन्द पुराण खंड ४।६५।४५

सारे शास्त्रों का मंथन करके यह निश्चय किया है कि परोपकार की बराबर कोई धर्म नहीं और पर अपकार की बराबर कोई पाप नहीं।

परहित सरित धर्म नहीं भाई।

पर पीडा सम नहीं अधमाई।।

- तपःस्वधर्मवर्तित्वम्
—महाभारत वन पर्व ३१३।८८
अपने कर्तव्य कर्म से विचलित न होना ही तप है।

- क्षीरकार्यनिवर्तनम् ।।
कुर्म से बचना ही लज्जा है।

- यप्यनैव कुप्यन्ते न द्रुष्यन्ति तु जेष्ठाः ।
तपवनः पूज्यतां वा देवापि प्रियवादिनः ।।

—महाभारत ५६।२२

जो कभी क्रोध नहीं करते, जो तृण पर भी नीयत नहीं डुलाते, जो प्रियवादी हैं ऐसे पुरुष हमारे पूजनीय हैं।

- जानन्मापिचयःपार्यशक्तिमात्रनियच्छति ।
ईशःसन्तोऽपितेनैवकर्मणासंप्रयुज्यते ।।
—महाभारत आदि पर्व १८०/ ११
पाप होता हुआ समझकर शक्तिशाली होते हुए जो पाप को दूर करने का भरसक प्रयत्न नहीं करता वह पाप का भागी होता है ।
- मातेराष्ट्रेयाचनकाऽभूवन्माचापिदस्यवः ।
—महाभारत शान्तिपर्व ८२/ २४
तेरे राज्य में चोर और भिखारी न होने पावें ।
- शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा यस्तु क्रियावान् पुरुषः
स विद्वान् ।
सुधिनतं धीषधमातुराणां न नाममात्रेण
करोत्यरोगम् ।।
—सुभाषित रत्न भाण्डागार
शास्त्रों को पढ़कर भी मूर्ख रहते हैं, जो शास्त्रोक्त विधि का पालन करने वाले हैं वे विद्वान् हैं, औषधि को विचारते रहें, बार-बार सुगन्ध लेते रहें तो क्या वह रोगी को नीरोग कर देगी ।
- सा श्रीर्या न मदं कुर्यान्स सुखी तृण्योन्मिश्रितः ।
तन्मित्रं यत्र विश्वासः पुरुषः स जितेन्द्रियः ।।
लक्ष्मी वही श्रेष्ठ है जिनमें मद न हो, सुखी वही है जिसने तृष्णा को जीत लिया है, मित्र वही है जिस में विश्वास है और पुरुष वही है जो जितेन्द्रिय है ।
- निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु ।
लक्ष्मीः समाविशन्तु गच्छन्तु वा यथेष्टम् ।।
अथैव वा मरणमस्तु युगांतरे वा ।
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ।।
चाहे नीतिवान् पुरुष निन्दा करें या स्तुति करें, लक्ष्मी रहे या जाए, मरण चाहे आज हो या युगान्तर में । परन्तु धीर पुरुष न्याय मार्ग से एक पद भी विचलित नहीं होते ।
- अर्थागमो नित्यमरोगिता च,
प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च ।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या,
वद् जीवलोकस्य सुखानि राजन् ।।
ये बातें सुख देने वाली होती हैं—नित्य धन लाभ, नीरोगिता, प्यारी और मीठा बोलने वाली स्त्री, आज्ञाकारी पुत्र और अर्थकारी विद्या ।
- रक्षस्य भेदो बाष्पा च नैष्टुर्यवत्तुस्तता ।
क्रोधो निःसत्यता धृतमेतन्मित्रस्य दूषणम् ।।
मित्र में यह दोष न होने चाहिए, गुप्त बातों को प्रकट करना, मींगना, कठोरता, चित्त की चपलता, क्रोध, असत्य और जुआ खेलना ।

- अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च ।
वञ्चनं चापमानं च मतिमान् प्रकाशयेत् ।।
धन का नाश, मन का दुःख, घर के दुश्चरित, ठगी और अपमान ये बातें बुद्धिमान किसी से न कहे ।
- जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।
इमे संसेविते येन सफलं तस्य जीवनम् ।।
माता और जन्मभूमि ये दोनों स्वर्ग से भी बड़ी हैं । जिसने इन दोनों की सेवा कर ली, उसका जन्म सफल होगा ।
- कुग्रामवासः कुजनस्य सेवा कुभोजनं क्रोधा मुखी च
भार्या ।
मूर्खश्च पुत्रो विधवा च कन्या विनाग्निना संदहते
शरीरम् ।।
बुरे गाँव का वास, बुरे आदमी की सेवा, बुरा भोजन, क्रोध वाली स्त्री, मूर्ख पुत्र और विधवा कन्या ये सब आग बिना ही शरीर को भस्म करते हैं ।
- काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम् ।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा ।।
बुद्धिमानों का समय काव्यशास्त्रों को पढ़ने, सुनने में जाता है और मूर्खों का व्यसन, निद्रा और झगड़ों में ।
- विपदि धैर्यमयाम्युदये क्षमा,
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।
यज्ञसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ।।
विपत्तिकाल में धैर्य, सम्पत्ति में क्षमा, सभा में वाक्पटुता, युद्ध में पराक्रम, यश में रुचि, सुनने में शौक ये बातें महात्माओं में स्वभाव से ही होती हैं ।
- सम्पदि यस्य न हर्षो विपदि विषादो रणे च धीरत्वम् ।
तं भुवनत्रयतिलकं जनयति जननी सुत विरलम् ।।
जिसको सम्पत्ति में हर्ष और विपत्ति में दुःख न हो तथा रण में धीरता हो, ऐसे त्रिलोकीतिलक पुत्र को कोई विरली ही माता जनती है ।
- खादन् गच्छेदध्वानं न च हास्येन भाषणम् ।
शोकं न कुर्यान्नष्टस्य स्वकृतेरपि जल्पनम् ।।
खाते-खाते रास्ता चलना उचित नहीं, हँसकर बात न करे, नष्ट-वस्तु के लिए शोक न करे तथा अपने कार्य का भी कीर्तन न करे ।
- स्वशक्तितानां सामीप्यं त्यजेद्वैनीचसेवनम् ।
संलापं न च शृणुयाद् गुप्तं कस्यापि सर्वदा ।।
अपने से शंकित व्यक्ति के पास जाना उचित नहीं तथा नीच-व्यक्ति की सेवा भी न करनी चाहिए । किसी का गुप्त आलाप कभी न सुनो ।



विवेक-सतसई

ईश्वर-भक्ति

करत सकल घट राम भव, तौ खोजत केहि काज ।
 तुलसी कहैं यह कुनसि सुनि, उर आवत अतित्राज ॥ १ ॥
 असख कहैं देखन चाहिँ, तो कस कहिय प्रवीन ।
 तुलसी जग उपदेश ही, बनि बुध अवध मसीन ॥ २ ॥
 ब्रह्म फटिक मन सम लसै, घट-घट मौन सुजान ।
 निकट आय बरतै जो रंग, तो रंग लगै दिखान ॥ ३ ॥
 कोटि घटन में विदित ज्यों, रवि प्रतिबिम्ब दिखाइ ।
 घट-घट में त्यों ही छिपो, स्वयं प्रकाशी आइ ॥ ४ ॥
 यों सब जीवन को लखौ, ब्रह्म सनातन आदि ।
 ज्यों माटी के घटन की, माटी ही बुनियाद ॥ ५ ॥
 पंचन पंच मिलाय कै, जीव ब्रह्म में लीन ।
 जीवन मुक्त कछा बही, रस-निधि वह परवीन ॥ ६ ॥
 असख सबै लखत वह, लख्यौ न काहू जाय ।
 वृण तारिन को तिल यथा, देखौ नहीं दिखाय ॥ ७ ॥
 हिन्दू में क्या और है ? मुसलमान में और ?
 साहिब सबका एक है, व्यापि रहा सब ठौर ॥ ८ ॥
 असख जान इन वृणन से, विदित न देखौ जाइ ॥ ९ ॥
 प्रेम कांति बाकी प्रकट, सबही ठौर दिखाइ ॥ १० ॥
 सब घट मेरा साइयाँ, सुनी सेज न कोइ ।
 भाग्य उन्हीं के हे लखी जिहि घट परगट होइ ॥ ११ ॥
 कस्तूरी तन में बसै, मृग छूँडे बन माँहि ।
 ऐसे घट-घट राम हैं, दुनिया देखे नाहिँ ॥ १२ ॥
 घट बढ़ कहीं न जानिये, ब्रह्म रहा भरपूर ।
 जिन जाना तिन निकट है, दूर कहैं ते दूरि ॥ १३ ॥
 बहुत विवस भटकत रही, मन में विषै विलास ।
 छूँडत-छूँडत जग फिरा, वृण के ओटे राम ॥ १४ ॥
 ज्यो नैनन में पूतली, त्यों खालिक घट माँहि ।
 भूख लोग न जानहीं, बाहर छूँडन जाहिँ ॥ १५ ॥
 आप मिटाये हरि मिलैं, हरि भेटें सब जाय ।
 अकथ कहानी प्रेम की, कहूँ न कोई पति आय ॥ १६ ॥
 पढ़-पढ़ कै ज्ञानी भये, मिट्यौ नहीं तन ताप ।
 राम नाम तोता रटें, कटे न बन्धन पाप ॥ १७ ॥
 गंगा यमुना सरस्वती, सात सिन्धु भरिपूरि ।
 तुलसी घातक के मते, बिना स्वाति सब धूरि ॥ १८ ॥
 कबीर माला ना जपों, जिक्र कछों न राम ।
 सुमिरन मेरा हरि करें, मैं पावों विश्राम ॥ १९ ॥
 जदपि कहा है भावती, सकल जगत भरपूर ।
 बलि जैयों वा ठौर की, जहँ कै करे जहूर ॥ २० ॥

कठिन राम की काम है, सहज राम की नाम ।
 करत राम की काज जे परत राम तों काम ॥ २० ॥
 दीननु देखि बिनात जे, नहीं दीननु तों काम ।
 कछा जान के सेत हैं, दीनबन्धु की नाम ॥ २१ ॥
 रहिमन राम न उर धरे, रहे विषय लिपटाय ।
 भुस खावै पशु आप तें, गुड़ गुलियाये खाय ॥ २२ ॥
 जो जन प्रेमी राम के तिनकी गति है येह ।
 देह से उद्यम करें, सुमिरन करें विदेह ॥ २३ ॥
 ज्ञान गम्भ कहते सभी, ज्ञानी नर दिन-रात ।
 उसे चाहते देखना परम निरासी बात ॥ २४ ॥
 चली चली सब कोइ कहैं, मोहि अँदैता और ।
 साहब तूं परचा नहीं, ये जाइहँ किस ठौर ॥ २५ ॥
 कबीर हरि के नाम सुं, प्रीति रहे इकतार ।
 तौ मुख ते मोती झरें, हीरा अन्त न पार ॥ २६ ॥
 राम रसायन प्रेम रस, पीवत अधिक रसास ।
 कबीर पीवन दुर्लभ है माँगें शीश कसास ॥ २७ ॥
 कबीर हैंसना दूर करि, करि रोवन सो चित्त ।
 बिन रोये कैसे मिले, प्रेम पियारा मित्त ॥ २८ ॥
 जो रोजँ तो बस घटे, हैंसो तो राम रिसाय ।
 मन ही माहि बिसूरना, ज्यों धुन काठि खाय ॥ २९ ॥
 सुखिया सब संसार है, रहे खाय कै सोय ।
 सुखिया वात कबीर है, जग बिसरे कै रोय ॥ ३० ॥
 वासर सुख ना रेन सुख, ना सुख सपने माँह ।
 कबीर बिछुटी राम से ना सुख धूप न छाँह ॥ ३१ ॥
 प्रेम व्यथा तन में बसै, सब तन जर्जर होय ।
 राम वियोगी ना जिये, जिये तो बौरा होय ॥ ३२ ॥
 प्रेम पियाला जो पिये, सीस दखिना देय ।
 सोभी सीस न वे सकै, नाथ प्रेम का सेय ॥ ३३ ॥
 लाली मेरे लाल की, जित देखो तित लाल ।
 लाली देखन मैं गई, मैं भी है गई लाल ॥ ३४ ॥
 प्रेम प्रेम सब कोइ कहै, प्रेम न चीन्हे कोब ।
 आठ पहर भीना रहे, प्रेम कछावै सोय ॥ ३५ ॥
 पिंजर प्रेम प्रकासिया, जांगा जोग अनन्त ।
 संसय छूटा सुख भया, मिला पियारा कन्त ॥ ३६ ॥
 पिंजर प्रेम प्रकासिया, अन्तर भया उदास ।
 मुख कस्तूरी मैंहक-सी, बाणी फूटी बास ॥ ३७ ॥
 ममता मेरा क्या करे, प्रेम उषाही पीसि ।
 वरसन भया दयाल का, सुनि यह सुख सीध ॥ ३८ ॥
 मेरा मुझको कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर ।
 तेरा तुझको सौंपते, क्या सागत्त है मोर ॥ ३९ ॥

कबीर सीप समुद्र में, रटे पियास-पियास ।
समुद्रहिं तिनिका सम गिनै, स्वाति बूँद की आस ॥ ४० ॥
मोंगत डोलत है नहीं, तजि घर भ्रान्त न जाय ।
तुलसी घातक भगत की, उपमा देत सजात ॥ ४१ ॥
तुलसी केवल राम पद, लागे सहज सनेह ।
तो घर घट बन पाट मई, कटाहु रहे किन देह ॥ ४२ ॥
कड़ा भयो बन-बन फिरे, जो बनि आई नाहिं ।
बनते-बनते बनि गयेउ, तुलसी घर ही माहिं ॥ ४३ ॥
कबीर मन निर्मल भया, जैसे गंगा नीर ।
पीछे लागे हरि फिरत, कछत कबीर-कबीर ॥ ४४ ॥

आत्मज्ञान

सर्व भूत में आत्मा, आत्म में सब भूत ।
यह गुणार्थ जिन्हें विदित, उनका ज्ञान प्रभूत ॥ ४५ ॥
अचरज को कातों कई, बिन्दु में सिन्धु समान ।
रहिमन अपने आपते, हेरन हार हिरान ॥ ४६ ॥
हेरत-हेरत हे सखी, रस्या कबीर हिराय ।
बूँद समानी समद में, सो कत डेरी जाय ॥ ४७ ॥
सेत आत्म अनुभूति रस, भूत सबस स्वाधीन ।
सके न करि कबहुँ कई, आत्मसाध बसहीन ॥ ४८ ॥
कबीर एक न जानियाँ, बहु जाना क्या छोड़ि ।
एकहि ते सब होत है, सब ते एक न छोड़ि ॥ ४९ ॥
विद्या बस धन रूप यक्ष, कुल सुत बनिता मान ।
सभी सुलभ संसार में, दुरलभ आत्म ज्ञान ॥ ५० ॥
धीव दूध में रमि रस्या व्यापक ही सब ठीर ।
दादू बकता बहुत है, मधि काढ़े ते और ॥ ५१ ॥
काम क्रोध मद लोभ की, जब लगि मन में खानि ।
तब लगि पण्डित मूरखी तुलसी एक समान ॥ ५२ ॥
मन मथुरा दित्त दारिका, काया काशी जान ।
दसबां द्वारा देहरा, तहाँ ज्योति पहचानि ॥ ५३ ॥
तन को जोगी सब करे, मन को करे न कोय ।
सब सिधि सहजे पाइके मो मन जोगी होय ॥ ५४ ॥
राम तुलावा मेझिया, कबिरा दीना रोय ।
जो सुख प्रेमी संग में, सो कैकुण्ठ न होय ॥ ५५ ॥
भाव-भाव की सिद्धि है, भाव-भाव में मेस ।
जो मानो ती देव है, नहीं मानो तो डेस ॥ ५६ ॥
डर उछाव हित धरम सी, असुभ करम की छानि ।
मन प्रसन्न रुचि अन्न सी, ज्यों प्यार छूटे जानि ॥ ५७ ॥
गावन में रोवन अहे, रोवन में ही राग ।
एक बैरानी गृही में, एक गृही बैराग ॥ ५८ ॥
सिद्ध हस्त कास्त्य सबै, जाके जित विश्वास ।
पूजत ऐपन की इया, तिय जिय पूरे आस ॥ ५९ ॥
जो पै जैसो होय तेहि, तैसो ही मिल ताय ।
मिलै गरकटा चोर को, साह हि साह भित्तय ॥ ६० ॥

जोति सरूपी हिय सबै, सब क्षीर में जोति ।
दीपक धरिये ताक में, सब घर आपा होति ॥ ६१ ॥
देखत है जग जात है, तउ ममता सों मेस ।
जानत हूँ मानत नहीं, देखत भूलौ खेस ॥ ६२ ॥
जेहि जेतो निड बैसित, देत दई पहुँचाय ।
सबकर खोरे को मिलै, जैसे सबकर आय ॥ ६३ ॥
नारायण के सुत नहिं, सपु करि गनियन न कोय ।
अबसर सहि बट बीज ज्यों, वृद्धतर तछवर होय ॥ ६४ ॥
रती-रती करि बढ़त, मन बढ़ जात असोस ।
घटे भाव के मन अहे, सहै न कोड़ी मोस ॥ ६५ ॥
देव सेव फल देत हैं, जाके जैसे भाय ।
जैसे मुख कर आरसी, देखो सोई दिखाय ॥ ६६ ॥

चेतावनी

दीन गँवाया हुनी से, हुनी न चाही साब ।
पाँच कुलमग्न मारिया, नाफिस अपने ह्राब ॥ ६७ ॥
हुनिया के धोखे मुआ, चले जो कुल की कान ।
तब कितका कुल साजि है, अब सौं धरा मतान ॥ ६८ ॥
रात गँवाई सोय कर, दिवस गँवायी खाय ।
हिरा जन्म अनोस है, कोड़ी बवसे जाय ॥ ६९ ॥
सदा नगारा कूँच का, बाजत आठी याम ।
रहिमन जग में आइकै, को करि रहा मुकाम ॥ ७० ॥
कबीर सो धन संधिये, जो आगे को होय ।
क्षीस चढ़ये पोटसी, से जात न देखा कोय ॥ ७१ ॥
छूटे मुख को मुख कई, मानत हैं मन मोद ।
खस्तक चबैना कास का, कमु मुख में कमु गोद ॥ ७२ ॥
पानी केरा बुदबुदा, यही हमारी जात ।
एक दिना छिप जाँवनें, ज्यों तारे परमात ॥ ७३ ॥
बैद मुआ रोगी मुआ, मुआ सकस संसार ।
एक कबीरा ना मुआ, जिनका राम अघार ॥ ७४ ॥
कासि करन्ता आज कर, आज करे सो ह्रास ।
पीछे कमू न होयगी, जो सिर आवे कास ॥ ७५ ॥
रुखी-सूखी खाय के ठण्डा पानी पीव ।
देख बिरानी चुपड़ी, मत सलचावे जीव ॥ ७६ ॥
तू मत जाने बाबरे, मेरा है सब कोय ।
पिंड प्राण से बँधि रह्य, तो अपना नहीं कोय ॥ ७७ ॥
बिन रखवारे बाहिरा, चिड़ियों जायो खेत ।
आधा परधा ऊबरे, चेत सकै तो चेत ॥ ७८ ॥
हम जसैं ज्यों साकड़ी, बास जसे ज्यों बास ।
सब जग जसता देखकर, भया कबीर उदास ॥ ७९ ॥
कबीर भूति समेटकर, पुड़ी जु बाँधी पेह ।
दिवस चारि का पेखना, अन्त खेह की खेह ॥ ८० ॥

कबीर सुपने रेन के, ऊषधि आवे रेन।
 जीव पड़ा बहु सुदि में, जै तो सैन न दैन ॥ ८१॥
 कछा किन्ही हम आव कर, कछा कहेंगे जाय।
 साप सेन तो दूर है, बसे पूस गँवाय ॥ ८२॥
 कबीर यह तन जात है, सकै तो सेहु बहोरि।
 नंगे हाथों वे गये, जिनके साख करोरि ॥ ८३॥
 यह तन कच्चा कुम्भ है, लिए फिरि है साब।
 डक्का लाग़ा फुटि गया, कछु न आया हाथ ॥ ८४॥
 सीबा करो सो करि चलो, रहिमन याही बार।
 फिर सीबा पैहो नहीं, दूर जान है बाट ॥ ८५॥
 हवा फिरे ना पूँछि है, कोउ कौड़ी के तीन।
 या सों बहरी नदी में, पाँच पखार प्रवीन ॥ ८६॥
 रहिमन विद्या बुद्धि नहीं, नहीं धरम जस दान।
 भू पर जनम वृषा धरे, पशु बिन पूँछ विधान ॥ ८७॥
 कांची काया मन अधिर, बिर-बिर काम करत।
 ज्यों-ज्यों नर निषङ्गक फिरि, त्यों-त्यों कास हसत ॥ ८८॥
 बेटा जाया तो का भवा, कछा बजावै बास।
 आना-जाना है रहा, ज्यों कौड़ी की मास ॥ ८९॥
 कौड़ी कौड़ी जोरि कै, जोरे साख करोरि ॥ ९०॥
 चलती बार न कछु मिस्यो, सई सँगोटी तोर ॥ ९०॥
 एक दिन ऐसा हो गया, सब सों पड़े बिछोड़।
 राजा रानी छत्रपति, सावधान किन होइ ॥ ९१॥
 कबीर कछा गरबियो, ऊँचे देख अबास।
 कस मरघट में सेटना, ऊपर जमि है घास ॥ ९२॥
 कबीर कछा गरबियो, कास गहै कर केस।
 ना जानै कब मारि है, कै घर कै परदेस ॥ ९३॥
 मानुस जन्म अमोल है, दीनों धर्य विताय।
 कछ किन्हीं जस जाय जग, रेनर कछत न काय ॥ ९४॥
 कबहु तप्यो पर ताप ते, हरी कबहु पर पीर।
 आसा हीन अधीर कहैं, कबहुँ बँधायी धीर ॥ ९५॥
 आवी आपति कास गँह, कहुँ काहु के काम।
 आप तस्यो सन्ताप कहुँ, है औरहि आराम ॥ ९६॥
 हरे कबहुँ दुःख दीन के, प्रिय भ्रानन पै खेल।
 विपति बिहारी काहु की, आप आपही खेल ॥ ९७॥
 देखत पर परिताप कछु, कीन्हीं अशु निपात।
 अत्याचार अनीति बहु, देखि जरे कहुँ गात ॥ ९८॥
 कहुँ अनाथ असहाय की, कीन्हीं कछुक सहाय।
 पार कियो कहुँ कछु को, अपनों हाथ गहाय ॥ ९९॥
 देखि बसो अज्ञान धन, दुःखिया वारिब देस।
 ज्ञान बयारि बहाय कहुँ, जड़ता करी असेस ॥ १००॥
 काबा कासी त्यागि अब, देखहु दीनन गेह।
 वरिब नरायण ही जहाँ, दर्शन देत सबेह ॥ १०१॥

महानता के लक्षण

जे गरीब सो हित करें, धन रहिम बे लोग।
 कहीं सुदामा बापुरो, कृष्ण भिताई योग ॥ १०२॥
 शत-शत प्रणवों तासु को, पीऊँ चरण पखार।
 ऊँचा जग में है वही, जाके उच्च विचार ॥ १०३॥
 धनि रहिम जसपंक को, लघु जिय पियत अघाय।
 उबधि बड़ाई कौन जो, जगत पियासो जाय ॥ १०४॥
 दूर कछा नियरे कछा, होनहार सो होय।
 नरियत की जड़ सींचिये, फल में प्रकटे तोय ॥ १०५॥
 दया धर्म हिरदै बसै, बोलैं अमृत बैन।
 तेई ऊँचे जानिए, जिनके नीचे नैन ॥ १०६॥
 बड़े भलाई के जतन, तजैं लोक की लाज।
 बने चतुर्भुज घोर हूँ, नृप कच्चा के काज ॥ १०७॥
 बुरी करें पर जे बड़े, भली करें हित धारि।
 जैसे दधि बौँध्यो तऊ, कपि दल दियो उत्तारि ॥ १०८॥
 आप कष्ट सहि और की, शोभा करत सपूत।
 चरखी पीजन चरख छिचि, जग हांकत ज्यों सूत ॥ १०९॥
 बड़े वचन पलटें नहीं, कहि निरवाहैं धीर।
 कियो विभीषन संकपति, पाय विजय रघुवीर ॥ ११०॥
 तुलसी तीनों लोक में, चातक ही को साथ।
 सुनियतु जासु न दीनता, किये दूसरों नाथ ॥ १११॥
 ऊँची जाति पपीहरा, पियत न नीची नीर।
 कै यावै धनस्याम सों, कै दुःख सहै शरीर ॥ ११२॥
 कै बरसै धन समय सिर, कै भरि जनम निरास।
 तुलसी याचक चातकहि, एक तिहारी आस ॥ ११३॥
 कै आधीन यावै नहीं, सीस नाइ नहिं सेइ।
 ऐसे मानी याचकहि को बारिब बिनु देइ ॥ ११४॥
 व्याधा बघ्यो पपी हरा, परेउ गंग जल जाय।
 चौंच भूँदि पीवै नहीं जनि जीवन प्रन जाय ॥ ११५॥
 प्यास सहत पी सकत नहिं, औषट घाटनि पान।
 गज की गरुबाई परी, गज के ही गर आन ॥ ११६॥
 मान सहित विष पान करि, शम्भु भये जगदीश।
 बिना मान अमृत पियो, राहु कटायी सीस ॥ ११७॥
 अभी पियावत मान बिन, रहिमन मोह न सुहाय।
 मान सहित मरिवाँ भली, जो विष देय बुलाय ॥ ११८॥
 दीप सिखा चलती हुई, बिमल सिखाती ज्ञान।
 तब तक नर जसता नहीं, जगत न करता मान ॥ ११९॥
 नीरख रहता नीर में, नहीं भोगते पात।
 सज्जनजन जग बीच ज्यों, रहते हैं दिन-रात ॥ १२०॥
 चास चलो जग में बही, जिससे बनो मछान।
 सज्जग बने बन जाउगे, पावोगे सम्मान ॥ १२१॥
 ऊँच जनम जन जे हरे, निति नमि-नमि परवीर।
 गिरिबर ते हरि-हरि धरनि, सींचत है जो नीर ॥ १२२॥

संतत सहज सुभाव सो, सुजनि सब सनमानि ।
सुधा सरस सींचत सबन, सनी सनेही बानि ॥ १२३ ॥
घटुर आपनी और का, साधत काज सतोस ।
अंगद अपनी राम की, काज कियी अनमोस ॥ १२४ ॥
भले-बुरे हूँ सों करत, उपकारी उपकार ।
तरुवर छाया करत है, नीच न ऊँच विचार ॥ १२५ ॥
तुलसी संत सुरम्य तरु, फूल फलहिं पर हेत ।
ये इततें पाहन इनत, वे उतते फल देत ॥ १२६ ॥
तुलसी देवल देव में, लागे लाख करोर ।
काग अभागें हसि मरें, महिमा भई न बोर ॥ १२७ ॥
रामलखन विजयी भये, बनहुँ गरीब नजाब ।
मुखर बालि रावन गये, घर ही सहित समाज ॥ १२८ ॥
पशु-पक्षी हूँ जान हई, अपनी-अपनी पीर ।
जब सुजान जानें तुम्हें, जब जानी पर पीर ॥ १२९ ॥
अभित अथा है हो भरे, जदपि समुद अभिराम ।
कौन काम के जो न तुम, आये प्यासन काम ॥ १३० ॥
काज बिगारत आपनों, सुजन और के काज ।
बलिहि निवारत नैन की, हानि सही भृगुराज ॥ १३१ ॥
तरुवर फल नहिं छात हैं, सरवर पियहि न पान ॥ १३२ ॥
कहि रहीम परकाज हित, संपति संचहिं सुजान ॥ १३३ ॥
चन्दन तरु को यदपि बिधि, फल और फूल न दीन ।
तदपि अहो ! निज तन करन, औरन ताप विहीन ॥ १३४ ॥
अहित किये हूँ हित करै, सज्जन परम सधीर ।
सोखे हूँ शीतल करे, जैसे नीर समीर ॥ १३५ ॥
ओरहिं ते कोमल प्रकृति, सज्जन परम दयालु ।
कौन सिखावत है कहो, राज हंस को चाल ॥ १३६ ॥
कबिरा सोई पीर है, जो जाने परपीर ।
जो परपीर न जानई, सो काफिर वे पीर ॥ १३७ ॥
सन्त कष्ट सहि आपु ही, सुखि राखे जु समीप ।
आप जै तऊ और की, करे उज्जरी दीप ॥ १३८ ॥
वृक्ष कबहुँ नहिं फल भर्खें, नदी न संधै नीर ।
परमारथ के कारने, साधुन धरें शरीर ॥ १३९ ॥
जो तोकों कांटा बुढ़े, ताहि बोड़ तु फूल ।
तोकों फूल के फूल हैं, बाकों हैं तिरभूल ॥ १४० ॥
अग्नि धर्म है दहन ज्यों, जल का शीतल धर्म ।
परहित जीवन मरण त्यों, नर का निर्मल धर्म ॥ १४१ ॥
तु सज्जन या बात की, समुझि देख मन मोहिं ।
अरे दया में जो मजा, सो जुलमन मैं नाहिं ॥ १४२ ॥
सज्जन हो, या बात को, करि देखा जिय गौर ।
बोखन चित्तवन चलन बड़, दरद-बंत की और ॥ १४३ ॥
जब देखी तब भलेन तैं, सजन भसाई होहि ।
जहिं जै अंगर ज्यों, तजत नहिं खसबोहि ॥ १४४ ॥

भले-बुरे छोटे-बड़े, रहें बड़ेनि पै आय ।
मकर असुरसुरगिर अनल, दधि मधि सकल बसाय ॥ १४५ ॥
बड़े भार से निरबहै, तजत न खेद विचारि ।
शेष धरा धरि धर धरें, अबसों देत न दारि ॥ १४६ ॥
बिन बूझे ही जानिए, नृप मूरख मन मोहि ।
छलके जोछे नीर घट, पूरे छलकत नाहिं ॥ १४७ ॥
अति उदारता बड़न की; कह सों करने कोय ।
चातक जायै तनिक धन, बरस मरि धन तोय ॥ १४८ ॥
भले-बुरे निबहें सबै, महत पुरुष के संग ।
चन्द सर्प जल अग्नि ए, बसत क्रमु के अंग ॥ १४९ ॥
बिना कहे हूँ सत पुरुष, पर की पूरे आस ।
कौन कहत है सूर्य के, धर-धर करत प्रकास ॥ १५० ॥
बड़े-बड़े सों रित करें, छोटे सों न रिसाय ।
तब कठोर तीरे पवन, कोमल तुन बधिं जाय ॥ १५१ ॥
बड़े बड़ाई ना करें, बड़े न बोलें बोल ।
रहिमन हीरा कब कहैं, लाख टका मेरी मोल ॥ १५२ ॥
जो बड़ेन कौं लपु कहीं, नहिं रहीम घटि जाहि ।
गिरधर मुरलीधर कहे, बपु दुखयावत नाहिं ॥ १५३ ॥
नीति-अनीति बड़े सों, रित धरि देत न गारि ।
भगु ज र दीनी सात पै, कीनी हरि मनुहारि ॥ १५४ ॥
जो जितनी सेवा करे, ताकी तिती बढ़ाय ।
काम करें सब जगत के, ताते त्रिभुन राय ॥ १५५ ॥
विपति बड़े ही सहि सकें, इतर विपति ते दूर ।
तारे न्यारे रहत हैं असे राहु शशि सूर ॥ १५६ ॥
दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखे न कोय ।
जो रहीम दीनहिं लखे, दीन बन्धु सम होय ॥ १५७ ॥
यह रहीम निज संग ले, जनमत जगत न कोय ।
बैर प्रीत अभ्यास जल, होत होत ही होय ॥ १५८ ॥
त्यों रहीम सुख-दुःख सहत बड़े लोग सह सान्ति ।
जगत चन्द जेहि भांति सो, अवतत ताही भांति ॥ १५९ ॥
रन बन व्याधि विपति में रहिमन मरि न रोय ।
जो रक्षक जमनी जठर, सो हरि गये न सोय ॥ १६० ॥
साधु धरित नवनीत सो, सख्यो कबीर वृथाहिं ।
बह अपने आतप द्रव्य, यह बूझे दुख मोहिं ॥ १६१ ॥
पर कारज साचहिं सदा, तजि मुख स्वार्थ अनन्त ।
पदम पत्र जिमि जग जियें, धनि-धनि सन्त महन्त ॥ १६२ ॥

मनुष्यता के लक्षण

जग की सारी सम्पदा, धर्म बिना निस्तार ।
लक्षण बिना जैसे बने, ध्वजनि बिबिध प्रकार ॥ १६३ ॥
सत्य शील शुधि ब्रह्म पर, न्याय परासन धीर ।
शोक न करते दुःख पड़े, रहत सदा गम्भीर ॥ १६४ ॥
कहे वचन पसैं नहिं, जो सत पुरुष सधीर ।
कहत सबै हरिचन्द नृप, भरयो नीच धर नीर ॥ १६५ ॥

कबीर आप ठगाइये और न ठगिये कोय ।
 आप ठग्या सुख ऊपजे और ठग्या दुःख होय ॥ १६५ ॥
 रहिमन वित्त अधर्म को, जरत न लागे वार ।
 चोरी करि होरी रची, भई तनिक में छार ॥ १६६ ॥
 माता-पिता गुरु का करत, जे आदर सत्कार ।
 ते भाजन सुख सुयस्र के, जीवें वर्ष हजार ॥ १६७ ॥
 श्रवण करी यों कीजिये, माता-पिता की सेव ।
 कांधे कावरि ले फिरयो, पूजे जैसे देव ॥ १६८ ॥
 रहिमन पानी रखिये, बिन पानी सब सून ।
 पानी गये न ऊबरे, मोती मानुस घून ॥ १६९ ॥
 जी पै जग खेले बिना, मिलै न यत्त, धन, भीत ।
 काजल, मंढवी, दीप ये बता रहे परसीत ॥ १७० ॥
 धीरज धर कारज करे, आरत बनें न नेक ।
 यही मार्ग है धर्म को, कटते कष्ट अनेक ॥ १७१ ॥
 स्वच्छ करे तन यत्तन सों, मन वर्जित कुविचार ।
 मुनि गण ज्ञान निधान यह, शोध किया निधार ॥ १७२ ॥
 पर नारी के नेह में, फँसते जान अज्ञान ।
 जान-बूझ कर वो मनो करते हैं विष पान ॥ १७३ ॥
 पर तिय माता सम गिनै, पर धन धूरि समान ।
 अपने सम सबको गिनै, यही ज्ञान विज्ञान ॥ १७४ ॥
 सिर राखै सिर जात है, सिर काटे सिर सोय ।
 जैसे बाती दीप की कटि उजियारा होय ॥ १७५ ॥
 अति अनीति लहियै न धन, जो प्यारी मन होय ।
 पाये सोने की छुरी, पेट न मारे कोय ॥ १७६ ॥
 एक भले सबको भलो, देखो सबद विवेक ।
 जैसे सत् हरिश्चन्द्र को, उधरे जीव अनेक ॥ १७७ ॥
 एक बुरे सबको बुरी, होत जगत परकास ।
 एक दुर्योधन के बुरे, सब छत्रिन को नास ॥ १७८ ॥
 मान होत है गुननि ते, गुन बिन मान न होइ ।
 भुक सारी राखें सबै, काग न राखत कोइ ॥ १७९ ॥
 आडम्बर तजि कीजियै सुन संग्रह चित चाय ।
 छीर रहित न विकै गऊ, आनी घंट बैघाय ॥ १८० ॥
 करे न कबहु साहसी, नीच पतित दुरे काज ।
 भूख सहै पर घास को, नहीं भाखै भृगराज ॥ १८१ ॥
 सहज सास गुन सजन के, खस सों होत न भंग ।
 रतन दीप की ज्योति ज्यों, बुझत न बात प्रसंग ॥ १८२ ॥
 सबको सुख पहुँचावहीं, सुख जनन की हेत ।
 बुराईं सूरज उदित ज्यों, कमलनको सुख देत ॥ १८३ ॥
 अमित सोध ते छानि बड़, पै न करें परसीत ।
 हेम हिरन पीछे गये, राम गवाई सीत ॥ १८४ ॥
 आप तरे तारे पथिक, काठ नाव चित चाव ।
 बूढ़े बोरे और कौं, ज्यों पत्थर की नाव ॥ १८५ ॥

जुआ खेले होतु है, सुख सम्पत्ति को नास ।
 राज काज नल को मुट्ठी, पाण्डव किए बनवास ॥ १८६ ॥
 कमला चिर न रहीम कहि, सखत अधम जे कोय ।
 प्रभु की सों अपनी कहैं, क्यों न फजीहत होय ॥ १८७ ॥
 बिना दिये न मिलै कसु, यह समझी सब कोय ।
 होत सिसिर में पात तरु, सुरभि सपल्लव होय ॥ १८८ ॥
 चिरजीवी तन हू तजे, जाका जग जग वास ।
 फूल गये हू बूल की, रहै तेल में बास ॥ १८९ ॥
 करे बुराई सुख चहै, कैसे पावै कोइ ।
 बोवे पेड़ बबूल को, आम कहीं ते होय ॥ १९० ॥
 होय बुराई तें बुरी, यह बानी निरधार ।
 खाई खोदे और कौं, ताको कूप तैयार ॥ १९१ ॥
 देत न प्रभु कसु बिन दिये, दिये देत यह बात ।
 ले तन्दुल धन विप्र को, तुप्त कियौ यदुनाथ ॥ १९२ ॥
 वचन रचन का पुरुष के, कहे न छिन ठहराय ।
 ज्यों कर पद मुख कसु परे, निकसि निकसि दुरि जाय ॥ १९३ ॥
 सुबुध बीध परि दुहुन के, करत कलह दुख दूर ।
 करत देहरी दीप ज्यों, घर आँगन तम दूर ॥ १९४ ॥
 खल सज्जन सूचीन के भाग उहुँ सम भाय ।
 निगुन प्रकासे छिद्र कौं, सगुन सु छापत जाय ॥ १९५ ॥
 विद्या बिन न विराज हीं, जदपि सरूप कुलीन ।
 ज्यों शोभा पावै नहीं, टेसू बौंस विहीन ॥ १९६ ॥
 ज्ञान गरीबी, गुड़ धरम, नरम वचन निरमोख ।
 तुलसी कबहु न छोड़िये, शील, सत्य संतोष ॥ १९७ ॥
 जीवन-भरण विचार के, कूड़े राम निवारि ।
 जिस पथ से चलना तुझे, खाई पन्थ सँभारि ॥ १९८ ॥
 धन धोरो इप्पत बड़ी, कइ रहीम क्या बात ।
 जैसे कुल की कुल बधु, चियजन मांड समात ॥ १९९ ॥
 साधु कलषन कठिन है, लम्बा पेड़ खजूर ।
 चढ़े तो चाखे प्रेम रस, गिरे तो चकनाचूर ॥ २०० ॥
 आग लगी आकाश में, झरि-झरि परे अंगार ।
 कबिरा जर कंचन भया, कांच भया संसार ॥ २०१ ॥
 बुध जन शील न त्यागिये, धनी मूर्ख अबरेख ।
 कुलजा सीसन परिडे, वेष्टा भूषित देख ॥ २०२ ॥
 सप्रहसित सहित समस्त जग, सुख जानु सब काहु ।
 तुलसी यह मति धारु उर, दिनप्रति अति सख साहु ॥ २०३ ॥
 कष्ट परहु साधु जन, नेक न होत मलान ।
 ज्यों-ज्यों स्वर्ण तपाइये, त्यों-त्यों निरमल बान ॥ २०४ ॥
 सुधरी बिगरे बेग ही, बिगरी फिर सुधरी न ।
 दूध फटे कौंवी परे, सो फिर दूध बने न ॥ २०५ ॥
 सहज रसीली होय सों, करे अहित पर हेत ।
 जैसे पीड़ित कीजिये, ऊख तऊ रस देत ॥ २०६ ॥

इरे न काहू दुष्ट सों, जाहि प्रेम की बान ।
 और न छोड़े कैतकी, तीखे कंटक जान ॥ २०७ ॥
 सब है सधु है माँगियौ, जा में फेर न सार ।
 बलि पै जावत ही भये, बावन तन करतार ॥ २०८ ॥
 होइ विपुल संपति तऊ, गुन युत भये उदोत ।
 तेस भर्यौ दीपक तऊ, गुन बिन जोत न होत ॥ २०९ ॥
 कइ भयो जो धन भयो, गुन में आदर होइ ।
 कोटि होइ उत्तम धनुष, गुन बिन गुह्य न कोइ ॥ २१० ॥
 रस पावै बिनहु रसिक, रस उपजावत संत ।
 बिन बरसै सरसै रहै, जैसे विटप बसन्त ॥ २११ ॥
 जो प्राणी परबस परयो, सो दुःख सह्य अपार ।
 जूष बिछोड़ी गज सहै, बन्धन अंकुश मार ॥ २१२ ॥
 मन प्रसन्न तन चैन जह, स्वेच्छाचार विचार ।
 संगी मृगी मृग सुख सबै, वन बिस तृन आहार ॥ २१३ ॥
 तुलसी साधी विपति के, विद्या विनय विवेक ।
 साहस सुकरित, सत्य व्रत, राम भरोसे एक ॥ २१४ ॥
 विद्या विनय विवेक रति, रीति जासु डर होइ ।
 राम परायन जो सदा, आपद ताहि न होइ ॥ २१५ ॥
 बड़े गुनी सपुता गहैं, तेहि मन भानत धीर ।
 मर तऊ प्यारी सगे, शीतल सुरभि समीर ॥ २१६ ॥
 जहाँ रहै गुनवंत नर, ताकी शोभा होत ।
 जहाँ बर दीपक तहाँ निहयै करे उदोत ॥ २१७ ॥
 घुरट घाटती है हियो, होय रंग बदरंग ।
 गोंजा और अफीम ये, करें देह अन रंग ॥ २१८ ॥
 तजी नसा जो नासता, धन बस कस मुख कान्ति ।
 दे आलस मासस करे, बुद्धि तन मन भ्रान्ति ॥ २१९ ॥

सत्य और असत्य

सौच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ।
 जाके भीतर सौच है, ताके भीतर आप ॥ २२० ॥
 सौच बिना सुमिरन नहीं, भय बिन भक्ति न होय ।
 पारस में परवा रहे, कंचन केहि बिधि होय ॥ २२१ ॥
 जाकी सौची सुरति है, ताका सौचा खेल ।
 आठ पहर चौंसठ घड़ी, है साँई सी मेख ॥ २२२ ॥
 साँई सों सौचा रखे, साँई सौच सुझाय ।
 भावै सत्य के कइ रख, भावै भुंज मुझाय ॥ २२३ ॥
 मुक्ति सत्य के साथ है, यतन करो मत कोय ।
 खेती करो अनाज की, सहज प्राप्त भुस होय ॥ २२४ ॥
 चलिये पेखें सौच के साँई सौच सुझाय ।
 सौचों जै न आग तें, झुले हीं हरि जाय ॥ २२५ ॥
 सत्य वचन मुख जो कइत, ताकी चाह सराय ।
 गाहक आवत दूर ते, सुनि एक शब्दी शाह ॥ २२६ ॥
 झूठ बसै जा पुरुष में, ताही की अप्रतीत ।
 चोर जुआरी सो भले, यातें करत न प्रीत ॥ २२७ ॥

कबहुँ झूठी बात को, जो करिहै पतियाय ।
 झूठे संग झूठों परत, फिर पाठें पछताय ॥ २२८ ॥
 जग परतीत बढ़ायये, रहिये सौचे होय ।
 झूठे नर की सौच हू, साखि न माने कोय ॥ २२९ ॥
 भवन बीच रहू विमल बनि, क्यों जावहु बन बेर ।
 तजो दुःखद निजि कुटिल मति, सुख है चारों ओर ॥ २३० ॥
 वैष्णव भया तो क्या भया, बूझा नहीं विवेक ।
 छप्पा तिलक लगाय कर, दगध्या लोक अनेक ॥ २३१ ॥
 न्याये धोये क्या भया, जो मन पैस न जाय ।
 मीन सवा जल में रहै, धोये बास न जाय ॥ २३२ ॥
 दुनिया मन्दिर देहरी, शीघ्र नवावन जाय ।
 द्विदे भीतर हरि बसैं, तू ताही सों ली सोइ ॥ २३३ ॥
 मुल्ला मुनीर क्या चढ़ै, साँई न बहरो होइ ।
 जा कारन तू बाँग दे, दिस के भीतर सोइ ॥ २३४ ॥
 वैष्णव हुआ तो क्या हुआ, मास मेसी चारि ।
 बाहर कंचनबा रछ, भीतरी भरी भंगारि ॥ २३५ ॥
 श्लेख सबूरी बाहरा, क्या हज कावे जाय ।
 जाका दिस साबित नहीं, ताकी कछैं सुदाय ॥ २३६ ॥
 तीरथ करि-करि जग मुजा, हूवे पानी न्याय ।
 राम नाम जप के बिना, कास पसीटा जाय ॥ २३७ ॥
 काशी कौवे घर करे, पीवै निर्मल नीर ।
 मुक्ति नहीं हरि नाम बिन, यों कछे वास कबीर ॥ २३८ ॥
 माता पडरे कुछ नहीं, गाँठ हृदय की खोय ।
 हरि चरन पित राखिये, तो अमरापुर होय ॥ २३९ ॥
 केहन कछ बिगाड़िया, जो मूढ़े ली वार ।
 मन की काह न मुचिया, जा में विषय विकार ॥ २४० ॥
 कावा फिर काशी भया, राम भया रहीष ।
 मोटा घून मैवा भया, बैठि कबीरा जीय ॥ २४१ ॥
 हिन्दू नर राम कहि, मुतस्लिम कछें सुदाय ।
 कछें कबीर तो जीवत, दुष्टमें कभी न जाइ ॥ २४२ ॥
 पत्थर केरा फूटला, करि फूँवै करतार ।
 इसी भरोसे जे रहे, ते बुद्धें मैझार ॥ २४३ ॥
 दुनिया ऐसी बावरी, पत्थर पूजन जाय ।
 घर की चाकी कोई न पूजे, जाका पीसा जाय ॥ २४४ ॥
 माता फेरत जुग मय, भिटा न मन का फेर ।
 करका मनका डारि है, मनका मनका फेर ॥ २४५ ॥
 पाहन फूँवै हरि मिलैं, तो मैं फूँवै पछार ।
 ताते ये चाकी भली, पीस जाय संसार ॥ २४६ ॥
 कौंकर पाथर जोर कर, मतखिद सई पुनाय ।
 ता चढ़ि मुस्ता बाग दे, बहरो भयी सुदाय ॥ २४७ ॥

सत्संग

तात् स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला एक अंग ।
सुख न ताहि सकल भित्ति, जो सुख कृष्ण सत्संग ॥ २४८ ॥
हरि से तू जानि हेति, करि हरिजन से हेत ।
भास मुखक हरि देति हैं, हरिजन हरि ही हेत ॥ २४९ ॥
कबिरा संगति साधु की, जो की भूरी खाय ।
खीर खाइ भोजन मिलै, नहीं कुसंग में जाय ॥ २५० ॥
कबिरा संगति साधु की, ज्यों गन्धी की बास ।
जो कहु गन्धी वे नहीं, तोऊ बास-सुबास ॥ २५१ ॥
नीचहुँ उत्तम संग भित्ति, उत्तम ही हवै जाय ।
गंग संग जल निम्न हू, गंगोदक कहलाय ॥ २५२ ॥
जहाँ सुजन तहं प्रीति है, प्रीति तहं सुख छैर ।
जहाँ पुष्प तहाँ बास है, जहाँ बास तहं भीर ॥ २५३ ॥
यों कहि रहीम यज्ञ होत है, उपकारी के संग ।
बौटन बारे को सगे, ज्यों मेहदी को रंग ॥ २५४ ॥
जाति न पूछे साधु की पूछि सीजिये ज्ञान ।
भोस करो तलवार को, पड़ा रहन दो म्यान ॥ २५५ ॥
असन-बसन सुत नारि सुख, पापिह के घर होय ।
संत समागम प्रेम धन, सुखसी कुसंग बोय ॥ २५६ ॥
सो गुरु राम सुजान सम, नहीं बिचमता सेत ।
ताकी कृपा कटाख रहत न कठिन कसेत ॥ २५७ ॥
सुखसी सतगुरु के अहर्नि, अनन्द मय उपदेश ।
संसय रोग नसाय सब, पावै पुनि न कसेत ॥ २५८ ॥
रुचि बाढ़िह सत्संग नहीं, नीति बुधा अधिकाय ।
होत ज्ञान बल पीन अस, त्रिजिन विपति मिट जाइ ॥ २५९ ॥
स्वारथ सो जानहु सदा, जासों विपति नसाय ।
सुखसी गुरु उपदेश बिनु सो किम जानों जाय ॥ २६० ॥
सत्संगति को फल यही, संसय छड़ न सेत ।
हैं असधिर शुचि सरल चित्त, पावैं पुनिन कसेत ॥ २६१ ॥
यथा अमल पावन पवन, पाय सुसंग कुसंग ।
गहत सुबास-कुबास तिथि, जानहु चित्तन प्रसंग ॥ २६२ ॥
सीप गयो मुक्ता भयो, कदली भयो कपूर ।
अहिफन गयो तो विष भयो, संगति के फल सूर ॥ २६३ ॥
होत चाह तब होतु है, प्रेम जु सज्जन संग ।
पास दिवै बिन बास पर, चढे न गहरी रंग ॥ २६४ ॥
जैसी संगति तैसई, इज्जत भित्ति है आय ।
सिर पर मखमल से डरै, पनही मखमल पाय ॥ २६५ ॥
होत सुसंगति सहज सुख, दुःख कुसंग के धान ।
गन्धी और सुहार की, देखहु बैठि दुकान ॥ २६६ ॥
मिलै सुसंगति उज्ज्वल, करत नीच सी प्यार ।
खर का गैंग न्याइये, तऊ न छाँड़ि छार ॥ २६७ ॥
जैसे धानक सेइये, तैसों पूरे काम ।
सिंह गुफा मुक्ता मिलै, स्यार छुरी-छुरी धाम ॥ २६८ ॥

पण्डित पण्डित सौ मिलै, संसय मिटत न बेर ।
मिलै दीप दुहुन कौ, होत अंधेर निवेर ॥ २६९ ॥
जाने हृदय कठोर तेहि, जगे न हित के बेन ।
मैन बान जो पथर है क्यों हूँ किये भिवेन ॥ २७० ॥
तिनके कारज होत में, जिनके बड़े सहाय ।
कृष्ण पक्ष पाण्डव जयी, कौरव गये विलाय ॥ २७१ ॥
उत्तम जन सौ मिलत ही, अवगुन हूँ गुन होय ।
धन संग खारो उदधि भित्ति, बरसै भीठी तोय ॥ २७२ ॥
जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग ।
चन्दन बिष व्यापत नहीं, सिपटे रहत भुजंग ॥ २७३ ॥
रहे समीप बड़ेन के, होत बड़ो हित मेल ।
सब ही जानत बढ़त है, वृक्ष बराबर बेल ॥ २७४ ॥
उपकारी उपकार जग, सबसों करत प्रकाश ।
ज्यों कहु मधुरे तऊ मलय, मलयज करत सुबास ॥ २७५ ॥
जुदे-जुदे नहीं सहस कहु, मिलै विरंगु रंग ।
कत्था संग घूना परत, होत सास भित्ति संग ॥ २७६ ॥
होय शुद्ध भित्ति कहुषता सब संगति को पाय ।
जैसे पारत को परति, सोक कनक हूँ जाय ॥ २७७ ॥
उत्तम जन के संग में, सहज ही सुख बास ।
जैसे नृप सावै अतर, सेय सभा जन पास ॥ २७८ ॥
जहि प्रसंग वृषन सगे, तजिये ताकी साथ ।
मदिरा मानत है जगत, दूध कलासी हाथ ॥ २७९ ॥
जाके संग दूषन दुरे, करिए तिहि पहिचान ।
जैसे समझे दूध सब सुरा कलारी पानि ॥ २८० ॥
जिहि देखें साधन सगे, तासों वृष्टि न जोर ।
ज्यों कोई चितवै नहीं, चौब चन्द की ओर ॥ २८१ ॥
इक समीप बसि अहित करि, इक दित कर बसि दूर ।
हंस विनासे कमल बल, अमल प्रकासे सूर ॥ २८२ ॥
सत संगति में सुख बड़ा, जो करि जाने कोय ।
आधो छिन सत्संग को, कलिनल छरै खोय ॥ २८३ ॥
कबीर बन-बन में फिरा, कारन अपने राम ।
राम सरीखे जन मिले, तिन सारे सब काम ॥ २८४ ॥
कबीर चन्दन के बिरे, बैठे आक पलास ।
आपु सरीखे करि लिये, जा बैठे उन पास ॥ २८५ ॥
कबीर खाई कोट की, पानी पिबै न कोइ ।
जाय मिले जब गंग में, सब गंगोदक होइ ॥ २८६ ॥
रहिमन उज्ज्वल मरन को, उचित न नीची संग ।
पुति काजल की कोठरी, धब्बा सागत अंग ॥ २८७ ॥
कदली सीप भुजंग मुख, स्वाति एक गुन तीन ।
जैसी संगति बैठिए, तैसों फल दीन ॥ २८८ ॥
बसि कुसंग चाहत कुसल, यह रहीम जिय सोस ।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बख्यो परोस ॥ २८९ ॥

कुटिलनि संग रहीम कहि, साथ विपति उठाहि ।
ज्यों नैना सैना करें, उरज उमेठे जाहिं ।। २६० ।।
कहु रहीम कैसे निभे, बेर केर की संग ।
वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग ।। २६१ ।।
मुकता करि करपूर कर, चातक जीवन जाय ।
रहीम ऐसा स्वाति जल, ब्याल बदन विष होय ।। २६२ ।।

विवेक

गरल वृक्ष संसार में, दोइ फल उत्तम सार ।
स्वाध्याय रस पान पुनि, सत संगति सार ।। २६३ ।।
ब्रह्मचर्य आश्रम सुखद, श्रम सहि करो सप्रीत ।
बड़े बाल औ बालिका, यही सनातन रीति ।। २६४ ।।
विद्या धन आधार है, विद्या बल आधार ।
यह मत जो धारण करे, वह सब गुण आधार ।। २६५ ।।
कर्तव्या कर्तव्य गनि, गहे प्रशस्त विचार ।
रहें सदा सुविवेक रत, सौंधी शिक्षा सार ।। २६६ ।।
पढ़ी न आई काम पै, चित्रप्रीव की उक्ति ।
अपनी-अपनी क्यों करौ, सबतें सबकी युक्ति ।। २६७ ।।
निबल, निरुधर, निर्धनी, नास्तिक, निपट निरास ।
जड़ कायर करि देत हैं, नरहि अन्य विश्वास ।। २६८ ।।
बिना ग्यान कौं करम कहूं, तारि सके संसार ।
कहा काट करिही जु कर, धार बिना तरवार ।। २६९ ।।
जनमत ही पावै नहीं, भली बुरी कोउ बात ।
बुझत-बुझत पाइये, ज्यों-ज्यों समझत जात ।। ३०० ।।
भली ज्ञान, अज्ञान नहिं, है अज्ञान न ज्ञान ।
भानु उदे तो तम नहीं, है तम उदे न भान ।। ३०१ ।।
सरसुति के भण्डार की, बड़ी अपूरव बात ।
ज्यों खरचे त्यों-त्यों बढ़े, बिन खरचे घटि जात ।। ३०२ ।।
देखा देखी करत सब, नाहिन तत्व विचार ।
यह निश्चय ही जानिए भेड़ चाल संसार ।। ३०३ ।।
ज्यों-ज्यों छुटे श्रवान पन, त्यों-त्यों प्रेम प्रकास ।
जैसे कैरी आम की, पकरत पके मिठास ।। ३०४ ।।
गहत तत्व ज्ञानी पुरुष, बात विचार-विचार ।
मथनि हरितजि छाछ को, पाखन सेत निकारि ।। ३०५ ।।
या लच्छन ते जानिये, उर अज्ञान निवास ।
अरुधि होय सत्संग में, रुचि हाल परिहास ।। ३०६ ।।
ग्रन्थ कीट बनि व्यर्थ क्यों, करत सुबुद्धि विनास ।
खोलहु द्वार दिभाग के, पावहु पुन्य प्रकास ।। ३०७ ।।
केवल ग्रन्थन के पढ़े, आवागमन न जाय ।
षट्तरस भोजन लखें तैं, बिन छाये न अघाय ।। ३०८ ।।
होय कछु समझे कछु, जाकी मति विपरीत ।
कमलवायरोगी लखै, श्याम सेत को पीत ।। ३०९ ।।

कोउ बिन देखे बिन सुने, कैसे सकै विचार ।
कूप भेख जाने कहा, सागर को विस्तार ।। ३१० ।।
सौंघ-झूठ निरनय करे, नीति निपुन जो होय ।
राज हंस बिन को करे, नीर-छीर कौ दोष ।। ३११ ।।
फल बिचार कारज करी, करहु न व्यर्थ अमेल ।
ज्यों तिल बाय पेरिए नाहिन निकसै तेल ।। ३१२ ।।
पीछे कारज कीजिये, पहले पहुँच बिचार ।
कैसे पावत उज्ज फल, बाबन बाहं पसार ।। ३१३ ।।
फिर पीछे पछताइय, जो न करे मति सुध ।
बदन जीम हिय जरत है, पीबत ताती दूध ।। ३१४ ।।
अन्तर अंगुरी चारि कौ, सौंघ-झूठ में होइ ।
सब मानें देखी कही, सुनी न माने कोइ ।। ३१५ ।।
जहाँ ज्ञान तहं धर्म है, जहाँ झूठ तहाँ पाप ।
जहाँ लोभ तहं कास है, जहाँ दमा तहाँ आप ।। ३१६ ।।
तन सुखाइ पैजर करे, धरे रैन दिन ध्यान ।
तुलसी भिटे न बासना, बिना विचारे ज्ञान ।। ३१७ ।।
कल्पवृक्ष को चित्र सिद्धि, कीन्हे विनय हज्जार ।
वित्त न पाइय ताहि सों, तुलसी देखु बिचार ।। ३१८ ।।
अनुपान साक्षी रहित, होत नहीं परमार्थ ।
कहैं तुलसी प्रत्यक्ष जो, तो कहइ अपर को आन ।। ३१९ ।।
प्रथम ज्ञान समुझ हिये, विधि निषेध व्यवहार ।
उचितानुचितहिं हेर हिय, करतब करिय सँभार ।। ३२० ।।
वेद पुराणहु शास्त्र ज्ञान तत बुधि थल अनुपान ।
अनुभव बुद्धि विवेक युत, सो तुलसी परमान ।। ३२१ ।।
तुलसी सो समरथ सुमति, सुकृती साधु सुजान ।
जो विचार व्यवहारइ जग, खरच लाभ अनुमान ।। ३२२ ।।
तुलसी स्वारथ सामुझे, परमारथ तन पीठि ।
अन्ये को सब कुछ मिला, दोउ नयन अरु दीठि ।। ३२३ ।।
अन समझे नहिं मानिए, अवसि सनुजिये आप ।
तुलसी आपुन समुझ बिन, पग-पग परिताप ।। ३२४ ।।
हित पर बढ़त विरोध जब, अनहित पर अनुराग ।
रामविमुख विधिबाग गति, सगुन अघाय अभाग ।। ३२५ ।।
वेद पुरान विवाद में, मति उरझे मतिमान ।
सार गहे सब ग्रन्थ को, अपनी बुद्धि प्रमान ।। ३२६ ।।
कै जूझिबौ कै बूझिबौ, दान कि काय कलेस ।
चारि चारु परलोक पथ, सथा जोग उपदेश ।। ३२७ ।।
मन्त्र परम लघु जास बस, विधि हरिहर सुर सूर्य ।
महामत गजराज कछ, बस करि अंकुश खर्ब ।। ३२८ ।।
का भाषा का संस्कृत, भाव चाहिये सौंघ ।
काम जो आवै कामरी, काली करिय कमाव ।। ३२९ ।।
बर माला बाला सुमति, उर बारि जुत नेह ।
सुख शोभा सरसाय नित, लहे राम पद गेह ।। ३३० ।।
अनुभव सत्य विवेक युत, बचन सेत जो मान ।
गुरु मुख ताको जानिए, चतुर प्रवीन सुजान ।। ३३१ ।।

मन सों घूटे ना अजो, करत अन्य विश्वास ।
छीक भई काटी गली, बिस्सी देख उदास ॥ ३३२ ॥
जड़ पेतन गुन दोष मय, विश्व कीन्ह करतार ।
संत हंस गुन गन गहहि, परिहरि वारि विकार ॥ ३३३ ॥
जौंच किये बिन और की, बात सौंच मति बर्ष ।
होत अंधेरी रैन से, परी जेबरी सर्प ॥ ३३४ ॥
मोह महातम रहतु है, जौ सौं ज्ञान न होत ।
कहा महातम रहि सकै, भये आदित्य उबोत ॥ ३३५ ॥
भले-बुरे सौं एक-सी, मूढ़नि की परतीत ।
गुंजा सम तोलत कनक, तुला पला की रीति ॥ ३३६ ॥
जाकों बुधिबल होत है, ताहि न रिपु को प्राप्त ।
घन बूढ़ें कह करि सकै, सिर पर छतना जास ॥ ३३७ ॥
जामें हित सो कीजिए, कोऊ कही हजार ।
छस बस साथि किजै करा, पारध भारत बार ॥ ३३८ ॥
सुनिये सबकी ही कही, करिये सहित विचार ।
सर्व लोक राजी रहें, सो कीजे उपचार ॥ ३३९ ॥
रहिमन बनिये सूप से, खीजे जगत पछोट ।
हलकन को उड़ि जान दे, गरुए राखि बटोर ॥ ३४० ॥
प्यारी अन प्यारी लगे, सये पाय सब बात ।
धूप सुहावे सीत में, सो ग्रीष्म न सुहात ॥ ३४१ ॥
साधू ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय ।
सार-सार को गहे रहे बोधा वेड उड़ाय ॥ ३४२ ॥

प्रेम

प्रेम निबाहन कठिन है, समुझि कीजिये कोय ।
पांग भखन है सुगम पै, लहर कठिन ही होय ॥ ३४३ ॥
प्रकृति मिले मन मिलत है, अन मिलते न मिलाय ।
दूष वही तै जमत है, कौंजी ते फटि जाय ॥ ३४४ ॥
सज्जन अंगीकृत किये, ताकों सेत नवाहि ।
राखि कलंकी कुटिल सति, तजशिव तजतन नाहि ॥ ३४५ ॥
बांके सीधे को मिलन, निबहैं नाहि निदान ।
वान सरल तोऊ तजत, जैसे वक्र कमान ॥ ३४६ ॥
बिन सत बार न लागई, ओछे जन की प्रीत ।
अम्बर डम्बर सौंझ के, ज्यों बारु की भीति ॥ ३४७ ॥
प्रेम लगन जातीं भई, सुख-दुःख ताके संग ।
बसत कमल अलिबास बसि, सो किन भखे मतंग ॥ ३४८ ॥
जाहि मिलै सुख होतु है, ता बिछरे दुःख होय ।
सूर उवे फूले कमल, ता बिन सकुषै सोय ॥ ३४९ ॥
कहियो तासो जो हितु, पसी बुरी हु जाय ।
घोर करे चोरी तऊ, सौंच कहे घर आय ॥ ३५० ॥
रहिमन प्रीति सराहिये, मिले होत रंग दून ।
ज्यों जरदी हरदी तजे, तजे सफेदी चुन ॥ ३५१ ॥
रहिमन नेह लगाइकें, देखतेउ किन कोय ।
नर को बस कहियो कछ, नारायण बस होय ॥ ३५२ ॥

हित करियत यह भांति कर, करिये मित्र यह भांति ।
नीर-छीर ते पूछिये, हित करवे की बात ॥ ३५३ ॥
बढ़त आपनी गीत सों और सब अनखाइ ।
सुहव नैन नैना बड़े, देखत हियौ सिहाइ ॥ ३५४ ॥
मीता तू चाहत कियो, सुखी बितियन जोत ।
नेह बिना ही रोखनी, देखी सुनी न होत ॥ ३५५ ॥
आप बसाते सज्जना, नेह न दीजे जान ।
नेही तिस नेह तसे, छरि है जात विदान ॥ ३५६ ॥
मीता तू या बात को, अपने हिये विचार ।
बजत तमूरा कहूं सुने, गांठ गठीसे तार ॥ ३५७ ॥
सब रंगन में नीर तुम, मिसकै रंग बरसात ।
मीत प्रेम रंग से कही, क्यों न्यारे है जात ॥ ३५८ ॥
रहिमन विपदा हु भली, जो धौरे दिन होय ।
हित-अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय ॥ ३५९ ॥
यह न रहीम सराहिये, देन सेन की प्रीति ।
प्रानन बाजी राखिये, हार होय के जीत ॥ ३६० ॥
जोह रहीम तन मन मिली, कियो हिये बिच मीन ।
तासी दुःख-सुख कहन की, रही बात अब कीन ॥ ३६१ ॥
अगम पंथ है प्रेम को, जहाँ ठकुराई नाहि ।
गोपिन के पीछे फिरे, त्रिपुवन पति बन माहि ॥ ३६२ ॥
सज्जन सों हित जोरिये, नित-नित बड़े हुसात ।
जामें जितनों गुड़ परे, तामें तित्ती मिठास ॥ ३६३ ॥
मित्र के काम कौं, देति विषय कर हेत ।
जैसे रवि निज तेज की, हरति चन्द्रमहि देत ॥ ३६४ ॥
सज्जन बचावत कष्ट ते, दूर होय कै साध ।
नैन सहाई जो पलक, देह सहाई हाथ ॥ ३६५ ॥
निरस बात सोई सरस, जहाँ होय हिय हेत ।
गारी हु प्यारी लखै, ज्यों-ज्यों समधिनि देत ॥ ३६६ ॥
कहा बड़े-छोटे कहा, जहं हित तहं चित सागि ।
हरि भोजन किये बिदुर घर, दुर्योधन को त्यागि ॥ ३६७ ॥
मथत-मथत माखन रहै, वही मही बिसगाय ।
रहिमन सोई मीत है, भीर परे ठहराय ॥ ३६८ ॥
जा घट प्रेम न संघ-सो घट सदा मसान ।
जैसे खास सुहार की, सौंस सेत बिन प्रान ॥ ३६९ ॥
मित्र के अवगुन मित्र कहूं, पर पद भाखत नाहि ।
कूप छांह जिम आपनी रे, राखत आपुहि माहि ॥ ३७० ॥
पुरा प्रेम को मति कही, प्रेम अहं सुस्तान ।
जिहि घट प्रेम न संघरे, सो घट सदा मसान ॥ ३७१ ॥
बोझ चाहें मिलन कौं, सो मित्राप्य निरवार ।
कबहुं नाहिनि बाजि है, एक हाथ सो तीर ॥ ३७२ ॥
प्रेमी प्रीति न छाड़ि हो होत न प्रन ते छैन ।
पर परे हु उपर में, जस चाहत है मीन ॥ ३७३ ॥

ऊपर दरसै सुमित-सी, अन्तर अनमित आंक ।
कपटी जन की प्रीति ज्यों नारंगी की फोंक ॥ ३७४ ॥
प्रीति टूटे हू सुजन के, मन ते हेत छूटे न ।
कमल नाल को तोरिये, तवपि सुत टूटे न ॥ ३७५ ॥
अन्तर तनक न राखिये, जहाँ प्रेम व्यवहार ।
उर सों उर लागै न तह, जहाँ रहतु है द्वार ॥ ३७६ ॥
ओछे नर के चित में, प्रेम न पूरी आय ।
जैसे सागर की सलिल, गागर में न समाय ॥ ३७७ ॥
मन-भावन के मितन कौं, सुख की नाहिन छोर ।
बोसि उठे नचि-नचि उठे, मोर सुनत घनघोर ॥ ३७८ ॥
जहाँ सुजन तहें प्रीति है, प्रीत तहें सुख ठौर ।
जहाँ पुष्प तहें दास है, जहाँ बास जहं धौर ॥ ३७९ ॥
छेदत काठ कठोर को, होत कमल में बन्द ।
आई यो मन पैवर की, इतनी बात पसन्द ॥ ३८० ॥
सज्जन को या जगत में, प्रीत दई प्रभु डेर ।
कहि रहीम नर नीच में, स्वारथ-स्वारथ डेर ॥ ३८१ ॥
कहि रहीम सम्पति सगे, बनत बहुत बहु रीति ।
विपति कसौटी जे कसे, सो ही सौंचे मीत ॥ ३८२ ॥
प्रेम मरु जायें कहा, विषयी कायर कूर ।
इक सांध्यो रण सूर ही, पहिचानतु रस भूर ॥ ३८३ ॥
हित करिबो जानै कहा, यह मनोज मद धूर ।
परखि पारखी ही सकै, प्रेम रत्न रण सूर ॥ ३८४ ॥
रे विषयी ! प्रेमी बनत, नेकु न लागति साज ।
देते कठिन कपोत व्रत, पालन हरि आज ॥ ३८५ ॥
निर्विकार, निरलेप, निति, निखिल ब्रह्म सुख सार ।
तोड़ प्रेम विषयी नु को, भयी आजु खेलवार ॥ ३८६ ॥
जनि गनियो खेलवार यों, कठिन प्रेम असि पार ।
चातक मीन कपोत व्रत, कहं अब पालन द्वार ॥ ३८७ ॥
प्रेम नेम जायें नहीं, तहें नहीं सुख धाम ।
शान्ति शीत शुचि ना बह्यं नहीं राग को नाम ॥ ३८८ ॥
सगी लगन छूटे नहीं जीप चौंच जरि जाय ।
मीठी कल अंगार में, जाहि चकोर चबाय ॥ ३८९ ॥
प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय ।
राजा पत्ता जेहि रुषै, तीस देह से जाय ॥ ३९० ॥
छिनिहिं चढ़े छिन उत्तरे, सो तो प्रेम न होय ।
अधर प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कलषै सोय ॥ ३९१ ॥
मन से कल रहीम प्रभु, दृग सो कहा दिवान ।
देख दृगन जो आबरे, मन तेहि ह्यथ बिकान ॥ ३९२ ॥
रहिमन बागा प्रेम का, मत तोड़ो छिटकाव ।
टूटे से फिर ना जुरे, जुरे गौंठि पड़ जाय ॥ ३९३ ॥
देखो करनी कमल की, कीना जल सों हेत ।
प्राण तजी प्रेम न तजी, सुखी सरहि समेत ॥ ३९४ ॥

धन्य सनेह कुंग को, अबनन राखी राग ।
धरि न सकत पिछमनों, सर सम्मुख डर लाग ॥ ३९५ ॥
मैं तो झूरी प्रेम दिवानी, मेरा वरद जाने कोय ।
सुखी ऊपर सेज हमारी, किस विधि सोना होय ॥ ३९६ ॥

मधुरता और नम्रता

कबीर मीठे वचन ते, होत सदै सुख पूर ।
जेहि नहीं सीखी बोलिबो, तेहि सीखी सब धूर ॥ ३९७ ॥
नीकी पै फीकी लगे, बिन अबसर की बात ।
जैसे वरनत सुख में, रस तिगार न सुझत ॥ ३९८ ॥
फीकी पै नीकी लगे, कहिये समय विचारि ।
सबको मन हर्षित करे, ज्यों बिबाह में गरि ॥ ३९९ ॥
भले-बुरे सब एक से, जो सो बोलत नाहिं ।
जान परतु है काक पिक, अतु वसन्त के मौहि ॥ ४०० ॥
मधुर वचन ते जात मिट, उत्तम जन अभिमान ।
तनिक शीत जल सो मिटे, जैसे दूध उपान ॥ ४०१ ॥
रोस मिटे कैसे सहत, रित उपजावन बात ।
ईधन डारे आग में, कैसे आगि बुझात ॥ ४०२ ॥
विष हूँ ते कहुई लगे, रित में रस की भाख ।
जैसे पित ज्वरीन को, कड़वी लागत दाख ॥ ४०३ ॥
बात कहन की रीति में, है अन्तर अधिकाय ।
एक वचन ते रित बढ़ै, एक वचन ते जाय ॥ ४०४ ॥
दोष भरीन उचारिए, जदपि यथार्थ बात ।
कहैं अंध को आँधरो, मानि बुरी सतरात ॥ ४०५ ॥
इनको मानुष जन्म दै कहा कियौ भगवान ।
सुन्दर मुख कहुवे वचन और सुम बनवान ॥ ४०६ ॥
भले लगे सबको रुचि, स्वारथ युत हित दैन ।
पिय आगम के कलक बच, विरहिन को सुख दैन ॥ ४०७ ॥
जो जाकी रुचि की कहै, सो ताके अभिराम ।
पिय आगमभाषी भली, वायस पिक केहि काम ॥ ४०८ ॥
कोऊ है रुचि की कहै, है ताही सों हेत ।
सदै उड़ावत काक कों, पै विरहिन बलि देत ॥ ४०९ ॥
कहै रसीली बात सो, बिगरी सेत सुधारि ।
सरस लौन की दाल में ज्यों नीबू रस डारि ॥ ४१० ॥
मुनि मन सुधिर कुवात ते, कैसे राखे कोय ।
जल प्रतिविम्बित बात बस, थिर हूँ चंचल होय ॥ ४११ ॥
चप-थप चलती ही रहे, नर लवार की जीह ।
चल हल दल जैसे चपल, चल रहे निसि दीह ॥ ४१२ ॥
हिये दुष्ट के वदन तें मधुर रहे निकसै बात ।
जैसे कहुई बेल के, को मीठे फल खात ॥ ४१३ ॥
रुखे वचन मिलाप में, कहत होत रस भंग ।
बीन बजत ज्यों तार के, टूटे रहत न रंग ॥ ४१४ ॥
तुलसी मीठे वचन ते, सुख उपजत चहुँ ओर ।
वशीकरण यह मन्त्र है, तजदे वचन कठोर ॥ ४१५ ॥

रहिमन बिछा बाबरी, कड़िने सरग पतास ।
आप तो कड़ि भीतर रही, जूती खात कपास ॥ ४१६ ॥
भले भली ही कहत है, ये न कहत हैं दोष ।
सुरदास कहे अन्ध कौं, उपजावत है तोष ॥ ४१७ ॥
तब चाहें मधुरे बचन, को चाहत कटु बात ।
बाखी सबे भावे कड़ी, कौन निबारी खात ॥ ४१८ ॥
सम्पन्न के प्रिय बचन ते, तनकी ताप मिटाय ।
जैसे चन्दन नीर ते, तनकी तपन बुझाय ॥ ४१९ ॥
काहु कौं हैंसिये नहीं, हैंती कलह को मूल ।
हैंसी ही ते है गयी, कुल कौरव निरमूल ॥ ४२० ॥
कबीर नबै सो आपको, परकी नबै न कोय ।
झलि तराबू तोलिये, नबे सो भारी होय ॥ ४२१ ॥
स्वामी होनो सहज है, दुरलभ होनो दास ।
गाडर पासी ऊन को, लागी घन कपास ॥ ४२२ ॥
होनहार सहजान सब, बिषय बीच नहीं होत ।
गगन गिरह करिबे कबै, तुलसी पढ़त कपोत ॥ ४२३ ॥
बैर मूल कसुये बचन, प्रेम मूल उपकार ।
दोही सरल सनेहमय, तुलसी कहतु विचार ॥ ४२४ ॥
यथा लाभ संतोष रत, गृह मग बन समरीति ।
ते तुलसी संतोषरत, जिन तन बिषय विनीति ॥ ४२५ ॥
बातहिं दादिहिं बन पड़े, बातहिं बात नसाय ।
बातहिं आदिहिं दीप कौं बातहिं अन्त बुझाय ॥ ४२६ ॥
बातहिं ते धन आवहीं, बातहिं ते धन जात ।
बातहिं ते बरबर मिलत, बातहिं ते बौरात ॥ ४२७ ॥
बात बिना अतिसय विकस, बातहिं ते हरसात ।
बनत बात बरपात ते, करत घात पर घात ॥ ४२८ ॥
तुलसी जाने बात बिन, बिगरत इर एक बात ।
अनजाने दुःख बात के, जानि परे कुलसात ॥ ४२९ ॥
प्रेम बार अरु पुष्य अघ, जस अपजस जहान ।
बात बीज इन सबन को, तुलसी कहइ सुजान ॥ ४३० ॥
चल अरु यौवन की गरभ, कबहुं करिह नाहि ।
देखत ही मिट जात है, ज्यों बादर की छौंह ॥ ४३१ ॥
अहंकार निबै नहीं, पछतावत सब कोय ।
दुर्योधन अभिमान ते, भये निधन कुल खोय ॥ ४३२ ॥
जब लगि जोगी जगतगुरु, तब लगि रहे निरास ।
जब आशा मन में जगी, जग गुरु जोगी दास ॥ ४३३ ॥
रहिमन कबहु बड़ेन को, नहीं गर्व की लेस ।
भार धरे संसार को, तऊ कहावत शेष ॥ ४३४ ॥
रोस न रसना खोलिके, बरु खोलिय तलवार ।
सुनत मधुर परिनामहित, बोलिय बचन विचारि ॥ ४३५ ॥
सधन, सगुन, सधरम, सगन, सबल सुसाई महीप ।
तुलसी जे अभिमान बिन, ते त्रिपुवन के दीप ॥ ४३६ ॥

कबिरा गर्व न कीजिये, अस जीवन की आस ।
देसू फूसै दिवस बस, खंजर भया पतास ॥ ४३७ ॥
कर्तव्य की प्रधानता
तुलसी भूपय लीन्हे जन्त, स्व स्वभाव अनुसार ।
तुलसी सिखवत नाहिं, शिषु, मूलक इनत मजार ॥ ४३८ ॥
तुलसी जो करता करम, सो भोगत नहीं आन ।
जो बोवै सो काटिए, देनी सहइ निदान ॥ ४३९ ॥
रावन-रावन को हनेऊ, दोष राम को नाहिं ।
निजहित अनहित देखु किन, तुलसी आपुहि माहि ॥ ४४० ॥
आपुहि मद को पान कर, आपुहि होत अचेत ।
तुलसी विविध प्रकार को, दुःख उत्पति एहि हेत ॥ ४४१ ॥
देस, कास, करता, करम, बुधि, विद्या, गति हीन ।
ते सुर तरु तर दारिदी, सुरसरि तीर मलीन ॥ ४४२ ॥
वर्तमान आचीन दोऊ, भावी भूत विचार ।
तुलसी संसय मन न करु, जो है सो निरुवार ॥ ४४३ ॥
निशदिन करतब कर्म करु, जग में कर्म प्रधान ।
तुलसी ना लखि पाइयौ, किये अमित अनुमान ॥ ४४४ ॥
अपनों करतब आपु लखि, सुनि-गुनि आप विचार ।
अन्य न कोउ दुःख दे सकै, सुखदा सुमति आधार ॥ ४४५ ॥
सोई भरे बानियां, सहज करे ब्योपार ।
बिन उन्डी बिन पालड़े, तोले सब संसार ॥ ४४६ ॥
रूप नहीं जग देखता, जो नर हो गुनवान ।
कृष्ण हुए काले तवपि, करता जग सम्मान ॥ ४४७ ॥
ऊँचे कुल क्या जन्मिया, जो करनी ऊँच न होय ।
सुवरन कलस सुर भरा, साधू निन्दा सोय ॥ ४४८ ॥
कोऊन सुख दुःख देत है, देत करम प्रकझोर ।
उरझै सुरझै आप ही ध्वजा पवन के जोर ॥ ४४९ ॥
जो जैसी करनी करै, सो तेहि लहै न ओर ।
बनिज करै सो बानियाँ, चोरी करै सो चोर ॥ ४५० ॥
प्रापति सो तेसा करै, जाको यथा स्वभाव ।
भोजनमित भरिसरित, ते जल भरि-भरि से जाय ॥ ४५१ ॥
पंकज उपजे पंक में, सौरभ अति सुखकार ।
होत महत्व न जन्म को, गुण कारण सुविचार ॥ ४५२ ॥
है मनुष्य को देह में, कैसा एक रहस्य ।
शत्रु मित्र है संग ही श्रम एवं आलस्य ॥ ४५३ ॥
तुलसी हरि दरबार में, कभी बस्तु कहु नाहिं ।
कर्महीन कलपत फिरत, चूक चाकरी माहिं ॥ ४५४ ॥
कार्य करै नहीं दोष मय, कायर की पहिचान ।
भोजन तजता कौन जन, अन पचकर उरमान ॥ ४५५ ॥
यत्न बिना कैसे मिले, कोई बस्तु नवीन ।
बिना यत्न पाता नहीं, तिल से तेल प्रवीन ॥ ४५६ ॥
सबै कहावे लसकरी, सब लसकर मई जाय ।
रहिमन सेल जोई सहे, सोई जागी रे जाय ॥ ४५७ ॥

निज कृत सुकृति दुस्कृत का, फल पाते सब लोग ।
जैसा जिसका कर्म है वैसा ही फल भोग ॥ ४५८ ॥
कठिन कला हू आइ है, करत-करत अभ्यास ।
नट ज्यों घालतु बरत पर, साधि बरस छह मास ॥ ४५९ ॥
परी विपत्ति तैं धृष्टिये, करिये जोर उपाव ।
कैसे निकसै बिनु जतन, परी और यें नाव ॥ ४६० ॥
बिना प्रयत्न न होत है, कारज सिद्ध निदान ।
घड़े धनुष हू ना चलौ, बिना चलाये बान ॥ ४६१ ॥
जेहि जेतौ उनमान तेहि, तेतौ रिजक मिलाय ।
कन चींटी, कूकर दुकर, मन भर हाथी खाय ॥ ४६२ ॥
बहु गुन श्रम तैं उच्च पर तनिक दोष न पात ।
नीठ घड़े ऊपर सिला, टारत ही गिरि जात ॥ ४६३ ॥
जोरावर हू को कियौ, विधि बस करन इलाज ।
दीपतमहि अंकुश गजहि, जल निधि तरनि इलाज ॥ ४६४ ॥
खाली तजि पूरन पुरुष, जेहि सब आवर देत ।
रीतौ कुआ उसारिए, ऐंच भरयो घट सेत ॥ ४६५ ॥
चलै जु पन्थ पिपीलका, पहुँचे सागर पार ।
आलस में बैठी गरुड़, पड़ौ रहे मन मार ॥ ४६६ ॥
एक-एक अन्नर पढ़ें, जानें ग्रन्थ विचार ।
पेंड पेंड हू चलत जो, पहुँचत कोस हजार ॥ ४६७ ॥
हसन चलन की शक्ति है, तो लौं उद्यम ठानि ।
जो अजगर मृगपति बदन, रतुनहीं मृग आनि ॥ ४६८ ॥
विषा धन उद्यम बिना, कहां जू पावै कौन ।
बिना हुलाये ना मिले, जो पंखा की पौन ॥ ४६९ ॥
जाम्बी ओर न जाइये, कैसे मिलि है सोइ ।
जैसे पच्छिम दिस गये, पूरब काज न होइ ॥ ४७० ॥
कन-कन जोरे मन जुरे, खाते निबरे सोय ।
बूँद-बूँद सौं घट भरें, टपकत रीतै होय ॥ ४७१ ॥
दुःख पाये बिन हूँ कहूँ, गुन पावत है कोइ ।
सहें बेध बन्धन दुन्नन, तब गुन संयुत होइ ॥ ४७२ ॥
उद्यम कबहुँ न छाड़िये, पर आसा के मोद ।
गागरि कैसे फोरिये, उमड़यो देखि पयोद ॥ ४७३ ॥
कारज धीरे होत है, काहे होत अधीर ।
समय पाव तरुवर फिरें, केतिक सीधौ नीर ॥ ४७४ ॥
जो पल्लवे कीजै जतन, सो पीछे फलदाय ।
आग लगे खोये कुंवा कैसे आग बुझाय ॥ ४७५ ॥
श्रम ही तैं सब मिलत है, बिनु श्रम मिले न काहि ।
सीधौ अगुंरी धी जन्मी, क्यों हू रिकरै नाहि ॥ ४७६ ॥
गुन वारो संपत्ति लहै, बिन गुन लहै न कोय ।
काढ़े नीर पतास तैं, जो गुन युत घट होय ॥ ४७७ ॥
उद्यम बुद्धि बस सौं मिले, सब पावत सुख साज ।
अन्ध कन्ध चढ़ि पंगु ज्यों, सबै सुधारत काज ॥ ४७८ ॥

श्रम और बुद्धि प्रभाव तैं, लक्ष्मी करत निवास ।
ज्यों लौं तेल प्रदीप में, त्यों लौं ज्योति प्रकाश ॥ ४७९ ॥
वीर पराक्रम तैं करे, भुव मंडल में राज ।
जोरावर यातैं करत, बन अपनी मृगराज ॥ ४८० ॥
करत-करत अभ्यास के, जड़पति होत सुजान ।
रसरी आवत जात ते सिल पर होत निसान ॥ ४८१ ॥
सबल न पुष्ट शरीर सौं, सबल तेज युत होय ।
पुष्ट-पुष्ट गज दुष्ट सौं, अंकुश के बस होय ॥ ४८२ ॥
विषा बिना प्रयोग के, बिसरत इहि उनमान ।
बिगर जात बिन खबर के, ज्यों ठोली के पान ॥ ४८३ ॥

शूरवीर

टेढ़ जानि शंका सबहि है न असौंधी बात ।
सरल भये दिन-रात जो, पाबहि गारी लात ॥ ४८४ ॥
ताही कौं सब नबत हैं, जो जन टेढ़ी होइ ।
नपत दुतीया चन्द्र कौं, पूरन चन्द न कोइ ॥ ४८५ ॥
बहुत भये केहि काम के, भली वीर जो एक ।
शेष धरें, सिर पै धरिन, मेंढक भल्ली अनेक ॥ ४८६ ॥
बिना तेज के पुरुष की, अबसि अवज्ञा होय ।
आगि बुझे ज्यों राखिको, आनि छुई सब कोय ॥ ४८७ ॥
जे न होय वृद्ध चित्त के, तहाँ न निबहें टेक ।
ज्यों कच्चे घट में सलिल, नहिं ठहरत दिन एक ॥ ४८८ ॥
संत न तोरत अन्त लौं, वचन निवाहत सूर ।
कहा प्रतिज्ञा पाति है, कपटी कायर कूर ॥ ४८९ ॥
लखि सतीत्व अपमान हैं, भये न जे वृगलाल ।
नीबू नौन निचोरिये, छेदि फोरिये हाल ॥ ४९० ॥
देखि दीन दुर्बलन कुं, दहत न जाके अंग ।
ता कुचासि को भूलि हू, कबहु न कीजै संग ॥ ४९१ ॥
भये न जो पढ़ि सत्य व्रत, सबल शूर स्वाधीन ।
तब विषा लगिवादि धन, समयशक्ति ध्ययकीन ॥ ४९२ ॥
सूर सोइ पहिचानिए, सरे दीन के हेत ।
पुरआ-पुरआ कट मरे, कबहु न छाड़ें खेत ॥ ४९३ ॥
नहिं चाहें साम्राज्य सुख, नहिं स्वर्ग निर्बान ।
जन्म-जन्म निज धर्म पर, हरथि चढ़ावों प्रान ॥ ४९४ ॥

कुसंग और कुबुद्धि

ओछे नर की प्रीत की, बीनी, रीति बताय ।
जैसे छीछर ताल जल, घटत-घटत घट जाय ॥ ४९५ ॥
दुर्जन के संसर्ग तैं, सज्जन सहत कलेस ।
जौं वसमुख अपराध तैं, बन्धन लहयो जलेस ॥ ४९६ ॥
दोषहिं को उमहै गहै, गुन गहै खल लोक ।
पिये रुंधिर पय ना पिये, लगी पयोधर जोक ॥ ४९७ ॥
भेष बनावे सूर को, कायर सूर न होय ।
खाल उड़ावें सिंह की, स्यार सिंह नहिं होय ॥ ४९८ ॥

दुष्ट संग बसिये नहीं, बसि न कीजिये बात ।
 कदली बेर प्रसंग तैं, छिड़े कंटकन पात ॥ ४६६ ॥
 नीच निवाई नहीं तजइ, जो पावै सत्संग ।
 तुलसी चंदनविटप बसि, विष नहीं तजत भुजंग ॥ ५०० ॥
 दुरजन वरपन सम सदा, करि देखी हिय बोर ।
 सनमुख की गति और है, पीछे की गति और ॥ ५०१ ॥
 जो मूरख उपदेश के, होते जोग महान ।
 दुर्योधन कहैं बोधि किन, आये स्याम सुजान ॥ ५०२ ॥
 तुलसी निज कीरित चरहि, परकीरित को खोय ।
 तिनके मुंह बसि लागि है मिटिहि न मरिये धोय ॥ ५०३ ॥
 नीच संग सम जानिए, सुनि सखि तुलसीदास ।
 डील देत भुंइ गिर परत, छेपत चढ़त अकास ॥ ५०४ ॥
 बैठति इक पग ध्यान धरि, मीनन कों दुःख देत ।
 एक सुख करे हो गये, रसनिय याही देत ॥ ५०५ ॥
 कसु कहि नीच न छेड़िये, भली न बाको संग ।
 पत्थर डारे कीच में उछरि बिगारे अंग ॥ ५०६ ॥
 खाय न खरै सुम धन, चोर सबे से जात ।
 पीछे जो मधु मच्छिका, स्रथ मलै पछतात ॥ ५०७ ॥
 दुष्ट रहे जा ठौर पै, ताको करै बिकार ।
 आगि जहाँ ही राखिये, जारि करै तेहि छार ॥ ५०८ ॥
 देखत को सुन्दर लगे, उर में कपट विषाद ।
 इन्द्रायन के फत्तन सम, भीतर कटुक सवाद ॥ ५०९ ॥
 मूरख को हित के वचन, सुनि उपजत है कोप ।
 सौंपहि बूष पिवाइये, बाढ़े मुख विष ओष ॥ ५१० ॥
 कहा करे आगम निगम, जो मूरख समुझेन ।
 दरपन को नहीं दोष कसु, अंध बदन देखेन ॥ ५११ ॥
 बड़े पै सीझे नहीं, रहिमन नीर पखान ।
 बूझे पै सूझे नहीं तैसे मूरख मान ॥ ५१२ ॥
 कबहुं दिवस महनिबिड़ तम, कबहुं प्रकट पतंग ।
 बिनसइ उपजइ ज्ञान जिमि, पाई कुसंग सुसंग ॥ ५१३ ॥
 भली करत लागत बिलम, बिलम न बुरे विचार ।
 भवन बनावत दिन लगौं, बाह्य लगत न बार ॥ ५१४ ॥
 सीत हरत तम बरत तिन, भुवन भरतनहिं धूक ।
 रहिमन तेहि रबिको कहा, जो घटि लखे उलूक ॥ ५१५ ॥
 रहिमन तजहुं अंगार ज्यों, ओछे जन को संग ।
 सीरे पै कारी लगे, तात्ती जारे अंग ॥ ५१६ ॥
 जो रहीम जोछीं बड़ों, सो अति ही इतराय ।
 प्यादे ते फहजी भये, टेढ़ी टेढ़ी जाय ॥ ५१७ ॥
 खीरा को मुँह काटिये, मसिये नौन लगाय ।
 रहिमन करुवे मुखन को, चहिए यही सजाय ॥ ५१८ ॥
 जो विषया संतन तजी, मूढ ताहि लपटात ।
 ज्यों नर डारत वमन करि, स्वान स्वाद सों खात ॥ ५१९ ॥

रहिमन ओछे नरन सों, बैर भलीं न प्रीति ।
 काटे चाटे स्वान के, बोज भौंति विपरीत ॥ ५२० ॥

नीति

सुन्दर धान न छेड़िये, ज्यों सों होय न और ।
 पिछलौं पौब उठाइये, देखि धरन को ठौर ॥ ५२१ ॥
 सुनिये सबकी पर बही, करिये जो चित्त होय ।
 सौह दिवाये और के, परे अग्नि नहीं कोय ॥ ५२२ ॥
 चहल पहल अवसर परे, लोक रहत घर घर ।
 ते फिर दृष्टि न आवही, जैसे फसल बटेर ॥ ५२३ ॥
 निबहै सोई कीजिए, पन अपने उन्मान ।
 कैसे होत गरीब पै, राजा जैसा दान ॥ ५२४ ॥
 होय भले चाकरन तैं, भली धनी की काम ।
 जो अंगद हनुमान तैं, सीता पाई राम ॥ ५२५ ॥
 काज्य सोई सुघरि है, जो करिये समुद्राय ।
 अति बरसै-बरसै बिना, जों खेती कुम्हलाय ॥ ५२६ ॥
 होत न काज्य मो बिना, यह जू कहै सु अयान ।
 जहाँ न कुक्कुट शब्द तहं, हो तन कल विहान ॥ ५२७ ॥
 सबको रस में राखिये, अति-अति करिये नाहिं ।
 विष निकाय्यी अति मयन तैं, रतनाकर ही माहिं ॥ ५२८ ॥
 अरि छोटी जानिये नहीं, जाते होत विगार ।
 बड़े विपन को छिनक में, जारत तनक अँगार ॥ ५२९ ॥
 गुन तैं संग्रह सब करें, कुल न विचारे कोय ।
 हरि हू मृग मद को निलक, करत सेत जग सोय ॥ ५३० ॥
 हरत देव हू निबल अठ दुरबल के ही प्रान ।
 बाघ सिंह को छोड़ि के, देत छाग बलवान ॥ ५३१ ॥
 बड़े कहैं सो कीजिये, करै सु करिये नाहिं ।
 भुंजुअभुधि वन-वन फिरैं और विनिपत कहाहिं ॥ ५३२ ॥
 गुनी तरु अवसर बिना, आग्रह करें न कोय ।
 हिय ते हर उतारिये, सवन समय जब होय ॥ ५३३ ॥
 कहा करें कोऊ जतन, प्रकृति न बवले जोइ ।
 साने सदा सनेह में, जीभ न चिकनी होइ ॥ ५३४ ॥
 काम परे ही जानिये, जो नर जैसा होय ।
 बिन ताये खोटो खरी, गहनी लखे न कोय ॥ ५३५ ॥
 विपति परे सुख पाइए, ता डिंग करिए मीन ।
 नेन सहाई बधिर के, अन्ध सहाई झीन ॥ ५३६ ॥
 क्यों करिये प्रापति अलप, जामें श्रम अति होइ ।
 कान जु गिरिवर खोदि के, चूड़ी काढ़े जोइ ॥ ५३७ ॥
 कलुष भाव देखैं जहाँ, उत्तम जन न रहाय ।
 जैसे पावस तजि अनत, राज हंस उड़ि जाय ॥ ५३८ ॥
 खल सो कहिये न गूढ़ तत, होहि कतहु अति मेस ।
 यो कैसे जग माहिं जों, जल पर बूँद कि तेस ॥ ५३९ ॥
 बिन स्वारथ कैसे सहे, कोऊ करुए बैन ।
 सात खाय पुचकारिए, होइ दुधार धैनु ॥ ५४० ॥

धनसंघी किहि काम को, खाउखरच हरिणीति ।
बंघी गंधीलो कूप जल, कड़े-बड़े इहरीति ।। ५४१ ।।
अति ही सरस न हूजिए, देखी जौ बन राय ।
सीधे-सीधे काटिये, बाँके तरु बधि जाय ।। ५४२ ।।
बहुसन को न बिरोधिये, निबल जानि बलवान ।
मिखि भखि जाय पिपीलका, नागहि नगके के मान ।। ५४३ ।।
बहुत निबलमिखि बल करें, करें जु चाहे सोय ।
तिनकन की रसरी करी, गज को बन्धन होय ।। ५४४ ।।
मिथ्याभाषी सोंच हूँ, कहै न माने कोय ।
भांड पकरे पीर पर, मिस सपुत्रें सब कोय ।। ५४५ ।।
अपने-अपने ठीर पर, शोभा सहित विरोध ।
चरन महाबर ही भली, नैनन अंजन रेख ।। ५४६ ।।
अपनी-अपनी गरज सब, बोलत करत निहोर ।
बिन मरजे बोले नहीं गिरवर हूँ को मोर ।। ५४७ ।।
जो सपने जो बात कौं, सो तिहि कहे विचार ।
रोग न जाने ज्योतिषी, बैध ग्रहन की चार ।। ५४८ ।।
सुख बीते दुःख होत है, दुःख बीते सुख होत ।
दिवस गये-जौ निस उदित, निसि गत दिवस उदोत ।। ५४९ ।।
घटति बढ़ति सुमति गति व्यवहारिय जोय ।
रीती घटिका भरति है, भरी सु रीति होय ।। ५५० ।।
आप बुरे जग है बुरी, भली भले जग जानि ।
तज्जत बेर की छाँड़ सब, गहत आम की आनि ।। ५५१ ।।
भले बुरे जहँ एकसे, तहाँ न बसिये जाय ।
जौ अंधेर नगरी बिकें, खरि गुर एकै भाय ।। ५५२ ।।
नकरिनाम रंग देखि सम, गुनविन समझे बात ।
गात घात गौ दूष तैं, सेहुड़ केतैं घात ।। ५५३ ।।
बिना ज्ञान गुन के लखे, भानु गकरि मनुगारि ।
ठगत फिरत सब जगत को, भेष भक्त को धारि ।। ५५४ ।।
सबै सहायक सबल के, कोउन निबल सहाय ।
पवन जगावत आग कौं, दीपहिं देत बुझाय ।। ५५५ ।।
अति हठ मति कर हठ बड़े, वातन करिहै कोय ।
जौ-जौ भीजे कामरी, त्यों-त्यों भारी होय ।। ५५६ ।।
लासच हूँ ऐसा भला, जासों पूरे आस ।
चाटहु कहुँ ओस के, मिटे काहु की प्यास ।। ५५७ ।।
धन बल जन बल बाहु बल, नहिं काऊ के घाट ।
एकहिं एका बल बिना, सब बल बारा वाट ।। ५५८ ।।
जग की सुख सम्पत्ति को, मिले न बारा पार ।
धन हीनन के हेतु ही, है संसार असार ।। ५५९ ।।
वित्त बान गुन बान है, वित्त हीन गुनहीन ।
महिमा वित्त समान कहुँ, काहु की देखीन ।। ५६० ।।
ज्ञानी ध्यान योग रत, विद्या बुद्धि प्रवीन ।
बात न पूछे तातहु, है यदि वित्त विहीन ।। ५६१ ।।

सह असंख्य दारुन दुखन, बरु लीजै बनबास ।
बंधु न कीजे बंधुसंग वित्त विहीन निबास ।। ५६२ ।।
जानि-बुझि अजगुत करे, तोसों कहा बसाय ।
जागत ही सोवत रहै, तेहि को सकै जगाय ।। ५६३ ।।
मोन खड्ग लीने रहै, खल की कहा बसाय ।
अग्नि परी धुन रहित बल आपुहिते बुझि जाय ।। ५६४ ।।
सेवक साहिब के बड़े, बड़ें बड़ाई ओज ।
जेतौ गहरौं जल बड़ें, तेतो बड़े सरोज ।। ५६५ ।।
तन हूँ ते अरु तूल तैं, हलकी याचक आहि ।
जानत है कसु भाग है, पवन उड़ावत नाहि ।। ५६६ ।।
नृप, गुरु, तिय, जल, अग्नि को मध्य सेइये जाय ।
है विनास अति निकट तैं, दूर रहे फल नाय ।। ५६७ ।।
छोटी मति युवतीन की, कहें विवेक मुलाय ।
दशरथ रानी के वचन, बन पठ्ये रघुराय ।। ५६८ ।।
जो जेह कारज में कुशल, सो तेह भेद प्रवीन ।
नव-प्रवाह में गज बहै, उलटि चले लघु मीन ।। ५६९ ।।
होत अधिक गुन निबल पर, उपजत बैर निवान ।
मृग-मृग मद चमरी चमर, तेत दुष्ट हत प्रान ।। ५७० ।।
के समसो के अधिक सों, लारये करिये बाव ।
हारे जोते होत है, दोऊ भांति संवाद ।। ५७१ ।।
जैसी घरे सो सहि रहे, कहि रहीम यह देह ।
धरती ही पर परत है, सीत घाम और मेह ।। ५७२ ।।
रूठे सुजन मनाइये, जो रूठे सौ बार ।
रहिमन फिरि-फिरि पोइये, टूटे मुक्ता हार ।। ५७३ ।।
दुरविन परे रहीम कहि, दुरचल जेये भांगि ।
ठाड़े हूजिए धूर पर, जब घर लागत आगि ।। ५७४ ।।
रहिमन यों सुख होत है, बढ़त देख निज गात ।
जो बडरी अँखियाँ निरख, आँखिन को सुख होत ।। ५७५ ।।
रहिमन रहिये तबहि लौं, जो लौं साल समूच ।
सील दील जब देखिये, तुरत कीजिए कूच ।। ५७६ ।।
रहिमन अरहर की भली, जो परसे चित लाय ।
परसत मन मैला करे, सो मैदा जरि जाय ।। ५७७ ।।
रहिमन छोटी आवि की, सो परिनाम लखाव ।
जैसे दीपक तम भस्त्रे, कज्जल वमन कराव ।। ५७८ ।।
रहिमन चाक कुमार को, माँगे दिया न देइ ।
छेद में डंडा डारि कैं, चहे नौद ले लेइ ।। ५७९ ।।
रहमन ओछे नरन सों, होत बड़ी नहिं काम ।
मढ़े नंगाड़ी जाय नहिं, सो चूहे के घाम ।। ५८० ।।
चारा प्यारा जगत में, छाला हित कर लेय ।
ज्यों रहीम आटा लगे, त्यों मृदंग स्वर देय ।। ५८१ ।।
छोटेन सों सोहें बड़े, कहि रहीम यह रेख ।
सहसन को हय बाँधि यत, ले दमरीकी भेख ।। ५८२ ।।

जब लगि सित न आपुने, तब लगि मित्रन कोय ।
 रहिमन अंबुज अंबु विन, रवि नाहिन हित होय ॥ ५८३ ॥
 बुरे लगत सिख के बचन, हिय विचारे आप ।
 कहुई मेघज बिन पिये, मिटें न तन की ताप ॥ ५८४ ॥
 फेर न है है कपट सों, जो कीजे व्यापार ।
 जैसी होंडी काठ की, चढ़े न दूजी बार ॥ ५८५ ॥
 करिये सुख को होत दुख, यह कहु कौन सयान ।
 बा सोने को जोरिये, जासो टूटें कान ॥ ५८६ ॥
 सो संपति केहि काम की, जनि काइ पे होय ।
 आपु कमावै कष्ट करि, बिलसे औरहि कोय ॥ ५८७ ॥
 नर भूषण सर दिन सभा, किम अरि के घेर ।
 जो तिय भूषण लाज है, निलज सुरति की घेर ॥ ५८८ ॥
 सासन करता मात सम, पालन पिता समान ।
 सास बनाती देह को, विधा सब सुख खान ॥ ५८९ ॥
 घर की घर कहते नहीं, घरनी ही घर जान ।
 घरनी बिना मसान सम, घर जानो मति मान ॥ ५९० ॥
 रहिमन बिगरी बात फिर, बने न जरचे दाम ।
 हरि बाढ़े आकाश सों, तऊ बाबने नाम ॥ ५९१ ॥
 संपति-संपति जानि कैं, सबको सब कोई देत ।
 दीनबन्धु दीन की, को रहीम सुधि सेत ॥ ५९२ ॥
 उरग तुरत नारि पति, नीच जाति हथियार ।
 रहिमन इने सँभारिए, पलटत लगे न बार ॥ ५९३ ॥
 एकै साथे सब सधै, सब साथे सब जाय ।
 रहिमन सींचो मूल को फूलहि फलहि अघाय ॥ ५९४ ॥
 को चाहें अपनों तऊ जा संग लहिये पीर ।
 जैसे रोग शरीर ते, उपजत रहत शरीर ॥ ५९५ ॥
 एक बिरानों ही भली, जेहि सुख होत शरीर ।
 जैसे बन की औषधी, हरत रोग की पीर ॥ ५९६ ॥
 तुलसी झगड़े बडेन के, बीच परहु जनि जाय ।
 सडे लोह पाहन उऊ, बीच रुइ जर जाय ॥ ५९७ ॥
 कलह न जानब छोटि कर, कठिन परम परिनाम ।
 लग्य अनल लघु नीच घर धुनक धन घाम ॥ ५९८ ॥
 होय न जाकी ठौह दिंग, फल रहीम अति दूर ।
 बड़े वृथा बिना काज ही, जैसे ताड़ खजूर ॥ ५९९ ॥
 भूखे भजन न होत है, नहीं सुहावै राग ।
 पेट भरे पै लगत है, सबको नीकी फाग ॥ ६०० ॥
 शिष्य सखा सेवक सचिव, सुतिय सिखावत साँच ।
 तनुभि करिये जनि परिहरिय लोग हँसावें पाँच ॥ ६०१ ॥
 रहिमन अतिनहि कीजिए, गहि रहिए निज कानि ।
 सहजन अति फूलै तऊ, दार पात के हानि ॥ ६०२ ॥

सामयिक दुरवस्था

जग-जग की रोटान तें, सुझय अलख अनंत ।
 मिथ्या ताको कहत ए, निलज निठल्ले संत ॥ ६०३ ॥
 फिरत वृथा धिमटा धरें, अंग कुठंग बनाय ।
 तिन तें तौ शूकर भले, बल शोषहि मल छाव ॥ ६०४ ॥
 वे सुरभी सुखदायिनी, कामधेनु धन खान ।
 आह घटे, जिनके कटे जन जीवन तन प्रान ॥ ६०५ ॥
 दंभ दिखावत धर्म कौ, यह अधीन मति अंध ।
 पराधीन अरु धर्म को, कहाँ कहाँ सम्बन्ध ॥ ६०६ ॥
 फूँकत जे गाजा अमुख भलि भभूतिया भूत ।
 लोभुप लिंपट भूत ते बने फिरत अवभूत ॥ ६०७ ॥
 बहु गुन गन अज्ञान धन, बहु अध्यात्म विचार ।
 करत अकेली दासता, सबकौ बंटाडार ॥ ६०८ ॥
 वैधव्यानल जरहि जह, प्राप्तति सोलह बाल ।
 उद्धारि तेहि जाति कह, को माई को साल ॥ ६०९ ॥
 आप अनेकन हू कये, नहि मानिहि दुष्कर्म ।
 होते विधवा व्याह पर, जात रसातल धर्म ॥ ६१० ॥
 करों सदा धित चेत करि, उचित नारि सम्मान ।
 सब प्रकार सम्पति युत, होंगे सुखी महान ॥ ६११ ॥
 घर की देवी तुष्ट तो, रमते देव सदैव ।
 दूर न कर सकते कभी, सुख सम्पति को दैव ॥ ६१२ ॥
 भलैं सुधा सींची तहाँ, फलु न लागि है कोय ।
 जहाँ बाल विधवान को, अथ पति नित होय ॥ ६१३ ॥
 कलिजुग ही में लखी, अति अचरज मय बात ।
 होत पतितपावन पतित, सुवत पतित जब गात ॥ ६१४ ॥
 एक घरहि घर मलिनता अपर स्वच्छ करि जात ।
 द्वै मेंह कौन अछूत है ? नीके निर्णहु तात ॥ ६१५ ॥
 नहि उपजाए वे मुखन, नहि जाये वे पाय ।
 एकहि मग आये सबहि, पकहि मारग जाएँ ॥ ६१६ ॥
 शूद्र बहुत जिस देश में, धरे सुदृता भाव ।
 वह बिनसाता सहज ही, निज अज्ञान प्रभाव ॥ ६१७ ॥
 जब आता अभिमान अति, तुरत नसाता मान ।
 रावण और शिशुपाल सम, होवे जवपि महान ॥ ६१८ ॥
 पर भाषा पर भाव, पर भूषण पर परिधान ।
 पराधीन जन की अहै, यही पूर्ण पहिचान ॥ ६१९ ॥
 निर्बल मिलकर परस्पर, बरख बनाया सूत ।
 मिलो परस्पर दौड़कर, हर्षित भारत पूत ॥ ६२० ॥



जीवन-मूल्य

□ सत्यं न सत्यं खलु यत्र हिंसा दयान्वितं चानृतमेव सत्यम् ।

हिंसां नराणां भवतीह येन तदेव सत्यं न तथाऽन्यथैव ।।

—देवी भागवत ३/ ११/ ३६

वह सत्य, सत्य नहीं जिसके कारण हिंसा होती हो। दया से सना हुआ असत्य भी सत्य है। जिसमें मनुष्यों का हित होता हो वही सत्य है इसके विपरीत जिसके अवाञ्छनीय परिणाम निकले वह सत्य भी असत्य ही है।

□ मानव जीवन के दो पहलू हैं एक असत दूसरा सत। असत वह है जिसके आधार पर निजी सुख-सुविधा, स्वार्थ, समृद्धि, शोभा एवं प्रसन्नता पर अधिक ध्यान दिया जाता है और उसी के लिए संलग्न रहा जाता है। इस मार्ग में अधिक से अधिक परिमाण में अपने लिए सब कुछ इकट्ठा कर लेने की कामना रहती है, ओह ! इसी असत दृष्टिकोण को अपनाकर मनुष्य अपने लक्ष्य से कितना अधिक भटक गया, कितना अधिक धोखा खाया, उसने ? युद्ध, विनाश, शोषण, अन्याय, दुःख और पतन सभी असत की प्रतिष्ठा होने से उत्पन्न होते हैं। फिर भी वह असत ही रह जाता है।

दूसरा पहलू सुख का सुखद और सनातन मार्ग है। सभी में सबकी भलाई है, सबकी सुरक्षा है। अपने समान सबको समझना, सबके दुःख-सुख में अपने दुःख-सुख की कल्पना करना और सबकी भलाई में अपनी भलाई मानना यही सुख-शान्ति का मूल-मन्त्र है।

हम श्रेयस्कर सत को त्याग कर दुःखद असत को प्यार करते हैं, यह कितनी बड़ी विडम्बना है। सजग दीखते हुए भी कैसी तमिस्रा में डूबे हुए हैं।

—रवीन्द्रनाथ टैगोर

□ जहाँ सत्य है और जहाँ धर्म है केवल वहाँ विजय भी है।

□ जिस धर्म में जितनी ही कम हिंसा है समझना चाहिए कि उस धर्म में उतना ही ज्यादा सत्य है। हम अगर भारत का उद्धार कर सकते हैं तो सत्य और अहिंसा से ही कर सकते हैं।

—महात्मा गाँधी

□ धरती उनको भी आश्रय देती है, जो उसे खोदते हैं। तुम भी उनकी बातें सहन करो जो तुम्हें सताते हैं और अपमान करते हैं, क्योंकि महानता इसी में निहित है। —सन्त तिळवल्लुवर

□ दया मनुष्य का जन्मजात गुण नहीं है। बच्चे और असभ्य आदिमानव सदा ही क्रूर होते हैं। दया प्रयत्नपूर्वक अर्जित की जाती है और बुद्धि मनुष्य के संस्कार से निखरती है।—डॉ. जानसन

□ पापी हो या पुण्यात्मा अथवा वध के योग्य अपराध करने वाले ही क्यों न हों, उन सबके ऊपर श्रेष्ठ पुरुषों को दया करनी चाहिए, क्योंकि ऐसा कोई नहीं है जो सर्वथा अपराध न करता हो। हम सभी ईश्वर से दया की प्रार्थना करते हैं और प्रार्थना हमें दूसरों पर दया करना सिखाती है। दया सब वस्तुओं में सबसे अधिक सस्ती है, उसके प्रयोग में हमें सबसे कम कष्ट सहन करना और आत्म-त्याग करना होता है।

—वाल्मीकि

□ महान पुरुषों के पास पैसा नहीं होता और न वे उसकी इच्छा करते हैं, क्योंकि दया से लवालव भरा हुआ हृदय उनके पास कुबेर के भण्डार की तरह मौजूद रहता है। कहते हैं कि इस दुनिया में गरीब का कोई ठिकाना नहीं। निश्चय समझो परलोक में उनका कोई ठिकाना न होगा, जिनके मन में दया नहीं है। दरिद्री मनुष्य एक दिन सम्पन्न हो सकता है परन्तु वह भिखमंगा इसी तरह दर-दर पर दुल्कार खाता फिरेगा, जिसका हृदय दया से रहित है, सत्य को कौन प्राप्त करेगा ? ईश्वर के दर्शन कौन करेगा ? वह जिसके हृदय में दया है। निर्दय मनुष्य तो अपाहिज हैं, वे अपनी बगल में रखे हुए उत्तमोत्तम पदार्थों को भी न ले सकेंगे। अरे ओ निर्दयियो, ठहरो ! दूसरों को सताने से पहले जरा सोचो तो सही कि जब इसी तरह तुम भी सताये जाओगे, तब तुम्हारी क्या दशा होगी ? हाय ! मनुष्य दया-धर्म का त्याग करके क्रूरता और पाप के पथ पर आरुढ़ क्यों होते हैं ? क्या वे इतना भी नहीं जानते कि इन दुष्टकर्मों का फल उन्हें जन्मान्तरों तक घुट-घुटकर भुगतना पड़ेगा। धरती माता साक्षी है कि नारकीय यंत्रणाएँ पापियों के लिये ही हैं, दयालुओं के लिये नहीं।

□ जिनके हृदय में दया है वे अन्धकार में न भटकेंगे। इसलिये ऐ आँखों वालो ! देखो और अपने मन में दया को स्थान दो। दूसरों के साथ दयालुता का व्यवहार करो।

□ दया प्रेम की डोरी है। —डेनियल

□ जो साधक सत्य की आज्ञा में उपस्थित रहता है वह मार अर्थात् मृत्यु के प्रवाह को भी तैर जाता है। —आचार्य १/३/१३

□ न हि प्रतिज्ञा कुर्वन्ति वितर्था सत्यवादिनः।
सब्रणम् हि महत्त्वस्य प्रतिज्ञापरिपासनम्।।
सत्यवादी लोग झूठी प्रतिज्ञा नहीं करते, क्योंकि प्रतिज्ञा का पालन करना ही उनके महत्त्व का प्रतीक है। —वाल्मीकि

□ असत्य के अज्ञानान्धकार में से निकलकर सत्य के दिव्य प्रकाश में आइए।

□ सत्यता, सद्वचन, उदारता, क्षमा, लोकहित आदि कोई न कोई कार्य करते रहना चाहिए। ये सब बहुत बड़े सहायक हैं। —स्वामी रामतीर्थ

□ जो मनुष्य मांसाहार को छोड़कर सृष्टि के अन्य प्राणियों की रक्षा में सहयोग देते हैं, वे सभी जीवों के प्रिय बन जाते हैं। —महाभारत

□ तस्मात्सत्यं बदेत्याज्ञो यत्प्रीतिकारणम्।
सत्यं यत्परदुःखाय तदा मौनपरो भवेत्।।

—विष्णु पुराण ३/१२/४३
सत्य ही बोल, जिससे दूसरों की प्रसन्नता बढ़े। जिसके कारण दूसरों का दुःख बढ़ता हो उस सत्य बोलने से तो मौन रहना अच्छा।

□ सत्य बात का विश्वास करो और पापों का तिरस्कार करो, जो शब्द सच्चे हृदय से नहीं निकलते हैं, उनका न निकलना ही अच्छा है।

—महात्मा बुद्ध

□ कभी-कभी यह आता है कि सब छोड़-छाड़ कर एकदम एकान्त में जाकर अपना प्रयोग चलाकर देखूँ तो ? अपनी शान्ति और कल्याण साधने के लिये नहीं, किन्तु आत्मनिरीक्षण के लिए, आत्मा की आवाज को अधिक स्पष्टता से सुनने के लिए जगत के ही कल्याण का प्रतिक्षण विचार हो और इस विचार की सहज-सिद्धि प्राप्त हो सके। तभी मेरा अहिंसा का प्रयोग सफल होगा। पूर्ण अहिंसक मनुष्य

गुफा में बैठा हुआ भी जगत को हिला सकता है। —महात्मा गाँधी

□ अस्थि सत्त्वं परेण परं, नस्थि असत्त्वं परेण परं।
—आचार्य १/३/१४

शस्त्र संसार में एक से एक बढ़कर है, परन्तु अहिंसा की साधना से बड़ा और कोई शस्त्र नहीं है।

□ अहिंसा का शाब्दिक अर्थ नामर्दी नहीं है। उसका अर्थ शुद्ध मर्दानगी है। अहिंसा अमन-का अर्थ पराधीनता, दुर्बलता नहीं। शौर्य हो, वही क्षमा हो सकती है।

□ सत्य विधायक है, अहिंसा निषेधात्मक है। सत्य वस्तु का साक्षी है, अहिंसा वस्तु होने पर भी उसका निषेध करती है। सत्य है, असत्य नहीं है। हिंसा है, अहिंसा नहीं है। फिर भी अहिंसा ही होनी चाहिए, यही परम धर्म है।

□ अहिंसा माने पूर्ण निर्दोषिता ही है। पूर्ण अहिंसा का अर्थ है, प्राणिमात्र के प्रति दुर्भाव का पूर्ण अभाव। —महात्मा गाँधी

□ मेरे झूठ बोलने से यदि प्रभु के सत्य की महिमा बढ़ती हो तो उस झूठ बोलने से मुझे पाप नहीं लगेगा। —सेण्टपाल

□ प्रेम का यह नियम सत्य के नियम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। सत्य के बिना प्रेम नहीं होता। सत्य के बिना प्रेम ढोंग है, जैसे कि दूसरों को कष्ट पहुँचाकर समझना कि हम देशप्रेम कर रहे हैं, यह मोह है, जैसे तरुण का किसी लड़की के प्रति होता है या हमारा यह प्रेम अयुक्तियुक्त एवं अस्थायी है, जैसे कि अज्ञानी माँ-बाप का अपने बच्चों के प्रति होता है। प्रेम सब पाशविकता से ऊपर होता है और उसमें पक्षपात का नाम नहीं होता। इसलिए सत्याग्रह को एक ऐसे सिक्के के रूप में वर्णित किया गया है, जिसके एक तरफ प्रेम है दूसरी तरफ सत्य। यह सिक्का हर जगह चलता है और इसकी कीमत नहीं आँकी जा सकती।

—महात्मा गाँधी
□ जो मनुष्य अपनी भूलों और कमजोरियों को प्रकाश में लाने से डरता है, वह सत्य का पुजारी कदापि नहीं बन सकता। —जेम्स ऐलन

□ पूर्ण सत्य की प्राप्ति तभी सम्भव है, जब तुम इच्छाओं से छुटकारा पा लो। —स्वामी रामतीर्थ

७.१ विचारसार एवं चुकियाँ (द्वितीय खण्ड)

- सत्य बिना मुझे तो सब नीरस मालूम होता है। असत्य से देश का लाभ होता ही नहीं, यह मेरी भावना है। पर कदाचित् असत्य से तात्कालिक लाभ दीखता हो तो भी सत्य का त्याग कदापि न करना चाहिए—यह मैं दृढ़तापूर्वक मानता हूँ।
—महात्मा गाँधी

- जो सच्चाई है उसे आज नहीं तो कल लोग स्वीकार करेंगे ही।

- पानी से सरल और नम्र कौन है ? पर वह पहाड़ों को घिसने और चट्टानों को गलाने में समर्थ है। कठोर को मुलायम घिस सकता है। कमजोर बलवान को जीत सकता है। जो सहन कर सकता वह स्थायी है। जो दूसरों के सुख में साथी है वह राजा है। सत्य देखने में कठिन लगता है पर असल में वही सरल है।
—ताओ तेह किंग

- परत्र स्वबोध संक्रान्तये वागुक्ता सा यदि न वञ्चिता भ्रान्ता न प्रतिपत्ति बन्ध्या वा भवेदिति। एषा सर्वभूतोपकाराद्यं प्रवृत्ता, न भूतोपघाताय। यदि वैबन्ध्यापिभीयमाना भूतोपघात परैव स्यात् सत्यं भवेत् पापमेव भवेत्।
—योग भाष्य २/३०

‘सत्य’ वह है, चाहे वह वञ्चिता, भ्रान्ता और प्रतिपत्तिबन्ध्या युक्त हो अथवा रहित। जो प्राणि-मात्र के उपकारार्थ प्रयुक्त किया जाय न कि किसी प्राणी के अनिष्ट के लिए। यदि सत्यतापूर्वक कही गई यथार्थ बात से प्राणियों का अहित होता है तो वह ‘सत्य’ नहीं। प्रत्युत सत्याभास ही है और ऐसा सत्यभाषण असत्य में परिणत होकर पापकारक बन जाता है। जैसे किसी गौ के अमुक मार्ग से जाने विषयक-गौ-घातक के पूछे जाने पर सत्यभाषी के यह कहने पर कि हाँ गाय अभी-अभी इस मार्ग से उधर को गई है। यह सत्य प्रतीत होने पर भी सत्य नहीं, प्रत्युत प्राणी-घातक है। अतः आत्मरक्षार्थ एवं पर परित्राणार्थ अन्य उपायों के असंभव हो जाने पर असत्य भाषण करना भी सत्य ही है।

- साधारणतः सत्य का अर्थ सधे बोलना मात्र ही समझा जाता है, लेकिन हमने विशाल अर्थ में सत्य शब्द का प्रयोग किया है। विचार में, वाणी में और आचार में सत्य का होना ही

सत्य है। इस सत्य को सम्पूर्णतः समझने वाले के लिए और कुछ समझना शेष नहीं रहता, क्योंकि सारा ज्ञान उसमें समाया हुआ है। उसमें जो समायें वह सत्य नहीं है। तब फिर उससे अधिक सच्चा आनन्द तो मिल ही कहाँ से सकता है ? यदि हम इस कसौटी का उपयोग करना सीख जाएँ तो हमें यह जानने में देर न लगे कि कौन प्रवृत्ति उचित है क्या देखने योग्य है क्या नहीं ? क्या पढ़ने योग्य है क्या नहीं ?
—महात्मा गाँधी

- सत्य में बड़ा बल है। सच्ची बात छिपाने से शायद ही कभी किसी को लाभ हुआ हो।
—जेक्सपियर

- हमारी बुद्धि का काम यह है कि असत्य से सत्य का अनुभव करें और ज्ञान इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है कि लगातार भूलों को भस्म करता रहे ताकि सत्य का प्रकाश मुक्त हो जाये। सत्य तुम्हारी आत्माओं की शक्ति है और असत्य अन्तरात्माओं का विष है।
—रवीन्द्रनाथ टैगोर

- सर्वांगीण मनुष्यत्व की साधना के लिए शरीर, वाक् और मन से सत्य को ग्रहण करना होगा। सत्य को केवल बुद्धि के द्वारा जानने से ही काम नहीं चलेगा वरन् उसके लिए आन्तरिक अनुराग होना चाहिए और उसका आश्रय ग्रहण करके परम आनन्द प्राप्त करना चाहिए।
—कम्प्यूथियस

- सत्यपालन करने में दुःख है। उसे कष्ट और आघातों में से तो किसी न किसी दिन पाया भी जा सकता है, पर वंचना या प्रतारणा के मीठे रास्ते से वह कभी नहीं चलता-फिरता।
—शरतचन्द्र

- अगर हमारे जीवन में सच्चाई है, तो उसका असर अपने आप लोगों पर पड़ेगा।
—महात्मा गाँधी

- हमारा कर्तव्य है कि मामूली-सा काय-क्लेश करके सत्यसाधना की अवमानना हम कदापि न करें, किन्तु उसके मूलतत्त्व को समझकर हम पाप दूर करने का अन्तरात्मा से व्रत ग्रहण करें।
—रवीन्द्रनाथ टैगोर

- सत्य में ही सब बातों का समावेश हो जाता है। अहिंसा में चाहे सत्य का समावेश न हो, पर सत्य में अहिंसा का समावेश हो जाता है।

—महात्मा गाँधी

- जिस प्रकार सूर्य की किरणें किसी पदार्थ से अपवित्र नहीं की जा सकती, उसी प्रकार सत्य को भी बाह्यस्पर्श से अपवित्र करना असम्भव है।

—मिल्टन

- जिसका जीवन सत्यमय है। वह तो शुद्ध स्फटिक मणि की तरह हो जाता है। उसके पास असत्य जरा देने के लिए भी नहीं ठहर सकता।

—महात्मा गाँधी

- सत्यं ब्रह्म देवाः सत्यमेवोपासते।

—बृहदारण्यकोपनिषद् ५/१५/१९

सत्य ही ब्रह्म है। देवता सत्य की ही उपासना करते हैं।

- स वै सत्यमेव वदेत्। एतद्वै देवा ब्रतं धरन्ति यस्तस्यम् तस्मात्ते यशो यशो ह भवति य एवं विद्वांसस्तस्यं धवसि। सत्य ही बोलो। देवता निश्चय ही सत्य का आचरण करते हैं। इसी से वे यश पाते हैं। जो विद्वान सत्य बोलता है, वह भी यश पाता है।

—शतपथ ब्राह्मण १/१/१४-५

- धर्मः सत्यं तत्तत्कृतं बलं सत्यं तत्तत्कृतं यः शीतमूलामहाप्राज्ञसत्त्वानास्तत्त्वप्रसंगयः।।

शीतमूलामहाप्राज्ञसत्त्वानास्तत्त्वप्रसंगयः।।

—महाभारत शान्तिपर्व १२४/६२

अर्थात्—भगवती लक्ष्मी प्रह्लाद से कहती हैं—हे प्राज्ञ ! धर्म का, सत्य का, सदाचार का, बल का तथा स्वयं मेरा बल भी शील में ही है—इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है।

- जहाँ धर्म वहाँ जय है, यह बिल्कुल सत्य है। किन्तु धर्म के साथ शक्ति चाहिए। यदि शक्ति न हो तो धर्म का ही अभ्युत्थान होता है।

—महायोगी अरविन्द

- मैं स्वप्नद्रष्टा नहीं हूँ वरन् क्रियात्मक आदर्शवादी होने का दावा करता हूँ। अहिंसा धर्म केवल ऋषि-मुनियों के लिये ही नहीं बनाया गया है, वह जनसाधारण के लिए भी बनाया है। जिस प्रकार हिंसा पशुओं का धर्म है, उसी प्रकार अहिंसा मानव-जाति का धर्म है। पशु की आत्मा सोती रहती है और उसे शारीरिक बल के अतिरिक्त और किसी बात का

ज्ञान नहीं होता। मनुष्य की श्रेष्ठता इस बात की माँग करती है कि उच्च धर्म (आत्मिक बल) के आदेश का पालन करो।—महात्मा गाँधी

- ऐश्वर्य का भूषण सज्जनता, वाक् संयम, ज्ञान का, शान्ति, कुल का, धन का सुपात्र के लिए व्यय, तपस्वी का भूषण क्रोध न करना, बलवान का क्षमा, निश्छलता और सब गुणों का आभूषण शील है।

—भर्तृहरि

- हृदय में क्षमा करने की शक्ति सदैव रहती है।

—स्वेट चाइन

- दुःखी को दया दर्शाना मानवोचित है। उसके दुःख का निवारण करना देवोचित।

—होरस मैन

- हे मेघ ! इस पृथ्वी पर जीवधारी इसीलिए जीवित हैं कि समय पर वर्षा हो जाती है और सबको जल की शीतलता मिलती रहती है। अन्न की उत्पत्ति जल से ही होती है और अन्न ही जीवनधन है। हे उपकारी ! तुम्हारे उपकारों से ही संस्कार की व्यवस्था कायम रहती है। तुम स्वयं कष्ट उठाकर दूसरों को शीतल सहायता पहुँचाते रहते हो, इसीलिए यह विश्व जीवित है।

यदि जल न बरसे तो इस पृथ्वी पर घोर दुर्भिक्ष फैल जाएगा, भले ही उसके चारों ओर समुद्र भरा हुआ है। स्वर्ग के स्रोत शुष्क हो जाएँगे और उपजना बन्द हो जाएगा। संसार में सब पदार्थ मौजूद हैं, परन्तु त्यागी-तपस्वियों की उदारता बिना वह मरघट जैसा भयंकर हो जाएगा। त्याग और उदारता के अभाव में विश्व का सारा सौंदर्य नष्ट हो जाएगा। मेघ ! जब तुम बरसते हो तो सूखी हुई घास फिर से हरी हो जाती है। हे उपदेशक ! तुम्हारे सद्प्रयत्नों से लोगों के टूटे हुए दिल जुड़ जाते हैं, मुरझाई हुई कलियाँ हरी हो जाती हैं।

यदि संसार में दुर्भावनाएँ फैलें, समुद्र अपना जल मेघ को देना बन्द कर दे या मेघ इस लिये हुए जल को फिर वापिस न लौटाये तो कितना भयंकर दृश्य उपस्थित होगा, उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती, परन्तु क्या उदार महानुभाव कभी ऐसा करते हैं ? वे लेते हुए दिखाई देते हैं पर देने के लिए उनका दूसरा हाथ खुला रहता है। वे इधर लेते हैं

और उधर दे देते हैं। हे लोकसेवी ! तुम अपने परिश्रम से उत्पादन करते हो, पर उस कमाई को दूसरों को ही बाँट देते हो।

मेघ ! वर्षा ! तुम्हारे बरसने से ही सबका कल्याण है। उपकारियो ! संसार की भलाई में निःस्वार्थ भाव से प्रवृत्त रहो, तभी सौन्दर्य कायम रहेगा अन्यथा इस भूमंडल में पाप और स्वार्थ की अग्नि ही धधकती रहेगी। दया और सेवा के कहीं दर्शन नहीं होंगे। इसलिये हे उपकारी मेघ बरसो और निरंतर बरसते रहो।

- मैंने इस दुनिया में बहुत वस्तुएँ देखी हैं और बहुत अनुभव किया है, परन्तु ऐसी कोई चीज मुझे नहीं मिली जो सत्य से बढ़कर हो। दुनिया में बहुत तरह के प्रकाश हैं, परन्तु महान पुरुष केवल सत्य के प्रकाश को ही प्रकाश कहते हैं। कदापि मिथ्या-भाषण न करना, मनुष्य यदि इस धर्म का पालन करता रहे तो फिर उसे अन्य धर्मों का पालन करने की क्या आवश्यकता है ? शरीर पानी से शुद्ध हो सकता है, पर मन की पवित्रता बिना सत्यभाषण के नहीं हो सकती। जिसका हृदय सत्य से पवित्र है, वह अन्य हृदयों पर शासन करेगा। वह श्रेष्ठ दानी है और महान तपस्वी है, जो सदैव सत्यपरायण है। सिद्धियाँ उसके चरणों में लौटती फिरेगी। मनुष्य को इससे बढ़कर और क्या कीर्ति हो सकती है कि उसे सत्यवादी कहा जावे।

सच्चाई वह है जिसके साथ मृदुभाषण और हितकामना भी हो। ऐसी सच्चाई जिससे दूसरों को हानि पहुँचती हो उससे तो वह झूठ अच्छा जिससे दूसरों को हित होता है। जिस बात को कहने में तुम्हारा मन झिझकता है, जिसका कहना अनावश्यक समझते हो या जिससे मिथ्यात्व का बोध होता है, उसे मत कहो क्योंकि झूठ बोलने से तुम्हारी ही आत्मा तुम्हें श्राप देगी।

- सुखित् अम्वा व अमुर्विज्जं उरिं व अ,
अरिज अनिज्ज जाहिस्सिन् ।

—सूरये अराफ २/६/२४

पूर्णतः क्षमा कर शुभकर्मों की आज्ञा दे तथा भूलों से दूर रह।

- ऐं ईमान वालो ! सच बोलो और सच्ची गवाही दो। वह सच्ची गवाही चाहे तुम्हारे माँ-बाप और रिश्तेदारों के खिलाफ ही क्यों न पड़ती हो ?

—सूरये निसाअ

- अमानत वालों की अमानतें वापस कर दो। और हर मामले का इन्साफ के साथ फैसला करो।

—सूरये निसाअ

- शरीरेण दानं परित्राणं ब्रह्मचर्यं च ।

वाचा सत्यं प्रियेहितं स्वाध्या चेति ।

मनसा दयामस्पृहा श्रद्धाश्चेति ।।

दान देना, दूसरे की रक्षा करना, ब्रह्मचर्य से शरीर के पुण्यकर्म हैं।

- सत्य, प्रिय, हित, स्वाध्याय ये चार प्रकार के वाणी के पुण्य कर्म हैं।

- दया (दूसरे के दुःख दूर करने की कामना अस्पृहा (किसी के द्रव्य व स्त्री पर मन न डलाना), श्रद्धा (गुरु, शास्त्र के वचनों से श्रद्धा, परलोक में विश्वास) ये तीन मानसिक पुण्य हैं।

- अतस्य हि गुरुषः सन्ति पूर्वी-अतस्य धीतिर्बुजिनानि हन्ति । अतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुभमान आयोः ।

—ऋ. ४/२३/६

सत्य की शोकनिवारक सम्पत्तियाँ सनातन हैं। सत्य की धारणा करना पापों का वर्जनीय वस्तुओं का नाश कर देता है। सत्य की जगाने वाली और दीप्यमान आवाज को बहरे मनुष्य भी सुन लेते हैं।

- करुणा और प्रेम इन्हीं दो शब्दों में धर्म के सारे तत्त्व निहित हैं।

- सत्य के तीन भाग हैं, प्रथम, जिज्ञासा जो कि उसकी आराधना है, द्वितीय ज्ञान जो कि उसकी उपस्थिति है और तृतीय विश्वास जो कि उसका उपभोग है।

- जो वस्तु आनन्द नहीं प्रदान कर सकती, वह सुन्दर नहीं हो सकती और जो सुन्दर नहीं हो सकती वह सत्य भी नहीं हो सकती। जहाँ आनन्द है वही सत्य है।

- सत्य के दीपक को हाथ में लेकर बढ़े चलो, कभी गिर नहीं सकते हो।

- झूठ बोलना कायरता का चिन्ह है।

- धन्य हैं वे जो न्याय पर चलते हैं और हर समय धर्म के काम करते हैं।
- सत्य से ही मनुष्यों को व्यवहार और मुक्ति का उत्तम सुख मिलता है।
- कुलीनता का सबसे सच्चा चिन्ह दया है।
- परचुरे शास्त्री को कुष्ठ रोग हो गया। वे गाँधी जी की कुटिया के पास ही रहते थे।
किसी ने दवा बताई कि काला साँप हाँडी में बंद करके जलाया जाय। उसकी भस्म शहद के साथ खाई जाये तो कुष्ठ रोग दूर हो जाएगा। शास्त्रीजी ने कहा इससे तो अच्छा है कि मुझे ही किसी संदूक में बंद करके जला दिया जाय। दूसरे का प्राणहरण करके अपने लिए सुविधा पाने में क्या न्याय है ?
- नीना की दिलचस्पी केवल तीन चीजों में है, पति, बच्चे और विश्वशान्ति। यद्यपि वे सक्रिय रूप से राजनीति में भाग नहीं लेती पर उन्होंने बढ़ती हुई हिंसा को देखकर एक बार कहा था “सभी देशों को अपने तमाम अस्त्र-शस्त्र समुद्र में फेंक देने चाहिए। तभी विश्व में शान्ति की स्थापना हो सकेगी।”
- सत्यनिष्ठ अपने शरीर की परवाह नहीं रखते। वे जिस बात को सत्य समझते हैं, उसे छोड़ते नहीं। पराजय का शब्द उनके शब्द-कोष में है ही नहीं। वे शत्रु का नाश नहीं चाहते, शत्रु पर रोष नहीं करते, किन्तु उस पर दयाभाव रखते हैं।
- ए बन्दो ! अपने मुखलिफों से भी मीठी बात करो, क्योंकि बदकलामी से किसी का दिल दुःखाना शैतान का काम है।
- ‘अहिंसा’ निर्बलता नहीं है। ‘अहिंसा’ हिंसा के भावों का अभाव है। निर्बलता से हिंसा के भाव तो रहते हैं, परन्तु हिंसा के साधन नहीं रहते। इसके विपरीत अहिंसा में चाहे साधन हों या न हों, परन्तु हिंसा के भावों का पूर्ण अभाव रहता है।
- परिवर्तन संसार का नियम है और स्वतंत्रता संसार के सुखों का आदि स्रोत। इनकी प्राप्ति के लिये सत्य और अहिंसा ही सर्वश्रेष्ठ साधन हैं।
- सच बोलने की आदत ठीक सुन्दर अक्षरों की लिखावट के समान है, जो केवल निरन्तर अभ्यास से ही बन पाता है।
- जीवन का नियम यही है कि उचित को ग्रहण और अनुचित का त्याग करो। मन-वचन और क्रिया में सत्य का आश्रय ही दुनिया की अनमोल निधि और जीवन का सर्वोपरि नियम है।
- ज्ञानी ध्यानी संयमी, दाता सूर अनेक।
जपिया तपिया बहुत हैं, शीलवंत कोई एक।।
शीलवंत सब से बड़ा, सर्व रत्न की खानि।
तीन लोक की सम्पदा, रही शील में आनि।।
सुख का सागर शील है, कोई न पावे बाह।
शब्द बिना साधू नहीं, द्रव्य बिना नहीं साह।।
शील छिया जब ऊपजे, अलख वृष्टि तब होय।
बिना शील पहुँचे नहीं, लाख कथे जो कोय।।
- झूठा आदमी अन्त में सिवाय अपने और किसी को धोखा नहीं दे सकता।
- सत्यस्य वचनं साधु न सत्याद्विषते परम्।
सत्येन विधृतं सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्।।
सत्य से बढ़कर कुछ भी नहीं, सत्य में ही सब कुछ प्रतिष्ठित है। सत्य से ही प्रतिष्ठा बढ़ती है।
- असत्यों का मतभेद केवल सत्यों से ही नहीं होता। उनमें प्रायः आपस में भी नहीं बनती।
- दया अशक्तों के लिए संसार को कोमल बनाती है और शक्तिमानों के लिए संसार को उग्र बनाती है।
- सत्याचरण का ठीक-ठीक फल है कि जब मनुष्य निश्चित रूप से केवल सत्य ही मानता, बोलता और करता है तो वह जो-जो काम करता और करना चाहता है, वे सब सफल हो जाते हैं।
- जो मनुष्य महामूर्ख हैं, वे ऐसा समझते हैं कि सत्य से व्यवहार का नाश और असत्य से उसकी सिद्धि होती है। परन्तु यदि कोई भी पुरुष किसी को व्यवहार में झूठ समझ ले तो उसकी सारी प्रतिष्ठा और विश्वास नष्ट होकर उसके व्यवहार का भी नाश हो जाता है, जो सब प्रकार के व्यवहारों में झूठ छोड़कर सत्य ही बोलते हैं, उनको तो लाभ ही लाभ होता है, हानि कभी नहीं होती। सत्य व्यवहार का

नाम ही धर्म और इससे विपरीत का अधर्म है। क्या धर्म का फल सुख और अधर्म का फल दुःख नहीं है ? इसलिये जिस सत्य के आचरण से धर्मप्राण ऋषिगण सत्य के भंडार परमात्मा को पाकर आनन्दित हुए थे और जिससे अब भी वैसा ही आनन्द प्राप्त होता है, उसका सेवन मनुष्य क्यों न करे ? यह निश्चित है कि सत्य से परे कोई धर्म और असत्य से परे कोई अधर्म नहीं है। अतः वे ही पुरुष धन्य हैं, जो सब व्यवहारों को सच्चाई के साथ ही करते हैं, झूठ का आश्रय तनिक भी नहीं लेते।

- जो वेद शास्त्रोक्त हों और जिसकी प्रत्यक्षादि प्रमाणों से परीक्षा कर ली गई हो, वह पक्षपातशून्य सत्य ही न्यायरूप धर्म है। उसके आचरण में सर्वदा प्रीति रखो तथा अपने आत्म-प्राण और मन को सतत पुरुषार्थ पंचकोमल स्वभाव से युक्त करके सदा सत्य में ही प्रवृत्त करो।
- सब मनुष्यों को सब प्रकार से सब काल में सत्य से ही प्रीति करनी चाहिए, असत्य से कभी नहीं। हे मनुष्यो ! तुम अमृत अर्थात् झूठ या अन्याय के करने में कभी प्रीति मत करो।
- सच्चाई को मोल लेना पर बेचना नहीं। बुद्धि शिक्षा और समझ को मोल भी लेना।
- भगवान की पूजा के लिये उपयोगी पुष्प हैं—अहिंसा, इन्द्रिय संयम, प्राणियों पर दया, मन को वश में करना, क्षमा, ध्यान और सत्य। इन फूलों से भगवान प्रसन्न होते हैं।
- चन्दन का वृक्ष कटने पर भी गन्धविहीन नहीं होता, वृद्ध होने पर भी गजेन्द्र क्रीड़ा का परित्याग नहीं करता, ईख माधुर्य कोल्हू में देने पर भी नष्ट नहीं होता, वैसे ही कुलीन भी, चाहे कितनी ही दुरवस्था में पड़ जाये, शील का त्याग नहीं करते।
- असत्य से बचने का पहला उपाय है कि अत्युक्ति से बचा जाये। कथन में सरसता लाने अथवा किसी को प्रसन्न करने के लिये उस सीमा तक न बढ़ो जो असत्य की परिधि बनाती हो। कथन अधिक कटु न हो, सरसता

के लिए यही पर्याप्त है। साथ ही यह न भूलना चाहिए कि सत्य को मधुर बनाना और बात है और सत्य से डरकर उसका रूप बदलना दूसरी।

बिना परिवर्तन अथवा अत्युक्ति के सत्य के प्रेम का पुट और अनुरोध का रस देकर मधुर बनाया जा सकता है। कोरा एवं कटुसत्य, सत्य ही एकांगी साधना है तो क्या इस डर से कि मेरा कथन किसी को कटु लगेगा सत्य से विमुख हो जाए ? यह सत्य की साधना के विपरीत है। किन्तु कष्टदायक कोरे सत्य से किसी का हृदय छेद देना भी तो ठीक नहीं। ऐसी स्थिति में सत्य के स्वरूप में कुछ सुधार की आवश्यकता होगी, जो सत्य की सरिता में ही गमन करती हो।

- सत्य की साधना में प्रवृत्त होते ही अनेक प्रलोभन और विघ्न आपको सत्यमार्ग से डिगाने की चेष्टा करेंगे। कभी ऐसा भी देखोगे कि मिथ्या का आश्रय लेने से ही आप धन, ऐश्वर्य, यश, गौरव आदि पार्थिव सुख भोग की वस्तुएँ अनायास प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु उस दशा में ऐसे प्रलोभन के हाथ से बचने की चेष्टा हो। मिथ्या का आश्रय लेकर समस्त पृथ्वी का आधिपत्य भी मिले तो उसे तुच्छ समझो। सत्यधर्म के आश्रय में रहकर यदि सदा दरिद्री रहना पड़े, भिक्षा से निर्वाह करना पड़े, लांछित होना पड़े, चाहे मृत्यु भी हो जाय तो उसे सहस्रगुणा श्रेय समझो, ऐसा मनोबल लाने की चेष्टा करें।

यदि तुम देखो कि असत्य के प्रलोभन से तुम्हारा चित्त दुर्बल हो गया है तो काय-मनो-वाक्य से दुर्बल केवल भगवान के चरणों में सर्वतोभाव से शरणागत हो जाओ। प्रभो ! हमें बल दीजिये, हमारा मन मिथ्या के जाल पर मुग्ध चाहता है। जानते हैं कि यह मिथ्या है, असत्य है, इसका परिणाम बुरा है, तथापि दुर्बल मन किसी प्रकार मिथ्या का प्रलोभन त्याग नहीं सकता। इस मिथ्याप्रलोभन से हमारी रक्षा कीजिए। ऐसी प्रार्थना करने से भगवान निश्चय ही रक्षा करेंगे।

- वैराग्य और तप के डोंडों के सहारे विवेकवान व्यक्ति अपनी साधना की नाव खेते हैं और सत्य के परम लक्ष्य तक जा पहुँचते हैं।



भाव-संवेदना

- विशुद्ध श्रद्धा और निष्कपट प्रेम से जो भगवान् के समीप जाते हैं, उन्हें भगवान मिल जाते हैं।
—**रामकृष्ण परमहंस**
- संसार मुझसे चित्रों में बात करता है, मेरी आत्मा संगीत में उत्तर देती है, मनुष्य के पास संगीत से अच्छी कोई भाषा नहीं।
—**रवीन्द्रनाथ टैगोर**
- पर-दुःखकातरता ही वह सर्वोत्तम सम्पत्ति है जो कोई भी व्यक्ति आने वाली सन्तानों के लाभ के लिये दे सकता है।
—**शिवानन्द**
- प्रार्थना प्रातः की कुंजी और संध्या की चटखनी है।
—**गैब्यू हैनरी**
- मनोव्यथा जब असह्य और अपार हो जाती है, जब उसे कहीं त्राण नहीं मिलता, जब वह रुदन और क्रन्दन की गोद में भी आश्रय नहीं पाती, तो वह संगीत के आश्रय में चली जाती है।
—**प्रेमचन्द**
- क्या प्रार्थना का सचमुच कुछ असर होता है? इस प्रश्न के उत्तर में मैं यही कहूँगा कि जब मन और वाणी आत्मा के साथ जुड़कर कुछ कामना-आकांक्षा करते हैं तो निश्चित रूप से उसका सत्परिणाम होता है।
—**रामकृष्ण परमहंस**
- प्रेमी का हृदय दीनों का भवन है, भगवान का हृदय प्रेमी का वास स्थान है। प्रेमी के हृद्देश में दरिद्रनारायण ही एकमात्र प्रेमपात्र है। दरिद्र सेवा ही सच्ची ईश्वरसेवा है। दीन-दुखियों के दर्द का मर्मा ही महात्मा है, गरीबों की पीर जानने वाला ही सच्चा पीर है।
- प्रार्थना या नमाज का एक ही मकसद है और वह यह है कि वह अपने आपको तमाम गन्दगी और कमीनेपन से वरी कर लें। प्रार्थना का मतलब ईश्वर को खुश करना नहीं है। वह तो विश्व के जर्-जर् में मौजूद है। अपने को पाक-साफ बनाने का तरीका यह है कि हम ईश्वर की मौजूदगी को अपने अन्दर गहराई से महसूस करें। इस तरह जो ताकत प्रार्थना से हमें मिलती है उससे बढ़कर दूसरी कोई ताकत नहीं।
—**खान बावशाह (सरहदी गाँधी)**
- न सोना, न रुपया, न तौबा रखना। मार्ग के लिये न झोली रखो, न दो कुर्ते, न जूते, न लाठी लो, क्योंकि मजदूर के लिए अपना भोजन मिलना चाहिए।
—**महात्मा ईसा**
- अपने पड़ोसी भिडुक से आग मत माँग, उसकी चिमनी से जो धुआँ तू निकलता देखता है, वह लौकिक आग नहीं बल्कि उसके हृदय में सुलगी हुई आग दुःख का है।
—**शेखसादी**
- हे परम प्रभु मुझे इस अकेली बुद्धि के सहारे मत छोड़ देना, यह अभागी खुद तो भटकी हुई है मुझे भी भटका देगी। मुझे तो प्यार का वरदान देना, जिसके सहारे अपने साथ दूसरों को भी तारता चलूँ।
—**सेन्ट लारेंस**
- धर्म क्या है ? ईश्वर तथा मनुष्य के प्रति गहरा प्रेम। इससे पृथक् कुछ भी नहीं।
—**विलियम पेन**
- यदि हमारे अन्दर सच्ची श्रद्धा है, यदि हमारा हृदय वास्तव में प्रार्थनाशील है, तो हम ईश्वर का प्रलोभन नहीं देंगे, उसके साथ शर्तें नहीं करेंगे। हमें उसके आगे अपने को आत्म-समर्पण कर देना होगा।
—**महात्मा गाँधी**
- प्रार्थना से ऐसी बहुत-सी बातें हो जाती हैं, जिनको दुनिया स्वप्न में भी नहीं सोचती। अतः एक झरने के समान रात-दिन अपनी आवाज मेरे लिए ऊपर उठाओ, अन्यथा जो मनुष्य अपने मस्तिष्क के भीतर एक अंधकारमय जीवन व्यतीत करते हैं, वे भेड़ और बकरियों से उत्तम किस प्रकार हो सकते हैं। यदि ईश्वर को जानकर भी वे अपने लिए और अपने मित्रों के हित में प्रार्थना करने को अपने हाथ नहीं उठाते।
—**टेनीसन**
- **बहु जापात् तथा होमात् कायक्सेक्षादि विस्तरैः ।
न भावेन बिना देव यंत्रमन्त्राः फलप्रदाः ।।**
—**भाव ब्रूडामणि**
- भावनाविहीन जप-तप, होम-उपवास आदि व्यर्थ हैं। भावना के बिना यंत्र-मंत्र तथा देवता फलप्रद नहीं होते।
- प्रार्थना का एक चमत्कार यह है कि हमारे सामने जब विकट समस्याएँ होती हैं और हमारी शक्तियाँ उन्हें सुलझाने में अपने को असमर्थ पाती हैं, इस स्थिति में यदि हम सरल

भाव से प्रार्थना करें, तो मनस्थिति में बिना किसी प्रयत्न के ऐसा परिवर्तन हो जाता है कि समस्याओं का समाधान आप ही आप सुझाई देने लगता है मैं इसे ईश्वर की कृपा मानता हूँ।
—महात्मा गाँधी

- सामान्यतः मनुष्य सोचते हैं—प्रार्थना में सबसे मुख्य बात, जिस पर उन्हें अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए, यह है कि वे जिस वस्तु की याचना कर रहे हैं, भगवान उसे सुन ले। पर यह गलत है। प्रार्थना का असली क्रम तो यह है कि प्रार्थना करने वाला तब तक प्रार्थना करता जाय, जब तक उसे यह सुनाई न देने लगे कि ईश्वर उससे क्या चाहता है ? हम प्रार्थना के हजारों शब्द दुहराते हैं। भगवान से बीसों वस्तुएँ माँगते हैं, लेकिन सच्चा मनुष्य प्रार्थना में कुछ माँगता नहीं, बल्कि मौन और एकाग्र होकर भगवान की वाणी सुनता है।

—सोरेस की एर्कगार्ड

- प्रार्थना ईश्वर की तरफ आधे रास्ते तक ले जाती है। उपवास उनके द्वार तक पहुँचा देता है, पर प्रवेश तो हम तभी कर पाते हैं, जब अपनी प्रिय वस्तुएँ दान दे सकते हैं।

—शेखसादी

- संगीत एक भावनात्मक घिराव है, जो मनुष्य को चारों ओर से अपने पाश में जकड़ने का प्रयत्न करता है।

—जॉ कोक्ल

- प्रेम ! प्रेम !! प्रेम !!! प्रेम ही एक अति उत्तम भोजन है। यही एक श्रेष्ठ तथा स्वादिष्ट पदार्थ है। इसे उदारता के वस्त्र में बाँध लें। यदि जान-बूझकर खा लें तो भी तेरा भला। यदि किसी को खिला दें तो भी तेरा भला। यदि कोई लूटकर या चोरी से तेरी गठरी में से खा ले तो भी तेरा भला ही होगा।

- संकुचित विचार वाला मनुष्य कभी विशाल हृदय और स्वतन्त्र विचार रखने वाला नहीं बन सकता। प्रेम के सौदे में भार नहीं, वह बहुत हल्का है, परन्तु उसका विस्तार इतना है कि किसी भी संकुचित हृदय में इसकी समाई नहीं हो सकती।

—प्रभुकाथिरा

- हम कर्म क्यों करते हैं ? अपने अहम्-मम् को प्रकट करने के लिए। कर्म करने से उसके कर्ता की प्रकृति जानी जाती है। यज्ञ में

सामग्री रख दी गई, आप आहुति देने लगे, पर ध्यान अन्यत्र होने से आहुति अन्यत्र गिर गई तो इसमें कर्म-कर्ता की प्रकृति का पता लग जाता है। यह बात कर्म करने से ही प्रतीत होती है। कर्म से ही अहम् प्रतीत होता है। “इदमग्नये इदन्नमम” मेरे कृत-कर्म से ही प्रकट हो कि मुझमें मम-भाव नहीं है। अर्पण भाव हो तो यह प्रेमार्पण सहित कर्म होता है। कर्म ही प्रेम को प्रकट करता है।
—प्रभु आश्रित जी

- प्रेम थकान को मिटाता है, दुःख को सुख बनाता है, जीवन की वाटिका में प्रेम का गुलाब खिलकर अपने चारों ओर सुगन्ध बिखेर देता है, प्रेम भगवान का श्रेष्ठ वरदान है।

—वाल्टेयर

- प्रेम ऐसी तुच्छ वस्तु नहीं है कि धर्म को हटाकर उसके स्थान पर आप बैठे। प्रेम महान है, प्रेम उदार है। प्रेमियों को भी वह उदार और महान बनाता है। प्रेम का मुख्य अर्थ है आत्मत्याग।

—जयशंकर प्रसाद

- न्याय नहीं बल्कि त्याग और केवल त्याग ही मित्रता का नियम है।

—महात्मा गाँधी

- “पवित्रता वह सम्पत्ति है जो प्रेम के बाहुल्य से पैदा होती है।”

—रवीन्द्रनाथ टैगोर

- अपार जलराशि से भी प्रेम की पिपासा शान्त नहीं हो सकती और न ही भयानक बाढ़ इसे डुबा सकती है।

—सालोमन

- परमेश्वर की इच्छा है कि तुम पवित्र बनो, व्यभिचार से बचे रहो, तुममें से हर एक पवित्रता और आदर के साथ भगवान की प्रार्थना करना जाने। तुम सब आपस में प्रेम करो, क्योंकि परमेश्वर प्रेम की ही शिक्षा देता है।

—महात्मा ईसा

- जो कुछ सुन्दर और कल्याणमय है उसके साथ यदि हृदय की समीपता बढ़ाते रहें तो संसार सत्य और पवित्रता की ओर अग्रसर होगा।

—जयशंकर प्रसाद

- परमात्मा पूजा का नहीं प्रेम का भूखा है।

—स्वामी दयानन्द सरस्वती

- जीवन की कीर्ति प्रेम करने में है, न कि पाने में, सेवा करने में न कि सेवा कराने में।

—ब्लेक

- धन फलदायक नहीं होता और न नाम, यश, और न विद्या। प्रेम ही सर्वत्र फलदायक है, चरित्र ही कठिनाइयों की संगीन दीवारों को तोड़कर अपना रास्ता बना लेता है।

—स्वामी विवेकानन्द

- प्रेम के जाग्रत होने का यह अर्थ नहीं है कि हम मधुरता और सुख में ही विचरण करें किन्तु इस जाग्रति से हममें उन वीरोचित प्रयत्नों का जागरण हो, जहाँ मृत्यु से जीवन को अमरता प्राप्त होती है और कष्ट-सहन के द्वारा वास्तविक आनन्द मिलता है।

—रवीन्द्रनाथ टैगोर

- जिस मनुष्य ने कभी प्रेम नहीं किया, वह मनुष्य कदापि ईश्वरानुभव नहीं कर सकता। यह एक तथ्य है।

—स्वामी रामतीर्थ

- ईश्वरीय प्रेम को छोड़कर दूसरा कोई प्रेम मातृ प्रेम से श्रेष्ठ नहीं है।

—स्वामी विवेकानन्द

- अन्यो अन्यन्मिहर्षता।

अथर्व. ३।३०।१९

- एक-दूसरे को प्यार और प्रसन्नता प्रदान करो।

- तू अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम रख।

—मत्ती २२

- अहिंसा—तितिक्षा प्रेम की मात्रा को बढ़ाकर सत्य को सिखाती है। प्रेम सौदे की वस्तु नहीं है।

- जीवन का नियम यदि प्रेम न होता, तो मृत्यु के बीच में जीवन कभी टिक नहीं सकता था।

- प्रेम की मेरी कल्पना यह है कि वह कुसुम से कोमल और वज्र से भी कठोर हो सकता है।

—महात्मा गाँधी

- थोड़े दिन के बीतने पर दुष्ट रहेगा ही नहीं और तू उसके स्थान को भली-भाँति देखने पर भी उसको न पायेगा, पर नम्र लोग पृथ्वी के अधिकारी और बड़ी शान्ति के कारण सुख मानेंगे।

—भजन संहिता ३७।१०।१९

- व अकीमुस्सल्लाता व आतुप्पकाता विमाज्जतअलुमा बसीर।

—सूरये बकर १।१९।३३

प्रार्थना करते रहो एवं दान देते रहो। जितनी भलाई अपने लिए संचय करके पहले भेज दोगे, उसकी उतनी ही अल्लाह के यहाँ मिलेगी।

निस्सन्देह जो कुछ भी तुम कर रहे हो, अल्लाह देख रहा है।

- व अकीमुस्सल्लाता व आतुप्पकाता बरकउम अरकिईन।

—सूरये बकर १।१९।६

प्रार्थना करो तथा दान दो और जो मनुष्य झुकते हैं उनके साथ तुम भी झुका करो।

- एक-दूसरे को प्यार करो।

- प्यार में परमात्मा का प्रत्यक्ष निवास है।

- हम प्रवचन सुनते हैं, शास्त्र पढ़ते हैं और मन्दिर देवालयों में नमन करते हैं लेकिन अपने भीतर भरे हुए और बाहर बिखरे हुए परमात्मा के अनन्त-सौन्दर्य को देखने से आँखें ही बन्द किये रहते हैं।

हमारा विवेक जगे तो देखें कि इस वसुधा के कण-कण में कितना सौन्दर्य बिखरा पड़ा है ? और हर दिशा में कितना मर्मस्पर्शी संगीत अनहद नाद गुंजित हो रहा है। ईश्वर आँखों से नहीं देखा जाता, वह कान से नहीं सुना जाता। उसे केवल अन्तरात्मा ही भावभरी संवेदनाओं के रूप में अनुभव कर सकती है।

—स्वामी रामतीर्थ

- त्याग और प्रेम का भारी सम्बन्ध है, ऐसा कि कौन पीछे है यह निश्चय करना ही कठिन है। प्रेम बिना त्याग नहीं और बिना प्रेम त्याग असम्भव है। जो वस्तु स्वार्थपूर्ति के लिये अथवा अत्याचार के रूप में छीन ली जाय, वह त्याग नहीं। हम प्रेमवश स्वयं ही दे डालें वही प्रेम है। हम जिसमें से कुछ भी बचाकर नहीं रखते, सम्पूर्ण रूप में देते हैं, उसी को मैं सार्थक दान मानता हूँ। किन्तु त्याग की साधना के अन्त में प्रेम ही हमारे पास रह जाता है। जो लोग सदा अपनी ही ओर खींचते रहते हैं, अपने अहंकार को विजयी बनाने में व्यस्त रहते हैं, उन्हीं स्वार्थी, दाम्भिक व्यक्तियों के भीतर प्रेम का सूर्य अन्धकार के पर्दे में छिपा रहता है, स्वार्थ का बन्धन छोड़ना होगा, अहंकार का नागपाश मोचन करना होगा, जिसे मर-खपकर जमा किया है, उसी को प्रतिदिन त्याग करना होगा। इससे फिर क्या मिलेगा ? मुक्ति का जो चरम लक्ष्य प्रेम है वही मिलेगा।

—रवीन्द्रनाथ टैगोर

□ किसी वस्तु या व्यक्ति में तभी तक भद्दापन दिखाई देगा, जब तक तुम उसे प्यार नहीं करते। अन्धकार से लड़कर अन्धेरा दूर नहीं होता। प्रेरणा देना ईश्वर का काम है। कवि, अन्वेषक, कलाकार, वैज्ञानिक, शास्त्रों के विचारक जिन्हें दिव्यप्रेरणा प्राप्त हुई केवल प्रेम के ऋणी हैं। कृष्ण, चैतन्य, ईसा, तुलसी और शेक्सपीयर सबके सब उत्प्रेरित थे क्योंकि वे प्रेम में मस्त रहते थे। जिस प्रेम को अभी सांसारिक घरातल पर नहीं पटक़ा गया, आध्यात्मिक प्रकाश का ही वह दूसरा नाम है और ईश्वर तो स्वयं ही प्रेम स्वरूप है। कहना चाहिए प्रेम ही ईश्वर है। —स्वामी रामतीर्थ

□ लोग पूजा करते हैं, प्रार्थना करते हैं, उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु कैसी बच्चों जैसी बात है ? कितने आश्चर्य का विषय है कि उसके प्रसन्न होने के पूर्व ही अपनी इच्छाओं को सामने रखने लगते हैं, मनोरथों को माँगने लगते हैं, सो भी मनोरथ कौन-से ? सांसारिक भोग, जो संसार में चारों ओर बिखरे पड़े हैं और जिनका न कोई मूल्य है और न ही महत्त्व। बल्कि सबके सब हेय और त्याज्य माने गये हैं।

ऐसे मूर्ख और दरिद्र-मना व्यक्ति से कोई साधारण व्यक्ति भी प्रसन्न नहीं होगा फिर परमात्मा के प्रसन्न होने की बात कैसे हो सकती है ?

□ कामनाओं को साथ लेकर परमात्मा की पूजा-प्रार्थना करने वाला वास्तव में परमात्मा की नहीं अपनी कामनाओं की ही उपासना किया करता है। उसमें जो कुछ लगन, तीव्रता और तन्मयता होती है, उसके हेतु कामनाओं की लिप्सा ही हुआ करती है, प्रभु-प्रेम नहीं। तब भला ऐसा वंचक उस परम विज्ञानमय प्रभु को किस प्रकार प्रसन्न कर सकता है ?

—संत तुकाराम

□ अन्धकारवशात् पुंसां सिद्धिर्भवति नाम्बया।

अन्धेषां च न सिद्धिः स्वात्स्न्यावस्थेन साधयेत् ।।

—शिव संहिता

श्रद्धावान व्यक्ति को ही सिद्धि मिलती है। दूसरों को नहीं। इसलिए प्रयत्न और श्रद्धापूर्वक साधना करें।

□ क्वेटा का भूकम्प अभी हाल की ही बात है। बात की बात में शहर संहार होकर एक ईट-पत्थर का ढेर बन गया। आलीशान और खूबसूरत ईमारतें खाक में मिल गईं और मनो असवाब तथा धन, जन का गहरा नुकसान हुआ। इस लम्बे-चौड़े ढेर के खास स्थान पर एक कुत्ता रोज सुबह-शाम आता और रोने की आवाज लगाता। लोग उसे पुचकारते पर वह उनकी तरफ देखता तक नहीं। जो खाने-पीने का सामान दिया जाता, वह उसे सूँघता तक नहीं। उसे इनसान से नफरत-सी हो गई। वह पागल-सा हो गया। अब लोग उसे पागल कुत्ता कहकर दुत्कारने लगे, वे अब उसे पहले की तरह तरस न खाते। पगली हालत में वह कुत्ता उस स्थान पर विशेषकर जाता और सुबह-शाम धधाड़े मारता। एक दिन उस कुत्ते के उसी स्थान पर दम निकल गये।

जब खुदाई शुरू हुई तो उस स्थान विशेष पर एक लाश निकली। यह लाश करीब के गाँव के रहने वाले एक आदमी की थी। वह कुत्ता जिसका जिक्र ऊपर हो चुका है, उस आदमी का पालतू था। अपने मालिक को मकान पर न पाकर इस कुत्ते ने अपनी सूँघने की शक्ति से उस स्थान का पता लगा लिया, जहाँ वह ढेर के नीचे दबा पड़ा था। दिन-रात कुत्ता गाँव में रहता और सुबह-शाम वहाँ जाकर अपने मालिक की अलख जगा जाता। खाने-पीने को तिलांजलि देकर और अलख जगा-जगाकर वह उस लोक में अपने स्वामी से जा मिला।

असली पता चलने पर लोग कुत्ते की भूरि-भूरि प्रशंसा करते और कहते—

“जेडिंकर जेडिं पर सत्य सनेहू।

तो तेडि मिस्त न कसु सनेहू। —तठन

□ तुम अपने मन में जैसे विचार करते हो वैसे ही बन जाते हो। इसलिये वैसे ही विचार करो जैसे कि तुम बनना चाहते हो। मन की भावनाओं का असर जीवन के कार्यों पर और उन कार्यों का असर शरीर पर पड़ता है। यदि तुम अपने शरीर को उन्नत बनाना चाहते हो, जीवन की गतिविधि में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करना चाहते हो तो पते-पते पर मत भटको ! जड़ को तलाश करो। जीवन की सम्पूर्ण समस्याओं का आधार मन है और उस मन का कार्य विचार है। छोटी परिस्थितियों में हो

तो भी कुछ हर्ज नहीं। विचार उच्च रखो। स्वार्थ, कपट, ढोंग और हिंसा के विचार मनुष्य के सबसे बड़े शत्रु हैं। सिंह और सर्प की तरह इनसे दूर रहो।

- परोपकार, प्रेम, दया और त्याग के शुभ विचारों से अपना हृदय भरपूर रखो। किसी की सक्रिय सहायता न कर सको तो भी दूसरों के लिए दो बूँद सहानुभूति के आँसू बहा दो। तुम्हारे विचार जितने पवित्र होते जाएँगे उतना ही हृदय विशाल बनता जाएगा। तुम्हारा हृदय जितना विशाल होगा, उसमें उतनी ही अधिक विभूतियाँ परमात्मा द्वारा भर दी जाएँगी।
- बुद्धिमान मनुष्य कहलाता है और दयावान भगवान।
- धनी वह है जो सोचता है कि अपनी सामर्थ्य से हर किसी के आँसू पोछ दूँ।
- परमेश्वर की सम्यक उपासना करके इस प्रकार उन्हें समर्पण करे कि हे दयानिधे ! आपकी कृपा से हम जो-जो शुभकर्म करते हैं, वे सब आपके अर्पण हैं, जिसे कि हम लोग आपको प्राप्त होकर सत्य एवं न्यायानुकूल शक्ति और वर्णरूप धर्म, धर्मानुकूल पदार्थों की प्राप्ति रूप धर्म और अर्थ के द्वारा इष्ट भोगों का सेवनरूप काम तथा समस्त दुःखों से छुटकारा, सर्वदा आनन्दमग्न रहना रूप मोक्ष प्राप्त कर सकें।
- कचौड़ियाँ बाहर से तो आटे की होती हैं, किन्तु भीतर मसाला भरा होता है, उनकी अच्छाई-बुराई भीतर के मसाले से देखी जाती है, इसी प्रकार सब मनुष्यों के शरीर तो प्रायः एक से ही होते हैं, परन्तु हृदयों में अन्तर होता है, इसी अन्तर के कारण भले और बुरे की पहचान की जाती है।
- जिस ओर ज्यादा वजन होता है तराजू का वही पलड़ा नीचा हो जाता है। जिसमें सज्जनता और गम्भीरता का वजन होता है वह नर्म बनकर चलता है और जो ओछे होते हैं वे ऊपर उठे हुए पलड़े की तरह अपना बड़प्पन बघारते फिरते हैं।
- भगवान के साथ भगवान का समर्पण भाव रहना चाहिए। मैं को भिटाकर तू में लीन होना चाहिए। इस सम्बन्ध में सांसारिक दृष्टि से

किसी भी स्तर का माना जा सकता है। पिता, पुत्र, माता, बहिन, सहायक, स्वामी, सेवक, सखा, पति, पत्नी आदि कोई भी रिश्ता उससे माने इससे कुछ अन्तर नहीं आता। दूध को दही, छाछ, रबड़ी, खोया आदि कुछ भी बनाकर खाया जा सकता है।

- जब तेरा शत्रु गिरे तब तू आनंदित न हो और जब वह ठोकर खाए तब मेरा मन मग्न न हो। कहीं ऐसा ही न हो कि यहोवा यह देखकर बुरा माने और अपना कोप तुझ पर उतारे।
- जो श्रद्धा का महत्त्व नहीं जानता वही वैभव की चिन्ता करता है। पुरुषार्थ पर विश्वास करो और ईश्वर पर श्रद्धा रखो। श्रद्धा ही मनुष्यों को सींचती और आगे बढ़ाती है।
- जो परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना नहीं करता, वह कृतघ्न और महामूर्ख है, क्योंकि जिसने जीव के सुख के लिये इस जगत् के सारे पदार्थ दे रखे हैं, उस ईश्वर के गुण भूल जाना—उसी को न मानना—कृतघ्नता और मूर्खता ही है।
- जब जीव सच्चे मन से आत्मा, प्राण एवं सब सामर्थ्य में परमेश्वर को भजता है, तो वह करुणामय उसे अपने आनन्द में स्थिर कर देता है। जैसे कोई छोटा बालक यदि घर के ऊपर से अपने माता-पिता के पास नीचे जाना चाहता है अथवा नीचे से उनके पास ऊपर जाना चाहता है, माता-पिता हज़ारों आवश्यक कार्यों को छोड़कर और दौड़कर अपने बच्चे को गोद में उठा लेते हैं, वैसे ही जब कोई सच्चे आन्तरिक भाव से कृपानिधि परमेश्वर की ओर चलता है और वे अनन्त शक्तिरूप अपने हाथों से उस जीव को उठाकर सदा के लिये अपनी गोद में रख लेते हैं, फिर उसे किसी प्रकार का दुःख नहीं देते और वह सदा आनन्दमग्न रहता है।
- प्रेम और भक्ति दोनों ही दिल से लौ लगाने को कहते हैं। मगर प्रेम दिल को उधर ही जाने देता है, जिधर वह आपसे आप जाता है और भक्ति उसे उधर चलने को कहती है, जिधर सत्य चलना बतावे।

८.६ विचारसार एवं सुक्तियों (द्वितीय खण्ड)

- प्रेमविहीन हृदय के लिए संसार काल कोठरी है, जो नैराश्य और अन्धकार से भरी है।
- जैसे अत्याचारी तथा अन्यायी का विरोध करना परम धर्म है। उसी तरह पतितों से प्रेम रखना भी परम धर्म है।
- जिसके हृदय में प्रेम है, वह निःसंदेह प्रभु के समीप है, क्योंकि ईश्वर भी प्रेम ही है।
- प्रेम आँखों से नहीं हृदय से देखता है। इसलिए प्रेम अन्धा है।
- उद्वेग के दानव को पूजने वाले उसके लिए कलह, द्वेष और उत्पीड़न के उपकरण जुटाते रहते हैं, तुम अपने देवता को स्नेह-सद्भाव के पुष्पों से सजाओ।
- दूसरों से प्रेम करना अपने आप से प्रेम करना है।
- यदि तुम्हारा प्रेम किसी से भी सांसारिक-स्वार्थ और वासना रहित है, तो तुम्हें शान्ति ही शान्ति, आनन्द ही आनन्द मिलेगा और यदि उसमें स्वार्थ और वासना ही प्रधान है तो कोई भी शक्ति तुम्हें दुखी होने से नहीं रोक सकती।
- प्रेम और वासना में उतना ही अन्तर है, जितना कंचन और काँच में। प्रेम की सीमा भक्ति से मिलती है और उनमें केवल मात्रा का भेद है। भक्ति में सम्मान का, प्रेम में सेवा-भाव का आधिक्य होता है। प्रेम के लिये धर्म की विभिन्नता कोई बन्धन नहीं है। ऐसी बाधाएँ कुछ मनोभाव के लिये हैं, जिसका अंत विवाह है, उस प्रेम के लिये नहीं, जिसका अन्त बलिदान है।
- प्रेम आत्मा का रूप है। उसका गुण आत्मिक है। यदि हमारा प्रेम में विश्वास होगा तो प्रेम-शक्ति के द्वारा हम सारे संसार को हिला सकते हैं।
- प्रेम का दर्जा बल से अधिक है, ऊँचा है। बल जहाँ हारता है, प्रेम वहाँ सफल होता है। बल-प्रयोग में हराने का भाव होता है, प्रेम-प्रयोग में सुधारने का।
- यदि तुम प्रेम के साक्षात् दर्शन करना चाहते हो तो माता के गदगद नेत्रों को देखो।
- प्रेम में अमृत है और विष भी। मनुष्य इसमें पागल हो जाता है, महाअन्धा हो जाता है। प्राण रहते भी मृत्यु की गोद में खेलने लगता है।
- प्रेम का मूल्य प्रेम ही है। तुम दूसरों के शरीरों पर शासन कर सकते हो परन्तु जब तक अपना हृदय किसी को समर्पण न कर दो, तब तक उसके हृदय पर अधिकार नहीं कर सकते।
- अपनापन जिसके साथ जुड़ता है, उसे कष्ट देते नहीं बन पड़ता। अपनेपन का दायरा बढ़ाओ ताकि किसी को दुख देना न बन पड़े। अपने शरीर या सन्तान को कौन सताना चाहता है ?
- शत्रु से शत्रुता करना तो बैर को दूना बढ़ाना है। बैर दूर करने का उपाय तो प्रेम है।
- अपने विरोधी को अनुकूल बनाने का सबसे अच्छा उपाय यही है कि उसके साथ सरल और सच्चा प्रेम करो। वह तुमसे द्वेष करे और तुम्हारा अनिष्ट करे, तब भी तुम प्रेम ही करो।
- अपनी प्रसन्नता दूसरे की प्रसन्नता में लीन कर देने का नाम ही प्रेम है।
- चेतना तथा ज्ञान की तरह प्रेम भी एक ईश्वरीय विभूति है और उसका अवलम्बन लेकर मनुष्य बड़ी-से-बड़ी सफलता और सिद्धि प्राप्त कर सकता है। मनुष्य में अपने निकटवर्ती अथवा किसी रूप में सम्पर्क में आने वाले मनुष्यों के प्रति प्रेम का भाव जितना अधिक होता जाता है, वह उसे व्यवहार में भी लाता रहता है—उतना ही वह ईश्वर निकट पहुँचता जाता है।
- प्रेम समुद्र से भी गहरा होता है। जिस प्रकार समुद्र किनारे को सदा सुन्दर रखता है, उसी प्रकार प्रेम भी हृदय को प्रफुल्लित रखता है।
- हमें ईश्वर का सच्चा साक्षात्कार तभी होता है जब हम उसके सामने अपनी याचनाएँ न लेकर किन्तु अपनी भेंटें लेकर जाते हैं।
- प्रेमपूर्ण व्यवहार संसार का प्रत्यक्ष अमृतरस है। जिससे प्रेमपूर्ण व्यवहार किया जाएगा वह अवश्य ही प्रेमपूर्ण व्यवहार करेगा।

- मोह और प्रेम में जमीन आसमान जितना अन्तर है। मोह अपनों से होता है। भले ही वे दुष्टता करते रहें। प्रेम शालीनता सम्बर्द्धन के लिए सज्जनों के साथ पलता है और लक्ष्य से इधर-उधर नहीं भटकता।
- यदि किसी व्यक्ति की समझ में यह रहस्य आ जाता है कि वह प्रेम के अभाव से पीड़ित है तो उसका एकमात्र इलाज यह है कि वह दूसरों से प्रेम करो तो प्रतिदान में उसे दूसरों से स्वयं ही झोली भरा प्यार मिलेगा, वह दुखोत्पादक भावनाओं से बच सकेगा।
- संसार में सबसे बढ़कर प्रेम है, प्रेम साक्षात् परमात्मा का स्वरूप है, इसलिए जहाँ प्रेम है वहाँ सुख और शान्ति का साम्राज्य है। वह प्रेम स्वार्थ त्यागपूर्वक दूसरों की आत्मा को सुख पहुँचाने से होता है।
- प्रेम ही सब रोगों की अद्भुत औषधि है। प्रेम ही जीवनदाता है। प्रेम ही जीवन है। प्रेम ही हमारी व्यथाओं का सम्मान करने वाला है। प्रेम ही जीवन का वास्तविक आनन्द देने वाला है।
- तुम्हें क्या चाहिए ? तुम्हें जो कुछ चाहिए। उसे अपनी मुसकराहट से प्राप्त करो, न कि तलवार के जोर से ? जीवन का तीन-चौथाई अच्छा चाल-चलन है।
- प्रेम में मनुष्य सब कुछ देकर भी यही सोचता है कि अभी कम दिया।
- प्रेम बन्धन नहीं, वह कर्तव्यपालन के लिए अवकाश, उत्साह और सहयोग प्रदान करता है।
- प्रेम के लिए लिंगभेद आवश्यक नहीं। वह मित्र-मित्र के बीच और सहेली-सहेली के बीच भी बिना भेदभाव के निभ सकता है।
- जीवन का आनन्द अन्तरात्मा का संगीत सुनने में समाया हुआ है।
- देवालय तो सबके लिये पवित्र है।
- नारी-सम्मान सबका परम कर्तव्य है।
- देश और धर्म भिन्न नहीं हैं।
- बुद्धि नहीं, भावना ही जोड़ती है।
- संख्या नहीं शक्ति ही जीतती है।
- उत्कृष्ट प्रेम में कृत्रिमता नहीं होती, तभी तो वह फूस की झोंपड़ी को स्वर्गमहल से अधिक सुन्दर बना देता है।
- प्रेम रूप पर नहीं ललचाता वरन् कुरूप को भी अपने दुलार से सुन्दर बना लेता है।
- शिष्टता हृदय की भावनाओं की बात होती है न कि दिखावे की।
- दूसरों की कठिनाइयों के प्रति अपने हृदय में करुणा उमगाओ, फिर जो कुछ भी तुमसे बन पड़ेगा वह धर्म होगा।
- जितना हम दैवीतत्त्व से एकता का सम्बन्ध जोड़ेंगे, जितना हम अपने परमपिता परमात्मा में तन्मय होंगे उतना ही हमारा जीवन शान्तिमय, आश्वासनपूर्ण और उत्पादन शक्ति युक्त होगा।
- जो भगवान के हैं, जो भगवान के हो गये हैं, जिनको भगवान का एकमात्र सहारा है, ऐसे जो भी हैं—चाहे पक्षी हों, पशु हों, बालक हों, वृद्ध हों—उन सबका भाव भगवान पर होता है। उनको कब किस वस्तु की आवश्यकता है ? इसकी जाँच करेंगे भगवान और पूर्ति करेंगे भगवान।
- सन्त राबिया जब ईश्वर से प्रेम की मस्ती में आती तो कहती—ऐ मेरे मुहब्बी, मुझे ऐसी दुनिया में ले चल जहाँ तेरे सिवा और कोई न हो। जन्नत (स्वर्ग) तू अपने दोस्तों को दे। दोजख (नरक) में अपने दुश्मनों को डाल। मेरे लिये तो एक तू ही काफी है।
- जो ईश्वर को अपना सर्वस्व मानता है, वही असली धनवान है। दुनिया की चीजों को अपनी सम्पत्ति मानने वाला तो सदा गरीब ही रहेगा।
- प्रार्थना हृदय के कपाट खोलती है, ताकि ईश्वर को उसमें प्रवेश करने का अवसर मिल सके।
- जो विपत्ति देता है, मंगल भी वही देता है। अतः उसके ऊपर अविश्वास न करके अवस्थानुसार जीवन व्यतीत करना ही प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है।
- जिसमें आत्मबल नहीं होता, उसकी श्रद्धा भी नहीं टिकती।

- हवा में उड़ना कोई चमत्कार नहीं, क्योंकि गन्दी मक्खियाँ भी उड़ सकती हैं। बिना पुल और नाव के नदियों को पार कर लेना कोई चमत्कार नहीं, कुत्ते भी उन्हें पार कर सकते हैं परन्तु दुखी हृदय को सहानुभूति और सहायता पहुँचाना एक ऐसा चमत्कार है जिसे पवित्र आत्माएँ ही दिखा सकती हैं।
- यह धारणा मिथ्या है कि श्रद्धा अन्धी है और तर्क के आँख हैं। श्रद्धा सुकुमारता लिए हुए है और तर्क कर्कशता। श्रद्धा में यह विशेषता है कि वह कल्पना द्वारा बनाई हुई अपने श्रद्धेय की मूर्ति को साक्षात् मान लेती है, जबकि तर्क साक्षात् देखने वाले श्रद्धेय पुरुष को भी सन्देह भरी दृष्टि से देखता है।
- वह ज्ञानी जो किसी की पीड़ा पर रो न सके, जो प्रसन्नता की घड़ी में भी हँस न सके, जो इतना आत्मकेन्द्रित हो कि दूसरों की चिन्ता न करता हो, वह अज्ञानी से भी बढ़कर है।
- किसी के प्रति बुरे विचारों को रोकना तब सम्भव है जब हम उसके प्रति अपने संवेगों में परिवर्तन कर दें।
- गंगा-यमुना का जल श्वेत हो या श्याम—उनमें से किसी में भी स्नान करने पर राजहंसों की धवलता यथावत बनी रहती है। वे जल के रंग से प्रभावित नहीं होते।
- लड़की छोटी थी। वह अपने छोटे भाई को पीठ पर लादकर खेत से घर ला रही थी। राहगीर ने पूछा कि बेटी पीठ पर लदा लड़का तो तुमसे कुछ ही छोटा है। इसे लाद ले चलना तो तुम्हें भारी पड़ता है। लड़की ने कहा भाईसाहब यह भारी नहीं 'भाई' है, भला भाई भी कहीं भारी होता है।
- उच्च सत्कर्म की परख कार्य की अधिकता से नहीं वरन् करने वाले की हार्दिक भावनाओं, प्रेम और श्रद्धा से करनी चाहिए।
- भगवान मन को देखते हैं—भावग्राही जनार्दनाः।
- दोस्तों बस्की ने अपने संस्मरणों से लिखा है—'मेरा बड़ा भाई पक्षियों से चहचहाती झाड़ियों के समीप जाकर प्रार्थना करता था कि

भगवान हमें ऐसी बुद्धि दे कि हम इन प्रकृति-पुत्रों के साथ सज्जनता से रह सकें। तब मुझे यह प्रार्थना-प्रक्रिया अटपटी सनक जैसी लगती थी। पर अब मैं सोचता हूँ हम सब प्राणधारी एक ही सागर की लहरें हैं। एक दूसरे के साथ प्रत्यक्ष न सही परोक्ष सूत्रों द्वारा जुड़े हैं, तो हमें प्यार को सीमित नहीं रहने देना चाहिए। समुद्र जिस तरह हर लहर को अपनी गोदी में सँजोये रहता है, हमें भी हर प्राणी तक अपनी ममता का विस्तार करना चाहिए। भले ही लोग उसे सनक कहकर उपहास उड़ाते रहें।

- दुःख हृदय में जलती हुई अग्नि की ज्वाला है। वह लज्जा, अपमान और आत्म-ग्लानि का प्रत्यक्ष स्वरूप है। यह हृदय में उमड़े हुए शोक-सागर का उद्वेग है, जब कोई बात हमारी आशा के विरुद्ध होती है तभी दुःख होता है।
- जब हम भावुक होते हैं, तो शहीद होने की सोचते हैं और जब उत्तेजित होते हैं, तो किसी के कठोर शब्द तक नहीं सह पाते।
- यह सब कुछ जल रहा है पर तुम्हें आनन्द और हँसी सूझ रही है ? अन्धकार से घिरे रहकर भी तुम प्रदीप को क्यों नहीं खोलते ?
- मनुष्य विवेकशील और न्यायपरायण होने के कारण मनुष्य है, किन्तु प्रेम और उदारता की भावनाओं को विकसित करके वह देवता भी बन सकता है।
- नम्रता दिखाकर किसी के हृदय में पश्चात्ताप की भावना भरना कठोरता के साथ फटकार से उत्तम है।
- संत कबीर ने पंडित की बड़ी अच्छी परिभाषा की है—
पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय॥
- मेघगर्जन को सभी देखते और गड़गड़ाहट को सभी सुनते हैं पर यह विरले ही जानते हैं कि इन दोनों के पीछे बिजली की तड़पन काम करती है। दृश्यमान कृत्यों के पीछे अदृश्य उमंग-भूमिका रहती है।

- अपनी अच्छी-अच्छी बातों की कुछ प्रशंसा सुन चुकने के बाद अरुचिकर बातों को सुनना सरल होता है। अतः दूसरों को खिझाए या रुठाए बिना बदलने का बढ़िया तरीका यह है कि प्रशंसा और निष्कपट गुण-ग्राह्यता के साथ आरम्भ कीजिए।
- यदि आपको किसी दुष्ट व्यक्ति के साथ व्यवहार करना पड़े तो उसे मात करने की केवल एक ही विधि है, वह यह है कि उसके साथ ऐसा व्यवहार कीजिए, मानो वह कोई माननीय सज्जन है। यह जताइये कि आप उसे अपने ही समान निष्कपट अनुभव कर रहे हैं।
- हर दुर्लभ वस्तु महँगे मोल पर खरीदी जाती है जैसे श्रद्धा और सद्भावना।
- भावना दिशा देती है और श्रद्धा से प्रकाश मिलता है। केवल तर्क का आश्रय लेने वाला तो झाड़-झंखाड़ों में भटकता है।
- प्रेम की तन्मयता और प्रीति की व्याकुलता होने पर सज्जनों की तरह परमेश्वर का मिलना भी कठिन नहीं रहता।
- यह आवश्यक नहीं है कि तीव्र प्रकार की भावुकता एक दृढ़चरित्र का निर्माण करे। मनुष्य की शक्ति तो उन भावों की शक्ति से ही नापी

जाती है, जिन्हें वह दमन करता है, न कि उन भावों से जो उस पर अधिकार जमा लेते हैं।

- जब अन्तःकरण में शान्ति होती है तो दुनिया का कोई कोलाहल मनुष्य को स्पर्श नहीं कर सकता।
- सुन्दर वही है जिसका हृदय सुन्दर है। जो आकृति से बहुत सुन्दर है, जिसके शरीर का रंग और चेहरे की बनावट बहुत आकर्षक है परन्तु जिसके हृदय में दुर्गुण और दोष भरे हैं, वह मनुष्य वास्तव में बड़ा गंदा और कुरूप है।
- स्नेह छूट जाय तो भी सज्जनों के गुण नहीं पलटते हैं। जैसे कमल की डण्डी के टूटने पर भी उसके तन्तु जुड़े ही रहते हैं।
- भगवान ने जो तुम्हें दिया है, सो समेटने और फूँकने के लिए नहीं वरन् इसलिए कि सत्पात्रों में बाँटो और अनेक गुना बढ़ा हुआ पाओ।
- किसी राजा को अपने सेवक के यहाँ जाना होता है तो वह उसके यहाँ कुर्सियाँ, फर्श, गलीचे आदि की सजावट की आवश्यक सामग्री भेज देता है, ताकि वह उसका स्वागत कर सके। इसी प्रकार परमात्मा दर्शन देने से पहले वह अपने भक्त के हृदय में प्रेम, पवित्रता और श्रद्धा उत्पन्न कर देता है।



अपना दृष्टिकोण बदलें

- व्यक्तिगत सुख कोई सुख नहीं है। न ही व्यक्तिगत सुख के साधन संग्रहीत कर लेने वाला व्यक्ति सम्पत्तिवान है। मैं सदैव ही यह स्वप्न देखता रहता हूँ कि एक ऐसा समाज बने, जिसमें मनुष्य धर्म और धन के शोषण से मुक्त रहे, उसे भौतिक व सांस्कृतिक सुविधाएँ सुलभ हों। मेरे मन में अपने सुख की नहीं समूचे समाज के सुख और समृद्धि की कामनाएँ हिलोरेँ लेती रहती हैं। हमारे समाज में श्रम का सम्मान हो, परिश्रम मनुष्य का स्वभाव बन जाए, प्रामाणिकता सामाजिक जीवन का एक अनिवार्य अंग बन जाय, परस्पर सहयोग व सह-अस्तित्व का भाव क्रियारूप में परिणत होने लगे तो मुझे परमसुख मिले।

प्रायः सभी देशों के विचारक, सन्त, दर्शन-शास्त्री, धर्मोपदेशक व साहित्यकार ऐसे समाज की कल्पना करते आए हैं। परन्तु प्रश्न यह है इसे साकार कैसे बनाया जाय ? व्यष्टि की समष्टि की अनुभूति कैसे होने लगे, एक के लिए सब व सबके लिए एक का भाव कैसे सबमें उदित हो ? यही विचार मैं निरन्तर करता रहता हूँ।

मैं समझता हूँ कि कोई ऐतिहासिक क्रान्ति प्रक्रिया ही ऐसा कर सकती है। इस स्वप्न को साकार करने के लिए, जनमानस को बदल देने के लिए दृष्टिकोण में परिवर्तन आवश्यक है। जब तक यह कार्य न हो जाय—इसी प्रक्रिया को गति देते रहने में अपने आपको लगा देने में ही मेरा ध्येय सन्निहित रहेगा।

—स्वामी विवेकानन्द

- मन से ही देखो—विश्व में भेद कुछ नहीं। जो मनुष्य भेद की बुद्धि रखता है, वह मृत्यु के बाद मृत्यु को ही प्राप्त करता है।

—बृहदारण्यकोपनिषद्

- संसार में शान्ति की स्थापना के लिए, विश्व युद्धों के निवारण के लिये तथा समाज में बिखरी पड़ी अगणित समस्याओं का समाधान करने के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि मानवीय दृष्टिकोण एवं व्यक्तित्व में क्रांति उपस्थित की जाय। मुझमें और आपमें क्रान्ति

हो। तोड़-फोड़ का या कुछ परिस्थितियों का बदल देने का नाम क्रान्ति नहीं, इससे क्षणिक आवेश की तृप्ति हो सकती है पर कोई रचनात्मक उद्देश्य पूरा नहीं होता। शान्ति का लक्ष्य तब प्राप्त होगा, जब अशान्ति उत्पन्न करने वाले विचारों और कार्यों में परिवर्तन किया जाय।

- हृदय-परिवर्तन के बिना बाहरी क्रान्ति एक निकम्मी चीज है। यदि मनुष्य भीतर से दुष्ट ही बना रहा तो बाहरी परिस्थितियों का सुधार देर तक न टिक सकेगा। अवसर पाते ही मनुष्यों की व्यक्तिगत बुराइयों समाज में फिर उपजकर खड़ी हो जाएँगी। अशान्ति का मूल कारण लोभ, ईर्ष्या, दुर्भाव और संग्रहप्रवृत्ति ही है। इसको सुधारे बिना समाज का सुधार कैसे सम्भव होगा ?

- शान्ति के विषय में हम रोज कूटनीतिक चर्चाएँ चलाते हैं। विधि-विधान और आचार-संहिताएँ निर्धारित करते हैं। योजनाएँ बनाते और समितियाँ नियुक्त करते हैं, पर क्या इन उपायों से लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकेगा ? व्यक्ति की बुराइयों ही संसार की अशान्ति बनकर परिलक्षित होती हैं। हमें जड़ पर कुल्हाड़ी चलानी चाहिए, ताकि अशान्ति का वृक्ष स्थायी रूप से नष्ट किया जा सके। —जे. कृष्णमूर्ति

- सज्जन पुरुषों के पहले चित्त में और बाद में शरीर में बुढ़ापा आता है। असज्जन पुरुषों के शरीर में ही बुढ़ापा आता है, उनका मन कभी बुढ़ा नहीं होता, अर्थात् उनसे तब भी भोगेच्छा नहीं छूटती है। —पंचतंत्र

- भय भाव हमारी कल्पना की सृष्टि है। धन, परिवार और शरीर में से ममत्व का निवारण हो जाने पर भय नहीं रह पाता।

—महात्मा गाँधी

- धार्मिक सिद्धान्त को केवल इसलिए अंगीकार मत करो कि वह किसी ऐसे मनुष्य का चलाया है, जिसका चरित्र अत्युत्तम है। अनेक उत्तम चरित्र वाले तत्त्वज्ञान का निरूपण करने में असफल रहे हैं। हो सकता है कि किसी मनुष्य

की पाचनशक्ति असाधारण रूप से प्रबल हो पर उसे पाचनक्रिया का कुछ भी ज्ञान न हो। मान लो एक चित्रकार कला-चातुर्य के मनोहर उत्कृष्ट और परमसुन्दर नमूने प्रस्तुत करता हो, परन्तु वह शायद संसार में अत्यन्त कुरूप भी हो। ऐसे लोग हैं जो अत्यन्त कुरूप होते हुए भी सुन्दर तत्त्वों का निरूपण करते हैं। सुकरात एक ऐसा ही मनुष्य था। —स्वामी रामतीर्थ

- ऐसा शरीर साक्षात् नरक के समान है, जिसमें सड़ने-गलने वाले पदार्थ भरे जाते हैं, जिससे दुर्गन्ध पैदा होती है। जिसके हाथ-पोंव सदैव बुरे कामों को करते हैं, जिझा ऐसे पदार्थों का स्वाद चाहती है जिसे नहीं खाना चाहिए और वह सदैव ऐसी वाणी बोलती है जिसे नहीं बोलना चाहिए, उसकी आँखें ऐसी वस्तुओं को देखना चाहती हैं, जो देखने योग्य नहीं, उसके कान ऐसे शब्दों को सुनना चाहते हैं जो सुनने के योग्य नहीं और नाक ऐसी गन्ध को चाहती है जो सूँघने योग्य नहीं। फिर भी लोग नरक को तो भूलकर स्वर्ग नहीं कहते, परन्तु ऐसे शरीर को जो नरक से बुरा है स्वर्ग के समान समझते हैं। —महात्मा गाँधी

- यदि आप अपनी अवस्था से संतुष्ट नहीं हैं और आपको अपना जीवन कठोर महसूस होता है और अपने भाग्य को दोष देते रहते हैं तो समझ लीजिए कि यह सब आपके विचारों का ही कुप्रभाव है अथवा आपके छोटे आदर्श का परिणाम है। —स्वेट मार्डन

- दिन कभी उतने बुरे नहीं होते जैसा हम अनुभव करते हैं। —जे. क्रैकलिन

- आत्मवत् सर्वत्र सब जीवों को मानकर अर्थात् जिस तरह हमें अपने प्राण प्यारे हैं, उसी तरह दूसरों को भी अपने-अपने प्राण प्यारे हैं, ऐसा (मानकर) भय और बैर से विरक्त आत्मा किसी भी प्राणी के प्राणों को न होमे (न मारे या न सतावे)।

- सुख का एक द्वार बंद होता है तो दूसरा खुल जाता है। परन्तु बहुधा हम बंद दरवाजे को ही ताकते-पछताते रहते हैं। नये खुले द्वार की ओर हमारा ध्यान नहीं जाता। —हेलन कैलर

- जब एक राष्ट्र में एक ऐसे मनुष्य का जन्म होता है जो एक महान विचार को उत्पन्न

करने के योग्य होता है, तब उस जाति में एक दूसरा भी पैदा हो जाता है, जो उक्त विचार को समझ सके और उसकी सराहना कर सके। —जूबर्ट

- निर्माण की दिशाएँ भिन्न होती हैं। पुरानी लीक पर चलकर कोई नई राह नहीं बनी। —नेपोलियन

- बुद्धापा एक आदत मात्र है। कार्यव्यस्त आदमी के पास इतना समय नहीं आता कि इस बेकार की आदत को अपनाये। —आन्ने मोवा

- खुशमिजाजी तन्दुरुस्ती है, गमगीनी बीमारी।
- समाज को वही साहसी व्यक्ति सद्मार्ग—राह दिखा सद्कर्मों की ओर प्रवृत्त कर सकता है, जिसका चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल हो, जिसका निर्णय दृढ़ एवं अटल हो व इसके प्रयास विवेकसम्पत हों ? —गेटे

- गिरगिट रंग बदलता है। लोग उसका मजाक उड़ाते हैं। विचार बदलने वालों को उसकी श्रेणी में रखकर उन पर व्यंग्य कसे जाते हैं। क्यों ? इस प्रश्न पर जरा सोचिए तो सारी बात मूर्खतापूर्ण ही लगेगी। क्या विचार बदलना बुद्धि की अस्थिरता है ? अक्ल की कमी है ? संकल्प की कमजोरी ?

- जिंदगी बहता पानी है, यह कहाँ-कहाँ से गुजरता है, कुछ कहा नहीं जा सकता। कितने प्रभाव इस पर हावी होते हैं, कितने तकाजे इसे मोड़ते हैं, इसकी कोई गिनती नहीं। पत्थर भी प्रभाव में घिस जाते हैं। लोहा भी आँच में गल जाता है। हीरा भी आग बन जाता है। फिर मनुष्य तो जीवित पदार्थ है। सहस्रों तरंगों का प्राण समुद्र है। यदि वह भी परिवर्तन से अछूता रहे तो फिर उसकी प्राणमयता किस अर्थ में ?

- जड़ रहना मनुष्य की चरम अपरिपक्वता है, परम निरर्थकता है। चैतन्य का इससे बड़ा और कोई अपमान नहीं हो सकता। इसलिए बदलिए, सीधे चलते हैं तो टेढ़े चलिये। सामने देखते हैं दायें-बायें भी देखिये। क्षण-क्षण अपने को सँवारिये, पल-पल अपने को निखारिये। जीवन दूज से लेकर पूनम तक का चन्द्रमा है। पूनम तक ही उसकी इति नहीं है। अभावस्था को

वह स्वीकार करता है। पूर्णमा में उसकी तृप्ति नहीं, क्योंकि वह गति का उपासक है। गति में जड़ता कहाँ ? गति परिवर्तन के पोषण से पलती है। परिवर्तन हमारे खाद्य हैं। प्रश्न सिर्फ यह है कि परिवर्तनों को हजम करने में हमारा हाजमा कितना शक्य है ?
—विज्ञानानन्द

- किसी सदाशयी का विरोध प्रायः जन-साधारण की ओर से नहीं, बल्कि समझदारों तथा विद्वानों की श्रद्धान्धता अधिक भयंकर होती है। जन-साधारण अधिक से अधिक अपनी अन्ध-श्रद्धा और अन्ध-विश्वास पर आघात होते देखकर एक ओर हट जाते हैं किन्तु विद्वान् संघर्ष उत्पन्न करने का प्रयत्न करते हैं।
- किसी सुन्दर, सीधी और सही बात को जन-साधारण को सरलता से समझाई जा सकती है, क्योंकि उनकी अंध-श्रद्धा पर बुद्धिवाद की यवनिका नहीं पड़ी होती है। यह सत्य है कि नूतन सत्य को समझकर जितना लाम जन-साधारण उठा लेते हैं, उतना पंडित लोग नहीं।
- यह बात भी शत-प्रतिशत सही है कि किसी सत्य के दर्शन और सही मार्ग की जितनी आवश्यकता जन-साधारण को है, उतनी पण्डित को नहीं। अस्तु जन-सेवक को वही कार्य करना चाहिए जहाँ उसकी आवश्यकता है।

—महात्मा बुद्ध

- जीवन का स्वरूप समझ में आ जाय तो वह मात्र एक खेल है। गलत समझा जाय तो वह भार है। यदि उसे सही दिशा मिल जाय तो पग-पग पर उत्साह और मुस्कान के अवसर मिलते चलें जाएँगे।
- नारद द्वारा आत्म-बोध कराये जाने पर पार्वती, प्रह्लाद, ध्रुव, वाल्मीकि आदि असंख्यों ने अपना स्वरूप, बल-वैभव एवं लक्ष्य समझा और वे अपनी गतिविधियों में हेर-फेर करके कुछ के कुछ बन गये।
- दृष्टिकोण विकृत हो जाने पर हेय भी श्रेय समझने और अपनाने लगते हैं।
- मनुष्य क्या है ? इसके उत्तर में एक ही शब्द कहा जा सकता है—विचारों का पुंज। अपने दृष्टिकोण के आधार पर जीवन का बाह्य

स्वरूप बनता है और आन्तरिक स्तर का निर्माण होता है। सोचने के गलत ढंग का नाम ही दुःख है और सही चिन्तन को सुख कहा जा सकता है। उत्थान-पतन की दोनों धाराएँ अपनी ही मान्यताओं और रुचि की चाल लेकर सीधी-उल्टी दिशाओं में प्रवाहित होती हैं। उन्हीं के कारण देवत्व प्राप्त होता है और वे ही हमें दानव स्तर का बना देती हैं। गीता की उक्ति है—‘श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धं स एव सः’ अर्थात् यह मनुष्य श्रद्धा रूप से है। जो जैसी श्रद्धा रखता है। वह वैसा ही बन जाता है। अपनी आस्था, अपनी मान्यता, अपनी आकांक्षा एवं अपनी दृष्टि ही अपने व्यक्तित्व का निर्माण करती है और उसी आधार पर उठने, गिरने की परिस्थितियाँ बनती हैं। विकृत दृष्टिकोण ही हमें नरक में धकेलता है और उसके परिष्कृत होने पर स्वर्ग हाथ बाँधकर सामने आ खड़ा होता है।

- जो अपने बारे में तुच्छता के विचार रखता है वह सचमुच तुच्छ है और जिसका विश्वास है कि मैं महान हूँ, सचमुच वही महान है।
- डरावनी काली छाया आगे-आगे ही बढ़ने रहने नहीं देती है, तो छुटकारा पाने का एक ही उपाय है—अपना रुख बदलो और प्रकाश की ओर मुँह करके चलो।
- न पैरों तले वाली जमीन कम है, न सिर पर छाया हुआ आसमान छोटा है। छोटा तो मस्तिष्क है जो स्वायत्त के दायरे में सोचता है। यदि वह हृदय के अधीन हो सके तो किसी को किसी वस्तु की कमी नहीं।
- उत्तम अभिप्रायों के होते हुए भी बहुधा बुराई कर बैठते हैं। फिर भला बुरे अभिप्रायों को लेकर हम भलाई किस प्रकार कर सकते हैं ?
- शीत से जल बरफ बनकर जम जाता है और गर्मी में पिघलकर वही प्रवाही बन जाता है। भक्ति-भावना से ईश्वर साकार बन जाता है और तत्त्व-दर्शन से निराकार। सो अपनी मनस्थिति के अनुसार हम ईश्वर को साकार भी देख सकते हैं और निराकार भी अनुभव कर सकते हैं।

- जब जोर की आँधी चलती है तो वायु के वेग से हिलते हुए पेड़ पहचाने नहीं जाते कि यह पीपल है या गूलर। जब मनुष्य के हृदय में ज्ञान का तूफान होता है तो उसे प्राणिमात्र एक ही जाति के दिखाई पड़ते हैं, ऊँच-नीच का भेद उसे दृष्टिगोचर नहीं होता।
- जो पराई स्त्रियों में माता का, पराये धन में मिट्टी का और सब जीवों में अपनी आत्मा का भाव रखता है, वही पण्डित है।
- स्वर्ग और नरक में यही भेद है कि स्वर्ग का व्यक्ति अपने पास की चीज को सर्वथा देने के लिए तैयार रहता है और नरक वाला दूसरों की वस्तु को भी हजम करने की इच्छा रखता है।
- जल को वरुण देवता कहते हैं। पर हर जगह का जल पीने योग्य नहीं होता। कहीं का जल पीते हैं, किसी जगह का सिर्फ धोने के काम आता है और कहीं ऐसा जल भी होता है जिसे छूते तक नहीं। इसी प्रकार आत्मा हर किसी में है, पर वह हर एक की समान रूप से पूजा या विश्वास के योग्य नहीं है।
- धरती के देवता वे हैं, जो अपने अनुकरणीय आचरण से दूसरों में सत्य-गमन की प्रेरणा भरते हैं।
- दूसरे व्यक्ति के दृष्टिकोण को समझने का निष्कपटतापूर्वक प्रयत्न कीजिए और उसकी तथा अपनी दृष्टि से चीज को देखने की प्रवृत्ति का विकास कीजिए।
- जिस व्यक्ति में धोखा देने की प्रवृत्ति है, यदि आप उसे अनुभव करा दें कि आप उसे निष्कपट, सच्चा, न्यायप्रिय और सरल समझते हैं तो अधिकांश अवस्थाओं में वह आपके साथ अनुकूल व्यवहार करेगा।
- सारे विश्व को अपना घर, मनुष्य मात्र को अपना स्वजन, नेकी को अपना धर्म और ऊँचा बनकर रहने में अपना गौरव समझो।
- दूसरों के अवगुणों की तरफ ख्याल न करके उनके गुणों को ग्रहण करना ही बुद्धिमानी है।
- पुष्प को अपना आदर्श बनाओ। उसका स्वभाव दूसरे को आनन्द देने का है, अपना स्वार्थ नहीं। वह चुपचाप फूलता है और चुपचाप ही झड़ जाता है। देवता पर चढ़ाओ तो कुछ हर्ष नहीं और विलासी के पास ले जाओ तो कुछ शोक नहीं—सेवा ही उसका धर्म है।
- जिसको तुम सत्कार्य समझते हो, उसको पूरा करके दिखाओ, इसमें यह न देखो कि हमारी बुराई है अथवा प्रशंसा है। दूसरा कोई चाहे कुछ समझता रहे।
- शांत प्रकृति का मनुष्य सुख और कर्तव्य को अलग-अलग नहीं कर सकता। वह जो काम करता है उसी में सुख का अनुभव करता है। कर्तव्य कर्म के करने में दुःख उन्हें होता है, जो इन्द्रियजन्य सुखों और क्षणिक विलास के दास होते हैं।
- भाप को काबू में रखकर उसका सदुपयोग करने से शक्तिशाली इंजन बनते और भारी काम करते हैं। विचारों की शक्ति भाप से बढ़कर है, यदि उसे केन्द्रित और दिशा नियोजित किया जा सके तो मनुष्य वह कर गुजरे जिसकी सहज कल्पना भी नहीं की जा सकती।
- तुम्हारे छोटे कार्य ऐसी वस्तु नहीं हैं, जो सबके सब नाशवान और तुच्छ हों और न तुम्हारे बड़े-से-बड़े काम भी अत्यन्त छोटे कार्यों की अपेक्षा तनिक भी बड़े हो सकते हैं। वास्तविक बात यह है कि जिस भावना से तुम कार्य करते हो उसी का कुछ मूल्य और स्थायित्व होता है।
- सफलता का यदि कोई रहस्य है तो वह दूसरे व्यक्ति के दृष्टिकोण को समझने और उसके तथा अपने दृष्टिकोण से वस्तुओं को देखने में छिपा है।
- **वर्तमानकभासनां भवनामवभासनम् ।**
अन्तः स्थितवृत्तामेव घटते बहिरात्मना ।।
जो कुछ आज बाह्य पदार्थों में हमें दृष्टिगोचर होता है, उसका कारण हमारी आन्तरिक स्थिति है। जो भीतर है वही बाहर जा सकता है।
- तलवार से लड़ने वालों में से दोनों ही पक्ष हारते हैं, जीतता कोई नहीं। इसलिए विचार से लड़ना बुद्धिमानी है। उसके प्रति-पक्षी को अनाचार सहित हराया जा सकता है।

- जो अपनी उच्चवृत्तियों की ओर ध्यान देता है वह ऊँचा हो जाता है, जो सदा अपनी छोटी वृत्तियों की ओर ही आकृष्ट होता है, वह वास्तव में छोटा रह जाता है।
- दुःख क्या है ?—भगवान के प्रमानन्द स्वरूप में विश्वास न होना और जगत के क्षुद्र पदार्थों में सुख के लोभ से आसक्त होना।
- जो कुछ भी तुम अपने अन्तरात्मा में, मन में सोचते हो, वही तुम्हारे जीवन में बाहर प्रकट हो जाएगा और जब तक तुम्हारी विचारधारा में परिवर्तन न होगा तब तक तुम्हारा बाह्य आचार और नियम पालन साथ न देगा।
- भाग्य के सम्बन्ध में एक बात निश्चित है कि कोई उसे बदलना चाहे तो बदल सकता है। भवितव्यता अटल नहीं है।
- दृष्टि के अनुरूप सृष्टि बनती है। अपनी सृष्टि बदलो ताकि नई सृष्टि का दर्शन और सम्पर्क ले सको।
- हो सकता है कि बहस में आपका पक्ष ठीक हो—बिल्कुल ठीक हो, परन्तु जहाँ तक दूसरे मनुष्य के मन को बदलने का सम्बन्ध है, आप निष्फल ही रहेंगे।
- सुख और दुःख घटनाओं और वस्तुओं पर उतने निर्भर नहीं, जितने कि दृष्टिकोण और सन्वेदनाओं पर।
- महान विचार ही महान परिस्थितियों को उत्पन्न करते हैं और अपनाने वाले को महान बनाते हैं। संसार की महान घटनाएँ महान विचारों के कारण ही संभव हुई हैं। उन्हीं ने समय को बदला और उपयुक्त वातावरण बनाया है।
- आज हम वह हैं जो पिछले दिन इच्छा और कल्पना करते रहे हैं, कल हम वह होंगे जैसा कि इन दिनों सोचते रहते हैं।
- अपने संकुचित दृष्टिकोण से जब हम संसार को देखते हैं तो वह बड़ा संकीर्ण और तुच्छ दिखाई पड़ता है। जब उसे स्वार्थदृष्टि से देखा जाता है, तब वह स्वार्थग्रस्त दीखता है। किन्तु जब उसे उदार और मित्रता की दृष्टि से देखा जाता है, तो संसार में हमें मित्रता, उदारता और सज्जनता की भी कमी दिखाई नहीं देती।
- तुम्हीं अपनी दृष्टि से सब वस्तुओं को चित्ताकर्षक बनाते हो। उन आँखों से जब तुम उनकी ओर देखते हो तो तुम्हीं स्वयं अपना तेज उस पदार्थ पर डाल देते हो।
- सुख संसार की किसी भी वस्तु में नहीं है, इसलिए वह किसी भी बड़े वैभव द्वारा प्राप्त नहीं हो सकता। सुख तो मन की एक स्थिति है जो आत्मसाधन द्वारा प्राप्त होती है।
- सांसारिक-वैभव मनुष्य को अपनी दृष्टि में न तो ऊँचा उठा सकता है और न नीचा गिरा सकता है। महान पुरुष अपनी दृष्टि में बड़ा होता है, संसार चाहे उसकी महानता से परिचित हो या न हो। नीच मनुष्य स्वयं अपनी कमजोरी जानता है, अतः वह उस सतह तक कभी ऊँचा नहीं उठ सकता, जिस तक उसके प्रशंसक उसे उठाना चाहते हैं।
- आदमी जब अपने को ही सब कुछ समझता है अपने लिए ही सोचता और करता है। तब वह कुकरमुता होता है और संकटों की कँटीली बाड़ में कैद होता है।
- जब कभी आपको ऐसा मालूम हो कि चिन्ताजनक विचार आप पर अपना प्रभाव जमाना चाहते हैं, उदासी का आप पर आक्रमण होना चाहता है, तब आप स्थिर, शान्त और तन्मय होकर अपने हृदयकेन्द्र से इस तरह के उद्गार निकालो—मैं मनुष्य हूँ मेरी आत्मा दिव्य है, निर्दोष है। वह सुख, शान्ति, आनन्द और पूर्णता का आगार है। भला ऐसी दशा में वहाँ दुःख, चिन्ता, रोग का क्या काम ?
- यदि हम चाहते हैं कि हमारे मन-मन्दिर से अन्धकार निकल जाय तो हमें चाहिए कि अपने मन को प्रकाश से आलोकित कर लें। यदि हम चाहते हैं कि हमारे मन से विरोध भाव निकल जाएँ तो हमें चाहिए कि अपने मन को ऐक्य के विचारों से भर लें। यदि हम चाहते हैं कि हमारे मन से कुरूपता निकल जाए तो हमें चाहिए कि अपने मन को सौन्दर्य के विचारों से पूर्ण कर लें।
- दुनिया बहुत बुरी है। जमाना बड़ा खराब है, ईमानदारी का युग चला गया, चारों ओर बेईमानी छाई हुई है, सब लोग धोखेबाज हैं,

धर्म धरती पर से उठ गया। ऐसी उक्तियों जो आदमी बार-बार दुहराता है समझ लीजिए कि यह खुद धोखेबाज और बेईमान है। इसकी इच्छित वस्तुएँ इसके चारों ओर इकट्ठी हो गई हैं और उनकी सहायता से सुव्यवस्थित कल्पना चित्र इसके मन पर अंकित हो गया है। जो व्यक्ति यह कहा करता है कि दुनिया में कुछ काम नहीं है, बेकारी का बाजार गर्म है, उद्योग-धंधे उठ गये, अच्छे काम मिलते ही नहीं, समझ लीजिए कि इसकी अयोग्यता इसके चेहरे पर छाई हुई है और कहा जाता है वहाँ दर्पण में अपना मुख देख आता है। क्रोधी मनुष्य जहाँ जाएगा, कोई न कोई लड़ने वाला उसे मिल ही जाएगा, घृणा करने वाले को कोई न कोई घृणित वस्तु मिल ही जाएगी। अन्यायी मनुष्य को सब लोग बड़े बेहूदे, असभ्य और दण्ड देने योग्य दिखाई पड़ते हैं। होता यह है कि अपनी मनोभावनाओं को मनुष्य अपने सामने वालों पर थोप देता है और उन्हें वैसा ही समझता है जैसा कि वह स्वयं है। जिसे दुनिया स्वार्थी, कपटी, गंदी, दुःखमय, कलुषित, दुर्गुणी, असभ्य दिखाई पड़ती है। समझ लीजिए कि इसके अन्तर में गुणों का बाहुल्य है। संसार में एक लम्बा-चौड़ा बहुत बढ़िया विल्लौरी काँच का चमकदार दर्पण है, इसमें अपना मुँह हूबहू दिखाई पड़ता है। जो व्यक्ति जैसा है इसके लिए त्रिगुणमयी सृष्टि में से वैसे ही तत्त्व निकलकर आगे आ जाते हैं। सतयुगी आत्माएँ हर युग में रहती हैं और उनके आस-पास सदैव सतयुग बरसता रहता है।

- अपने विचारों को पवित्र रखो। धर्म का समस्त तत्त्व इसी एक वाक्य में छिपा हुआ है। अन्यान्य विधान तो धर्म की भूमिका और शब्दाडम्बर मात्र हैं। क्रोध, कटुभाषण, ईर्ष्या और लोभ से बचना यही तो धर्मप्राप्ति का मार्ग है। सदैव शुभकर्म करने में प्रवृत्त रहो। परोपकार को कार्यों में पूरी शक्ति और पूरा उत्साह लगाना यही तो कर्तव्यपथ है। नेकी से बढ़कर न तो कोई धर्म है और न बदी से बढ़कर कोई पाप। यह मत पूछो कि धर्म से क्या लाभ है ? जिज्ञासुओ ! धर्म से उत्पन्न होने वाला सुख ही सच्चा सुख है। अन्य सुख तो विडम्बना मात्र हैं। यदि तुम एक क्षण भी व्यर्थ खोए बिना जीवनभर नेक काम करते रहो तो

निश्चय ही एक दिन जन्म-मरण की फाँसी से छूट जाओगे। धर्म के पथ पर आरूढ़ होने में एक पल का भी विलम्ब मत लगाओ। आज से ही सेवामार्ग को अपना लो ऐसा न हो कि कल करूँगा, सोचते-सोचते मृत्यु तुम्हारा गला दबा ले और जन्म-जन्मान्तरों तक साथ रहने वाले धर्मरूपी अमर मित्र को प्राप्त करने से वंचित रह जाओ।

- प्रसन्नता की तलाश आमतौर से वस्तुओं, व्यक्तियों, घटनाओं और परिस्थितियों में की जाती है। पर वस्तुतः यह चिन्तन अवास्तविक है। यदि लोकमान्यता यही रही होती तो जिनके पास प्रचुर साधन हैं और जिन्हें प्रतिकूलताओं का भी सामना नहीं करना पड़ता, वे सदा प्रमुदित और सन्तुष्ट पाए जाते हैं। इसके विपरीत जिनके पास स्वल्प सम्पदा है, जो अभावग्रस्त परिस्थितियों में रहते और प्रतिकूलताओं के मध्य जीवनयापन करते हैं, वे सभी दुःखी देखे जाते हैं।

प्रसन्नता सोचने की एक पद्धति है। उसके साथ व्यक्ति का दृष्टिकोण, स्वभाव और व्यवहार जुड़ा हुआ है। व्यक्तित्व में घुली हुई शालीनता को सुसंस्कारिता कहा जाता है और जिसके पास वह जितनी मात्रा में होती है, उसी अनुपात से उसे प्रसन्न रहते एवं रखते हुए देखा जाता है।

- जिसे दोष-दर्शन, अभाव-चिन्तन और हेय आरोपण की आदत है, वह दुर्गति का जिस-तिस पर प्रयोग करेगा।

फलस्वरूप कीचड़ फेंककर साफ कपड़े को भी कुरूप बना देने की तरह सर्वत्र विपन्नता का दर्शन करेगा। हो यह भी सकता है कि यदि चिन्तन को उत्कृष्टता के पर्यवेक्षण और आरोपण के लिए प्रशिक्षित कर लिया जाय तो दृश्य कुछ दूसरी तरह से ही सामने आएँ।

- गुम्बज की आवाज लौटकर वापस आती है। गैद जहाँ से फेंकी गयी थी, वही वापस लौटकर आती है। हमारा अपना व्यक्तित्व ही जिस-तिस के साथ टकराकर भली और बुरी अनुभूतियाँ कराता है। इसी से इस संसार को दर्पण की उपमा दी जाती है। अपना स्वरूप जैसा है, वैसा ही प्रतिबिम्ब उसमें दीखता है।



सेवा-साधना

- सेवा के लिए पैसे की जरूरत नहीं होती, जरूरत है अपना संकुचित जीवन छोड़ने की। गरीबों, दुखियों, पीड़ितों से एकात्म होने की।

—विनोबा

- संसार से सबसे बड़ा अधिकार सेवा और त्याग से ही मिलता है।

—प्रेमचन्द

- जब हमारे करुणा के नेत्र खुल जाते हैं तो व्यक्ति अपने को दूसरों में और दूसरों को अपने में देख सकने में समर्थ हो जाता है।

—राजगोपालाचार्य

- सेवा बिना जीवनमय्यपार्थ सेवां विनाम्यत् सुकृतं किमर्थम्।

सेवाय यज्ञश्च तपश्च तीर्थं तत्पान्न सेवां त्यज्य नोः कदाचित्।।

—मनःप्रबोध

सेवा के बिना जीवन ही निरर्थक है, सेवा के बिना और सत्कर्म किस काम के ? सेवा ही यज्ञ है, सेवा ही तप है, सेवा ही तीर्थ है, अतः हे मन ! तू कभी सेवा का परित्याग न करना।

- विश्व के बेहतर मस्तिष्क की आज इच्छा है कि एक-दूसरे से युद्ध करते हुए स्वतन्त्र राज्य नहीं हो, बल्कि स्वतन्त्र और एक-दूसरे पर निर्भर मित्र देशों का महासंघ हो।

- जो गरीबों और विकलांगों की सेवा करता है, वह ईश्वर की सेवा करता है।

—महात्मा गाँधी

- मानव की सेवा करना मानव का सर्वप्रथम कर्तव्य है।

—विनोबा

- जो लोग सेवा-भाव रखते हैं और स्वार्थ-सिद्धि को जीवन का लक्ष्य नहीं बनाते, उनके परिवार को आड़ देने वालों की कमी नहीं रहती।

- सेवा ही वास्तविक संन्यास है। संन्यासी केवल अपनी मुक्ति का इच्छुक होता है। सेवा व्रतधारी अपने को परमार्थ की वेदी पर बलि दे देता है।

- दीन-दुखी व पीड़ित बन्धुओं की सेवा करने में जो गौरवयुक्त आनन्द मिलता है, वह सभ्य समाज की दावतों में नहीं।

—प्रेमचन्द

- मैं केवल प्रेम का ही विचार चाहता हूँ। मेरे उपदेश वेदान्त की समता और आत्मा की विश्व-व्यापकता पर ही आधारित हैं। दुखियों के दर्द को अनुभव करो और उनकी सेवा करने को आगे बढ़ो, भगवान तुम्हें सफल करेंगे। मैं अपने मस्तिष्क में इसी विचार को रखकर 92 वर्ष तक घूमा हूँ। मैं इस देश में भूखा-प्यासा भले ही मर जाऊँ, पर नवजवानो ! मैं तुम्हारे लिए यह वसीयत छोड़ जाता हूँ कि गरीबों, अज्ञानियों और दुखियों की सेवा के लिए प्राणपण से लग जाओ।

- मनुष्य की आयु सीमित है और संसार की सभी वस्तुएँ मिटने वाली हैं पर वे ही जीवित हैं जो दूसरों के लिए जीते हैं। बाकी सब तो मृद से भी बढ़कर हैं।

—स्वामी विवेकानन्द

- यह शरीर हमें इसलिए दिया गया है कि इससे हम सारी सृष्टि की सेवा कर सकें।

- निष्काम सेवा परोपकार नहीं, अपना उपकार है।

—महात्मा गाँधी

- ब्राह्मण जो कुछ भी जानते हैं, उसे सिखाकर, जो ज्ञान अनुभव उन्होंने प्राप्त किये हैं, उसे दान देकर, भारतवासियों को उन्नत बनाने में सचेष्ट रहें। सांसारिक कार्यों में ही लगे रहना यथार्थ ब्राह्मण का यथार्थ नहीं है।

—स्वामी विवेकानन्द

- मैं न राज्य चाहता हूँ, न स्वर्ग चाहता हूँ और न मोक्ष ही चाहता हूँ। मैं दुःखपीड़ित प्राणियों के दुःख का नाश चाहता हूँ।

—रज्जा त्रिवि

- जहाँ न शिक्षा पहुँचती है और न समाचार, उन गाँवों की योजनाओं को प्राथमिकता मिले।

—महात्मा गाँधी

- तुम दिन का या रात का भोजन करो तो अपने मित्रों या भाइयों या कुटुम्बियों या धनवान पड़ोसियों को न बुलालो, ऐसा न हो कि वे तुम्हें न्यौता दे और तुम्हारा बदला हो जाये। पर जब तुम भोजन करो तब कंगालों, टुण्डों, लँगडों और अन्धों को बुलाओगे तब तुम धन्य होंगे, क्योंकि उनके पास तुम्हें बदला देने को कुछ नहीं।

—सूक्त १४

□ धन उस व्यक्ति का नहीं जो उसे रखता है, बल्कि उसका है, जो उसका सदुपयोग करता है। उपयोग में न लाकर धन मात्र संग्रह व उसकी सुरक्षा तो सिपाही चौकीदार करते हैं। वास्तविक धनस्वामी उसका सदाशयता से सदुपयोग कर उसे सामाजिक कार्यों में लगाते हैं तथा उसके उपयोग से अपनी व अपने परिवार की श्रीवृद्धि करते हैं। —**जेत करनेगी**

□ उस दिन को व्यर्थ ही नष्ट हुआ समझो जिस दिन का अस्त होने वाला सूर्य तुम्हारे हाथों के द्वारा कोई सेवा-कार्य न देख पाए। —**एनन**

□ सेवा के लिए त्याग और लगन वैसे ही अभीष्ट है, जैसे जीवन के लिए अन्न और वस्त्र।

—**अरस्तू**

□ जीवन की खोज में केवल एक ही बात मूल्यवान प्रतीत होती है और वह है मानव-सेवा। —**केली**

□ सेवा के लिए पैसे की जरूरत नहीं होती, जरूरत है अपना संकुचित जीवन छोड़ने की, गरीबों से एकरूप होने की। धन-सम्पत्ति, शारीरिक सुख और मान-बड़ाई, प्रतिष्ठा आदि को न चाहते हुए, आसक्ति और अहंकार से रहित होकर मन, वाणी, शरीर और धन से सुख देना सेवा ही है। —**रत्किन**

□ मानव-देह-मन्दिर में प्रतिष्ठित मानव आत्मा ही एकमात्र पूज्य है। समस्त प्राणियों की देह भी मन्दिर है, पर मानव देह सर्वश्रेष्ठ है। वह मन्दिरों में सर्वश्रेष्ठ है। यदि उसमें भगवान की पूजा न कर सकूँ, तो और कोई भी मन्दिर किसी काम का न होगा। जो शिव की सेवा करना चाहता है, उसे पहले उनकी सन्तानों की—इस संसार के सारे जीवों की सेवा करनी चाहिए। शास्त्रों में कहा है कि जो भगवान के सेवकों की सेवा करते हैं, वे भगवान के सबसे बड़े सेवक हैं। निःस्वार्थता ही धर्म की कसौटी है, जिसमें इस निःस्वार्थता की मात्रा अधिक है, वह अधिक आध्यात्मिकता सम्पन्न है और शिव के अधिक निकट है और यदि कोई स्वार्थी है, तो फिर चाहे उसमें सारे मन्दिरों के ही दर्शन क्यों न किये हों, सारे तीर्थों में ही क्यों न घूमा हो, अपने को चीते के समान क्यों न रँग

डाला हो, परन्तु फिर भी वह शिव से बहुत दूर है।

□ सारी उपासना का सार है—पवित्र होना और दूसरों की भलाई करना। जो शिव को दीन-हीन में, दुर्बल में और रोगी में देखता है, वही वास्तव में शिव की उपासना करता है और जो शिव को केवल मूर्ति में देखता है, उसकी उपासना तो केवल प्रारम्भिक है। जो मनुष्य शिव को केवल मन्दिरों में देखता है, उसकी अपेक्षा शिव उस व्यक्ति पर अधिक प्रसन्न होते हैं, जिसने बिना किसी प्रकार जाति, धर्म या सम्प्रदाय का विचार किये, एक दीन-हीन में शिव को देखते हुए उसकी सेवा और सहायता की है। अतएव प्रतिज्ञा कर लो कि तुम अपना सारा जीवन दिन पर दिन गिर जाने वाले इन करोड़ों लोगों के उत्थान के लिए उत्सर्ग कर दोगे। जब तक लाखों लोग भूखे और अज्ञानी हैं तब तक मैं उस प्रत्येक व्यक्ति को कृतघ्न समझता हूँ, जो उनके बल पर शिक्षित बना और उनकी ओर ध्यान तक नहीं देता।

—**स्वामी विवेकानन्द**

□ जब तुममें जितनी शक्ति थी उतनी प्रवीणता और उदारता से सेवा की है तो उसके परिणाम के लिए लालायित न रहो, क्योंकि तुम्हारी सेवा की पवित्रता सुख-शान्ति के रूप में परिणत होकर सेवक के पास लौटकर चली आवेगी और सेव्य पुरुष के चारों ओर सुख छा जाएगा।

□ प्रेम का केन्द्र सुविस्तृत बनाने की क्षमता, वही सेवा के आदर्शभूत परिणाम है। अहा ! 'किस काम का वह गुल जिसमें कि बू नहीं। किस काम का वह दिल जिस दिल में कि तू नहीं'। प्रेम बिना सेवा कैसे होगी ? सुगन्ध बिना पुष्प चित्त विनोद क्यों कर सकेगा ? जो मनुष्य वास्तविक सुखी नहीं है, वह दूसरों को कहाँ तक सुखी बनाने में समर्थ हो सकेगा ?

□ सेवा यदि प्रेम भरे हृदय से की गई हो चाहे वह अज्ञानता भरी ही क्यों न हो, उसे सेव्य पुरुष की कुछ भी हानि नहीं कर सकती। प्रेम की शक्ति उसे अज्ञानताजनित हानि से रक्षा कर लेगी।

□ यदि आध्यात्मिक उन्नति की जाँच करने की इच्छा रखते हो, तो ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया

१०.३ विचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

करो कि पहले से अब तुम सेवा करने में चूक तो नहीं कर रहे हो। तुम्हारी सेवाप्रणाली कुछ क्षीण तो नहीं हो जाती है।

- यह मत समझ बैठो कि केवल वे ही लोग सेवा करने में दक्ष हैं, जिनकी सेवा रीति चर्मचक्षुगोचर है। सेवा के महीयान कार्य वे ही हैं जो सर्वथा अगोचर हैं। बड़ों की बात तो जाने दीजिए, भला कहिये तो गंगा ही की सेवा प्रणाली अन्तरिक्ष होने पर भी कैसी सुहावनी और कितनी सुखदायी है ?
- जो सेवा तुम्हें आज सुलभ हुई है, उसे कल के लिए मत रख छोड़ो। ऐसा करने से तुम सेवा के उचित सुअवसर को सुचारुरूपेण व्यवहृत करने से चूकते हो। हो सकता है कि कल उस सेवा की आवश्यकता नहीं रहे जो आज किसी तरह पूरी नहीं हो सकी।
- हो सकता है जितना तुम अपनी सेवा रीति पर ध्यान रखते हो उतना संसार तुम्हारी सेवा के ऊपर न रखता हो, तो इससे क्या ? तुम अपने सत्य पर अचल होकर अग्रसर होते जाओ।
- बहुत-से मनुष्य ऐसे हैं जो कतिपय स्थानों में सेवा के लिए पहुँचने को उत्सुक हैं, किन्तु भला ऐसे कितने हैं, जो सब जगह सर्वदा सेवा के लिए प्रस्तुत रहने के इच्छुक हों ?
- जिस दशा में तुम वर्तमानकाल में हो, यदि उस समय तुम्हें सेवा करने का सुअवसर प्राप्त न हो सका तो यह निश्चय है कि तुम भविष्य में चाहे किसी (भली या बुरी) दशा में भी क्यों न रहो तुम सेवा करने में सर्वदा असमर्थ बने रहोगे।
- वह व्यक्ति इस संसार में नितान्त शून्य, अधम और दुःखभागी है, जो बहुत तरह से अपनी सेवा कराकर भी उसके उपलक्ष्य में दूसरे की सेवा नहीं करता। यदि तुम्हारे दुःख पर दया करके किसी ने सहायता कर दी तो उस सहायता के बदले में तुम अपने तन, मन, धन से उसकी सेवा कर देने को उद्यत रहो। जो दूसरों की सेवा की जाती है, उससे अपने आपको परखने की शक्ति प्राप्त होती है।

- जो सेवा स्वाभाविक बुद्धि से की जाती है, वही सेवा सच्ची और सुहावनी है। जिसमें बनावट की बूबास न हो बल्कि सर्वांग में सर्वतोभावेन प्रेम ही का आभास, विकास और प्रकाश हो।
- दूसरों के विषय में ऐसी बातें कभी मत कहो जो उस आदमी के समक्ष न कह सको।

—जार्ज सिडनी अरेण्डल

- बहुत-से आदमी हर समय सेवा का अभिनय करते रहते हैं, किन्तु अपने मन को चुराये रहते हैं, तो क्या उनको सच्चा परोपकारी, परसेवी कहा जाएगा ? विश्वस्त माना जायेगा। ऐसे व्यक्ति ठीक वैसे ही सेवक होते हैं, जैसे किसी नाटक में सेवा का पार्ट करने वाले। किसी काम में केवल अभिनय कर देने भर से ही प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।
- मानो किसी राजा का हाथी रणभूमि में जाकर अपनी पूँछ, दाँत और पैरों से तो काम लेता है, किन्तु अपनी सूँड़ को मुँह में छिपाये रहता है तो क्या उसकी सेवा पूर्ण और विश्वस्त कही जाएगी ? इसी प्रकार यदि कोई मन को छिपाकर अपने सर्वस्व से भी क्यों न किसी की सेवा करता हो, किन्तु सच्चा सेवक अथवा परोपकारी नहीं कहा जा सकता।
- मन में जब सुख और शान्ति का समावेश हो जाता है, तब उसका प्रतिबिम्ब बाहर आ दिखाई देता है। इसलिए हर मनुष्य को यथासम्भव मानवता की सेवा करने में तत्पर रहना चाहिए। जिसे भी आवश्यकता है, उसके लिए कुछ न कुछ करना चाहिए। बिना मानवता की सेवा किये कोई भी सच्ची सुख-शान्ति नहीं पा सकता। मनुष्य की सेवा करना अपनी सेवा करना है। फिर क्यों न अपने तक सीमित रहने के स्थान पर सामाजिक परिधि के माध्यम से अपनी सेवा की जाय। आत्मा का विकास परोपकार भावना और उसी के अनुसार कार्य करने से ही होता है। वैसे न उस विकास की सरल सम्भावना रहती है और नहीं उसका कोई महत्त्व है।

—रवीन्द्रनाथ टैगोर

- दूसरों की सेवा अपनी ही सेवा करना है। अपने आप को वश में करने से ही पूर्ण मनुष्यत्व मिलता है।

- बहुत अनुनय-विनय पर भगवान पिघले और कठिनाई से ही तनिक दर्शन-झाँकी देकर अन्तर्द्धान हो गये। जाते समय कहते गये—“मैं पीड़ितों और पतितों में बरसता हूँ। वहाँ जा सेवा कर और हाथोंहाथ आत्मसन्तोष का प्रसाद ले।”
- कितनों ने प्रशंसा की, कितनों ने निन्दा की इसे तुम देखो। कितना कमाया, कितना गँवाया ? यही मत सोचो। उस राह को अपनाओ जिसे न्याय निष्ठ अपनाया करते हैं।
- ज्ञानवान लोग लोक-शिक्षण को अपना कर्तव्य समझें।
- दूसरों की सहायता और सेवा करना बड़ी उत्तम बात है, पर यह तभी हो सकता है, जब तुम स्वयं सच्चे और पवित्र बन जाओ।
- हाथ वे ही पवित्र हैं जो परोपकारी हैं। पैर वे ही सुन्दर हैं जो क्षुद्राति क्षुद्र के घर में दयावश पहुँच जाते हैं। स्कन्ध वही शुद्ध है, जो दूसरे की चिन्ता को अपने ऊपर रख लेते हैं।
- समूचे संसार को कष्ट दिये बिना एक व्यक्ति को कष्ट नहीं दिया जा सकता। आत्मा का हितसाधन किए बिना दूसरों का हितसाधन नहीं होता।
- संगीत, मल्ल विद्या, चिकित्सा आदि अनेक ऐसे विषय जिनके सिद्धान्त रट लेने भर से काम नहीं चलता, उसका प्रयोग और अभ्यास भी करना पड़ता है। पानी में घुसे बिना तैरने में कौन निष्णात बन सकता है ?
- अध्यात्म सिद्धान्तों को पढ़ना, सुनना, समझना अच्छी बात है। उससे दिशाबोध होता है, पर मंजिल तो चलने से ही पार होती है।
अध्यात्म का अर्थ है—अन्तर्मुखी होना। अपने भीतर भरी हुई देव-विभूतियों को जाग्रत और जीवन्त करना। देवता की उपासना साधक को देवता बना सके, उन जैसी विशेषताएँ उत्पन्न कर सके, तभी उस प्रयास की सार्थकता है।
- परमार्थपरक पुण्य-प्रयोजन पूरा करने में तत्त्वज्ञान को कार्यरूप में परिणत करने का अवसर मिलता है और उसी अभ्यास के

- बलबूते तत्त्वज्ञान को कर्म में विकसित होने का अवसर मिलता है। यही सार्थक अध्यात्म है।
- आग का प्रज्वलित करना ईंधन की व्यवस्था पर निर्भर है। तत्त्वज्ञान का समुचित प्रतिफल प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि उसे सेवा-साधना द्वारा कार्यरूप में परिणत होने दिया जाय। अध्यात्मवादी और सेवाभावी होना एक ही तथ्य के दो पक्ष हैं।
- पुरुषार्थ के सुनियोजन से प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है। सम्पन्नता बढ़ती तथा कार्यों में प्रवीणता हासिल होती है। योग्यता प्रतिभा का सम्पादन भी समय, श्रम एवं क्षमताओं के सदुपयोग पर निर्भर है। उपार्जन के इन प्रयासों के लिए मनुष्य को खुली छूट है। एकाकी प्रयत्नों से नीतियुक्त मार्ग का अवलम्बन लेकर वह सम्पदा संग्रह कर सकता है और अपनी योग्यता भी बढ़ा सकता है। पर उसकी स्वतंत्रता संचय तक सीमित है। मनमाने उपयोग की उसे छूट नहीं है। विकासक्रम में संसार तेजी से एक परिधि में सिमटता जा रहा है। मनुष्य का व्यक्तिगत जीवन भी उससे अप्रभावित नहीं रह सकता, समष्टिगत जीवन का अभिन्न अंग बनकर, अपनी खुशहाली बाँटकर और दूसरों का दुःख बाँटकर ही वह चैन एवं शान्ति की अनुभूति कर सकता है। परिस्थितियों की माँग एवं बदलते हुए समय ने अब साम्यवादी अर्थनीति को उचित ठहराना शुरू कर दिया है। संचय एवं उपभोग की एकाकी नीति इसलिए भी अहितकर है कि व्यापक क्षेत्र में यह चिन्तन लोकमानस में जड़ जमाता चला जा रहा है कि कुछ की सम्पन्नता ही असंख्यों की गरीबी का कारण है। युग का चिन्तन-प्रवाह अब तेजी से बदल रहा है और अपने साथ सबको बदलने की चेतावनी दे रहा है। अब व्यक्ति समाज का सहयोगी घटक बनकर ही अपना अस्तित्व बनाये रख सकता है। समाज की यह पुकार युग की पुकार है।
- आकाश से बातें, संगमरमर के मन्दिर तथा पाषाण-प्रतिमा तुम्हारे हृदय के दाह को नहीं मिटा सकती, उसके लिए देश के भूखे, प्यासे नारायणों और दुर्बल विष्णुओं की सेवा करनी पड़ेगी।

- चाहे कोई हो यदि तुम्हारी सेवा की उसे आवश्यकता है तो अवश्य करो।
- निःस्वार्थ सेवा अपना स्वयं पुरस्कार है, इसलिए सेवा निःस्वार्थ ही होनी चाहिए। यदि सेवा में स्वार्थभावना का सन्निवेश हुआ तो वह सेवा ही न रही।
- स्वर्ग जाने की तरकीबें पूछने के लिए कितने ही जिज्ञासु बैठे हुए थे। सन्त ने कहा—हमें नरक के दुखियारों की सेवा-सहायता करने के लिए चलना चाहिए। स्वर्ग उन्हीं की मुस्कानों में छिपा मिलेगा।
- केवल भले बनकर सन्तोष मत करो। कुछ ऐसा भी करो जिसे भलाई कहा जा सके।
- मनुष्य भलाई के लिए जन्मा है जैसे पक्षी उड़ने के लिए।
- सेवा करना ही मनुष्य जन्म की सार्थकता है।
- मनुष्य और पशु-पक्षी में जो चितस्वरूप आत्मा है। वही परमात्मा है। चींटी से लेकर ब्रह्म तक जितने प्राणी हैं, उन सबकी सेवा करना ही परमात्मा की सेवा है।
- पवित्रता और सेवा यह दो कार्य ही ऐसे हैं, जिन्हें मजबूती से पकड़े रहने पर तुम महान् बनोगे और धन्य कहलाओगे। तुम ऊँची पहाड़ी पर बसे नगर की तरह सबकी आँखों में आगे रहो। छिपाने योग्य कुछ भी ऐसा न हो जो किसी कोने पर कालिख लग सके।
- सेवाधर्म अपनाने में जितना दूसरों का भला होता है, उससे अधिक लाभ अपने को मिलता है। व्यक्तिगत सेवाभावना की कोमलता, सहानुभूति तो प्रत्यक्ष लाभ है, जो मनुष्य को ऊँचा उठाते, आगे बढ़ाते हैं। इससे भी बड़ा लाभ है—आन्तरिक सन्तोष और उल्लास, जिसकी तुलना किसी भी उपलब्धि से नहीं की जा सकती।
- यदि भक्ति में कटीती करके सेवा में समय लगाना पड़े तो उसे घाटा नहीं समझना चाहिए।
- भक्ति के बिना स्वर्ग हाथ से जा सकता है, पर सेवा के बिना तो आत्मा ही सड़ जाएगी।
- शोषक ही सिर पर लदने के कुचक्र रचता है। सेवाभावना वालों को लोग सिर पर बिठाने के लिए आतुर रहते हैं।
- विश्व-समाज की सदस्यता से अब हम नहीं बच सकते। उससे बचने की बात उतनी ही अकल्पनीय है, जितनी अपनी त्वचा के बाहर हमारे कूद निकलने की। —डा. राधाकृष्णन्
- तेरा देशप्रेम का एक खुला बोदापन है। यदि तू यात्रार्थ विदेश में जाएगा तो कुटुम्बियों के बदले तुझे कुटुम्बी मिल जाएँगे। —इब्न-उल-बर्ही
- अगर तुम्हारा हृदय पवित्र है तो तुम्हारा आचरण भी सुन्दर होगा, अगर तुम्हारा आचरण सुन्दर है तो तुम्हारे परिवार में शान्ति रहेगी और परिवार की शान्ति से समस्त राष्ट्र और विश्व में शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो सकेगा। —कनकशुशिस
- हमें अन्ततः स्वीकार करना पड़ता है कि संसार की जितनी भी भाषाएँ हैं, उन सबका मूल—भारतवर्ष ही है। —जनरल रोयल एशियाटिक सोसायटी
- विश्व में सबसे बड़ा दुःख परतन्त्रता है, सबसे बड़ा सुख स्वतन्त्रता है।
- मनुष्य अपने लिये ही इस सारी दुनिया की रचना हुई मानता है और जो उसका संसार में है उस पर अटल ही अधिकार जमाता है। जीवों की दुनिया का अनुभव लगाने वाले गणितज्ञों का अनुमान है कि प्राणियों में ४/५ भाग कीड़े-मकोड़े का है और शेष १/५ में पशु-पक्षियों और ठंडे जीवचरों से लेकर मनुष्यों तक का है। शेष जीवधारियों की आवश्यकता पूर्ति के लिये भी यह दुनिया बनी है। इस पर अहंकारी और स्वार्थी मनुष्य कभी सोचता तक नहीं है।



स्वाध्याय एवं सद्विचार

- पुस्तकों का मूल्य रलों से भी अधिक है, क्योंकि रत्न बाहरी चमक-दमक दिखाते हैं जबकि पुस्तकें अन्तःकरण को उज्ज्वल करती हैं। ये जीती-जागती देव शक्तियाँ हैं, उनकी सेवा करके तुरन्त वरदान प्राप्त किया जा सकता है।

—महात्मा गाँधी

- बिना पुस्तकों के ईश्वर भी मौन है, न्याय निद्रित, प्राकृतिक विज्ञान स्तब्ध है, दर्शन लँगड़ा है, शब्द गूँगे हैं और सभी वस्तुएँ पूर्ण अन्धकार में हैं।

—बाबोलिन

- जो इन्सान को सदाचार में एक कदम आगे बढ़ाये और उसके आदर्श ऊँचे बनाये वह कला है।

—महात्मा गाँधी

- कलाकार जब कला को कल्याणकारी बनायेंगे और जनसाधारण के लिए उसे सुलभ कर देंगे तभी उस कला को जीवन में स्थान मिलेगा। वही काव्य और वही साहित्य चिरंजीवी रहेगा, जिसे लोग सुगमता से पा सकेंगे और आसानी से पचा सकेंगे।

—महात्मा गाँधी

- अच्छी पुस्तकों के पास होने से हमें भले मित्रों का साथ न मिलने की कमी नहीं खटकती। जितना ही मैं पुस्तकों का अध्ययन करने गया उतना ही अधिक मुझे उनकी विशेषताएँ (उपयोगिताएँ) मालूम होती गयीं।

—महात्मा गाँधी

- पुस्तकें वे विश्वस्त दर्पण हैं जो सन्तों एवं शूरों के मस्तिष्क का परावर्तन हमारे मस्तिष्क पर करती हैं।

—गिबन

- सच्ची कला दैवीसिद्धि का केवल प्रतिबिम्ब होती है—ईश की पूर्णता की छाया होती है।

—माइकेल एंजिलो

- पुस्तकें प्रकाशगृह हैं, जो समय के विशाल समुद्र में खड़ी की गई हैं।

—विपिन

- महान लेखक पाठक का मित्र और शुभचिन्तक होता है।

—मैकाले

- जो कला आत्मा को दर्शन करने की शिक्षा नहीं देती, वह कला ही नहीं है।

- परिवार को सभ्य, सुशिक्षित और सुखमय बनाने के लिए श्रेष्ठ पुस्तकों का संग्रह अपने घर में रखिए, कोई भी घर बिना पुस्तकालय के नहीं होना चाहिए।

—महात्मा गाँधी

- अरुणुदं परुषं सदाचारं
वाक्कण्ठकैर्वितुवन्तं मनुष्यान्
विद्यावत्समीकृतम् जनानां
मुखे निबद्धां निश्चलिं वै बहन्तम् ।

—विष्णु नीति ४/६

जिसकी वाणी सूखी, स्वभाव कठोर है, जो मर्मवेधी वाक्वाणों से दूसरों को पीड़ा पहुँचाता है, उसे मनुष्यों में महादरिद्र ही मानना चाहिए। ऐसा मूर्ख अपने मुख में दरिद्रता और मौत बाँधे फिरता है।

- सत्य बोलने और न्याय देने की आवश्यकता आ पड़े तो अपनी जीभ को मुक्त कर दो। किसी को स्नेहपूर्ण समादर की आवश्यकता हो, तुम्हारे सामने उपकार के प्रति आभार का प्रदर्शन अवसर हो तो जीभ को मुक्त छोड़ दो। जीभ की मिठास जीवन का मधुरस है, उसे इन चार अवसरों पर पियो। पर कड़वी जवान जंगल का शेर है, उसके पास जाने से सभी डरते हैं, तुम उस पर हमेशा अंकुश रखा करो। बेरोक-टोक विचरण करने दोगे तो वह तुम्हारे जीवन को उजाड़कर रख देगी।

—रेमिसिस (मित्र के सम्राट)

- मनुष्य को अपने विचारों को छिपाने के लिए वाणी प्रदान की गई है।

—टेल्मीरेण्ड

- मनुष्य का व्यक्तित्व व उसमें अन्तर्हित कृतत्व शक्ति वाणी से प्रसुप्त रहती है। मनुष्य के बोलचाल, सम्भाषण से ही विदित हो जाता है कि उसमें कितनी क्षमता है व उसका विनियोजन किस कार्य में किया जा सकता है ?

—कार्लाइल

- अगर तू अक्लमन्द समझा जाना चाहता है तो इतना अक्लमन्द बन कि अपनी जवान पर काबू किए रहे।

—स्वार्त्स

- क्रोध अत्यन्त कठोर होता है। वह देखना चाहता है कि मेरा एक-एक वाक्य निशाने पर बैठता है या नहीं, वह मौन को सहन नहीं कर सकता। उसकी शक्ति अपार है, ऐसा कोई घातक शस्त्र नहीं है, जिससे बढ़कर काट करने वाले शस्त्र उसकी शस्त्रशाला में न हों, लेकिन मौन वह मन्त्र है, जिसके आगे उसकी सारी

शक्ति विफल हो जाती है। मौन उसके लिए अजेय है। —प्रेमचन्द

- पशु न बोलने के कारण कष्ट उठाता है और मनुष्य अधिक बोलने के कारण। —लुक्मान

- कोऽतिभारः समर्थानां, किं दूरं व्यवसायिनाम्।

को विदेशः सुविधानां, कः परः प्रियवादिनाम्।।
बली के लिए अधिक बोझ उठा लेना कुछ नहीं है। जो उद्योग करे, उसके लिए दूरी कोई अर्थ नहीं रखती। पढ़े-लिखे के लिए विदेश क्या है, सभी देश उसके अपने हो जाते हैं, मीठा बोलने वालों के लिए कोई भी पराया नहीं होता, वे सबको अपना बना लेते हैं।

—हितोपदेश

- केयूरा न विभूषयन्ति पुरुषं हारानघन्द्रोष्णलान्
नस्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालं कृतामूर्धजाः।

वाप्येका समसं करोति पुरुषं या संस्कृताधार्यते
शीयन्ते खलु भूषणानि सततं वा भूषणं भूषणम्।।

—भट्टहरि

बाजूबन्द अथवा चन्द्रमा के समान उज्ज्वल हार मनुष्य को विभूषित नहीं करते, न स्नान से, न सुगन्धित उबटन से, न फूलों से और न सँवारे हुए केशों से उसकी शोभा वृद्धि होती है। एक मात्र संस्कारित वाणी ही मनुष्य का सच्चा आभूषण है, जिसके सम्मुख अन्य सब आभूषण फीके पड़ जाते हैं।

- जिसमें जीवन के निर्माण का लक्ष्य छिपा हो वही सच्ची कला है। —महादेवी वर्मा

- सभी सच्चे साहित्यिक सिनेमा के बढ़ते हुए खतरे से चिन्तित हैं। पुराने-जमाने में लोग दिनभर के काम-काज के बाद भजन-कीर्तन में भाग लेते थे और भगवान के नाम का स्मरण करते हुए सो जाते थे। तब कोई आश्चर्य नहीं कि वे भले विचारों के होते थे। लेकिन आज-कल के सिनेमा का प्रभाव इसके बिल्कुल विपरीत है।

फिल्म-निर्माताओं पर प्रतिबन्ध लगाये जाने चाहिए ताकि वे ऐसी फिल्म न बनाएँ जो समाज के दिमाग को दूषित करते हैं।

—विनोबा

- चित्त से निरन्तर परमात्मतत्त्व का चिन्तन करते रहो, अनित्य धन की चिन्ता छोड़ दो। क्षण भर

के साधु संग को भी भवसागर से तरने के लिये नौका स्वरूप समझें। —शंकराचार्य

- जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हम में गति और शक्ति न पैदा हो, जो हम में संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे, वह आज हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहलाने का अधिकारी नहीं। साहित्य वही है जिसे पढ़ने से प्रतीत हो कि लेखक ने अन्तर से सब कुछ पुष्प की तरह प्रस्फुटित किया है। —प्रेमचन्द

- साहित्य का अध्ययन नवयुवकों का पालन-पोषण करता है, वृद्धों का मनोरंजन करता है, उन्नति का शृंगार करता है, मुसीबत को धीरज देता है, घर को प्रमुदित करता है और बाहर विनम्र बनाता है। —सिसरो

- मनुष्य बीस वर्ष के अनुभव से जो सीखता है, पुस्तकें उससे भी अधिक एक वर्ष में सिखा देती हैं। —महात्मा गाँधी

- चोरी से कोई धनवान नहीं बन सकता, दान से कोई कंगाल नहीं हो सकता, थोड़ा-सा झूठ भी कभी छिप नहीं सकता। यदि तुम सत्य पर दृढ़ रहोगे तो सारी प्रकृति और सब जीव तुम्हारी सहायता करेंगे। चरित्र ही मनुष्य की सबसे बड़ी पूँजी है। —एमर्सन

- जिसे उत्तमोत्तम पुस्तकों को पठन-पाठन का सौभाग्य प्राप्त होता है, उसके लिये चंचल लक्ष्मी का शुष्क विनोद किस काम का ?

- जिस प्रकार पानी की वह धारा, जिसमें कोई बाँध नहीं है गाँव के गाँव डुबा देती है और फसलों को नष्ट कर देती है, उसी प्रकार बिना रोक-टोक की लेखनी भी केवल विनाश ही करती है। यदि रोक बाहर से लगाई गई है तो वह रोक के अभाव से भी अधिक जहरीली है। —महात्मा गाँधी

- जिससे जनता का चित्त शुद्ध होता है, वही उत्तम साहित्य है। पोथी का कुआँ डूबता भी नहीं है और पोथी की नैया तारती भी नहीं है। वेदों के अक्षर पोथी में मिलते हैं, किन्तु उनका अर्थ जीवन में खोजना है। मन भर चर्चा की अपेक्षा कर्णभर आचरण श्रेष्ठ है। ज्ञानवंत प्राणी ज्ञान को पग-पग जीवन में उतारता है। —विनोबा

- युद्ध और अकाल की अपेक्षा युग की महान घटनाएँ उसके उत्तम विचार हैं क्योंकि कार्य में परिणत होने का मार्ग विचार ही दृढ़ता है।
—ब्याज

- जिस युग में कला मदिरा की-सी उत्तेजना मात्र हो, पर जिस युग में कला अमृत की संजीवनी देने में जुट जाएगी वह युग-निर्माण का युग होगा।
—महादेवी वर्मा

- पुस्तकों में छुपे हुए और कीड़ों का आहार होने के लिये अल्मारियों में रखे हुए वेदान्त से काम न चलेगा, तुम्हें इसे आचरण में लाना होगा।

- श्रुतिर्धर्म इति ज्ञानं बधति बहवोजनाः।
तते न प्रत्यसूयाभि न च सर्वं विधीयते॥

—महाभारत कर्ण पर्व ६६/१५५

शास्त्रों से धर्म का ज्ञान होता है इस बात का खंडन तो नहीं करना चाहिए पर यह भी निश्चित है कि सब कुछ शास्त्रों से ही नहीं जाना जाता।

- स्वाध्यायान्मा प्रमदः।

—तैत्तिरीय १/१०

स्वाध्याय में प्रमाद न करो।

- विद्या से मेरा अभिप्राय यह है कि मनुष्य के शरीर, बुद्धि और आत्मा के सभी गुणों को प्रगट किया जाय। पढ़ना-लिखना विद्या का अन्त तो है ही नहीं, आदि भी नहीं है।

—महात्मा गाँधी

- प्रेरणाशक्ति के द्वारा बच्चों में उन शक्तियों का विकास किया जा सकता है, जिन पर उनका स्वास्थ्य, सफलता और सुख निर्भर है।

—स्वेट मार्ट

- ज्ञान से ही मनुष्य संसार में सुख पाता है और इसकी कमी से बन्धन में आकर दुःख उठाता है। जिसका ज्ञान पूर्ण है सफलता उसका ही साथ देती है। ज्ञान में दोष आ जाने से असफलता की बहुलता से मनुष्य दुःखी रहा करता है। इस संसार में ज्ञान से बढ़कर कोई भी पवित्र वस्तु नहीं है, यह आत्मा का स्वाभाविक गुण है और परमात्मा ज्ञानस्वरूप है। जब ज्ञान के प्रकाश से अज्ञान का अन्धकार दूर हो जाता है, तब जन्म-मरण के बन्धनों से रहित हो मनुष्य अभूत मार्ग का यात्री बन जाता है। ऐसा ज्ञानवान पुरुष सब अवस्थाओं

में अपने आप को परमात्मा के अर्पण कर देता है।

- हम बाह्य विषयों में जिस सुख को ढूँढ़ना चाहते हैं, वह वस्तुतः अपने अन्दर ही है। हमें उसकी प्राप्ति के लिये क्षुद्रताओं से अलग रहना एवं इन्द्रिय-लोलुपता का यथासंभव निराकरण करना होगा। उस वासना को दबाना होगा जो स्थिर, शांत आत्म-सागर में काम, क्रोध, लोभादि तरंगें उठाकर उसे अशान्त तथा विभुब्ध किया करती है। इन सारी बातों के लिए ज्ञान की आवश्यकता है। संसार के प्रत्येक भावों की परीक्षा करना, सत-असत की यथार्थतः पहचान एवं अपने उपयोग की वस्तुएँ ग्रहण करना तथा अनुपयुक्त का त्याग, यह सब ज्ञान से ही साध्य है। सद्ग्रन्थों का अध्ययन करते रहना तथा ज्ञानियों का सत्संग, समय और सुविधा के अनुसार प्राप्त करना मनुष्य जीवन को सुधारने के लिए अत्यावश्यक है। जिस समाज या देश में यथार्थ ज्ञानियों की जितनी ही अधिक संख्या होगी उसकी उतनी ही अधिक आत्मोन्नति हो सकेगी और वही मनुष्य, समाज अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त होगा। ऐसे उपयोगी ज्ञानयज्ञ के आयोजन में प्रत्येक मनुष्य को अवश्य ही भाग लेना चाहिए।

- नम्रता और मधुर भाषण से बढ़कर भला मनुष्य का और क्या आभूषण हो सकता है ? जिसके मुख से दूसरों को आनन्दित करने वाली वाणी निकलती है, वह एक उदार दानी है, जो अपना महाप्रसाद याचकों और अयाचकों को समान रूप से सर्वत्र वितरण करता है, ऐसा व्यक्ति दुःख और दरिद्र का शिकार नहीं हो सकता। जो रत्नों की कोठी खोले बैठा है, उसे पाइयों का अभाव नहीं होगा। स्वार्थरहित होकर और दूसरों की भलाई के लिये जो वचन कहे हैं, वे ही यथार्थ में मधुर हैं, ऐसी मधुर वाणी सुनने वाले और सुनाने वाले के हृदय को जमाती है, उनमें शान्ति और शीलता के अंकुर उपजाती हैं। सेवाभावी और विनम्र वक्ता के लिए इस संसार में साथियों, मित्रों और सहायकों की कुछ भी कमी नहीं रह सकती।

- संसार में सुस्निग्ध पदार्थ एक ही है—मधुर वाणी क्योंकि उसमें दया, प्रेम का मधुर रस

भरा रहता है। सोने-चाँदी का दान तुच्छ है, वह बेचारा उन वचनों की समता नहीं कर सकता, जो हताशों को उत्साह प्रदान करते हैं, जो भटकों को राह पर लाते हैं, जो पाप की तपन से जलने वालों के मन में धर्म का जल छिड़कते हैं और जो अन्धकार में भटकने वालों को प्रकाश प्रदान करते हैं। ऐसे वचनों का दान हीरे और लालों के दाम से कैसे कम होगा ? जिनके हृदयों से सत्य, प्रिय और हितकर वचन निकलते हैं, सत्य समझिए धर्म का निवास स्थान उन्हीं के अन्दर है। पवित्र भाषण एक प्रकार का प्रवाह है, जो वक्ता के कलुषित विचारों को अपने बहाव में बहा ले जाता है। मधुरभाषी ही स्वर्ग का अधिकारी है।

□ मधुर भाषण के महत्त्व को लोग समझ जावें तो क्रूर और दुष्ट वाणी क्यों बोलें ? हाय ! लोग मीठे फलों को छोड़कर कड़ुए, खट्टे और कच्चे फलों को क्यों कुतरते-फिरते हैं ? मधुर भाषण को छोड़कर कड़ुवी वाणी क्यों बोलते हैं ?

□ मनुष्य का परम कर्तव्य है कि वह वाणी लेखनी द्वारा सत्य का प्रसार और असत्य का नाश करे। ऐसा न करने से मनुष्यों की उन्नति नहीं हो सकती। मनुष्य जन्म का यही फल है कि सच और झूठ का ज्ञान किया और कराया जाय, न कि झगड़ा और बैर-विरोध बढ़ाया जाय।

—स्वामी दयानन्द सरस्वती

□ कला की साधना विलास नहीं है, न स्वप्नलोक में पलायन है। अपने उच्चतम रूप में कला की साधना में हमारा व्यक्तित्व अपनी उन्नतिशील-आत्मानुभूति की ओर बढ़ता रहता है। किसी भी युग में कला की उपेक्षा करने पर हमें उसका मूल्य चुकाना ही पड़ता है। कला तो हमारे स्वभाव की एक विचित्र आवश्यकता है।

□ चारों तरफ एक अन्धेरा छाया हुआ है, जो हमारे 'अहं' और 'अज्ञान' के कारण और भी गहरा हो गया है। उसमें जो आत्म-ज्योति दीख पड़ती है, कला उसके प्रकाश की किरण है। ये किरणें 'दीपक तले अन्धेरे' को दूर करती हैं। अगर हमारी पीड़ा नहीं, तो कम से कम पीड़ा के कारणों को तो दूर करती ही है।

□ प्रत्येक मनुष्य में कहीं न कहीं एक कलाकार है और जो समाज हर युग और हर कला की थाती को अपने हर सदस्य के लिए सुलभ बना देता है, वही सही अर्थों में एक सभ्य समाज है। यह बात सदैव स्मरण रखने की है कि कला के क्षेत्र में परम्परा की थाती वैसी ही है, जैसे व्यवसाय में पूँजी ! यदि उसका उचित उपयोग किया जाय, तो बहुत लाभ हो सकता है। लेकिन दो वस्तुएँ ऐसी हैं, जिनके सहारे परम्परा अपने को पूर्ण कर पाती है। वे हैं—प्रकृति और मौलिकता। प्रकृति, मौलिकता और परम्पराएँ, तीनों मिलकर ही एक पूर्ण कलाकार का निर्माण करती है। —नव लाल बसु

□ जो साहित्य समग्र रूप से मनुष्य की महिमा को प्रकाशित नहीं कर सकता उस पर गौरव नहीं किया जा सकता, क्योंकि साहित्य में मनुष्य अपने ही संग को, अपने ही साहित्य को प्रकट करता है स्थायित्व के उपादानों से।

□ 'साहित्य में मनुष्य को अपने ही अन्तरतम का परिचय मिलता है। अपने अगोचर में, जैसे परिचय देता है। पुण्य-पुष्प अपनी सुगन्ध में, नक्षत्र अपने आलोक में।

□ 'साहित्य की ओर से कहने की बात यह है कि वहाँ अन्य कोई तर्क ही ग्राह्य नहीं, केवल इतना उत्तर मिल जाना ही पर्याप्त है कि जिन चरित्रों की अवतारणा हुई है, वे सृष्टि की कोटि में पहुँच चुकी हैं। —रवीन्द्रनाथ टैगोर

□ चित्त को क्षुद्र वासनाओं से विरत करने का एक बहुत बड़ा साधन कला है। काव्य, चित्र संगीत आदि का जिस समय रस मिला करता है, उस समय भी शरीर और इन्द्रियों के बन्धन ढीले पड़ गए होते हैं और चित्त आध्यात्मिक जगत् में खिंच जाता है। —सम्पूर्णानन्द

□ किसी को गलत मार्ग पर ले जाने वाली सलाह न दो।

□ उपयोगी साहित्य पढ़ने से अधिक चिरस्थायी और उपयोगी मनोरंजन कोई है नहीं।

□ सहस्रों बड़े-बड़े ग्रन्थ पढ़ने से एक ऐसा सूत्र पढ़ना अच्छा, जिससे तत्त्व की प्राप्ति होती हो।

- दूसरों को प्रसन्न करने के लिए मीठी-मीठी बातें बनाने वाले खुशामदी लोग बहुत हैं पर कल्याणकारी कड़वे वचन कहने और सुनने वाले मनुष्य कठिनता से मिलते हैं।
- सबसे कम खर्चीला, लाभदायक और आनन्दप्रद मनोरंजन सत-साहित्य का अध्ययन है।
- जो पुस्तकें तुम्हें अधिक सोचने के लिए विवश करती हैं, उनको ही जानदार मानो।
- यदि हम यह प्रयत्न करते रहें कि जितने इस समय जानते हैं उससे अधिक पाएँ तो निश्चय ही थोड़े दिनों में बड़े बुद्धिमान बन सकते हैं।
- अपने शत्रु को प्यार करो। जो तुम्हें शाप दें उन्हें आशीर्वाद दो। जो तुमसे घृणा करें उनके प्रति भलाई करो और उनके लिये भी प्रभु से प्रार्थना करो, जो तुम्हारे साथ तिरस्कारपूर्ण व्यवहार करते हों।
- जितना ऊँचा ज्ञान उतना ही उत्तम जीवन। यदि ऐसा हो सके तो ठीक, नहीं तो सारा प्रयास भूखी कूटने के समान व्यर्थ और निस्सार है।
- न बहविविधमनुष्यादिना सदा।
प्रविचारोत्तरं देवं सहसा न बदेत्स्वचित् ।।
बिना अनुभव किसी बात में अपनी सम्मति न प्रकट करें, विचार करके उत्तर देना चाहिए और शीघ्र कुछ न कह डालें।
- बुद्धिमान बनने का तरीका यह है कि आज हम जितना जानते हैं, भविष्य में उससे अधिक जानने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहें।
- उनसे मत डरिए जो आपके शरीर को नष्ट कर सकते हैं। आप तो उनसे डरिए जो आपकी आत्मा को पतन के मार्ग में ले जाकर नष्ट कर देने वाले हैं।
- तिनके पानी के ऊपर तैरते-फिरते हैं परन्तु मोती प्राप्त करने के लिए समुद्र की तली तलाश करनी पड़ती है। इसी प्रकार ओछे मनुष्य का संग तो चाहे जहाँ मिल जाता है, पर सत्पुरुषों की ढूँढ़-खोज करनी पड़ती है।
- प्रत्येक मनुष्य के अन्तःकरण में निरन्तर उत्तम बनाने के लिए अन्तरध्वनि होती है, किन्तु कोई ही इस ध्वनि की ओर चेष्टा करता है।
- मन तथा शरीर की थकान उतारने की, रोगियों के रोग दूर करने की, दरिद्रों को दरिद्र में से निकालने की, दुखियों के दुख दूर करने की महान शक्ति ग्रन्थों में है।
- हमारे जीवन में वह क्षण बड़े सुखमय होते हैं, जब हम एकांत में विद्वानों के साथ सम्भाषण करते हैं अर्थात् पुस्तकें पढ़कर शान्ति और आनन्द प्राप्त करते हैं। सम्बन्धी और मित्र जब दुःख में साथ छोड़ देते हैं, तब ग्रन्थ ही सच्चा साथ देते हैं।
- प्रकृति ने मनुष्य को दो कान दिये, किन्तु जीभ एक ही दी। इस गुप्त संकेत का अर्थ ही यह है कि वह जितना सुने उससे कम बोले।
- संसार का सारा ज्ञान पुस्तकों में भरा है। जिन परिवारों में पठन-पाठन का व्यसन नहीं है, वे सचमुच ही बड़े अभागे हैं।
- चित्त में शुभविचारों को भरो, शुभविचारों के साथ खेल करो, उसके साथ जीवन बिताओ।
- यदि आप विवाद करेंगे, पीड़ा पाएँगे और खण्डन करेंगे तो हो सकता है कि कभी-कभी आपको विजय प्राप्त हो जाए परन्तु यह एक शून्य विजय होगी। आपको कभी अपने विरोधी की हितेच्छा प्राप्त नहीं होगी।
- सत्साहित्य सामने रखा हुआ महकता उद्यान है।
- ग्वाले की तरह देवता लाठी लेकर किसी की रक्षा नहीं करते। वे जिस पर प्रसन्न होते हैं, उसकी समझ में प्रज्ञा बना देते हैं।
- ज्ञान को गलाकर सौंचे में ढालने तथा उससे प्रतिमाएँ रचने का काम कला ही कर सकती है।
- विचार ही हमारी मुख्य प्रेरणाशक्ति है। प्रतिदिन विचार-शक्ति को जाग्रत करने वाला साहित्य पढ़ो, उसका चिन्तन करो और अपने मस्तिष्क को सद्विचारों से भर दो। फिर देखो तुममें क्या सामर्थ्य नहीं आ जाती ?
- अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च ज्ञातेभ्यः कुञ्जसोनरः,
सर्वतः सारमावयात् पुण्येभ्यः स बह्वचः ।
बुद्धिमान मनुष्य छोटे और बड़े सब शास्त्रों का सार ग्रहण करें। जैसे भीरा फूलों का रस ग्रहण करता है।

- साहित्य-सृजन का प्रतीक है और राजनीति विध्वंस का। एक सफल राजनीतिज्ञ अपने जीवन की अर्द्धशताब्दी में भी जनकल्याण के लिए जो नहीं कर पाते, वह एक साधारण-सा साहित्यकार अपनी एक पंक्ति से कर देता है। साहित्य के सृजन को कोई नहीं मिटा सकता।
- स्पष्ट बोलो, जो कुछ कहना हो नितान्त स्पष्ट कह दो।
- नीच विचार हमारे सुख में भी हमें डंक मारते हैं और सद्विचार हमें कष्टों में भी सान्त्वना देते रहते हैं।
- पृथ्वी में तीन रत्न हैं—जल, अन्न और प्रिय-वचन, पर मूर्खों ने जड़-पदार्थों के टुकड़ों का नाम रत्न रख छोड़ा है।
- अज्ञान मनुष्य का सबसे बड़ा दुश्मन है।
- गरीबों को दरिद्रता से छुड़ाने की, दुःख दूर करने की शरीर तथा मन को नीरोग बनाने की और बीमारों का दुःख भुला देने की जितनी शक्ति ग्रन्थों में होती है, उतनी संसार की और किसी चीज में नहीं।
- पढ़कर उसे कार्यरूप में परिणत नहीं करना। जमीन जोतकर उसमें बीज न डालने के समान है।
- सत्साहित्य के स्वाध्याय में बगुले की भाँति एकाग्रता होनी चाहिए, तभी उसके मर्म को आत्मसात् किया जा सकता है, अन्यथा पन्ने पलटने वाली चिन्ह-पूजा भर से न सिर्फ समय का दुरुपयोग होता है, अपितु स्वाध्याय की गरिमा भी समाप्त हो जाती है। अध्येता की रीति हाथ पड़ता है सो अतिरिक्त।
- अपने को अधिक अच्छा बना लो, ताकि सामान्यजनों पर छाप छोड़ सको। ऐसे वचन बोलो जो सबको शान्ति दें और ऊँचा उठावें। तुम्हारी वाणी ही है, जो हृदय के स्तर का परिचय कराती और सज्जनता का प्रमाण देती है।
- कुएँ को जितना गहरा खोदा जाए उसमें से उतना ही जल प्राप्त होता जाता है। जितना अधिक अध्ययन किया जाय, मनुष्य उतना ही ज्ञानवान बनता जाता है। विश्व क्या ? और

इसमें कितनी आनन्दमयी शक्ति भरी हुई है, इसे वही जान सकता है, जिसने विद्या पढ़ी है। ऐसी अनुपम सम्पत्ति को उपार्जन करने में न जाने क्यों लोग आलस्य करते हैं ? आयु का कोई प्रश्न नहीं है, चाहे मनुष्य बुढ़ा हो जाय या मरने के लिये चारपाई पर पड़ा हो तो भी विद्या प्राप्त करने में उसे उत्साहित होना चाहिए क्योंकि ज्ञान तो जन्म-जन्मान्तरों तक साथ जाने वाली वस्तु है।

- वे मनुष्य बड़े अभागे हैं जो विद्या पढ़ने से जी चुराते हैं। भिखारी को दाता के सामने जैसे तुच्छ बनना पड़ता है, वैसे ही तुच्छ यदि तुम्हें शिक्षकों के सामने बनना पड़े तो भी शिक्षा प्राप्त करना ही कर्तव्य है। मनुष्य जाति के सच्चे नेत्रों के नाम हैं—(१) अंक (२) अक्षर। जो पढ़ा-लिखा है वही नेत्रवान है, जिसने विद्या नहीं पढ़ी वह तो अन्धा है। उसके माथे में तो दो गड़दे मात्र हैं नेत्र नहीं।

मनुष्य अपने सौभाग्य-दुर्भाग्य का निर्माता आप है। हमारे विचार ही हमारे भाग्य का निर्माण करते हैं। जैसे-जैसे हमारे विचार उठेंगे हाव-भाव तथा क्रिया-कलाप भी उसी के अनुरूप होने लगेंगे। सद्विचारों से अपने को आवृत्त रखने के लिए सद्-ग्रन्थों का अध्ययन बहुत ही लाभकारी सिद्ध हुआ है। मार्गदर्शक के रूप में कोई महापुरुष कुछ सीमित आयु तक ही लोगों का मार्गदर्शन कर सकता है। मरणधर्मा शरीर आखिर एक दिन विनष्ट ही होगा। ऐसी स्थिति में मनचाहे महापुरुष का सम्पर्क-सान्निध्य तथा सत्संग उसके द्वारा अनूदित साहित्य से उठाया जा सकता है। अपने घर का पुस्तकालय एक ऐसा देवालय हो सकता है, जहाँ पर हजारों महापुरुषों, देवपुरुषों, ऋषियों, मनीषियों के विचार साहित्य के माध्यम से हमारा मार्गदर्शन करते रह सकते हैं। इस प्रकार ज्ञानमन्दिर हमें सर्वदा अमृतवर्षा से तरो-ताजा बनाये रख सकता है।

- जीवन की पवित्रता इस तरह की सर्वोपरि कला है। कला-कौशल वह है। जो मनुष्य को सहज ऊँचा उठाये। जिससे प्रतिभा की प्रेरणा है। इसे तो कला के नाम पर—गा नाच नचाने वाले की भर्त्सना ही कहना चाहिए।

- सिसरो के अनुसार भी चुप रहना संलाप कला में एक विशिष्ट स्थान रखता है। उसका कहना है कि चुप रहना एक कला ही नहीं वाक्प्रवीणता भी है।
- हरे-भरे वन में भूखों मरने वाले में और पढ़ने के इतने साधन होते हुए भी ज्ञानहीन रहने वाले मनुष्य में क्या अन्तर है ?
- ग्रन्थों के प्रेमी मनुष्य को दयालु, हितैषी, उपदेशक, विनोदी साधियों की कमी न रहेंगी।
- किसी से कटुवचन न बोलो। यदि बोलोगे तो वह भी तुमसे वैसा ही कटुवचन बोलेगा। झगड़े में दुःख बढ़ता ही है। कटुवचन बोलने के बदले में तुम्हें दंड मिलेगा। टूटा हुआ कौंसा जैसा निशब्द रहता है, उसी तरह अगर तुम स्वयं चुप रहोगे तो तुम निर्वाणपद प्राप्त कर लोगे, तुम्हें कलह नहीं सतायेगी।
- जब तक वाक्संयम नहीं होता, तब तक चित्तसंयम होना कठिन है, वाक्संयम ही चित्त संयम की पूर्व अवस्था है।
- वाणी की चञ्चलता से बचो, वाणी का संयम रखो, वाणी का दुश्चरित्र छोड़कर वाणी का सदाचरण करो।
- **प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।**
तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने का इष्टिता।।
प्रिय बात बोलने से सब प्राणी सन्तुष्ट हो जाते हैं। इसलिये सदा प्रिय बोलना चाहिए। बोलने में क्या दरिद्रता ?
- **सहस्रपि चेद्वाचो अनर्घपदसंहिताः।**
एकमर्घपदं श्रेयो यच्चुरोपशान्तिः।।
बकवाद भरे बहुत भाषण-प्रवचन व्यर्थ हैं। वह एक ही शब्द पर्याप्त है, जिससे किसी को शान्ति प्राप्त हो।
- परमात्मा ने स्वतः ही आँख, कान, हाथ, पैर, नाक इत्यादि दो दिए हैं किन्तु जबान एक दी कि कम बोला करो ज्यादा नहीं।
- जीभ से निकले शब्द कानों से टकराकर बिखर जाते हैं, पर हृदय की वाणी कलेजे में घुस बैठती है और फिर उखड़ने का नाम नहीं लेती।
- बहुत बक-बक मत करो। थोड़ा बोलो काम की बातें करो और दुष्टों के संग से बचते रहो।
- जिन्हें आनन्द की चाह हो उन्हें अपनी जीभ पर काबू रखना चाहिए।
- अगर किसी और को न रोक सको तो कम से कम जुबान पर जरूर लगाम लगाओ, ताकि वह कटुवचन बोलने की उद्दंडता न कर पाये।
- शब्दों में अपार शक्ति है। उनका दुरुपयोग होने से प्राणघातक संकट तक आ सकते हैं। इसलिए अपनी जबान पर पहरा बिठा दो कि एक भी शब्द ऐसा न निकलने पावे, जिससे अनिष्ट की सम्भावना हो।
- सब मंगलों की जननी सत्यमिश्रित मधुर रूप की प्रशंसा तो है, पर पापवृत्ति में यदि वह प्रयुक्त होने लगे तो नहीं। ऐयेन्स के दार्शनिक पैरिक्लीस ने जनता का उद्बोधन करते हुए कहा था—“हमें कला चाहिए, विलास नहीं। हम विज्ञान की उपासना करते हैं किन्तु मानव का विनाश नहीं चाहते।”
- एक भी दिन ज्ञानराशि में कुछ न कुछ वृद्धि किये बिना और यह अनुभव किये बिना मत व्यतीत होने दो कि तुमने अपनी मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों में कुछ उन्नति की है।
- पराक्रम वस्तुओं की उलट-पुलट करता है और घटनाएँ विनिर्मित करता है, किन्तु मनुष्य के भाव-संस्थान में हलचल उत्पन्न करना, दिशा देना और कुछ-से-कुछ बना देना वाणी के लिए ही सम्भव है। संसार में जितनी उथल-पुथल होती रही है, उनमें वाणी की भूमिका प्रधान रूप से रही है। इसलिए इसे शक्ति कहकर वर्णित किया गया है। हम चाहें तो इसका सदुपयोग कर स्वर्ग का निर्माण कर सकते हैं और दुरुपयोग कर नरक का। यह पूर्णतः प्रयोक्ता पर निर्भर करता है।
- **शिवमिस्तिन्नामधेवं चास्ति कल्याणवाचकम्।**
शिवकार्यं सन्ततं शिवार्चस्तुष्टिरस्तु है।।
शिव यह नाम कल्याण का वाचक है। भले कार्यों में लगे रहना ही शिव की पूजा है और शिव की प्रसन्नता है।

११.८ विचारसार एवं सुक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

- पतितोत्थापनं कार्यं तिरस्कृतीटीच नैवतान् ।
कारुण्यभावेन सदा व्यवहरेत् निम्नगन्तरान् ॥
गिरे हुआ का उत्थान करना चाहिए और उनका कभी तिरस्कार नहीं करना चाहिए। निम्न स्तरीय मनुष्यों के साथ सर्वदा करुणापूर्ण भाव से व्यवहार करना चाहिए।
- शिवः करोत्यवतरणं सुरसरितो ज्ञानस्य च ।
यतो हि त्रिविधास्तापा दूरं याप्ति मुसेबनान् ॥
शिवदेव ज्ञानगंगा का अवतरण करते हैं, जिनके भलीभाँति सेवन से तीनों प्रकार के ताप दूर भागते हैं।
- जो असुन्दर है, जो अनैतिक है, जो अकल्याण है, वह किसी प्रकार कला नहीं है, धर्म नहीं है। कला-कला के लिए की युक्ति भी किसी प्रकार सत्य नहीं है।
- शरीर को जीवित रखने के लिए अन्न, जल और वायु की अनिवार्यता होती है। आत्मा को सजीव और सुविकसित बनाने के लिए उस ज्ञान-आहार की आवश्यकता है, जिसके आधार पर गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता उपलब्ध की जा सके।
- समुन्नत जीवन का एकमात्र आधार सदज्ञान है। इस अवलम्ब के बिना कोई ऊँचा नहीं उठ सकता—आगे नहीं बढ़ सकता। सन्तोष, सम्मान

और वैभव की अनेकानेक श्रेयस्कर विभूतियाँ इस सदज्ञान सम्पदा पर ही अवलम्बित हैं।

- मनुष्य में ज्ञान-सम्पादन की क्षमता ही है पर उसे एकाकी विकसित नहीं कर सकता। दूसरों के सहारे ही उसकी महानता विकसित हो सकती है। इस सहारे का नाम स्वाध्याय और सत्संग है। शास्त्र और संत सम्पर्क से यह प्रयोजन पूरा होता है। प्रशिक्षित मन-स्थिति यह लाभ चिन्तन और मनन से भी ले सकती है। पशु को मनुष्य बनाने के लिए उस सदज्ञान सम्पदा पर ही अवलम्बित है।
- मानवी महानता का सारा श्रेय उस सदज्ञान को है, जो उसकी चिन्तन-प्रक्रिया एवं कार्य-पद्धति को आदर्शवादी परम्पराओं का अवलम्बन करने की प्रेरणा देता हो। सौभाग्य और दुर्भाग्य की परख इस सदज्ञान सम्पदा के मिलने, न मिलने की स्थिति को देखकर की जा सकती है। जिसे प्रेरक प्रकाश न मिल सका, वह अँधेरे में भटकेंगा, जिसे सदज्ञान की ऊर्जा से वञ्चित रहना पड़ा, वह सदा पिछड़ा और पतित ही बना रहेगा। पारस छूकर लोहे को सोना बनाने वाली किम्बदन्ती सच हो या झूठ, यह सुनिश्चित तथ्य है सदज्ञान की उपलब्धि मनुष्य को सौभाग्य के श्रेष्ठतम स्तर तक पहुँचा देती है।



संगठन और सहकार

□ एक मन वाले संगठित व्यक्ति ही सफलताओं को प्राप्त करते हैं।

□ सर्वभूतस्यमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।

ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ —गीता
सर्वत्र समभाव रखने वाला योग अपने को सब भूतों में और सब भूतों को अपने में देखता है।

□ स्वार्थपूर्ण और व्यक्तिगत सम्बन्धों को त्याग दो, प्रत्येक में और सबमें ईश्वरत्व को देखो, प्रत्येक में ईश्वर के दर्शन करो। —स्वामी रामतीर्थ

□ अगर तुम्हारे होंठ मुसकराना चाहते हैं तो उन्हें प्रोत्साहित करो और यदि न हों तो उन्हें मुसकराने के लिए मजबूर करो। —गेटे

□ सबकी आत्मा एक जैसी है, सबकी आत्मा की शक्ति समान है, मात्र कुछ की शक्ति प्रकट हो गई है, दूसरों की प्रकट होना बाकी है।

—महात्मा गाँधी

□ दूसरों का हित करने में तत्पर मनुष्य एक प्रकार से अपना ही हित करता है। जब कोई आपके साथ हित करेगा, तब आप भी उसका हित ही करेंगे—ठीक उसी तरह जब आप किसी के साथ हित करेंगे तो दूसरा भी आपके साथ हित करेगा। संसार एक आदान-प्रदान की अविचल प्रक्रिया है। वृक्ष जब अपने पुराने पत्ते त्यागकर प्रकृति के अंचल में डाल देता है तो प्रकृति उसे उसके बदले में नये पत्ते प्रदान कर देती है।

□ बहुत-से लोग भले होते हैं, किन्तु वे अपनी भलाई भावों तक ही सीमित रखते हैं। यह बात सही है कि भावों में भला होना भी अच्छा है, किन्तु जब भलाई कर्म में भी मूर्तिमान होने लगती है, तब उसमें चार चाँद लग जाते हैं। उससे लोगों का यथार्थ रूप में भला होता है। उसका लाभ पाकर लोग स्वयं भी दूसरों के साथ भलाई करने की प्रेरणा पाते हैं। विचार क्षेत्र तक सीमित रहने वाले गुणों की आयु कम होती है और कभी भी उनके क्षीण हो जाने का भय रहता है, किन्तु जो गुण मूर्तिमान होकर मानव समाज के काम

आने लगते हैं, वे पुष्ट ही नहीं होते अजर-अमर भी हो जाते हैं।

—गोपालकृष्ण गोखले

□ मनुष्य समाज के साथ ही ऊपर उठ सकता है और समाज के साथ ही उसे नीचे गिरना पड़ता है। यह नितान्त असम्भव है कि कोई व्यक्ति अपूर्ण समाज में पूर्ण बन सके। क्या हाथ अपने आपको शरीर से पृथक् रखकर बलशाली बन सकता है ? कदापि नहीं।

—स्वामी रामतीर्थ

□ जब तक जीव-मात्र के साथ एकता अनुभव न हो तब तक प्रार्थना, उपवास जप-तप सब थोड़े हैं। —महात्मा गाँधी

□ जो व्यक्तित्व को देखना छोड़ चुके हैं, वे ही अनन्तता को जान सकते हैं। उन्हें सारा संसार एक परिवार की तरह दिखाई पड़ता है।

—स्वामी रामतीर्थ

□ पीड़ा तो स्वयं को सँभाल लेती है किन्तु आनन्द का भार बाँटने के लिए किसी मानव का साथ होना आवश्यक है। —मार्क ट्वेन

□ दुनिया में भी दुःखी हैं। कुछ अपने दुःख से और कुछ दूसरों के दुःख से। किन्तु यदि तात्त्विक दृष्टि से देखा जाय तो अभाव और कष्टों से दुःखी होने वाला ही दुःखी है, दूसरे के दुःख से दुःखी होने वाला नहीं। दूसरे के दुःख से दुःखी होने वाले में एक आत्म-सुख होता है। एक मार्मिक अनुभूति रहती है। उसकी आहों में हरा-भरा सावन और औसुओं में शीतल गंगा लहराती है। स्वार्थजन्य दुःख यदि विषैले काँटे हैं तो परार्थजन्य दुःख सुविकसित सुमन।

□ जिस प्रकार एक छोटी बात से हटकर किसी बात की ओर ध्यान चले जाने से छोटी बात विस्मृत हो जाती है, उसी प्रकार जब मनुष्य की निजी दुःखानुभूति पर-दुःखानुभाविका बन जाती है, तब उसके नारकीय पीड़ा देने वाले सारे दुःखों का तिरोधान हो जाता है। अपने से निकलकर औरों की ओर बढ़ना ही सुख की सबसे सरल एवं सच्ची साधना है। —महात्मा गाँधी

- दो हाथ और दो पैर होने से मनुष्य नहीं होता। मनुष्य वह होता है जो दूसरों के दुःख से दुःखी तथा सुख से सुखी होता है। घर में जब अभाव होता है तो सब हिस्से अनुसार बाँटकर खाते हैं। सारा संसार एक परिवार है, इसमें सबका हिस्सा है। मैं चाहता हूँ कोई भूखा-नंगा न रहे कोई दुःखी न रहे। वही ईश्वर-भजन है।
- विश्वमैत्री—मैं सब जीवात्माओं को क्षमा करता हूँ—वे भी मुझे क्षमा करें। सब जीवों से मेरी मित्रता है, मेरा किसी से बैर-विरोध नहीं।
- जाति-पाँति इसी रूप में बनी रही जैसी कि आज है तो उससे देश कमजोर ही होता जाएगा। भारत की एकता को नष्ट करने और पतन के गर्त में धकेलने का अधिकांश दोष इसी कुप्रथा का है। हमारा लक्ष्य ऐसे समाज का निर्माण करने का होना चाहिए, जिसमें सबको समान अवसर, न्याय और सम्मान प्राप्त हो सके।
—साजपत राय
- हम मनुष्य हैं और यह बात हमारे हृदय में पूरी तरह जम जानी चाहिए। पर मानवी सद्गुणों से युक्त हुए बिना हम ऐसा कभी नहीं कर सकेंगे। मनुष्य अकेला रहने वाला प्राणी नहीं है, वरन् समूह में और एक-दूसरे के साहचर्य में रहने वाला है। इसलिए केवल व्यक्तिगत हित की कामना दोषास्पद है। हमें निश्चयपूर्वक समझ लेना चाहिए कि अकेले का हित एक स्वार्थपूर्ण क्षुद्र या महान अभिलाषा है। उसे आज नहीं तो कल सामूहिक दृष्टि से हानि होगी। किसी व्यक्ति को प्राप्त धन, विद्या और सत्ता का उपयोग सबके हित में किया जाय, तभी उसका सदुपयोग अथवा धर्मानुकूल उपयोग हुआ ऐसा समझना चाहिए। सब तरफ से और सब दृष्टियों से सामाजिक बने बिना हम मनुष्य कहलाने के अधिकारी नहीं हो सकते।
—केदारनाथ
- सहिष्णुता सद्गुणों की आधारशिला है। —बेकन
- समाज शारीरिक संस्था है। जिस प्रकार शरीर में प्रत्येक अवयव का सम्बन्ध है, उसी प्रकार समाजगत प्रत्येक व्यक्ति समाज-सूत्र द्वारा एक-दूसरे से बँधा हुआ है। —हर्बर्ट स्पेन्सर
- सबसे अधिक सुखी समाज वह है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति परस्पर हार्दिक सम्मान का भाव ग्धते हैं। —गेटे

- कोई इतना अमीर नहीं है कि उसे दूसरे की मदद की जरूरत न हो और कोई इतना गरीब नहीं है कि दूसरों को किसी न किसी तरह की सहायता न दे सके। विश्वासपूर्वक दूसरों से सहायता लेने और अनुकम्पापूर्वक दूसरों को सहायता देने का तो हमारा स्वभाव ही बन जाना चाहिए।
—पोपलियो

- इन लोगों से कहा कि जो किताब (धर्म पुस्तक) हम पर नाजिल हुई और जो किताब तुम पर नाजिल हुई, हम तो सभी को मानते हैं। हमारा खुदा और तुम्हारा खुदा एक ही है।
—सूरे अन्कूवत

- हमने हर एक उम्मत के लिए इवादत के तरीके करार दिये हैं कि वह उन पर चलते हैं।
—सूरे इज्ज

- यदि सब मनुष्य परस्पर प्रेमपूर्वक बर्ताव करें तो निश्चय ही उन्नति को प्राप्त होंगे।

- तमानी प्रथा सह बोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह बो युनधि।

सम्यग्बोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः॥

—अथर्व. ३/३०/१६

तुम्हारी जलशाला एक-सी हो, अन्न विभाजन साथ-साथ हो, एक ही जुए में मैं तुमको जोड़ता हूँ। जैसे पहिये के अरे नाभि में चारों ओर जुड़े होते हैं, वैसे ही तुम सब मिलकर ज्ञान-रूप प्रभु की पूजा करो।

- ईश्वर की आज्ञा है कि सब लोग आपस में दयाभाव रखें। मन से उत्तम विचार किया करें और आपस में प्रेम का बर्ताव करें। एक-दूसरे से कभी द्वेष न करें।

- भद्रं नो अवि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम्॥

—ऋ. १०/१२५/१९

मनुष्यों को उचित है कि वे सबके कल्याण के लिए, सबको बलवान बनाने के लिए और उत्तम पुरुषार्थ प्राप्त करने के लिए अपने मन को उत्साहित करें।

- उत्तिष्ठत सं नह्यर्षं मित्रा देवजना यूयम्॥

—अथर्व. ११/११/१२

सब लोगों को उचित है कि वे परस्पर प्रेम करें और ज्ञानी बनकर अपनी उन्नति के लिए यत्न करें।

- सङ्गच्छन् सं वदन् सं वो मनोसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वं संजानाना उपासते ।।

—ऋ. 90/19-9/12

आपस में मिलो, संवाद करो, जिससे तुम्हारे मन के ज्ञान वाले हों, जैसा कि पहले देवता (सूर्य-चन्द्रादि) एक मन होकर अपने-अपने भाग का सेवन कर रहे हैं, अर्थात् अपना कर्तव्य करते हुए विश्व की स्थिति के कारण बने हुए हैं।

- श्रीरामचन्द्र जी अपनी वनयात्रा में जन-जन की सद्भावना जीतते हुए, उन्हें स्नेहसूत्र में आबद्ध करते हुए चलते हैं, उनमें सहयोग वृत्ति जाग्रत करते चलते हैं। वन में इस उद्देश्य से निकल पड़ते हैं और नगरों में वह प्रवृत्ति जाग्रत रखने के लिए आग्रह करके जाते हैं। भरत के लिए भी उन्होंने यही संदेश छोड़ा कि सामूहिक हित को ध्यान में रखकर चलें। गुरु वशिष्ठ से भी यही आग्रह करते हैं।

सबके साज सभार गुसाईं ।

सरबि जनक जननी की नाईं ।।

वन में, वनवासियों में भी वही भाव भर देते हैं जब कोल-भील मिलते हैं तो वे उन सबको सम्मान देते और सामाजिक गौरव का बोध कराते हैं।

राम सकल बनघर परितोषे ।

कहि मृदु बचन प्रेम परिषोषे ।।

इन प्रेरणाओं-भावों के फलस्वरूप सबके जीवन में सामाजिक, स्नेह-सद्भाव और सहयोगवृत्ति का जागरण होता चलता है।

- उस कष्ट को देखो, जो माँ शिशु के पालने में उठाती है। क्या उसे इसमें आनन्द आता है, निश्चय ही। वह उपवास करती है, प्रार्थना करती है, नजर रखती है। वह उसे सबसे अधिक प्रेम करती है। क्यों ? इसलिए कि इसमें कोई स्वार्थ नहीं है।
- वीर होने का अर्थ है, माँ में विश्वास रखना।
- 'ॐ' जीवन हैं, मैं मृत्यु हूँ। यह माँ जिसकी छाया जीवन और मृत्यु है। सब सुखों का सुख वही है। सब दुखों में दुख है। यदि जीवन आता है तो वह माँ है, यदि मृत्यु आती है, तो वह माँ है। यदि स्वर्ग आता है, तो वह वही है। यदि नरक आता है, तो वह माँ है,

गोता लगाओ। हममें विश्वास नहीं है, हममें यह देखने का धैर्य नहीं है। हम ऐसे-जैसे पर विश्वास कर लेते हैं पर विश्व में एक ही है, जिस पर हम कभी विश्वास नहीं करते और वह ईश्वर। जब वह हमारे मन की करता है, तो हम भरोसा करते हैं। पर समय आयेगा, जब चोट पर चोट खाकर यह स्वयं पर्याप्त मन मर जाएगा। हम जो कुछ करते हैं उसमें अहम् का सर्प फन उठाए रखता है। हम प्रसन्न हैं कि मार्ग में इतने अधिक काँटे हैं। वे सर्प के फन में आघात करते हैं।

सबके अन्त में आयेगा : आत्म-समर्पण। तब हम अपने को माँ के प्रति अर्पित कर सकेंगे। यदि दुःख आता है, स्वागत है, यदि सुख आता है, स्वागत है जब हम प्रेम की इस सीमा तक पहुँच जाएँगे, तो सारी टेढ़ी वस्तुएँ सीधी हो जाएँगी। ब्राह्मण, चाण्डाल और कुत्ते के लिए एक ही दृष्टि होती होगी। जब तक हम विश्व को एक दृष्टि से निष्पक्ष, अमर प्रेम नहीं करते, हम बार-बार चूकते रहते हैं। पर तब सब अन्तर्हित हो चुकेगा और हमें उसमें उसी अनन्त-अनादि माँ के दर्शन होंगे।

—स्वामी विवेकानन्द

- यदि किसी को अधिक भौतिक अधिकार प्राप्त हुए हैं तो उसका यह अर्थ कदापि नहीं होता कि दूसरों का उत्पीड़न किया जाय। आपका स्वास्थ्य उत्तम है तो दुर्बलों के सताइये नहीं। अपनी योग्यताओं का लाभ प्राप्त करिये, पर दूसरों के अधिकार तो न छीनिए। संसार में सभी प्राणी स्वतन्त्र और स्वाभाविक जीवन व्यतीत करने के लिए आये हैं, अपने स्वार्थ के लिये दूसरों को कष्ट पहुँचाना अन्याय है। सभी आपकी तरह सुख और सुविधाएँ प्राप्त करने के अधिकारी हैं, आपकी तरह वे भी अपने प्रयत्नों में लगे हैं, यदि किसी तरह उनकी सहायता नहीं कर सकते तो इतना कीजिए कि आपकी तरफ से उनके प्रयत्नों में किसी तरह की रुकावट न पैदा की जाय।

- धरती माता के सारे अनुदान मिल-बाँटकर उपयोग करने के लिए हैं। अधिक पुरुषार्थ करके आप अधिक सुख प्राप्त कर रहे हैं इसके लिये आप बधाई के पात्र हैं किन्तु अपने

स्वार्थ के लिए दूसरों के सुख छीनकर उनकी बेचैनी बढ़ाने का आपको कोई अधिकार नहीं।

—लोकमान्य तिलक

- प्रकृति का सिद्धान्त यह है कि जितना दूसरों से लो, उतना ही दूसरों को दो भी। विश्व-व्यवस्था का यही मूलाधार है। —शायरन
- जो कोई अपने भाई पर क्रोध करे, वह कचहरी में दण्ड के योग्य होगा, वह सभा में दण्ड के योग्य होगा। जो कोई कहे—अरे मूर्ख ! वह नरक की आग के दण्ड के योग्य होगा। यदि तू अपनी भेंट वेदी पर लाए और वहाँ स्मरण करे कि मेरे भाई के मन में मेरी ओर कुछ विरोध है, तो अपनी भेंट वेदी के सामने छोड़कर चला आ। पहले अपने भाई से मेल कर, तब आकर अपनी भेंट चढ़ा। —मत्ती ५
- जहाँ जाने पर भलीभाँति स्वागत-सत्कार न हो, कोई मधुर वचन न बोले, सुख-दुःख की बात न पूछे उस स्थान पर भूलकर भी नहीं जाना चाहिए।
- सबकी आकृति एक जैसी नहीं होती और न प्रकृति। फिर भी यह सम्भव है कि भिन्नताओं के रहते सहिष्णुतापूर्वक रहा जा सके।
- इस संसार में कोई भी व्यक्ति न तो पूर्णतः दोषी ही है और न निर्दोष ही। सभी में गुण-दोषों के अंश मौजूद हैं, इसलिए पारस्परिक सहनशीलता और उदारता से काम चलाना चाहिए।
- मनुष्य को सहिष्णुता सीखनी चाहिए। वही आदमी जीतता है, जो दूसरों की सुनकर जब्त करना जानता है।
- याद रखो कि सम्पूर्ण जगत् एक शरीर है, तुम्हारा शरीर हाथ की तरह एक अवयव है, केवल उँगली या नख के तुल्य है। यदि तुम सफल होना चाहते हो तो तुम्हें अपनी आत्मा को अखिल विश्व की आत्मा से भिन्न और पृथक् न समझना चाहिए। हाथ के फलने-फूलने के लिए यह आवश्यक है कि वह समग्र शरीर के हित्तों से अपने हित्तों की अभेदना का अनुभव करे। दूसरे शब्दों में हाथ को यह समझना और अनुभव करना होगा कि उसकी आत्मा केवल कलाई तक ही सीमा में स्थिर नहीं है बल्कि उसे व्यावहारिक रूप से समग्र

शरीर की आत्मा से अपने को एक और अभिन्न समझना पड़ेगा। समग्र शरीर के आत्मा को खिलाना हाथ के आत्मा को खिलाना है। जब तक तुम इस तथ्य का अनुभव और इस सत्य का आचरण न करोगे कि तुम और विश्व एक हो, कि मैं और ईश्वर एक हूँ, तब तक तुम्हें सफलता नहीं मिल सकती है। वियोग और वेदना के कीचड़ में जब तुम फँसते हो जब तुम सुख-विहीन और पीड़ा में लीन रहते हो। तुम अपने आपको समग्र और सब अनुभव करते हो तो वास्तव में पूर्ण और सर्व हो जाते हो।

- समष्टि से प्रेम किये बिना हम व्यष्टि से कैसे प्रेम कर सकते हैं ? सारे विश्व का यदि एक अखंड रूप से चिन्तन किया जाय, तो वही ईश्वर है और उसे पृथक्-पृथक् रूप से देखने पर ही यह दृश्यमान संसार है—व्यष्टि है। विराट् ब्रह्म, अखंड-चिन्तन वह इकाई है, जिसमें लाखों छोटी-छोटी इकाइयों का योग है। उसी के ध्यान से ही सारे विश्व को प्रेम करना सम्भव है।
- सभी दंड से डरते हैं। सभी को मृत्यु से डर लगता है और सभी को जीवन प्रिय है, इसलिये सभी को अपना जैसा समझो, न किसी को मारो, न किसी को मरवाओ।
- अमृत जीवन की अगर अभिलाषा है तो आत्मा की व्यापकता का अनुभव करो, सबकी सेवा करो, सबसे एकरूप हो जाओ।
- अपनी सम्पत्ति का ब्यौरा तैयार मत करो और न उस पर इतराओ। अपने को ही संसार की सम्पत्ति समझो, क्योंकि अन्य के सहयोग से ही तुम्हारा व्यक्तित्व बना और वैभव बढ़ा है।
- कृत्यानि पूर्वं परिख्याय सर्वाभ्यायव्यये चानुरूपं च वृत्तिम् ।

सद्गृहणीवावनुरूपान्सहयानु,

सहयताभ्यानि

हि दुष्कराणि ।।

प्रथम सब कामों की संख्या करके आय और व्यय एवं अच्छी जीविका को देखकर तत्पश्चात् अनुकूल (अपने हितैषी) सहायकों को इकट्ठा करें, क्योंकि सहायक से कठिन कार्य भी सिद्ध हो जाते हैं।

- जो उपलब्धियों पर प्रसन्न होना और सहयोग के लिए कृतज्ञता प्रकट करना नहीं जानता, उसे इस संसार में अभाव और दोष ही दीखेंगे।
- सृष्टि का व्यवस्थाक्रम आदान-प्रदान के सिद्धान्त पर चल रहा है। जो बिना दिये पाने की इच्छा सँजोते हैं, वे आसमान में महल बनाने वाले अबोध बालक की तरह हैं।
- दूसरे मनुष्य की सम्मतियों का सम्मान कीजिए। कभी किसी से मत कहिए कि वह गलती पर है। दूसरों के विचारों का प्रत्यक्ष प्रतिवाद और अपने विचारों का सुनिश्चित समर्थन न करें।
- कोई भी व्यक्ति पसन्द नहीं करता कि उस पर कोई दूसरा हुक्म चलाए। इसलिए दूसरों को खिजाए बिना बदलने का सीधा तरीका यह है कि उन्हें आदेश नहीं, परामर्श दिया जाए।
- दूसरे मनुष्य को जी भरकर बातें कर लेने दो। वह अपनी समस्याओं के विषय में जितना जानता है उतना और कोई नहीं जानता। इसलिए उससे प्रश्न पूछिए, दूसरे मनुष्य को अधिक बातें करने दीजिए।
- थोड़ी से थोड़ी उन्नति की और प्रत्येक सफलता की प्रशंसा की जाए। हृदय से प्रसन्नता प्रकट कीजिए और मुक्तकंठ से प्रशंसा कीजिए।
- लोगों की भूलों और गलतियों की ओर उनका ध्यान परोक्ष रूप में दिलाइए।
- अपनी योग्यता को प्रमाणित करने, बढ़ जाने, जीत जाने के अवसर से प्रत्येक सफल मनुष्य प्रेम करता है। इसलिए दूसरों को अपने विचार बनाने के लिए उनमें प्रतिस्पर्धा का भाव जगाइए।
- वार्तालाप आरम्भ करते समय मतभेद वाले विषय शुरू करने की अपेक्षा सहमति वाले विषयों पर चर्चा करना अधिक उपयुक्त है। बात-चीत इस ढंग से करनी चाहिए कि दूसरा व्यक्ति तुरन्त ही हँस कहने लगे।
- दूसरों को बदलने के लिए भी प्रोत्साहन का उपयोग कीजिए। जिस दोष को आप ठीक करना चाहते हैं, उसे आसानी से दूर हो जाने वाला प्रकट कीजिए। जो काम आप दूसरे व्यक्ति से करना चाहते हैं, उसे आसानी से हो सकने वाला दिखलाइए।
- परमात्मा का सच्चा भक्त वह है, जो उसकी बनाई हुई सृष्टि को ईश्वरीय भाव से देखता हुआ उसकी उपासना करता है।
- प्रकृति कहती है कि अपने से प्रेम करो। गृह-शिक्षा कहती है कि अपने कुटुम्ब से प्रेम करो। समाज कहता है कि अपने देश से प्रेम करो। पर सच्चा धर्म कहता है कि सब मनुष्यों को बिना किसी भेद-भाव के प्रेम करो।
- सांसारिक दुःखों के अभावों से ग्रस्त देवता और राक्षस ब्रह्माजी के पास गये और दुःख-निवारण का उपाय पूछा। ब्रह्माजी बोले—परस्पर संघर्ष ही तुम्हारे दुःख का कारण है, मिल-जुल कर प्रयत्न करो तो सुख-शान्ति से भर जाओगे। देव-दनुजों ने मिलकर समुद्र-मन्थन किया और १४ रत्न ढूँढ़ निकाले।
- सुखी जीवन के लिए सहयोग जरूरी है और सहयोग के लिए यह आवश्यक है कि दूसरों की भावनाओं को समझें।
- तिनका-तिनका मिलने से रस्सा बनता है। समुद्र की संरचना बूँदों के समन्वय से हुई है। शरीर जीवाणुओं का और ब्रह्माण्ड परमाणुओं का समुच्चय भर है। चेतन जगत् की जैसी भी कुछ स्थिति है, उसके निर्माण में व्यक्तियों का स्वरूप ही निमित्त कारण है।
- मजबूत रस्सा बँटना हो तो अच्छे तिनके ढूँढ़ने पड़ेंगे। सुन्दर कपड़ा बुनना हो तो अच्छे धागे वाली कपास चाहिए। समर्थ सेना तभी बनती है, जब उसका गठन पराक्रमी योद्धाओं से किया जाय। विद्यालयों की ख्याति में अध्यापकों से भी अधिक मेधावी एवं अनुशासनप्रिय छात्रों की आवश्यकता होती है। परिस्थितियाँ सुधारने में नेतृत्व का कौशल ही काम करता है, किन्तु सफलता की सम्भावना अन्ततः उस समुदाय पर ही निर्भर रहती है, जिसे मिल-जुलकर काम करना और आगे बढ़ना है।
- हाथ, पाँव, नाक, मुख, आँखें, सब अपने-अपने महत्त्व के लिये झगड़ने लगे। यह देखकर मनुष्य को बड़ा गुस्सा आया। उसने खाना बन्द कर दिया। अब सबका एक ही ध्यान था,

कहीं से खाना मिले तो जिन्दा रहें। मनुष्य बोला—अब समझ गये, तुम्हारा सबका महत्त्व तो मिलकर रहने में ही है।

- कहीं कोई खाद्य वस्तु देखकर कौआ कौओं को बुलाने लगता है, किन्तु कोई भिक्षुक कहीं कुछ मिलता देखकर दूसरे भिक्षुओं को नहीं बुलाता। इससे सिद्ध होता है कि कौआ और भिक्षुक में कौआ ही श्रेष्ठ है, भिक्षुक नहीं।
- जो धर्म अछूतों के साथ न्याय नहीं करता, सार्वजनिक मामलों में जो उनको बराबरी का स्थान नहीं देता, यदि वही हिन्दू-धर्म है, तो हम उसके हामी नहीं हैं। यदि आप हरिजनों को बराबरी का अधिकार नहीं देते तो स्वराज्य का कोई अर्थ नहीं।
- एकाकी मत रहो, अन्यथा अशक्त रहोगे। मिल-जुल कर रहने वाले तृणों से हाथी को बाँधने वाला रस्सा बनता है।
- जो अपने सुख-दुःख के समान ही दूसरों का सुख-दुःख समझता है, उससे बुरा काम बनना बहुत मुश्किल है।
- हार उनकी है जो अभिमानी हैं, जो मालिक बनना चाहते हैं, जो माफ नहीं करते, जो बदला चाहते हैं और जो दूसरों का बुरा बनते हैं।
- जीत उनकी है जो नम्र हैं, जो झुकते हैं। जीत उनकी है जो सेवक बनते हैं और विरोधी को क्षमा कर देते हैं। जीत उनकी है जो शान्त रहते हैं और दूसरों का भला चाहते हैं।
- मनुष्य गलतियों से भरा हुआ है। सबमें कुछ न कुछ दोष होते हैं। इसलिए दूसरों के दोषों पर ध्यान न देकर उनके गुणों को परखना चाहिए और आपस में मिल-जुलकर एक-दूसरे को सुधारने का उद्योग करते हुए प्रेमपूर्वक आगे बढ़ना चाहिए।
- वह व्यक्ति जो समाज के उपकारों को भुलाकर अपने अस्तित्व एवं व्यक्तित्व को अलग रखते हैं अथवा समाज के साथ असहयोग करते हैं या समाज विरोधी आचरण करते हैं, वे मुख्य रूप से जीवन के नियमों, मूल सिद्धान्तों की ही उपेक्षा करते हैं। इस प्रकृति के कारण मनुष्य

को सम्पूर्ण समाज का विरोध करना पड़ता है और इससे उसके व्यक्तित्व का विकास बन्द हो जाता है। मनुष्य की शक्ति सीमित और अल्प है। समाज के साथ व्यक्तित्व का सामंजस्य एक आवश्यक नियम है। स्वार्थपरता की मनोवृत्ति मनुष्य को आन्तरिक दृष्टि से भी दीन-हीन, एकाकी बना देती है।

- शरीर के सभी अंगों के श्रम, सहयोग परस्पर योगदान में ही मानव जीवन का अस्तित्व निहित है। कदाचित् विभिन्न अंग परस्पर विरोधी, एकांगी, स्वार्थी आचरण करने लगे तो समस्त शरीर का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा। समाज में भी व्यक्तिगत भावशक्ति लालसा को रखकर किये जाने वाले कार्यों के लिए कोई स्थान नहीं है। व्यक्तिगत उत्कृष्टता, शक्ति, समृद्धि, वैभव, ऐश्वर्य की लालसा सारे समाज के लिए हानिकारक और स्वयं में विष बनने का रास्ता है।

असुरता अपने आरम्भिक दौर में सदा जीतती रही है। इसका कारण यह नहीं कि दुष्टता की सामर्थ्य अधिक है। प्रकाश से अधिक समर्थ एवं व्यापक अन्धकार हो ही नहीं सकता। सत्य देवत्व के साथ है। अतः बलिष्ठ एवं विजयी उसी को होना चाहिए। फिर भी आश्चर्य इस बात का है कि देवासुर संग्रामों के प्रथम चरण में देवता ही हारे और भागे हैं।

इस विसंगति के पीछे तथ्य एक ही रहा है कि देवता संगठित नहीं हुए। मिल-जुलकर काम करना नहीं सीखे। व्यक्तिगत विलास में निरत रहे और निजी प्रगति की बात सोचते रहे। इस एकाकी चिन्तन में उन्हें स्वर्ग, मुक्ति, सिद्धि, पूजा प्रतिष्ठा जैसे लाभ मिले ही मिले हैं, पर वे प्रखरता की दृष्टि से दुर्बल होते गये और असुरता के संगठित आक्रमण-अनाचार का सामना न कर सके। यह है असुरों की आरम्भिक सफलता का पर्यवेक्षण। यदि देवताओं ने आरम्भ में ही असुरों जैसा संगठन और सम्मिलित योजना का महत्त्व समझा—ध्यान रखा होता तो उस दुर्गति का कष्ट एवं अपयश न ओढ़ते, जिसकी चर्चा सुनने भर से आदर्शवादियों के मन छोटे होते हैं।

□ देवासुर संग्राम के उत्तरार्द्ध में देव विजयी तभी हुए हैं, जब वे मिल-जुलकर ब्रह्माजी द्वारा देवताओं की संयुक्त शक्ति सँजोकर ही किया गया था। आज भी देवत्व को यदि जीतना है तो पूर्व इतिहास से शिक्षा ग्रहण करनी और संगठित प्रयासों की गरिमा समझनी चाहिए।

□ पक्षियों को देखिए ! पशुओं को देखिए। वे प्रातः से लेकर सायंकाल तक उतनी खुराक बीनते चलते हैं, जितनी वे पचा सकते हैं। पृथ्वी पर बिखरे चारे-दाने की कमी नहीं, सबेरे से शाम तक घाट नहीं पड़ता। पर लेते उतना है जितना मुँह मँगता और पेट सँभालता है। यही प्रसन्न रहने की नीति है।

जब उन्हें स्नान का मन होता है, तब इच्छित समय तक स्नान करते हैं। उतना ही बड़ा घोंसला बनाते हैं, जिसमें उसका शरीर समा सके। कोई इतना बड़ा नहीं बनाता, जिसमें समूचे समुदाय को बिठाया, सुलाया जाय।

पेड़ पर देखिए। हर पक्षी ने अपना छोटा घोंसला बनाया हुआ है। जानवर अपने रहने लायक छाया का प्रबन्ध करते हैं। वे जानते हैं जिसकी जितनी जरूरत है, आसानी से मिल जाता है। फिर संग्रह की अनावश्यक जिम्मेदारी किसलिए उठाई जाय ? आपस में लड़ने का झंझट क्यों मोल लिया जाय ? हम इतना ही लें, जितनी तात्कालिक आवश्यकता है।

ऐसा करने से हम सुख-शान्तिपूर्वक रहेंगे भी और उन्हें भी रहने देंगे, जो उसके हकदार हैं।

□ इस दुनिया में रात भी होती है व नित्य दिन भी होता है। परिवार में जन्म का क्रम भी चलता है और मरण का भी। कभी किसी का मरण न हो व हमेशा दिन ही बना रहे ऐसी इच्छा किसी की पूर्ण नहीं हो सकती। रात का रात के ढंग से और दिन का दिन के ढंग से प्रयोग करके हम सुखी रह सकते हैं और दोनों स्थितियों के साथ जुड़े हुए लाभों का आनन्द ले सकते हैं। जीवन की अपनी उपयोगिता है और मरण की भी अपनी। दोनों का संतुलन मिलाकर चला जाय तो हर्ष एवं उद्वेग के उन्मत्त-विक्षिप्त बना देने वाले आवेशों से काफी कुछ बचा जा सकता है।

□ हर मनुष्य की आकृति भिन्न है। किसी की शक्ति दुनिया में किसी से नहीं मिलती। जुड़वों में भी थोड़ा-बहुत अंतर होता है। इसी प्रकार प्रकृति में व्यापक स्तर पर भिन्नता संव्याप्त है। हर मनुष्य को अपने ढंग का व्यक्तित्व है। उसमें यत्किंचित परिवर्तन की तो सम्भावना है, पर यह आग्रह कि हम उसे वैसा बना लेंगे जैसा हम चाहते हैं गलत है। इस संसार में ताल-मेल बिठाकर चलना ही व्यावहारिक है। हमारा जीवनक्रम इस कौशल को अपनाकर ही सुख-शान्तिमय हो सकता है।

□ व्यक्ति लगता तो अपने आप में स्वतन्त्र है, पर वस्तुतः वह समष्टि का एक अवयव मात्र है। व्यक्ति के स्तर और कर्म से समूचा समाज प्रभावित होता है। इसी प्रकार समाज का वातावरण हर व्यक्ति को प्रभावित करके रहता है। दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। दोनों का उत्थान और पतन एक-दूसरे के सहयोग पर निर्भर रहता है।

व्यक्ति अपनी सुविधा और प्रगति की बात सोचे, इसमें हर्ज नहीं पर जब वह समाजगत उत्कर्ष एवं सामूहिक नियम-अनुशासन का उल्लंघन करता है तो अपने और समाज के लिए दुहरी विपत्ति खड़ी करने का कारण बनता है।

□ प्रकृति एक नियम है। विपत्ति एक अनुशासन है। इनमें व्यतिक्रम की छूट किसी को भी नहीं है। उच्छृंखलता असह्य है। उद्धत आचरण अपनाने वाले आतंक उत्पन्न करते और अपहरण का प्रयास तो कई करते हैं, पर उसमें सफल नहीं होते। उद्दण्डों की सफलता फुलझड़ी की तरह है, जो तनिक-सा कौतुक, अपना अस्तित्व गँवा बैठने के मूल्य पर ही दिखा पाती है।

□ व्यक्ति का परस्पर सम्बन्ध है—शरीरगत कोश-घटकों की तरह एक की उद्दण्डता सभी को कष्ट देती है, उसके लिए सबका प्रयत्न होना चाहिए कि किसी एक को स्वेच्छाचार न बरतने दें। समूह जब अपने इस उत्तरदायित्व की उपेक्षा करता है और उच्छृंखलों का नियन्त्रण नहीं करता है, तो प्रकृति उस समूचे क्लीव समाज की प्रताड़ना करती है। वैसी जैसी कि इन दिनों विपत्तियों, समस्याओं, विग्रहों एवं

विभीषिकाओं के रूप में सर्वत्र सहन करनी पड़ रही है।

- पराक्रम मात्र की प्रशंसा नहीं हो सकती। पुरुषार्थ ही सब कुछ नहीं है। बुद्धिमानों और प्रतिभा से लोग चमत्कृत तो होते हैं पर इतने भर से ही अभीष्ट प्रयोजन पूरे होते नहीं। इन विशेषताओं के साथ कुछ और भी जुड़ा होना चाहिए, अन्यथा उनका सही उपयोग हो नहीं सकेगा। दुरुपयोग होने पर तो अमृत भी विष के तुल्य हानिकारक सिद्ध होता है।
- आततायी, अपराधी और अत्याचारी प्रायः पराक्रमी और साहसी होते हैं। उन्हें शूर-वीर कहने में भी कोई अत्युक्ति नहीं। बलिष्ठ, स्फूर्तिवान, क्रियाकुशल और सूझ-बूझ की दृष्टि से भी वे किसी से पीछे नहीं होते। इतने पर भी देखा गया है कि ये विशेषताएँ उन्हें आत्म-प्रताड़ना और लोक-भर्त्सना के अतिरिक्त और कुछ देती नहीं।
- पराक्रम एवं वैभव को सब मानते हैं, पर वस्तुतः वह मान्यता है सर्वथा अपूर्ण। प्राण के बिना काया का महत्त्व नहीं। इसी प्रकार विवेकरहित सम्पदा एवं बलिष्ठता-प्रतिभा की विडम्बना मात्र है। उसमें दूसरों की आँखें चौंधियाने और अपनी दुष्टता उभार देने की क्षमता तो है पर ऐसा कुछ नहीं जिसके सहारे श्रेय सध सके और किसी महत्त्वपूर्ण प्रयोजन से सफलता हस्तगत हो सके।
- सम्पदा से बढ़कर सुसंस्कारिता का महत्त्व है। शालीनता, दूरदर्शिता और सहकारिता के गुण ऐसे हैं, जिनका अमल करने पर व्यक्तित्व निखरता है। प्रामाणिकता बढ़ती है और जन-जन का स्नेह-सम्मान मिलता है। यही वह महत्त्वपूर्ण उपार्जन, जिसके आधार पर उपलब्ध साधनों का, अवसरों का सही उपयोग बन पड़ता है और सर्वतोमुखी प्रगति का द्वार खुलता है।
- ससीम को असीम बनाना यही है—आत्मवाद का व्यावहारिक स्वरूप। सीमित को क्षुद्र और असीम को महान कहते हैं। स्वार्थी पर भीतर का असंतोष और बाहर का तिरस्कार छाया रहता है। विकास का तात्पर्य वार्धक्य नहीं,

विस्तार भी है। जो जितना विकसित होगा उसकी आत्मीयता उतनी ही व्यापक होगी। क्षुद्रता की जकड़न अपने शिकार को आत्मकेन्द्रित बनाये रहती है। वह सम्पर्क तो बहुतों से रखता है पर लाभ केवल अपना ही सोचता है। ऐसे घुन और दीमक की तरह है। जहाँ रहते हैं वहाँ खोखला करते हैं। अमरबेल की तरह अपने सम्पर्कक्षेत्र को चूसते रहना ही जिनकी गतिविधियों का केन्द्रबिन्दु है, वे खटमल की तरह मोटे होने पर भी कुढ़ने और कुढ़ाने के अतिरिक्त और कुछ पा नहीं सकते।

- आत्मविकास और आत्मविस्तार एक ही तथ्य के दो पक्ष हैं। स्वार्थ को परमार्थ में विकसित करने—आत्मीयता का दायरा बढ़ाने में ही अध्यात्म के अवलम्बन की सार्थकता है। इसके लिए प्रार्थना उपासना तो आवश्यक है ही पर साथ ही यह भी अनिवार्य है कि मनुष्य का चिन्तन और क्रिया-कलाप स्वार्थपरायण न होकर अपनेपन की परिधि को अधिकाधिक विस्तृत करता चले।

पारिवारिकता इसी उच्चस्तरीय दार्शनिकता का नाम है। घर-परिवार में अपने को उस समुदाय के लिए निछावर कर देने की रीति-नीति सीखनी पड़ती है। यह रीति-नीति जहाँ जितनी व्यवहृत होगी, वे परिवार उतने ही सुखी और समुन्नत रहेंगे। घर में पारिवारिकता की सद्यवृत्ति उगाने, पनपाने का उपयुक्त यही आधार है किन्तु ध्यान रहे उसे उतनी ही परिधि में सीमित-संकुचित किया जाय। विश्व परिवार ही हमारा लक्ष्य होना चाहिए।

- आपको मालूम नहीं यह काल कितना महत्त्वपूर्ण है? हजार-हजार शताब्दियों से ऐसी शताब्दी बहुत अल्प ही आई है। केवल हमारे देश में ही नहीं, पृथ्वीभर में एक उताल तरंग उठ रही है। विश्व-मानव-प्रकृति में एक नई हलचल पैदा हो रही है। पुरातन जीर्ण-संस्कार त्यागने और सब प्रकार के अन्याय को चूर्ण करने के लिए आज सब व्यग्र हो उठे हैं। पर हम आँखों से एक विराट आन्दोलन देख रहे हैं, उसे राजनीति कहते हैं। हम उसे चाहे जितना महान क्यों न समझें, वह बिल्कुल बाहरी चीज है। उससे

हमारी आत्मा जाग्रत नहीं हो सकती। उसके लिए एकमात्र उपाय 'धर्म' ही है। यद्यपि आज राजनीति (पौलिटिक्स) की हलचल ही हमको अधिक आकर्षित करती है, पर भीतरी स्रोत धर्म ही है। वर्तमान काल में एक सुविधा यह है कि विश्व में जो चांचल्य (जागरण) फैल रहा है, उसका अनुभव एक ही समय में सब देशों के निवासी कर रहे हैं। पहले एक स्थान में जो तरंग उठती थी, अन्य स्थान के लोगों को उसकी खबर नहीं मिलती थी। एक देश की खबर दूसरे देश तक पहुँचने का कोई उपाय न था। पर आज की बात दूसरी है।

किसी देश के किसी स्थान पर आघात होकर जो तरंग उठती है, वह समस्त पृथ्वी पर तीर की तरह चल पड़ती है। आज हम सब एक होकर खड़े हैं। कितनी ही दिशाओं में हमें बल प्राप्त होता है, जिससे हम उस महानिर्यातन (कष्टों की कसीटी) को अनायास सह लेते हैं, जो सत्य को प्राप्त करने की एक आवश्यक शर्त है। इसलिये हमको संकीर्णता त्यागकर संसार के साथ समन्वयकारी प्रवृत्ति को ही अपनाना है।

—रवीन्द्रनाथ टैगोर



स्वस्थ जीवन

- शारीरिक स्वच्छता का सम्मान सदा ईश्वर, समाज और अपने प्रति उचित सम्मानदायी होता है। —**बेकन**
- शरीर में आत्मा रहती है, इसलिये वह तीर्थ है। तीर्थ के प्रति जैसी श्रद्धा रहती है, शरीर के प्रति वैसे ही पवित्र भाव रहें तो ही मनुष्य जीवन सार्थक होता है। —**महात्मा गाँधी**
- धरती में मनुष्य की अनियमित बाढ़ आ जाती है, तो प्रकृति ही महामारी, अतिवृष्टि—भूकम्प जैसे प्रकोप से उसे समतल करती है। —**प्लाटो**
- प्रकृति बहुत महीन पर्दा है, सर्वव्यापी ईश्वर का प्रताप सब तरफ से फूट पड़ता है। —**एपर्जन**
- आकाश के नक्षत्रों से लेकर अणु-परमाणु के कार्यकलाप और संसार की प्रत्येक घटना के पीछे एक अमर चेतनसत्ता का नियत विधान काम करता है। जिस तरह किसी के पथप्रष्ट हो जाने पर सृष्टि में खलबली मच जाती है उसी तरह विश्व नियम-नियति के विधान और सामाजिक मर्यादाओं को तोड़ने पर उनके विरुद्ध चलने पर मनुष्य के आन्तरिक जीवन में भी भयंकर संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। उसका परिणाम बाह्यजीवन में भी विनाश और हानि के रूप में ही प्राप्त होता है। —**कण्ट**
- प्रकृति भी ईश्वर के समान ही समर्थ है। अपनी उन्नति और विकास में वह रुकना नहीं जानती हों, जो स्वयं रुक रहा हो उसके लिये वह अभिशाप अवश्य बन जाती है।
- एकाकी दृष्टि रखने से हमें कोई वस्तु बहुत उपयोगी लगती है और कोई बहुत हानिकारक। पर उभयपक्षीय पर्यवेक्षण करने पर प्रतीत होता है कि इस संसार में कोई भी वस्तु न तो पूर्णतया बुरी है न भली। हर बुराई के साथ कुछ अच्छाई है और हर अच्छाई के साथ कुछ बुराई भी जुड़ी होती है। मक्खी को ही लें वह मोटी दृष्टि से धिनीनी और हानिकारक लगती है। संसार में उसकी अपनी उपयोगिता है, उसे भी भगवान् ने निरर्थक नहीं कुछ महत्त्वपूर्ण काम सौंपकर ही संसार में भेजा है।
- प्रकृति परमात्मा की इच्छा-शक्ति का अभिव्यक्त रूप है। मनुष्य के तमाम पाप और उसकी तमाम भूलों का सुधार प्रकृति एक माता की तरह रमण करती है इसलिये वह उपास्य है उपभोग्य नहीं।
- भारत सरकार के गृह एवं निर्माण मंत्रालय के सुप्रसिद्ध उद्यान विशेषज्ञ श्री वी. पी. अग्निहोत्री ने अपनी शोध में यह तथ्य प्रकट किया है- फिर पौधे भी प्यार और द्वेष का अन्तर समझते हैं और प्यार करने वाले के प्रति आकर्षित होते हैं। छोटे बच्चों के साथ उन्हें बहुत लाभ होता है, उनके हाथ सींचे-सँजोये जाने पर वे सहज ही प्रफुल्लता-प्रसन्नता प्रकट करते हैं। महिलाओं द्वारा उगाये और सँभाले जाने वाले पौधे भी नीरस प्रकृति के लोगों की तुलना में अधिक बढ़ते, खिलते देखे गये हैं।
- प्यार का रसास्वादन करना पौधे भी जानते हैं, एक मनुष्य ही है, जो प्रेमजाल में फँसाकर दूसरों का रक्त प्राप्त करने में मकड़ी का अनुसरण करता है।
- वृक्ष, धूप-शीत सहते रहते हैं पर दूसरों को छाया, लकड़ी और फल-फूल बिना किसी प्रतिफल की आशा के मनुष्यों से लेकर पशु-पक्षियों तक को बाँटते रहते हैं। क्या तुम इतना भी नहीं कर सकते ?
- जवानी फूल और बुढ़ापा फल है। दोनों की अपनी-अपनी विशेषता है और अपना-अपना आनन्द। एक को रंग की पिचकारी कहा जाय तो दूसरे को रस का कलश कहना चाहिए। फूल की यह चाहना गलत है कि वह फल न बने, जिस स्थिति में आज है सदा उसी में बना रहे। इसी प्रकार फल की आकांक्षा बेकार है कि उसे संदा फूल ही बना रहना चाहिए था। प्रकृति की हर हलचल में उसकी अपनी विशेषता भरी हुई है।
- पिबन्ति नद्यः स्वयमेवेनाम्भः, स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
- नादन्ति सस्यं खड्ग वारिवाह्यः, परोपकाराय सतां विभूतयः॥
- नदियों को किसी ने अपना जल स्वयं पीते नहीं देखा, वृक्ष कभी अपने फल आप नहीं खाते, वारिद अपनी ही वर्षा से उगाया अन्न

नहीं ग्रहण करते। उसी प्रकार सन्त-सज्जनों की विभूतियाँ परोपकार में ही प्रयुक्त होती हैं। स्वार्थ में नहीं।

- जब पानी का दबाव अधिक होता है तो झरने व नदियाँ तीव्र गति से बढ़ते हैं। उनकी लहरें उछलतीं, हिलोरे लेतीं, कलकल निनाद करती चलती हैं। पानी का दबाव न हो तो न केवल जलधारा मन्द होती है, वरन् निर्जीव दिखाई देती है। यही अंतर है आदर्शवादी महामानवों व सामान्य व्यक्तियों में इसका क्रम उत्पन्न होना चाहिए। अच्छा मनुष्य उस मधुमक्खी के समान है, जो झाड़ियों में से भी मीठा शहद निकाल लेती है। बुरा मनुष्य मकड़ी के समान है, जो सुगंधित फूलों में से भी विष इकट्ठा करती है।
- जिस प्रकार फूल सबेरे के प्रकाश को लेने के लिए अपनी पंखुड़ियों को खोल देता है, उसी प्रकार तुम भी अपनी आत्माओं को उदारता के साथ ईश्वर के दीप्यमान प्रकाश को भीतर आने के लिए खुला रखो।
- हृदय गूँगा हो सकता है पर आकाश के बहरी होने की कल्पना नहीं की जा सकती है।
- शरीर के रोगों को दूर करने के लिए आनन्दप्रद और सुखमय विचार से अधिक लाभकारी औषधि कोई नहीं है। शोक और क्लेश को हटाने के लिए अच्छे विचारों से अधिक प्रभावशाली कोई उपाय नहीं है।
- बीमारियाँ सूर्य के प्रकाश में मरती हैं। अपनी मौत से डरकर वे अन्धे में छिपी बैठी रहती हैं।
- अब से १५० वर्ष पूर्व आस्ट्रिया का एक पशु चिकित्सक डॉक्टर जे. स्क्राय मात्र उपचारक ही नहीं दार्शनिक भी था। पालतू पशुओं की रुग्णता और वन्यपशुओं की स्वस्थता की तुलना करते हुए वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि आहार-विहार में अप्राकृतिकता का समावेश ही इसका प्रधान कारण है। उसने मांसाहार का घोर विरोध किया है और कहा कि मनुष्यों की बीमारियों का बहुत बड़ा कारण यह है। उसने प्राकृतिक रहन-सहन द्वारा रोगों से छुटकारा पाने पर कई पुस्तकें भी लिखीं।

आरम्भ में स्क्राय का सब ओर से उपहास हुआ, पर जब उसने असाध्य रोगियों को इन्हीं अनुबन्धों का पालन कराकर उन्हें अच्छा किया तो लोग आश्चर्यचकित रह गये। उसने असाध्य रोगी ठहराये गये ड्यूक को अपनी विधि से अच्छा किया, तब लोगों ने समझा कि प्राकृतिक आहार-विहार का आरोग्य से कितना बड़ा सम्बन्ध है ?

- जो स्त्री-पुरुष अपनी शारीरिक संस्कार की उपेक्षा करते हैं, शारीरिक उन्नति की तरफ से बेपरवाह रहते हैं, वे कभी महत्त्व को नहीं प्राप्त कर सकते।
- यह शरीर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का मुख्य साधन है। इसके आरोग्य युक्त होने पर उक्त सब कार्यों की सिद्धि हो सकती है।
- कठिन परिश्रम तथा दैहिक स्वास्थ्य मानसिक शान्ति के लिए अत्यावश्यक है।
- आयुर्वेद का एक सूत्र है—“तन्मना भुंजीत” अर्थात् भोजन करते समय चित्त की एकाग्रता का ध्यान रखना चाहिए। यह स्वास्थ्य की दृष्टि से कही गई बात है, किन्तु जीवन में सफलता की दृष्टि से भी यह कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। एकाग्रता से ही कार्य की संसिद्धि असंदिग्ध बनती है—यह सौ टंच खरा है।
- एक चिकित्सक कम्प्यूशियस के पास पहुँचा और बोला—“भुझे अनेक रोगों ने घेर रखा है। अपना और दूसरों का इलाज करते-करते थक गया। कोई ऐसा उपाय बताएँ जिससे नीरोग हो सकूँ।” कम्प्यूशियस ने कहा—“रोगों की जड़ मन में है। अपने चिन्तन में शालीनता और व्यवहार में उदारता बढ़ाओ। जड़ कटने पर शरीर में बीमारियों के पौधे सहज ही सूख जाएँगे।”
- पूर्णिमा का चाँद अपनी समग्रता को बखानने और इतराने लगा। दूसरे दिन से ही उसका घटना शुरू हो गया। अमावस्या तक पहुँचते-पहुँचते उसका नामोनिशान मिट गया। शुक्ल पक्ष की द्वितीया का चाँद निकला तो उसने अपनी तुच्छता को समझा और विकास के लिए प्रयत्नशील रहने लगा, उसकी कलाएँ एक-एक करके बढ़ने लगीं।



भोग-विलास

- इन्द्रियजन्य वासनाएँ उपभोग से शान्त नहीं होती, बढ़ती हैं जैसे आग में घृत की आहुति।
—**यैवव्यास**
- यदि कोई इस लोक को उसकी तमाम विभूतियों के साथ एक ही व्यक्ति को उसके उपभोग के लिये दे, तो भी उसकी तृप्ति नहीं होगी, क्योंकि यह आत्मा (बहिरात्मा-कर्मपाश में जकड़ा हुआ जीवन) दुष्पूर्य (बड़ी कठिनता से सन्तुष्ट होने वाला) है।
—**भगवान महावीर**
- विषयों में आसक्त मन बन्धन का हेतु है और विषयों से रहित मुक्ति का। मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण मन ही है।—**श्री वायसव**
- परद्रव्य और परनारी की अभिलाषा जहाँ हुई वहीं से भाग्य का हास आरम्भ हुआ। बड़े-बड़े इनके चक्कर में मटियामेट हो गये। इसलिये इन दोनों को छोड़ दे, इसी से अन्त में सुख पावेगा।
—**सन्त तुकाराम**
- मोहवश प्रियजनों से भी अत्यधिक प्रेम करने से यश चला जाता है।
—**यत्कीकि**
- अपनी सब प्रकार की दुर्बलता का परित्याग कर आत्म-रक्षा के लिए खड़े हो। तुम्हारी कोई भी दुर्बलता पराजय का कारण बन सकती है। पाप से बचो वह कभी भी नष्ट करने के लिये उद्यत हो सकता है। वासना की भूमि पर कभी भी स्वतन्त्रता का बीज उदित नहीं होता है। आत्म-निर्माण के द्वारा उसकी रक्षा होती है। इसलिए तुम अपने गुणों के विकास पर ध्यान दो। साहसी बनो। पराक्रम और पुरुषार्थ धारण करो। प्रेम, विश्वास और एकता पैदा करो। तुम्हें विजय की तलाश न करनी पड़ेगी। तुम्हारे चरित्र की दृढ़ता से दुश्मनों को हरा सकती है। तुम्हारी स्वाधीनता को स्थिर रख सकती है।
—**सन्त वास्वानी**
- कुबुद्धि पुरुषों के लिए जिसका त्यागना अति कठिन है, जो मनुष्य के जराजर्जरित होने पर भी जीर्ण नहीं होती तथा जो नष्ट कर देने वाला महा-रोग है, उस तृष्णा का त्याग कर देने वाले पुरुष को ही सुख प्राप्त होता है। पृथ्वी में जितने भी धन-धान्य, सुवर्ण और
- स्त्रियों हैं, वे एक मनुष्य के लिये भी पर्याप्त नहीं हैं। इसलिये तृष्णा का त्याग करना चाहिए।
- जैसे सुदृढ़ मूल के बिल्कुल नष्ट हुए बिना कटा हुआ वृक्ष फिर भी उग आता है, वैसे ही तृष्णा एवं मल (अनुशम) के समूल नष्ट हुए बिना यह दुःख भी बार-बार उत्पन्न होता रहता है।
—**विमुक्तिमग्न**
- अस्मिन्महामोहमयेकटाहेसूर्याग्निनारात्रिदिवेन्धनेन ।
अस्तुर्वर्षपरिषदनेनभूतानिकास्तःपचतीति वार्ता ।।
—**महाभारत वनपर्व**
- युधिष्ठिर ने कहा—हे यक्ष, इस संसार में मोह का कड़ाह है। इसी में पड़े सब प्राणी उबल रहे हैं। रात और दिन रूपी ईंधन जल रहा है। ऋतुओं की करछी से काल उन्हें घोट रहा है। प्राणी उसी में पक रहे हैं। इसके अतिरिक्त इस संसार में और क्या समाचार है ?
- दुर्भावना अपने विष का आधा भाग स्वयं पीती है।
—**सैनेन्द्र**
- श्रद्धा जब सीमा पार कर जाती है, तब वह बाह्य आडम्बर का रूप धारण कर लेती है। सतर्कता जब सीमा का अतिक्रमण कर जाती है, तब वह भी भीरुता बन जाती है। शक्ति जब सीमा को पार कर जाती है औद्धत्य बन जाती है और निश्चलता जब सीमा से बढ़ जाती है तब वह रूढ़ता का नामांतर बन जाती है। इस प्रकार किसी भी विषय में जब मनुष्य मात्रा या संतुलन का ज्ञान खो बैठता है, तब उसका जीवन सामंजस्यहीन बन जाता है। इसलिए सब प्रकार की अतिशयता का वर्जन करके मनुष्य को मध्यम मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।
—**कनक्युक्तिवत्स**
- काम को निकृष्ट प्रबन्धक न बनने दिया जाये तो वह शक्ति का स्रोत और आनन्द का झरना है।
—**एकतर्क**
- हे पुत्र । पराई स्त्री के होंठों से मधु टपकता है और उसकी बातें तेल से भी अधिक चिकनी होती हैं। पर इसका परिणाम नागदौन-सा कड़ुआ और तलवार-सा पैना होता है।

- क्या यह हो सकता है, कि कोई अपनी छाती पर आग रखले और उससे कपड़े न जलें। क्या यह हो सकता है कि कोई अँगारे पर चले और उसके पाँव न जलें। जो पराई स्त्री के पास जाता है, उसकी दशा ऐसी ही है। जो कोई उसको छूँगा सो दण्ड से न बचेगा।
- हे पुत्र ! तेरा मन ऐसी (पराई) स्त्री के मार्ग की ओर न फिरे, न उसके मार्ग पर भटके, क्योंकि बहुत लोग उसके मारे पड़े हैं। उसके घात किये हुआ की एक बड़ी संख्या होगी। उसका घर अधोलोक का मार्ग है। वह मृत्यु के घर में पहुँचता है।
- वेश्या गहरा गड्ढा ठहरती और पराई स्त्री का संकेत कुँए के समान है। वह डाकू की नई घात लगाती और बहुत-से मनुष्यों को विश्वासघाती कर देती है।
- तू पराई स्त्रियों देखता रहेगा और उलट-फेर की बातें बकता रहेगा तो तू समुद्र के बीच लेटने या जहाज के मस्तूल के सिर पर सोने के समान रहेगा।
- हे मेरे पुत्र ! अपना बल स्त्रियों को न देना। न अपना जीवन उनके वश में कर देना। जो राजाओं का भी पौरुष खो देती हैं।
- दाद को जितना अधिक खुजाओगे, उतना ही उसमें खुजली अधिक बढ़ेगी। विषयों को जितना अधिक भोगोगे, भोगेच्छा उतनी ही अधिक तीव्र होगी।
- खाज खुजाने के समय तो बड़ा आनन्द आता है। पीछे बड़ा दर्द होता है और घाव पड़ जाते हैं। विषय भोगते तो बड़े अच्छे मालूम होते हैं, पर पीछे से वे नारकीय यातना में जलाते हैं।
- जब समुद्र का पानी हिलता रहता है, तब तक उसमें सूर्य का प्रतिबिम्ब दिखाई नहीं पड़ता। उसी प्रकार जब तक मन में वासनाओं की अस्थिरता है, तब तक उसमें ईश्वर का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ सकता।
- वासनारहित मन सूखी दियासलाई की तरह है जिसे एक बार घिसने पर ही आग पैदा हो जाती है। मनोरथों में डूबा मन गीली दियासलाई की तरह है, जिसे बार-बार घिसने पर भी कुछ काम नहीं चलता है। भजन की सफलता के लिए मन को सांसारिक तृष्णाओं की नमी से बचना चाहिए।
- गीली मिट्टी से ही खिलौने, बर्तन आदि बनते हैं। पकाई हुई मिट्टी से कुछ भी नहीं बनता। लिप्सा की आग में जिसकी भावना रूपी मिट्टी जल गई, उसका न भक्त बनना सम्भव है न धर्मात्मा।
- जिस कुल में सभी मनुष्य विनम्र हों अथवा सभी अभिमानी हों या सब महत्त्व की इच्छा रखते हों, वह कुल नष्ट हो जाता है।
- दरिद्रता को कुछ वस्तुओं की आवश्यकता रहती है, विलासिता को अनेक वस्तुओं की और तृष्णा को समस्त वस्तुओं की।
- तृष्णा सुख का भयंकर शत्रु है।
- वृद्धावस्था में बाल सफेद हो जाते हैं, दाँत टूट जाते हैं, आँख और कान जीर्ण हो जाते हैं, पर एक तृष्णा ऐसी है, जो तरुणी ही बनी रहती है।
- संसार में प्रतिदिन कितने जीव मरते हैं, पर उन सबके लिए तो हम नहीं रोते। रोते तो केवल उसी के लिए हैं, जिसके साथ हमारी कुछ ममता रहती है। ममता मोह के कारण होती है। इसलिए सारे दुःखों की जड़ ममता को ही समझना चाहिए।
- निर्धन वह नहीं जिसके पास उपयोग के साधन कम हैं, वरन् वह है जिसकी तृष्णा अधिक है।
- जो संसार को भव-बन्धन कहते हैं और उसे माया-जाल बताकर खिंचे-खिंचे रहते हैं। वे भगवान की सर्वोपरि कृति की अवमानना करते हैं। त्याज्य तो अपने में समाई दुर्भावना है, छोड़ने और कोसने लायक वही है।
- पाप में किसी को आनन्द नहीं मिला और न दुर्भावनाओं के बीच किसी ने शान्ति प्राप्त की है।
- कभी-कभी मनुष्य की यह मूर्खतापूर्ण इच्छा होती है कि जिनको हम स्नेह की दृष्टि से देखते हैं, उन्हें अन्य लोग भी उसी तरह प्यार करें।

- मानव प्रकृति में गम्भीरतम तत्व आदरणीय होने की लालसा है।
- प्रेम जब स्वार्थ-साधन के खेत में उगता है तो घृणा, ईर्ष्या और पशुता के विषकण उत्पन्न करता है ?
- मन में यदि भोग हैं तो मन्दिर में जाकर भी भोगों को भी पूजेंगे। वहाँ जाकर देखेंगे—भगवान् के क्या गहना है, कैसी पोशाक है ?
- मन चंचल है। हर कदम पर मायावी शक्तियाँ उसे विचलित करती हैं। जो मन को वश में नहीं रख सकता, सफलता उससे दूर ही रहती है।
- तृष्णाओं का वजन उतार फेंकना, देवताओं तक पहुँचने का रास्ता सरल बनाता है।
- **सोक एव विषयानुरञ्जनं ।
दुःख गर्भमपि मय्यस्ते सुखम् ।।
आमिषं बहिष्ण गर्भमप्यहो ।
मोहसौ ग्रसति यद्वदण्डजः ।।**
मछली जैसे मांस के टुकड़े को ही देखती है, उसके नीचे छुपे हुए काँटे पर ध्यान नहीं देती, उसी प्रकार दुनिया के लोग विषयों के बाह्य आकर्षण को ही देखते हैं, विषयों के परिणामस्वरूप अवश्यम्भावी दुःख को नहीं देखते।
- अपनी इन्द्रियाँ ही शत्रु समझी जाती हैं, किन्तु इनको जीत लेने पर मनुष्य की सब इन्द्रियाँ ही मित्र का काम देने लग जाती हैं।
- जिसकी विषयों में अधिक तृष्णा है, उसी को दरिद्र कहना चाहिए।
- जो व्यक्ति विषयों में दिन-रात रत रहता है, उसी को बद्ध कहना चाहिए और जो व्यक्ति विषयों में विरक्त है, वही विमुक्त है।
- विषयी लोग तीन बातों को अपूर्ण छोड़कर मर जाते हैं—प्रथम इन्द्रियभोग से तृप्त न होकर, द्वितीय आशाओं को अपूर्ण रखकर और तृतीय परलोक के लिये कुछ संचय न करके।
- हिरण गाने से, हाथी हस्तिनी से, पतंग दीपक से, भ्रमर गंध से और मछलियाँ जीभ के स्वाद से मोहित होकर अपने प्राण खो देती हैं। फिर जिन्हें पाँच इन्द्रियाँ हैं और जो सभी विषयों की आसक्ति में फँसते हैं, उनको तो मृत्यु क्यों छोड़ेगी ?
- जिसके पास कुछ नहीं वह गरीब नहीं कहा जा सकता। गरीब तो वह है जिसकी अभिलाषा अधिक है।
- निर्दोष सरल यौवन एक अमूल्य सम्पत्ति है। वह भोगलिप्सा में जिसे भूल से सुख कहा जाता है। लुटा देने की वस्तु नहीं है।
- हर भावनाशील व्यक्ति के सम्मुख देवमानव बनने और समाज को समुन्नत बनाने की यशस्वी भूमिका निभाने का अवसर विद्यमान है। स्रष्टा ने हर मनुष्य को ऐसे साधनों से सम्पन्न बनाकर भेजा है कि वह जीवन-लक्ष्य को पूरा करने में सहज ही सफल हो सके तथा स्रष्टृवृत्तियों के सम्बर्द्धक की भूमिका निभाते हुए श्रेयाधिकारी बन सके।

अधिकांश को इस सौभाग्य से वंचित रहना पड़ता है, जो उसे मानव जीवन के साथ ही अजस्र उपहार के रूप में उपलब्ध है। व्यवधान के कारणों पर विचार करने से परिस्थिति की जटिलता नहीं मनस्थिति में भरी हुई कुटिलता ही एक प्रधान अवरोध प्रतीत होती है। उपभोग और संग्रह का अनावश्यक लालच, सम्बन्धियों के प्रति अनुपयुक्त व्यामोह, अहं का उद्धत परिपोषण इन तीनों का समुच्चय ही वह त्रिशूल है, जो जीवन-सम्पदा को अस्त-व्यस्त करता और स्रष्टा के उपहार को दुर्भाग्य में बदलता है।



त्याग और बलिदान

- निद्रा तंद्रा भय क्रोध आलस्य दीर्घसूत्रता ।
षड्वोषा पुण्यनेह इत्येवापूति निष्कृता ॥

—हितापवेष्ट

निद्रा, तंद्रा, भय, क्रोध आलस्य और दीर्घसूत्रता यह छह दोष ऐश्वर्य चाहने वाले को त्याग ही देने चाहिए ।

- त्याग के समान संसार में कोई दूसरी शक्ति नहीं ।
- अत्यन्त सुखी वही है जिसका जीवन स्वायत्त त्याग से पूर्ण है ।
—स्वामी रामतीर्थ

- निर्माण का महल बलिदान की नींव पर खड़ा किया जाता है । हमें भी अपने निर्माण के लिए त्याग करने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं ।
—सौकमन्य तिलक

- जो लोग अपनी जाति के लिए मरना और सर्वस्व अर्पण करना जानते हैं, पृथ्वी पर जीने का अधिकार भी वही पाते हैं ।
—बनधर प्रसाद

- पवित्र और ईमानदार मनुष्य, अपने आप जिसको न्याय मान लिया, उसके लिये हमेशा अपने भोग देने को तैयार रहता है । क्या तुम तैयार हो ? अपना आसम, अपना आनन्द, अपना व्यापार, अपना जीवन तक न्याय प्राप्त करने को दे देने के लिये तुम तैयार हो ? जो ऐसे हो तो तुम सत्याग्रही हो और तुम जीतेगे ही ।

- मेरे पूर्वजों ने अपने पराक्रम और परिश्रम से जिस मातृभूमि का शृंगार किया, वह भूमि आज मेरे पौरुष की अपेक्षा करती है तो क्या मुझे उसके लिए क्षणभर की भी देरी करनी चाहिए ? मेरे पूर्वजों ने जिस भारतभूमि को अपनी बलि की खाद से सदा वीर-प्रसूता बनाये रखा, वह मातृभूमि आज मेरे रक्त का अभिसिंचन चाहती है, तो क्या मुझे उसके लिए क्षण भर की भी देरी करनी चाहिए ? मेरे बाद मेरी जाने वाली पीढ़ियाँ मेरी मातृ भूमि के जिस रूप में दर्शन करना चाहती हैं, जिस श्रद्धा से उसे पूजना चाहती हैं, जिस पौरुष से उसके रक्षार्थ बलिदान होना चाहती हैं, यदि मैं अपनी मातृभूमि का वैसा पूज्य वेष अपनी सर्वोपरि पूजा, सर्वस्व अर्पण और सर्वोच्च बलिदान से

न बनाऊँ तो क्या मैं अकेला ही इतना बड़ा कलंक न बन जाऊँगा कि सारा मानव-समाज ही सदा के लिए उसमें कलंकित और लज्जित न हो जाय ?
—सम्राट विक्रमादित्य

- हा तच्छरीनस्तन्वीना कस्त्यु की सवी सिस्सादे आवास्तन् ।

उन्को—जो ईश्वर के मार्ग पर बलिदान हुए हैं, मृतक मत समझ ।
—सूरसे इम्राण

- धन्य है वे जो धर्म के कारण सताये जाते हैं । स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है ।
—पक्षी १

- जैसे चलनी से बारीक अन्न नीचे गिर जाता है और मोटा ऊपर ही रह जाता है । उसी प्रकार दुर्जन मनुष्य भलाई को छोड़कर बुराई ग्रहण कर लेते हैं ।

- पानी को पुल के नीचे से बहने में कोई बाधा नहीं होती है । उसी तरह त्यागी के हाथ से धन चलता रहता है । उसे इकट्ठा करने की कोई चिन्ता नहीं रहती है ।

- मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ जिसमें विषय-वासना नहीं है, जिसने सच्चाई को जान लिया है, जिसके संशय छिन्न-भिन्न हो गये हैं, जिसने अमृतपद के मार्ग को जानकर उसे ग्रहण कर लिया है ।

- मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ जो क्रोधरहित, कर्तव्यपरायण, शीलवन्त, इच्छारहित, संयमी और मुक्ति के निकट है ।

- मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो कर्कशतारहित, शिक्षा युक्त और सच्ची वाणी बोलता है, जिससे किसी का दिल न दुखे ।

- मैं किसी को उसके कुल अथवा माता के कारण ब्राह्मण नहीं कहता, चाहे उसका लोग सम्मान क्यों न करें ? मैं तो उसको ब्राह्मण कहता हूँ, जो अपरिग्रही और पाप-बन्धनों से रहित है ।

- मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ जो नेता, प्रबल, वीर, महर्षि, विजित काम, पवित्र और बुद्ध है ।

- जटा, गोत्र या जाति से कोई ब्राह्मण नहीं होता। जिसमें सत्य और धर्म है, वही ब्राह्मण है।
- त्याग का अर्थ है—दूसरों की सेवा करना। उनसे प्रेम और सहानुभूति रखना और उन्हें अपनी शक्तियों द्वारा लाभ पहुँचाना, जो त्याग के द्वारा प्राप्त होने वाले आनन्द का रसास्वादन एक बार कर लेता है वह जानता है कि लेने की अपेक्षा देना अधिक आनन्दमय है।
- जितना स्वार्थपरता को छोड़ दोगे और जितना लोभ, क्रोध, दंभ, धमण्ड आदि की कड़ियों को एक-एक करके तोड़ दोगे उतना ही तुम्हें त्याग का आनन्द प्राप्त होगा। उसी समय तुम्हें स्वार्थपरता और कृपणता के दुःखों का पता चलेगा।
- मृत्यु के बाद जीवित होने का मन्त्र सीखना चाहो तो वह मन्त्र त्याग है। बीज के मरने पर ही बाजरा पकता है। मृत्यु के समान कष्ट भोगकर मैं बच्चे को जीवित रखती है।
- जहाँ देह है वहाँ कर्म तो है ही, उससे कोई मुक्त नहीं, पर यदि शरीर को भगवान का मन्दिर समझकर कर्म करें तो मुक्ति सहज हो सकती है।
- इस जगत् में एक ही बन्धन है, वह है कामना। जो मनुष्य कामना के बन्धन से मुक्त हो जाता है, वही मुक्ति-सुख का अधिकारी है। वह धैर्य से जीवन व्यतीत करता है। न वह चाहता है कि लम्बी आयु भोगूँ, न यह चाहता है अभी मृत्यु हो जाय। जैसे कुम्हार के चक्र से बर्तन उतार लेने पर भी चक्रक अवधि न आने तक घूमता रहता है। ठीक वैसे ही कर्मों का नाश हो जाने पर भी जीवनमुक्त पुरुष निष्कर्मी होकर जगत् में विचरता रहता है।
- निर्माण का महल त्याग की नींव पर खड़ा किया जाता है। व्यक्ति हो, राष्ट्र जो भी बड़े बने हैं उन्हें त्याग करना पड़ा है।
- त्याग तो आपको सर्वोत्तम स्थिति में रखता है। यह आपको उत्कर्ष की स्थिति में पहुँचा देता है।
- त्याग निश्चय ही आपको भी बढ़ा देता है, आपकी शक्तियों को कई गुना कर देता है, आपके पराक्रम को दृढ़ कर देता है, वह आपकी चिन्ताओं तथा भय को हर लेता है और इस प्रकार आप निर्भय तथा आनन्दमय हो जाते हैं।
- एक साथ कई पतंगे आगे बढ़कर दीपक का आलिंगन करते और जलकर वही भस्म हो जाते। एक झींगुर यह दृश्य देख रहा था। उसने पतंगों से पूछा—क्यों भाई ! तुम लोग आखिर अपनी जिन्दगी यों ही व्यर्थ में नष्ट कर रहे हो ? पतंगे हैंसे और एक स्वर में बोले—बन्धु बलिदान की यह प्रक्रिया बन्द कर देते तो फिर संसार में प्रकाश की प्रतिष्ठा कौन करता ?
- त्याग में मुक्ति है, स्वाधीनता है और त्याग ही अन्य प्रकार की प्राप्ति का आधार है। नीड़ में आबद्ध पक्षी शावक जब उन्मुक्त हो आकाश और धरती के विशाल प्रांगण में निकल पड़ता है तो सीमित से असीमित, क्षुद्र से महान को प्राप्त करता है, तब वह सर्वत्र ही गति कर सकता है। वह चाहे जितना उन्मुक्त हो सकता है।
- वृद्ध जटायु रावण को परास्त करने में समर्थ न था, तो भी उसने अनीति होते देखकर चुप बैठना उचित न समझा। भिड़ गया। इसमें उसे प्राण त्यागने पड़े, पर हारने पर भी वह विजय से भी श्रेयाधिकारी बन गया।
- चलो-चलो की पुकार तो सभी करते हैं, परन्तु पहुँचता कोई ही है क्योंकि इस मार्ग में 'कनक' और 'कामिनी' दो बड़ी घाटियाँ हैं।
- गेहूँ का दाना जमीन में घुसकर मर नहीं जाता वरन् अपने जैसे असंख्यो दाने पैदा करता है।
- जो लोग कुछ प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें त्याग के इस अटल नियम को भलीभाँति हृदयंगम कर लेना चाहिए कि पहले दो तब मिलेगा।
- जो इच्छारहित है, शक्तिरहित है सतरहित है जिसने गाढ़े अमृत को पी लिया है वह ब्राह्मण है। जो पुण्यपाप से परे है, शोकरहित है, निर्मूल और शुद्ध है, वही ब्राह्मण है।

- त्याग में कितना बल और सुख है और अनुचित संग्रह में कितनी निर्बलता एवं तकलीफ है ? इसका ठीक-ठीक अनुभव भुक्तभोगी ही कर सकता है।
- मारने में वीरता नहीं पशुता है, परन्तु जिसमें स्वयं मरने की शक्ति है, वह वीर है। त्याग का आदर्श महान है, वही संसार में कुछ कर सकता है, जिसमें त्याग की मात्रा अधिक हो।
- स्वार्थपूर्ण सम्बन्धों को त्याग दो, प्रत्येक में और सबमें ईश्वरत्व को देखो। त्याग तो आपको सर्वोत्तम स्थिति में रखता है, आपको उत्कर्ष की स्थिति में पहुँचा देता है। त्याग के अतिरिक्त और कहीं वास्तविक आनन्द नहीं मिल सकता, त्याग के बिना न ईश्वर प्रेरणा हो सकती है, न प्रार्थना। त्याग के भाव को ग्रहण करो और जो कुछ प्राप्त हो, उसे दूसरों पर प्रकाशित करो। स्वार्थपूर्ण शोषण मत करो। ऐसा करने से आप अवश्य ही श्वेत-उज्ज्वल हो जाएँगे। कामन्त्र से रहित कर्म ही सर्वोत्तम त्याग अथवा पूजन है। वेदान्तिक त्याग कैसे हो ? आपको सदा त्याग की चट्टान पर ही खड़ा होना पड़ेगा, अपने आपको इस उत्कर्ष दशा में दृढ़तापूर्वक जमकर, जो काम सामने आये, उसके प्रति अपने आपको पूर्णतः अर्पण करना होगा। तब आप थकेंगे नहीं, फिर कोई भी कर्तव्य हो आप उसे पूरा कर सकेंगे। अहंकारपूर्ण जीवन का छोड़ देना ही त्याग है और वही सौन्दर्य है। यह शरीर मेरा है, मैं यह कह रहा हूँ, मैं कर्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ—इन अधिकार भावों को छोड़ दो। सारे स्वार्थपूर्ण सम्बन्धों को, मेरे और तेरे के भावों को छोड़ दो। यही भाव हममें मिथ्या व्यक्तित्व को उत्पन्न करते हैं। इनसे ऊपर उठो।

—स्वामी रामतीर्थ

- बीज की तीन गतियाँ हैं—या तो वह बीज बनकर गले और अपने को सुविकसित पौधे के रूप में परिणत करके अपने जैसे अनेक बीज पैदा करे और अपना वंश चलाता रहे। दूसरी यह कि पिसकर आटा बन जाय फिर रोटी के रूप में एक प्राणी का पेट भरे और अन्त में दुर्गन्धित विष्ठा बनकर किसी आड़ में उपेक्षित पड़ा रहे। तीसरी यह कि भीरुता और संकीर्णता से ग्रसित आत्म-रक्षा की बात सोचता रहे और कीड़े-मकोड़ों अथवा सड़न-सीलन द्वारा नष्ट कर दिया जाय।

मनुष्य-जीवन की भी यही तीन गतियाँ हैं, परमार्थ-प्रयोजनों में अपने को संलग्न करके यशस्वी-जीवन जिये और संसार की सुख-शान्ति में योगदान करे—यह पहली गति है। दूसरी गति यह कि अपने शरीर और परिवार को ऐश्वर्यवान बनाने पर ध्यान को केन्द्रित रखे, पेट और प्रजनन की समस्याओं में उलझा रहे। उचित-अनुचित का विचार न करके पशु-स्तर की जिन्दगी गुजारे और अन्ततः विष्ठा जैसी हेय और धिनौनी परिणति प्राप्त करे। तीसरी गति अति कृपणता, अति संकीर्णता और अति स्वार्थ बुद्धि की है। उस स्तर के लोग न परमार्थ सोचते हैं, न स्वार्थ।

मनुष्य जीवन की सार्थकता और मानवी-बुद्धि की प्रशंसा इस बात में है कि वह प्रथम गति का वरण करे और श्रेष्ठ सज्जनों के मार्ग का अवलम्बन करे। ईसा ने लोगों से कहा था—“भूखों ! जो बीज तुम बोते हो वह गले बिना नहीं उगता। भौतिक रूप से तुम गलोगे तो आध्यात्मिक रूप से ऊँचे उठोगे।”



प्रेमपयोधि

□ हम अपरिग्रही होते हुए सुख से जीवें। जैसे देवता लोग अपने ही प्रकाश से आनन्दित रहते हैं, उसी प्रकार हम भी प्रीति को ही अपना लक्ष्य समझें।
—सुख बग्यो

□ श्रद्धा का क्षेत्र विस्तृत है, प्रेम का एकान्त। प्रेम में घनत्व अधिक है और श्रद्धा में विस्तार।

□ एक पशु दूसरे को केवल अपने शारीरिक बल से ही वश में कर लेता है। उसी जाति का यही कायदा है। मनुष्य-जाति का स्वाभाविक कायदा प्रेम-बल से, आत्मिक बल से दूसरे को जीतने का है।
—महात्मा गाँधी

□ न हि बैरेन बैरानि सम्पन्तीष कुवाचनं।
अबैरेन च सम्पन्ति एत दम्पो सनन्तनो।

—धम्म पद्य 9/15

बैर से बैर कदापि शान्त नहीं होता, अबैर अर्थात् प्रेम और क्षमा से ही शान्त होता है। यही सनातन परम्परा है।

□ सब जीवों में आत्म-भावना रखने के कारण यदि समस्त गुणों के आधार अद्वितीय परमात्मा मुझ पर प्रसन्न हों तो (मुझे मारने की चेष्टा करने वाले) ये ब्राह्मण (दुर्वासा जी) सन्ताप से छूट जाएँ।
—भक्त अम्बरीष

□ आदमी दो तरह से अपने दुश्मन को कैद करते हैं—एक सख्ती से और दूसरे प्रेम से।
—महात्मा गाँधी

□ आग बुझाने के लिए पानी डालना पड़ता है। अन्धकार होते ही दिया जलाना पड़ता है। ये बातें किसे नहीं मालूम हैं ? और यदि ये बातें समझ में आती हैं तो सन्तों को यह बात क्यों बही समझना चाहिए कि क्रोध को प्रेम से, बुराई को भलाई से, कृपणता को उदारता से और असत्य को सत्य से जीतना चाहिए। ये बातें भी व्यवहार की हैं।
—विनोबा

□ प्रेमी हृदय उदार होता है, वह दया और क्षमा का सागर है, ईर्ष्या और दम्भ के नाले उसमें मिलकर उसे विषाक्त बना देते हैं।
—प्रेमधन्व

□ विश्वास के बदले विश्वास या प्रेम के जवाब में प्रेम, विश्वास या प्रेम कहलाने लायक नहीं।

सच्चा प्रेम वह है, जो दुश्मन के सामने भी टिके।

□ प्रेम की सच्ची परीक्षा तो यह है कि हम मर कर भी दूसरों के अप्रेम का उत्तर न दें।

□ सबल की सफलता विरोधी को प्रेम से जीत लेने में है, मद से कुचल डालने में नहीं।
—महात्मा गाँधी

□ जिस दिन किसी वस्तु पर अथवा किसी प्राणी पर आपका प्रेम होगा फिर चाहे वह स्त्री हो, पुत्र हो अथवा दूसरा कोई हो, उस दिन आपको विश्वव्यापी प्रेम का रहस्य मालूम हो जावेगा। इन्द्रिय-सुख के लिए प्रेम करने वाले मनुष्य का लक्ष्य बहुधा जड़विषय के आगे नहीं आता। हम कहते हैं कि अमुक पुरुष का स्त्री पर प्रेम हुआ, परन्तु वास्तव में प्रेम उस स्त्री के शरीर पर होता है। वह उसके भिन्न-भिन्न अंगों का चिन्तन करता है। अर्थात् जड़-विषयों में जो आकर्षण रहता है, उस आकर्षण का ही स्वरूप पहचाने जाने वाले विकार का स्वरूप है। सत्य प्रेम का स्वरूप इससे बहुत भिन्न है। सच्चा प्रेम में पर्क नहीं पड़ता। वह नष्ट नहीं होता और न उससे कभी दुःख की उत्पत्ति होती है।

□ हम निग्रहीत होते हैं, बन्धन में पड़ते हैं, कैसे ? इसलिये नहीं कि हम कुछ देते हैं बल्कि इसलिए कि कुछ चाहते हैं। प्रेम करके हम सुख पाते हैं। परन्तु दुःख हमें इसलिए नहीं मिलता कि प्रेम करते हैं। दुःख का कारण यह है कि हम प्रेम के बदले प्रेम प्राप्त करना चाहते हैं। जहाँ इच्छा नहीं है, चाह नहीं, वहाँ दुःख, क्लेश भी नहीं है। निस्वार्थ भाव से दूसरों को देते रहो, तभी सुखी हो सकोगे, यह प्रकृति का अखण्ड नियम है।

□ सच्चे प्रेम से दुःख की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती। सच्चा प्रेम करने वाले को अथवा जिस वस्तु पर उसका प्रेम है उसको प्रेम से दुःख होना सर्वथा असम्भव है। फिर प्रेम करने वाला और उसका प्रेमविषय हर घड़ी दुःख में डूबे हुए क्यों दिखाई देते हैं ? इसके उत्तर में हम

एक उदाहरण उपस्थित करते हैं, जो संसार में सब जगह पाया जाता है। एक पुरुष का एक स्त्री पर प्रेम होता है, यहाँ तक कि ध्यान में, मन में, स्वप्न में उसे छोड़कर और कुछ दीखता ही नहीं। क्या यह स्वर्गीय प्रेम है ? जरा ठहरिये और प्रेम का शास्त्रीय पृथक्करण हमें करने दीजिये, तब आपको इसका सच्चा स्वरूप मालूम होगा। उसकी इच्छा रहती है कि वह स्त्री सदैव मेरे पास ही रहे, पास ही खड़ी रहे, पास ही खावे-पीवे, मतलब यह है कि उसे करीब-करीब इसका गुलाम ही बनकर रहना चाहिए। मानो स्वतन्त्र रीति से उसे और कार्य ही नहीं है। उसके मुँह से निकलने वाला प्रत्येक शब्द यह स्वीकार करता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि उसे स्वयं अपना गुलाम बनाकर वह स्वयं भी उसका गुलाम बनता है। अब आप ही सोचिये, इन दो गुलामों ने प्रेम का सच्चा स्वरूप चिरस्थायी कहाँ तक हो सकता है ? यदि वह स्त्री कहीं क्षणभर के लिये भी बाहर जाती है तो यह स्वयं अपने मन में उलटे-सीधे विचार लाकर अपने को दुखी कर लेता है। मित्रो ! सच्चे प्रेम का यह स्वरूप नहीं है। इन्द्रियजन्य सुख की अभिलाषा से पागल होने वाले मनुष्य की यह एक लहर मात्र है। यदि स्त्री उसके कहने के अनुसार कोई बात करने से इनकार करती है तो बस, इसका मन बिगड़ते देर नहीं लगती। जिस जगह दुःख की उत्पत्ति होती हुई देखी जाती है, वह सच्चा प्रेम ही नहीं है। वास्तव में वह और ही कुछ है।

- एक सत्यनिष्ठ व्यक्ति अपने आत्म-बल या प्रेम से शत्रु को भी अपने वश में कर लेता है। मित्रमंडली में प्रेम की कसौटी नहीं होती। यदि मित्र-मित्र पर प्रेम करे तो इससे कोई नवीनता नहीं है। वह गुण नहीं है, उसमें श्रम नहीं है, परन्तु शत्रु के प्रति मित्रता रखने में ही प्रेम का कसौटी है। इसी में पुरुषार्थ है और इसी में सच्ची बहादुरी है। शासनकर्ताओं पर भी हम ऐसी दृष्टि रख सकते हैं। ऐसी दृष्टि रखने से हम उनके कामों का मूल्य जान सकेंगे और उनकी भूलें बताकर उन्हें दूर करने में समर्थ होंगे। इस प्रेमभाव में भय की गुजर नहीं। निर्बलता तो पास नहीं फटकती। निर्बल मनुष्य

प्रेम का प्रकाश नहीं कर सकता। प्रेम तो शूर ही दिखा सकते हैं। प्रेम की दृष्टि से विकार को हटाकर हमें अपने शासनकर्ताओं को संदेह की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। यह भी मानिए कि वह सब काम पूरी नेकनीयती से करते हैं। प्रेमपूर्वक अपने द्वारा की हुई उनके कार्यों की परीक्षा इतनी शुद्ध होगी कि उसकी छाया उनके ही ऊपर पड़े बिना न रह सकेगी।

- प्रेम लड़ सकता है। प्रेम को कितनी ही बार लड़ना पड़ता है, सत्ता के मद में मनुष्य अपनी भूलों पर दृष्टि नहीं रखता। उस समय सत्याग्रही बैठ रहता है। वह स्वयं दुःख सहन करता है। सत्ताधीश की आज्ञा का, उनके कानूनों का सादर निरादर करता है और उस निरादर के परिणामस्वरूप कष्ट, जेल, फाँसी इत्यादि सहन करता है। इस प्रकार आत्मा सुधरती है। वज्र के समान कठोर हृदय वाला भी आत्मबल की अग्नि में पिघल सकता है, यह अतिशयोक्ति नहीं, किन्तु गणित के अक्षरों के समान स्पष्ट है।

- प्रेम एक नैसर्गिक शक्ति है जो राक्षस को देवता और मनुष्य को भगवान बना देती है।

- हम अपने बच्चों के लिए बेडियॉ नहीं गढ़ सकते, हमें तो उन जंजीरों को तोड़ना है, जो पुरानी होते हुए भी सिर्फ जकड़ने का कष्ट भर दे रही हैं। हम तर्क, न्याय और विवेक के पक्षपाती हैं, हम सर्वज्ञ होने का दावा नहीं करते और न यह कहते हैं कि हर समस्या का कारण और समाधान ढूँढ़ लिया है फिर भी हमारा विश्वास है कि औचित्य का अनुशीलन, धिसे-पिटे धर्मसिद्धान्तों को रटते रहने से उत्तम है। हमें देवताओं से डरने की अपेक्षा मनुष्य से प्यार करना बेहतर लगता है। —इंगर सोल

- यदि तुम अपने प्रेम रखने वालों के साथ प्रेम रखो तो तुम्हारी क्या बड़ाई ? क्योंकि पापी भी अपने प्रेम रखने वालों के साथ प्रेम रखते हैं। —लूका ६

- जब योग्य व्यक्तियों में कलह होती है, तब पहले उनमें से एक दोषी होता है, किन्तु यदि झगड़ा देर तक चलता है तो साधारणतया दोनों दोषी बन जाते हैं। —कुलर

- दूसरों को बदलने और झुकाने के लिए जालिमों द्वारा भी प्रयत्न किये जाते रहे हैं और शहीदों द्वारा भी। दोनों में इच्छा की एकता होते हुए भी क्रियापद्धति में जमीन-आसमान का अन्तर है। जालिम अपने आतंक, शस्त्र, साधनों से लोगों को प्रताड़ित और भयभीत करके अपनी मजी पर चलने के लिये विवश करना चाहता है और शहीद अपनी निष्ठा से दूसरों के अन्तःकरण में विवेक और न्याय के आधार पर प्रतिष्ठित करना चाहता है। जालिम लोगों को विवश करता है किन्तु शहीद उनकी अन्तरात्माओं को झकझोर कर यह सोचने के लिए विवश करता है कि जो उचित है, उसी को क्यों न अपनाया जाय ? —**सोरेन**
- मनुष्य सो गया है। उसे जगाया जाना जरूरी है। वह सोया ही नहीं पशुत्व की ओर वापस भी लौट रहा है। उस पर ऐसा चाबुक बरसाने की जरूरत है कि एक बार चीख उठे। इसके बाद उसे प्रेम से सरावोर चुम्बन भी दिये जाने चाहिए। डरना नहीं चाहिए कि उसे चोट लगेगी। अगर यह चाबुक प्रेम में सने होंगे तो वह उनके निशानों को देखकर अनुभव और प्यार करेगा कि वह इसी के लायक था। जब वह लज्जित और दुःखी हो, तब उस पर चुम्बनों की वर्षा की जानी चाहिए। इसी प्रकार उनका पुनर्जन्म होगा। —**गोर्की**
- दण्ड उतना ही आवश्यक है जितना प्रेम और सद्भाव, उसके बिना समाज व्यवस्था असम्भव है। —**वायक्य**
- लाठी का बदला लाठी, गाली का बदला गाली और खून का बदला खून नहीं हो सकता। तुम लोगों का दिल बदलने की कोशिश करो। जो कुरता छीने उसको दोहर भी दे दो। भलमनसाहत की मार बदला लेने की अपेक्षा अधिक कारगर होती है।
- मत कह कि जैसा उसने मेरे साथ किया वैसा ही मैं भी उसके साथ करूँगा और उस काम के अनुसार पलट दूँगा।
- बैर से तो झगड़े उत्पन्न होते हैं, पर प्रेम से सब अपराध टँक जाते हैं। समझ वालों के वचनों में त्रुटि पाई जाती है, पर निर्बुद्धि के लिये कोड़ा है।
- यदि तेरा बैरी भूखा हो तो उसको रोटी खिलाना और यदि वह प्यासा हो तो उसे पानी पिलाना, क्योंकि इस रीति से तू उसको सिर पर अँगारे डालेगा और यहोबा तुझे इसका फल देगा।
- जो दूसरे के अपराध को ढँप देता है सो प्रेम का खोजी ठहरता है, पर जो बात, चर्चा बार-बार करता है सो परम मित्रों में भी फूट कर देता है। एक घुड़करी समझ वाले के मन में जितनी गढ़ जाती है, उतना सौ बार मार खाना मूर्ख के मन में नहीं गढ़ता।
- साक्षात् पीयूषरस संसार का प्रेम-व्यवहार ही है, जिसे दो वही पक्ष लेने लगता है।
- जो तुमसे बैर करते हैं, तुम उनसे प्रेम करो, तथा सदाचार से रहो और जो निन्दा करते हैं, उनसे प्रार्थना करो।
- प्रेम व्यवहार संसार का प्रत्यक्ष अमृत रस है। जिसको दो वही प्रसन्न होकर तुम्हारा हो जाएगा।
- निःस्वार्थ भाव से सबके साथ प्रेम करो। अपने प्रेम बल से दूसरों के चरित्र को सुधारो, उन्हें ऊँचा उठाओ। तुम्हारे आचरण आदर्श होते ही तुम अपने स्वार्थहीन प्रेम के बल से गिरे हुए व्यक्ति को ऊँचा उठा सकोगे। याद रखो, शुद्ध आचरण युक्त निःस्वार्थ प्रेम में बड़ा बल होता है।
- जीवन का एक पक्ष संघर्ष भी है। भीतर के कुविचार और बाहर के अनाचार ऐसे हैं, जिन्हें बिना लड़े, मात्र भलमनसाहत के आधार पर निरस्त किया जा सकता है।
- जिस समाज में अधिकांश अच्छे लोग रहते हैं, उसे सभ्य समाज कहा जाता है, पर उससे भी सभ्य वे लोग हैं, जो बुरे लोगों के बीच अपना निर्वाह कर लेते हैं और अपने प्रेम, सहृदयता और सद्व्यवहार से उन्हें अच्छा बनाने का प्रयत्न करते रहते हैं।
- सबल की सबलता विरोधी को प्रेम से जीत लेने में है, मद से कुचल डालने में नहीं।
- जो लोग पीड़ा अनुभव नहीं कर सकते, वे इस योग्य भी नहीं होते कि आनन्द का अनुभव कर सकें।

- किसी की आपत्ति में हँसी मत करो, क्योंकि तुम पर भी आपत्ति आ सकती है।
- यथाशक्ति लोगों के दुःख का निवारण करना ज्ञानी पुरुषों का कर्तव्य है।
- प्रताड़ना के भय से शेर-हाथी जैसे जानवर भले ही वश में किये जा सकें, पर विकास के क्षेत्र में एक पत्ता भी नहीं उगाया और एक फूल भी नहीं खिलाया जा सकता।
- जिसे सांसारिक भोग-विलासों में आनन्द आता है, उसने प्रभु प्रेम को नहीं पाया। प्रभु का स्वाद जिसने चख लिया, वह इन मिथ्याभोगों की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता।
- ऊँचा कौन है ? जिसके हृदय में दयाधर्म बसे हुए हैं, जिसके मुख से सदैव अमृतवचन निकलते हैं, जिनको सब प्राणियों से प्रेम है और जिसका मस्तक नम्रता से झुका रहता है।
- जो मनुष्य कष्टर दुराग्रही और वितंडतावादी हो उनके साथ कभी वाद-विवाद नहीं करना चाहिए।
- अनादिकाल से अज्ञानावृत्त रहने के कारण जीव की स्वाभाविक रुचि ऐसी हो गई है कि वह सदैव घृणास्पद बातों को ही सोचा करता है। जिस समय चेतन जीव को ज्ञानरूप स्पर्शमणि का संसर्ग प्राप्त होता है, उस समय उसके अन्तःकरण में विप्लव-सा हो जाता है। जीव के जन्म-जात-संस्कार विरोधी संस्कारों से लड़ने लगते हैं। परिणाम यह होता है कि साधक अपने को साधनशून्य देखकर घबड़ा जाता है। साधन में प्रवृत्त होना कठिन कार्य है। उसमें प्रवृत्त होने के पूर्व साधक को सत्संग का आश्रय लेना चाहिए। बिना सत्संग के उसकी अपने साध्य में रुचि नहीं हो सकती। आवश्यकता है साध्य के प्रति रुचि तैयार करने की। जब रुचि तैयार हो जाएगी, तो कितना ही दुःसाध्य साधन क्यों न हो, साधक घबड़ा नहीं सकता। मुझसे लोग प्रायः पूछा करते हैं कि बाबा ! साधन बताओ। मेरी समझ में नहीं आता कि वे दूसरे से साधन की बात क्यों पूछते हैं ? जीव भगवान का कृपापात्र अंश है, उसमें अनन्त शक्ति है। जिस प्रकार अज्ञान में उसने अपने आप प्रवेश किया है, उसी प्रकार

ज्ञान में भी वह अपने आप प्रवेश कर सकता है, ज्ञान-ध्यान की बात किसी से पूछ कर नहीं जानी जाती, यह निरन्तर सत्संग से ही प्राप्त होती है। प्रारम्भ में निरन्तर सत्संग करते रहना चाहिए, साथ में भगवत् नाम का जप भी आवश्यक है। भगवान के नाम की कृपा से जीवन का अज्ञान नष्ट होता है और हृदय के स्वच्छ होते ही दिव्यप्रेम की प्राप्ति हो जाती है। यह प्रेम ही नामामृत, रूपामृत और लीला-मृत का आस्वादन कराता है। प्रेम ही साध्य और सत्संग ही साधन है, सत्संग के द्वारा आत्यन्तिक निवृत्ति होती ही है, साथ ही दिव्य भगवदीय प्रेम की प्राप्ति भी हो जाती है।

- अपने हृदय में प्रेम की अखण्ड-ज्योति जगा दो। सबसे प्रेम करो। अपनी भुजाएँ पसार कर प्राणीमात्र को प्रेम के पाश में बाँध लो। विश्व के कण-कण को अपने प्रेम की सरिता से सींच दो। प्रेम वह रहस्यमय दिव्य-रस है, जो एक हृदय से दूसरे को जोड़ता है। यह एक अलौकिक शक्ति-सम्पन्न जादू भरा मरहम है, जिसे लगाते सारे कोढ़-खाज अच्छे हो जाते हैं और बेचैनी के स्थान पर शान्ति प्राप्त होती है। अपना प्रत्येक कर्म सात्विक प्रेम से भर दो। दया व धर्म का पालन करने से तुम्हें अधिकाधिक बल, आनन्द और सन्तोष प्राप्त होगा।

- जीना, आदर्श और उद्देश्य के लिये संग्राम करना है। जीवन जागरण की धारा है। जब तक जियो प्रतिज्ञाबद्ध जियो। अपने जीवन का सच्चा उद्देश्य तलाश करो और जब एक बार उसे जान लो तो उसे प्राप्त करने के लिये जुट जाओ। जियो और विजय प्राप्त करो।

ओ, मानव शरीरधारी परमात्मा के अमरपुत्र ! अपने पिता की सम्पत्ति को सँभालो। यह सब तुम्हारे पिता की है, इसलिये तुम्हारी है। सबको अपना समझो और अपनी वस्तु की तरह विश्व की समस्त वस्तुओं को अपनी प्रेम की छाया में रखो। सबको आत्मभाव और आत्मदृष्टि से देखो।

- मुद्दतों से सूखे पड़े हुए हृदय सरोवर को प्रेम के अमृत से भर लीजिये। इस सरोवर में लोगों को पानी पीकर प्यास बुझाने दीजिये, स्नान

करके शान्ति स्थापन करने कीजिये, क्रीड़ा करके आनन्दित होने दीजिये। अपना प्रेम उदारतापूर्वक सबके लिए खुला रखिए। आत्मीयता की शीतल छाया में थके हुए पथिकों को विश्राम करने कीजिए। प्रेम इस भूलोक का अमृत है, आत्मभाव इस भूलोक का पारस है। इस दुर्लभ मानव शरीर को सफल बनाने के लिए आप इन दोनों महत्त्वों को उपार्जित करने का प्रयत्न से प्रयत्न कीजिये।

- अपने प्रेमस्वामी अमृत को चारों ओर छिड़क दीजिए, जिससे यह भ्रमज्ञान-सा भयंकर दिखाई

पड़ने वाला जीवन देवी-देवताओं की क्रीड़ाभूमि बन जाय। अपने आत्मभाव रूपी पारस को कुरूप, अव्यवस्थित लोहा-लंगड़ से स्पर्श होने दीजिए, जिससे स्वर्णमयी सुरभ्य इन्द्रपुरी बनकर खड़ी हो जाए। यदि आप इसी जीवन में स्वर्ग का आनन्द लूटना चाहते हैं, तो उसकी रचना अपने हाथों कीजिये। यह बिलकुल आसान है और पूर्णतः सम्भव है। यदि आप दूसरों को आत्मीयता की प्रेमपूर्ण दृष्टि से देखने लगे तो निश्चय समझिये यह भूलोक ही आपके लिए स्वर्ग-सा आनन्ददायक बन जाएगा।



महापुरुषों की दिव्य-अनुभूतियाँ और दिव्य-सन्देश

□ जीव के लिये मनुष्य, शरीर एक अलभ्य अवसर है। इसका सदुपयोग करने से यह जीवन-लक्ष्य को प्राप्त करता हुआ परमशक्ति का अधिकारी बन सकता है, किन्तु यदि वह इस अवसर को व्यर्थ गँवाता है अथवा दुरुपयोग करता है तो फिर नरक की यातनाएँ तैयार हैं और चौरासी लाख निकृष्ट योनियों में भ्रमण करने की विवशता सामने है। इन्द्रियतृप्ति तो जीव अन्य योनियों में भी कर सकता है पर परम-पद की प्राप्ति कर सकना केवल मनुष्य शरीर में ही सम्भव है। चिरकाल के पश्चात् ही यह सुरदुर्लभ मानव-जीवन प्राप्त होता है, इसे निरर्थक न गँवाना चाहिए।

□ स्वयं शान्ति से रहना और दूसरों को शान्ति से रहने देना यही जीवन जीने की सर्वोत्तम नीति है। दूसरों के साथ वह व्यवहार न करें जो हमें अपने लिये पसंद नहीं। सत्य ही बोलना चाहिए। सभी से प्रेम करना चाहिए और अन्याय के मार्ग पर एक कदम भी नहीं धरना चाहिए। श्रेष्ठ, सदाचारी और परमार्थयुक्त जीवन ही मनुष्य की उपयुक्त बुद्धिमत्ता कही जा सकती है।

—मदनमोहन मालवीय

□ मानव-जीवन एक अमूल्य निधि है। यह बड़े सौभाग्य का सुअवसर है कि हम सृष्टि के किसी भी प्राणी को न मिल सकने योग्य सुअवसर को प्राप्त करें और मानव प्राणी कहलाएँ।

यह अनुपम अवसर कुत्साओं की कीचड़ और कुण्ठाओं के दलदल में पड़े रहकर, नारकीय यातनाएँ सहते हुए मौत के दिन पूरे कर लेने के लिए नहीं है। वरन् इसलिए है कि हम परमेश्वर की इस पुण्य प्रतिकृति दुनिया के सौंदर्य का रसास्वादन करते हुए अपने को धन्य बनावें और इस तरह जिएँ, जिसमें पुष्प जैसी मृदुलता, चन्दन जैसी सुगन्ध और दीपक जैसी रोशनी भरी पड़ी हो।

□ जीवन जीना एक कला है। जिसे ठीक तरह जीना आ गया, वह इस धरती का सम्मानित

कलाकार है। उपलब्ध साधन-सामग्री का उत्कृष्ट उपयोग करके दिखा सकना—यही तो कौशल की कसौटी है। अधिक साधनों के अभाव और प्रस्तुत अवरोधों की चर्चा में जो प्रस्तुत उपलब्धियों की महत्ता कम करना चाहता और यह कहता है कि यदि अमुक साधन मिले होते तो अमुक कर्तृत्व प्रस्तुत करता—उसे आत्म-वञ्चना में निरत ही कहना चाहिए। जीवन-कला से अवगत कलाकार अपने स्वल्प साधनों से ही महान अभिव्यंजना प्रस्तुत करते रहे हैं। जिसे जीना आ गया उसे सब कुछ आ गया और वही सच्चा शिल्पी है—यह जानना चाहिए।

—अरसू

□ 'हम जी रहे हैं' इतना मात्र पर्याप्त नहीं है। अपने कुटुम्बियों के लिये आजीविका भी कमा रहे हैं—यह भी काफी नहीं है। जहाँ काम करते हैं पूरी लगन और परिश्रम के साथ करते हैं, हम अच्छे पिता, उत्तरदायित्व निबाहने वाले पति हैं और परमात्मा का ध्यान भी नित्य नियम से करते हैं, इतना कहने पर भी हम तो यही कहेंगे कि अभी भी आप जो कर रहे हैं, वह अपूर्ण है, नाकाफी है। यह तो जीवन की अनिवार्यताएँ हैं, विशेषता या परिपूर्णताएँ नहीं। इतना तो हममें से प्रत्येक को करना ही चाहिए।

जीवन का अर्थ है—एक ऐसी तत्परता जो निरन्तर यह खोजती रहे कि कहाँ पर कुछ भलाई की जा सकती है ? प्रतिक्षण और अधिक उदात्त व्यक्ति बनने और अपनी आत्मा की पवित्रता विकसित करने के लिए यदि प्रयत्नशील हैं, तब यह कहा जा सकता है कि आपके जीवन की दिशा सही है। अपने परमात्मा को केवल हृदय से ही प्रेम नहीं करना वरन् सारी आत्मा, सारी बुद्धि और हाथों से भी करना चाहिए, तभी जीवन को परिपूर्ण बना सकते हैं।

हर पिछड़े हुए साथी की प्रतिदिन मदद किया कीजिये। जो सेवा-सहायता के पात्र हैं, उन्हें

द्वैतिये और उनके लिए कुछ काम कीजिये। यह काम कितना ही छोटा हो, पर यदि आपने उसी को पूरा करने में अपना गौरव समझ लिया है और यह मान लिया है कि हमें उसके बदले में कुछ मिलने वाला नहीं है तो भी उस काम को पूरा करना ही है, ऐसी निष्ठा यदि जम गई तब यह मान लिया जाएगा कि आपने जीवन का अर्थ समझ लिया। संसार में हम अकेले नहीं दूसरे भी बहुत-से भाई हैं, उनकी भलाई का विचार भी करते रहना है, हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए। —*स्वाध्याय*

□ भारत माता चाहती है उसके पुत्रों की नस-नस में एक नवीन शक्ति का विद्युत सञ्चार हो। लोग साहसी बनें। कायरता से घृणा करें। संकीर्णता और स्वार्थपरता कायरता के चिन्ह हैं। आदर्श के मार्ग पर चलते हुए जो कष्ट उठाने पड़ते हैं, उन्हें प्रसन्नतापूर्वक शिरोधार्य करना ही साहस और वीरता है। कायर घड़ी-घड़ी मरते रहते हैं पर वीर पुरुष केवल एक ही बार मरते हैं और वह भी शानदार परम्परा स्थापित करते हुए।

□ मनुष्य तभी तक मनुष्य है जब तक वह पशु प्रवृत्ति से ऊपर उठने के लिए संघर्ष करता रहता है। संसार पर विजय प्राप्त करना गौरवपूर्ण है, पर अपनी दुर्बलताओं को ही जीत लेना सबसे बड़ी विजय है। साहित्य, विज्ञान और कला-कौशल में निष्णात होना अच्छी बात है पर मनुष्य जीवन की समस्याओं, वासनाओं, भावनाओं और आकांक्षाओं को समझना और उनको नियन्त्रण करने की विधि जानना सबसे बड़ी बात है। आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है कि लोग साहसी बनें। संकीर्णता, स्वार्थपरता और तुच्छता से घृणा करें और महान बनने के लिये साहसपूर्वक कदम बढ़ते चले।

—*स्वामी विवेकानन्द*

□ हाड़-मांस का पुतला दुर्बलकाय मानव प्राणी शारीरिक दृष्टि से तुच्छ और नगण्य है। मामूली जीव-जन्तु-पशु-पक्षी-जिस तरह का निःसर्ग जीवन जीते हैं और उसी तरह जिन्दगी की लाश नर-पशु भी ढोते रहते हैं। इस तरह की जिन्दगी जीने से किसी का जीवनोद्देश्य पूरा नहीं होता।

विचार' ही वह शक्ति है जिसने मनुष्य को अन्य प्राणियों की तुलना में अधिक सुख-सुविधाएँ उपार्जित करने में समर्थ बनाया। विचार का यह प्रथम चमत्कार है। इससे अगला चमत्कार तब प्रारम्भ होता है, जब वह विचारणा की महान शक्ति, जीवन का उद्देश्य, स्वरूप और उपयोग करने की सही जानकारी प्राप्त करने में प्रवृत्त होता है। इसी मार्ग एवं प्रयास का नाम तत्व-ज्ञान, दर्शन एवं अध्यात्म है। विचार-शक्ति का मूल्य और महत्त्व जिसे विदित हो गया वह अपनी इस ईश्वरप्रदत्त दिव्यविभूति को परमलक्ष्य की प्राप्ति में प्रयुक्त करता है। फलस्वरूप उसका सारा जीवनक्रम ही बदल जाता है, उसका प्रत्येक क्रिया-कलाप उत्कृष्टता और आदर्शवादिता से ओत-प्रोत बनता चला जाता है।

यही मानव जीवन का गौरव तथा आनन्द है। विचारशीलता का अवलम्बन लेकर जीने में ही मनुष्य जन्म की सार्थकता है। रोटी के लिये मरते-खपते रहना मनुष्य का नहीं तुच्छ जीव-जन्तुओं का कार्य है। अच्छा हो हम अपनी-अपनी विचारशक्ति और जिन्दगी का मूल्य समझें और वे गतिविधियाँ अपनाएँ जो अपने स्तर और गौरव के उपयुक्त हैं।

—*सन्त वास्वानी*

□ धिक्कार है उस जिन्दगी पर जो मक्खियों की तरह पापों की विष्ठा के ऊपर भिनभिने में और कुत्तों की तरह विषयभोगों की जूठन चाटने में व्यतीत होती है। उस बड़प्पन पर धिक्कार है, जो खुद खजूर की तरह बढ़ते हैं पर उनकी छाया में एक प्राणी भी आश्रय नहीं पा सकता। सर्प की तरह धन के खजाने में बैठकर चौकीदारी करने वाले लालची किस प्रकार सराहनीय कहे जा सकते हैं ? जिनका जीवन तुच्छ स्वार्थों को पूरा करने में, उधेड़-बुन में निकल गया—हाय, वे कितने अभाग्य हैं ? सुदुर्लभ देह रूपी बहुमूल्य रत्न, इन दुर्बुद्धियों ने काँच और कंकड़ के टुकड़ों के बदले बेच दिया, किस मुख से यह कहेंगे कि हमने जीवन का सद्व्यय किया। इन कुबुद्धियों को तो अन्त में पश्चात्ताप ही प्राप्त होगा। एक दिन उन्हें अपनी भूल प्रतीत होगी, पर उस समय अवसर

हाथ से चला गया होगा और सिर धुन-धुनकर पछताने के अतिरिक्त और कुछ हाथ न रहेगा। मनुष्यो ! जिओ और जीने योग्य जीवन जिओ, ऐसी जिन्दगी बनाओ जिसे आदर्श और अनुकरणीय कहा जा सके। विश्व में अपने ऐसे पद-चिन्ह छोड़ जाओ, जिन्हें देखकर आगामी संतति अपना मार्ग ढूँढ़ सके। अपना जीवन सत्य से, प्रेम से, न्याय से भरा हुआ होना चाहिए। दया, सहानुभूति, आत्मनिष्ठा, संयम, दृढ़ता, उदारता आपके जीवन के अंग होने चाहिए। हमारा जीवन मनुष्यता के महान गौरव के अनुरूप ही होना चाहिए।

—रामकृष्ण परमहंस

- मानव-जीवन भगवान की दी हुई सर्वोत्तम विभूति है। इससे बड़ा वरदान और कुछ हो ही नहीं सकता। सृष्टि के समस्त प्राणियों को जैसे शरीर मिले हैं, जैसे सुविधा-साधन प्राप्त हैं, उनकी तुलना में मनुष्य की स्थिति असंख्यो गुनी श्रेष्ठ है। दूसरे जीवों का सारा समय और श्रम केवल शरीर रक्षा में ही लग जाता है। फिर भी वे ठीक तरह उस समस्या को हल नहीं कर पाते, इसके विपरीत मनुष्य को ऐसा अद्भुत शरीर मिला है, जिसकी प्रत्येक इन्द्रिय आनन्द और उल्लास से भरीपूरी है, उसे ऐसा मन मिला है, जो पग-पग पर हर्षोल्लास का लाभ ले सकता है। उसे ऐसी बुद्धि मिली है जो साधारण पदार्थों से अपनी सुख-सुविधा के साधन विनिर्मित कर सकती है। मानव-प्राणी को जैसा परिवार, समाज, साहित्य तथा सुख-सुविधाओं से भरा-पूरा वातावरण मिला है वैसा और किसी जीव को प्राप्त नहीं हो सकता।

उतना बड़ा सौभाग्य उसे अकारण ही नहीं मिला है। भगवान की इच्छा है कि मनुष्य उसकी इस सृष्टि को अधिक सुन्दर, अधिक सुखी, अधिक समृद्ध और अधिक समुचित बनाने में उसका हाथ बँटाए। अपनी बुद्धि, क्षमता और विशेषता से अन्य पिछड़े हुए जीवों की सुविधा का सृजन करे और परस्पर इस तरह का सद्व्यवहार वरते, जिससे इस संसार में सर्वत्र स्वर्गीय वातावरण दृष्टिगोचर होने लगे।

—सन्त तिळकस्तुवर

- जीवन दिन है और मृत्यु रात्रि। दिन के बाद रात्रि का आगमन अवश्यम्भावी है। जिसने जन्म लिया है, उसे मरना पड़ेगा। मनुष्य मृत्यु के दाँतों में उलझा हुआ है, क्या पता है कि कल का दिन देखने को मिलेगा या नहीं। पर जरा उसके मनसूबों को देखो—कैसी-कैसी लाखों, करोड़ों की योजनाएँ बना रहा है। दिन और रातें व्यतीत हो रही हैं, मानो जीवन के ऊपर सोने और चाँदी की आरियाँ चल रही हैं ? आयु व्यतीत होती जा रही है, परन्तु हम जानते हुए इसे जानने की चेष्टा नहीं करते। जीवन नश्वर है। संसार की अन्य वस्तुएँ भी नाशवान हैं, केवल धर्म ही सत्य है। तुम्हें जो कुछ करना है, आज करलो, ऐसा न हो कि साँस रुक जाय और वह सब काम यों ही पड़े रहें, जिन्हें करने के लिए कल का दिन सोचा गया था। यदि कोई शुभ-संकल्प मन में आवे तो उसे पूरा करने में विलम्ब मत लगाओ। वैभव स्थायी नहीं है, लक्ष्मी किसकी हुई है, अन्य सम्पदाएँ भी अपनी नहीं हैं। नाशवान प्राणी ! यह वस्तुएँ तेरी नहीं, ईश्वर की हैं। इनका स्वामी तू नहीं ईश्वर है। तेरा तो शरीर भी नहीं है, इसलिए निस्पृह होकर वह कार्य कर ले, जिससे भविष्य में तुझे पछताना नहीं पड़े। यह गंदी सराय उस सच्चिदानन्द आत्मा का घर नहीं है। पथिक ! इस बात को क्यों भूला जा रहा है कि मैं रास्तागीर हूँ और एक महान उद्देश्य तक पहुँचने के लिए यात्रा कर रहा हूँ। —जेम्स ऐलन

- भारत में नदियों के मार्ग बदल गये, जंगलों के स्थान पर खेत बन गये, देश का स्वरूप बदल गया, शासनपद्धति बदल गई जिस पर भी इस अस्थिर जगत में आप प्राचीन रीति-रिवाजों को स्थिर करने लगे हैं। अब जिस देश, काल और परिस्थितियों में रह रहे हैं, उनकी चिन्ता करें। यदि आप परिवर्तित परिस्थितियों में अपने आपको रहने योग्य नहीं बना लेते हैं तो संसार में आपका नामो-निशान मिट सकता है। आप बहुत सोचे हैं। अब उतना ही जागेंगे भी। अब सोने का युग बीत गया। अन्ध-विश्वास, पुराने रीति-रिवाज अब धीरे-धीरे दूर हो रहे हैं। बुद्धि और विवेक जाग रहे हैं। आलस्य उड़ता जा रहा है। आगे बढ़ने, सफलता पाने की क्रियाशीलता और चेतना के सभी ओर दर्शन होने लगे हैं।

यह आवश्यक है, बुराइयों के स्थान पर अच्छाइयों का बढ़ना, मंगल भविष्य का प्रतीक है। किन्तु हम यह न भूलें कि सफलता का अर्थ केवल अर्थजन्य या बाह्य प्रगति ही नहीं है। हमारे भीतर एक दर्शन छुपा है, तत्त्व सन्निहित है, एक आत्मा निवास करती है, वह बहुत सूक्ष्म है, शाश्वत है, इन्द्रियों से परे कल्पनातीत है उसे साधनों द्वारा जाना जा सकता है। अपने भीतर के इस तथ्य को जानने की जिज्ञासा जाग गई तो बाह्य जाग्रति का रंग सोने में सुहागे जैसा निखर उठेगा। परिवर्तन आत्मा की आकांक्षा है, उसे मूर्तरूप धारण करना चाहिए पर वह आत्मगत ही रहे।

—स्वामी रामतीर्थ

- मनुष्य-जीवन नगण्य-सी—ऐसी तुच्छ वस्तु नहीं है जिसे हलकी दृष्टि से देखा जाय और हलके कार्यों में खर्च कर दिया जाय। यह निरन्तर प्रगति और निरन्तर तप का परिणाम है। उसके मूल्य और महत्त्व को समझा जाना चाहिए, यह सोचा जाना चाहिए कि इस सुअवसर का लाभ किस प्रकार उठाया जाय ? ऐसे अवसर जो बार-बार हाथ नहीं आते, उपेक्षा और उपहास में गँवाने नहीं चाहिए। वरन् सतर्कतापूर्वक यह चेष्टा करनी चाहिए कि उसका समुचित सदुपयोग हो और परिपूर्ण लाभ मिले।

मनुष्य जीवन इसलिये है कि उसे पाकर जीवात्मा अपनी महान् उत्कृष्टता को विकसित करने पर निर्भर अलौकिक शान्ति और सन्तोष का आनन्द-लाभ करे। आन्तरिक उत्कृष्टता सत्कार्यों के निरन्तर अभ्यास पर निर्भर है। पढ़ते-सुनते या सोचते-विचारते रहने में आत्म-कल्याण की हलकी जानकारी तो प्राप्त होती है, पर उससे जीवनक्रम में किसी महानता का अवतरण होने की आशा नहीं की जा सकती। श्रेष्ठ कार्यों की श्रृंखला का दिनचर्या से अविच्छिन्न सम्बन्ध होना ही केवल मात्र वह उपाय है, जिससे मनुष्य ऊँचा उठता है और सफल जीवन का लक्ष्य प्राप्त कर सकने में समर्थ होता है। उचित है कि हम इस दृष्टि-बिन्दु को विकसित करें और इस सुअवसर का परिपूर्ण लाभ उठावें जो हमें मनुष्य-जीवन के रूप में आज उपलब्ध है। —सन्त वात्सानी

- जो दूसरों की व्यथा नहीं समझता वही परदुःख के प्रति उदासीन रह सकता है। लोग अपना पेट भरकर समझने लगते हैं कि और सब भी इसी प्रकार अधाये पड़े होंगे। निष्पूरता का यही चिह्न है। दूसरों के दुःख-दर्द जिसकी आत्मा को नहीं टटोलते, जिसका अन्तःकरण पराई व्यथा अनुभव नहीं करता, मनुष्य शरीर में उसे पत्थर ही कहा जा सकता है। एक ही आत्मा सब में समाई हुई है, जिसे यह तथ्य विदित है उसे दूसरों के दुःख में दुःखी और दूसरों के सुख में सुखी होना चाहिए। मुख और पेट में जो भोजन जाता है क्या उसे वे स्वयं ही जमा करते रहते हैं ? नहीं उसे वे प्राप्त मात्र करते हैं और कुछ ही देर बाद उसे सब अंगों को रस बनाकर बाँट देते हैं, जिनको उसकी जरूरत है। मनुष्य को भी ऐसा ही होना चाहिए। हमें सबकी पीड़ा को अपनी पीड़ा माननी चाहिए और सबको सुखी बनाने के लिए वैसा ही प्रयत्न करना चाहिए जैसा स्वयं को सुखी बनाने के लिये किया जाता है। मानव शरीर में पशु आत्मा बहुत लोग धारण किये हुए है।

- जीवन का अर्थ है आशा और गति ! आशा, उत्साह और गति का समन्वय यही जीवन है ! जिसमें जीवन का अभाव है, उसमें इन तीनों गुणों का न होना निश्चित है। साथ ही जिसमें यह गुण परिलक्षित न हों तो समझ लेना चाहिए कि उसमें जीवन-तत्त्व नष्ट हो चुका है।

- केवल श्वास-प्रश्वास का आवागमन अथवा शरीर में कुछ हरकत होते रहना ही जीवन नहीं कहा जा सकता ! जीवन की अभिव्यक्ति ऐसे सत्कर्मों में होती है, जिससे अपने तथा दूसरों के सुख में वृद्धि हो।

- अपनी वर्तमान परिस्थिति से आगे बढ़ना; आज से बढ़कर कल पर अधिकार करना, अच्छाई को सिर पर और बुराई को पैरों तले दबा चलने का नाम जीवन है ! कुकर्म करने तथा बुराई को प्रश्रय देने वाला मनुष्य जीवित दीखता हुआ भी मृत ही है। कुकर्म और कुविचार मृत्यु के प्रतिनिधि हैं, इनको आश्रय देने वाला मृतक के सिवाय और कौन हो सकता है ? —सुब्रह्मण्यम् भारती

- शरीर की दृष्टि से मनुष्य की सत्ता नगण्य है। इस तुलना में तो वह पशु-पक्षियों से भी पिछड़ा हुआ है। अन्य जीवों में कितनी ही विशेषताएँ ऐसी हैं, जिन्हें मनुष्य ललचाई दृष्टि से ही देखता रह सकता है।

मानवीय महत्ता उसकी भावनात्मक उत्कृष्टता में सन्निहित है। जिसकी आस्थाओं का स्तर ऊँचा है, जो दूरदर्शिता और विवेकशीलता के साथ हर समस्या को सोचता और समझता है, वह सच्चे अर्थों में मनुष्य है। गुण, कर्म, स्वभाव की महानता ही व्यक्तित्व को ऊँचा उठाती है और उसी के आधार पर किसी को सफल एवं सार्थक जीवन व्यतीत करने का अवसर मिलता है।

- जीवन उसी का धन्य है, जिसने अपनी आस्थाओं को ऊँचा उठाया और सत्कर्मों में समय लगाया। अन्य प्राणियों की तुलना में मनुष्य इसलिए बड़ा है कि वह अपने आन्तरिक बड़प्पन का परिचय दे। जो इस दृष्टि से पिछड़ा रहा—उसने नर-तन के सौभाग्य को निरर्थक ही गँवा दिया।

—स्वामी विवेकानन्द

- जिन्हें जीवन से रुचि है, जो यह चाहते हैं कि वे मानव-जीवन को मनुष्य के अनुरूप ही व्यतीत करें, वे अपने अन्दर की शक्तियों को पहचानें, उन पर विश्वास करें और उन्हें अपने अनुकूल उपयोगी बनाने के प्रयत्न में लग जाएँ।

- जीवन को ऊँचे से ऊँचा उठाना और सुन्दर से सुन्दर बनाना ही मानव जीवन का लक्ष्य है ! निरुद्देश्य जीवन बिताने में न तो कोई शोभा है और न श्रेय। निर्लक्ष्य जीवन बिताना तो पशुओं को भी आता है।

- मनुष्य जीवन एक ईश्वरीय प्रसाद, उपहार है। उसका अनादर करना परमात्मा का अपमान करना है। किसी काम के लिये पाये हुए एक छोटे-से उपहार को मनुष्य आजीवन सजाकर और सँजोकर रखता है। उसे देख-देख कर हर्षित और गर्वित होता है। तब न जाने किस कारण मानव जीवन जैसे अनिवर्चनीय उपहार की अवहेलना मनुष्य करता रहता है। क्या इसलिए कि यह उसे करुणाकर भगवान द्वारा सहज ही में प्राप्त हो गया है ? जीवन खोकर

जीवन का मूल्य समझने वालों को युगों तक पश्चात्ताप के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता।

—सेन्टपाल

- मानव जीवन भगवान का दिया हुआ अनुपम वरदान है। अगणित योनियों में भ्रमण करने के पश्चात् यह अलभ्य अवसर चिरकाल के पश्चात् मिलता है। दुरुपयोग करने पर यह छिन जाता है और फिर निम्न योनियों में भ्रमण करने के लिये चिरकाल तक अधोगति में रहना पड़ता है। जो सुविधाएँ इस शरीर में प्राप्त हैं, वे अन्य किसी शरीर में नहीं हैं। जो अवसर अन्य किसी जीवधारी को प्राप्त न हो, उसे मनुष्य को प्रदान करते हुए भगवान ने कुछ विशेष उत्तरदायित्व भी इसे सौंपे हैं। उचित यही है कि वह उनकी अवहेलना न करे।

- पेट पालने और सुख-चैन के साधन जुटाने की सुविधा एवं प्रतिभा तो पशु-पक्षियों को भी प्राप्त है। मनुष्य की विशेषता यह है कि वह विवेकवान, संयमी, सद्गुणी और उदार बने। अपना आत्मिक स्तर ऊँचा उठाते हुए अपूर्णता से पूर्णता की ओर चले। इस दिशा में जितनी प्रगति होगी, उतना ही उसका जीवन सार्थक माना जाएगा।

- आत्मिक विभूतियों की अभिवृद्धि इस बात पर निर्भर है कि वह दूसरों के साथ कितना उदार व्यवहार करता है ? आत्मिक सद्गुणों में आत्म-संयम और परोपकार ये दो ही प्रधान हैं, जो इन दोनों की उपलब्धि में जितना अधिक निरत है, समझना चाहिए वह उतना ही अधिक मानव जीवन का महत्त्व समझा और उसे प्राप्त करने में आगे बढ़ रहा है।

—स्वामी विवेकानन्द भारती

- पेट भरने, स्वाद लेने, परिवार बसाने और बड़प्पन जताने की प्रवृत्तियाँ निकृष्ट योनियों में भी होती हैं। मनुष्य में इनसे जो विशेषता है, वही उसका गौरव है। अन्य जीव इन्द्रियों की प्रेरणा पर चलते हैं। मनुष्य अपनी प्रेरणा से इन्द्रियों को चलाता है। अन्य जीव अपने स्वार्थ को प्रधान रखते हैं, दूसरों की चिन्ता नहीं करते। मनुष्य अपनी चिन्ता छोड़कर दूसरों के हितसाधन करता है। यही उसकी विशेषता है।

यदि इस विशेषता को वह छोड़ दे तो फिर उसका मनुष्य कहलाना व्यर्थ है।

- मनुष्य इसीलिए श्रेष्ठ है कि वह धर्म, सदाचार, नीतिविशेष और परमार्थ को प्रधानता देता है। यदि वह पाँचों को छोड़ दे, तब तो उसे सबसे निकृष्ट कहा जाएगा, क्योंकि बुद्धि का दुरुपयोग करके वह संसार में दुःख और क्लेशों को ही बढ़ाता है।
—वेदव्यास

- एक था यात्री, दूर देश की यात्रा पर निकला था वह। अभी तक योजन ही चला था कि एक नदी आ गई, किनारे पर नाव लगी थी। उसने कहा—यह नदी मेरा क्या करेगी ? पाल उसने बाँधा नहीं, डौंड उसने खोले नहीं, जाने कैसी जल्दी थी ? मल्लाह को उसने पुकारा नहीं। बादल गरज रहे थे। लहरें तूफान उठा रही थीं। फिर भी वह माना नहीं, नाव को लंगर से खोल दिया और आप भी उसमें सवार हो गया।

किनारा जैसे-तैसे निकल गया और नाव जैसे मझधार में आई वैसे ही भैवरों और उत्ताल-तरंगों ने आ घेरा। नाव एक बार ऊपर तक उछली और दूसरे ही क्षण यात्री को समेटे जल में समा गई।

एक दूसरा यात्री आया। किनारे लगी नाव टूटी-फटी थी, डौंड कमजोर थे, पाल फटा हुआ था, तो भी उसने युक्ति से काम लिया। नाविक को बुलाया और कहा—मुझे उस पार तक पहुँचा दो। नाविक यात्री को लेकर चल पड़ा। लहरों ने संघर्ष किया, तूफान टकराये, हवा ने पूरी ताकत लगाकर नाव को भटकाने का पूरा प्रयत्न किया पर नाविक उन सब कठिनाइयों से परिचित था, एक-एक को सँभालता हुआ यात्री को सकुशल दूसरे पार तक ले आया।

मनुष्य जीवन भी एक यात्रा है, जिसमें पग-पग पर कठिनाइयों के महासागर पार करने पड़ते हैं, जो नाव छोड़ने से पूर्व भगवान् को अपना नाविक नियुक्त नहीं कर लेते हैं, भगवान् उनकी यात्रा को सरल बना देते हैं, क्योंकि जीवन-पथ की सभी कठिनाइयों के वे ही ज्ञाता और वे ही मनुष्य के सच्चे सहचर हैं। अपने अहंकार और अज्ञान में डूबे मनुष्य की स्थिति तो उस पहले यात्री जैसी है, जो नाव चलाना न जानने

पर भी उसे तूफानों में छोड़ देता है और बीच में ही नष्ट हो जाता है।
—नानक

- जगत् परमात्मा का व्यक्त रूप है। इसमें परमात्मा का एक महान् उद्देश्य निहित है। वह जगत् के उदाहरण से अर्थात् अपने दृश्यमान स्वरूप से मनुष्य को सृजन की शिक्षा देना चाहता है। जगत् की उत्पत्ति तथा लय को परमात्मा का स्पन्दन भाव ही समझना चाहिए।

- जगत् परमात्मा का व्यक्त रूप है तो इसके प्रत्येक प्राणी में आत्मिकभाव होना स्वाभाविक है। ऐसी दशा में बाह्य व्यवहार में समता होना ही चाहिए। जो व्यक्ति जगत् के प्राणियों में समता का व्यवहार नहीं करता वह परमात्मा से ठीक उसी प्रकार विद्रोह करता है, जिस प्रकार कोई अपने भाई से द्रोह कर, अप्रत्यक्षतः पिता से ही द्रोह करता है।

इस प्रकार के विद्रोही भाव का कारण है अपने मूलस्वरूप का ज्ञान न होना। यदि हम यह समझ लें कि हम परमात्मा रूपी सागर में बिखरी बूँदें, उठी लहरें और तैरते बुलबुले हैं, तो परस्पर विषम भाव अथवा व्यवहार का कोई कारण ही न रह जाये। —रवीन्द्रनाथ टैगोर

- एक हाथी है उसे नहला-धुलाकर छोड़ दो तब फिर वह क्या करेगा ? मिट्टी में खेलगा और अपने शरीर को फिर गन्दा कर लेगा। उस पर जो बैठे तो उसका शरीर भी गन्दा अवश्य होगा। लेकिन यदि हाथी को स्नान कराने के बाद पक्के बाड़े में बाँध दिया जाये, तब फिर हाथी अपना शरीर गन्दा नहीं कर सकेगा।

मनुष्य का मन भी हाथी के समान है; एक बार ध्यान, साधन और भगवान के भजन से वह शुद्ध हो गया तो उसे स्वतन्त्र नहीं कर देना चाहिए। इस संसार में पवित्रता भी है, गन्दगी भी है, मन का स्वभाव है वह गन्दगी में जाएगा और मनुष्य देह को दूषित करने से नहीं चूकेगा। इसलिये उसे गन्दगी से बचाये रखने के लिए एक बाड़े की जरूरत होती है, जिसमें वह घिरा रहे। गन्दगी की सम्भावनाओं वाले स्थानों में न जा सके।

ईश्वर का भजन, उसका निरन्तर ध्यान एक बाड़ा है; जिसमें मन को बन्द रखा जाना चाहिए, तभी सांसारिक संसर्ग से उत्पन्न दोष

और मलिनता से बचाव सम्भव है। भगवान को बार-बार याद करते रहोगे तो मन अस्थायी सुखों के आकर्षण और पाप से बचा रहेगा और अपने जीवन के स्थायी लक्ष्य की याद बनी रहेगी। उस समय दूषित वासनाओं में पड़ने से स्वतः भय उत्पन्न होगा और मनुष्य उस पापकर्म से बच जाएगा, जिसके कारण वह बार-बार अपवित्रता और मलिनता उत्पन्न कर लिया करता है।

—रामकृष्ण परमहंस

- ईश्वर की प्राप्ति सरल है, क्योंकि वह हमारे निकटतम है। जो वस्तु समीप ही विद्यमान है, उसे उपलब्ध करने में कोई कठिनाई क्यों होनी चाहिए ? ईश्वर इतना निष्ठुर भी नहीं है, जिसे बहुत अनुनय-विनय के पश्चात् ही मनाया या प्रसन्न किया जा सके। जिस करुणामय प्रभु ने अपनी महती कृपा का अनुदान पग-पग पर दे रखा है, वह अपने किसी पुत्र को अपना साक्षात्कार एवं सांनिध्य प्राप्त करने में वञ्चित रखना चाहे, उसकी आकांक्षा में विघ्न उत्पन्न करे यह हो ही नहीं सकता।

- हमारे और ईश्वर के बीच में संकीर्णता एवं तुच्छता का एक छोट-सा पर्दा है, जिसे माया का अज्ञान कहते हैं—प्रभु प्राप्ति में एकमात्र अड़चन यही है। इस अड़चन को दूर कर लेना ही विविध आध्यात्मिक साधनाओं का उद्देश्य है। तृष्णा और वासनाओं के तूफान में मनुष्य की आध्यात्मिक आकांक्षाएँ धूमिल हो जाती हैं। अस्तु, वह जीवन-निर्माण एवं आत्म-विकास के लिये न तो ध्यान दे पाता है और न प्रयत्न कर पाता है। आज के तुच्छ स्वार्थी में निमग्न लोभी मनुष्य भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए तत्पर नहीं होता। अहंकार और अदूरदर्शिता को यदि छोड़ा जा सके, अपनेपन का दायरा बड़ा बनाकर यदि लोक-हित को अपना हित मानने का साहस किया जा सके तो इतने-से ही ईश्वर प्राप्ति हो सकती है। ओछी आकांक्षाएँ और संकीर्ण कामनाओं से ऊँचे उठकर यदि इस विशाल विश्व में अपनी आत्मा का दर्शन किया जा सके—औरों को सुखी बनाने के लिये भी यदि अपने सुख की तरह प्रयत्नशील रहा जा सके तो ईश्वर की प्राप्ति किसी को भी हो सकती है। कठिन आत्म-शोधन ही ईश्वर-साक्षात्कार नहीं।

—महर्षि राम

- वैज्ञानिक और योगी—दो भाइयों ने सत्य की खोज का निर्णय किया। वैज्ञानिक ने विज्ञान और योगी ने मनोबल के विकास का मार्ग अपनाया। एक का क्षेत्र विराट का अनुसंधान था और दूसरे का अन्तर्जगत। दोनों ही पुरुषार्थी थे, अपने-अपने प्रयत्नों में परिश्रमपूर्वक जुट गये।

वैज्ञानिक ने पदार्थ को कौतूहल की दृष्टि से देखा और यह जानने में तन्मय हो गया कि संसार में फैले हुए यह पदार्थ कहाँ से निकले हैं ? योगी ने देह को आश्चर्य से देखा कि यह विचार, संकल्प और भावनाएँ कहाँ से आती हैं ? उसकी शोध में दत्तचित्त-संलग्न हो गया।

वैज्ञानिक और योगी बढ़ते गये, बढ़ते गये। रुकने का एक ने भी नाम नहीं लिया। पर हुआ यह कि वैज्ञानिक विराट के वन में भटक गया और योगी शरीर के अन्तर्जाल में। दोनों को विविधता, बहुलता और विलक्षणता के अतिरिक्त कुछ दिखाई न दिया।

हाँ अब वे एक ऐसे स्थान पर अवश्य जा पहुँचे, जहाँ विश्वात्मा अपने प्रकाश रूप में निवास करती थी। गोद से भटके हुए दोनों बालकों को जगत्जननी जगदम्बा ने अपने आँचल में भर लिया। वैज्ञानिक ने कहा—“माँ ! तुम ज्योतिर्मयी हो और योगी ने उसे दोहराया माँ ! तुम दिव्य प्रकाश हो !”

माँ ने कहा—“तात् ! मैं अन्तिम सत्य नहीं हूँ। मैं भी उन्हीं तत्त्वों से बनी हूँ, जिनसे तुम दोनों बने हो। मैं प्रकाश धारण करती हूँ, प्रकाश नहीं हूँ। मैं स्वरचक्षु और घ्राणवाहिका हूँ पर स्वर, दृश्य और घ्राण नहीं हूँ। तुम्हारी तरह मैं भी उस चिरप्रकाश की प्रतीक्षा में खड़ी हूँ, जो परम प्रकाश है, परम सत्य है पर मैंने उसे प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं किया। मैं तो इस प्रयत्न में हूँ कि उस सत्य के जो भी बीज सृष्टि में बिखरे पड़े हैं वे मुरझाने न पाएँ। अपने पुत्रों की इसी सेवा-सुश्रूषा में अपने सत्य को भूल गई हूँ। मुझे तो एक ही विश्वास है कि वह इन्हीं बीजों में बीज रूप में छुपा हुआ है, इनकी सेवा करते-करते किसी दिन उसे पा लूँगी तो मैं भी अपने को धन्य समझूँगी।”

विश्वात्मा को प्राप्त कर वैज्ञानिक और योगी दोनों ही आनन्दमग्न हो गये और स्वयं सेवा में जुट गये।
—जाबालि

- सच्चे सुख की कामना करने वाले को अपने अन्तःकरण का आधार लेना चाहिए। सच्चे सुख का निवास मनुष्य के अन्तःकरण में ही है। यदि मनुष्य का अन्तःकरण अवांछनीय भावनाओं में अस्वस्थ है तो सुख के हजार साधन उपलब्ध रहने पर भी सुख का अंश मात्र भी प्राप्त होना असम्भव है।
- जो मनीषी अपने अन्तःकरण को राग-द्वेष, क्रोध और मोह के विषचरणों से आहत नहीं होने देता वह त्रिकालदर्शी बन जाता है। उसका अन्तःकरण एक ऐसे चमत्कारी दर्पण की भाँति सक्षम हो जाता है, जिसमें भूत, भविष्य, वर्तमान स्वयं प्रतिबिम्बित होते रहते हैं।
- जिस प्रकार दीपक स्वयं प्रकाशित होने के साथ-साथ अन्य दूसरी वस्तुओं को भी आलोकित एवं प्रत्यक्ष करता है, उसी प्रकार निर्विकार अन्तःकरण स्वयं प्रकाशित होकर संसार के सम्पूर्ण देशकाल को भी प्रत्यक्ष कर देता है। निर्मल अन्तःकरण में जब जो कुछ भी प्रतिबिम्बित होता है, वह सत्य होता है और विश्वास करने योग्य होता है। —स्वामी शिवानन्द
- जब मनुष्य अकेला होता है, उसके पास और आस-पास भी जब कोई नहीं होता है, तब कोई पाप करने में उसे जो भय लगता है, एक शंका रहती है, वह किस कारण होती है? उसे बार-बार ऐसा क्यों लगता है कि कोई उसके पाप को देख रहा है? क्यों उसका शरीर पूरे उत्साह से उस पापकर्म को नहीं कर पाता और क्यों बाद में भी वह एक अपराधी की तरह मलीन रहता है? क्या कभी कोई इस पर विचार करता है कि जब उसके पाप को देखने वाला कोई मौजूद नहीं, तब उसे भय किसका है, वह किससे डर रहा है? कौन उसे ऐसा करने को निशब्द रोकता और टोकता रहता है? कौन उसके मन, प्राण और शरीर में कम्पन्न कर देता है? निःसन्देह यह उसका अपना अन्तःकरण है, जो उसे उस पाप से हटाने के प्रयत्न में विविध प्रकार की शंकाओं, सन्देहों व कम्पनादि भय

घातक अनुभवों से उसे वैसा न करने के लिये संकेत करता रहता है! जो मनुष्य अपने इस अन्तःकरण के संकेतों की उपेक्षा नहीं करता है, वह पाप-कर्म से बच जाता है और जो मनुष्य उसकी अवहेलना करके वैसा करता है, उसका अन्तःकरण एक न एक दिन उसकी गवाही देकर उसे दण्ड का भागी बनाता है। यह हो सकता है किसी का पाप-कर्म दुनिया से छिपा रहे, किन्तु उसके अपने अन्तःकरण से कदापि नहीं छिप सकता। वह उसकी एक-एक क्रिया और विचार का सबसे प्रबल और सच्चा साक्षी होता है। जब किसी कारणवश मनुष्य को अपने पाप का दण्ड किसी ओर से नहीं मिल पाता तो समय आने पर उसका अन्तःकरण उसे स्वयं दण्डित करता है। हमारे लिये उचित यही है कि अन्तःकरण में विद्यमान परमात्मा की आवाज को सुनें और उसका अनुसरण करें।

—महर्षि रमण

- अपनी रचना से सभी को प्रेम होना स्वाभाविक ही है और जो रचना जितनी ही अधिक उत्कृष्ट होती है, उससे उतना ही अधिक प्रेम भी होता है। यदि कोई उसकी प्रिय रचना को विकृत करने का प्रयत्न करता है तो वह रचयिता का कोपभाजन भी होता है। रचयिता को इस बात पर न केवल सन्तोष ही होता है, बल्कि प्रसन्नता भी होती है कि उसकी रचना उसके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति भी करती है। मनुष्य परमात्मा की रचना है और सर्वोत्कृष्ट रचना। मनुष्य को उससे प्रेम भी है, जिसके प्रमाणस्वरूप उस महारचयिता की दी हुई महान चेतना और अनन्त विवेक उसके पास है। प्राकृतिक उपादान, विविध वनस्पतियाँ और अपरिचित विभूतियाँ भी परमात्मा के अनन्त प्रेम की ही परिचायिका हैं।
- इसकी कृतज्ञतास्वरूप मनुष्य का कर्तव्य है कि वह परमात्मा की कृपा और उसके व्यक्तित्व का उसी के अनुरूप प्रतिनिधित्व भी करे। अब जो ऐसा नहीं करता है, वह उसकी कला को अपमानित करता है, उसकी कृपा के प्रति कृतघ्नता है और उसका कोपभाजन बनना है।
- ऐनी बीसेण्ट
- प्रत्येक प्राणी में परमात्मा का निवास है। इस घट-घटवासी परमात्मा का जो दर्शन कर सके

समझना चाहिए कि उसे ईश्वर का साक्षात्कार हो चुका। प्राणियों की सेवा करने से बढ़कर दूसरी ईश्वरभक्ति हो नहीं सकती। कल्पना के आधार पर धारणा-ध्यान द्वारा प्रभु को प्राप्त करने की अपेक्षा सेवा-धर्म अपनाकर इस साकार ब्रह्म-अखिल विश्व को सुन्दर बनाने के लिये संलग्न रहना-साधना का श्रेष्ठतम मार्ग है। अमुक भजन या ध्यान से केवल ईश्वर को ही प्रसन्नता हुई या नहीं ? इसमें सन्देह हो सकता है, पर दूसरों को सुखी एवं समुन्नत बनाने के लिये जिसने कुछ किया है, उसे आत्म-सन्तोष, सहायता द्वारा सुखी हुए जीवों का आशीर्वाद और परमात्मा का अनुग्रह मिलना सुनिश्चित है।

- प्रेम से बढ़कर इस विश्व में और कुछ भी आनन्दमय नहीं है। जिस व्यक्ति या वस्तु को हम प्रेम करते हैं, वह हमें अतीव सुन्दर प्रतीत होने लगता है। इस समस्त विश्व को परमात्मा का साकार-स्वरूप मानकर उसे अधिक सुन्दर बनाने के लिए यदि उदारबुद्धि से लोकमंगल के कार्यों से निरत रहा जाय तो यह ईश्वर के प्रति तथा उसकी पुण्य-वृत्तियों के प्रति प्रेम प्रदर्शन करने का एक उत्तम मार्ग होगा। इस प्रकार की हुई ईश्वर-उपासना कभी भी व्यर्थ नहीं जाती। इसकी सार्थकता के प्रमाणस्वरूप तत्काल आत्म-सन्तोष मिलता है। श्रेय की भावनाओं से ओत-प्रोत उदारहृदय ही स्वर्ग है। जिसे स्वर्ग अभीष्ट हो उसे अपना अन्तःकरण प्रेम और सेवाधर्म से परिपूर्ण बना लेना चाहिए।
—सन्त तिळवल्लुवर

- सभी ईश्वर के पुत्र हैं और सबमें परमात्मा का निवास है, यह मानते हुए यदि हम परस्पर एकता, निश्छलता, प्रेम और उदारता का व्यवहार करने लगे तो जीवन में अजस्र पवित्रता का अवतरण होने लगे, सर्वत्र सद्व्यवहार के दर्शन होने लगे और जो कटुता, संकीर्णता और कलह का वातावरण दीख पड़ता है, उसका अन्त होने में देर न लगे।
- हमें केवल अपने शरीर के लिए ही नहीं, आत्मा के लिए भी जीना चाहिए। यदि मनुष्य शरीर की सुविधा और सजावट का ताना-बाना बुनते रहने में ही इस बहुमूल्य जीवन को व्यतीत कर दे, तो उसे वह लक्ष्य कैसे प्राप्त

होगा, जिसके लिये वह जन्मा है। स्वार्थ से, संलग्न व्यक्ति तो विघटन की ओर ही बढ़ेंगे। उनके व्यवहार एक-दूसरे के लिये असन्तोषजनक और असमाधानकारक ही बनेंगे। ऐसी दशा में द्वेष और परायेपन की भावना बढ़कर वातावरण को नारकीय क्लेश-कलह से भर देगी और यह संसार अशान्ति एवं विनाश की काली घटाओं से घिरने लगेगा।

- ईसा ने सोचा कि यदि ईश्वर का पुत्र केवल शारीरिक सुखों के लिये जीवन-धारण किये रहेगा तो इस संसार में धर्म का राज्य कभी उदय न होगा। यदि अपने लिये ही जिया गया तो मनुष्य में पशुओं की अपेक्षा श्रेष्ठता कैसे बनी रहेगी, यह अनुभव करते हुए, वे इसी निर्णय पर पहुँचे कि हमें अपने लिए नहीं प्रभु के लिए जीना चाहिए। अस्तु, ईसामसीह घर छोड़कर चल दिये और वन, पर्वतों और ग्राम, नगरों में धर्म का प्रचार करते हुए भ्रमण करने लगे। ईश्वर का पुत्र अपने लिए नहीं ईश्वर के लिए ही जी सकता है, इसके अतिरिक्त उसके पास और दूसरा मार्ग ही क्या है ? —टालस्टाय
- अन्तःकरण मनुष्य का सबसे सच्चा मित्र, निःस्वार्थ पथ-प्रदर्शक और वात्सल्यपूर्ण अभिभावक है। वह न कभी धोखा देता है, न साथ छोड़ता है और न उपेक्षा करता है। पग-पग पर मनुष्य को सजग एवं सचेत बनाता हुआ सही मार्ग पर चलने का प्रयत्न किया करता है। अपने अन्तःकरण पर विश्वास करके चलने वाले व्यक्ति न कभी पथभ्रष्ट होते हैं और न किसी आपत्ति में पड़ते हैं। आपत्तियों का आगमन तब ही होता है, जब मनुष्य अपने सच्चे शुभचिन्तक अन्तःकरण पर अविश्वास करता है।
- अन्तःकरण पर अविश्वास करने का मतलब है कि ईश्वर के आदेश पर अविश्वास करना। ईश्वर के आदेश पर अविश्वास करने वाला धृष्ट उसकी सृष्टि इस संसार और अपर संसारों में यदि सुख की आशा करता है तो वह अपने समय का सबसे बड़ा मूर्ख है। जब साधारण शासक के आदेश की अवहेलना करने वाला दण्ड का अधिकारी बने बिना नहीं रह सकता, तब शासकों के भी शासक उस परमात्मा के आदेशों की अवहेलना किस प्रकार अदण्डनीय हो सकती है ? —स्वामी विवेकानन्द

- परमात्मा से प्रेम होना ही प्राणी की सबसे बड़ी उपलब्धि है। परमात्मा में प्रीति होते ही प्राणी की सारी कामनाएँ परितृप्त हो जाती हैं। उसके दुःख-दारिद्र्य प्रकाश की उपस्थिति में अन्धकार के समान दूर हो जाते हैं। प्राणी आत्म-तुष्ट हो जाता है। उसकी सारी क्षुब्धताएँ मिट जाती हैं। जीवन में अनन्त और अक्षय सुख का सागर लहरा उठता है।
- परमात्मा के प्रति प्रेम ही सच्चा प्रेम है अन्य सारे आकर्षण वासनाएँ हैं, जिनका सुख क्षणिक और परिणाम में दुःखकारक है। जिस प्रेम में अनन्तता, अक्षयता और निरपेक्षता न हो, जो पवित्रता और समरूपता से रहित हो वह प्रेम नहीं मोह है ! वास्तविक और नित्य नवीनता वाला प्रेम केवल ईश्वरविषयक ही हो सकता है, संसार-विषयक नहीं !
- परमात्मा के प्रति प्रेम रखने वाला अपने सच्चे स्वरूप को जान लेता है और अन्य प्राणियों की वास्तविकता को समझ लेता है, जिससे उसके भीतर विश्वप्रेम की भावना जाग्रत हो जाती है।
- परमात्मा के प्रति प्रेम रखने वाला जीवन के सत्य को पहचान लेता, आत्मा के दिव्य-दर्शन कर लेता है और उसे एक ऐसी अहेतुक परितृप्ति प्राप्त हो जाती है कि फिर किसी वस्तु की कामना नहीं रहती। —महर्षि रमण
- शिवा का प्रश्न—‘परमात्मा की सबसे सरल उपासना कौन-सी है’, मुझे बहुत प्यारा लगा। यह बात सबके जानने की है। जो दूसरों की भलाई में निरत रहता है; वह भगवान की ही भक्ति करता है। परोपकार से बढ़कर और कोई उपासना नहीं। वह सरल भी है, उत्तम भी है और सुखदायक भी। परोपकार करने में आत्मा की प्रसन्नता इतनी बढ़ जाती है कि रोमांच हो आता है, तो फिर उसका फल तो और भी स्वर्गीय सुखों से भरा हुआ होगा। भलाई साक्षात् परमात्मा का निराकार स्वरूप है। लोग यह मानते हैं कि शिवाजी मेरी भक्ति करता है, इसलिये वह मुझे बहुत प्रिय है। मुझे सचमुच शिवाजी अच्छा लगता है, किन्तु शरीर से नहीं काम से। उसके गुण और उसका चरित्र बहुत ऊँचे दर्जे के हैं। उसने लोगों की भलाई के लिए अपने जीवन को सौंपा था, मैंने

उसे एक रास्ता बता दिया। अब वह निष्काम-भावना से सब काम करता है, उस काम को नहीं करता, जिससे मानवता का अहित होता हो, इसलिये वह भगवान का सच्चा भक्त है। मैं चाहता हूँ कि भारतवर्ष के सब बच्चे मेरे प्रिय शिष्य शिवा की तरह बन जाएँ। भलाई के रास्ते में प्रिय-अप्रिय जो कुछ भी आये, वीरतापूर्वक सहन करने वाले बन जाएँ। उससे भगवान की यह दुनिया बहुत अच्छी बनेगी। भगवान का प्यार और आशीर्वाद भी मिलेगा।

कोई कल्पवृक्ष है तो उसका बीज परोपकार है। परोपकारी सबका हृदय जीत लेता है। सभी का सहयोग उसे मिलता है। शिवा ने थोड़ी ताकत से ज्यादा विजय पाई है क्योंकि उसे भगवान का आशीर्वाद मिला है और मनुष्यों का प्यार व सहयोग। यदि संसार के सारे मनुष्य परोपकार में तत्पर हो जाएँ, तो संसार कितना सुन्दर और सुखपूर्ण बन जाए ?

—समर्थ गुरु रामदास

- मनुष्य के सारे अच्छे-बुरे कार्यों का साक्षी उसका अन्तःकरण ही है। अन्तःकरण के निर्णय की अवहेलना करके जो मनमानी करता है, वह अवश्य ही अपने लिए विनाश के बीज बोता है।

- मानव का अन्तःकरण उसके शरीर का कोई अवयव मात्र नहीं है। वह मानव शरीर में ईश्वर का प्रतिनिधि है, जो हर समय मनुष्य के कर्मों का लेखा-जोखा तैयार करता है। मनुष्य का अन्तःकरण एक ऐसा अलौकिक यन्त्र है, जिसके माध्यम से ईश्वर मनुष्य के लिये अपना सन्देश भेजा करता है। मनुष्य से वार्तालाप किया करता है। अब यह मनुष्य का अपना दुर्भाग्य है कि वह इस ईश्वरीय यन्त्र की कद्र न करके उनको दूषित बना देता है, जिससे वह दिव्य सन्देश को नहीं सुन पाता।

- जिस प्रकार पवित्र, निर्विकार एवं निर्मल अन्तःकरण ईश्वर का सन्देशवाहक है, उसी प्रकार मलीन एवं दूषित अन्तःकरण पैशाचिकता का केन्द्र है, नारकीय खण्डहर है, जिसमें पापात्माओं की प्रेतवाणी गूँजती रहती है, जो मनुष्य को पतन की ओर ही प्रेरित करती है।

—सन्त तिष्ठत्युवर

□ अपनी कठिनाइयाँ हमें पर्वत के समान दुर्भेद्य, सिंह और अन्धकार के समान डरावनी प्रतीत होती हैं, परन्तु यह सब यथार्थ में कुछ नहीं, केवल भ्रम की भावना मात्र है, इनसे डरने का कोई कारण नहीं। इस बात का शोक मत करो कि मुझे बार-बार असफल होना पड़ता है। परवाह मत करो, क्योंकि समय अनन्त है। बार-बार प्रयत्न करो और आगे की ओर कदम बढ़ाओ। निरन्तर कर्तव्य करते रहो, तुम्हारा एक-एक पग सफलता की ओर बढ़ रहा है, आज नहीं तो कल तुम सफल होकर रहोगे, क्योंकि कर्तव्य का निश्चित परिणाम सफलता है।

□ सहायता के लिये दूसरों के सामने मत गिड़गिड़ाओ, क्योंकि यथार्थ में किसी में भी इतनी शक्ति नहीं है, जो तुम्हारी सहायता कर सके। किसी कष्ट के लिये दूसरों पर दोषारोपण मत करो, क्योंकि यथार्थ में कोई भी दूसरा तुम्हें दुःख नहीं पहुँचा सकता। तुम स्वयं ही अपने मित्र हो और तुम स्वयं ही अपने शत्रु हो। जो कुछ भली-बुरी स्थितियाँ सामने हैं तुम्हारी पैदा की हुई हैं। अपना दृष्टिकोण बदल दोगे तो दूसरे ही क्षण यह भय के भूत अन्तरिक्ष में तिरोहित हो जावेंगे।

मित्रो ! किसी से मत डरो, क्योंकि तुम तुच्छ जीव नहीं हो। अपनी ओर देखो, अपनी आत्मा की ओर देखो। मिमियाना छोड़ो और दहाड़ते हुए कहो, 'सोऽहम्' मैं वह हूँ जिसकी सत्ता से यह सब कुछ हो रहा है। —स्वामी रामतीर्थ

□ जब कभी अकस्मात् ऐसा आभास हो कि आपको किसी ने आवाज दी है और आस-पास देखने और खोजने वाले का पता न चले तो निश्चित रूप से समझ लीजिये कि आपको अपनी अन्तरात्मा ने आवाज दी है और उस आवाज का केवल एक ही तात्पर्य है 'कि ऐ अमुक ! अपने को समझ और मुझको पहचान !' अपने को समझने का अर्थ है—यह देखो कि हम अपने लक्ष्य के प्रति ईमानदार हैं या नहीं ? यदि नहीं तो तत्काल ही विवेचन करके उन्हें सुधारिए और एक नये उत्साह से लक्ष्य की ओर बढ़ते जाइये। आत्मा तुम्हारे भीतर तुम्हारे हर विवरण लेने के लिए जागरूक

है, साथ ही वह एक सजग प्रहरी की तरह एक दीपक लिए तुम्हारे पथ में प्रकाश बिखेर रही है। डरो मत, तुम्हारे पथ में अन्धकार तो तब हो जाता है, जब कोई आँख बन्द करके चलता है, जिसकी आँखें ठीक खुली हैं, उसके सामने अन्धकार का कोई प्रश्न नहीं है। कोई भी किसी को सावधान करने और अपनी ओर उन्मुख करने को ही आवाज देता है। आत्मा की आवाज भी इसलिये कभी-कभी सुनाई देती है कि मनुष्य सावधान होकर ठीक-ठीक उसकी ओर उन्मुख हो। समय तेजी से गुजर रहा है इसलिये वह प्रमाद से सावधान होकर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर है। जिन्होंने आत्मा की आवाज सुनी, इसका अनुसरण किया, उन्होंने ही मानव जीवन को सार्थक बनाया है और जो उसकी उपेक्षा करते रहे, उन्हें हाथ मलकर पछताते रह जाना पड़ा है। —सन्त तिळकगुप्त

□ अष्टसिद्धियाँ तो उन छोटे-छोटे कीड़ों में भी वर्तमान हैं, जो चलते समय पैरों के नीचे दबकर मर जाते हैं। मनुष्य यदि सिद्धियाँ प्राप्त करने की बात सोचे तो असामान्य नहीं मानेंगे। वास्तव में सिद्धियाँ प्राप्त करने की नहीं, वह तो स्वाभाविक गुण के रूप में आत्मा में सदैव ही विद्यमान हैं। परमात्मा ने हमें शरीर रूपी यंत्र दिया है, वह उसी की अनुभूति में प्रयुक्त होना चाहिए था पर आधार के अनुपयुक्त प्रयोग के कारण हम आत्मा के उन दिव्य गुणों के प्रकाश से वञ्चित रह जाते हैं। सिद्धियों की खोज में उचित साधन को भूल जाने के कारण न तो सिद्धियाँ मिल पाती हैं और न शांति। मनुष्य बीच में ही लड़खड़ाता है।

□ पातञ्जलि योगसूत्र (४-३) में एक जगह कहा है— निमित्तमन्वयोजकं प्रकृतीनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकम् । अर्थात् जिस प्रकार खेत में पानी लाने के लिये केवल मात्र मेंड़ काटकर उसका जल-स्रोत से सम्बन्ध जोड़ देने से खेत में पानी प्रवाहित होने लगता है, उसी प्रकार जीवात्मा में पूर्णता, पवित्रता और सारी शक्तियाँ पहले से ही विद्यमान हैं। हमें शरीर और मन के भौतिक बन्धनों की मेंड़ काटकर उसका सम्बन्ध भर, आत्मा से जोड़ने की आवश्यकता है। एक बार यदि शरीर और मन के सुखों की ओर से ध्यान हटकर आत्मा में केन्द्रित हो जाये, तो आत्मा की सम्पूर्ण शक्तियाँ और

विभूतियाँ जीव को एक स्वाभाविक धर्म की तरह उपलब्ध हो जाती हैं। ऐसा न करने तक उसके और सामान्य कीड़े-मकोड़ों के जीवन में किसी प्रकार का भी अन्तर नहीं।

—स्वामी विवेकानन्द

- जापान में जहाँ देवदारु के पेड़ तीन-चार सौ फीट तक ऊँचे होते हैं, वहाँ कुछ ऐसे भी होते हैं जो बहुत पुराने होने पर भी दो-चार फीट के ही रह जाते हैं। इन बौने पेड़ों के बारे में मुझे बड़ा अचम्भा हुआ और उनके न बढ़ने का कारण मालूम किया तो बताया गया कि जापानी लोग जान-बूझकर कौतूहलवश इन्हें छोटा बनाये रहते हैं; अपनी कारिस्तानी से बढ़ने नहीं देते। कारिस्तानी यह कि वे पेड़ की टहनियाँ और पत्तों को जरा भी नहीं छेड़ते, पर उसकी जड़ों को जमीन में बढ़ने नहीं देते और उनकी बराबर काट-छाँट करते रहते हैं।

इनसानों में से अनेकों ऐसे होते हैं जिन्हें बहुत छोटा या ओछा कहा जाता है। जापान के देवदारु पेड़ों की तरह उनकी भी जड़ें भीतर कटती रहती हैं और वे बौनी जिन्दगी बिताते रहते हैं। जो पेड़ बढ़ना और फलना-फूलना चाहता है, उसकी जड़ों को गहराई तक जाना जरूरी है। जो मनुष्य उन्नतशील बनना चाहता है, उसके लिए यही उचित है कि अन्तरात्मा की जमीन में सदगुणों की जड़ों को निरन्तर बढ़ता चले; जब तक जड़ें न बढ़ेंगी पेड़ के बढ़ने और फलने-फूलने की आशा कैसे की जा सकती है ?

—स्वामी रामतीर्थ

- इस विश्वब्रह्माण्ड में आत्मा केवल एक है और वही हम, तुम तथा संसार के अन्य समस्त प्राणियों के शरीर में प्रतिबिम्बित होती है और वह भिन्न-भिन्न आत्माओं के रूप में प्रदर्शित है। परन्तु हम यह बात नहीं जानते। हमारी धारणा है कि हम सब एक-दूसरे से भिन्न हैं और उसमें—ईश्वर से भी भिन्न हैं। जब तक हमारी यह धारणा बनी रहेगी, तब तक संसार से दुखों का भी अन्त न होगा। यह भ्रांति है। जिस समय पानी के लाखों बुदबुदों पर सूर्य की प्रतिमूर्तियाँ दिखाई देती हैं, तब हर एक बुदबुदे में सूर्य की अविकल मूर्ति परिलक्षित होती है। इस प्रकार उस समय हमें लाखों सूर्य

दिखाई पड़ते हैं, यद्यपि वास्तविक सूर्य केवल एक ही है। इस प्रकार यह माया-विशिष्ट आत्मा जो कि हममें से प्रत्येक प्राणी के अन्तःकरण में वर्तमान है, ईश्वर की प्रतिमा मात्र है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वास्तविक सत्ता जो कि अन्तराल में है एकमात्र ईश्वर है। उसके समीप हम सभी लोग एक हैं।

—सन्त बास्थानी

- एक दिन मैं किसी पहाड़ी से गुजर रहा था। एक बड़ा विशाल बरगद का पेड़ खड़ा तलहटी की शोभा बढ़ा रहा था। उसे देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। संसार में कैसे-कैसे सामर्थ्यवान लोग हैं, ऐसे लोग दूसरों का कितना हित करते हैं ? इस तरह सोचता हुआ मैं आगे बढ़ गया।

कुछ दिन बीते उसी रास्ते से पुनः लौटना चाहा। जब उस पहाड़ी पर पहुँचा तो वहाँ वह वृक्ष न देखकर बड़ा विस्मय हुआ। ग्रामवासियों से पूछने पर पता चला कि दो दिन पहले तेज तूफान आया था, वृक्ष उसी में उखड़कर लुढ़क गया। मैंने पूछा—“भाई वृक्ष तो बहुत मजबूत था फिर वह उखड़ कैसे गया ?” उन्होंने बताया—“उसकी विशालता दिखावा मात्र थी। भीतर से तो वह खोखला था। खोखले लोग हल्के आघात भी सहन नहीं कर सकते।”

तब से मैं बराबर सोचा करता हूँ कि जो बाहर से बलवान किन्तु भीतर से दुर्बल हैं, ऐसे लोग संसार में औरों का हित तो क्या कर सकते हैं, वे स्वयं अपना ही अस्तित्व सुरक्षित नहीं रख सकते। खोखले पेड़ की तरह एक ही झींके में उखड़कर गिर जाते हैं और फिर कभी ऊपर नहीं उठ पाते। जिसके पास भावनाओं का बल है, साहस की पूँजी है, जिसने मानसिक शक्तियों को, संसार की किसी भी परिस्थिति से मोर्चा लेने योग्य बना लिया है, उसे विपरीत परिस्थितियों से लड़ने में किसी प्रकार परेशानी अनुभव न होगी। भीतर की शक्ति सूर्य की तेजस्विता के समान है, जो घने बादलों को चीरकर भी अपनी शक्ति और अस्तित्व का परिचय देती है। हम में जब तक इस तरह की आन्तरिक शक्ति नहीं आयेगी तब तक हम उस खोखले पेड़ की तरह ही उखड़ते

रहेंगे, जो उस पहाड़ी पर उखड़कर गिर पड़ा था।
—मुभाषचन्द्र बोस

- आत्मा का स्वरूप आनन्दमय है। जिसे आत्म-ज्ञान हो जाता है, उसे निरन्तर आनन्दित ही देखा जा सकता है। आध्यात्मिकता का दूसरा नाम है—प्रसन्नता। जो प्रसन्न नहीं रह सकता उसने न आत्मा को जाना और न ईश्वर को। शोकसंतप्त-उद्विग्न और विक्षुब्ध व्यक्ति तो अनात्मतत्त्वों के वाहन मात्र हैं। जो क्रोध से झल्लाया करता है, जिसे खीज और आवेश का बार-बार शिकार होना पड़ता है, उसकी आस्तिकता संदिग्ध ही मानी जाएगी।

- इस संसार में सब कुछ हँसने के लिए उपजाया गया है। जो बुरा और अशुभ है, वह हमारी प्रखरता को चुनौती के रूप में है। परीक्षा के प्रश्न-पत्रों को देखकर जो छात्र रोने लगे, उसे अध्ययनशील नहीं माना जा सकता। जिसने थोड़ी-सी आपत्ति-असफलता एवं प्रतिकूलता को देखकर रोना-धोना शुरू कर दिया उसकी आध्यात्मिकता पर कौन विश्वास कर सकता है? प्रतिकूलता हमारे साहस को बढ़ाने, धैर्य को मजबूत करने और सामर्थ्य को विकसित करने आती है। सामान्य जिन्दगी यदि विकसित न हो सके तो यह सबसे भदे ढंग की ही होगी क्योंकि वह जो सरलतापूर्वक दिन गुजारता रहता है, उसमें न तो किसी प्रकार की विशेषता रह जाती है और न प्रतिभा। संघर्ष के बिना भी भला कहीं, इस दुनिया में किसी का जीना सम्भव हुआ है।

नई उपलब्धियों में हमें हँसना चाहिए, अब तक मिल चुका उससे सन्तोष व्यक्त करना चाहिए और भविष्य की शुभ सम्भावनाओं की कल्पना करके सदा प्रमुदित होते रहना चाहिए। रोना एक अभिशाप है, जो केवल अविवेकी लोगों को शोभा देता है। जिसे आत्मा के स्वरूप का ज्ञान है और परमात्मा की महत्ता, कुशलता और विनोद को समझता है, उसे हँसने-मुसकराने की परिस्थितियों के अतिरिक्त और कुछ इस जीवन में अनुभव ही क्या हो सकता है ?

—मधुर्षि रमण

- जीवन का हर प्रभात एक सच्चे मित्र की तरह, नित्य अभिनव उपहार लेकर आता है। वह

चाहता है कि आप वह उपहार ग्रहण करें और उससे अपने शुभ दिन का श्रृंगार करें। उसकी इच्छा रहती है कि जब दूसरे दिन वह आये तो आपका एक बढ़ा हुआ कदम देखे और उसके दिये हुए उपहारों के ठीक उपयोग के साथ नये उपहार लेने के लिए प्रस्तुत पाये ! किन्तु जब आदरपूर्वक उठकर उत्साह से उसका स्वागत नहीं किया जाता है तो वह निराश होकर द्वार से लौट जाता है और दूसरे दिन आने में न उसको वह उत्साह रहता है और न उसके उपहारों में वह सौन्दर्य ! बार-बार निराश होने पर वह आता और अपरिचित राही की तरह द्वार के सामने से निकल जाता है। ईश्वर मनुष्य को समय एक साथ इकट्ठा न देकर क्षणों के रूप में देता है। एक नया क्षण देने के पूर्व वह पुराना क्षण वापस ले लेता है। अतएव मिले हुए प्रत्येक क्षण का ठीक-ठीक सदुपयोग करो, जिससे तुम्हें नित्य नए क्षण मिलते रहें।

पास ही क्षितिज तट पर तुम्हारा लक्ष्य जगमगा रहा है किन्तु उसको तुम स्पष्ट नहीं देख पाते, क्योंकि उस पर तुम्हारी कमजोरियों के बादल छाये हुए हैं।
—रवीन्द्रनाथ टैगोर

- आज का संसार अन्धविश्वासों और मूढ़ मान्यताओं की जंजीरों में जकड़ा हुआ है। इन जंजीरों से जकड़े हुए लोगों की दयनीय स्थिति पर मुझे तरस आता है। एक विचार जो मुझे दिन में निकले सूरज की तरह स्पष्ट दिखाई दे रहा है, वह यह है कि—व्यक्ति तथा समाज के समस्त दुःख उनमें समाये हुए अज्ञान के कारण ही हैं। अज्ञान का अन्धकार मिटे बिना सब लोग ऐसे ही भटकते और ठोकरें खाते रहेंगे। संसार में प्रकाश कहाँ से उत्पन्न हो ? यह प्रक्रिया बलिदानों द्वारा सम्भव होती रही है। बलिदानी वीर अपना उदाहरण प्रस्तुत कर लोगों के सामने एक परम्परा उपस्थित करते हैं, फिर दूसरे उन पदचिह्नों पर चलने लगते हैं। प्रकाश उत्पन्न करने की यह परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है। इस धरती पर जो सच्चे शूरवीर अथवा उत्तम व्यक्ति उत्पन्न होते रहे हैं, उन्होंने त्याग और बलिदान का मार्ग ही अपनाया है क्योंकि अपने सुख को बलिदान

करने से ही दूसरे के सुख की सम्भावना उत्पन्न होती है। इस युग में शाश्वत प्रेम और अनन्त करुणा से भरे प्रबुद्ध हृदयों की जितनी अधिक आवश्यकता है, उतनी पहले कभी नहीं रही। साहसपूर्ण कदम उठाने की आज जितनी आवश्यकता है उतनी पहले कभी नहीं रही।

इसलिए, ए प्रबुद्ध आत्माओ ! उठो , संसार दुःख-दारिद्र्य की ज्वाला में झुलस रहा है। क्या तुम्हें ऐसे समय में भी सोते रहना शोभा दे सकता है ? प्रकाश आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है और वह तुम्हारे जागरण एवं बलिदान से ही उत्पन्न होगा। —स्वामी विवेकानन्द

□ मनुष्य-जीवन एक खेत है, जिसमें कर्म बोये जाते हैं और उन्हीं के अच्छे-बुरे फल काटे जाते हैं। जो अच्छे कर्म करता है वह अच्छे फल पाता है, बुरे कर्म करने वाला बुराई समेटता है, कहावत है—‘आम बोयेगा वह आम खायेगा, बबूल बोयेगा कौंटे पायेगा।’ बबूल बोकर जिस तरह आम प्राप्त करना प्रकृति का सत्य नहीं, उसी प्रकार बुराई के बीज बोकर भलाई पा लेने की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

मनुष्य-जीवन में भी सत्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। भलाई का फल सुख, शांति और प्रगति के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता, वैसे ही बुराई का प्रतिफल बुराई न हो—ऐसा आज तक न कभी हुआ, न आगे होगा। इतिहास साक्षी है कार्य कभी कारण रहित नहीं होते और उसी तरह कोई भी क्रिया परिणाम रहित नहीं होती। स्थूल और सूक्ष्म दोनों दृष्टि से सृष्टि का यह मौलिक नियम है कि भाग्य कभी अपने आप नहीं बनते वरन् वह व्यक्ति के कर्मों की कलम से लिखे जाते हैं। अच्छा या बुरा भाग्य सदैव अपने ही कर्म का फल होता है।

□ व्यक्ति हो, समाज या राष्ट्र हो बुराई से पनपा यह एक भ्रम है। जीवन हर क्षण का लेखा-जोखा रखता है। यदि कोई यह समझता है कि जाली नोट की तरह नकली सफलताएँ प्राप्त की जा सकती हैं और वे चाहे जब बदली जा सकती हैं, तो मिथ्या कल्पना है। जो जल कीचड़ में बहेगा, वह दुर्गन्धरहित नहीं

होगा—जल होने का भ्रम उत्पन्न करके भी वह पेय नहीं बन सकता। उसी तरह धोखे की असफलताएँ अन्ततः पतन और अपयश का ही कारण बनती हैं। अन्त तक साथ देने वाली सफलता भलाई की है। उसी से मनुष्य का इहलोक और परलोक सुघरता है। कर्मफल तो अकाट्य है। —स्वामी विवेकानन्द

□ एक बीज डाला जाता है, तब वृक्ष खड़ा होता है। बीज सारे वृक्ष का मूल है। मनुष्य जीवन का भी एक वैसा ही मूल है, चाहे उसे परमात्मा कहें, ब्रह्म या चेतना-शक्ति। जीवन के मूल-स्रोत से बिभुड जाने के कारण ही मनुष्य शांति और जीवन की पवित्रता से अलग पड़ जाता है। मृत्यु के भय और जड़त्व के शून्य में निर्वासित हो जाता है।

मनुष्य अपने आपको जीवन के मूल-स्रोत के साथ संयुक्त कर देता है तो वह विशाल प्रजा के सुख-दुःख के साथ एक तन हो जाता है। समष्टि में डूबकर व्यक्तिगत अहंता, स्वार्थ-संग्रह, हिंसा, छल की क्षुद्रताओं से बच जाता है। स्रोत के साथ एकात्म हो जाने पर मृत्यु, शून्यता और एकाकीपन का भय तिरोहित होता है।

□ वृक्ष का गुण है चारों ओर फैलना। हम भी फैलें। घर, परिवार, समाज, देश और विश्व के साथ प्रेम करें, स्नेह करें। आदर और सद्भाव भरें। किसी को छया की आवश्यकता होती है, उसे छया दें, सहारे की आवश्यकता होती है, उसे सहारा दें। अपनी व्यष्टि को विश्व-आत्मा के साथ घुलाने के लिये जितना फैल सकते हों, हमें फैलना चाहिए। वह हमारे जीवन का धर्म है। समष्टि में अपने को विसर्जित कर देना ही जीवन की सार्थकता है।

किन्तु जब हम फैलें तब भी अपने मूल-स्रोत को न भूलें, नहीं तो फिर उसी जड़ता और भय में खो जाएँगे, जिसमें निकलने के लिये ही मनुष्य जीवन का आविर्भाव हुआ है।

—रोम्बो रोलाँ

□ क्या तुम जानते हो कि सत्य, शिव, सुन्दर और मुक्त आत्मा इन हड्डियों की ठठरी में बद्ध होने के लिए क्यों रजामंद हुआ ? सुनो, वह प्रेम का अमृत चखने के लिए इस मल-मूत्र की गठरी में बँधा है। उसी का जीवन धन्य है,

वही सौभाग्यशाली है, जो प्रेम का आस्वादन करता है, उसने मनुष्य जन्म धारण करने का सच्चा फल पाया, जिसे परमेश्वर ने प्रेम का अलौकिक उपहार प्रदान किया है। प्रेम की बूँद हृदय की सीप में पड़कर कैसे अमूल्य मोती उपजाती है ? इसे कुँजड़े नहीं जौहरी ही जान सकते हैं। प्रेमी अपने लिए नहीं जीता, वह दधीचि की तरह अपनी हड्डियों भी दूसरों को दे देता है। क्यों ? इसलिए कि दूसरों को प्यार करता है। वे मूर्ख हैं, जो कहते हैं कि सज्जनों के साथ प्रेम और दुष्टों के साथ द्वेष करना चाहिए। वे नहीं जानते कि द्वेष का हथियार इतना पैना नहीं है जितना प्रेम का। बिना हड्डी के जीवों का अस्तित्व अस्थिर है, इसी प्रकार प्रेमरहित मनुष्य का जीवन डौंवाडोल है। आँधी में उड़ने वाली रूई की तरह वह परिस्थितियों के वश में होकर उधर से इधर नाचता-फिरता है और अन्त में नष्ट हो जाता है। सौन्दर्य बाहर कहाँ ढूँढ़ते फिर रहे हो ? अपने हृदय को टटोलो, जरा देखो तो सही उसमें कितना सुन्दर प्रेम का रस भरा है ? अन्यथा मनुष्य क्या है ? मुट्ठीभर हड्डियों का ढाँचा मात्र है।

—हक्काले

- भौतिक प्रगति के लिए बलिष्ठ शरीर, प्रशिक्षित मस्तिष्क, आकर्षक व्यक्तित्व, अभीष्ट उपार्जन, परिपूर्ण परिवार, आवश्यक वातावरण तथा अनुकूल अवसर की अपेक्षा रहती है। ये साधन जिसे जितने मिल जाते हैं, वह उतनी ही लौकिक सफलता प्राप्त कर लेता है।

आत्मिक प्रगति का मूल्य महत्त्व, सुख एवं प्रतिफल भौतिक सफलताओं की अपेक्षा सहस्रों गुना अधिक है। इतने पर भी उसके लिए दो ही साधन पर्याप्त हैं। एक भावनापूर्ण उपासना, दूसरा जीवन को उत्कृष्ट, अनुकरणीय बनाने की साधना। इन दोनों के लिए यदि स्थिरमति और प्रगाढ़निष्ठा के साथ प्रयत्न किया जाय तो निस्संदेह आत्मिकप्रगति भी इसी तरह मिल सकती है, जैसी कि भौतिक प्रगति।

- जीवन की महत्ता और सफलता उसकी आत्मिक प्रगति पर निर्भर है। भौतिक सफलताएँ उतनी देर ही आनन्द देती हैं, जब तक कि उनकी प्राप्ति नहीं होती है। जैसे ही वे मिलीं कि उनका आनन्द समाप्त हुआ। सच्चा और

चिरस्थायी सुख और लाभ आत्मिक प्रगति पर ही अवलम्बित है। इसलिए जो मानव-जीवन का श्रेष्ठतम सदुपयोग करना चाहते हैं और जिस आनन्द के लिए यह जन्म मिला है, उसे प्राप्त करने के इच्छुक हैं, उन्हें आत्मिक प्रगति के लिए तत्पर होना चाहिए और उसके दोनों आधारों का (उपासना और साधना का) अवलम्बन ग्रहण करना चाहिए।

—स्वामी कृष्णानन्द

- मनुष्य अपने आपमें एक परिपूर्ण इकाई है। उसमें वे समस्त शक्तियाँ और सम्भावनाएँ जन्मजात रूप में विद्यमान हैं, जिनके आधार पर किसी भी दिशा में पूर्णता एवं सफलता के उच्चशिखर पर पहुँचना सम्भव हो सकता है।

समस्त दैवीशक्तियों का प्रतिनिधित्व मनुष्य की अन्तःचेतना करती है। प्रसुप्त पड़ी रहने पर वह भले ही अपना गौरव प्रकट न कर सके पर जब वह जाग जाती है तो यही अन्तःचेतना व्यक्तित्व में अगणित ऐसे सद्गुण प्रस्फुटित करती है, जिनसे किसी दिशा में चमत्कार प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

बाहरी हानि-लाभ, सहयोग और अवरोध मनुष्य की प्राप्ति एवं अवगति के उतने बड़े कारण नहीं, जितने कि अपने आन्तरिक सद्गुण एवं दुर्गुण। व्यक्ति स्वयं ही अपने उत्थान-पतन का उत्तरदायी है। जिसने अपने को समझा, सँभाला और बढ़ाया वह निश्चित रूप से प्रगति के पथ पर अग्रसर हुआ है। अपने भीतरी शक्ति-कोष को जगाने पर मनुष्य अपरिमित दिव्य-शक्तियों से विभूषित हो सकता है।

बाहरी सहायता की अपेक्षा करने की तुलना में यह अच्छा है कि मनुष्य अपने भीतर छिपी सत्प्रवृत्तियों को ढूँढ़े एवं उभारे। प्रगति का सारा आधार व्यक्ति की अन्तःचेतना और भावनात्मक स्फुरण पर ही तो अवलम्बित है।

—जे. कृष्णवृत्ति

- कुछ लोग धनी बनने की वासना रूपी अग्नि में अपनी समस्त शक्ति, समय, बुद्धि, शरीर यहाँ तक कि अपना सर्वस्व स्वाहा कर देते हैं। यह तुमने भी देखा होगा। उन्हें खाने-पीने तक की भी फुरसत नहीं मिलती। प्रातःकाल जब पक्षी चहकते और मुक्तजीवन का आनन्द लेते हैं, तब

वे काम में लग जाते हैं। इसी प्रकार उनमें से नब्बे प्रतिशत लोग काल के कराल गाल में प्रविष्ट हो जाते हैं। शेष को पैसा मिलता है पर वे उसका उपभोग नहीं कर पाते। कैसी विलक्षणता है ? धनवान बनने के लिये प्रयत्न करना बुरा नहीं। इससे ज्ञात होता है कि हम मुक्ति के लिये उतना ही प्रयत्न कर सकते हैं, उतनी ही शक्ति लगा सकते हैं, जितना एक व्यक्ति धनोपार्जन के लिये।

मरने के बाद हमें सभी कुछ छोड़ जाना पड़ेगा, जिस पर भी देखो हम इनके लिये कितनी शक्ति व्यय कर देते हैं। अतः उन्हीं व्यक्तियों को, उस वस्तु की प्राप्ति के लिये जिसका कभी नाश नहीं होता, जो चिरकाल तक हमारे साथ रहती है, क्या सहस्रगुनी अधिक शक्ति नहीं लगानी चाहिए ? क्योंकि हमारे अपने शुभ कर्म, अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियाँ—यही सब हमारे साथी हैं, जो हमारी देहनाश के बाद भी साथ जाते हैं। शेष सब कुछ तो यहीं पड़ा रह जाता है।

यह आत्म-बोध ही हमारे जीवन का लक्ष्य है। जब उस अवस्था की उपलब्धि हो जाती है, तब यही मानव—देव-मानव बन जाता है और तब हम जन्म और मृत्यु की इस घाटी से उस 'एक' की ओर प्रयाण करते हैं, जहाँ जन्म और मृत्यु—किसी का अस्तित्व नहीं है। तब हम सत्य को जान लेते हैं और सत्यस्वरूप बन जाते हैं।

—स्वामी विवेकानन्द

- जब कोई शिल्पी किसी मूर्ति को बनाता है, तब उसका यही ध्येय रहता है कि उसकी रचना इतनी सजीव, इतनी सुन्दर और इतनी पूर्ण बने कि जिसे देखकर लोग ठगे रह जावें और जिन हाथों ने उसे तैयार किया है, उनकी प्रशंसा किये बिना न रहें।

जब एक साधारण शिल्पी की यह भावना हो सकती है, तब उस परमशिल्पी, निस्पृह एवं निर्विकार शिल्पी परमात्मा की भावना में यह शंका कैसे की जा सकती है कि मनुष्य की रचना करते समय उसका यह भाव न रहा होगा कि उसकी रचना भी उसके ही अनुरूप सुन्दर और महान हो। तब क्या कारण है कि परमात्मा की रचना मनुष्य ही सबसे निकृष्ट

सिद्ध होती जा रही है। उसने जीवन को इतना कुरूप, कलुषित बना डाला है कि जिसे देखकर उसका रचयिता अवश्य लज्जित हो रहा होगा। मनुष्य अपने कुकर्म से रचयिता की बदनामी कर रहा है। कितना अच्छा होता है किसी शिल्पी की प्रस्तरमूर्ति के समान मनुष्य भी अपने निर्माण को यथावत, सुन्दर रखकर अपने रचयिता को प्रसन्न करता।

—बाल्डविन

- प्रेम की गति मनुष्यों तक ही परिमित नहीं है, मानव-जाति की अपेक्षा अन्य सृष्टियों में सम्भवतः यह कम विकृत अवस्था में है। पुष्पों और वृक्षों को देखो। जब सूर्य अस्त हो जाता है और सब कुछ नीरव हो जाता है, तब क्षण भर के लिए शांत होकर बैठो और अपने आपको प्रकृति के साथ एक कर दो, तुम यह अनुभव करोगे कि पृथ्वी से, वृक्षों की जड़ के नीचे से प्रगाढ़ प्रेम और कामना से पूर्ण एक अभीप्सा ऊपर उठ रही है और यह अभीप्सा ऊपर की ओर बढ़ती हुई तथा वृक्षों के तन्तुओं में से संचार करती हुई उनकी उच्चतम शाखाओं तक में हो रही है—कामना उस किसी वस्तु के लिये जो प्रकाश को लाती और सुख फैलाती है, उस प्रकाश के लिये जो चला गया है और जिसको वे चाहते हैं कि फिर लौट आवे। वहाँ यह चाह इतनी पवित्र और तीव्र होती है कि यदि तुम वृक्षों में जो यह गति होती है, उसे अनुभव कर सको, तो तुम्हारी अपनी सत्ता भी उसी शांति, प्रकाश और प्रेम के लिये, जो यहाँ अभी तक अभिव्यक्त नहीं है, हार्दिक प्रार्थना करने लग जाएगी।

एक बार भी यदि तुम इस विशाल, विशुद्ध और सत्य दिव्य प्रेम के संस्पर्श में आ जाओ, यदि तुम इसको थोड़ी-सी देर के लिये भी और इसके लघुतम रूप का ही अनुभव कर पाओ, तो तुम यह अनुभव कर लोगे कि मनुष्य की वासना ने इसके स्वरूप को कितना नीच बना डाला है ?

—श्री माताजी

- वह मत करो, जिसके लिए पीछे पछताना पड़े। निरर्थक वस्तुएँ बड़ी मात्रा में एकत्रित कर लेने से भी क्या लाभ, जो उत्तम है उसका थोड़ा-सा संचय भी उत्तम है। अव्यवस्थित और असंयत रहकर सौ वर्ष जीने की अपेक्षा ज्ञान और धर्म पूर्वक एक वर्ष जीवित रहना अच्छा है। धुआँ

देकर देर तक सुलगती रहने वाली और कालिख उत्पन्न करती रहने वाली अग्नि की अपेक्षा थोड़ी देर उज्ज्वल प्रकाश देकर बुझ जाने वाली आग सराहनीय है।

- जिसने धर्म का आधार छोड़ दिया, जो निरंकुश और स्वेच्छाचारी की तरह सोचता और करता है, उससे दुष्कर्म ही बन पड़ेंगे, वह कुमार्ग पर चल सकेगा, धर्म-बन्धनों में अनेक स्थानों में बँधा हुआ मन ही उद्दण्ड घोड़े की तरह काबू में रह पाता है। ढालू जमीन पर फैलाया हुआ पानी जैसे ऊपर की ओर नहीं चढ़ता वैसे ही स्वेच्छाचारी मन न तो भली बातें सोचता है और न भले कार्य करता है। मन को कुमार्ग से रोकना ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। जिसने अपने ऊपर संयम कर लिया वह इस त्रैलोक्य का स्वामी है।

पाप की अवहेलना न करो। वह थोड़ा देखते हुए बड़ा अनिष्ट कर डालता है। आग की छोटी-सी चिंगारी भी मूल्यवान वस्तुओं के ढेर को जलाकर राख कर देती है। पला हुआ सोंप कभी भी डस सकता है। मन में छिपा हुआ पाप कभी भी हमारे उज्ज्वल जीवन का नाश कर सकता है।

—भगवान महावीर

- ईश्वर ने हमें अपनी सर्वोत्कृष्ट कृति के रूप में विनिर्मित किया है। वह अविश्वस्त एवं अप्रामाणिक नहीं हो सकता, इसलिए हमें अपने ऊपर विश्वास करना चाहिए। ईश्वर हमारे भीतर निवास करता है। जहाँ ईश्वर निवास करता है वहाँ दुर्बलता की बात क्यों सोची जानी चाहिए ? जब छोटा-सा शस्त्र या पुलिस कर्मचारी साथ होता है, तो विश्वासपूर्वक निश्चित रह सकना सम्भव हो जाता है, फिर जबकि असंख्य वज्रों से बढ़कर शस्त्र और असंख्य सेनापतियों से भी अधिक सामर्थ्यवान ईश्वर हमारे साथ है, तब किसी से डरने या आतंकित होने की आवश्यकता ही क्यों होनी चाहिए ?

- जो अपने ऊपर भरोसा करता है उसी का दूसरे लोग भी भरोसा करते हैं। जो अपनी सहायता आप करता है, उसी की ईश्वर भी सहायता करता है। जिसने अपने हाथ-पैर चलाना बन्द कर दिया उसका डूबना निश्चित

है। हो सकता है कि किसी निष्ठावान को भी कभी असफल होना पड़ा हो, पर संसार में आज तक जितने सफल हुए हैं, उनमें से प्रत्येक को आत्म-विश्वासी बनकर ही आगे बढ़ना पड़ा है। हो सकता है किसी किसान की फसल मारी जाय पर जिसे धान काटने का सौभाग्य मिला है, उनमें से प्रत्येक को बोने और सींचने की कठोर प्रक्रिया को अपनाना ही पड़ता है। आत्म-विश्वास शक्ति का स्रोत है। उसी के सहारे किसी के लिए आगे बढ़ना सम्भव हो सकता है। भाग्य का निर्माण ईश्वर नहीं आत्म-विश्वास करता है। जो निष्ठापूर्वक पुरुषार्थ में संलग्न है और हार-जीत की चिन्ता न करते हुए आगे ही बढ़ता जाता है, उस आत्म-विश्वासी के लिए पर्वतों को भी रास्ता देना पड़ता है।

—ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

संसार को विषवृक्ष कहा है, उसमें आपत्तियों भी नहीं हैं। यहाँ यंत्रवत सब कुछ चलता है, दूर रहते और न चाहते हुए भी कठिनाइयाँ आती हैं कष्ट घेर लेते हैं। फिर सारे जीवन भर का क्रम हो जाता है, उन कठिनाइयों से लड़कर अपने लिये सुख-सुविधा की स्थिति तैयार करना। इसी प्रयत्न में सारा जीवन बीत जाता है। जब पीछे मुड़कर देखते हैं, तब पश्चात्ताप होता है कि यह जीवन कठिनाइयों में ही बीत गया। न मिला सुख, न पाई शान्ति, मस्तिष्क में सुखों की तृष्णा का अम्बार लाद लिया।

दुःख का कारण क्या था ? यह एक विचारणीय बात है। सारे जीवन के क्रिया-कलापों को जब हम प्रकृति की माया के साथ तौलते हैं तब पता चलता है कि संसार समष्टि रूप में जैसा था हमने उसे अज्ञानवश वैसा ही नहीं लिया वरन् उसे अपने अनुकूल बनाने का प्रयत्न करते रहे। संसार इतना बड़ा है कि हम उसे अपने अनुकूल बना ही नहीं सकते थे, अपने इसी अज्ञान का फल दुःख रूप में मिला। हम इतने छोटे थे कि संसार की राजी में अपनी राजी मिलाकर सुखी रह सकते थे। यह ज्ञान का रास्ता ही उपयुक्त था। भीगी हुई लकड़ियों को आग नहीं जला पाती उसी प्रकार ज्ञान से भीगे मनुष्य को मानसिक दुःख वेदना नहीं दे सकते हैं। संसार समुद्र है

ज्ञान-युक्ति उसकी नौका है, जो इस नाव पर चढ़ लेता है, उसके सांसारिक दुःख भी मिट जाते हैं और वह संसार की यथार्थ स्थिति जान लेने के कारण जन्म-मरण के बन्धन से भी मुक्त हो जाता है।

- प्रेम की साथ, ज्ञान की खोज और विश्व-मानव की पीड़ा के प्रति असह्य करुणा—ये तीन आवेग ही मेरे जीवन का सञ्चालन करते रहे हैं।

एक विराट अन्तरिक्ष मेरे सामने खड़ा है, मेरा मन क्षुद्र कंकड़ के समान था, उस छोटे-से कंकड़ को बार-बार ज्ञान के इस अथाह सागर में तैराकर मैंने उसका रहस्य ढूँढ़ा, तारे क्यों चमकते हैं—इसे जानने के लिये मैंने विज्ञान के पन्ने पलटे और मनुष्य के हृदय में क्या है, इसके लिये शास्त्र देखे। मेरी जिज्ञासाएँ कभी शांत नहीं हुईं, क्योंकि मैं यह जानने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहा हूँ कि संसार का अन्तिम सत्य क्या है ?

उतनी ही लगन से मैंने प्रेम को ढूँढ़ा है। प्रेम मानव-अन्तःकरण को प्रकाश देने वाली ऐसी अमृत सत्ता है, जिसकी चाह क्रीट-पतंगों को है, उसमें जीवन के एकक्रीपन से उत्पन्न ऊब और बकावट को मिटाने की शक्ति देखकर ही प्रेम के लिये अपना सारा जीवन समर्पित कर दिया। प्रेम की परम उपलब्धि को ही मैंने स्वर्ग माना है और इसीलिये स्वर्ग को किसी लोक में न ढूँढ़कर प्राणिमात्र के प्रति निश्चल प्रेम में ढूँढ़ा।

ये दोनों भाव मुझे बार-बार ऊपर उठा ले जाने का प्रयत्न करते रहे, पर मैंने देखा—संसार बहुत दुःखी है, लोग अज्ञान में भटक रहे हैं, कष्ट भोग रहे हैं। यह देखकर मेरे हृदय में बार-बार करुणा उमड़ी और मैंने स्वर्गीय सुखों का परित्याग कर पृथ्वी पर रहना और यहाँ के कष्ट-पीड़ितों की सेवा करना ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया।

मेरे जीवन की झंझट-वृत्ति इतनी ही है और चाहता हूँ कि जब भी नया जीवन मिले, इसी त्रिधारा में मेरा जीवन प्रवाहित बना रहे।

—बर्द्धन रत्नेल

- याद रखो, सम्पूर्ण जगत् एक शरीर है। तुम्हारे शरीर में अवश्य ही हृद्य एक महत्त्वपूर्ण

अवयव है, पर है तो एक अवयव मात्र ही-नख एवं उँगली की तरह ही। यदि हाथ, उँगली या नाक शरीर से पृथक होकर अलग कट जाते हैं तो फिर उनका सारा महत्त्व ही नष्ट हो जाता है। आत्मा तभी सच्चे अर्थों में आत्मा है, जब वह अपने को परमात्मा का एक अंश अनुभव करे। विराट विश्व का एक कण ही तो मनुष्य है। उसका गौरव तभी है जब अपने को विश्व मानव का, समग्र समाज का एक अभिन्न घटक अनुभव करे और उसी के अनुसार आचरण भी करे।

अखिल विश्व की आत्मा से हम अपने को पृथक न समझें। हाथ का कल्याण इसी में है कि वह अपना हित समस्त शरीर के साथ जुड़ा रखे। जो श्रम करे उस कमाई को सारे शरीर के कल्याण के लिये उपभोग होने दे, किसी भी अंग को अभाव या कष्ट हो तो उसके निराकरण का उपाय करे। यदि हाथ अपना यह कर्तव्यधर्म छोड़ दे और कलाई तक ही अपने को सीमित कर ले तो वह स्वयं भी नष्ट होगा और सारे शरीर को नष्ट करेगा। संकीर्णता ही पतन और विशालता ही उत्थान है। हम संकुचित दृष्टिकोण न रखें, प्राणिमात्र को अपने प्रेम और आलमभाव के बन्धनों में बाँधें। कोई विराना नहीं, सब अपने ही हैं। सबके कल्याण में अपना कल्याण समाया हुआ है। यही शिक्षाएँ अध्यात्म का सार हैं।

—स्वामी रामतीर्थ

- सच्चा मनुष्य एक शूरवीर सिपाही की भाँति निर्भीक रहता है। वह आदर्श और सिद्धान्तों का पालन करने के लिए अपने शरीर के टुकड़े-टुकड़े करा देने पर भी पथ से विचलित नहीं होता। दूसरों के प्राणों की रक्षा करने के लिये जिसने अपने प्राणों की बाजी लगा डाली है, उस उदारचित्त सैनिक का जीवन किसी सन्त से कम नहीं है। तीर-तलवारों की बर्षा जिसके विश्वास को डगमगाती नहीं, जो अपने प्राण से बढ़कर राष्ट्र के गौरव और सम्मान को समझता है, वही शूरवीर इस धरती पर धन्य होता है।

□ जिसने अपने शरीर को तिनके के समान माना और सोने को पत्थर की तरह देखा, विषय सुखों को जिसने दुत्कार कर भगा दिया; वह गृहस्थ हो या विरक्त, सच्चा सन्त ही कहा जाएगा। मरना सभी को है, पर जो आदर्श के लिये मरता है, मरना उसी का सफल है। जीते तो सभी हैं, पर जो सिद्धान्त के लिये जीवित हैं, जीना उन्हीं का सार्थक है। यह जीवन चारों ओर पाप और कुमांगों के शत्रुओं से घिरा है। जो शत्रुओं के सामने आत्म-समर्पण नहीं करता वही शूरीर है। कष्ट उठाते हुए भी जिसने धर्म नहीं छोड़ा, उसी का जन्म सार्थक हुआ कह जाएगा।
—सं. सुब्रह्मण्य

□ जब बाढ़ आती है तो वह तालाब, पोखर आदि को भरकर सबको समुद्र का सा रूप दे देती है। उस समय कहीं तालाब, पोखर का चिन्ह भी नहीं जान पड़ता, सर्वत्र जलमय हो जाता है। पर वर्षा का जल सामान्य नालों के द्वारा ही बह जाता है। इसी प्रकार जब किसी महापुरुष का आविर्भाव होता है तो उनकी कृपा से अनेक भव-सागर से पार हो जाते हैं। साधना द्वारा सिद्धि प्राप्त करके एक व्यक्ति बड़ी कठिनाई से अपना ही उद्धार करने में समर्थ होता है, दूसरों का उद्धार करने की सामर्थ्य महापुरुषों में ही होती है। नदी या समुद्र में तैरते हुए लकड़ी के बड़े लट्ठे का आश्रय लेकर कितने ही मनुष्य किनारे लग जाते हैं, पर जल में बहने वाली छोटी डाली पर एक कौआ भी बैठ जाय तो डूब जाता है। इसी प्रकार अवतार या महापुरुषों का आश्रय लेकर कितने ही मनुष्य संसार-सागर के पार पहुँच जाते हैं, पर भजन-साधन करने वाले स्वयं ही बड़ा उद्योग करके मुक्ति तक पहुँचते हैं।

—रामकृष्ण परमहंस

□ कर्म करना—कर्तव्य-धर्म का पालन मनुष्य का धर्म है। इसको छोड़ने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। पर काम करते समय आत्म-भाव को न भुलाना चाहिए और इसके लिए प्रतिदिन नियमपूर्वक ध्यान करना भी जरूरी है। इस प्रकार के ध्यान से आत्मिक विचारधारा दूसरे कार्य करते समय भी बहती रहेगी। इससे दुनिया को, मनुष्यों एवं घटनाओं को तुम दूसरी ही दृष्टि से देखने लगोगे। इससे स्वार्थ भी छूट

जाएगा और दुनिया के बन्धन भी कष्ट नहीं देंगे। सच्चा आनन्द प्राप्त करने का यही मार्ग है। संसार में सब कोई जाने या अनजाने आनन्द प्राप्त करने की ही चेष्टा कर रहे हैं। कोई शराब पीकर उस आनन्द का भागी बनना चाहता है और कोई उत्तम मार्ग का अवलम्बन करके उसे प्राप्त करता है। आनन्द ही मनुष्यों का सच्चा और सहज स्वभाव है। सभी लोग ऐसा निर्मल सुख चाहते हैं, जिसमें किसी दुःख का पुट न हो। सभी ऐसे ही आनन्द की खोज में हैं। पर यह केवल उन्हीं को मिल सकता है, जो कर्म और ज्ञान का, लौकिकता और अध्यात्म का उचित सामंजस्य करने में सक्षम होते हैं।

□ धर्म द्वारा ही भारत की नवीन जाति गौरव प्राप्त करेगी। इसलिए आत्मा और उसके माध्यम से मानव-जीवन को ठीक तरह से समझना आवश्यक है। इस समय जीवन के आडम्बर के भीतर सत्य वस्तु प्रच्छन्न हो गई है। इसलिए ज्ञान का विकास होने पर ही आत्मलाभ होगा। इस मार्ग पर अग्रसर होकर ही हम मानव मात्र को समभाव से देख सकेंगे और जिस प्रकार बहुत-से बाजों के स्वरों के मिलने से एक तान की उत्पत्ति होती है इसी प्रकार बहुत-से व्यक्तियों में ऐक्य स्थापना से सामञ्जस्यपूर्ण नवीन युग तैयार होगा। वह युग किसी एक व्यक्ति का नहीं वरन् उत्थान आत्मा का ही होगा। उसका उद्देश्य जाति विशेष का हितसाधन नहीं होगा, वरन् सभी जातियों की मुक्ति और शुभकामना उसका ध्येय रहेगा। हमें योरोपियनों की तरह यांत्रिक सभ्यता का निर्माण नहीं करना है, वरन् प्रत्येक मनुष्य के जीवन को पूर्ण रीति से सार्थक बनाना ही हमारी साधना का उद्देश्य है। जिस दिन मनुष्य इस तथ्य को अवगत कर लेगा कि देश और काल के भेद से मनुष्यों की कोई पृथक् जाति, धर्म या स्वार्थ नहीं है, उसी दिन एक नये ऐक्य के ऊपर नवीन युग स्थापित हो जाएगा और वह देव-राज्य होगा।
—पद्मसूत्री अरविन्द

□ वेदान्त साधारण लोगों को इसलिए अपनी ओर खींचता है कि वह उनके धर्मग्रन्थ वेद की शिक्षा है। शिक्षित व्यक्ति को वह इसलिए आकर्षित करता है कि सूर्य के तले दर्शन

कहलाने योग्य कोई भी ऐसा दार्शनिक ज्ञान नहीं है, जो वेदान्तिक अद्वैतवाद का समर्थन न करता हो और न ऐसा कोई विज्ञान ही है जो वेदान्त अथवा सत्य के पक्ष की पुष्टि और उन्नति न करता हो। पर वह वेदान्त काल्पनिक नहीं, व्यावहारिक होना चाहिए। पुस्तकों में छपे हुए और कीड़ों के आहार के लिए आलमारियों में रखे हुए वेदान्त से काम न चलेगा। लाभ प्राप्त करने के लिए तुमको इसे आचरण में लाना होगा। जो वेदान्त तुम्हारी ठण्ड (अकर्मण्यता) को दूर नहीं करता, जो आपको प्रसन्नता प्रदान नहीं करता, जो आपके बोझ को नहीं उतारता, तो ऐसे वेदान्त को ठुकराकर अलग कर दो। सच्चा वेदान्त बतलाता है कि आपका कर्म सफल हो इसके लिये आपको उसके परिणाम पर ध्यान नहीं देना चाहिए, आपको उसके फल की परवाह नहीं करनी चाहिए। साधन और उद्देश्य को मिलाकर एक कर दो तो काम ही आपका उद्देश्य या लक्ष्य बन जाएगा। बस, परिणाम और फल की परवाह मत करो। सफलता अथवा असफलता मेरे लिए कुछ नहीं है, मुझे काम जरूर करना होगा, क्योंकि मुझे काम प्यारा लगता है, मुझे केवल काम के लिए ही काम करना चाहिए। काम करना मेरा उद्देश्य है, कर्म में प्रवृत्त रहना ही मेरा जीवन है। वही मेरा स्वरूप, मेरी असली आत्मा और शक्ति है। अतः मुझे काम करना ही होगा।

—स्वामी रामतीर्थ

- जो अहंभाव जीवात्मा को संसार में फँसाता है, कञ्चन और कामिनी में लुब्ध कर देता है, वह अहंभाव वास्तव में बहुत दूषित है। यही अहंभाव जीव और आत्मा के बीच बहुत बड़ा भेदभाव उत्पन्न कर देता है। यही अहंभाव हमारे भीतर रहकर बोलता रहता है। पानी के ऊपर लाठी से चोट मारने पर उसके दो भाग होते जान पड़ते हैं, पर वास्तव में विचार करने पर जल एक ही होता है, केवल लाठी के कारण पृथक् दिखाई देने लगता है। हमारा अहंभाव लाठी के समान है। उस लाठी को त्याग दो तो जल एक का एक ही है। यही दोषयुक्त अहंभाव का स्वरूप कैसा है ? वह मैं करके बोलता है, पर मैं का आशय वह नहीं समझता। मेरे पास इतना धन है—मेरे पास

ऐसे बड़े-बड़े आदमी आते हैं। अगर किसी ने 'मेरा' अपमान कर दिया या कुछ ले लिया तो उसे मारा-पीटा जाता है, उसे हर तरह से तंग किया जाता है, मुकदमा चलाया जाता है, उस समय अहंभाव यही कहता है कि इसने 'मेरा' अपमान क्यों किया ?

कुछ लोग साधन, ज्ञान द्वारा अहंभाव को त्यागने का प्रयत्न करते हैं, पर अधिकांश लोगों में वह कुछ न कुछ बचा ही रहता है। चाहे जितना ब्रह्म-विचार करो पर अन्त में यह अहंभाव कभी न कभी सिर ऊँचा किए बिना नहीं रहता। पीपल के पेड़ को आज काट डालो, पर दूसरे दिन सबेरे देखोगे तो उसमें दो-चार नये अंकुर उगे दिखाई ही पड़ेंगे। इसलिए सच्चे हृदय से ईश्वर का स्मरण करके, उनका आश्रय लेने से ही दूषित अहंभाव से छुटकारा मिल सकता है। —रामकृष्ण परमहंस

- परिवर्तन एक अनिवार्य प्रक्रिया है। संसार की हर वस्तु समयानुसार बदलती है। शैशव, यौवन, बुढ़ापा और मृत्यु की शृंखला ही इस संसार की गतिशील, स्वच्छ और सुन्दर बनाये हुए है। जड़ता तो केवल कुरूपता उत्पन्न करती है।

सामाजिक ढर्रे जब बहुत पुराने हो जाते हैं, तब उनमें जीर्णता और कुरूपता उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। इसे सुधारा और बदला जाना चाहिए। समय की प्रगति से जो पिछड़े जाते हैं, उन्हें कुचलते हुए समय आगे बढ़ जाता है।

ऋतुओं के परिवर्तन के साथ-साथ आहार-विहार की रीति-नीति बदलनी पड़ती है। युग की माँग और स्थिति को देखकर हमें सोचना चाहिए कि वर्तमान की आवश्यकताएँ हमें क्या सोचने और क्या करने के लिए विवश करती हैं ? विचारशीलता की यही माँग है कि आज की समस्याओं को समझा जाय और सामयिक साधनों से उन्हें सुलझाने का प्रयत्न किया जाय।

- जो पुराना सो ठीक—जो अभ्यास में है वह सही—यह आग्रह बौद्धिक जड़ता का चिह्न है। जीवित मनुष्यों को जड़ नहीं होना चाहिए। चेतनता ही मनुष्य की शोभा है। चेतनता इस बात में है कि वर्तमान को समझें और मनुष्य में निर्माण का सुदृढ़ आधार निर्मित करें।

—डॉ० सनयात सेन

□ जो व्यक्ति वास्तव में अपने से प्रेम नहीं करते वे ही मन, वचन तथा कर्म से बुरा काम करके अपने लिए पतन का पथ-प्रशस्त करते हैं। किन्तु ऐसे व्यक्ति मुँह से यही कहते हैं कि 'मैं अपने को प्यार करता हूँ।' इसके विपरीत ऐसा व्यक्ति जो कहता है कि 'मैं अपने को प्यार नहीं करता' बुरे कामों से बचकर मन, वचन तथा कर्म से शुभकर्तव्यों में संलग्न रहते हैं; भोग-विलास, प्रमाद जैसी प्रवृत्तियों से दूर रहते हैं, वे ही वास्तव में अपने आप से प्रेम करने वाले माने जा सकते हैं। इसलिए यह निश्चय रूप से समझ लो कि जो आदमी अपनी आत्मा को प्यार करता है वह सदैव दुराचरण से दूर रहेगा, क्योंकि बुरा काम करने वाला कभी भी आनन्द नहीं पा सकता।

जिस समय मौत आ घेरती है, मनुष्य उसके पञ्जे में बेबस होकर फँस जाता है, तो उस समय वह किस चीज को अपना कह सकता है ? वह कौन-सी चीज है, जिसे वह अपने साथ ले जा सकता है और जो छाया की तरह कभी उसका साथ नहीं छोड़ती ? जो काम वह करता है, चाहे वे भले हों या बुरे, उन्हीं को वह अपने साथ ले जा सकता है, उन्हीं को वह अपना कह सकता है और वे ही छाया की तरह उसके साथ रहते हैं। इसलिए हर एक मनुष्य को उचित है कि वह अच्छे कार्य करके भविष्य के सुख के लिए एक खजाना इकट्ठा कर ले।

—महात्मा बुद्ध

□ धरती बोली वृक्षो ! मैं तुम्हें खाद देती हूँ, पानी देती हूँ, रस देती हूँ, उससे अपने आपको तृप्त करो, पुष्ट करो, किसी को दो मत; पर वृक्ष ने कहा—नहीं माँ मुझे देने दो। उसने फूल दिये, फल दिये, पत्ते दिये, सूख रहा था वृक्ष, तब भी उसे यही कामना थी कोई आये मेरी सूखी लकड़ियाँ ले जाकर अपना काम चलाए।

□ समुद्र ने अपना जल आकाश को दे दिया, बादलों ने कहा—परिग्रह पाप है, संग्रह असामाजिकता है, उसने अपना सारा जल धरती की गोद में बरसा दिया, वही जल फिर नदियों के रास्ते समुद्र तक जा पहुँचा। समुद्र जितना था उससे बूँद भर भी कम न हुआ, उसने कभी जाना नहीं अभाव क्या होता है ?

□ गंगा हिमालय से चली तो हिमालय ने उसे बहुतेरा रोका, गंगा ने कहा मुझे लोक-कल्याण के लिये जाना ही पड़ेगा, वह बह निकली। प्यासी धरती, सूखी खेती और व्याकुल जीव-जन्तुओं को शीतल जल लुटती, गंगा बढ़ी तो हिमालय का हृदय स्वतः द्रवित हो उठा। उसने जल उँडेलना शुरू किया और गंगा गंगोत्री में जितनी थी गंगासागर में उससे सौगुनी बड़ी होकर सागर से जा मिली।

निसर्ग का नियम है जो निरन्तर दान करता है वही निर्बाध प्राप्त भी करता है। आज का दिया हुआ कल हजार गुना होकर लौटता है। तिथि न गिनो, समय की प्रतीक्षा न करो, विश्वास रखो आज दोगे तो कल तुम्हें कई गुना फल मिलेगा। आज हम लोक-मंगल के लिये अपनी क्षमताएँ, अपनी सम्पदाएँ दान कर दें तो कल हमारी क्षमताएँ, हमारी योग्यताएँ वैभव और विभूतियाँ हजार गुनी अधिक होंगी। समय लगता हो तो लगे पर त्याग ही, दान ही, परोपकारार्थ उत्सर्ग ही जीवन को परिपूर्ण बनाता है।

—स्वामी रामतीर्थ

□ दूसरों के संकल्प और विचार जान लेना बहुत कठिन है, किन्तु अपने मन को बहुत स्पष्ट समझा, सुना और परखा जा सकता है, यदि औरों की सेवा करना चाहते हैं तो पहले अपनी सेवा की योजना बनाओ, अपना सुधार सबसे सरल है। साथियो ! तुम जितना अपने अन्तःकरण का परिमार्जन और सुधार कर लोगे, यह संसार तुम्हें उतना ही सुधरा हुआ परिलक्षित होगा।

जब तुम दर्पण में अपना मुख देखते हो तो, चेहरे की सुन्दरता के साथ उसके धब्बे और मलिनता भी प्रकट होती है, तब तुम उसे प्रयत्नपूर्वक साफ कर डालते हो। मुख उज्ज्वल साफ और सुन्दर निकल आता है। प्रसन्नता बढ़ जाती है, बहुत अच्छा लगने लगता है।

अन्तःकरण भी एक मुख है। उसे चेतना के दर्पण में देखने और परखने से उसकी मलिनताएँ भी दिखाई देने लगती हैं और सौन्दर्य भी। आत्म-निरीक्षण की आवश्यकता इसलिये पड़ी कि उन छोटी-छोटी मलिनताओं को दूर करें, जो एक पर्त की तरह आत्मा के

अनन्त सौन्दर्य को प्रभावित और आच्छादित किये रहते हैं। जब वे मलिनताएँ मिट जाती हैं तो आत्मा का उज्ज्वल, साफ और सुन्दर स्वरूप परिलक्षित होने लगता है और संसार का सब कुछ अच्छा और प्रिय मालूम होने लगता है।

मन से प्रश्न करना चाहिए—क्या तुम भयभीत हो ? क्या तुम्हें इन्द्रियजन्य वासनाओं में मोह है ? क्या तुम्हारे विचार गन्दे हैं ? यदि हाँ तो सुधार के प्रयत्न में तत्काल जुट जाओ। अपना सुधार ही संसार की सबसे बड़ी सेवा है। जिस दिन इन प्रश्नों का उत्तर 'नहीं' मिलने लगेगा, उस दिन से तुम संसार में सबसे सुखी व्यक्ति होंगे।

—महात्मा बुद्ध

- यदि हम कुछ प्राप्त करना चाहते हैं तो उसका एक ही उपाय है—देने के लिए तैयार होना। इस जगत् में कोई वस्तु बिना मूल्य नहीं मिलती। हर वस्तु का पूरा-पूरा मूल्य चुकाना पड़ता है। जो देना नहीं चाहता वस्तु लेने की योजनाएँ ही बनाता रहता है, वह सृष्टि के नियमों से अनजान ही कहा जाएगा।

यदि समुद्र बादलों को अपना जल देना न चाहे तो उसे नदियों द्वारा अनन्त जलराशि प्राप्त करते रहने की आशा छोड़ देनी पड़ेगी। कमरे की किवाड़ें और खिड़कियाँ बन्द कर ली जाएँ तो फिर स्वच्छ वायु का प्रवेश वहाँ कैसे हो सकेगा ? जो मलत्याग नहीं करना चाहता उसके पेट में तनाव और दर्द बढ़ेगा, नया सुखादु भोजन पाने का तो उसे अवसर ही न मिलेगा, झाड़ू न लगाई जाय तो घर में कूड़े के ढेर जमा हो जाएँगे। जिस कुएँ का पानी खींचा नहीं जाता उसमें सड़न ही पैदा होती है। त्याग के बिना प्राप्ति की कोई सम्भावना नहीं। घोर परिश्रम करने के फलस्वरूप ही विद्यार्थी को विद्या, व्यापारी को धन, उपकारी को यश और साधक को ब्रह्म की प्राप्ति होती है। कर्तव्य पालन करने के बदले में अधिकार मिलता है और निस्वार्थ प्रेम के बदले में दूसरों का हृदय जीता जाता है। जो लोग केवल पाना ही चाहते हैं देने के लिए तैयार नहीं होते, उन्हें मिलता कुछ नहीं, खोना बहुत पड़ता है।

आनन्द देने में है। जो जितना देता है उससे अनेक गुना पाता है। पाने का एकमात्र उपाय

यही है कि हम देने के लिए तैयार हों। जो जितना अधिक दे सकेगा, उसे उससे अधिक गुना मिलेगा। इस जगत् में यही नियम अनादि काल से बना और चला आ रहा है। जो इसे जान लेते हैं, उन्हें परिपूर्ण तृप्ति पाने की साधन-सामग्री भी प्राप्त हो जाती है।

—स्वामी विवेकानन्द

- आपके जीवन में कोई दुःख है तो समझिये कि आपके साथ कोई निर्बलता अवश्य बैंधी हुई है। शरीर की कमजोरी से रोग घेरते हैं, मानसिक कमजोरी से चिन्ताएँ सताती हैं, अपनी बौद्धिक क्षमताएँ दुर्बल पड़ी हों तो यह निश्चित है कि आप पराधीनता के पाश में जकड़े होंगे। अपनी उन्नति के लिए किसी और की गोंठ टटोल रहे होंगे। सांस्कृतिक, सामाजिक और राष्ट्रीय दृष्टि से जो जातियाँ संगठित नहीं होतीं, उन्हें ही बाहरी आक्रमण सताते हैं। कैसी भी हों, दुर्बलताएँ ही नारकीय यन्त्रणाओं का कारण होती हैं। इसीलिए निर्बलता पाप है। पापी व्यक्ति की तरह निर्बलों को भी पृथ्वी पर सुख से जीने का अधिकार प्रकृति नहीं देती।

- ऐश्वर्य की इस संसार में कोई कमी नहीं है। सम्पदाएँ और विभूतियाँ पग-पग पर बिछी पड़ी हैं। सुखोपभोग के साधनों के लिए भटकना नहीं पड़ता, शर्त इतनी ही है कि आपके पास उन्हें प्राप्त करने और उपभोग करने का बल और शक्ति भी है अथवा नहीं। यदि आप निर्बल हैं तो आपके पास की रही-सही सम्पत्ति और विभूतियाँ भी छिने ही वाली हैं। इसीलिए श्रुति कहती है—“बलमुपास्य” अर्थात् बल की उपासना करो। शक्ति के अभाव में ही पाप पनपते हैं इसीलिए यदि आप शक्तिशाली नहीं हैं तो कितना ही ईश्वरभक्त क्यों न हों, पाप की वृद्धि के आप भी भागीदार हैं।

अपनी भलाई के लिए कहो तो, संसार के कल्याण के लिए कहो तो शक्ति जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है, इसीलिए सर्वप्रथम शक्ति का संचय करो। उसी से सुख, सम्पत्ति, ऐश्वर्य तथा पारलौकिक हित की रक्षा कर सकोगे।

—समर्थ गुरु रामदास

- दुःख का अनुभव सब करते हैं, पर उसका वास्तविक कारण जानने की इच्छा किसी-किसी

को ही होती है। दुःखी होने से, चिन्तित और निराश रहने से दुःख की निवृत्ति नहीं हो सकती। वह तो तभी संभव है जब उसके मूल कारण को जानकर उसके निवारण का प्रयत्न किया जाय। यह संसार दुःख रूप ही है। इसमें जितनी भी वस्तुएँ हैं, वे सब क्षणिक और अस्थिर हैं। क्षण-क्षण में उनका रूप बदलता है। जो वस्तु अभी प्रिय दीखती है, कुछ कारण उत्पन्न होने पर थोड़ी ही देर में वह अप्रिय बन जाती है। कामनाओं और वासनाओं का भी यही हाल है। एक तृप्त नहीं हो पाई कि दूसरी नई उपज पड़ी। तृष्णाओं का कहीं अन्त नहीं, वासनाओं की कोई सीमा नहीं। भोग से, संग्रह से-उन्हें किसने शान्त कर पाया है ? घी डालकर किसने आग बुझाई है ? बहिर्मुखी जीवन से मुख मोड़कर अन्तर्मुखी दृष्टि अपनाये बिना आज तक किसी को शान्ति नहीं मिली। हमारे लिए भी इसके अतिरिक्त और कोई उपाय या मार्ग नहीं है।

—महर्षि बुद्ध

- समाज भी एक परिवार है। वैयक्तिक परिवार छोटा और सामाजिक परिवार बड़ा है। जैसे जब किसी परिवार में कोई विवाह आदि उत्सव होता है, तब बाहर से नाते-रिश्तेदार आकर परिवार की परिधि को बढ़ा देते हैं। सारे परिवार के लोग उनको परिवार का एक विशेष अंग समझते हैं और आये हुए लोग भी परिवार को अपना ही परिवार मानते हैं। उसी प्रकार यदि जीवन के प्रत्येक क्षण को एक सुन्दर अवसर समझकर मनुष्य अन्य सामाजिक सदस्यों को आया हुआ बन्धु समझे तो पूरे समाज में सहयोग और सद्भावना की स्थिति आते देर न लगे।

मनुष्य को एक सीमित और अनजान अवधि का जीवन रूपी अवसर मिला है, जिसे उसे सुन्दर-से-सुन्दर ढंग से बिताना चाहिए। इसे उलझन और अशांति में व्यतीत करना मानवता नहीं है। हर व्यक्ति को अच्छे-से-अच्छा जीवन बिताने में सहायता देता हुआ स्वयं भी अच्छे ढंग से जिए, तभी मानव जीवन का उद्देश्य सफल और संसार की सृष्टि का मन्तव्य पूरा होगा, अन्यथा नहीं।

—टात्सत्या

- यदि मेरी मित्रताएँ मेरा साथ नहीं देती तो न दें। प्रेम मुझे छोड़ देता है तो छोड़ दे। मेरा तो एक ही आग्रह है कि मैं उस सत्य के प्रति सच्ची रह सकूँ, जिसकी सेवा और परिपालन के लिये मैंने अपनी इच्छाओं का, वैभव-विलास से परिपूर्ण पाश्चात्य जीवन-पद्धति तक का बहिष्कार कर दिया है, जब तक मेरे शरीर में रक्त की अन्तिम बूँद और अन्तिम श्वास विद्यमान है मैं एकमेव सत्य की प्राप्ति के हित तिल-तिल जलती रहूँगी। सत्य ही तो मनुष्य जीवन का सार है।

यदि वह सत्य मुझसे रेगिस्तान में चलने को कहेगा तो मैं उसके पीछे-पीछे जाऊँगी, मुझे उसे प्राप्त करने के लिए पर्वतों पर चढ़ना पड़ा, समुद्र की थाढ़ लेनी पड़ी तो भी मैं पीछे नहीं हटूँगी। उसने माँग की कि मैं प्रेम से वंचित हो जाऊँ तो मुझे वह भी स्वीकार होगा पर सत्य का आश्रय मैं छोड़ नहीं सकती। मैं तो सत्य से चिपकी रहूँगी, भले ही मुझे यह दिखाई दे कि मुझे अपना कहने वाला भी कोई नहीं रहा। मेरी हार्दिक कामना है कि जब मैं मरूँ और मेरी समाधि बनाई जाए तो उस पर लिखा जाए—“उसने सब कुछ छोड़कर भी सत्य के पीछे चलने का प्रयत्न किया।”

—ऐनीबीसेण्ट

- ‘जिस प्रकार अग्नि में स्वर्ण को तपाने से उसके तमाम मल नष्ट हो जाते हैं, कान्ति अधिक आती है और मूल्य बढ़ जाता है, उसी प्रकार जो सत्य रूपी अग्नि में प्रवेश करते हैं, उनका केवल शारीरिक बल ही नहीं, बल्कि मानसिक और आध्यात्मिक बल भी अहर्निश वृद्धि को प्राप्त होता है। सच्चा तप निर्बल को सबल, निर्धन को धनी, प्रजा को राजा, शूद्र को ब्राह्मण, दैत्य को देवता, दास को स्वामी और भिक्षुक को दाता बना देता है। तप का भाव उस देश-भक्त में है, जो अपने देश एवं अपनी जाति के गौरव और प्रतिष्ठा, कीर्ति और मान, सम्पत्ति और ऐश्वर्य की वृद्धि और उन्नति के लिए दृढ़ इच्छा रखता है। अनेक प्रकार के दुःखों, कष्टों और संकटों को सहन करने, कठिन से कठिन मेहनत और श्रम को उठाने और विघ्नों से मुकाबला करने के लिए उद्यत रहता है। सच्चे देश-प्रेमी और देशानुरागी

कल्याण की इच्छा करते हुए तप का अनुष्ठान करके, आत्मा और मन को धर्माचरण-रूपी प्रचण्ड अग्नि में दग्ध करके, अपने और अपने देश की अपवित्रता, मलिनता और अन्य अशुद्धियों को दूर कर जाति को आरोग्यता एवं सुख-सम्पत्ति की योग्यता प्रदान करते हैं। जिन देशानुरागी पुरुषों में तपश्चर्या नहीं, जो मुसीबतों, विघ्नों और आफतों का मुकाबला करने से घबराते हैं, जो द्वन्द्वों को सहन नहीं कर सकते, जो भूख और प्यास, धूप और छाँह, कोमल और कठोर, मीठा और खट्टा आदि द्वन्द्वों के दास हैं, वे संसार-रूपी युद्ध में कदापि कृत-कृत्य नहीं हो सकते।”

—भवनमोहन भालवीय

- यथार्थ ईश्वरभक्त या भगवत्प्रेमी अकेला ही लाखों योद्धाओं की शक्ति रखता है। वह किसी पार्थिव सहायता का मुखापेक्षी नहीं रहता। वह तो केवल उस सर्व-शक्ति के प्रभाव से ही प्रेम एवं विरहरहित होकर अपने समस्त कर्तव्यों को पूर्ण करता है। कोई भी दुःख उसे अभिभूत एवं प्रलोभन उसे विपन्न नहीं कर सकता।

उस भगवद्-भक्त का हृदय किसी निष्फल भाव अथवा किसी विपक्ष चेष्टा से कातर नहीं होता। इसी प्रकार आरम्भ किये किसी कार्य में वह असफल भी नहीं होता। अतः हे हमारे विरही दीन-हृदय, तुमने जिससे प्रेम किया है, उस प्रेमी का एक बार परिचय तो दो। अपने उस ईश्वर के लिए तुमने कौन-सा कर्तव्य पूर्ण किया है और किस प्रलोभन के संग्राम में विजय प्राप्त की है, सो तो बताओ। एक बार उसकी महिमा की दीप्ति उज्ज्वल बनाने के लिए किस शत्रु को पराजित किया है एवं कौन-सा दुःख सहन कर किस रूप में कीर्ति स्थापित की है, उसका भी तो हिसाब दो। अरे, तुम्हारे मुख का प्रेम केवल शब्द मात्र ही है। तभी तो तुम साधारण से दुःख या तुच्छ से द्वन्द्व अथवा स्वल्प मात्र परिश्रम से श्रान्त हो जाते हो।

तुम आक्षेप करते हो कि तुम्हारी शक्ति किसी प्रतिकूलता के सम्मुख ठहर नहीं सकती। किसी परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो सकती। भला, जो प्रेम जीवन की प्रबल शक्ति नहीं होता, उसे मिथ्या के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता

है ? जो प्रेम स्वार्थविमुख (निःस्वार्थ) नहीं है, वह नितान्त बलहीन ही होता है।

—महायोगी अरविन्द

- किसी को कुछ दीजिए या उसका किसी प्रकार का उपकार कीजिए तो बदले में उस व्यक्ति से किसी प्रकार की आशा न कीजिए। आपको जो कुछ देना हो दे दीजिए। वह हजार गुना अधिक होकर आपके पास लौट आवेगा। परन्तु आपको उसके लौटने की चिन्ता ही न करनी चाहिए। अपने में देने की शक्ति रखिए, देते रहिए। देकर ही फल प्राप्त कर सकेंगे। यह बात सीख लीजिए कि सारा जीवन दे रहा है। प्रकृति देने के लिए आप को बाध्य करेगी इसलिए प्रसन्नतापूर्वक दीजिए। आज हो या कल आपको किसी दिन त्याग करना पड़ेगा ही। जीवन में आप संचय करने के लिए आते हैं। परन्तु प्रकृति आपका गला दबाकर मुट्ठी खुलवा लेती है। जो कुछ आपने ग्रहण किया है वह देना ही पड़ेगा, चाहे आपकी इच्छा हो या न हो। जैसे ही आपके मुँह से निकला कि “नहीं, मैं न दूँगा।” उसी क्षण जोर का धक्का आता है। आप घायल हो जाते हैं। संसार में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, जो जीवन की लम्बी दौड़ में प्रत्येक वस्तु देने परित्याग करने के लिए बाध्य न हो। इस नियम के प्रतिकूल आचरण करने के लिए जो जितना ही प्रयत्न करता है, वह अपने आपको उतना ही दुःखी अनुभव करता है।

हमारी शोचनीय अवस्था का कारण यह कि परित्याग करने का साहस हम नहीं करते इसी से हम दुःखी हैं। ईंधन चला गया उसके बदले में हमें गर्मी मिलती है। सूर्य भगवान समुद्र से जलग्रहण किया करते हैं उसे वर्षा के रूप में लौटाने के लिए। आप ग्रहण करने और देने के यन्त्र हैं। आप ग्रहण करते हैं देने के लिए। इसलिए बदले में कुछ माँगिए नहीं। आप जितना भी देने, उतना ही लौटकर आपके पास आवेगा।

—स्वामी विवेकानन्द

- मनुष्य सोचता है कि जो कुछ वह चाहे उसकी पूर्ति हो जाना ही भगवान की कृपा है। यह भूल है। यदि उचित और न्याययुक्त सफलता मिले तो ही उसे भगवान की कृपा कहना

चाहिए। पाप की सफलता तो प्रत्यक्ष अकृपा है। जिससे अपना पतन और नाश समीप आता है, उसे अकृपा नहीं तो और क्या कहें ?”

—बिनोबा

- “अध्यात्म में प्रेम का प्रमुख स्थान है, पर यह प्रेम देश के प्रति, देशवासियों के प्रति, देश के गौरव, उसकी महानता और जाति के सुख, दैवी आनन्द का या अपने देशवासियों के प्रति आत्म-बलि देने के लिए स्वयं कष्ट सहन करने, देश की स्वतन्त्रता के लिए अपना रक्त बहाने, जाति के जनकों के साथ-साथ मृत्यु का आलिंगन करने में आनन्द की अनुभूति करने का हो, व्यक्तिगत सुख का प्रेम नहीं। मातृ-भूमि के स्पर्श से शरीर के पुलकित होने का आनन्द हो और हिन्द महासागर से जो हवाएँ बहती हैं, उनके स्पर्श से भी वही अनुभूति हो। भारतीय पर्वतमाला से बहने वाली नदियों से भी वही सुख प्राप्त हो। भारतीय भाषा, संगीत, कविता, परिचित दृश्य, स्रोत, आदतें, वेश-भूषा जीवनक्रम आदि भौतिक प्रेम के मूल हैं। अपने अतीत के प्रति गर्व, वर्तमान के प्रति दुःख और भविष्य के प्रति अनुराग उसकी शाखाएँ हैं। आत्माहुति और आत्म-विस्मृति, देश के लिए महान सेवा, और देश के लिए अपार सहनशक्ति उसके फल हैं। जो इसे जीवित रखता है, वह है देश में भगवान की, मातृ-भूमि की अनुभूति, माँ का दर्शन, माँ का ज्ञान और उसका निरन्तर ध्यान एवं माँ की स्तुति तथा सेवा।”

—महायोगी अरविन्द

- प्रेम और समता मनुष्य को यह ज्ञान देता है कि वह अपनी सीमाओं से बाहर भी है और वह अखिल जगत् की आत्मा का ही भाग है। समता की यह अनुभूति मानव की आत्मा में उमड़कर ही कला, विज्ञान, साहित्य और श्रेष्ठ रचना द्वारा संसार में सद्गुण, सद्बिचार तथा सद्प्रेरणा देने में सहायक होती है। तभी हमारी महान आत्माएँ स्वार्थ त्याग, निष्कपटता, उदारतादि द्वारा संसार में प्यार, प्रेम, परोपकार और सद्ब्यवहार का प्रसार करती हैं। महान आत्माओं ने प्रेम के मार्ग में अनेक कष्ट, शारीरिक-यन्त्रणाएँ सहकर यही नहीं मृत्यु तक का भी स्वागत कर मनुष्य के सच्चे स्वरूप को समझा और आदर्श जीवन व्यतीत करके

मानवता के परम सत्य की पुष्टि की। इसीलिए हम उन्हें महात्मा अर्थात् महान आत्मा वाला पुरुष कहकर सम्बोधित करते हैं।

- हमारी आत्मा जब संकीर्णता का वरण करती है तो निज की विशेषता खो देती है। इसकी विशेषता समत्व में ही है। हम विश्व से समभाव होकर ही अपने वास्तविक स्वरूप का बोध कर सकेंगे और तभी हमें वास्तविक आनन्दानुभूति होगी। हम भययुक्त और संघर्ष की विषम स्थितियों में तभी तक रहते हैं, जब तक कि प्रकृति के व्यापक-समत्व के सिद्धान्त को नहीं समझ पाते और तभी तक हमें सारा-संसार पराया जान पड़ता है। अपने और पराये तथा अपने अन्तःकरण और विश्व की व्याख्या के बीच जो सहज समता है, उसे अनुभव कर इसी एक मंगलमय सूत्र के द्वारा जीवन को धन्य बनाता है। —रवीन्द्रनाथ टैगोर

“मुझे रोटी न मिले तो मैं व्याकुल नहीं होता। प्रार्थना के बिना मैं पागल हो जाऊँगा। प्रार्थना भोजन की अपेक्षा करोड़ गुना ज्यादा उपयोगी चीज है। खाना भले ही छूट जाये लेकिन प्रार्थना कभी न छूटनी चाहिए। प्रार्थना तो आत्मा का भोजन है। यदि हम पूरे दिन ईश्वर का चिन्तन किया करें तो बहुत ही अच्छा पर चूँकि यह सबके लिए सम्भव नहीं इसीलिये हमें प्रतिदिन कम से कम कुछ घण्टों के लिये ईश्वर स्मरण करना चाहिए।”

- “स्तुति, उपासना, प्रार्थना अन्ध-विश्वास नहीं, बल्कि उतनी ही अथवा उससे भी अधिक सच बातें हैं, जितना कि हम खाते हैं, पीते हैं, चलते हैं, बैठते हैं ये सच है। बल्कि यों कहने में अत्युक्ति नहीं कि यही एकमात्र सच है, दूसरी सब बातें झूठ हैं, मिथ्या हैं।”
- “प्रार्थना करना, याचना करना नहीं है, बह तो आत्मा की सच्ची पुकार है। हम जब अपनी असमर्थता खूब समझ लेते हैं और सब कुछ छोड़कर ईश्वर पर भरोसा करते हैं, तब उसी भावना का फल प्रार्थना है।” “प्रार्थना या भजन जीभ से नहीं हृदय से होता है। इसी से गूँगे, तुतले, मूढ़ सभी प्रार्थना कर सकते हैं, जीभ पर अमृत हो और हृदय में हलाहल हो तो

जीभ का अमृत किस काम का ? कागज के गुलाब से सुगन्ध कैसे निकल सकती है ?

□ 'प्रार्थना करने का उद्देश्य ईश्वर से सम्भाषण करना एवं अन्तःआत्मा की शुद्धि के लिए प्रकाश प्राप्त करना है, ताकि ईश्वर की सहायता से हम अपनी कमजोरियों पर विजय प्राप्त कर सकें। प्रार्थना मन से न हो तो सब व्यर्थ है। प्रार्थना में जो कुछ बोला जाता है, उसका मनन कर अपने जीवन को वैसे ही बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। तभी उसका पूर्ण लाभ है।'

□ 'परलोक की बात तो जाने दीजिये, इस लोक के लिए भी प्रार्थना सुख और शांति देने वाला साधन है। अतएव यदि हमें मनुष्य बनना है तो हमें चाहिए कि हम जीवन को प्रार्थना द्वारा रसमय और सार्थक बना डालें। इसीलिये मैं आपको सलाह दूँगा कि आप प्रार्थना से भूत की तरह लिपटें रहें।' 'मेरे सामने आने वाले राष्ट्रीय, सामाजिक अथवा राजनैतिक विकट प्रश्नों की गुत्थी का सुलझाव मुझे अपनी बुद्धि की अपेक्षा अधिक स्पष्टता और शीघ्रता से प्रार्थना द्वारा विशुद्ध अन्तःकरण से मिल जाता है।

—महात्मा गाँधी

□ मनुष्य जीवन की प्रमुख शक्ति का नाम है—विचारणा। हाड़-मांस की अनेक खामियों से भरे इस शरीर में महानता का एक ही तत्त्व है—विवेक। जिसकी विचारणा स्वस्थ और जिसने अपना प्रकाश केन्द्र विवेकशीलता को बनाया है, वह देर-सबेर में महामानव बनकर रहेगा।

इन्द्रियजन्य लिप्साएँ, वासनाओं की ललकें और तृष्णाओं की आवृत्तियाँ, अहंकार एवं प्रदर्शन की प्रवृत्तियाँ इतनी प्रबल हैं कि औसत मनुष्य इन्हीं से लिपटकर रह जाता है। यह दल-दल इतना गहरा है कि जो धैर्य सो फँसता ही चला गया।

□ स्वर्ग जैसा उदात्त दृष्टिकोण और मुक्ति जैसा निर्मल कर्तृत्व प्राप्त कर लेना ईश्वर का दर्शन, आत्म-साक्षात्कार एवं पूर्णता की लक्ष्य प्राप्ति का अन्तिम चरण है। इसके लिये प्रयास करना ही साधना एवं तपश्चर्या का आधारभूत प्रयोजन है।

□ हमें अहर्निश अपने विचारों की उत्कृष्टता बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए और सतत सचेष्ट रहना चाहिए कि आदर्शवादी आस्थाओं के अनुरूप ही हमारी कार्यपद्धति बन सके। हमें पाशविक प्रयोजन के लिये यदि मंगलमय जीवन जीना है तो ऊँचे दृष्टिकोण से ही रीति-नीतियों का निर्धारण करना चाहिए।

—कनकशिवस

□ मनुष्य का इतिहास जीव-धर्मी है। वह निगूढ़ प्राण-शक्ति से बढ़ता रहता है। वह लोहे-पीतल की तरह साँचे में ढालने की वस्तु नहीं है। बाजार में किसी विशेष समय पर किसी विशेष सभ्यता का मूल्य बहुत अधिक बढ़ जाने के कारण ही समस्त मानव समाज को एक ही कारखाने में ढालकर फैशन के वशीभूत मूढ़ खरीददारों को खुश कर देने की दुराशा बिल्कुल व्यर्थ की वस्तु है।

□ पैरों का छोटा होना सौन्दर्य या अभिजात्य का लक्षण है, यह समझकर कृत्रिम उपायों से उन्हें संकुचित करके चीन की स्त्रियों ने छोटे पैर नहीं पाये, बल्कि विकृत पैर ही उन्हें मिले हैं। भारतवर्ष यदि हठ से जबरन अपने को यूरोपीय आदर्श का अनुगत बनावे, तो वह यूरोप नहीं बन सकता, सिर्फ विकृत भारतवर्ष ही बन सकता है।

□ इस बात को दृढ़ता के साथ याद रखना चाहिए कि एक राष्ट्र के साथ अन्य राष्ट्रों का अनुकरण और अनुसरण का सम्बन्ध नहीं, बल्कि आदान-प्रदान का सम्बन्ध है। हमारे अन्दर जिस वस्तु की कमी नहीं या हमें जिस वस्तु की आवश्यकता नहीं, तुम्हारे पास भी ठीक वही वस्तु मौजूद हो तो तुम्हारे साथ हमारा लेन-देन या परिवर्तन नहीं चल सकता और उसी हालत में हमारे लिये तुम्हारी समकक्ष रूप में कोई आवश्यकता ही नहीं रहती। भारतवर्ष यदि असली भारतवर्ष न बन सके तो दूसरों के बाजारों में मजदूरी करने के सिवा संसार में उसकी और कोई आवश्यकता ही नहीं रहेगी। इसलिये आज हमें अच्छी तरह समझ-बूझ कर निर्णय करना होगा कि जिस सत्य के द्वारा भारतवर्ष ने अपने आपको निश्चित रूप से प्राप्त किया था, वह सत्य क्या है ? यह सत्य दूसरे देशों का अनुकरण नहीं

वरन् विश्व-बन्धुत्व है, जो भारतीय तपोवन में साधित हुआ है। हमारे भारतवर्ष में ब्रह्मचर्य, ब्रह्म-ज्ञान, सब जीवों पर दया, सब प्राणियों में आत्मोपलब्धि और आत्मा की अनुभूति की शोध हुई थी। इस तत्त्वज्ञान की रक्षा और अनुशासन से ही हम अपने को पा सकते हैं और संसार से आगे बढ़ सकते हैं।

—रवीन्द्रनाथ टैगोर

- दुनिया में जितने धर्म, सम्प्रदाय, देवता और भगवानों के प्रकार हैं, उन्हें कुछ दिन मौन हो जाना चाहिए और एक नई उपासना पद्धति का प्रचलन करना चाहिए, जिसमें केवल 'माँ' की ही पूजा हो, माँ को ही मेंट चढ़ाई जाए ?
- माँ बच्चे को दूध ही नहीं पिलाती, पहले वह उसका रस, रक्त और हाड़-मांस से निर्माण भी करती है, पीछे उसके विकास, उसकी सुख-समृद्धि और समुन्नति के लिये अपना सब कुछ न्योछावर कर देती है। उसकी एक ही कामना रहती है, मेरे सब बच्चे परस्पर प्रेमपूर्वक रहें, मित्रता का आचरण करें, न्यायपूर्वक सम्पत्तियों का उपभोग करें, परस्पर ईर्ष्या-द्वेष का कारण न बनें। चिरशान्ति, विश्व-मैत्री और "सबें भबन्तु सुखिनः" वह आदर्श है, जिनके कारण माँ सब देवताओं से बड़ी है।

हमारी धरती ही हमारी माता है यह मानकर उसकी उपासना करें। अहंकारियों ने, दुष्ट-दुराचारियों, स्वार्थी और इन्द्रियलोलुप जनों में मातृ-भू को कितना कलंकित किया है, इस पर भावनापूर्वक विचार करते समय आँखें भर आती हैं। हमने अप्रत्यक्ष देवताओं की तो पूजा की पर प्रत्यक्ष देवी धरती माता के भजन का कभी ध्यान ही नहीं आया। आषा होता तो आज हम अधिकार के प्रश्न पर रक्त न बहाते, स्वार्थ के लिये दूसरे भाई का खून न करते, तिजोरियाँ भरने के लिये मिलावट न करते, मिथ्या सम्मान के लिये अहंकार का प्रदर्शन न करते। संसार भर के प्राणी उसकी सन्तान—हमारे भाई हैं। यदि हमने माँ की उपासना की होती तो छल-कपट, ईर्ष्या-द्वेष, दम्भ, हिंसा, पाशचिकता, युद्ध को प्रश्रय न देते। स्वर्ग और है भी क्या, जहाँ यह बुराईयाँ

न हों वही तो स्वर्ग है। माँ की उपासना से स्वर्गीय आनन्द की अनुभूति इसीलिये यहीं प्रत्यक्ष रूप से अभी मिलती है। इसलिये मैं कहता हूँ कि कुछ दिन और सब उपासना पद्धति बन्द कर केवल 'माँ' की 'मातृ-भावना' की उपासना करनी चाहिए। —स्वामी विवेकानन्द

- निःस्वार्थ भाव से बदला न पाने की इच्छा से और अहसान न जताने के विचार से जो उपकार दूसरों के साथ किया जाता है, उसके फल की समता तीनों लोक मिलकर भी नहीं कर सकते। बदला पाने की इच्छारहित जो भलाई की गई है, वह समुद्र की तरह महान है। कोई मनुष्य किसी आवश्यकता से व्याकुल हो रहा है, उस समय उसकी मदद करना कितना महत्त्वपूर्ण है, इसे उस व्याकुल मनुष्य का हृदय ही जानता है। जरूरतमन्दों को एक राई की बराबर मदद देना उससे बढ़कर है कि बिना जरूरत वाले के पल्ले में एक पहाड़ बाँध दिया जावे।
- जिसने तुम्हारे साथ भलाई की है उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करें। सहायता का मूल्य वस्तु के मूल्य से मत नापो, वरन् उसका महत्त्व अपनी आवश्यकता को देखते हुए नापो कि उस समय यदि वह मदद तुम्हें न मिलती तो तुम्हारा क्या हाल होता ? उनका एहसान मत भूलो, जिन्होंने मुसीबत के समय तुम्हारी मदद की थी। उपकार को भूल जाना नीचता है, पर उन्हें क्या कहें जो भलाई के बदले में बुराई करते हैं ?
- धरती माता से उस दिन मनुष्यों का भार न उठया जाएगा, जिस दिन वे प्रेम और कृतज्ञता छोड़कर निष्ठुर और कृतघ्न बन जाएँगे। आदमी की चमड़ी में क्या खूबसूरती है ? सुन्दर तो उसका मन होता है। जिसके मन में दूसरों के प्रति प्रेम भावनाएँ उठती रहती हैं, जो दूसरों के थोड़े-से भी उपकार का सदा स्मरण करता रहता है और उसका बदला चुकाने का प्रयत्न करता है, वस्तुतः वही मनुष्य सुन्दर है और इसी सौन्दर्य से मनुष्यता एवं इस वसुधा की शोभा बढ़ती है।

—सन्त तिरुवल्लुवर

□ मानवीय शक्तियों का कोई अन्त नहीं, वे इतनी ही अनन्त हैं जितना यह आकाश। ईश्वरीय चेतना का प्रतीक-प्रतिनिधि मानव-प्राणी उन सब सामर्थ्यों को अपने अन्दर धारण किये हुए है, जो उनके पिता परमेश्वर में विद्यमान हैं। यदि आत्मा और परमात्मा का संयोग सम्भव हो सके तो साधारण-सा दीन दीख पड़ने वाला व्यक्ति नर से नारायण बन सकता है और उसकी महानता परमात्मा जितनी ही विशाल हो सकती है।

□ आत्मा और परमात्मा में अन्तर उत्पन्न करने वाली माया और कुछ नहीं, केवल अज्ञान का एक झीना कलेवर मात्र है। भौतिक आकर्षणों, अस्थिर सम्पदाओं और उपहासास्पद तृष्णा-वासनाओं में उलझे रहने से मनुष्य के लिए यह सोच-समझ सकना कठिन हो जाता है कि वह जिस अलभ्य अवसर को—मनुष्य शरीर को प्राप्त कर सकता है वह एक विशेष सौभाग्य है और उसका सदुपयोग जीवन-लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, विशेष उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही होना चाहिए। शरीर का ही नहीं आत्मा का भी आनन्द ध्यान में रखना चाहिए।

। यदि हम अपने स्वरूप और कर्तव्य को समझ सकें और तदनुकूल करने के लिए तत्पर हो सकें तो इस क्षुद्रता और अशान्ति से सहज ही छुटकारा पाया जा सकता है, जिसके कारण हमें निरन्तर क्षुब्ध रहना पड़ता। अज्ञान की माया से छुटकारा पाना ही मनुष्य का पुरुषार्थ है। ऐसे पुरुषार्थी को ईश्वरीय महानता उपलब्ध हो सकती है और वह पुरुष से पुरुषोत्तम बन सकता है।

—जेम्स ऐलन

शान्ति की खोज में चलने वाले पथिक को यह जान लेना चाहिए कि अकेले रहने, जंगल या पर्वतों में निवास करने से शान्ति का कोई सम्बन्ध नहीं। यदि ऐसा होता तो अकेले रहने वाले जीव-जन्तुओं को शान्ति मिल गई होती और जंगल, पर्वतों में रहने वाली अन्य जातियाँ कबकी शान्ति प्राप्त कर चुकी होती ?

अशान्ति का कारण है—आन्तरिक दुर्बलता। स्वार्थी मनुष्य बहुत चाहते हैं और उसमें कमी

रहने पर खिन्न होते हैं। अहंकारी का शोभ ही उसे जलाता रहता है। कायर मनुष्य हिलते हुए पत्ते से भी डरता है और उसे अपना भविष्य अन्धकार से घिरा दीखता है। असंयमी की तृष्णा कभी शान्त नहीं होती। इस कुचक्र में फँसा हुआ मनुष्य सदा विक्षुब्ध ही रहेगा भले ही उसने अपना निवास सुनसान एकान्त में बना लिया हो।

नदी या पर्वत सुहावने अवश्य लगते हैं। विश्राम या जलवायु की दृष्टि से वे स्वास्थ्यकर हो सकते हैं पर शान्ति का उनमें निवास नहीं। चेतन आत्मा को यह जड़ पदार्थ भला शान्ति कैसे दे पावेगे ? शान्ति अन्दर रहती है और जिसने उसे पाया है उसे अन्दर ही मिली है ? अशान्ति उत्पन्न करने वाली विकृतियों को जब तक परास्त न किया जाय, तब तक शान्ति का दर्शन नहीं हो सकता, भले ही कितने ही सुरम्य स्थानों में कोई निवास क्यों न करता रहे ?

—सन्त तिळकस्वामी

□ क्या तुम सच्चे सेवक बनना चाहते हो ? सच्ची समाज-सेवा करने की इच्छा मन में है ? तो आओ, आज हम कुछ ऐसे सच्चे सेवकों का आपसे परिचय कराएँ, जो हमारे लिए मार्गदर्शक हो जाते हैं। संध्या समय पश्चिम, आकाश में अस्त होने वाले सूर्य को देखो। बारह-बारह घण्टों तक पृथ्वी पर प्रकाश देने के पश्चात् भी वह निश्चिन्त होकर विश्राम लेने जाना नहीं चाहते हैं। मैं चला जाऊँगा तो फिर सृष्टि को प्रकाश कौन देगा ? उसे अन्धकार से कौन उबारेगा ? इस चिन्ता में देखो उनका मुखमण्डल स्नान हो गया है। सच्चे सेवक की भूख कभी शान्त नहीं होती।

□ चन्द्र के पास स्वयं का प्रकाश नहीं है। फिर भी वह दूसरे का तेज उधार लेकर अवनि को आलोकित करता है, सच्चे सेवक को साधन का अभाव कभी नहीं खटकता।

□ हमारी शक्ति बहुत थोड़ी है, इसलिए हमसे क्या सेवा हो सकेगी ? क्या तुम ऐसा सोचते हो ? नहीं, नहीं ऐसा कभी मत सोचो। आकाश में तारों की ओर देखो। ब्रह्माण्ड की तुलना में वे कितने अल्प हैं ? फिर भी यथाशक्ति सेवा करने, भूमण्डल को प्रकाशित करने, लाखों की

संख्या में प्रकट होते हैं और अमावस्या की अन्धेरी रात में अनेकों का पथ-प्रदर्शन करते हैं।

- थककर, ऊबकर सेवा-क्षेत्र का त्याग करने का विचार कर रहे हो ? तुम्हारे सामने बहने वाली इस सरिता को देखो। उद्गम से सागर में संगम होने तक कभी मार्ग में वह रुकती है ? 'सतत कार्यशीलता' यही उसका मूलमंत्र है। मार्ग में आने वाले विघ्नों से वह डरती नहीं तो तुम क्यों साधारण संकटों एवं अवरोधों से घबराते हो ? वह नदी ऊँच-नीच का भेद कभी जानती ही नहीं। मनुष्य मात्र ही नहीं, पशु-पक्षी या वनस्पति सबकी निरपेक्ष सेवा करना ही वह अपना धर्म समझती है। सेवक के लिये कौन ऊँच और कौन नीच ?

- 'इन अज्ञानी लोगों की क्या सेवा करें ? इनका सुधारना असम्भव है' ऐसा मत सोचो। देखो यह कीचड़ में यह कैसा सुन्दर कमल खिला है ? तुम भी अज्ञान कीचड़ में कमल के समान खिलकर कीचड़ में भी सुरभि पैदा करो, सच्चे सेवक की यही कसौटी है।

—स्वामी विवेकानन्द

- मानव सेवा में बढ़कर सुख और शान्तिदायक कोई उपाय संसार में नहीं है। जब अद्भुत आनन्द की तरंग वातावरण को प्रभावित करती है, उससे संसार में मानवों के हृदय पर अनुकूल प्रतिक्रिया होती है।
- मन में जब सुख और शान्ति का समावेश हो जाता है, तब उसका प्रतिबिम्ब बाहर भी दिखाई देता है। इसलिए हर मनुष्य को यथासम्भव मानवता की सेवा करने में तत्पर रहना चाहिए। जिसे भी आवश्यकता है, उसके लिए कुछ न कुछ करना चाहिए।
- बिना मानवता की सेवा किये भी सच्ची सुख-शान्ति नहीं पा सकता। मनुष्य की सेवा करना अपनी सेवा करनी है। फिर क्यों न अपने तक सीमित रहने के स्थान पर सामाजिक परिधि के माध्यम से अपनी सेवा की जाये ! आत्मा का विकास परोपकार भावना और उसी के अनुसार कार्य करने से ही होता है। वैसे न तो विकास की सरल सम्भावना रहती है और न उसका कोई महत्त्व है।

—रवीन्द्रनाथ टैगोर

- तुम मुझे प्रभु कहते हो, गुरु कहते हो, उत्तम कहते हो, मेरी सेवा करना चाहते हो और मेरे लिए सब कुछ बलिदान कर देने को तैयार हो। किन्तु मैं तुम से फिर कहता हूँ, तुम मेरे लिये न तो कुछ करते हो और न करना चाहते हो।

तुम जो कुछ करना चाहते हो मेरे लिए करना चाहते हो, जबकि मैं चाहता हूँ तुम औरों के लिए कुछ करो। मैं तुमसे सच कहता हूँ कि यदि तुमने इन छोटे के लिए कुछ न किया तो मेरे लिए भी कुछ न किया।

मैं फिर कहता हूँ कि मुझे प्रसन्न करने का प्रयत्न मत करो, मेरी प्रसन्नता तो इन छोटे और गरीब आदमियों की प्रसन्नता है। मुझे प्रसन्न करने के स्थान पर इनको प्रसन्न करो, मेरी सेवा की जगह इनकी सेवा और सहायता करो।

तुम सब प्रार्थना करते हो। लेकिन मैं सच कहता हूँ, तुम प्रार्थना नहीं करते। अगर तुम प्रार्थना करते हो ? तो मुझे ठीक-ठीक बतलाओ, क्या तुम लोग प्रार्थना में खड़े हुए संसार को भूल जाते हो। तुम्हारे मन का सारा द्वन्द्व नष्ट हो जाता है और तुम्हें ऐसा लगता है कि तुम्हारा कोई शत्रु नहीं है और न तुम ही किसी के शत्रु हो ?

यदि ऐसा नहीं होता तो तुम प्रार्थना नहीं करते। तुम्हारा प्रार्थना में खड़ा होना ठीक वैसा ही है जैसे ग्वाले के डण्डे से घेरी हुई भेड़ें बाड़े में खड़ी हो जाती हैं।

मैं तुमसे सच कहता हूँ, यदि परम पिता में विश्वास रखकर प्रार्थना की जाये तो मनुष्य को संसार की बुराइयों का स्मरण ही न आए। यदि तुममें राई के दाने भर भी सच्चा विश्वास हो तो तुम इस पहाड़ से अधिकारपूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान पर सरक जाने के लिए कह सकते हो और वह सरककर चला भी जाए।

—रामकृष्ण परमहंस

- धर्म का ध्येय है प्राणी मात्र को सुख-शान्ति देना, उनके शोक-सन्तापों को अधिक से अधिक कम करना। उन्हें सच्ची राह बतलाना। ऐसी राह बतलाना जिस पर चलकर वे निरापद भाव से सुख-शांति के लक्ष्य पर पहुँच सकें। यह

कार्य सेवा से भी हो सकता है, सान्त्वना से भी और उपदेश देकर भी।

जो व्यक्ति इस मार्ग को अपनाता है, वही धर्मात्मा कहा जाएगा। फिर चाहे वह कोई अनहोना काम दिखा पाता है या नहीं ! किन्तु संसार ऐसा विचित्र है कि वह धर्मात्मा की कसौटी चमत्कार अथवा किसी आश्चर्यचकित कर देने वाले काम को ही मानता है। संसार सुख-शांति का कोई सीधा सरल मार्ग नहीं चाहता है। वह धर्मात्मा की परीक्षा किसी चमत्कार से करना चाहता है।

खेद है ऐसी दुनिया कुछ ऐसा कर दिखाने वाले पर श्रद्धा करती है, जो उसकी सभ्यता में न आया और वह स्वयं न कर सके फिर चाहे वह ठग ही क्यों न हो, पापी ही क्यों न हो।

—महात्मा बुद्ध

- मनुष्य प्रार्थना करते हैं, पशु नहीं क्योंकि मनुष्य ने पिता को पहचाना है, पशु ने नहीं। जो मनुष्य परमपिता की प्रार्थना नहीं करता वह अभी मनुष्य नहीं है। ऊपर से वह मनुष्य अवश्य है, लेकिन अन्दर से पशुओं की तरह जड़ और अज्ञान ही है। यदि वह परमात्मा की प्रार्थना नहीं करता, वह उसके दिये अनन्त अनुदानों की अवज्ञा करता है। प्रार्थना से हमारे हृदय के कलुष ही दूर नहीं होते हैं, परमात्मा के प्यार का असीम आनन्द मिलता है। वह तो उसके अतिरिक्त है, प्रार्थना उद्देश्य नहीं कर्तव्य और हाँ, यदि प्रार्थना करने के लिये खड़े होते समय मन में किसी के लिये विरोध आये, किसी का अपराध स्मरण हो तो उसे प्रार्थना करने से पूर्व क्षमा कर देना चाहिए। अगर तुम ऐसा नहीं करते तो मन का विरोध और आत्मा का द्वेष, प्रार्थना के शब्द दूषित कर देंगे। संसार के जितने भी प्राणी हैं, वह तुम्हारी तरह ही परमात्मा के पुत्र हैं, तुम जिस तरह अपने दो पुत्रों को लड़ते-झगड़ते और परस्पर ईर्ष्या-द्वेष करते देखकर दुःख पाते हो उसी प्रकार परमात्मा भी तुम्हारी भावना और कर्तव्यरहित प्रार्थना से प्रसन्न नहीं होगा।

सबके दोष-दुर्गुण भूलकर सबकी सेवा और उन्नति करना भी प्रार्थना है। यह प्रार्थना उन सब प्रार्थनाओं से अच्छी है, जिसमें भगवान का नाम तो रहे पर अन्तःकरण की पवित्रता न

रहे। प्रार्थना का बीज पवित्रता की ही भूमि पर अच्छी तरह अंकुरित, पुष्पित और पल्लवित होता है। उसी में अच्छे फल लगते हैं, उसी से मनुष्य को प्रार्थना का फल मिलता है।

—सन्त तिरुक्कुरार

- जिसे तुम खोज रहे हो उसे पा नहीं रहे, खो ही रहे हो। फूल की सुगन्ध और अग्नि की ऊष्मा की तरह आनन्द तो तुम्हारे भीतर कैद है। उसे कैद से मुक्त करो। खिलो और अपना सौरभ, अपनी हैंसी सबको बाँट दो। अपने को रीता कर दो तो आनन्द का सागर तुम्हें अपने ही भीतर लहराता दिखाई देने लगेगा।

—कैलासजी

- प्राचीनकाल के जिन महापुरुषों की छाप हमारे हृदय पर लगी हुई है, उसका कारण उनकी विद्या, प्रतिभा, वाणी या चातुरी नहीं, वरन् उनका आदर्श जीवन, निर्मल चरित्र, उज्ज्वल लक्ष्य एवं तप-त्याग ही है। चरित्रहीन व्यक्ति प्रचार द्वारा क्षणिक भावावेश तो उत्पन्न कर सकते हैं, पर उसका प्रभाव कभी भी स्थायी नहीं हो सकता।

धर्मप्रचार के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने जीवन को आदर्श बनाकर दूसरों के सामने अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करें। क्रम ही सबसे बड़ा प्रचार है। श्रेष्ठ क्रम करके ही हम दूसरों को श्रेष्ठ बनने के लिए सच्ची और ठोस शिक्षा दे सकते हैं। उपदेशकों की नहीं अब उन आदर्शवादियों की आवश्यकता है, जो धर्म-कर्तव्यों को अपने जीवन में ओत-प्रोत करते हुए कुछ जनता का व्यावहारिक मार्गदर्शन कर सकें।

हम आज जहाँ हैं वही से आगे बढ़ने का प्रयत्न करें। पूर्णता की ओर चलने की यात्रा आरम्भ करें। दोषों को ढूँढ़ें और उन्हें सुधारें। गुणों का महत्त्व समझें और उन्हें अपनाएँ। इस प्रकार आन्तरिक पवित्रता में जितनी कुछ अभिवृद्धि हो सकेगी उतने का भी दूसरों पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा। समार्ग की दिशा में चलने के लिए उठया हुआ प्रत्येक कदम अपने लिए ही नहीं, समस्त संसार के लिए श्रेयस्कर होता है।

—सत्यनारायण तिलक

- देश, वेश और कर्मकाण्ड से ही नहीं धर्म की पहचान गुणों से होती है। महासागर के समान विशाल, स्पष्ट और गंभीर जीवन-प्रणाली को धर्म कहते हैं।

समुद्र क्रमशः नीचा और गहरा होता गया है, धार्मिक क्रमशः विनयशील और आप्त-सत्यता की गहराई में उतरता चला जाता है। समुद्र का स्वभाव है स्थिरता और अपनी मर्यादा में बने रहना, धर्म भी मनुष्य को स्थिर और मानवीय मर्यादाओं का निष्ठापूर्वक परिपालन सिखाता है।

समुद्र में मृतक शरीर नहीं रहने पाता, उसी तरह जीवन के सत्य के प्रति जिन्की आस्था नहीं रही जो जड़ हो गये हैं, धर्म उनको अपने में नहीं मिलाता पर अनेक नदी-नद समुद्र में आकर गिरते हैं, उसने किसी को मना नहीं किया। धर्म भी वर्ण-भेद, जाति-भेद और देश-काल का भेद किये बिना प्रत्येक आत्म-परायण को अपना लेता है। समुद्र अपना रस नहीं बदलता उसी प्रकार धर्म भी अपने सिद्धान्तों पर दृढतापूर्वक आरुढ़ रहने की शिक्षा देता है। समुद्र में अनेक तरह के रत्न, मूँगे, मोती भरे पड़े हैं तो सेवार, खर-बतवार भी। उसी प्रकार धर्म गुणों का आगार होकर भी जो तुच्छ और अवरोधक है, उन्हें भी प्यार करता है।

महासमुद्र को देखकर जो अपने जीवन को वैसा ही विस्तृत और महान बनाये वही सच्चा धर्मनिष्ठ है।

—महात्मा बुद्ध

- धर्म की आधारशिला अति सुदृढ़ है। उसे विज्ञान की समस्त दिशा को ध्यान में रखकर तत्त्वदर्शियों ने इस प्रकार बनाया है कि उसकी उपयोगिता में कहीं त्रुटि न रह जाय। व्यक्तिगत सुख-ज्ञाति, प्रगति और समृद्धि का आधार धर्म है। समाज की सुव्यवस्था भी व्यक्तियों की धर्म-परायण कर्तव्य बुद्धि पर निर्भर है। धार्मिकता का अवलम्बन लेकर कोई घाटे में नहीं रहता, वरन् अपनी सर्वाङ्गीण प्रगति का पथ ही प्रशस्त करता है।

धार्मिक मान्यताएँ न तो अवैज्ञानिक हैं और न काल्पनिक। किन्हीं सम्प्रदायिक रीति-रिवाजों अथवा कथा-किंवदन्तियों को धर्म का परिवर्तनशील कलेवर कहा जा सकता है। उसमें

सुधार और परिष्कार होता रहता है। धर्म की मूल आत्मा द्वारा उच्च मानवीय संदृष्टियों का प्रतिपादन होना सनातन एवं शाश्वत है। न तो उसकी उपयोगिता से इनकार किया जा सकता है और न उसे अदूरदर्शितापूर्ण ठहराया जा सकता। सच तो यह है कि मनुष्य की सामाजिकता धर्म के सिद्धान्तों पर ही टिकी हुई है।

धर्म का तात्पर्य है—सदाचरण, सज्जनता, संयम, न्याय, करुणा और सेवा। मानव प्रकृति में इन सततत्वों को समाविष्ट बनाये रखने के लिये धर्ममान्यताओं को मजबूती से पकड़े रहना पड़ता है। मनुष्य-जाति की प्रगति उसकी इसी प्रवृत्ति के कारण सम्भव हो सकी है। यदि व्यक्ति अधार्मिक, अनैतिक एवं उद्धत मान्यताएँ अपना ले तो उसका अपना ही नहीं समस्त समाज का अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा।

—स्वामी विवेकानन्द

- जिस प्रकार सिंह-शावक सिंह की क्रोधाग्नि, भयंकरता अथवा हिंसाशुलता से नहीं डरता, उसके साथ खेलता है और दौड़-दौड़कर उसके गले लिपटता है, उसी प्रकार सत्य का प्रेमी सत्य की भयंकरता से भयभीत नहीं होता और उसी के पास दौड़कर जाता है।

सत्य का व्यवहार शत्रु को भी मित्र बना देता है। संसार में अज्ञात शत्रु होने की इच्छा रखने वाले को सत्य का अनुयायी होनी चाहिए। सत्य एक ऐसा तेजस्वी साथी है, जो हर आपत्ति में मनुष्य की रक्षा किया करता है। कभी धोखा नहीं देता और न कभी कुछ चाहता है।

जहाँ हम सच्चा व्यवहार करते हैं वहीं जीवित रहते हैं। असत्य का सहारा लेने की भावना आते ही मर जाते हैं। सत्य को जानते हुए भी असत्य को प्रश्रय देते समय हमारे हृदय में जो एक ग्लानि होती है वह एक ऐसा विष है जो हमारे हाड़-मांस ही नहीं मन, बुद्धि और आत्मा तक में बिँध जाता है और इस प्रकार हम अपने सर्वनाश के बीज बो लेते हैं।

—महात्मा गाँधी

- धन-वैभव से शारीरिक सुख-साधन मिल सकते हैं। विलास-सामग्री कुछ क्षण इन्द्रियों में गुहगुदी पैदा कर सकती है, पर उनसे आन्तरिक एवं

आत्मिक उल्लास मिलने में कोई सहायता नहीं मिलती। धूप-छाँव की तरह क्षण-क्षण में आते-जाते रहने वाले सुख-दुःख शरीर और जीवन के धर्म हैं। इनसे छुटकारा नहीं मिल सकता। जिन्होंने अपनी प्रसन्नता इन बाह्य आधारों पर निर्भर कर रखी है, उन्हें असन्तोष एवं असफलता का ही अनुभव होता रहेगा। वे अपने को दुःखी ही अनुभव करेंगे।

सच्चा एवं चिरस्थायी सुख आत्मिक सम्पदा बढ़ाने के साथ बढ़ता है। गुण, कर्म, स्वभाव में जितनी उत्कृष्टता आती है, उतना ही अन्तःकरण निर्मल बनता है। इस निर्मलता के द्वारा परिष्कृत दृष्टिकोण हर व्यक्ति, हर घटना एवं हर पदार्थ के बारे में रचनात्मक ढंग से सोचता और उज्ज्वल पहलू देखता है। इस दृष्टिकोण की प्रेरणा से जो भी क्रियापद्धति बनती है, उसमें सत्य, धर्म एवं सेवा का ही समावेश होता है।

परिष्कृत दृष्टिकोण का नाम ही स्वर्ग है। स्वर्ग किसी स्थान विशेष का नाम नहीं, वह तो मनुष्य के सोचने, देखने और करने की उत्कृष्टता मिश्रित प्रक्रिया मात्र है। जो केवल ऊँचा ही सोचता और अच्छा ही करता है, उसे हर घड़ी स्वर्ग का आनन्द मिलेगा। उसके सुख का कभी अन्त नहीं।

—स्वामी विवेकानन्द

- अकर्मण्य, असहाय तथा अविश्वासपूर्ण जीवन बिताने वाले मनुष्यता के नाम पर एक कलंक के अतिरिक्त कुछ नहीं है। मनुष्य जीवन रिरियाने, रेंगने और रोने के लिये नहीं है। वह है, आये बढ़कर भविष्य पर पैर रोपने और समय पर अधिकार करने के लिये। जीवन पराजय के लिये नहीं, विजय के लिये है।

किन्तु जीवन-संग्राम में विजय मिलती उसी को है, जो उत्साह से भरपूर और आत्म-विश्वास से ओत-प्रोत है। जिसके चरणों में अंगद की दृढ़ता है, वही समय की छाती पर अपना पदारोपण कर सकता है। आत्मविश्वास सारी शक्तियों का उद्गम और श्रेयों की कुंजी है।

आत्मविश्वास के जागते ही मनुष्य में वह दिव्यशक्ति प्रबुद्ध हो जाती है, जिसके बल पर ऊँचे से ऊँचे पर्वतों को लौंघा और गहरे से

गहरे समुद्र को सन्तरण किया जा सकता है। आत्म-विश्वासी समस्त संसार के विश्वास का अधिकारी होता है।
—सुरेन्द्रनाथ बनर्जी

- तुम जो वस्तु चाहते हो, उसका मूल्य भी दे सकते हो या नहीं। जो दे नहीं सकता वह पाने का अधिकारी नहीं।
—लेखसायी
- भवन जितना ही ऊँचा बनाना होता है, उतनी ही नीची नींव खोदनी पड़ती है। नींव की गहराई पर ही भवन की ऊँचाई निर्भर है। ध्येय की गति ऊर्ध्वगामिनी है। ऊँचे ध्येय को पाने के लिये अपने आधारित ज्ञान को गम्भीर करना होता है। जिस प्रकार गहरी नींव पर, प्रभञ्जन का कोई प्रभाव नहीं रहता। एक बार भूकम्प आने पर भी उसके गिरने की विशेष चिन्ता नहीं होती, उसी प्रकार गहरी नींव पर आधारित ध्येय आलोचनाओं के समय नहीं डगमगाता।

नींव का कार्य सम्पन्न हो जाने पर जिस प्रकार भवन-निर्माण की दिशा बदल जाती है, उसी प्रकार अपनी आधार भित्ति पर खड़े ध्येय की गतिविधि भी आवश्यक दिशाओं की ओर अग्रसर हो उठती है।

ध्येय का सूत्रपात होने पर एक बार जो जनक्षोभ उठता है, वह उसकी नींव में समाहित हो जाता है और आगे चलकर लोग ध्येय को मान्यता देने और अपनाने लगते हैं।

—अब्राहम लिंकन

- ज्वार आता है और सागर-तट पर बने पद-चिन्हों को मिटाकर चला जाता है। वायु आती है और वृक्ष के नीचे पड़े पत्तों को उड़ा ले जाती है। जीवन आता है और समय के वक्षस्थल पर अपने पद-चिन्ह छाप देता है। किन्तु मृत्यु आती है और उन्हें बिगाड़कर चली जाती है।

यह बनने और बिगड़ने का क्रम अनादिकाल से चला आया और अनन्त काल तक चलता जाएगा। निःसर्ग की इन दो विपरीत क्रियाओं में क्या असत्य ? क्या वांछनीय है और क्या अवांछनीय है ?

जीवन एवं निर्माण को देखकर हम प्रसन्न होते हैं और मृत्यु एवं निर्वाण को देखकर उदास। ऐसा क्यों ? क्योंकि हम इन दोनों क्रियाओं को

भिन्न-भिन्न देखते हैं, जबकि यह दोनों क्रियाएँ एक ही हैं। निर्माण के लिये निर्वाण अपेक्षित है और जीवन के लिये मृत्यु आवश्यक है। यदि मृत्यु न हो तो जीवन निकम्मा और निष्क्रिय होकर बोझ बन जाएगा। नवीनता से वंचित होकर जड़ता का अभिशाप बनकर रह जाये। न रहने की सम्भावना में ही कर्म रूप में रहने का प्रयत्न करते हैं। —*रोबर्ट रोबर्ट*

- सामान्यतः संसार में उसी को बुद्धिमान मानने की प्रथा-सी पड़ी है, जो अधिक-से-अधिक सम्पत्ति प्राप्त कर लेता है, फिर वह सम्पत्ति उसने अनुचित रीति और अवांछनीय साधनों से ही क्यों न कमाई हो ? यहाँ तक कि दूसरे का धन हड़प लेने तक को लोग कुशलता और चतुरता मान लेते हैं।

जबकि वास्तविक बुद्धिमत्ता है मानव-जीवन का समुचित सदुपयोग करना। जिसने बाह्य साधनों की तुलना में आन्तरिक सद्गुणों को अधिक महत्ता दी, उसे ही वास्तविक बुद्धिमान मानना चाहिए।

इस सुरदुर्लभ मानव-जीवन को पाकर भी जो इसके उद्देश्य को नहीं समझता वह बुद्धिमान नहीं कहा जा सकता। जो इस अलभ्य अवसर का सदुपयोग करके अपनी आन्तरिक उन्नति में प्रयत्नशील है, वही सच्चे मायने में बुद्धिमान है। जो विचारवान है, भावनाशील और चरित्रवान है, उसे ही बुद्धिमान कहा जाएगा।

एकमात्र भौतिक उन्नति में अपने जीवन के अणु-क्षण लगा देने वाले को बुद्धिमान नहीं कहा जा सकता, फिर चाहे वह कितना ही बड़ा आदमी क्यों न हो ? —*कॉर्बेन कॉर्बे*

- बुद्ध ने उपनिषद् की शिक्षाओं को जीवन में कार्यान्वित करने की कला का अभ्यास करने के बाद अपना संदेश दिया था। वह संदेश था कि भूमि या आकाश में, दूर या पास में, दृश्य या अदृश्य में जो कुछ भी है, उसमें असीम प्रेम की भावना रखो हृदय में द्वेष या हिंसा की कल्पना भी जाग्रत न होने दो। जीवन की चेष्टा ही में उठते-बैठते, सोते जागते, प्रतिक्षण इसी प्रेमभावना में ओत-प्रोत रहना ही ब्रह्म विहार है, दूसरे शब्दों में जीवन की यही

गतिविधि है, जिसमें ब्रह्म का आत्मा में विचार किया जाता है।

यह ब्रह्म की आत्मा क्या है ? उपनिषद् के शब्दों में जो आकाश में तेजोमय और अमृतमय है और जो विश्वचेतना है, वही ब्रह्म है और उपनिषद् का कहना है कि आकाश में ही नहीं बल्कि जो हमारे अन्तःकरणों में भी तेजोमय और अमृतमय पुरुष है और जो विश्वचेतना का स्रोत है, वह ब्रह्म है। इस विराट विश्व के रिक्त स्थान में उसको चेतनता प्राप्त है और हमारी अन्तरआत्मा में भी उसी की चेतनता है।

इसलिये इस व्यापक चेतना की प्राप्ति के लिए हमें अपने अन्तर की चेतना से विश्व की असीम चेतनता का समभाव स्थापित करना है। वस्तुतः मानव के अप्युदय का सच्चा अर्थ इसी चेतना के उदय और विस्तार में है। यही हमारे सारे ज्ञान-विज्ञान का ध्येय रहा है।

—*रवीन्द्रनाथ टैगोर*

- ईश्वर को खोजते लोग मेरे पास आते हैं। मैं उनसे कहता हूँ कि ईश्वर तो प्रतिक्षण और प्रत्येक स्थान पर है। उसे खोजने कहीं भी जाने की आवश्यकता नहीं। जागो और देखो और जागकर जो भी देखा जाता है, वह सब परमात्मा ही है।

परमात्मा भी प्रतिक्षण प्रत्येक को बुला रहा है—सब दिशाओं से, सब मार्गों से उसकी आवाज आ रही है। लेकिन हम तो सोए हुए हैं। जो जागता है, वह उसे सुनता और वही उसे पाता है।

इसलिये मैं कहता हूँ कि ईश्वर की फिक्र मत करो। उसकी चिन्ता व्यर्थ है। चिन्ता करो स्वयं को जगाने की। निद्रा में जो हम जान रहे हैं, वह ईश्वर का ही विकृत रूप है यह विकृत अनुभव ही संसार है। जागते ही संसार नहीं पाया जाता है और जो पाता है वही सत्य है।

—*आचार्य रजनीश*

- समरंगण की लीला में तलवार आनन्द पाती है, तीर अपनी उड़ान और सनसनाहट में मजा लेता है। पृथ्वी इस आकाश में अपना अन्धाधुन्ध धक्कर लगाने के आनन्द में विभोर है, सूर्यनारायण अपने जगमगाते वैभव में तथा

अपनी सनातन गति में सदा सम्राट-सदृश आनन्द का भोग कर रहा है, तो फिर सचेतन यन्त्र, तू भी अपने नियत कर्म को करने का आनन्द उठा।

तलवार अपने बनाये जाने की मॉग नहीं करती, न अपने उपयोगकर्ता के कार्य में बाधा ही डालती है और टूट जाने पर विलाप नहीं करती। बनाए जाने में एक प्रकार का आनन्द है, प्रयुक्त किए जाने में भी एक आनन्द है। इसी के सम आनन्द की तू खोज कर।

क्योंकि तूने यन्त्र को कार्यकर्ता और स्वामी समझने की भूल की है और क्योंकि तू अपनी अज्ञानमयी इच्छा के कारण, अपनी निजी उपयोगिता का विचार करना पसंद करता है, तुझे दुःख और यातनाएँ झेलनी पड़ती हैं, बार-बार लाल दहकती हुई भट्टी के नरक में घुसना पड़ता है और यह जब तक, तब तक तू अपना मनुष्योचित पाठ पूरा नहीं कर लेगा।

—महायोगी अरविन्द

- केवल अपने लिये ही जीना मानव-जीवन का निकृष्टतम दुरुपयोग है, जो केवल अपने लिये ही पैदा हुआ, अपने लिए ही बढ़ा और आप खा-खेलकर चला गया, ऐसा व्यक्ति अपनी दृष्टि में सफल भले ही बनता हो, वस्तुतः वह असफल ही माना जाएगा।

इस सृष्टि में सफल जीवन उसका है, जो दूसरों के काम आ सके। बादल में समुद्र से जल ढोकर लाते हैं और प्यासी धरती को परितृप्त करने में लगे रहते हैं। समुद्र की महानता को सुरक्षित रखने के लिये नदियाँ उसमें अपनी आत्म-समर्पण करते रहने की परम्परा को तोड़ती नहीं। फूल खिलते हैं दूसरों को हँसाने के लिये, पौधे उगते हैं दूसरों के प्रयोजन पूर्ण करने के लिये। वायु चँवर झुलाते रहने की अपनी पुण्य-प्रक्रिया से समस्त जड़-चेतन को प्रमुदित करती रहती है। इसमें इनका अपना क्या स्वार्थ? सूर्य-चन्द्रमा और नक्षत्र इस जगती को अहर्निश प्रकाश प्रदान करते हुए भ्रमण करते हैं, यही जीवन की उपयोगिता एवं सार्थकता है।

- सृष्टि का प्रत्येक जड़ परमाणु और कीट-पतंग जैसा प्रत्येक जीवधारी अपनी स्थिति से दूसरों

का हितसाधन करता है। पशु दूध देते हैं और परिश्रम से हमारी सुविधाएँ बढ़ाते हैं। जब छोटे-छोटे अनियमित जीव-जन्तु तक परोपकार का व्रत लेकर जीवन-यापन करते हैं, तब क्या मनुष्य जैसे बुद्धिमान और विकसित प्राणी के लिये यही उचित है कि वह अपने लिये ही जिये, अपने लिये ही बढ़े? और अपने लिये ही मर जाय? —हेनरी बोरो

- अन्तःकरण की पवित्रता स्वर्ग और उसकी मलीनता ही नरक है। इन दोनों दशाओं का भोग करने के लिये मनुष्य को अन्यत्र नहीं जाना पड़ता। वह अन्तःकरण की स्थिति के माध्यम से अपने घर में बाहर, सोते-जागते, खाते-पीते और उठते-बैठते हर समय भोगता रहता है।

- पवित्र अन्तःकरण वाला मनुष्य मानो अपनी जेब में स्वर्ग डालकर घूमता है और मलीन अन्तःकरण वाला मानो नरक की विभीषिका लिये फिरता है। अनुकूल अन्तःकरण का अर्थ है, एक पुलक, एक सिहरन, एक सुख, एक आनन्द और प्रतिकूल अन्तःकरण का अर्थ है, एक त्रास, एक जलन, एक यन्त्रणा और भयानक अस्त-व्यस्तता।

- पाप से बचना है, ताप से अपनी रक्षा करनी है, आनन्द की अनुभूति पानी है, देवत्व का अनुभव करना है, तो अन्तःकरण का परिष्कार करना होगा। उसमें से दुर्वृत्तियों की कँटीली झाड़ियाँ उखाड़कर, सद्-विचारों के सुन्दर, सुकुमार प्रसून बोने होंगे। —जे. लक्ष्मण

- जीवन का एक लक्ष्य है ज्ञान और द्वितीय सुख। ज्ञान और सुख के समन्वय का ही नाम मुक्ति है। आत्मचिन्तन के द्वारा माया-बन्धनों और सांसारिक अज्ञान को काँट लेते हैं और विषय वश्यता से छूट जाते हैं तो हम मुक्त हो जाते हैं किन्तु ऐसी मुक्ति तब तर्क नहीं मिल सकती, जब तक सृष्टि के शेष प्राणी बन्धन में पड़े हैं।

- जब तुम किसी को क्षति पहुँचाते हो तो तुम अपने आपको क्षति पहुँचाते हो। तुम में और तुम्हारे भाई में कोई अन्तर नहीं है। जिस तरह छोटे-छोटे अवयवों से मिलकर शरीर बना है,

उसी प्रकार छोटे-छोटे प्राणियों से मिलकर संसार बना है। कान को दुख होता है तो आँख रोती है, उसी तरह समाज के किसी भी व्यक्ति का दुख तुम्हारे पास पहुँचता है, इसलिये केवल अपने सुख से मुक्ति की कल्पना नहीं की जा सकती।

इस कसौटी पर जब लोगों को अपने लिये बढ़-चढ़कर अधिकार माँगते देखता हूँ, तो ऐसे आदमी से मुझे घृणा होती है। अधिकार व्यक्ति को स्वार्थी और संकीर्ण बनाते हैं। विश्व में जो कुछ अशुभ है, उसका उत्तरदायित्व प्रत्येक व्यक्ति पर है। अपने भाई से अपने को कोई पृथक् नहीं कर सकता। सब अनन्त के अंश हैं। सब एक-दूसरे के रखक और सहयोगी हैं। वास्तव में वही सच्चा योगी है, अपने लिये अधिकारों की माँग करना पुण्य नहीं है, पुण्य तो यह है कि हम छोटे-से-छोटे जीव के प्रति अपने कर्तव्य का पालन कर सकते हैं या नहीं। इसके लिये अपने अधिकार छोड़ने पड़ते हैं। इस लोक में यही सबसे बड़ा पुण्य है। आत्म-त्याग ही इस संसार का सर्वोच्च धर्म है।

—स्वामी विवेकानन्द

- अपने समय की सर्वोत्तम वस्तुएँ भी कालान्तर में विकृतिग्रस्त होकर अनुपयोगी बन जाती हैं। जाड़े के कपड़े जो उन दिनों शरीर को सर्दी से बचाने के लिए उपयोगी एवं आवश्यक थे, कुछ समय पीछे गर्मी आने पर निरूपयोगी हो जाते हैं। तब कोई यह आग्रह करे कि “भूतकाल में उन्हें उपयोगी माना गया था, इसलिए अब भी उन्हें वैसा ही माना जाय और उसी प्रकार धारण किया जाय” तो यह आग्रह अनुचित ही नहीं, हानिकारक भी होगा। धोर गर्मी में भला ऊनी, मोटे, गरम कपड़े पहनने से क्या लाभ हो सकता है ?

किसी जमाने में उस समय की परिस्थितियों के अनुसार कोई वस्तु अच्छी रही होगी, पर समय बीत जाने पर जब अन्य प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गईं, तब यह आवश्यक नहीं कि पुरानी कार्य-पद्धति ही ठीक बनी रहे। नई समस्याएँ सुलझाने के लिए नया दृष्टिकोण आवश्यक है। टूट-फूट को सुधारने के लिए मरम्मत की जो उपयोगिता है, वैसी ही पुरानी रीति-रिवाजों में असामयिकता उत्पन्न हो जाने

पर उन्हें ठीक करने के लिए भी आवश्यकता होती है। जो समय को नहीं देखते, पहचानते उन्हें कुचलता हुआ जमाना आगे बढ़ जाता है और वे अपनी प्रतिगामिता पर पश्चात्ताप ही करते रहते हैं।

—ईश्वरब्रह्म विद्यासागर

- “मेरे देशवासियों ! विषम परिस्थितियों का अन्त आ गया। काफ़ी रो चुके, अब रोने की आवश्यकता नहीं। अब हमें अपनी आत्मशक्ति को जगाने का अवसर आया है। उठो, अपने पैरों पर खड़े हो और मनुष्य बनो। हम मनुष्य बनाने वाला ही धर्म चाहते हैं। सुख, सफलता ही क्या सत्य भी यदि शरीर, बुद्धि आत्मा को कमजोर बनाये रखे तो उसे विष की भाँति त्याग देने की दृढ़ता आप में होनी चाहिए।

“जीवनी-शक्तिविहीन धर्म कभी धर्म नहीं हो सकता। उसका तो स्वरूप ही बड़ा पवित्र, बलप्रद, ज्ञानयुक्त है। जो शक्ति दे, ज्ञान दे, हृदय के अन्धकार को दूर कर नव-स्फूर्ति भर दे। आओ, हम आज उस सत्य की, धर्म की वन्दना करें। कामना करें और जन-जीवन में प्रवाहित होने दें। तोता बोल बहुत सकता है पर वह आबद्ध प्राणी कुछ कर नहीं सकता। हम राग, द्वेष, काम, क्रोध, मद, मत्सर, अज्ञान, कुत्सा, कुविचार, दुष्कर्म के पिंजरे में आबद्ध न हों। अच्छी बात मुँह से कहें और उसे जीवन में उतारें भी। हमारे मस्तिष्कों में जो दुर्बलता भर गई है, उसे निकालकर शक्तिशाली बनने के लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिए।

—स्वामी विवेकानन्द

- अपने अभावों को पूरा करने के लिए मैं दरवाजे-दरवाजे पर भीख माँगता फिर रहा था। तभी तेरा स्वर्णिम रूप मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। मैंने अपने को धन्य माना और सोचा अब तेरे वरदान से मेरे सब मनोरथ पूरे होंगे। तू रथ पर से नीचे उतरा, मुसकराया और उलटे मेरे आगे हाथ पसार दिया। कैसा व्यंग्य, कैसा परिहास, तूने भिक्षुक से भी भिक्षा माँगी। मैं असमंजस में पड़ गया। अनिच्छापूर्वक अपनी झोली में से अन्न का दाना निकाला और तेरे हाथ पर रख दिया, दाना लेकर तू चला गया और मेरी वरदान पाने की आशा निराशा बन गई। खिन्नता से मन दुःख हो चला।

दिन छिपते, अपनी भिक्षा-यात्रा से लौटकर आया और अपनी झोली को खाली किया। उसमें एक बड़ा-सा सोने का दाना निकला।

मैं फूट-फूट कर रोया। अपनी कृपणता पर पछताया। काश, मैंने अपने सारे दाने तुझे सौंप दिए होते तो मेरी झोली सोने से भरी होती।

—रवीन्द्रनाथ टैगोर

- इस वक्त लोगों की इच्छा हो रही है कि भगवान अवतार लें, जिसे मैं पुरानी भाषा में 'अवतार-प्रेरणा' कहता हूँ। तुलसीदासजी ने वर्णन किया है कि पृथ्वी संतुष्ट होकर गोरूप धारण कर भगवान से प्रार्थना करती है कि हे भगवान् आइये, हमें बचाइये। भारत को आज मैं उस मनस्थिति में देख रहा हूँ, जिस मनस्थिति में अवतार की आकांक्षा होती है। यह जरूरी नहीं है कि मनुष्य का अवतार होगा। विचार का भी अवतार होता है, बल्कि विचार का ही अवतार होता है। लोग समझते हैं कि रामचन्द्र एक अवतार थे, कृष्ण, बुद्ध अवतार थे। लेकिन उन्हें हमने अवतार बनाया है। वे आपके और मेरे जैसे मनुष्य ही थे। लेकिन उन्होंने एक विचार का संचार सृष्टि में किया और वे उस विचार के मूर्तिरूप बन गए, इसलिए लोगों ने उन्हें अवतार माना। हम अपनी प्रार्थना के समय लोगों से सत्य, प्रेम, करुणा का चिन्तन करने के लिए कहते हैं। भारत की तरफ ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो जहाँ 'सत्य' शब्द का उच्चारण होता है, वहाँ असंख्य लोगों को प्रभु राम का स्मरण होता है, जहाँ 'प्रेम' शब्द का उच्चारण होता है, वहाँ करोड़ों लोगों को कृष्ण भगवान की याद आती है और जहाँ 'करुणा' शब्द का उच्चारण होता है, वहाँ गीतम बुद्ध का स्मरण होता है। राम, कृष्ण और बुद्ध ये ही तीन अवतार हिन्दुस्तान में माने गये हैं। लेकिन वे तो निमित्त मात्र हैं। दरअसल भगवान् ने सत्य, प्रेम, करुणा के रूप में अवतार लिया था।

भगवान किसी-न-किसी गुण या विचार के रूप में अवतार लेता है और उस गुण या विचार को मूर्त रूप देने में, जिनका अधिक-से-अधिक परिश्रम लगता है, उन्हें जनता अवतार मान लेती है। यह अवतार-मीमांसा है। वास्तव में अवतार व्यक्ति

का नहीं, विचार का होता है और विचार के तौर पर मनुष्य काम करते हैं। किसी युग में सत्य की महिमा प्रकट हुई, किसी में प्रेम की, किसी में करुणा की तो किसी में व्यवस्था की। इस तरह भिन्न-भिन्न युगों में भिन्न-भिन्न गुणों की महिमा प्रकट हुई है।

—विनोबा

- सच्चे आध्यात्मिक व्यक्ति के हृदय में प्रेम, ईमानदारी, सत्यता, उदारता, दया, श्रद्धा, भक्ति और उत्साह के भाव उत्पन्न होते हैं। ये सब आत्मा के स्वाभाविक गुण हैं। ये मनुष्य की स्थायी शक्तियाँ हैं। इनको प्राप्त करने का उस समय तक प्रयत्न करते रहना चाहिए, जब तक कि समस्त जीवन पूरी तरह इनमें रँग न जाय। जिस आदमी में सब गुण मौजूद हैं वास्तव में वही आध्यात्मिक व्यक्ति है। इसी सत्य के आधार पर वह परमात्मा से मिल सकता है। ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग किसी धर्मविशेष या किसी कर्मकाण्ड में सीमित नहीं है, यह तो आत्मा की गम्भीरता में विद्यमान है। केवल 'ईश्वर' 'ईश्वर' रटने वाले धर्मात्मा नहीं होते वरन् वे ही व्यक्ति धर्मात्मा होते हैं, जो परमात्मा के आदेशों पर अथवा उनके बताये हुए मार्ग पर चलते हैं। धन्य हैं वे आदमी जो परमात्मा का उपदेश सुनते हैं और उसके अनुसार आचरण करते हैं।

जो आत्मा इस सुन्दर जीवन में पदार्पण कर चुका उसके लिये अन्तर ज्ञान का दरवाजा खुला हुआ है। शुद्ध हृदय वाले आदमी धन्य हैं क्योंकि वे ही परमात्मा का दर्शन करेंगे। इस दर्शन में जो आनन्द है उसका वर्णन कौन कर सकता है ?

—तन्त्र मास्काजी

- संसार में अनेक प्रकार के ज्ञान और विज्ञान मौजूद हैं। लोग अपनी रुचि के अनुसार उन सबको सीखते हैं और लाभ उठाते हैं। पर इन सब विज्ञानों से ऊँचा एक महाविज्ञान है, जिसके बिना अन्य सब विज्ञान, अंधे एवं अनुपयोगी हैं। खेद है कि उस महाविज्ञान के महानतम लाभ और महत्त्व की ओर ध्यान नहीं देते। अध्यात्मवाद जीवन का वह तत्त्वज्ञान है, जिसके ऊपर हमारी भीतरी और बाहरी उन्नति, समृद्धि एवं सुख-शान्ति निर्भर है।

साहित्य, कला, शिल्प, रसायन विज्ञान आदि का ज्ञान मनुष्य की पदवी और समृद्धि को बढ़ाता है। पर अध्यात्म का ज्ञान के बिना सहयोग, प्रेम, आत्मीयता, सन्तोष, आनन्द एवं उत्साह की उपलब्धि नहीं हो सकती। अनेक धनकुबेर और उच्चपदासीन व्यक्ति अपने जीवन को नरक की ज्वाला जैसे अज्ञान की अग्नि में दिन-रात जलता हुआ अनुभव करते हैं। इसके विपरीत अनेकों साधारण स्थिति के व्यक्ति अपने को स्वर्गीय सन्तोष की शान्ति से परितृप्त अनुभव करते हैं।

अध्यात्मवाद वह मह्यविज्ञान है, जिसकी जानकारी के बिना भूतल के समस्त वैभव निरर्थक हैं और जिसके बोझ-सा भी प्राप्त होने पर जीवन आनन्द से ओत-प्रोत हो जाता है। संसार में सीखने योग्य, जानने योग्य अनेकों वस्तुएँ हैं पर स्मरण रखो सबसे पहले जिस दिन सीखने और हृदयंगम करने की आवश्यकता है वह—वैज्ञानिक अध्यात्मवाद ही है।

—समग्र

□ इस संसार में अनेक प्रकार के पुण्य और परमार्थ हैं। शास्त्रों में नाना प्रकार के वर्ण अनुष्ठानों का सविस्तार विधि-विधान है और उनके सुविस्तृत माहृत्यो का वर्णन है। दूसरों की सेवा-सहायता करना पुण्य है, इससे कीर्ति, आत्म-सन्तोष तथा सद्गति की प्राप्ति होती है। पर इन सबसे भी बढ़कर एक पुण्य-परमार्थ है और वह है—'आत्मनिर्माण'। अपने दुर्गुणों को, विचारों को, कुसंस्कारों को, ईर्ष्या, तृष्णा, क्रोध, द्रोह, क्षेम, चिन्ता, भय एवं वासनाओं को विवेक की सहायता से आत्मज्ञान की अग्नि में जला देना इतना बड़ा धर्म है, जिसकी तुलना सड़ख अश्वमेधों से नहीं हो सकती। अपने अज्ञान को दूर करके मन-मन्दिर में ज्ञान का दीपक जलाना भगवान की सच्ची पूजा है। अपनी मानसिक तुच्छता, दीनता, क्षीनता, दासता को हटाकर निर्भयता, सत्यता, पवित्रता एवं प्रसन्नता की आत्मिक प्रवृत्तियों बढ़ाना करोड़ मन लोणा दान करने की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है।

□ हम मनुष्य अपना-अपना आत्मनिर्माण करें तो यह पृथ्वी स्वर्ग बन सकती है। फिर मनुष्यों

को स्वर्ग जाने की इच्छा करने की नहीं वरन् देवताओं को पृथ्वी पर आने की आवश्यकता अनुभव होगी। दूसरों की सेवा-सहायता करना पुण्य है पर अपनी सेवा-सहायता करना इससे भी बड़ा पुण्य है। अपनी शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक स्थिति को ऊँचा उठाना, अपने को एक आदर्श नागरिक बनाना, इतना बड़ा धर्मकार्य है, जिसकी तुलना अन्य किसी भी पुण्य-परमार्थ से नहीं हो सकती। —टात्पट्य

□ जो अपनी आत्मा के आगे सच्चा है, जो अपनी अन्तरात्मा की आवाज के अनुसार आचरण करता है, जो बनावट, धोखेबाजी चालाकी को तिलांजलि देकर ईमानदारी को अपनी जीवननीति बनाये हुए है वह इस दुनिया का सबसे बुद्धिमान व्यक्ति है क्योंकि सत्य को अपमान से मनुष्य शक्ति का पुंज बन जाता है। मरणा कनप्युशियस कल करते थे कि सत्य में हजार हथियों के बराबर बल है। परन्तु वस्तुतः सत्य में अपार बल है। उसकी समता भौतिक सृष्टि के किसी भी बल से नहीं हो सकती।

□ स्मरण रखिए, झूठ आखिर झूठ ही है। वह आज नहीं तो कल जरूर खुल जाएगा। असत्य का जब भण्डाफोड़ होता है तो उससे मनुष्य की सारी प्रतिष्ठा नष्ट हो जाती है। उसे अविश्वासी, दुष्टा और ओछा आदमी समझा जाने लगा है। झूठ बोलने में तात्कालिक बोझ लाभ दिखाई पड़े तो भी आप उसकी ओर ललचाइए मत, क्योंकि उस बोझ लाभ के बदले में अन्ततः अनेक गुनी हानि होने की सम्भावना है।

□ आप अपने वचन और कार्यों द्वारा सच्चाई का परिचय दीजिए। सत्य उस बीज के समान है, जो आज छेद दीखता है पर अन्त में फल-फूल कर विशाल वृक्ष बन जाता है। जो ऊँचा, प्रतिष्ठायुक्त और सुख-शान्ति का जीवन किताने के इच्छुक हों, उनका दृढ़ निश्चय होना चाहिए कि हमारे वचन और कार्य सच्चाई से भरे हुए होंगे। —लेखक

□ धित की वृत्तियों को दूर करने से ही आत्मा की प्राप्ति होती है, जिसका अन्तःकरण मल

विकारों से भरा है, उसे आत्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता। सत्कर्म के द्वारा भावना शुद्ध होती है और भावशुद्धि से ईश्वर मिल जाता है। जो अपने दोषों को नहीं देखता, उनके शमन और नितकरण का उपाय नहीं करता उसकी सारी साधनाएँ आङ्घ्रि मात्र हैं। मन को निर्मल बनावे बिना न भक्ति प्राप्त होती है, न उपासना बन पड़ती है। जिस ज्ञान से आचार शुद्ध न हो, सद्गुण न बढ़ें, वह निरर्थक भार वहन मात्र है। जिस कर्म के पीछे उच्च भावनाएँ न हों, वह कर्म में बँधने वाला ही होता है। इसलिए ज्ञान, कर्म और भक्तियोग की साधना करके आत्मा की प्राप्ति करने के इच्छुकों को सब से पहले अपने आचार और विचार शुद्ध करने चाहिए।

—नमो भगवते वासुदेवाय

- साहित्य से मुझे इमेशा बहुत उत्साह होता है। साहित्य-देवता के लिये मेरे मन में बड़ी श्रद्धा है। एक पुरानी बात याद आ रही है। बचपन में करीब १० साल तक मेरा जीवन एक छोटे से देहल में ही बीता। बाद के १० साल तक बड़ीदा जैसे बड़े शहर में बीते। जब मैं कॉलेज के देहल में था, तब पिताजी कुछ अध्ययन और कर्म के लिये बड़ीदा में रहते थे। दिवाली के दिनों में अक्सर घर पर आया करते थे। एक बार माँ ने कहा : “आज तेरे पिताजी जाने वाले हैं, तेरे लिये मेवा-मिठाई लायेंगे।” पिताजी आए। फौरन मैं उनके पास पहुँचा और उन्होंने अपना मेवा मेरे हाथ में थमा दिया। मेवे को हम कुछ नोल-नोल लहसू ही समझते थे। लेकिन यह मेवे का पैकेट नोल न होकर चिपटा-सा था। मुझे लगा कि कोई खास तरह की मिठाई होगी। खोलकर देखा, तो किताबें थीं। उन्हें लेकर मैं माँ के पास पहुँचा और उसके सामने रख दिया। माँ बोली—“बेटा ! तेरे पिताजी ने तुझे आज जो मिठाई दी है, उससे बड़कर कोई मिठाई हो ही नहीं सकती।” वे किताबें रामायण और भागवत की कलामियों की थीं, यह मुझे याद है। आज तक वे किताबें मैंने कई बार पढ़ीं। माँ का यह वाक्य मैं कभी नहीं भूला कि—“इससे बड़कर कोई मिठाई हो ही नहीं सकती।” इस वाक्य में मुझे इतना पकड़ रखा है कि आज

भी कोई मिठाई मुझे इतनी मीठी मालूम नहीं होती, जितनी कोई सुन्दर विचार की पुस्तक ! वैसे तो भगवान की अनन्त शक्तियाँ हैं, पर साहित्य में उन शक्तियों की केवल एक ही कला प्रकट हुई है। भगवान की शक्ति की यह कला कवियों और साहित्यिकों को प्रेरित करती है। कवि और साहित्यिक ही उस शक्ति को जानते हैं, दूसरों को उसका दर्शन नहीं हो पाता।

—विश्वेश

- शारीरिक स्वास्थ्य मन की संतुलित स्थिति पर निर्भर है। देह का कोई भी रोग इतना कष्टकरक नहीं होता, जितना मन का उद्वेग। जिसका मन उद्विग्न रहता है, उसका नीरोग रह सकना असंभव है। मन को स्वच्छ, सन्तुलित और शान्त रखने से आत्मिक प्रफुल्लता उत्पन्न होती है, वह शरीर के लिए संजीवनी बूटी के समान रामबाण औषधि है। यह औषधि जिसे सेवन करने को मिलती रहती है वह बीमार न पड़ेगा और यदि पड़ेगा भी तो जल्दी ही नीरोग हो जाएगा। चील माँस पर मैंझराती देखी जाती है, बीमारी भी वही अपना आश्रय खोजती है, जहाँ मन में उद्विग्न और बिबोध भरे पड़े हों। चिकित्सक तात्कालिक सहायता कर सकते हैं, पर रोगों की जड़ को नहीं काट सकते। इस संसार में अभी तक ऐसी कोई औषधि नहीं बन सकी है, जो कुपथ्य करते रहने पर भी आरोग्य की रक्षा कर सके। हर मनुष्य स्वयं ही अपना सबसे अच्छा चिकित्सक हो सकता है। आहार-विहार पर ध्यान रखा जाय और असंयम को कड़ाई से रोक जाय तो रोगों से सदा के लिए पीछा छुड़ाया जा सकता है।

—लोकमान्य तिलक

- रोग केवल हमारे कर्मों का ही फल नहीं बल्कि हमारे विचारों का भी फल है। मनुष्य चेचक, हैजा और प्लेग की अपेक्षा उनके भय से अधिक मरते हैं। अज्ञानता ही प्रायः रोगों का कारण हुआ करती है। बहुधा साधारण रोगों में भी ठीक उपचार न जानने के कारण हम बबझा उठते हैं और उससे घुटकारा पाने के लिये उत्पन्न-सुलभ उपचार कर भयंकर फल उपस्थित कर देते हैं। साधारण रोगों में भी हमको डाक्टर की शरण लेने की आदत-सी पड़ गई है। औषधि कभी-कभी निष्फल ही नहीं

वरन् हानिकारक भी सिद्ध होती है। औषधियों से रोग को दबा देना ठीक वैसा ही है जैसे कि घर में पड़े कूड़े को ढँककर रखना क्योंकि कूड़े को हम जितना ही ढँककर रखने का उद्योग करते हैं, उतनी ही शीघ्रता से सड़कर वह अपनी दुर्गन्ध फैलाता है। अतः बुद्धिमानों यही हो सकती है कि प्राकृतिक ढंग से कूड़े और रोग को साफ किया जाय। रोग द्वारा प्रकृति हमें सूचित करती है कि हमारे अन्दर गन्दगी, जो रोगों का घर है इकट्ठा हो रही है और उसे हमें प्राकृतिक क्रिया द्वारा हटाना चाहिए, न कि औषधियों द्वारा उसे शरीर के अन्दर ही दबा देना चाहिए। —~~कलानिधि~~

- मान लीजिए कि मेरे पेट में बीमारी है तो मैं उसका इजहार करता हूँ। वैसे तो मुझे इस बीमारी के लिए शर्मिन्दा होना चाहिए, लेकिन मैं उसे छिपाता नहीं, क्योंकि वह सुनकर आपके मन में मेरे लिए घृणा पैदा नहीं होती है, दया ही पैदा हो सकती है और उससे मुझे लोगों की सलाह और मदद मिलती है। लेकिन दुराचार को मैं प्रकट नहीं करता हूँ, क्योंकि जिस सन्तानुभूति से आप मेरी बीमारी की तरफ देखते हैं, उस सन्तानुभूति से दुराचार की तरफ नहीं देखते हैं और मुझमें यह हिम्मत नहीं होती कि आप बुरा मानें तो मैं उसे प्रकट करूँ। दुराचार को छिपाना दुराचार करने से भी बुरा है। कुछ रोगी अपनी बीमारी को छिपाते हैं, किसी को बताते नहीं और फिर बड़ने पर बताना ही पड़ता है, तो फिर उसका दुःख होना मुश्किल हो जाता है। प्राथमिक अवस्था में अगर बीमारी की बात खुलती, तो वह दूर भी होती है। लेकिन कुछ रोगी उसे छिपाते हैं, क्योंकि लोगों में उसके लिए घृणा है। उसी तरह दुराचार के लिए घृणा है, इसलिए लोग उसे छिपाते हैं। लेकिन हमें समझना चाहिए कि—‘सर्वोत्तम नीति, धर्म सत्य है’ और सबसे बड़ा अधर्म है छिपाना, असत्य। यह मूल्य जब तक हम स्थापित नहीं करते हैं, तब तक समाज का स्वास्थ्य नहीं सुधरेगा। —~~कलानिधि~~

- अपनी प्रतिभा को बहुमुखी करके चारों ओर बिखेर देना एक बड़ी भूल है। अनेकों दिशाओं में मन डुलाने और रोज नये काम ढूँढ़ने की अपेक्षा यह अच्छा है कि काफ़ी समझ-सोच के

कोई मार्ग ग्रहण किया जाय और फिर मजबूती से उसे पकड़कर उसी दिशा में प्रगति करते रह जाय। जो व्यक्ति एक चीज ढूँढ़ता है, वह उसे पा लेता है और जो बहुत कुछ चाहता है, सब कुछ ढूँढ़ता है, उसे कुछ भी नहीं मिल पाता। लगातार एक जगह गिरने वाली बूँदें पत्थर में भी छेद कर सकती हैं, पर लम्बी दौड़ में उछलते फिरने वाला नाले का पानी धड़धड़ता हुआ क्षण भर में निकल जाता है। पीछे उसका पता भी नहीं चलता कि कहाँ गया ? एक स्थान पर एकनिष्ठ होकर जमे रह कर कम योग्यता और कम शक्ति के आदमी भी कुछ न कुछ सफलता प्राप्त कर सकते हैं, पर अनेक दिशाओं में चित्त को डुलाने वाले और किसी काम पर न जमने वाले शक्तिसम्पन्न और बुद्धिमान लोग भी कुछ महत्वपूर्ण कार्य कर सकने में असफल हो रहते हैं। —~~कलानिधि~~

- जिसे योगसाधना करने का अधिकारी बनना है, उसे सबसे प्रथम सबैत रखना चाहिए। योगियों की भाषा में कहे तो उसे सदा ‘जगते रहना’ होगा। जो कुछ भी स्वीकार करो वह दिव्य हो, तुम्हें अदिव्यता से दूर रहना होगा। तभी अपने में दिव्यता, पवित्रता आयेगी, तभी बुराई का पलायन होगा। असत्यवादी से बुरी शक्तियों से निपटने में सफल नहीं हो सकते। अदिव्य शक्तियाँ अन्तः में घुस जाती हैं और हमको अपना दास बना लेती हैं।

तुम्हें अपनी प्रवृत्तियों और प्रकृतियों को सदा सावधान-सचेत रखना होगा। तुम्हें विचार करना चाहिए कि क्यों और कैसे किसी कार्य में लगते हो और किस बात का अनुभव तथा विचार करते रहते हो ? तुमको अपने आवेशों, अपनी गुप्त या प्रकट शक्तियों और प्रेरक-भावों का जिनकी प्रेरणा से कार्य करते हो, उसका ज्ञान भी होना चाहिए।

एक बार भी यदि तुम स्वैतन हो गये तो तुम्हारी शक्ति, विवेक और मन-बुद्धि अच्छे-बुरे को पहचान लेने में, ऊपर उठने में समर्थ होने लगेगी। जब तुममें उचित को अनुचित से, दिव्य को अदिव्य से, सत्य को असत्य से पृथक् करने की योग्यता हो जाएगी, तब तुम कठोरतापूर्वक एक का त्याग और दूसरे का ग्रहण कर सकोगे। —~~माताजी (पाणिनेरी)~~

□ मैं बोला—गुरुदेव, पहाड़ों जैसी शान्ति कहाँ ? एकान्त में बैठकर आत्मचिन्तन करूँगा और अपना परलोक बनाऊँगा।

गुरु ने कहा—बच्चे ! पहाड़ों का परमार्थ अनिश्चित है, तु गौवों में जा जहाँ लोग अज्ञानता के गर्त में फिसलकर दीन-हीन और उजड़ी हुई स्थिति में कष्ट भोग रहे हैं। शहरों में जा वहाँ का अज्ञान मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद-भाव, छल-कपट और विषमता के बीज बो रहा है।

मैंने कहा—देव ! वहाँ का संघर्ष, वहाँ की यातनाएँ मुझसे झेली न जाएँगी, वहाँ का कोलाहल और क्रन्दन मुझसे देखा न जाएगा, मुझे तो पहाड़ पर जाने दीजिये।

गुरुदेव की आँखें झलक उठी—बोले तात ! जिस देश के नागरिक, नन्ही-नन्ही सन्तानें अज्ञान में भटक रही हों, वहाँ के प्रबुद्ध व्यक्ति अपने स्वार्थ, अपने कल्याण की बातें सोचें, यह अन्याय ही नहीं पाप भी है। ईश्वर को पाना है तो प्रकाश की साधना करो जो अन्धकार में भटक गये हैं, उन्हें ज्ञान का प्रकाश दो।

—तन्त्र कर्त्तव्य

□ सच्चा विद्यार्थी वही है जिसको विद्योपार्जन की सच्ची मूख लगी हो, जो विद्या प्राप्ति की कठिनाइयों को देखकर आनन्दित होता है, जो विद्या को केन्द्र बनाकर अन्य सब बातों को भूल जाता है। यदि कोई यह समझकर विद्या पड़े कि वह उसे अर्ध-प्राप्ति का उद्देश्य सिद्ध करेगी तो जीवन-लक्ष्य प्राप्त करने का उच्छ्वास न मिलेगा और न तब उसका श्रम ही सार्थक होगा। बौद्धिक विकास के साथ आचरण बुद्धि और उसके लिए प्रखर भावना पैदा हो तो विद्या का उद्देश्य सही है और बड़ी सच्चा विद्यार्थी है। बुद्धि भी उन लोगों के लिए अपना दरवाजा नहीं खोलती, जो अलस-स्वार्थ और कठोर परिश्रम की क्षमता नहीं चुकाना चाहते। विद्या तो दरअसल बह हीरा है। जिस पर अपना सब कुछ न्योछावर किया जाता है। सरस्वती देवी का वरदान उन मूल्य चुकाने वालों को ही मिलता है। विद्यार्थियों के लिए इतनी सीख बहुत आवश्यक है। —पद्मनाभ शर्मा

□ प्रगति के लिए अनेक पुरुषार्थों की आवश्यकता होती है। विभिन्न प्रकार की क्षमताओं और योग्यताओं के बलबूते पर लोग अपनी उन्नति करते हैं, जिनमें कोई विशेषता नहीं, कोई प्रतिभा नहीं, उन्हें दूसरों की कृपा पर आश्रित रहकर जीवन व्यतीत करना पड़ता है। इस संसार में क्षमताओं के बदले ही विभूतियाँ मिलती हैं और पुरुषार्थ के बल पर सुख-साधनों का उपार्जन किया जाता है। प्रगतिशील मनुष्य ही आगे बढ़ते हैं और इस आनन्दमय विश्व में आनन्दपूर्ण जीवनयापन करने की सफलता प्राप्त करते हैं।

मानव जीवन की सबसे बड़ी प्रतिभा यह है कि दूसरों के साथ चिरस्थायी मधुर सम्बन्ध उत्पन्न करने की कला में प्रवीण माना जाय। प्रगति का पथ प्रशस्त करने के लिये और कोई गुण इतना महत्वपूर्ण नहीं जितना कि दूसरों को अपना स्नेही, सहयोगी और मित्र बना लेने का चातुर्य। कोई व्यक्ति कितना ही प्रभावशाली क्यों न हो, दूसरों के सहयोग के बिना एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकता। अकेला मनुष्य जिसे किसी का भी स्नेह-सहयोग प्राप्त नहीं जीवित रहने तक की समस्या हल न कर सकेगा। असहयोग से बढ़कर और कोई बाधा इस संसार में हो नहीं सकती। जिससे लोग असन्तुष्ट हों, डरते रहें, उपेक्षा करें साथ देने या सहयोग करने से कतरावें। वह प्रेत-पिशाच की तरह अज्ञात और अव्यवस्थित ही फिरता रहेगा।

□ अपना स्वभाव सुसंस्कृत बनाना और सौजन्य, सहृदयता और उदारता की रीति-नीति अपनाना ही वह उपाय है, जिनसे दूसरों की सद्भावना को आकर्षित किया जा सकता है। घूर्तता या चापलूसी से किसी पर कणिक प्रभाव डाला जा सकता है पर भेद खुलते ही उसकी प्रतिष्ठा भयंकर होती है। प्रलोभन या आतंक के बल पर भी कभी-कभी सहयोग प्राप्त कर लिया जाता है पर परिस्थिति बदलते ही उसका वाँसा भी फलट जाता है। दूसरों के मन में अपने लिये स्थायी रूप से श्रद्धा और सम्मान की भावना होने पर ही उनसे सच्चे सहयोग की आज्ञा की जा सकती है और इसकी उपलब्धि तभी सम्भव है, जब मनुष्य अपने को गुण,

कर्म, स्वभाव की दृष्टि से सुसंस्कृत बना सके। अपने आप को सज्जनता के ढोंचे में ढाल लेना वस्तुतः इस संसार का सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। इससे बड़ी ब्रमता और योग्यता भी कोई हो नहीं सकती।
—वे. लक्ष्मी

- जो प्रेमी स्वार्थपरता और भय से परे हो गया है, जो फलाकांक्षा शून्य हो गया है, उसका आदर्श क्या है ? वह परमेश्वर से भी यही कहेगा, 'मैं तुम्हें अपना सर्वस्व अर्पण करता हूँ, मैं तुमसे कोई चीज नहीं चाहता। वास्तव में ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसे मैं अपना कह सकूँ।' जब मनुष्य इस प्रकार की अवस्था प्राप्त कर लेता है, तब उसका आदर्श पूर्ण प्रेम का आदर्श हो जाता है, वह प्रेम-जनित पूर्ण निर्भीकता के आदर्श में परिणत हो जाता है। इस प्रकार के व्यक्ति के सर्वोच्च आदर्श में किसी प्रकार की संकीर्णता नहीं रह जाती, वह किसी विशेष भाव द्वारा सीमित नहीं रहता, वह आदर्श तो सार्वभौमिक प्रेम, अनन्त और असीम प्रेम, पूर्ण स्वतन्त्र प्रेम का आदर्श होता है, यही क्यों, वह साक्षात् प्रेम-स्वरूप होता है। तब प्रेम धर्म के इस महान आदर्श की उपासना किसी प्रतीक के सहारे नहीं करनी पड़ती, बल्कि तब तो वह आदर्श के रूप में ही उपासित होता है। इस प्रकार के एक सार्वभौमिक आदर्श की आदर्श-रूप से उपासना सबसे उत्कृष्ट प्रकार की परामर्शिता है।

- आनन्द, इस संसार में सर्वत्र आनन्द ही आनन्द भरा पड़ा है। देखने वालों के दृष्टि दोष से दिखाई नहीं पड़ता, प्रातःकाल उठते ही चिड़ियों का मधुर कलरव, शीतल मन्द पवन और उषा की लालिमा क्या यह कुछ कम आनन्द की अनुभूति है ? दिन भर दिखाई देने वाली चहल-पहल, सन्ध्या को अस्त होता सूर्य और प्रकाश में रंग-बिरंगे बादल कैसे सुन्दर लगते हैं कि उन्हें देखने के आनन्द का ठिकाना नहीं रहता। काली रात की चांदर झिलमिल करते हुए सितारे। बादलों से मोतियों की तरह बरतने वाली वर्षा क्या हमें आनन्द देने के लिए कुछ कम है ? शीतकाल में जैंगीठी के आगे बैठकर तपना और रात की गहरी नींद में निमग्न होकर सो जाना कितना सुखकर लगता है ? यहाँ आनन्द की कमी नहीं, देखने वाली आँखें

स्वच्छ हो तो सब ओर प्रसन्नता, आशा और उत्साह का वातावरण ही दिखाई पड़ेगा।

इस संसार का सबसे बड़ा आनन्द है—अन्तःकरण में रहने वाली सज्जनता और सन्तोष की भावना। इन सुखों के रहते हुए भी लोग दुखी रहते हैं, यह क्या आश्चर्य की बात नहीं है ?
—नेर सिंह

- कमानीदार गढ़े पर बैठने से वह नीचे को दब जाता है, परन्तु उठने के साथ ही फिर पूर्ववत् ऊपर उठ जाता है। इसी तरह सांसारिक पुरुष जब तक धर्म की बातें सुनते हैं, तब तक उनके विचार धार्मिकता से पूर्ण रहते हैं, परन्तु सांसारिक व्यवहारों में लपने के साथ ही वे इन श्रेष्ठ और ऊँचे आदर्शों को भूलकर फिर पूर्ववत् अपवित्र विचार वाले हो जाते हैं।
- लोहा जब तक भट्टी में रहता है, लाल रहता है, भट्टी से बाहर निकलते ही फिर काला हो जाता है। सांसारिक मनुष्य की भी यही हालत है, वह पूजा के स्थान में या साधुओं के सत्संग में रहने के समय धार्मिक भावों से भरा रहता है, पर इनसे अलग होते ही सारे श्रेष्ठ भावों को खो बैठता है।
- मक्खियाँ हलवाई की दुकान पर बिक्री के लिए रखी हुई मिठाइयों पर आकर बैठती हैं, परन्तु मैले से भरी हुई टोकरी देखते ही तुरन्त वे उड़कर उसी पर जा बैठती हैं। मधुमक्खी ऐसा नहीं करती, वह सर्वदा फूलों के मधु-आस्वादन में लगी रहती है।
- संसार में कैसे हुए मनुष्य उन मक्खियों की तरह ही कभी-कभी दिव्यानन्द का क्षणिक आस्वाद पाने पर भी, विषय रूपी मैले की तरह स्वाभाविक प्रवृत्ति होने के कारण फिर उसी तरफ लौट आते हैं। पर साधु-पुरुष उन मधु-मक्खियों की तरह सदा सर्वकाल दिव्यमूर्ति के आनन्ददायक ध्यान ही में मग्न रहते हैं।
- मछली पकड़ने के लिए बने हुए, बाँस के जाल में चमकते हुए पानी को जाते देखकर, छोटी-छोटी मछलियाँ उसमें बड़ी प्रसन्नता से चली आती हैं, परन्तु जाने के बाद वे बाहर नहीं निकल सकती फँस जाती हैं। इसी तरह संसार की मिथ्या चमक-दमक से मोहित हुए मूर्ख मनुष्य इस संसार में चले आते हैं, पर लौट

जाने का रास्ता उतना सहज न होने के कारण उन छोटी मछलियों की तरह यहीं फँस जाते हैं और सदा के लिए बँध जाते हैं।

—रामकृष्ण परमहंस

- ईश्वर-प्रार्थना ने मेरी रक्षा की। प्रार्थना के आश्रय बिना मैं कबका पागल हो गया होता। अन्य मनुष्यों की भाँति मुझे भी अपने सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत जीवन में अनेक कष्ट अनुभव करने पड़े। उनके कारण मेरे अन्दर कुछ समय के लिए एक प्रकार की निराशा-सी छा गयी थी। उस निराशा को दूर करने में मुझको सफलता हुई तो वह प्रार्थना के ही कारण हुई। सत्य की भाँति प्रार्थना मेरे जीवन का अंग बनकर नहीं रही है। इसका आश्रय तो मुझे आवश्यकतावश लेना पड़ा। मेरी ऐसी अवस्था हो गयी कि मुझे प्रार्थना के बिना चैन पड़ना कठिन हो गया। ईश्वर के अन्दर मेरा विश्वास ज्यों-ज्यों बढ़ता गया, प्रार्थना के लिये मेरी व्याकुलता भी उतनी ही दुर्दमनीय हो गयी। प्रार्थना के बिना मुझे जीवन नीरस एवं शून्य-सा प्रतीत होने लगा।

सच पूछिये तो शरीर के लिये भोजन भी इतना आवश्यक नहीं है, जितनी आत्मा के लिये प्रार्थना की आवश्यकता है; क्योंकि शरीर को स्वस्थ रखने के लिये कभी-कभी उपवास (भोजन का त्याग) आवश्यक हो जाता है, किन्तु प्रार्थना-रूप भोजन का त्याग किसी प्रकार भी हितकर अथवा वाञ्छनीय नहीं कहा जा सकता। प्रार्थना का अजीर्ण तो कभी हो ही नहीं सकता।

मैं आप लोगों से अनुरोध करूँगा कि आप लोग तार्किक युक्तियों का आश्रय छोड़कर एक नन्हें-से बच्चे की भाँति ईश्वर में निश्चल विश्वास करना प्रारम्भ कर दें। यदि मेरा अस्तित्व है तो ईश्वर का अस्तित्व अवश्य है। केवल मेरे ही जीवन का नहीं, किन्तु मेरे जैसे अन्य लाखों मनुष्यों के जीवन का यह एक अत्यावश्यक अंग है। चाहे वे इसके विषय में वाद-विवाद न कर सकें, किन्तु उनके जीवन से हम यह देख सकते हैं कि वह उनके जीवन का एक अंग बन गया है। —महात्मा गाँधी

- शरीर का वजन अपने ही पैर उठाते हैं। यदि पैर असमर्थ हों तो खड़ा हो सकना या चल-फिर सकना कठिन है। भोजन पचाने का काम अपना ही पेट करता है। यदि पाचन प्रणाली बिगड़ जाय तो दूसरों के पेट द्वारा भोजन पचाकर अपना काम चला लेना सम्भव न होगा। विद्या प्राप्त करने के लिए स्वयं ही पढ़ना पड़ता है। दूसरा कोई पढ़ लिया करे, और हम स्वयं विद्वान बन जाएँ यह कैसे सम्भव है? अपने ही पुण्य-पाप से मनुष्य सुख-दुःख प्राप्त करता है।

इस संसार में हर मनुष्य अपनी विशेषताओं के अनुरूप अपने लिए एक नई दुनिया की रचना करता है। जैसा उसका अन्तःस्थल होता है उसी के अनुरूप व्यक्तियों का सहचरत्व बढ़ता है, वैसी ही सुझ-बूझ उठती है, उसी तरह के काम करता है और फिर वैसी ही परिस्थितियाँ सामने आकर खड़ी हो जाती हैं। भीतर का छिपा हुआ वातावरण बाह्यजगत् में अपने अनुकूल पदार्थों को इकट्ठा करता है और फिर उसका अपना संसार ठीक उसी के अनुरूप बन जाता है।

अपनी भली या बुरी स्थिति के लिए हम स्वयं ही उत्तरदायी होते हैं। अपनी दुनिया हर कोई स्वयं ही बनाता है। जिस प्रकार भोजन पचाने और विद्या प्राप्त करने के लिए हमें अपने पेट और मस्तिष्क का प्रयोग करना पड़ता है, ठीक उसी प्रकार अपने भविष्य का निर्माण करने के लिए हमें अपनी विचारणा और गतिविधियों का परिष्कार करना होता है। जिसने अपने को कुसंस्कारी और दुर्गुणी बना रखा है, उसकी दुनिया में नरक की दुर्गन्ध के अतिरिक्त और होगा ही क्या?

- जिसे सुन्दर सुखद और आनन्दमय संसार में रहना हो उसे यह भली-भाँति जान लेना चाहिए कि वह निर्माण कार्य अपने भीतर आरम्भ करना होगा। आंतरिक स्थिति ही बाह्य परिस्थितियों के रूप में परिलक्षित होती है। इसलिये बाह्यनिर्माण की जैसी कल्पना हो उसी के अनुरूप आत्म-निर्माण आरम्भ कर देना चाहिए। —शचीन्द्रनाथ सन्यास

- उलझनें हर मनुष्य के जीवन में आती हैं। दिन के बाद रात की तरह सुख-दुःख का भी चक्र चलता ही रहता है। यह सम्भव नहीं कि सीधा-सादा जीवनक्रम ही सदा चलता रहे। औषी-सूफन भी आते रहते हैं और समुद्र में उठने वाले ज्वार-भाटों की तरह उतार-चढ़ाव भी हमें देखने पड़ते हैं।

बछनों का पेट चीरकर बाहर निकलने वाली शक्तिशाली जल-धारा का नाम ही झरना है। समतल भूमि को रौंदता हुआ—अपने लिए रास्ता बनाता हुआ जो जल-प्रवाह समुद्र तक पहुँचने के लिए संघर्षरत रहता है, उसी का नाम नदी है। जीवन उसे ही कहते हैं, जो अड़चनों और कठिनाइयों से जुझकर अपनी प्रगति का पथ विनिर्मित करता है।

- यों कहने को अनेक लोग जीवित दीखते हैं। भोजन करते और सोते उसी तरह हैं जैसे सजीव प्राणी किया करते हैं। किन्तु जरासी अड़चन एवं प्रतिबलता आते ही वे बेतरह घबराने लगते हैं, सकलता मिलने में थोड़ा विलम्ब लगते ही अधीर होने लगते हैं। उन्हें तत्त्वतः जीवित नहीं कहना चाहिए। जिनके मन में आज्ञा की ज्योति बुझ गई, जिन्हें निराशा का अन्धकार ही दीख पड़ता है, उन्हें जीवित मृत कहा जाय तो कुछ अनुचित न होगा।

मनुष्य को इतना धैर्य और साहस तो होना ही चाहिए कि वह मन को संतुलित रखते हुए कठिनाइयों और आपत्तियों से लड़कर अपना प्रगति पथ-प्रशस्त कर सके। उलझनों से कोई बच नहीं सकता पर मनस्वी लोग उन्हें देखकर मुसकराते हैं या पुरुषार्थी उन्हें श्रम और अध्यवसाय के बल पर परास्त करके विजयी वीरों की तरह आगे बढ़ते चले जाते हैं।

—स्मर्तन

- एक समय ऐसा आ जाता है जब चारों ओर निराशा के ही दर्शन होते हैं। समस्याएँ, समस्याएँ और समस्याएँ। कठिनाइयों और कठिनाइयों दीड़ी, भागी चली आती है। एक कष्ट साध नहीं छोड़ता, दूसरा कन्धे पर सवार हो जाता है। पीड़ाओं का अन्त नहीं, मुसीबतों का छोर नहीं। ऐ मनुष्य ! तेरी तकदीर ही ऐसी है कि तब भी तू हँसता चल, मुसकराता चल। सारी परेशानियों का गर्द-गुबार अपने

आप धुल जाएगा। उसमें तेरी अपनी राह चमकती हुई निकल आयेगी। पर देख, तू कभी हिम्मत-पस्त न बन जाना।

जब जिन्दगी के कगारों की हरियाली सूख गई हो, पक्षियों का कलरव मौन पड़ गया हो, वे अपने नीड़ों में जाकर छुप गये हों, सूरज के चेहरे पर ग्रहण की काली छाया धीरे-धीरे गहरी पड़ती जा रही हो, परखे हुए-मित्र और विश्वसनीय आत्मीय-जन काँटों के रास्ते पर अकेला छोड़कर चल दिये हों और आसमान की सारी नाखुशी मेरी तकदीर पर कुहर बनकर तड़पने वाली हो तो, मेरे प्रभु ! तुम मेरे साथ इतना अनुग्रह करना कि मेरे हाँवों पर हँसी की एक उजली रेखा खिंच जाये। तब भी मैं मुसकराता ही रहूँ और नहीं तो तेरी प्रकृति पर ही कि परमात्मन् तुने भी क्या बन्दरों के साथ खेल किया है ? कैसी-कैसी कसौटी लेता है ? मेरे मालिक, मैं आँखों में आँसू लाकर कायर नहीं बनना चाहता। मैं तेरा पुत्र हूँ। मुझे ठिठाई चाहिए ऐसी कि इधर मुझ पर आघात हो किन्तु उधर मेरी प्रसन्नता मेरा साथ न छोड़े।

—बोन नागोची

- प्रत्येक मनुष्य का प्रयत्न यह होता है कि वह अपनी कमाई का अधिकांश भाग अपने परिवार तथा स्वयं को सुखी रखने में खर्च करे। इसे तुम अनुचित न मानो क्योंकि इसी में समाज की व्यवस्था है। सब लोग अपने-अपने हितों को पूरा करने का ध्यान बनाये रहें तो दूसरे लोगों को परेशानी उठाने की आवश्यकता ही क्यों पड़े ? इसे स्वाभाविक दानशीलता कहते हैं।

सुधार भी दानशीलता की भाँति अपने घर से प्रारम्भ होना चाहिए। दूसरों को अच्छे-अच्छे उपदेश देने की अपेक्षा यदि स्वयं ही उनको आचरण में प्रयोग करके दिखाएँ तो यह सार्थक शिक्षा होगी। यह अपेक्षाकृत अधिक सरल और सुविधाकारक है कि सब लोग अपने-अपने परिवारों को भले मार्ग पर चलाने का उत्तरदायित्व स्वयं ही वहन किया करें। आप भला तो जलन भला। आप सुधार जाएँ तो संसार सुधार जाय। इस बात को आप कभी न भूलें और यह समझें कि अपना अधिक समय आत्म-सुधार में ही लगाना अधिक उद्धम है। दूसरों को सिगार न पीने की नसीहत देना

तभी उचित है, जब आप अपने पॉकेट की सिगरेट निकालकर फेंक दें। मैं समझता हूँ कि यदि सभी लोग कहकर नहीं, ग्रहण करके मूक शिक्षा दिया करें तो कहीं अधिक सुधार हो सकता है। बहुत बड़ा बोझ उठाना सबके लिए कठिन है, पर चार लकड़ियों का बोझ कौन नहीं उठा सकता ? तुम संसार को भला बनाने की बात न सोचो। अपना सुधार आप कर लो, बड़ी अच्छी बात है।

- मदिरा पी लेने पर उसकी पेट में उपस्थित मद्यपायी के मुख से निकलने वाली दुर्गन्ध द्वारा आसानी से जानी जा सकती है। रक्त-विकार के रोगी के शरीर पर फुन्सियाँ तथा चकत्ते उठते रहते हैं। इसी प्रकार दुर्भावनायुक्त दुष्ट स्वभाव के मनुष्य की पहचान उसकी कर्मश और मर्मभेदी वाणी से की जा सकती है। जो कड़ुवा और तीक्ष्ण बोलता है, दूसरों की अवज्ञा करता है, अहंकार भरे वचन बोलता है, उसे 'दुष्ट' के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ? उसके आन्तरिक कुसंस्कार दुर्बलियों के रूप में मुख से निकलते रहते हैं।

यह सच नहीं कि खरा आदमी कड़ुवा बोलता है, इसी प्रकार यह भी नहीं कि सच्चे आदमी को झूठ से घिड़ जाती है और वह आवेशग्रस्त हो जाता है। खरा और सच्चा आदमी अपनी सज्जनता को उतनी हल्की नहीं रखता कि वह बुरे आदमियों के सामने तिनके की तरह उड़ जाय। सच्चाई यह है कि सज्जन व्यक्ति किसी भी अवसर पर, यहाँ तक कि बुरे लोगों से वास्ता पड़ने पर भी अपनी गरिमा को गिरने नहीं देता। किसी के लिए असम्मानसूचक रहना उसे अपना अपमान प्रतीत होता है। अहंकार तो केवल खल स्वभाव के लोग करते हैं। दर्प और कड़ुता तो असंस्कृत लोगों के व्यवहार में पाई जाती है। सज्जनता का चिह्न यही है कि बुरे लोगों से भी बुरे अवसर आने पर भी अपने स्वाभाविक सौजन्य की रक्षा करे और जो कहना है कि वह निर्भीक होकर बोलें, पर शील-सौजन्य और सज्जनता को ऐसे प्रसंगों में भी गिरने न दे। मधुरता और शिष्टता को जो आवेश आने पर भी सुरक्षित रख सके, वस्तुतः उसे ही सुसंस्कृत कहा जा सकता है।

—सोलोमन फ्रेडेक

- मनुष्य की कर्तव्य करने की भावना जब कमजोर पड़ने लगती है तो ऐसा समझा जाता है कि उन्नति में गतिरोध उत्पन्न होगा। किन्तु जब अधिकारों का मनमाने ढंग से दुरुपयोग होने लगता है, तो सर्वनाश की विभीषिका मेंड़राने लगती है। अकर्तव्य मनुष्य के छोटेपन के कारण होते हैं और उसके फलस्वरूप शक्ति में विकृति उत्पन्न होती है। —टाफ़स पेन

- देश के थोड़े-से व्यक्ति सुखी हों और अधिकांश पीड़ित और परेशान हों तो देश का अभ्युदय नहीं कहा जा सकता। जब देश के सभी लोग सामर्थ्यवान तथा पाप से बचे हुए हों और उसमें स्थिरता भी हो तो तभी उस देश के बारे में यह कहा जा सकता है कि उसका अभ्युदय हुआ है। जिस देश का नैतिक स्तर समुन्नत हो, क्षणिक न हो तथा प्रभुत्व के साथ युक्त हो वही उन्नत राष्ट्र है। सुख के स्वाधिस के लिये यह कहा जा सकता है कि उसे धर्म से उत्पन्न और धर्माभिरक्षित होना चाहिए। अधर्म से प्राप्त सुख, अन्याय या जत्याचार का सुख, चोरी या करजोरी से पाये हुए धन का सुख, अपने से निर्बलों, असमर्थों को सताकर प्राप्त किया गया सुख, न्याय-विरुद्ध अधिकार का सुख, धर्म और नीति के विरुद्ध विषय-भोग का सुख कभी स्थायी नहीं होता। ऐसा सुख परिणाम में विष से भी अधिक कड़ुवा होता है। इसलिये अभ्युदय के लिये धर्म प्रमुख है।

—मदनमोहन मालवीय

- पहले के जमाने में साहसिकता के जो अर्थ थे वे आज बदल चुके हैं। कल की वैयक्तिक साहसिकता आज सामूहिकता में बदल गई है। पहले कोई एक को विजय कर लेने में साहसी और वीर समझा जाता था, किन्तु आज उस छोटे-से सयरे का कोई महत्त्व नहीं रह गया है। अपने व्यक्तिगत साहस को केवल अपनी व्यक्तिगत कद्रों के लिये उपयोग करना आज के जमाने का कलंक कहा जाएगा। आज साहसिकता के काल, धरातल से उठकर अन्तरिक्ष की ओर चला पड़े हैं। आज नवीन ग्रह-मण्डलों की खोज, उन पर भौतिक विजय-वैजयन्ती के फहराने का प्रयास साहसिकता कही जाएगी। आज गन्दी बस्तियों और गाँवों में, साधनहीन होते हुए भी जागरण

और जीवन लाने का प्रयत्न साहसिकता की परिधि में आते हैं। आज अपने व्यक्तिगत अहंकार, आपसी कलह और देह की अपरिमित भूख पर विजय पाना साहसिक कार्य है। आज गरीबी, अज्ञान, अशिक्षा, मलिनता, पशुता और अत्याचार के विरुद्ध संग्राम छेड़ना साहसिकता है। मानव जाति के सबसे बड़े शत्रु रोगों के विरुद्ध अभियान साहसिकता का सबसे बड़ा प्रमाण है।
—एच. जी. वेल्स

- अपमान मनुष्य को मनुष्य का स्थाई शत्रु बना देता है, क्योंकि तलवार का घाव भर जाता है और उसकी पीड़ा विस्मृत हो जाती है, किन्तु अपमान का घाव नहीं भरता और वह जीवनभर वेदना देता हुआ शत्रुता को जाग्रत किये रहता है।
- किसी को अपमानित करने के बजाय, बुद्धिमानी यह है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न करो, जिससे वह अपनी गलती पर स्वयं लज्जित हो जाये। स्वयंभूत आत्मलालि मनुष्य का सुधार करती है और शत्रुता भी पैदा नहीं होने देती।
- मनुष्य के सुधार का सही मार्ग उसका उपहास अथवा अपमान करना नहीं, बल्कि उसे अपनी भूल समझने और मानने का अवसर देना है।
- अपमान मनुष्य को अपराधी बना देता है क्योंकि अपमान के रूप में उससे किसी भूल का प्रतिकार आवश्यकता से अधिक ले लिया जाता है, जिसकी प्रतिक्रिया से वह समाज विरोधी बन जाता है और उक्त अतिरिक्तता का प्रतिशोध लेने के लिए अपराध के प्रति अपराध करने लगता है।
—विलिंजन
- अनुचित मात्रा में धनसञ्चय विकास की परम्परा को रोक देता है। सामाजिक विग्रह का कारण भी धन है। अपने इस्तेमाल से अधिक मात्रा में धन इकट्ठा करना अनुचित है, क्योंकि उस धन का कुछ भी उपयोग नहीं हो पाता। धन मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए है। इसलिये इसे सबके पास बूमते रहने का अवसर मिलना चाहिए।

फुटबॉल की तरह धन का खेल होना चाहिए। इस खेल का नियम है कि गेंद सभी के पास जाती है, पर उसे कोई अपने पास नहीं

रखता। जिसके पास पहुँचती है, वह उसे आगे फेंक देता है। एक दूसरे को, दूसरा तीसरे को इस तरह यह क्रम बराबर बना रहता है। पैसे को भी इस तरह फेंकते रहा जाय तो समाज-शरीर में उसका प्रवाह बहता रहेगा। सभी को उसका बराबर लाभ मिलता रहेगा और समाज का आरोग्य कायम रहेगा। जरूरत से ज्यादा धन निकलने का कोई गलत मार्ग ढूँढ़ेगा। जुआ, चोरी, विलासिता आदि दुर्व्यसनों में उसका अपव्यय होगा। इसमें राष्ट्र, समाज और व्यक्ति सभी का अहित है। इसलिए धन को एक स्थान पर रुकना नहीं चाहिए। उसका प्रत्येक व्यक्ति के उत्थान के लिए सदुपयोग होते रहना चाहिए।
—विनोबा

- मेरे सामने एक गरीब बालक आया। मैंने उसे एक सिक्का देकर कहा—“बच्चे जाओ इस पैसे का उपयोग करो।” बच्चा हैसकर चला गया।
- मेरे आगे एक जवान व्यक्ति आया। शरीर से पूर्णतया स्वस्थ था। उसने भी हाथ फैलाकर कहा—“वही सिक्का जो आपने बच्चे को दिया है।”
- मुझे लगा यह मुझसे माँग नहीं रहा, मेरा अपमान कर रहा है। इसके पास स्वस्थ शरीर है, मेरे ही जैसा विचारशील व्यक्ति यह भी है। इसका माँगना सारी मानवता के लिये अभिशाप है। मैंने उसे कुछ नहीं दिया। वह बुरा मानकर चला गया। उसका बुरा मानना मुझे उतना ही प्रिय लगा, जितना बच्चे की प्रसन्नता। शायद इससे वह व्यक्ति सोचे माँगना बुरा है।
—एमर्सन

- भारतवर्ष की भौतिक उन्नति इसलिए नहीं लुट गई कि यहाँ के लोग धर्म और परमार्थनिष्ठ होते हैं, वरन् भारत की विकसित और हरी-भरी फुलबारियाँ इसलिए लुट गई कि उनके आस-पास कौंटों और झाड़ियों की बाड़ी नहीं रही। कष्टों के कौंटों और झंझावातों की झाड़ियों के बीच जीवन सुरुचि का उद्यान विकसित होता है। इसलिए मेरे प्यारे कौंटों और झाड़ियों ! तुम मुबारक हो, धर्म और संस्कृति, जीवन के उच्चादर्शों और भौतिक उन्नतियों के तुम्हीं रक्षक हो। तुम दूर न होना

ताकि मेरे देशवासी निरन्तर फलते-फूलते रहें।
तुम्हारी बाड़ में उनका विकास सुरक्षित रहे।
कष्ट उनके जीवन का अंग बना रहे।

—स्वामी रामतीर्थ

- तुम्हारे लक्ष्य के पास पहुँचने तक बीच-बीच में असंख्य बाधाएँ पैदा होंगी, पर तुम घबड़ाना और न ही हिम्मत हारकर कभी अपने प्रयत्न छोड़ना। परिस्थितियों के उतार-चढ़ाव को तुम एक निरीक्षक की दृष्टि से देखोगे तो तुम्हारी बुद्धि यह निर्णय देती रहेगी कि अब तुम्हें क्या करना चाहिए ? घटनाओं से प्रभावित हो जाओगे तो तुम्हारी संग्राम की शक्ति कमजोर हो सकती है और तुम्हारा आत्मबल गिर सकता है। इसलिए असफलताओं और अप्रिय घटनाओं को एक कर्मयोगी की दृष्टि से देखना चाहिए। मुझे विश्वास है कि तब विजय भी तुम्हीं को मिलेगी, समय चाहे कितना ही भयंकर क्यों न हो।

—सक्रान्ते व नाथ

- जीवन को पूर्णतया निकृष्ट, निर्मूल और निर्जीव बना लेने के बाद विवश होकर यदि कोई किसी बुराई को त्यागता है तो यह कोई श्रेयस्कर बात नहीं हुई। प्रशंसनीय तो यह है कि बुराई समझते ही उसे तत्काल त्याग दिया जाये। विषय-भोग की शक्ति और अवसर रहते हुए भी उनका त्याग एक महान कार्य है। घिस-पिटकर और रो-पीटकर अवगुण का त्याग ठीक वैसा ही है जैसा रोग आ जाने पर भोजन का त्याग।

निर्जीव होकर विषयों में से विरति कुछ विशेष काम नहीं आती। जिसने निर्विकार रहकर मानव-जाति की कोई सेवा न की, उसका कुछ भला न किया उसका जीवन भी सार्थक नहीं।

—केन्द

- विश्व-इतिहास की रश्मियाँ यह बताती हैं कि संसार संघर्ष का रंगमंच है; जिसमें व्यक्ति, समुदाय और राष्ट्र अपने सिद्धान्तों, आदर्शों की रक्षा के लिए संघर्षरत होकर अपनी श्रेष्ठता बनाए रखने का प्रयत्न करते हैं। यह संघर्ष ही वस्तुतः श्रेष्ठता की कसौटी है। ऐसा देखने में आया है कि इन युद्धों में छर उन्हीं की हुई, जो आदर्शहीन और दुर्बल मनोबल के थे। पर जो सत्य, न्याय और आदर्शों का सम्बल लेकर

लड़े उन्हें कोई पराभूत नहीं कर सका। उन्हीं को विजय मिली न्याय जिनके पक्ष में था, क्योंकि सत्य की शक्ति मानवों को निरन्तर युद्ध करने की क्षमता प्रदान करती है और जो लम्बे समय तक संघर्षरत रह सकता है, सुनिश्चित रूप में विजय भी उसे ही उपलब्ध होती है।

—जेम्स ऐल्सन

- करील वृक्ष में यदि पत्ते नहीं हैं तो वसन्त का क्या दोष ? उल्लू यदि दिन में नहीं देख पाता तो सूर्य का क्या दोष ? वर्षा का जल यदि पपीहा के मुख में नहीं पड़ता तो मेघ का क्या दोष ? विधाता ने जो पहले ही भाग्य में लिख दिया है, उसे कौन मिटा सकता है ? जिनके घर में गृहिणी अन्नपूर्णा हैं, जो कि अन्नदान से तीनों लोकों की रक्षा करती हैं। वे शंकरजी भी हाथ में कपाल लेकर भिक्षा माँगते-फिरते हैं यों तो भाग्य में लिखा हुआ नहीं मिटता पर भाग्य के भरोसे बैठे रहने पर भाग्य सोया रहता है और हिम्मत बाँधकर खड़े होने पर भाग्य भी उठ खड़ा होता है। आलसियों का भाग्य असफल बना रहता है तथा कर्मवीरों का भाग्य उन्हें निरन्तर सफलता का पुरस्कार प्रदान किया करता है।

- मनुष्य जब एक बार पाप के नागबाश में फँसता है, तब वह उसी में और भी लिपटता जाता है। उसी के गाढ़ आलिंगन में सुखी होने लगता है। पापों की शृंखला बन जाती है। उसी के नये रूपों पर आसक्त होना पड़ता है। मानवों के समस्त पाप उनके स्वभावजन्य या पूर्व संस्कारों के परिणामस्वरूप एक बीमारी की तरह होते हैं। ऐसे पापी क्रोध और दण्ड के बजाय दया के पात्र अधिक होते हैं। इसीलिये कहा गया है कि पाप में पड़ना मानव स्वभाव है और उसमें जान-बूझकर हूबे रहना शैतान का स्वभाव है।

—विक्टर ह्यूगो

- मनुष्य के अन्दर जो चेतना कार्य करती है, वह अनन्त शक्तिमती है। इस चेतना का सही उपयोग करके बड़े-से-बड़े लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। जो व्यक्ति अपनी अन्तर चेतना पर निर्भर न रहकर कुछ न कर सकने के लिए बाहरी सुविधाएँ खोजते रहते हैं, वे प्रायः कभी कुछ नहीं कर पाते। उनका सारा समय

परिस्थितियों की प्रतीक्षा और सारी क्षमताएँ रोने-झींकने में ही लगकर नष्ट हो जाती हैं।

- दूसरों के सहारे अपनी उन्नति और विकास का अवसर देखने वाले दुर्भाग्य के गर्त में ही गिरते हैं। वे अपने पर एक भार बनकर पशुवत जीवन ढोते रहते हैं। इस संसार में कोई किसी दूसरे का भार ढोने को तैयार नहीं होता। कोई किसी का भार ढोये भी क्यों ? जब हर व्यक्ति को परमात्मा ने एक जैसी शक्ति दी है तो किसी को अपना भार किसी दूसरे पर डालने का क्या अधिकार है ? स्वावलम्बनपूर्ण जीवन ही जीवन है।
—सोरावजी मोदी

- 'इच्छाओं के त्याग का अर्थ संसार को त्याग देना नहीं है। जीवन का ऐसा किसी प्रकार का निषेध मनुष्य को मनुष्यत्व शून्य बनाता है। ईश्वरत्व, मनुष्यत्व से रहित नहीं है। आध्यात्मिकता का परमावश्यक कर्तव्य मनुष्य को अधिक मनुष्यत्वयुक्त बनाना है। मनुष्य में जो सौन्दर्य है, महानता तथा सात्विकता है, उन्हें मुक्त तथा व्यक्त करने का नाम आध्यात्मिकता है। बाह्यजगत् में जो कुछ भी भव्य तथा सुन्दर है, उसे भी विकसित करती है। सांसारिकता कार्यों में बाह्यत्याग तथा कर्तव्य और उत्तरदायित्व की उपेक्षा को वह आवश्यक नहीं मानती। वह केवल यही कहती है कि व्यक्ति के जो कार्य और उत्तरदायित्व हैं, उनका सम्पादन करते समय, उसकी आत्मा इच्छाओं के बोझ से मुक्त रहे। द्वैत के बन्धनों से मुक्त रहना ही पूर्णता है। बन्धनों के भय से जीवन से दूर भागने से यह मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। बन्धन से बचने के प्रयत्न का अर्थ है जीवन से भयभीत होना। किन्तु आध्यात्मिकता का अर्थ है "परस्पर विरोधों" के वशीभूत हुए बिना जीवन का ठीक और पूर्ण ढंग से सामना करना।"
—नेहरूबाबा

- अपने को असमर्थ, अशक्त एवं असहाय समझना ही अपने को वैसा बना लेना है। वैसे न कोई असमर्थ है और न अशक्त एवं असहाय।
- उन्नति की इच्छा रखने वाले साधनों का मैं ही नहीं देखते। वे अपने संकल्प के बल पर ऊँचे से ऊँचे शिखरों पर चढ़ते चले जाते हैं। संसार

की सारी सफलताएँ साधन के नहीं संकल्प के अधीन रहती हैं।

- आगे बढ़ने और उन्नति करने की तीव्र इच्छा यदि आपके हृदय में है, यदि आप उसके लिये कृतसंकल्प हैं तो साधनों का अभाव आपकी गति अवरुद्ध नहीं कर सकता। जो व्यक्ति साधनों की लालायित होकर प्रतीक्षा किया करता है, निश्चय ही वह अपनी उन्नति के लिये सच्चे हृदय से कृतसंकल्प नहीं है। जिन साधनों का आज अभाव दिखाई देता है, संकल्प की शिखा प्रकाशित होते ही वे पतंगों की भाँति स्वयं आकर उपस्थित हो जाएँगे।
—नेपोलियन

- जो महत्वाकांक्षी है, जिसमें कुछ करने की लगन है, उसको साधारण परिस्थितियाँ तो क्या पहाड़ भी नहीं रोक सकते। अपने ध्येय का पक्का पहाड़ को चीरता और समुद्र तैरता हुआ आगे बढ़ता जाता है। परिवार की समस्या, धन का अभाव, लोगों का विरोध समय एवं स्वास्थ्य की शिकायत प्रगतिप्रिय कर्मवीरों को नहीं रोक सकती। इस प्रकार की निरर्थक एवं थोड़ी शिकायतें वही व्यक्ति ज़ेकर बैठते हैं, जिनको कुछ करना-धरना तो होता नहीं केवल कुछ करने की इच्छा या भ्रम आत्म-वंचना किया करते हैं। कुछ करने वाले के पास शिकायतों के लिये समय ही नहीं रहता।
—सुरेन्द्रनाथ बनर्जी

- 'यह करो वह करो' कहने से या 'यह करूँगा, वह करूँगा' कहने से कुछ बनता नहीं। यह बात तो एक बच्चा भी कह सकता है। ऐसा कहकर चुप हो जाने का मतलब यह है कि न तो हमें कुछ करना है और न किसी को कुछ करने में मदद करना चाहते हैं। सौ बार कहने से एक बार करना सौगुना अच्छा है।

आज हम गौँव की तरक्की करना चाहते हैं। इसके लिये करते कुछ नहीं, सिर्फ गौँव वालों को राय देते हैं कि यह करो वह करो। यह ठीक नहीं। गौँव में जाना चाहिए और काम करके कहना चाहिए कि ऐसे करो तभी कुछ बनना है। नहीं तो हम सब ऐसे ही कहते रहेंगे और यह सब ऐसे ही चलता रहेगा।

और यह कल्ला या वह कल्ला कहना तो इससे भी गई-गुजरी बात है। करवा अधिक चाहिए कहना कम। जो कहना है उसे करके कहो। यह किया वह किया। अभिमान के लिये नहीं बल्कि अपने भाइयों, अपने देश भाइयों को बंधूरा देने के लिये। प्रेरणा देने के लिये।

—विनोद

- कोई भी कार्य अपने में कठिन या सरल नहीं होता है। इसका हेतु मनुष्य की दक्षता अथवा अदक्षता ही होती है। जो व्यक्ति जिस कार्य में जितना दक्ष होता है, वह कार्य उसके लिए उतना ही सरल होता है। दक्षतापूर्ण कार्य सरल ही नहीं सुन्दर भी होता है। मानव के हृदय में जितना सौन्दर्य है वह दक्षता के माध्यम से ही कार्य में अवतरित हुआ करता है।

- किसी कार्य में मन की एकाग्रता ही उसमें दक्षता उत्पन्न करती है। अधूरे मन अथवा अनचाहे ढंग से किया हुआ कार्य सुन्दर श्रेणी का कदापि नहीं हो सकता। जिस काम को हाथ में लिया जाय उसे संसार का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य समझकर किया जावे तो उसके सफल होने में सन्देह नहीं रहता। दुचिते अथवा विमृच्छित मन से किया हुआ कार्य अपने उद्देश्य को पूर्ण नहीं कर सकता।

—आर्य टीकेंशन

- किसी के लिये अच्छा पिता, अच्छा पति अथवा एक सफल गृहस्थ ही हो सकना पर्याप्त नहीं है। यह तो मनुष्य को होना ही चाहिए। इसमें कोई विशेषता नहीं है। केवल अपने और अपने व्यक्तिगत परिवार के लिये ही जीवित रहना और उसके लिये ही कुछ सुविधाएँ जुटाते रहने को न तो उदारता और न पुरुषार्थ कहा जाएगा। जब मनुष्य इस परिधि में कुछ जागे बढ़ता है, तभी माने में तभी वह कुछ करता है। अपनी शक्ति के अनुसार दूसरों के लिये कुछ कर सकने में ही मानव जीवन की सार्थकता है। यदि कोई मनुष्य अच्छा-खासा कमाता है, अपने परिवार को अधिक से अधिक सुख-सुविधा के साथ रखता है और उसका एक साथी किसी कठिनाई से परेशान है, किन्तु वह उसकी कोई सहायता नहीं करता तो क्या वह अच्छा जीवनयापन करने वाला, अच्छा

आदमी कहलाने का अधिकारी है ? मनुष्य को अपने में सहज सहानुभूति का समावेश करना चाहिए, तभी उसका पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन सफल और सार्थक होगा।

—विनोद ठाकुर

- जिसे अपने बल का अभिमान है, धन का अभिमान है, रूप का अभिमान है, जाति का अभिमान है, ज्ञान का अभिमान है और विद्या का अभिमान है—वह और कुछ नहीं केवल अभिमानी है। अन्दर से शून्य और थोथा है। वह न आदर करने योग्य है और न विश्वास। मनुष्य को ऐसे मानवजन्तु से सदैव सावधान रहना चाहिए। अभिमानी सबसे पहले अपना अहित करता है, क्योंकि उसे मद के कारण न आगे देखता है और न पीछे। वह मनुष्यों की घृणा का पात्र बनकर निरीह हो जाता है। इसलिये भिडुओ ! अभिमान रूपी सर्प से बचो और अभिमानियों के कल्याण के लिये परमात्मा से विनय करो।

—कल्याण कान्हीर

- मदान्ध, कामान्ध और स्वार्थान्ध आदि अन्यो का वर्णन शास्त्रकारों तथा नीतिकारों ने किया है। इसके अतिरिक्त और भी अन्य प्रकार के बहुत-से अन्य संसार में पाये जाते हैं। कृपण मनुष्य भी अन्धा होता है, क्योंकि धनसंचय करने के लिए उसे अच्छे-बुरे साधनों का अन्तर दिखाई नहीं देता। धन के अतिरिक्त उसे विद्या, बुद्धि, सदाचार, सत्य धर्म, धीरता आदि की अन्य सम्पत्तियाँ दिखालाई नहीं देती। धन के सम्मुख वह माता-पिता, भाई-बहिन, बन्धु-बांधव मित्र-अभिन्न किसी को भी नहीं देख पाता। धन के सम्मुख वह अपनी ओर भी नहीं देख पाता। वह नहीं देख पाता कि धन की इस अनुचित उपासना से उसके शरीर और आत्मा की क्या दशा होती जा रही है। अपव्ययी व्यक्ति भी अन्धा होता है, क्योंकि वह आज के सिवाय कल को नहीं देख पाता। सब कुछ तत्काल खर्च कर वह भविष्य के लिए रिक्त हो जाता है और आवश्यकता पड़ने पर जहाँ-तहाँ दौत निकलता रहता है। ऐसे अपव्ययी को किसी वस्तु की उपयोगिता-अनुपयोगिता भी नहीं दिखती और न झनि-साम ही दृष्टिगोचर होता है। अपने रूपवीचन पर अभिमान करने वाली नारी भी अन्धी होती है, क्योंकि उसे अपने

स्व-दीप्ता की, कुछ ही दूर खड़ी सम्झा दिखलाई नहीं देती उसे अपने गिरे हुए दौत, सुखे हुए कर्णल और धँसी हुई आँखें दिखलाई नहीं देती और न उसको यह ही दिखलाई देता है कि उसका आज का मन कस अपमन बन जाएगा। जिन्हें जीवों नहीं होती वे बेकारे दयनीय होते हैं। किन्तु उनसे अधिक दयनीय वे होते हैं, जो आँखें होते हुए भी नहीं देख पाते ? संसार में जो नेत्र रहते हुए भी अन्धे हैं न जाने उनका अन्त क्या होगा ?

—विचारक्रान्ति

- जो कर्तव्यशील है और जिसने कर्म के सौम्य को देख लिया है वह न तो अकर्मण्य हो सकता है और न अकर्म कर सकता है।
- कर्म और अकर्म संसार के दो मार्ग हैं। एक फूली से भरा हुआ दूसरा काँटों से। इनमें से एक का चुनाव करने वाला कंटककीर्ण मार्ग को क्यों चुनेगा ?
- जिस प्रकार समय को वापस नहीं लाया जा सकता, उसी प्रकार किया हुआ कर्म अन-किया हुआ नहीं बनाया जाता। जिसको बदल सकने की सम्मर्थ्य मनुष्य में नहीं है, ऐसे कर्म को सोच-समझ कर न करने वाले की प्रतीक्षा पश्चात्ताप जैसे ही किया करता है जैसे छुपा हुआ भेड़िया अपने शिकार की प्रतीक्षा किया करता है।
- “कर्म, कर्म और केवल कर्म” मनुष्य जीवन के इस त्रिधावे में त्रयलोक जीतने की शक्ति है।

—कर्तव्य

- एक काल में आदमी का ज्ञान असीमित मात्रा में बढ़ जाता है, लेकिन इससे वह तो नहीं कह सकते कि उसके वास्तविक सुख भी बढ़ गये होंगे। सुख, जिन्हें पदार्थों में ढूँढ़ने का मत किया जाता है, वह तो कोई हृदय की वस्तु है। हृदय ही में मिल सकती है। ज्ञान का अवाह समुद्र ही भरा पड़ा हो किन्तु हृदय में मधुरता न हो तो हम नहीं कह सकते कि वह आदमी कितना सुखी होगा ? दुष्ट पुरुष छल-कपट के द्वारा लोगों के अधिकार छीनकर सुख पाने की कोशिश करते हैं, इसमें भी उनकी चालाकी और शरीरबल का संयोग अधिक रहता है। किन्तु उन्हें लोग पाषाण-हृदय

कहते हैं और स्वेच्छ से कभी कोई भी उनके पास तक नहीं जाना चाहता। पास बुलाने का चुष्क तो हृदय में रखा हुआ है। हृदय को सुला रखिये, उत्पन्न प्रकाश बाहर फैलने दीजिए, संसार आपको सदैव धम्मकाद देने को प्रस्तुत रहेगा। फिर मले ही आप बुद्धिमान हैं या नहीं। रूपवान हो चाहे न हों, हृदय का सौम्य ही आपको ऊँचा उठने की सारी शक्ति रखता है। अतः आपके लिए सबसे अच्छा उपदेश मैं यही मानता हूँ कि आप भी हमारी तरह विशाल हृदय बनने का यत्न कीजिए। आप भी इस मू-भाग के मनुष्य हैं, दूसरे लोगों के लिए वृत्ता क्यों करते हैं ? क्या आपके हृदय में जरा भी दया नहीं है ?

- केवल बुद्धि की वृद्धि होने से मनुष्य हृदय शून्य हो जाता है। समान हित की भावना उसमें नहीं रहती। दया, प्रेम, शक्ति अदि हृदय के सत्त्विक गुण हैं, बुद्धि की प्रखरता इन्हें नष्ट कर सकती है। अतः बुद्धि की आवश्यकता हृदय की सत्त्विकता से बढ़ी नहीं है।

—कर्म विवेचन

- शरीर की शुद्ध रखना आपकी जिम्मेवारी है, उसी तरह से समाज को स्वच्छ बनाने रखने में अपना सहयोग देते रहना आपका कर्तव्य है। व्यक्तिगत हितों पर ध्यान देते रहें और समाज के प्रति कर्तव्यों की उपेक्षा करें तो अपने हित के साधन भी जल्द दूषित होंगे। चोर आपके घर नहीं आया, इस कारण आप उसका मुकाबला न करेंगे, पर जब वह आपके घर दौड़ पड़ेगा, तब आपका भी कोई साध नहीं देना। आपका अस्तित्व समाज में है। सामूहिकता से अलग हटकर आप अपने अधिकार सुरक्षित न रख सकेंगे। आपको चाहिए कि सबकी भलाई में ही अपनी भलाई देखें, क्योंकि उस समाज के आप अविभाज्य अंग हैं। जिन जातियों में सच्ची कर्तव्यनिष्ठा पाई जाती है, वह संसार में सदैव सम्मान प्राप्त करती है। कीर्ति और आर्थिक प्रगति का आधार भी मनुष्यों की कर्तव्यनिष्ठा का फल है।

—जार्ज इलिंग

□ मनुष्य के अन्तःकरण से हर क्षण आत्म-प्रेरणा उठती रहती है, हर सौंस के साथ उसका संदेश प्रसारित होता है, पर कोई उस आवाज को सुनना नहीं चाहता। आत्मा निरन्तर अपनी महानता की, दिव्य गुणों की माँग करती है पर काम हटे तब तो प्रेम आये, स्वार्थ दूर हो तभी तो त्याग जाग्रत हो सकता है। भोगों से चित्तवृत्तियाँ मोड़े बिना तप सम्भव नहीं, संयम सम्भव नहीं, शक्ति प्राप्त करना दुर्लभ है। अपनी कठिनाइयों से लड़े बिना साहस कैसे मिल जाएगा ? क्रोध बना रहेगा तो स्नेह, आत्मीयता सौहार्द और सौजन्य का परिष्कार जीवन में हो नहीं सकता। इसलिये उचित यही है कि आत्मा की पुकार को सुना-समझा जाय और उसी आधार पर अपनी गतिविधियों का निर्धारण किया जाए।
—ऐनीबीलेन्ट

□ तुम क्या करते हो, उसके परिणाम पर क्रिया का औचित्य नहीं, वरन् लोग दूँदते हैं आपका अभिप्राय और उसी से आपकी महानता का पता चल जाता है। कर्म करने में दृष्टिकोण उदारता का रहे तो आप पहली परीक्षा में पास हैं अर्थात् आपके बड़प्पन की कसौटी यह है कि व्यवहार करने में आपका हृदय खुला हुआ, भावनाएँ विस्तृत हैं और उद्देश्य यह हो कि उसका लाभ एक की अपेक्षा अनेक को मिले। यह हुआ परमार्थवादी दृष्टिकोण इसमें समाज की सामूहिक प्रतिभा का विकास होता है, इसलिये उदारता व्यक्तिगत श्रेष्ठता का प्रथम चिन्ह है।

□ विचार और आदर्शों का लाभ मानसिक नहीं व्यवहार में होता है। “चरित्रवान होना महानता है।” केवल इतना जान लेना ही पर्याप्त नहीं है वरन् चरित्र को जीवन में स्थान भी मिलना चाहिए। कार्य-सम्पादन में महानता का ध्येय होना चाहिए। जाति-कल्याण का आदर्श क्रियान्वित नहीं होता तो वह भावना भी बेकार है। हमारे सोचने का फल तब है जब उसे उतनी ही लगन से पूरा भी करें।

अन्तिम बात यह है कि सफलता में संयम रहे। उसे प्रदर्शित करते न घूमें, यदि ऐसा करने लगे तो जो प्रभाव आपने पैदा किया था, वह नष्ट हो जाएगा। लोग यह चाहते हैं कि आप

कुछ करें, यह कोई नहीं पसन्द करता कि आप अपनी सफलता की डींग मारते घूमें। यह आपके पूर्ण-विकसित होने का लक्षण है कि इस सफलता में भी आप ऐसे रहते हैं जैसे वह सफलता आप की नहीं सबकी है। —विस्वाकर्

□ ‘कृपया’ और ‘धन्यवाद’ ये छोटी रेजगारी हैं, जिनके द्वारा हम सामाजिक प्राणी होने का हिसाब चुकाते हैं। ये ऐसे साधारण शिष्टाचार हैं, जिनके द्वारा हम जीवनयन्त्र को स्नेहयुक्त और मधुरता से ओत-प्रोत रखते हैं। बाणी एक ऐसा आभूषण है, जो कभी टूटता-फूटता, घिसता नहीं। मधुर बाणी शत्रुता को सदैव के लिये भगा देती है। मीठे शब्द और नम्रतापूर्ण व्यवहार से पत्थर हृदय भी पिघलकर अनुकूल हो जाते हैं, किन्तु वाणी का दुरुपयोग हो, तीखा या कड़वा बोला जाय तो झगड़ा बढ़ता है और जीवन में कोई आनन्द शेष नहीं रहता। बोली की मिठास में बहुत सुख मिलता है, इससे सबका अन्तर शीतल होता है और लोग जरूर धन्यवाद देते हैं।

उत्तर इनकार में देना तो भी, “क्षमा कीजिए” “हमें बड़ा खेद है” “कितने भाग्यशाली होते यदि आपकी सेवा कर पाते” आदि मधुर शब्दों का प्रयोग किया कीजिये, इससे आपका कुछ जाता नहीं। थोड़े-से शब्दों से आपकी भलमनसाहत बच जाती है। असभ्य व्यवहार से किसी को निराश करना मनुष्य के लिये उचित नहीं हो सकता। जिस तरह हम दूसरों से भले व्यवहार की अपेक्षा करते हैं, उसी तरह हमें भी नम्र शब्दों से लोगों के साथ व्यवहार करना चाहिए।
—गार्डनर

□ मैं काम चाहता हूँ और सिर्फ काम। मैं यह जरूर चाहता हूँ कि हमारे देशवासी खूब पढ़ें लिखें और समझदार बनें, लेकिन इससे भी पहले यह इच्छा रखता हूँ कि वे मेहनती बनें। उन्हें काम करने का पूरा शौक हो। वे काम करने को, मेहनत करने को जिन्दगी का पहला कर्तव्य मानें।

मुझे पढ़े-लिखे आलसियों से बेपढ़े मेहनती लोग ज्यादा पसन्द हैं। मैं चाहता हूँ काम और केवल काम ! मैं अपने देशवासियों की सफलता की कामना करता हूँ। मैं बेशक ऐसे

आदमियों को ज्यादा पसन्द करता हूँ, जो काम में जुटे रहें, जैसे कोई धर्मान्व्य व्यक्ति अपने धर्म-कर्म में दुनिया को भूलकर जुटा रहता है। मुझे ऐसे आदमियों से बहुत मुहब्बत रहती है, जो किसी सच्ची बात के लिये निरन्तर लड़ते रहें और गलत बात के प्रति आत्म-समर्पण करने से इनकार कर दें। सच्चाई जीवन की हर सफलता का रहस्य है। आदमी को सच्चाई से दूर नहीं जाना चाहिए। —*जयचन्द्रलाल नेहरू*

- संसार संघर्षों की रणभूमि है। संसार में आये दिन संघर्ष ही संघर्ष होते रहते हैं। आर्थिक संघर्ष, सामाजिक संघर्ष, धार्मिक संघर्ष और न जाने किस-किस प्रकार के संघर्ष होते रहते हैं। जब सम्पूर्ण संसार ही संघर्ष-स्थली है, तब कोई भी व्यक्ति संघर्ष से अपने को बचा नहीं सकता। उसे किसी प्रकार के संघर्ष का सामना करना ही होगा। संसार की हलचल और संघर्ष से उदासीन हो सकना असंभव है। संसार से तटस्थ हो जाने वाले व्यक्तियों को भी अपने मानसिक संघर्ष और वैचारिक द्वन्द्व में पड़ना पड़ता है। आशय यह है कि संसार का कोई भी प्राणी संघर्ष से नहीं बच सकता।

जब सबको ही संघर्ष करना पड़ता है, तो अनिवार्यतः हमको भी संघर्ष में पड़ना होगा। अब प्रश्न यह उठता है कि हम अपने लिये किस प्रकार के संघर्ष को चुनें ? इस चुनाव में कोई कठिनाई नहीं है, स्वार्थ संघर्ष को छोड़कर किसी भी ऐसे संघर्ष को अपनाया जा सकता है, जो अन्याय के विरुद्ध न्याय का, असुन्दरता के विरुद्ध सुन्दरता का और बुराई के विरुद्ध अच्छाई का हो। —*शचीन्द्रनाथ सान्याल*

- स्त्री-पुरुषों के पास समय बिताने के लिए कोई काम न हो तो वे पतित हो जाते हैं। हमें श्रम से जी नहीं चुराना चाहिए, अन्यथा हम कोई ऐसी वस्तु बन जाएँगे, जिसका प्रकृति के लिए कोई उपयोग नहीं होगा। ईसा ने “फलहीन अज्जीर” की एक कथा कही थी, उसमें उनका उद्देश्य यही समझाना था कि बिना काम स्त्री-पुरुष झगड़ालू, असन्तुष्ट, अधीर और चिड़चिड़े हो जाते हैं, चाहे ऊपर से वे कितने ही मीठे और मिलनसार ही क्यों न दिखाई दें ? जो यह शिकायत करे कि “मेरे पास कोई

काम नहीं” उसे झगड़ालू और शिकायत से भरा हुआ समझना। उसके चेहरे पर थकावट-सी छाई हुई होगी उसका चेहरा देखने में भला न प्रतीत हो रहा होगा। यह इस बात का प्रमाण नहीं है कि काम न होना सौभाग्य का लक्षण तथा मनचाही वस्तु है।

- काम न करना एक तरह से प्रकृति के विरुद्ध विद्रोह है। मनुष्यता का पौरुष के अपमान है, यह पूर्णतः अप्राकृतिक तथा लौकिक नियमों के विपरीत है। अपनी रोजी-रोटी के लिए थोड़ी-सी कमाई कर लेना-इतना ही पर्याप्त नहीं है। काम अपने पास से चलता है और सम्पूर्ण विश्व के उत्थान के लिए ही रहता है। उसे कभी बन्द होना भी नहीं चाहिए। जिस दिन इस धरती में श्रम और काम की कीमत गिर जाएगी, उस दिन यहाँ की सारी चहल-पहल और खुशियाली मिट्टी में मिल जाएगी, हमें अपने परिश्रम के द्वारा इस संसार को बहुत सुन्दर बनाना है। परिश्रम ही हमारा सच्चा देवता है, उसी का आश्रय लेकर हम इतने आगे बढ़े हैं और उसी के अनुग्रह से उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कर सकेंगे। —*जेम्स ऐलन*

- शत्रु को मारना एक वीरता है, किन्तु इससे भी बड़ी वीरता है—पराजय की थड़ी आने से पहले रण-क्षेत्र में अपने को उत्सर्ग कर देना। वीरता का मुख्य लक्षण त्याग है, जिसमें त्याग की भावना का अभाव है वह बहुत-से युद्ध जीतने पर भी वीर नहीं कहा जा सकता।

सच्चा वीर वह है जो पीड़ितों की रक्षा के लिए युद्ध करे, अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करे और संसार से अत्याचार के तत्त्व मिटा दे। किन्तु विजय प्राप्त करके, जो योद्धा उसके उपहारों को स्वयं न लेकर दूसरों को बाँट देता है, वह वीर ही नहीं, महावीर है। —*वाणक्य*

- स्वार्थ की एक सीमा है, जहाँ तक वह उचित कहा जा सकता है। विचारशील व्यक्ति आदर्शवादिता से प्रेरित होकर स्वार्थ को सर्वथा ही हेय नहीं बतलाते क्योंकि मनुष्य स्वयं भी जीना चाहता है और अपने परिवार को भी जीवित रखना चाहता है, जिसके लिये उसे वैयक्तिक स्वार्थ-साधन के लिए कुछ न कुछ

करना ही पड़ता है। इसको कौन अनुचित कह सकता है ?

किन्तु जब यह स्वार्थ या आवश्यकता मनुष्य का जीवनोपयोग बन जाता है, तब वह अनन्यता की कोटि में पहुँच जाता है। मनुष्य को स्वार्थ-साधन की स्वतन्त्रता दी गई है। किन्तु जब वह प्रयुक्तता पाकर लोभ जैसी वृत्ति में बहल जाता है, विकृत हो जाता है और उसकी साधना में छल, कपट, हिंसा आदि का प्रयोग होने लगता है, तब वह अभिन्न बनकर सन्न हो जाता है, जिससे मनुष्य में संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है और जीवन एक जीवित नरक कुण्ड बन जाता है। स्वार्थ की एक सीमा है जिसको समझ रखना मनुष्य का परम धर्म है।

—प्रमुखत्व लक्ष्य

- बीरो ! विश्वास करो कि चाहे कितनी ही परिस्थितियाँ आएँ, पर अन्तिम विजय तुम्हारी ही होगी। जब तक तुम्हारा यह भाव सुदृढ़ बना रहेगा; तब तक दुनिया की कोई भी शक्ति तुम्हें पराजित नहीं कर सकती। यदि रखो—जिसे हारने का भय हो, वह अवश्य हारेगा। जीत के लिये तुम अटूट विश्वास रखो और जो काम तुम्हें सौंपा गया है, उसे पूरी लगन के साथ पूरा करो। अपनी एक-जुट ताकत और विजय पर हर क्षण विश्वास बनाये रखो।

—अग्रहस्त लिंकन

- यह ज्यादा अच्छा है कि हम सच्चाई को योजन सम्झ लें और उस पर अमल करें बनाय इसके कि हम जीवन के रहस्य खोजने के लिये भटकते फिरें। जिन्दगी कोई बड़ा रहस्य नहीं है, वह सच्चाई के साथ काम करने और जीने के लिये है। हमें जिन्दगी को तरह-तरह से सोचकर उसे रहस्यमयी बना लेते हैं और फिर उसी रहस्य को खोजने में सारी उम्र खत्म कर देते हैं। न कुछ काम कर पाते हैं और न सुख-धन।

जिन्दगी का सिर्फ एक मसाला है कि उसे कायदे के साथ ठीक तरह से जियो। जितना काम अपने लिये करो उससे ज्यादा काम दूसरों के लिये करो। जिन्दगी पर जितनी गहराई से सोचा जाएगा यह उतनी ही उलझ जाएगा। सोचना तो यह चाहिए कि हमने किस्के लिए

क्या किया ? जिन्दगी कोई भेद नहीं है वह सुझा हुआ सत्य है। उसे रहस्य समझकर परेशान होना ठीक नहीं। —मार्क्स

- प्रत्येक मनुष्य सभी प्रकार की योग्यताओं, विशेषताओं और क्षमताओं का भण्डार है। अन्तर केवल यह है कि कोई लाभ उठाता है और कोई नहीं। जो इनका लाभ उठाता है, इनका समुचित दिशा में सदुपयोग करता है, वह आन्तरिक सुख-शांति और बाहरी समृद्धि का अधिपति बनता है और जो इनको यों ही निहत्ता पड़ा रहने देता है, वह अशांतिपूर्ण दयनीय जीवन का धागी बनता है।

- मनुष्य का इससे बड़ा दुर्भाग्य और बुरा हो सकता है कि वह विपुल भण्डार का स्वामी होता हुआ भी दरिद्री बना रहे। शक्तिशाली होता हुआ भी निरीह एवं दुर्बल बना रहे।

मनुष्य की ये विशेषताएँ हैं, उसका आत्मविश्वास, पुरुषार्थ और सम्जनता। सम्जनोचित स्वभाव से आत्म-विश्वास लेकर पुरुषार्थ में प्रवृत्त रहने वाले व्यक्ति कभी असफल नहीं होते। उन्हें सुख-शांति और समृद्धि-सम्भावनाएँ अवश्य प्राप्त होती हैं, यह निश्चित सत्य है। —जी. केनेस

- मिलना इस दृष्टि का स्वाभाविक गुण है। हर पदार्थ अपने सजातियों के साथ मिलने के लिए प्रयत्न कर रहा है। जड़ जगत् में यह प्रक्रिया निर्वाचन रूप से काम कर रही है। टकरावा तो एक दुर्घटना मात्र है। संघर्ष कदाचित् और कभी-कभी ही होता है, तो भी तब जब कि कोई विपत्तियाँ अनावश्यक मात्रा में इकट्ठी हो जाती हैं। संसार का सारा क्रम मिलन धर्म पर अचलस्थित है। मिलन से ही पोषण, विकास और अभिवर्द्धन का कार्य होता है। उत्साह और आनन्द का माध्यम भी मिलन ही है। संघर्ष को असत्य और मिलन को सत्य कहा गया है। हमें मिलन की ही बात सोचनी चाहिए और उसी के लिए प्रयत्न करना चाहिए। —मार्क्स

- ऐसा कोई मंत्र नहीं जिते पहुँचकर कोई अपने को निम्नावस्था से शीघ्र ही उठाकर उच्च स्थिति पर पहुँचा दे। अन्य लोग बुखद परिस्थितियों में जिन गुणों को अपनाकर आगे

बढ़े हैं, सिवा इसके कि आप भी उनका अवलम्बन करें सफलता का और कोई दूसरा मार्ग नहीं। परिश्रम, संयम, ईमानदारी और मितव्ययता वे गुण हैं, जिनसे लोग छोटी स्थिति से बड़े और सफल एवं सम्पन्न व्यक्ति बने।

—**वाइज**

- सभी लोग परिस्थितियों का लाभ उठाते हैं। किन्तु जो सर्वथा परिस्थितियों पर ही निर्भर रहते हैं, वे किनारे के उस वृक्ष की भाँति हैं, जो कूल की प्रतिकूलता से किसी समय भी गिरकर नष्ट हो सकते हैं।

आज जिन परिस्थितियों की अनुकूलता से आप समृद्धिशाली बने हैं, उनकी प्रतिकूलता से दरिद्री भी बन सकते हैं। जीवन को पराधीन नौका की तरह आधार बनाकर संसार सागर में सन्तरण करना ठीक नहीं है। जीवन की एक स्वचालित पोत की भाँति सुदृढ़ और शक्ति सम्पन्न बनाना चाहिए।

जिसने आत्म-बल के आधार पर ही अपना निर्माण किया है, उसकी स्थिरता परिस्थितियों की अनुकूलता, प्रतिकूलता के अधीन नहीं रहती। अनुकूल परिस्थितियों में तो वह दिन दूना रात चौगुना विकास करेगा ही, प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उसका विकास अवरुद्ध नहीं हो सकता। अपने आधार पर अवस्थित व्यक्ति के लिए देश-कालजन्य सारी परिस्थितियाँ अनुकूल ही रहना करती हैं।

—**क्रोलेन्बस**

- इस दुनिया के तीन बड़े सत्य हैं—आशा, आस्था और आत्मीयता। दूसरों को अपना मानना और उनसे प्रेम करना इन तीनों में बड़ा है। जिसमें प्रेम नहीं उसमें कुछ नहीं, यही कहना चाहिए। जिसमें प्रेम नहीं वह बड़ा उपदेशक होने पर भी निरा शंख या मजीरा मात्र है, जो सिर्फ आवाज ही पैदा कर सकता है। किसी ने भले ही अष्टसिद्धि और नौ निधियाँ प्राप्त कर ली हों पर यदि उसका हृदय प्रेम से सूना है तो उसे तुच्छ ही माना जाएगा। कोई कितना ही बड़ा दानी या धर्मात्मा क्यों न हो पर यदि वह प्रेमी नहीं तो उसे भी स्वर्ग में प्रवेश न मिलेगा। ईश्वर को प्रेम और प्रेम को ईश्वर कहना चाहिए। जिसके रहस्य में मौजूद है उसे ईश्वर की प्राप्ति हो चुकी, इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता।

—**लेन्ड फाल**

- यदि आज का दिन व्यर्थ बरबाद कर लिया जाय तो कल भी वैसा ही करने की इच्छा होगी और दिन-दिन अधिक सुस्ती आती जाएगी। धीरे-धीरे चलकर मनुष्य वहाँ पहुँच सकता है, जो आरम्भ में बहुत दूर दिखाई पड़ता है। दौड़ना भी व्यर्थ है। मुख्य बात है धैर्य और दृढ़ता के साथ अभीष्ट दिशा में उत्साह से बढ़ते चलना। जिन लोगों ने जीवन में अधिक काम किये हैं, वे सभी नियत समय पर काम करने वाले और समय के मूल्य को समझने वाले थे। आज का काम आज निपटा लेना एक बहुत ही अच्छी आदत है। जिन्होंने इस आदत को अपनाया वे अपने जीवन को व्यर्थ बरबाद करने से बच गये और कुछ कहने लायक प्रगति कर सकने में समर्थ हुए।

- काम को कल के लिये टालते रहना और आज का दिन आलस्य में बिताना एक बहुत बड़ी भूल है। कई बार तो वह कल कभी आता ही नहीं। रोज की 'कल' करने की आदत पड़ जाती है और कितने ही ऐसे महत्त्वपूर्ण कार्य उपेक्षा के गर्त में पड़ जाते हैं, जो यदि नियत समय पर आलस्य छोड़कर कर लिये जाते तो पूरे ही हो गये होते।

—**अमृतमय लिपिक**

- विचारों में महान शक्ति निहित है। अगर कोई मनुष्य सर्वथा एकांत स्थान में रहे, वहीं पर उच्च विचार करता रहे और इसी प्रकार विचार करते-करते उसका अन्त हो जाय, तो कुछ समय पश्चात् वे विचार उस एकांत स्थान से निकल पड़ेंगे और सर्वत्र फैलते हुए मानव जाति को अवश्य ही प्रभावित करेंगे। हम चाहे जानें या न जानें पर हम जैसे भी भले या बुरे विचार करते रहते हैं, वे अदृश्य रूप से वातावरण में फैलकर अन्य लोगों को किसी न किसी रूप में प्रेरणा देते रहते हैं। विचारों की शक्ति अमोघ है।

—**त्यागी विवेकानन्द**

- शरीर को अधिकाधिक आराम देना, उसकी सेवा करना, क्षण-क्षण पर उसकी वासनाजन्य भूख-प्यास को परितृप्त करते रहना, उसी प्रकार की भयंकर भूल है जितनी भयंकर भूल किसी नव-जात शिशु को दिन भर पकवान और मिष्ठान्न खिलाते रहना। इसका फल स्पष्ट है कि शिशु रोगी होकर निर्जीव हो जाएगा।

उसी प्रकार अधिक सुख पाने से शरीर निस्तेज और निर्जीव हो जाता है। यह निकम्मा होकर किसी काम का नहीं रहता। जिस शरीर के साधन से मनुष्य अपनी आत्मा को मुक्त कर सकता है उसके दर्शन कर सकता है, वही शरीर उसके बन्धन दृढ़तर करने में सहायक हो जाता है।

- शरीर के भोग ही उसे रोग की तरह लगकर खा जाते हैं। भोगों के विषय में सुरक्षित शरीर आत्मा का मित्र होता है तो उसके उद्धार में सहायक होता है। आत्मा एकमात्र मित्र, एकमात्र सहायक और एकमात्र सेवक शरीर को विषय-विष से भरना मानव-जीवन की न पूरी होने वाली क्षति है।

—बाबा राघवदास

- जो कुछ तुम चाहते हो पहले ठीक प्रकार से उसकी विवेचना कर लो, उसका मूल्यांकन कर लो और परख लो उसकी उपयोगिता को। यदि तुम्हारी चाह उपयोगिता की कसौटी पर खरी उतरती है और उसकी सदाशयता में कोई शंका नहीं है, तो उसे प्राप्त करने में समग्र क्षमताओं से प्रयत्न करो। उसे पाने के लिये सर्वस्व की बाजी लगा दो।

जिस प्रकार शक्तिहीन अभिलाषा की पूर्ति असम्भव होती है, उसी प्रकार जो चाह दृढ़ निश्चय और अडिग संकल्प में परिणत हो जाती है वह सफल हुए बिना नहीं रहती।

—बेकन

- इस संसार रूपी क्षेत्र में मनुष्य एक बीज के रूप में है। इस बीज की दो ही गतियाँ हैं। फलना-फूलना या सड़ जाना। किन्तु सड़ जाना मनुष्य का स्वभाव नहीं है। इसलिये उसे फलना-फूलना ही होगा। यह बात सही है कि अपने स्वभाव के विपरीत कुछ मनुष्य सड़ा भी करते हैं, वह इसलिये कि अपने ऊपर पड़ी हुई परिस्थिति रूपी मिट्टी को वे फोड़कर निकलने का कष्ट नहीं उठाना चाहते। ऐसे मनुष्य किसी काम के नहीं होते, ठीक उसी प्रकार कमजोर और रद्दी बीज। मनुष्य की स्वाभाविक गति है उगना और फैलना।

पर यह हो कैसे ? इसके लिये उसे अपने बल से अपने चरित्र से और अपने चारों ओर के साधनों से उचित सहयोग लेकर क्रम-क्रम से

अपना विकास करना होगा। ठीक उसी प्रकार बीज एक अंकुर-अंकुर करके एक वृक्ष के रूप में परिणत हो जाता है।

—रोम्बो रोलाँ

- सदाचार में विश्वास रखने वाले सत्पुरुष जीवन भर निर्धन रहकर जी लेंगे किन्तु धन के लिए कोई भी अपकर्म नहीं करेंगे। वे अपनी सदाचारी निर्धनता में भी सुख-शान्ति के अधिकारी बने रहते हैं। इनके पास कोई ऐसा लुका-छिपा कारण भी नहीं होता जो किसी समय उनके मनोमन्दिर में जगकर उनको बेचैन कर सके। उनका जीवन गंगोत्री के जल की तरह निर्मल एवं प्रसन्न होता है, जिसकी पवित्र शीतलता से उनका रोम-रोम सुखी एवं शान्त रहा करता है। परमात्मा का अंश उनकी अन्तरात्मा उनके शुभाशयी तथा शिवसंकल्प होने के लिए आशीर्वाद दिया करता है। उन्हें अन्दर-बाहर दोनों ओर से सुख-शान्ति से सरावोर रखा करती है।

—मामा बरेरकर

- “आगे बढ़ो या मरो”। जो कोई आगे बढ़ने से इनकार करेगा वह कुचला जाएगा। इसके सिवाय और कोई वश या इलाज नहीं है। संसार में जितने प्राणी हैं सबकी दशाओं पर ध्यान करने से यही नियम मालूम होता है कि “बढ़ो” ! जड़, चेतन, वनस्पति सभी स्थानों पर इसी नियम का सिक्का (आतंक व राज्य) है। असंख्य जातियों और पशुओं को पढ़ने से भी यही मालूम होता है कि उनके खून की प्रत्येक बूँद पर लिख गया है कि “आगे बढ़ो”। कहा गया है और सच है कि उन्नति पुरुषार्थ से और कष्ट उठाने से होती है। जो व्यक्ति परिश्रम और प्रयत्न न करेगा, वह नष्ट होगा और कुचला जाएगा। जिस तरह एक गाड़ी में घोड़ा जोता जाता है, उसका काम है कि गाड़ी को खींचकर आगे ले जाए। यदि वह न चले और रुक जाए तो कोचवान उस पर चाबुक मारता है। यही दशा व्यक्तियों और जातियों की है।

—स्थानी रामतीर्थ

- वीरो ! उठो और सत्य के उदयाचल पर खड़े होकर ऐसा सिंहनाद करो कि संसार में अत्याचारियों के झुण्ड भेड़ों की तरह भाग खड़े हों। तुम्हारे शस्त्र बिजली की तरह चमककर अतीत के घटाटोप का विध्वंस कर दें।

तुम्हारे साहसपूर्ण सिंहनाद के पीछे कोटि-कोटि समर्थकों का जयकार होगा। तुम्हारे ध्वज के नीचे बात की बात में असंख्य बलिदानी एकत्र हो जाएँगे। तुम्हारे चरणों के पीछे सहस्रों अडिग चरण गतिमान हो उठेंगे। तुम उठो तो सही, आगे बढ़ो तो और तब देखो कि ऐसा होता है या नहीं ? समर्थन अथवा सहयोग न मिलने की शंका पालकर अकर्मण्य बने रहना भीरुता है, कायरता है और अमानवता है।

—नेपोलियन

- जीवन में त्यागवृत्ति, सेवा और प्रेमवृत्ति को धारण करना ही होगा। फूल को अपनी पंखुड़ियाँ गिरानी ही होंगी, तभी तो फूल खिलेंगे। फल को वृक्ष से गिरना ही होगा, तभी तो वृक्ष होंगे। गर्भ के शिशु को गर्भाशय से बाहर आना पड़ता है, तभी तो पृथ्वी पर उसके शरीर, मन आदि का विकास होकर उसकी इन्द्रियशक्ति और विद्या-बुद्धि और उसकी इच्छाशक्ति का विकास होता है। जहाँ ये एक ओर उसके जीवन को धन्य बनाती हैं, वहाँ वह अन्यो के साथ सुसम्बन्ध स्थापित कर मधुर प्रेम से भर देती हैं। त्यागमय, प्रेममय और निस्वार्थ मानव जीवन तभी बनेगा जब आत्मशक्ति सुनियंत्रित होगी।

—रवीन्द्रनाथ टैगोर

- निरुद्देश्य मखमली गद्दी पर पड़े-पड़े जीवन बिताना सुख नहीं है और सुख यह भी नहीं है कि आपका सारा काम दूसरे करते हैं और आप आराम से आदेश भर देते हैं। सुख है, स्वयं भी कुछ काम करने में कुछ उपयोगी काम करने में।

सच्चा सुख इसमें है कि तुम एक ऐसे उद्देश्य में लग जाओ, जिसे तुम्हारी अपनी आत्मा भी महान समझती हो और उसको पूर्ति के लिए इतना काम करो कि तुम्हारे जीवन का प्रत्येक अणु क्षण उसमें घिसकर लग जाए।

निकम्मे होकर धूरे पर पड़ी रद्दी के समान बनने से पहले किसी उपयोगी कार्य में लग जाना ही बुद्धिमानी है और उसी में सच्चा सुख है।

क्रियाशील प्रकृति का एक अंग बनकर उसकी शक्ति बन जाने के लिए काम करो, न कि आपत्तियों और क्षुद्रताओं से जीवन को भरकर

यह शिकायत करते रहो कि दुनिया सुखी बनने में तुम्हारी सहायक नहीं होती। —जार्ज बर्नार्ड शा

- भय और निर्बलता से ही हम झूठ, धोखेबाजी का सहारा लेकर जीते हैं। असत्य का आचरण करते हैं। दण्ड के भय से हम स्वतन्त्रता के अधिकार से वंचित रहते हैं। बदनामी, लोक-निन्दा, विरोध आदि के भय से हम कई हानिकार, रूढ़िवादी, बेतुकी परम्पराओं से चिपके रहते हैं। मृत्यु-हानि के भय से हम महत्त्वपूर्ण कार्यों को शुरू नहीं कर पाते। हममें दास-वृत्ति पैदा होती है—साहस के अभाव में, क्योंकि अपने अधिकारों के लिये हम कुछ बोल नहीं सकते। हम संकटों का सामना भी नहीं कर पाते। दूसरों का मुँह ताकते हैं, अपनी रक्षा के लिये। दुनिया में कोई शक्ति नहीं, जो निर्बल का उद्धार कर सके क्योंकि सब तरह से रक्षित और समर्थ होकर भी वह भयभीत और परेशान रहेगा।

—रस्किन

आत्म-विश्वास मानव-जीवन का एक अद्भुत चमत्कार है। जिसने इसे प्राप्त कर लिया उसने मानो सब कुछ पा लिया। आत्मविश्वास के लिये कोई लक्ष्य, कोई उपलब्धि अथवा कोई कार्य असम्भव नहीं। दुनिया में असम्भव समझे जाने वाले कार्य सम्भव कर दिखाना ही आत्म-विश्वास की सबसे बड़ी अभिव्यक्ति है।

आत्मविश्वास की ज्योति जलते ही कठिनाइयों का सारा अन्धकार तिरोहित हो जाता है। आत्म-विश्वास के प्रकाश में अभावों, अभिशापों, दीनता, दयनीयता और गरीबी का अन्धकार नहीं ठहर सकता।

—एमर्सन

- किसी से बैर हो जाता है तो उसके हमले से बचाव की चिन्ता हो जाती है। पर आशंका उतने ही समय तक रहती है, जब शत्रु सामने या कहीं बगल में होता है। दुश्मन का हमला दूर से होता है, इसलिये बचाव सम्भव है, किन्तु अपने ही मस्तिष्क में जड़ जमाई हुई दुर्भावनाओं का आघात अधिक कष्टदायक और विनाशकारी होता है। इससे शारीरिक और बौद्धिक शक्तियाँ नष्ट होती हैं, जो किसी शत्रु द्वारा किये गये प्रहार से अधिक होती हैं और भी गहराई से विचार करने पर यह सिद्ध होता है कि सामाजिक कलह, पारस्परिक मन-मुटाव

और झगड़े की जड़ दुर्भावनाएँ ही हैं। क्रोध और प्रतिशोध के कारण निरन्तर देह में अग्निदाह-सा बना रहता है, उसमें मानवीय योग्यताएँ जलकर खाक होती रहती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य की दुर्भावना उसके शत्रु की अपेक्षा अधिक दुःख देती है।

—**बाल्स कस्तूर**

- चोर देखता है कि इस घर में अन्धकार है, सभी लोग सोए पड़े हैं, उसी घर में घुस जाता है और कीमती वस्तुएँ चुरा ले जाता है। प्रकाश में उसकी क्या बिसात, जो घर में एक पौंव भी रख ले। वासना भी एक दुष्ट चोर की तरह है। वह अपना हमला निर्भय, आधारहीन और आशाहीन पुरुषों पर ही करती है, जिनमें चरित्र की दृढ़ता, सुसंगठिता और सावधानता रहेगी वासना उससे ऐसी डरेगी जैसे भेड़िए के सामने खड़ी भेड़। निर्बल, अशक्त और बुद्धिहीन प्राणियों को ही वह परेशान करती है। सत्पुरुष के लिये तो वह ऐसी ही कसौटी है जैसे अग्नि लोहे को परखती है। संघर्ष की आँच में कसा हुआ व्यक्ति इस्पात की तरह मजबूत होता है। जिसे तरह-तरह की कामनाएँ परेशान करती हैं, वासना उन्हीं प्राणहीन पुरुष को सताती है, जिनके जीवन का निश्चित लक्ष्य न हो। उन्हें ही वासना घमकदार, आकर्षक और प्रिय लगती है, किन्तु जिसके हृदय में सेवा का स्रोत उमड़ रहा होगा, उसके पास भला वासना किसलिये जाएगी ?

—**प्रेमचन्द**

- अवसर का यथोचित उपयोग ही मनुष्य-जीवन की सफलता का रहस्य है। कोई भी 'अवसर' अपनी अज्जलि में मनुष्य के लिए बहुमूल्य उपहार लेकर ही उपस्थित होता है। अब उनको प्राप्त करना, न करना मनुष्य के अपने हाथ की बात है। किसी एक 'अवसर' के अनेक प्रत्याशी हो सकते हैं, जिनमें प्रतिद्वन्द्विता भी हो सकती है किन्तु जीतता वही है, जिसके पक्ष में 'अवसर' लड़ता है और वह उसी के पक्ष में लड़ता है, जो सद्गुणी और सत्यात्र होता है। हर मनुष्य के जीवन में 'अवसर' आता है। किन्तु एक बार निराश होने पर दुबारा नहीं

आता है। किसी भी 'अवसर' से यह आशा करना मृगमरीचिका के तुल्य है कि वह आपका द्वार दुबारा खटखटाएगा। बुद्धिमान लोग 'अवसर' को आगे से आलिंगन करते हैं, धरते हैं और पकड़ते हैं क्योंकि इसके दुम नहीं होती जो आगे पड़ जाने पर पकड़ी जा सके।

मनुष्य जीवन से बढ़कर कोई 'अवसर' नहीं। इसके सदुपयोग न करने से बढ़कर कोई दुर्भाग्य नहीं हो सकता।

—**डिणरायली**

- मनुष्य में अनन्त शक्ति है। उसके विचारों में जीवन-निर्माण की प्रचुर सामग्री भरी पड़ी है। साहस, शौर्य, उद्यम, परिश्रम, उद्योग, धैर्य और संघर्ष की शक्ति वह अपने विचारों से पैदा करता है और इनका प्रयोग जीवन के क्रियात्मक क्षेत्र में करके लाभ उठाता है। इन शक्तियों की ओर ध्यान न दें तो दीन-दुर्बल और दुःखी ही बना रहना पड़ेगा। धरती के भोग वीरपुरुषों के लिये बने हैं, पर इसके लिये मनुष्य की कर्मठता भी तो जागे, पौरुष न जागा तो हाथ कुछ न लगेगा।
- हर मनुष्य को अलग-अलग सोचने की क्षमता परमेश्वर ने इसलिये दी है कि वह उचित-अनुचित की, खरे-छोटे की परख करे और जो उपयुक्त सिद्ध हो, उसे ही ग्रहण करे। मुँह में जीभ का काम यह है कि पेट में जाने से पहले किसी वस्तु को चखे और यदि वह उपयुक्त जान पड़े तो ही पेट में प्रवेश करने दे। इसी प्रकार मस्तिष्क की रचना इसलिये हुई है कि सामने प्रस्तुत हर बात के गुण-अवगुण पर विचार करे जो ठीक जान पड़े केवल उसी को स्वीकार करे, मानसिक स्वावलम्बन इसी को कहते हैं।

—**अरविन्दगुरुवर**

- मानव जीवन अमित विभूतियों का पुंज है। उसमें अगणित रत्नों और सिद्धियों का भाण्डागार छिपा पड़ा है। पर वह प्राप्त उन्हें ही होता है, जो संघर्ष के लिये कटिबद्ध रहते हैं। जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त कर सकना केवल उन्हीं के लिये सम्भव है, जो शूरवीर सेनानायक की तरह हर मोर्चे पर लड़ने के लिये सदा प्रसन्नतापूर्वक तत्पर रहते हैं।

पौराणिक गाथा के अनुसार समुद्र-मन्थन कर चौदह रत्न प्राप्त किये गये थे। जीवन वह

समुद्र है जिसे यदि साहस, सतर्कता और प्रसन्न मुद्रा के साथ मथा जाय तो उसमें से इतना अधिक प्राप्त होने की सम्भावना है, जिसका परावार नहीं। संसार में सत्पुरुषों ने जीवन का स्वरूप और मूल्य समझा है। उसके सदुपयोग करने का साहस किया है, फलतः वे अपने साथियों की तुलना में अत्यधिक ऊँचे उठे दिखाई पड़ते हैं। सदुद्देश्य के लिये अनवरत बाधाओं से संघर्ष करके मनुष्य खोता कुछ नहीं, पाता ही पाता है। —**नरार्थ कर्व**

- उत्साह में अपरिमित बल का भण्डार रहता है। उत्साही व्यक्ति संसार की दुर्लभ से दुर्लभ वस्तु को प्राप्त कर सकता है। इसके विपरीत जो निरुत्साही है, निराश है, वह अपने साधारण उद्देश्य में भी सफल नहीं हो सकता। उसे छोटे-से-छोटे काम से लेकर बड़े से बड़ा काम एक जैसा ही पसंद मालूम होता है।

- निरुत्साही व्यक्ति किसी काम को देखकर ही सहम जाता है। काम में प्रवृत्त होने से पहले ही उसे असफलता दीखने लगती है। किसी काम में ह्रास झलते वह ऐसे भयभीत होता है मानो आग में ह्रास झल रहा हो। निराश और निरुत्साही जीवन में कोई आनन्द भी नहीं होता। किन्तु ही वैश्य, किन्तु ही धन-सम्पदा और सुख-सुविधाएँ उसके पास क्यों न हों वह उनके उपयोग का कोई आनन्द नहीं उठा पाता। जीवन में ही मृतक-मुक्त्य आयु के दिन काट्य करता है। —**तेजुजल तन्त्रज्ञ**

- यह आश्चर्य किन्तु अच्छा है, नेक और उदार हृदय है इसकी पहचान के लिये देखिये कि उसकी वाणी में विनम्रता और विनयशीलता है या नहीं। दूसरों को प्रभावित करने की शक्ति वाक्पटु लोग भी रखते हैं, किन्तु आन्तरिक निर्मलता और निश्चयता के द्वारा जो दूसरों का हृदय जीत लेते हैं, उनकी वाणी सरस होगी, गम्भीर और मधुर होगी। वाणी की मधुरता के आगे क्रोधी का क्रोध मिट जाता है, पाषाण हृदय पसीज जाता है, इसलिये वही बोलना चाहिए जिससे स्वयं को भी सुख मिले और दूसरों के अन्तःकरण में भी शीतलता का प्रादुर्भाव हो। तीखे और कड़ुये शब्द बोलना

आत्महीनता की निशानी है, जो मीठा नहीं बोलता उसके लिये सारा जग बैरी है।

—**विक्टर ह्यूगो**

- मनुष्य के हृदय में अगणित अभिलाषाएँ होती हैं। किन्तु वह किसी एक-आध के प्रति ही ईमानदार होता है। वह सबके प्रति ईमानदार हो ही नहीं सकता।

मनुष्य किस बात का अभिलाषी है यह उसके कर्मों में दर्पण के देखा जा सकता है। जिस वस्तु के लिए मनुष्य की सक्रियता सम्पूर्ण शक्ति से गतिशील होती है और जिसको उसकी बुद्धि एक लक्ष्मी की भाँति एकाग्रतापूर्वक लक्ष्यबिन्दु की तरह देखती है, वही उसकी अभिलाषा है। अन्य अभिलाषाएँ तो मनोविकार मात्र हैं, जो समय-समय पर उठती रहती हैं। मानस-सिन्धु में उठकर मिटने वाली कोई भी तरंग अभिलाषा नहीं मानी जा सकती। सच्ची अभिलाषा तो वही है, जो तरंगों के बीच एक द्वीप की भाँति अविचल स्थित है।

बहुत-सी अभिलाषाएँ करने वाला एक दरिद्र भिखारी की तरह है, जिसकी कोई भी अभिलाषा पूर्ण नहीं हो सकती। सच्चा अभिलाषी वह है, जो केवल एक और ऊँची अभिलाषा रखता है। एकभिलाषी व्यक्ति अपने ध्येय को अवश्य प्राप्त कर लेता है, जबकि बहु अभिलाषी पशु-भ्रान्त की भाँति मानसिक धन में भटकता रहता है। —**स्वेट मार्गन**

- मौनता यदि संजीवनी औषधि है तो बाबालता एक रोग, जो जीवन को जर्जर बना देता है। जो जितना कम बोलता है, वह उतना ही सक्षम तथा चिरंजीवी होता है।

पक्षी अधिक बोलते हैं तो कम जीते हैं। बोलने वाले पशु-पक्षियों में भी जो अपेक्षाकृत कम-ज्यादा बोलते हैं, वह उसी अनुपात से कम ज्यादा जीते भी हैं और शक्तिशाली भी हैं।

प्रकृति की चिरंजीवित्व का रहस्य उसकी मौनता है। प्रकृति सदैव मौन रहती है, इसलिये बड़े से बड़े संक्रांति कालों में भी अपने जीवन की रक्षा कर लेती है। —**तन्त्र सिद्धकुरुवर**

- साहसी यह है जो सरते हुए मोर्चे को स्वल्प साधनों से जीत ले। कठिनाइयों के बीच से मार्ग बनाता हुआ चला जाए, आपत्तियों के

- आने पर जो विचलित न हो और शत्रु को जीतकर विजयोन्माद से अपने को बचाये रहे।
- साहसी वह जो साधनरहित होकर भी करने योग्य किसी काम को उत्साहपूर्वक हाथ में ले ले। शोक के अवसर पर आँसुओं को रोककर मुसकान के फूल खिलाये।
- इस प्रकार के साहसी जिस भाग्यवान् राष्ट्र को मिल जाते हैं, वह युग-युग संसार में सिर ऊँचा करके खड़ा रहता है। संसार को कोई भी शक्ति उसे पददलित नहीं कर सकती।
- किसी भी आपत्ति के अवसर पर मनुष्य को चाहिए कि वह सबसे पहले उसके प्रभाव से अपने मस्तिष्क की रक्षा करे। यदि मस्तिष्क प्रभावित हो गया तो समझ लेना चाहिए कि उसके सारे अस्त्र-शस्त्र छिन गये, टक्कर लेने के सारे साधन समाप्त हो गये। मस्तिष्क को बचाने का सबसे सरल उपाय है तटस्थता। अपने पर आई आपत्ति से अपने को अलग कर उसका इस प्रकार अध्ययन कीजिए जैसे उस आपत्ति से आपका कोई सम्बन्ध नहीं है। मानो वह किसी दूसरे पर आई हुई है और आप उसके एक दर्शक मात्र हैं। —*प्रिंस बिस्मार्क*
- हमारी सदैव यह अभिलाषा रहती है कि दूसरे लोग हम से प्यार करें, भीठा बोलें। मधुर व्यवहार करें, सहयोग दें, सहायता प्रदान करें। पर यह भी तो सोचना चाहिए कि दूसरा भी हमसे ऐसी ही अपेक्षा रखता है। इसलिए अपना कर्तव्य हो जाता है कि हम जो चाहते हैं प्रथम उसे व्यवहार में आने दें, उसकी प्रतिक्रिया तो स्वयमेव उत्पन्न होगी। पुचकारने से पशु और पक्षी तक आत्मीयता प्रकट करने लगते हैं। फिर इस मनुष्य को क्या कहा जाय ? वह तो प्रेम के लिये, आत्मीयता के लिये अपनी झोली फैलाये डोलता है। आप मनुष्यों से प्रेम करिये संसार आपका आभारी होगा। आप लोगों के साथ नेकी का व्यवहार कीजिये इसमें आपकी भलाई पहले है। परोपकार के नाम पर किया हुआ आपका प्रत्येक कण असंख्य गुना होकर लौटेगा और आपकी आत्मा को सुख-शान्ति तथा संतोष से अनुप्राणित कर देगा। —*संत तुकाराम*

- शारीरिक व्यभिचार की अपेक्षा मानसिक व्यभिचार सैकड़ों गुना अधिक घातक होता है। गुप्त मन में भड़कने वाली वासनाएँ दूसरे-दूसरे विकारों के रूप में फूट पड़ती हैं। मानसिक उत्तेजना के कारण लोगों में पागलपन छाया रहता है। स्नायुदुर्बलता आ जाती है और सारा स्वास्थ्य बरबाद हो जाता है। दमित वासनाएँ अप्रकट रोग की तरह भीतर ही भीतर विद्रूप उत्पन्न करती हैं, जिनका कोई इलाज भी नहीं हो पाता। यह विकृति कई बार भयंकर प्राणघातक रोगों के रूप में फूटती देखी गई है।

—*डॉ. सोलोमन उड*

- युवक का उत्साह कठिनाइयों को धूल में मिला देता है। वही उत्साह बुढ़ापे तक बना रहे तो आश्चर्यजनक काम करके दिखाता है। विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ अस्सी वर्ष के हो जाने पर भी वैसे ही उत्साहपूर्ण थे, जैसे कि वे जीवन के आरम्भ के दिनों में देखे गये थे। मृत्यु के कुछ घण्टे पूर्व तक वे बराबर कविताएँ लिखते रहे थे और उनमें वही स्फूर्ति और वही उत्साह दिखाई देता था जैसा कि उनकी युवाकाल की रचनाओं में था। यही कारण है कि उनकी अन्तिम रचना में जिसमें उन्होंने मृत्यु रूपी मल्लाह से कहा है—“सामने अगाध समुद्र है। कर्णधार ! नाव बढ़ाओ !”, उत्साह की एक उद्दाम लहर दिखाई देती है, जो मृत्यु की भीषणता का उपहास-सी करती जान पड़ती है।

महात्मा गाँधी के वे शब्द—“अभी तो मैं नवयुवक हूँ, मेरी अवस्था ही कितनी है—केवल ६५ वर्ष की।” उत्साह का सजीव चित्र उपस्थित करते हैं। हाथ में लिए कार्य को पूरा करने के लिए वे जिस उत्साह से अग्रसर होते थे, वह हमें सदैव नया पाठ पढ़ा सकता है। वे कभी पराजय स्वीकार नहीं करते थे। उत्साह उनका सहायक रहता था। जो उत्साही हैं, उनके मन में पराजय की भावना नहीं आ सकती। पराजय तो उत्साहीनता का लक्षण है और हतोत्साह का परिणाम है। —*रामनाथ*

- मनुष्य का व्यक्तित्व समुद्र से भी गम्भीर, निश्चल और प्रशान्त है। उसमें सूर्य जैसी प्रतिभा, प्रखरता और तेजस्विता है। उसके बुद्धि, बल और कौशल की कोई थाह नहीं।

चाहे तो मनुष्य संसार में उथल-पुथल मचा दे, चाहे तो संसार को सद्ज्ञान के प्रकाश से जगमगा दे। समृद्धि और विकास की सारी सम्भावनाएँ मनुष्य में विद्यमान हैं, पर वह उन्हें प्राप्त अपनी निष्ठा के द्वारा ही करता है। हमें मनुष्य जीवन इसलिए मिला है कि अपने व्यक्तित्व को बिकसित करें। —एमर्सन

- सफलता का फल तोड़ने के लिए ऊँचे वृक्ष पर चढ़ना होता है, जो ऊँचाई देखकर हिम्मत हार जाते हैं, उन्हें खाली हाथ वापस जाना पड़ता है, पर जो खतरों को ललकारते हुए पैर आगे बढ़ाते हैं, उन्हें बहुत कुछ मिलता है। सफल लोगों का इतिहास उनकी बढ़ी हुई हिम्मत के आधार पर ही बिकसित हुआ होता है।

—नेपोलियन

- मानव-जीवन जैसा दुर्लभ अवसर इस प्रकार असन्तुष्ट एवं असफल स्थिति में व्यतीत हो, इसे एक दुर्भाग्यपूर्ण विडम्बना ही कहना चाहिए। यह हमारी भावनात्मक चूक का परिणाम है। जीवनोद्देश्य निर्धारित करने में जो चौकड़ी चूक जाती है, उसी के फलस्वरूप इस प्रकार का असफल जीवन जीना पड़ता है। हमारी कामना और अभिलाषा भौतिक पदार्थों के संग्रह एवं उपयोग की उसी सीमा तक होनी चाहिए, जिस तक कि जीवन-यात्रा के लिए अनिवार्य रूप में आवश्यक है।

—महर्षि रमण

- कायरता भाग्यवाद की दूषित देन है। भाग्यवादी सताये जाने पर, लूटे जाने पर पीड़ित और शोषित किये जाने पर उसका विरोध न करके भय से भाग्य को दोष देकर सन्तोष कर लेता है। वह यह मान लिया करता है कि यह सब पीड़ा हमारे भाग्य में ही बदी थी, अन्यथा कोई हमें सताता ही क्यों ? कितनी उल्टी बुद्धि है, कैसी विपरीत बिचारधारा है कि दोष तो सताने और पीड़ा देने वाले का होता है और भाग्यवादी दोष अपने को दिया करता है। अपराध दूसरे का होता है, किन्तु अपराधी अपने को मान लेता है। —रोम्बो रोलाँ
- मैं धुँधले तौर पर यह अनुभव करता हूँ कि जब मेरे चारों ओर सब कुछ बदल रहा है, मर रहा है, तब भी इन सब परिवर्तनों के नीचे

एक जीवित शक्ति है, जो कभी नहीं बदलती, जो सबको एक में ग्रन्थित करके रखती है, जो नयी सृष्टि करती है, उसका संहार करता है और फिर नये सिरे से पैदा करती है। यही शक्ति ईश्वर है, परमात्मा है। मैं मानता हूँ कि ईश्वर जीवन है, प्रकाश है, वह प्रेम है, वह परममंगल है। —महात्मा गाँधी

- जीवन गतिमान है। वह निरन्तर चलता रहता है। नदियाँ बहती हैं, हवा चलती है और समुद्र तरंगित रहते हैं।

किन्तु कभी-कभी इनकी गति रुक भी जाती है। नदियाँ जम जाती हैं, हवा स्तब्ध और समुद्र खामोश हो जाते हैं।

किन्तु यह ठहराव किसलिये ? क्या इसलिये कि ठहरकर सुस्ताया जाये या बैठकर आराम किया जाये। नहीं यह ठहराव न तो सुस्ताने के लिये है और न आराम करने के लिए है। यह केवल इसलिए है कि थोड़ी देर आगे-पीछे अपनी प्रगति पर दृष्टि डाल ली जाये, उस पर विचार कर लिया जाये और फिर नये वेग से चल पड़ा जाए।

जो इस ठहराव पर विश्राम के लिये ठहरते हैं वे पिछड़ जाते हैं और अपने लक्ष्य को जीवन में निर्धारित समय में नहीं पा सकते।

—बाल्टेयर

- आलस्य में पड़े रहने को लोग वैभव का चिह्न मानते हैं, पर वह मनुष्य की सबसे बड़ी भूल है। अकर्मण्य होने का तात्पर्य है कि आप अपनी शक्तियों को कुण्ठित कर रहे हैं। थोड़ा आगे बढ़कर अपना विकास करना सीखिये, अपने आप में ही एक क्रांति, एक हलचल पैदा कीजिये, ऐसी चहल-पहल, जो अपनी शक्तियों को सोने न दे, चलती रहे तो मनुष्य का जीवन सार्थक हो सकता है और पुरुषार्थ के परिणाम इसी संसार में भोग सकता है। इसलिए मैं मनुष्यों को ललकारता रहता हूँ, उठो, जागो—सोओ मत, अपनी शक्तियों को जंग मत लगने दो, श्रम का क्रम न टूटने पावे। मृत्यु अकर्मण्यता का ही एक रूप है इसे मत भुलाइए।

—मुसोलिनी

- मनुष्य के शरीर में एक सीमित शक्ति होती है। यदि उसकी शारीरिक क्षमता से मनुष्य के

कार्यों को तौला जाय तो यह विश्वास करते एक झिझक होगी कि यह महान कार्य मनुष्य द्वारा पूरे किये गये हैं। किन्तु सत्य यही है कि संसार के बड़े से बड़े और दुरूह से दुरूह कार्य सम्पादित मनुष्य द्वारा ही किये गये हैं।

यदि उत्साह का अभाव हो जाये तो भीमकाय होने पर भी मनुष्य कुछ नहीं कर सकता। वह निकम्मा होकर मिट्टी के एक ढेर के समान रह जाये। उत्साह ही वास्तविक शक्ति है। जीवन-पथ पर बढ़ने के लिये उसकी अनिवार्य आवश्यकता है, उसकी रक्षा करनी चाहिए, उसे बढ़ना चाहिए।
—जेम्स ऐलन

- जिस देश के सिपाही सुख की अभिलाषा को त्यागकर मैदान में शत्रु से मोर्चा जमाने में ही अपना सौभाग्य मानते हैं, जो दुश्मन की सेना को ऐसे नष्ट करते हैं, जैसे बड़वानल समुद्र के जल को सुखाता है, युद्ध-स्थल में जिनका पाँव पीछे नहीं रहता, वही मातृभूमि के सच्चे सपूत यश के भागी होते हैं। उन वीरों की रण में सदैव विजय होती है।

मेरे सैनिक ! तू इस तथ्य को भलीभाँति समझकर आगे बढ़, आगे बढ़, आगे बढ़ ! विजयश्री तो तेरी प्रतीक्षा कर रही है।

—जयशंकर प्रसाद

- राष्ट्र, शान्ति और क्रान्ति, सुख और संघर्ष के समान अघसरो को पार करते हुए ही विकास की अग्रणी अवस्था को प्राप्त होते हैं। हर सम्पन्न देश के इतिहास में यह बात निश्चित रूप से देखने को मिलेगी। शान्तिकाल में बहुत देश साध देते और समर्थन करते हैं, पर संकट के समय कम ही साथ दे पाते हैं। जब तुम्हारी ऐसी स्थिति हो तो लक्ष्य के लिए तुम्हें विश्वासपूर्वक अकेले ही बढ़ना चाहिए। मार्ग में गुलाब के फूल आएँ चाहे कोंटे, तूफान उठे या झंझावात, तुम्हारा प्रत्येक कदम इस धैर्य के साथ उठना चाहिए कि परिणाम कुछ भी निकले, पर तुम्हें अकेले ही चलना है, अकेले ही उद्देश्य की प्राप्ति के लिये आगे बढ़ना है।

—स्टैण्टन

- असन्तोष और उन्नति की इच्छा, ये दो उन्नति के मूल-मन्त्र हैं। किसी मनुष्य अथवा किसी जाति की तब तक उन्नति नहीं हो सकती, जब

तक इसे सुधारने का प्रयत्न न करें। असन्तोष यह व्यक्त करता है कि प्राप्त परिस्थितियों में और अपनी आवश्यकताओं में अभी मेल नहीं है। प्रयत्न के द्वारा यह संयोग बनाने का प्रयत्न करते हैं। अतः असन्तोष की सार्थकता तब है, जब उसके अनुसार प्रयत्न भी हो। अकेला असन्तोष तो केवल दुःख ही दे सकता है। प्रगति का सच्चा स्वरूप तब देखने को मिलता है, जब आत्म-सन्तोष के लायक पुरुषार्थ भी हो।
—मदनमोहन मालवीय

- आदमी पैदा हो और मर जाएँ, सरकारें और बड़े-बड़े साम्राज्य भी स्थापित हो और फिर वे भी इस तरह नष्ट हो जाएँ कि लोग इन्हें बिल्कुल भूल जाएँ, पर पुरानी परम्पराएँ बराबर जारी रहती हैं। पीढ़ी के बाद पीढ़ी आती-जाती रहती है, पर परम्पराओं को सिर सभी को झुकाना पड़ता है।

परम्परा में बहुत कुछ अच्छाई होती है, लेकिन कभी-कभी वह भयंकर बोझ बन जाती है, जिससे सारी विकास-व्यवस्थाएँ रुक जाती हैं। परम्पराएँ उस जंजीर की तरह हैं—जो धुँधले और अतिप्राचीन अतीत से हमारा सम्बन्ध जोड़ती हैं, पर इस जंजीर में एक आदत यह होती है कि जब हमें आगे बढ़ना चाहते हैं, तो यह हमारे पैरों से लिपट जाती है और हमें अपने जाल में बाँधकर कैदी की तरह बना देती है। मैं यह मानता हूँ कि अतीत से सम्बन्ध बनाये रखने के लिए इनमें से किसी भी परम्पराओं को कायम रखना पड़ेगा, लेकिन अगर कोई परम्परा आगे बढ़ने से रोकती है तो उसे तोड़कर बाहर निकल आने की हिम्मत भी हममें होनी चाहिए। परम्पराओं का अन्धानुकरण न किया जाय, अन्यथा विकास का मार्ग ही रुक जाएगा।
—जकाराल गैल

- भविष्य की निरी कल्पनाओं में उलझे रहने से तुम केवल स्वप्न-संसार में ही विचरण करते रहोगे। वास्तविक आनन्द से बंचित ही रहोगे। परिश्रम करो, उद्योग करो और साधन जुटाओ ताकि कल का दिन अधिक सुन्दर हो, पर इसी भरोसे न रहो कि कल वैसा ही हो जाएगा। पता नहीं जो परिस्थितियाँ आज हैं कल भी बनी रहेंगी या नहीं। जो बात आँखों के सामने

नहीं है, उसकी सहमति किस तरह दी जा सकती है ? परिस्थितियाँ प्रतिक्षण बदलती रहती हैं। कुछ ठिकाना नहीं, कल कौन-सी बाधा उठ खड़ी हो ? भविष्य की बात तो ईश्वर ही जान सकता है।

पिछले दिनों बड़ी तकलीफें उठई हैं किसी ने साथ नहीं दिया। धन की कमी रही है। कितने ही जोर लगाये, पर जिन् वस्तुओं की कामना की थी, वह पूरी नहीं हुई। शरीर कुर्बल रहा है ? किन्तु विपदाएँ झेली हैं ? पर अब जो गुजर गया उसकी चिन्ता करने से लाभ भी क्या है ? जो बीत गया उसे भूतकाल के गड्ढे में फेंककर इसके बन जाओ और नये सिरे से सेवना आरम्भ करो—अभी तो जीवन बहुत जीना शेष है।

जो कुछ करना है, निजी शक्तियों पर विश्वास करके उन्हें वर्तमान में घूट करो। आज का समय तुम्हारे साथ है। इसको सहीतौर पर काम में ले लो। वर्तमान को अनुकूल बनाकर, ईश्वर पर विश्वास रखकर, जब तुम आगे बढ़ोगे तभी उन्नति कर सकोगे।

—लॉन केले

- अतिशयता अथवा अतिवाद दुःख का ही कारण बनते हैं, फिर चाहे वह किसी अच्छी बात पर ही आधारित क्यों न हो ? जिस प्रकार एकरसता की अतिरेकता से भोजन बिगड़ जाता है, उसका स्वाद नष्ट हो जाता है उसी प्रकार अतिवाद से जीवन का रस जाता रहता है। शक्कर मीठी होती है और माधुर्य सबको अच्छा लगता है। किन्तु यदि किसी खाद्य पदार्थ में शक्कर की मात्रा अनुपात से अधिक कर दी जाय तो क्या कोई से पसन्द करेगा।

लोन जीवन् में सुख का समावेश करना चाहते हैं। इसके लिये तप करते हैं, त्याग करते हैं। जीवन को दुःख रहित बनाने के लिये तप-त्याग की आवश्यकता है किन्तु उसी सीमा तक जहाँ तक वह तप-त्याग स्वयं एक शारीरिक अथवा मानसिक दण्ड न बन जाए।

मनुष्य को अपनी उपयुक्त क्षमता के अनुसार ही कोई साधना करनी चाहिए। उसे एक ऐसे मध्य-मार्ग से यात्रा करनी चाहिए, जिस पर न तो फूल ही फूल बिछे हों और न कोंटे ही कोंटे।

—महर्षि रघु

- उत्साह के बल पर सूर्य का प्रकाश संसार के अन्धकार को मिटा देता है। उत्साह ही आर्य संस्कृति का प्रमुख सम्बल और सबसे बड़ा शस्त्र है। उत्साह ही मनुष्य का बल और पुरुषार्थ है। सम्पूर्ण सामर्थ्यों का स्रोत है—उत्साह। जिसके हृदय में उत्साह है, उसके लिए इस धस्ती में कुछ भी असम्भव नहीं है। उत्साही पुरुष से काल भी भय खाता है। सफलता का मूल है—हतोत्साहित न होना। जिसमें उत्साह नहीं वह न तो धर्म का पालन कर सकता है, न सत्य का समर्थन। वह पंगु है—जिसमें उत्साह नहीं। वह हतोत्साह ही धैर्य का नाश कर देता है, ज्ञान को मार देता है।

—गान्धीकि

- दैवी विधान है कि घोर तकलीफ और कठिन तूफानों में भी एक सद्गुण ही अचल है। फूलों की सुगन्ध की तरह सद्गुणों का प्रकाश भी चारों ओर फैलता है और जो भी इसके प्रभाव में आता है, वही सुखी बनाता जाता है। संसार में मनुष्य को सम्मान मिलते ही कभी नहीं देखा, यदि किसी को सम्मान मिलता है तो वह केवल सद्गुणों को मिलता है। सम्भव है कुछ दिन सद्गुणों को दुःख मिले, तकलीफें भोगनी पड़ें, किन्तु इससे अधिक जीवनलक्ष्य में आँच नहीं आती। अस्तौगत्य उसे सुख भी मिलता है, सृष्टि भी। सद्गुण पृथ्वी पर मनुष्य को प्रसिद्धि प्रदान करता है और परलोक में उसे अमर कर देता है।

—किलो

- पुस्तकें मनुष्य की सबसे हितैषी मित्र और ज्ञान का साधन हैं। मनुष्य को ऊँचा उठाने में ये अपना सर्वोपरि महत्त्व रखती हैं। कदाचित् मुझसे कोई अपराध हो जाय और मुझे नरक भेज दिया जाय तो वहाँ भी एक पुस्तकालय खोलने की मेरी इच्छा होगी। नरक की आग में मेरा शरीर भले ही झुलस जाय, मेरा विश्वास है कि उसकी लपटें पुस्तकों के पृष्ठ नहीं छू सकेंगी। मेरा पुस्तकालय बना रहेगा तो मैं फिर से स्वर्ग जाने की तैयारी कर लूँगा। अशुद्ध विचारों को शुद्ध बनाने की शक्ति पुस्तकों में होती है। वे मनुष्य को सच्चा रास्ता बताती हैं। नरक से स्वर्ग में पहुँचाती हैं, इसीलिये मैंने नरक में भी पुस्तकें साथ रखने की इच्छा की है। पुस्तकों का उपयोग मैं अपने ही जीवन को ऊँचा उठाने के लिए नहीं

करूँगा, वरन् मेरी हार्दिक इच्छा होगी कि सारे नरक को ही स्वर्ग में परिवर्तित कर दूँ। इतनी क्षमता पुस्तकों में है, इसका मुझे पूरा विश्वास है।

—**लोकेश्वर तिलक**

- निराश एवं निरुत्साह न केवल एक मानवीय दुर्गुण है, अपितु वह एक सामाजिक अपराध और आत्मिकपाप भी है। यदि मनुष्य का यह पाप अपना प्रभाव केवल अपने आश्रयदाता तक ही सीमित रखे तो किसी हद तक क्षम्य है। किन्तु यह एक ऐसा सामाजिक अपराध है, जिसका प्रभाव समाज के अन्य व्यक्तियों पर भी पड़ता है।

- निराश एवं निरुत्साही व्यक्ति न तो कोई काम करने की रुचि रखता है और यदि करता भी है तो उसमें सफल नहीं होता, जिससे वह अन्य सफल एवं कर्मठ व्यक्तियों से ईर्ष्या करता है, जिसके बशीभूत होकर दूसरों के मार्ग में रोड़ा अटकाने का प्रयत्न किया करता है।

इसके विपरीत उत्साही व्यक्ति न किसी से ईर्ष्या करते हैं और न किसी के मार्ग में बाधा डालते हैं, वे अपना कार्य करते हैं और अपने उदाहरण से अन्य व्यक्तियों में प्रेरणा उत्पन्न करते हैं।

—**जोसेफ मेजिनी**

- संसार में हर लोक-हिताई की निंदा होती रही है, आज भी हो रही है और आगे भी होती रहेगी। बिना निन्दा के कोई महापुरुष नहीं हो सकता ! अपनी निन्दा सह सकना और बिना किसी विक्षोभ की प्रतिक्रिया के उसको सहन कर लेना, पचा लेना एक महान गुण है।

निन्दा से एक बड़ा लाभ यह भी है कि इससे सहज ही पता लग जाता है कि लोग क्या चाहते हैं ? अधिकतर निन्दा उसी बात को लेकर की जाती है जिसको लोग चाहते हैं। लोक-प्रियता का विस्तार निन्दा से ही प्रारम्भ होता है। निन्दा के बहाने ये लोक-सेवक को समझने का प्रयत्न किया करते हैं।

किसी भी उन्नति-कांक्षी को लोकनिन्दा से भयभीत होकर अपने ध्येय का त्याग नहीं करना चाहिए। जो निन्दा सह सकता है, वह संसार का बड़े से बड़ा कष्टसहन कर सकने में सक्षम होता है।

—**केशवचन्द्र सेन**

- मनुष्य का मिथ्याचरण ही उसके शोक-संतापों का प्रमुख कारण है। जब हम समाज में मिथ्या व्यवहार करते हैं, तब द्वेष, अविश्वास, कलह आदि के दावानल को जन्म देते हैं और जब हम स्वयं अपने को मिथ्या आहार-विहार के हावों में सीप देते हैं, तब विविध व्याधियों को अपने तन-मन का उपभोग करने के लिए सानुरोध निमंत्रण देते हैं।

मिथ्यात्व ही सारे पापों की जड़ है। जिसकी आवश्यकता नहीं वह करना अथवा जितनी आवश्यकता है, उससे अधिक करना ही मिथ्याचार है। मिथ्याचार उस मगर की तरह है, जो अवसर पाकर अपने आश्रयदाता को ही खा जाता है। मिथ्याचार से मैत्री करने वाले को किसी ऐसे शत्रु को आवश्यकता नहीं रहती, जो उसे हर प्रकार की हानि पहुँचा सके।

मिथ्याचार का परित्याग करने से ही मानव तथा मानव-समाज सुखी हो सकता है अन्यथा अपने इस कुकर्म के कारण युगों-युगों तक पाप-तापों में जलता रहेगा।

—**स्वामी रामतीर्थ**

- जिनको विनय के निबन्ध पढ़ाने पड़ें, उनका अभ्यास कराना पड़े, वह सच्चा और स्वाभाविक विनयी हो सकेगा, इसमें सन्देह है।

स्वाभाविक विनयशील को न कोई नियम रटाने पड़ते हैं और न उनका अभ्यास कराने की आवश्यकता होती है। सुसंस्कृत स्वभाव का व्यक्ति स्वभावतः अनुशासित होता है। विनय के अवसर पर उसका मन स्वयं उसे विनय व्यक्त करने के लिए प्रेरित कर देता है। मन में विनय का भाव रहने पर शरीर स्वतः उसके अनुसार परिचालित हो जाता है। स्वाभाविक विनयी सम्भव है कि वह किसी विनय-संहिता का नाप-तौल का उपयोग न कर पाये, किन्तु उसके प्रत्येक कार्य एवं व्यवहार से विनय परिलक्षित होती रहती है।

- जिस प्रकार भय उपस्थित होने पर कोई स्वयं सिहर उठता है, उससे बचता है और पीड़ा में झोंकने पर सजल नेत्र हो उठता है, उसे इन प्रक्रियाओं को न बतलाना पड़ता है और न वैसा करने के लिये कहना पड़ता है, उसी

प्रकार विनयी को इसकी शिक्षा की आवश्यकता नहीं होती।
—स्वेट मर्डन

- अपमान एक ऐसे विष-बुझे तीर की तरह है, जो प्राण तो नहीं लेता, लेकिन प्रतिक्षण प्राणान्तक पीड़ा दिया करता है। किसी का अपमान करना विषैले वाण से मारने के तुल्य है। जिसका अपमान किया जाता है, उसे तो केवल पीड़ा होती है, किन्तु अपमान करने वाले को दोहरा कष्ट होता है। एक तो अपनी भूल का पता चलने पर पश्चात्ताप का और दूसरा पीड़ित आदमी की आत्मा से निकले निशब्द शाप का, जो उसे जीवन के अन्त में सूद दर सूद के साथ मिलता है।

किसी का अपमान करना उसकी हिंसा करने से भी अधिक भयंकर पाप है, क्योंकि प्राण जाने का कष्ट तो क्षणमात्र ही होता है, किन्तु मान-भंग की पीड़ा दिनानुदिन होती रहती है।

किसी का अपमान करने वाला किसी बर्बर अत्याचारी से कम नहीं। जिस प्रकार अत्याचारी अपने से निर्बल और निरीह व्यक्तियों पर अत्याचार करता है, उसी प्रकार अपमान करने वाला भी अपने से कमजोर को ही मानभंग के वाणों से घायल करता है।
—घाणक्य

- व्यक्ति और समाज की प्रतिष्ठा नैतिक-शुद्धता और दृढ़चरित्र पर आधारित है। एक व्यक्ति अकेले सुखी रहकर समाज में शान्ति और सुव्यवस्था देखना चाहे तो इसे हास्यास्पद मानेंगे। अपना हित सबके हित में सन्निहित है। चरित्र और नैतिकता के ही आधार पर जनहित की न्यायपूर्ण परम्परा चलती रह सकती है। जिन लोगों में चरित्र की दृढ़ता होगी, जिनके नैतिक आदर्श ऊँचे होंगे वे अर्थ और व्यवस्था की दृष्टि से भी विकसित होंगे। विनाशकारी तत्त्व दुश्चरित्रता के आधार पर बढ़ते हैं। समाज में प्रचलित विधि-विधानों में जो भूलें आ जाती हैं, उन्हें सिर्फ अपने चरित्र की दृढ़ता से ही सहन किया जाना सम्भव है। जिस समाज में चरित्र-परायण व्यक्तियों की बहुतायत रहेगी, उसके फलने-फूलने और विकसित होने में किसी को शंका नहीं होनी चाहिए। व्यक्तिगत चरित्र का सामाजिक प्रतिष्ठा से सम्बन्ध है। योरोप के लोगों ने इस बात

को समझा था तभी यहाँ की धार्मिक चेतना वहाँ जाकर फलवती हुई है। महापुरुषों ने जो उपदेश दिये हैं मेरी दृष्टि में उन सबका सार यह है कि यहाँ मानवता का विकास हो। सामूहिक रूप से जिसे मानवता पुकारते हैं, उसे व्यक्तिगत जीवन में चरित्र की निर्मलता ही कहना चाहिए। हमारा भविष्य इस बात पर निर्भर है कि हम कितने चरित्रवान बनते हैं ?

—सोकमण्य तिसक

- गीताकार का प्रवचन है “यतो धर्मः ततो जयः” या ‘विजय धर्म की ही होती है।’ यह इसका व्यापक अर्थ है। धर्म का मतलब पूजा-अर्चना के कर्मकाण्ड तक ही सीमित नहीं है, यह तो उसका एक छोटा स्वरूप है। विशाल धर्म वह है, जिसमें सम्पूर्ण प्राणियों की भलाई का भाव पाया जाता है। इसी तरह किसी के अकल्याण का काम अधर्म कहलाता है। जो अधर्म करते हैं, उन्हें इसका बुरा फल भले ही तत्काल न भोगना पड़े पर यह धीरे-धीरे उस व्यक्ति के विकास की जड़ को ही काट डालता है। झूठ बोलना, मिलावट, बनावट, ठगी, शोषण तथा फैशन-परस्ती से सबको दुःख मिलता है। तत्काल लाभ की दृष्टि से जो इन्हें अपने जीवन का अंग बनाते हैं, उन्हें बाद में घोर दुष्परिणाम भुगतने पड़ते हैं। अधर्म की आग में झुलसा हुआ आदमी स्वयं बरबाद होता है। दूसरों को भी साथ ले डूबता है।

—स्वामी विवेकानन्द

- पुस्तकें हमारी देवता हैं। उनसे हमें जीवन के वरदान मिलते हैं। हारे हुए मन और थके हुए शरीरों को पुस्तकों से चित्ताकर्षक और मनोरञ्जक सामग्री मिलती है, इसमें सन्देह नहीं किन्तु अश्लील साहित्य और बुरी पुस्तकों का विषतुल्य प्रभाव होता है। विषैला भोजन कर लेने के उपरान्त मृत्यु होते देर नहीं लगती, पर बुरी पुस्तकों की कुसंगति से जो शारीरिक, नैतिक तथा चारित्रिक पतन होता है, उससे लोग धुल-धुल कर, तड़प-तड़प कर मरते देखे हैं। निकम्मे अश्लील साहित्य का दूषित प्रभाव मस्तिष्क में बौखलाहट और आचरण में उच्छृंखलता पैदा करता है। स्नायुओं में उत्तेजना आती है। स्वास्थ्य गिर जाता है और सारा जीवन बर्बाद हो जाता है।
—टालस्टाय

- बहुत-से लोग बहुत कुछ प्राप्त कर लेते हैं और बड़ी-बड़ी सफलताओं के स्वामी बनते हैं, किन्तु वे सब एक समान महान नहीं करे जा सकते। दो सफल व्यक्तियों में कभी महान है, सफलता प्राप्त करने में जिसको असफलताओं के अधिक घाव लगे हों। सफल भूमि फलकर समान रूप से निर्विरोध बहकर सागर को प्राप्त करने वाली नदी उसकी तुलना में हेय ही करी जायगी, जो ऊँची-नीची प्रस्तर भूमि और बौहड़ वनों के झाड़-झंखाड़ों में उलझती-सुलझती बहती जाती है और अपने सब को प्राप्त कर लेती है।

महानता इसमें नहीं कि जिसने क्या पाया, महानता इसमें है कि किस प्रकार क्या ? मनुष्य को जिस सत्य में असफलताओं तथा विरोधों का सामना न करना पड़े, उसकी महानता में सन्देह कर लेने में कोई दोष नहीं।

- सरलतापूर्वक अजायब पाये हुए लक्ष्य का संतोख निर्जीव और उसकी आयु अधिर होती है।

—सतीशचन्द्र टैकर

- हम अपने सम्यक्सम्यक दृष्टिकोण को भूलकर जीवन की एकानि प्रवृत्ति को पकड़कर बैठ गये हैं। एक सिद्धान्त को ही सब कुछ मान लेने की हमने भूल करी। उसी के परिणामस्वरूप हमारा दृष्टिकोण ज्ञाना संकीर्ण बन गया।

किसी ने सामाजिक जीवन की अवहेलना की और व्यक्तिगत मोक्षसाधना को ही अपना धर्म समझ लिया। किसी ने समझा अपने परिवार को समुन्नत बनाना, उसी की सुख-सुविधाओं के लिए प्रयत्न किया जाना चाहिए। स्थायित्वान्त को ही उन्होंने अपना कर्तव्य माना। दूसरों ने क्रांति का अर्थ हिंसा और उत्तेजित होकर जब जी चाहे रतपात करना समझा।

कुछ लोग यह समझते हैं कि अत्याचार से पीड़ितों के साथ अहिंसा का प्रयोग ही शान्ति स्थापना है। असहिष्णु साम्प्रदायिक राज्य-संस्थापन की बात कहने वालों की दृष्टि में साम्प्रदायिक कट्टरता ही सब कुछ है। किसी ने विदेशों की स्वेच्छाचारिता को सम्यक्ता के नाम पर भारतवर्ष में धोपने की कोशिश की। सबकी स्थिति अलग-अलग है।

एक-दूसरे के सिद्धान्त विभक्त हैं, सभी दिक्प्रान्त हो रहे हैं। परस्पर लड़ रहे हैं। इस स्थिति से

सुखदारे का एक ही उपाय है—सम्यक्सम्यक दृष्टिकोण। असहिष्णुता में प्रत्येक सिद्धान्त की अच्छाई को ग्रहण कर सबको एक नई राह पर लाने की आवश्यकता है, जिसमें सभी प्रेम-पूर्वक मिल-जुल कर चल सकें। जीवन के अनेक पक्ष हैं और इन सभी का समुचित विचार करने से व्यक्ति का समग्र विकास सम्भव हो सकता है।

—सतीशचन्द्र टैकर

- सबसे बड़ा गौरव इस बात में है कि मनुष्य को ईमानदार और सख्त समझ जाय। धन से सम्मान खरीदा जा सकता है। विद्या से दूसरों को सम्पन्न किया जा सकता है। कस्तुता से सफलता सरल हो सकती है, स्वास्थ्य से शारीरिक आकर्षण बढ़ सकता है और गुठकन्दी से कमजोरों को नीचा दिखाया जा सकता है, पर श्रद्धा उसी को प्राप्त हो सकती है जो अपने विचारों के प्रति ईमानदार और कर्तव्य के प्रति सख्त है। जिसे अपने समीपवर्ती लोगों की श्रद्धा उपलब्ध है, कस्तुता: वही बड़ा आदमी है और उसी को गौरवशाली कहना चाहिए।

दूरवर्ती लोगों को लच्छेदार बहव्रदे में झलकर अपनी श्रेष्ठता मनने के लिए तैयार किया जा सकता है, पर उसमें स्थिरता कहीं होती है ? निकट से किसी के चरित्र को परखे बिना किसी की महिमा को माना तो जा सकता है पर उस पर श्रद्धा नहीं की जा सकती, क्योंकि हर विवेकवान निकट से परखने पर ही तनुष्ट हो सकता है और वही स्थल ऐसा है जिसमें धोखा दिया जा सकता सम्भव नहीं।

सच्चाई में अपनी निज की विशेषता यह है कि वह प्रकट हुए बिना रहती नहीं। उसे ढेर तक छिपाया जा सकता किसी के बड़ की बात नहीं। जो कस्तुता: ईमानदार है, बड़ी अपने समीपवर्ती लोगों की श्रद्धा उपलब्ध कर सकेगा और उसी का अन्ततः दूरवर्ती लोग भी सम्मान करेंगे।

गौरव प्राप्त करने का मार्ग हर गरीब-गरीब के लिए समान रूप से खुला पड़ा है। ईमानदारी, सच्चाई और सज्जमता को जिसने अपनी जीवन-नीति बना रखा है। कस्तुता: वही बड़ा आदमी है और उसी का बड़प्पन अनुपम रहेगा।

—सतीशचन्द्र टैकर

□ धर्म के बारे में हमारे शास्त्रों में बड़ी चर्चा की गई है और यह बताया गया है कि मनुष्य धर्म-पालन से ही अपने कर्तव्यों का ठीक-ठीक ज्ञान पाता है। सच्चा धर्म मनुष्य का सबके प्रति प्रेम, आदर और न्याय-नीतिपूर्वक रहने की आज्ञा देता है। वह आपस में लड़ने और मन-मुटाव रखने को रोकता है। धर्म-वैर-भाव नहीं, आदर-भाव से रखना सिखाता है। जहाँ धर्म नहीं रहता, वहाँ विद्या, लक्ष्मी और स्वास्थ्य आदि का भी अभाव होता है। धर्मरहित जीवन बिल्कुल शुष्क और शून्य होता है।

□ जो धर्म शुद्ध अर्थ का विरोधी है, उसे धर्म नहीं कहते। धर्म राजनीति का भी विरोध नहीं करता। सच तो यह है कि अर्थ और राज्य भी धर्मविहीन होने से कष्टदायक हो जाते हैं। शुद्ध धर्म प्रत्येक स्थिति में न्याय और नीति का आचरण करना सिखाता है। धर्म में प्राणि-मात्र सुरक्षित होते हैं। भारतीय संस्कृति का तो धर्म ही प्राण है। धर्म जिन्दगी की प्रत्येक सौंस के साथ व्यवहार में लाने की वस्तु है।

—महात्मा गाँधी

□ संसार में अनेक राष्ट्र और देश हैं। किन्तु जब समान रूप से उन्नत एवं विकसित नहीं हैं। इसका कारण उनका विस्तार, जनसंख्या अथवा भौतिक साधनों की विषमता नहीं है, क्योंकि यदि विस्तार, जनसंख्या अथवा भौगोलिक साधन ही कारण होते तो उसी अनुपात से बड़े देशों को उन्नत और छोटे देशों को छोटा होना चाहिए। किन्तु ऐसा नहीं है, अनेक विशाल देश छोटे देशों के पैरों तले पड़े दीखते हैं।

बात वास्तव में यह जिन जन-गणों में वीर भावनाओं की अधिकता होती है, उन्हीं के राष्ट्र संसार का शिरमौर बनने का सम्मान पाते हैं फिर वे चाहे बड़े हों अथवा छोटे।

वीर भावना से ओत-प्रोत जन-गण बड़े से बड़ा बलिदान देकर, बड़े से बड़े संकट उठाकर, भयानक से भयानक युद्ध में पड़कर अपने राष्ट्र का गौरव बढ़ाते हैं, उसे उन्नति के शिखर पर प्रतिष्ठित करते हैं।

—बर्धन

□ मनुष्य का स्वाभिमान इस बात पर निर्भर है कि वह ईमानदार कहलावे। इससे बड़ा सम्मान और किसी व्यक्ति का क्या होगा कि उसकी

ईमानदारी पर लोग विश्वास रखें। जो अपनी अन्तरात्मा के सामने खरा है, जिसे किसी के सामने बेईमानी, छल या अविश्वास के आरोप में गरदन नहीं झुकानी पड़ती, वह इस संसार का सबसे बड़ा आदमी कहलाने का अधिकारी हो सकता है। बड़ा वह नहीं जिसके पास दौलत है, वरन् वह है जिसके भीतर बड़प्पन भरा पड़ा है। सच्चे बड़े आदमी वे हैं, जो ईमानदारी से बड़ी और कोई चीज इस संसार में नहीं देखते हैं और न उसे किसी भी क्रिमत में बेचते हैं।

इस दुनिया को ईश्वर ने अनेकों सुन्दर कृतियों से सजाया है, पर उसकी सबसे सुन्दर कृति 'ईमानदार आदमी' ही हो सकता है। ऐसी विभूति यहाँ जहाँ रहती है, वहाँ न सुन्दरता की कमी रहती है और न समृद्धि की। स्थायी सफलता ईमानदारी पर निर्भर है। बेईमानी जमीन में गाड़ी हुई टहनियों की तरह कुछ देर हरियाली दे सकती है, पर जड़ों के अभाव में उसका जल्दी ही मुरझा जाना निश्चित है। ईमानदारी का प्रतिफल देर से भले ही मिले, पर बरगद के विशाल वृक्ष की तरह अपनी स्थिरता चिरकाल तक अक्षुण्ण बनाये रहती है। जिस देश के लोग अपनी ईमानदारी खो देते हैं, जिस समाज के बुद्धिजीवी ईमानदारी छोड़कर लालची बनते और अपनी बुद्धिमत्ता का दुरुपयोग करते हैं, वहाँ पतन, दारिद्र्य और विनाश के अतिरिक्त और रह ही क्या सकता है? ईमानदारी मनुष्य समाज का मेरु-दण्ड है। जब रीढ़ ही टूट गई तो फिर जीने और मरने में अन्तर ही क्या रह जाता है? —स्वेट मार्टिन

□ हम संगठनरूपक सहयोग से काम करें। बहुत मजदूर काम में लग जाते हैं तो सड़क निकालने जितना पहाड़ आसानी से काट लेते हैं। अकेला आदमी बहुत वर्षों में भी उतना काम न कर पाता जितना सैकड़ों आदमी मिलकर थोड़े ही दिन में पूरा कर लेते हैं। मिलकर काम करने से उत्साह आता है और थकावट भाग जाती है। जितना काम हुआ उतना एक ओर दिखाई देने लग जाता है। अन्त तक काम में पूरी दिलचस्पी बनी रहती है। जिनकी शक्तियाँ अल्प होती हैं, उनका भी सदुपयोग हो जाता है। एक बोझ ढो सकता

है, पर दूसरे में उतनी शक्ति नहीं होती, वह टोकरी में पत्थर आसानी से भर सकता है। इस तरह सभी का भलीभाँति निर्वाह हो जाता है। इसलिए हिल-मिलकर काम करने से शक्ति का संचय होता है, जो किसी भी उन्नति के लिए अपेक्षित है।

दूसरी बात यह होती है कि वैयक्तिक उन्नति में जो ईर्ष्या और द्वेष का भाव होता है, उसकी सम्मिलित प्रयत्नों में भावना नहीं रहती। सामाजिक सम्बन्ध प्रेमपूर्ण बने रहते हैं। हमें उन्नति के लिए टकराना नहीं चाहिए। इस तरह अपनी ताकत खराब हो जाती है और बहुत दिन के लिए मन-बिगलाव हो जाता है। इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि हम मिल-जुलकर काम करें और मेल-मिलाप बढ़ा दें।

—बक्सटन

- दुनिया में जितने भी तरक्कीशुदा मुल्क हैं, उनकी तरक्की यों ही अपने आप नहीं हो गई है। न तो उन्हें किसी आसमानी देवता ने वरदान दिया है और न कोई ऐसा कुदरती चमत्कार हो गया, जिससे वे उन्नति की उच्च दशा में जा पहुँचे।

यह सब तरक्की वहाँ के रहने वाले हजारों-लाखों लोगों की मेहनत का नतीजा है। उन मुल्कों के निवासियों ने अपना पसीना बहाकर यह दर्जा हासिल किया है।

मैं चाहता हूँ कि हमारा भारत भी तरक्की करे और दूसरों की तरह एक ऊँचा-दर्जा हासिल करे। इसलिए मैं काम की अपील करता रहता हूँ। हमारे मुल्क के हर छोटे-बड़े आदमी को अपने तन-मन से काम में जुट जाना चाहिए। मैं ऐसे लोगों को ज्यादा पसन्द करता हूँ, जो सच्चे दिल से काम करने को जीवन का लक्ष्य मानते हैं और उसी में लगे रहकर अपना वक्त खराब नहीं करते। —मौलाना अबुलक़ादिर आजाद

- केवल बैठे-बैठे विचार करने से कोई भी प्रयोजन सिद्ध न होगा। उठो और आत्मोद्धार के काम में लग जाओ ! इसके लिये किसी शून्य गुफा अथवा गहन वन में जाने की आवश्यकता नहीं है। अपने जीवनक्रम में ही इस उपाय को खोज निकालो। अपने व्यक्तिगत को समष्टि में मिलो दो, तुम्हारा हर काम

स्वभावतः आत्मोद्धार का एक उपाय बन जाएगा।

उठो अब और अधिक समय नष्ट करना ठीक नहीं। जो समय अब तक व्यर्थ चला गया है, वह ही क्या कम मूल्यवान था ? किन्तु जो कुछ बचा है, वह नये हुए और आगामी आने वाले समयों से संहस्र गुना मूल्यवान है।

उठो और परमार्थ के महान कार्यों में लग जाओ। आज ही एक छोटे-से उपकार, एक छोटी-सी सेवा से आत्मोद्धार के महान अभियान का श्रीगणेश कर दो। —स्वामी विवेकानन्द

- एक महापुरुष का कथन है कि—“कठिनाई एक विशालकाय, भयंकर आकृति के, किन्तु कागज के बने हुए हाथी के समान है। जिसे दूर से देखने पर बड़ा डर लगता है, पर एक बार जो साहस करके पास पहुँच जाता है, उसे प्रतीत होता है कि वह केवल एक कागज का खिलौना मात्र है।” बहुत-से लोग चूहों की खटपट सुनकर डर जाते हैं। पर ऐसे भी लाखों योद्धा हैं, जो दिन-रात आग उगलने वाली तोपों की छाया में सोते हैं। एक व्यक्ति को एक घटना कष्टदायक के समान असह्य अनुभव होती है परन्तु दूसरे आदमी पर जब वही घटना घटित होती है तो लापरवाही से कहता है—“उँह, क्या चिन्ता है, इससे भी निपट लेंगे।” ऐसे लोगों के लिए वह दुर्घटना सुस्वाद परिवर्तन की एक सामान्य बात होती है। विपत्ति अपना काम करती है और वे अपना काम करते रहते हैं।

- बादलों की छाया की भाँति बुरी घड़ी आती है और समयानुसार टल जाती है। बहादुर आदमी हर नई परिस्थिति के लिए तैयार रहता है। पिछले दिनों यदि मौज-बहार के साधनों का वह उपभोग करता था पर अब मुश्किलों से भरे हुए अभावग्रस्त दिन बिताने पड़ेंगे तो वह इसके लिए भी तैयार रहता है। इस प्रकार का साहस रखने वाले वीर पुरुष ही इस संसार में सुखी जीवन का उपयोग करने के अधिकारी हैं। जो लोग भविष्य के अन्धकार की दुःखद कल्पनाएँ कर-करके अभी से सिर फोड़ रहे हैं, वे एक प्रकार के नास्तिक हैं। ऐसे लोगों के लिए संसार सदा से दुःखमय नरक रूप रहा है

और आगे भी सदा दुःख रूप ही रहेगा। हमें चाहिए कि हर स्थिति में प्रसन्न रहें और भावी विपत्ति की आशंका से घबराने की बजाय उससे मुकाबला करने की तैयारी करें।

—स्वामी रामतीर्थ

- इस संसार रूपी समुद्र में असंख्य प्रकार के अत्यन्त मूल्यवान् महत्त्वपूर्ण रत्न इंच-इंच भूमि में प्रचुर परिमाण में भरे पड़े हैं। यह रत्नराशि परमात्मा ने इसलिए बिछा रखी है कि उसका राजकुमार-मनुष्य-उसके द्वारा अपनी श्रीवृद्धि करे। परन्तु शर्त यह है कि जो उन्हें प्राप्त करने की योग्यता सिद्ध करे उसे ही वे दिये जावें। जैसे छोटे बालक को या बुद्धिहीनों को बन्दूक नहीं सौंपी जा सकती, वैसे ही अयोग्य व्यक्ति को यह रत्नराशि उपलब्ध नहीं होती। नाबालिगों को राज्यदरबार में अप्रामाणिक माना जाता है, उन्हें वे अधिकार नहीं मिलते, जो एक साधारण नागरिक को मिलने चाहिए। किन्तु जैसे ही वह नाबालिग अपनी वयस्कता का प्रमाण प्रस्तुत कर देता है वैसे ही उसे राज्य-दरबार में प्रामाणिकता प्राप्त हो जाती है। मनुष्य की नाबालिगी उसकी लापरवाही और आलस्य है। जब तक सावधानी, जागरूकता और परिश्रमशीलता जाग्रत नहीं होती, तब तक वह नाबालिगी दूर नहीं होती और न तब तक संसार की बहुमूल्य सम्पदाएँ प्राप्त हो सकती हैं, किन्तु जब अपनी उद्योगशीलता, परिश्रमप्रियता, जागरूकता प्रमाणित कर दी जाती है तो परमात्मा द्वारा इस दृष्टि में पग-पग पर बिछाये हुए रत्नों की राशि हमें आसानी से प्राप्त होने लगती है।

—केशूच

- 'मैं पवित्र, अविनाशी और निर्लिप्त आत्मा हूँ।' इस महान् सत्य को स्वीकार करते ही मनुष्य अमरत्व के समीप पहुँच जाता है, जो अपनी आत्मा का सम्मान करता है, अपनी सत्ता को श्रेष्ठ, पवित्र महान् एवं विश्वसनीय अनुभव करता है, वह सचमुच वैसा ही बन जाता है। योगशास्त्र पुकार-पुकार कर कहता है कि "जो समझता है कि मैं शिव हूँ वह शिव है, जो समझता है कि मैं जीव हूँ वह जीव है।" यदि आप अपने को महान् बनाना चाहते हैं तो अपनी महानता को देखिए, अनुभव कीजिए

और उसे द्रुतगति से चरितार्थ करना आरम्भ कर दीजिए।

जो व्यक्ति बार-बार अपने सम्बन्ध में बुरे विचार करेगा, हीनता और तुच्छता के भाव रखेगा, वह निस्सन्देह कुछ समय में वैसा ही बन जावेगा। मैं नीच हूँ, पापी हूँ, तुच्छ हूँ, दास हूँ, असमर्थ हूँ, अयोग्य हूँ, आलसी हूँ, भाग्यहीन हूँ, दीन हूँ, दुःखी हूँ। इस प्रकार के मनोभाव रखने का स्पष्ट फल यह होता है कि हमारी अन्तःचेतना उसी ढाँचे में ढल जाती है।

आप अपने को तुच्छ मत मानिए। ईश्वर का अविनाशी राजकुमार—मनुष्य—किसी भी प्रकार तुच्छ नहीं हो सकता। अपने पिता की सम्पूर्ण शक्तियाँ उसके अन्दर सन्निहित हैं। आवश्यकता केवल इस बात की है कि वह अपनी महानताओं का अनुभव करे और अपने जीवन को सब ओर महान बनाने का प्रयत्न करे। इस साधना पथ पर कदम बढ़ाने वाला अपनी वास्तविक महत्ता को शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है।

—स्वामी रामतीर्थ

- मृत्यु और निर्माण के बीच में हम ठहरे हुए हैं। वर्तमान बड़ी तेजी से भूत की ओर दौड़ता है। भूत और मृत्यु एक ही बात है। कहते हैं कि मरने के बाद मनुष्य भूत बनता है। मनुष्य ही नहीं हर चीज मरती है और वह भूत बन जाती है। जब किसी वस्तु की सत्ता पूर्णतः समाप्त हो जाती है तो उसकी पूर्ण मृत्यु कही जाती है। पर आंशिक मृत्यु जन्म के साथ ही आरम्भ हो जाती है। बालक जन्म के बाद बढ़ता है, विकास करता है, उसकी यह यात्रा मृत्यु की ओर भी है।

संसार की हर वस्तु का—मनुष्य शरीर का भी निर्माण उन्हीं तत्त्वों से हुआ है जो हर क्षण बदलते हैं। उनका चक्र भूत को पीछे छोड़ता हुआ और भविष्य को पकड़ता हुआ प्रतिक्षण बड़ी तेजी के साथ आगे बढ़ रहा है। विश्व एक पल के लिए भी स्थिर नहीं रहता। अणु-परमाणुओं से लेकर विशालकाय ग्रह-पिण्ड तक अपनी यात्रा अविश्रान्त गति से कर रहे हैं।

हमारा जीवन भी हर घड़ी थोड़ा-थोड़ा करके मर रहा है, इस दीपक का तेल जल-जल-जल:

चुकता चला जा रहा है। भविष्य की ओर हम चल रहे हैं और वर्तमान को भूत की गोदी में पटकते जाते हैं, यह सब देखते हुए भी हम नहीं सोचते कि क्या वर्तमान का कोई सदुपयोग हो सकता है ? जो बीत गया सो गया जो आने वाला है, वह भविष्य के गर्भ में है। वर्तमान हमारे हाथ में है। यदि हम चाहें तो उसका सदुपयोग करके इस नश्वर जीवन में से कुछ अनश्वर लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

—पद्मयोगी अरविन्द

- जीवन में जितनी सांसारिक कठिनाइयाँ हम देखते हैं, उनका बीज हमारे अन्दर रहता है। हमारे गुण, कर्म और स्वभाव जिस योग्य होते हैं, उसी के अनुकूल परिस्थितियाँ मिलकर रहती हैं। किसी विशेष कारण से कुछ समय के लिए खास स्थिति प्राप्त हो जाय तो वह अधिक समय ठहरती नहीं, स्थायी रूप से मनुष्य को वहीं मिलता है, जिसके वह योग्य है, जिसका वह अधिकारी है।

यदि आप आज किसी कठिनाइयों में हैं तो इसका कारण ईश्वर नहीं है, वरन् आपके ही कुछ दोष हैं, जिन्हें आप भले ही जानते हों या न जानते हों। पाप एवं दुष्कर्म ही एकमात्र दुःख का कारण नहीं होते। अयोग्यता, मूर्खता, निर्बलता, निराशा, फूट एवं आत्मस्य भी ऐसे दोष हैं, जिनका परिणाम पाप के ही समान और कई बार उससे भी अधिक दुःखदायी होता है। व्यक्तिगत दुर्गुणों से व्यक्ति दुःख पते हैं और जातीय दुर्गुणों से जातियाँ विपत्ति के दलदल में फँस जाती हैं।

आप कठिनाइयों से बचना या छुटकारा प्राप्त करना चाहते हैं तो अपने भीतरी दोषों को ढूँढ़ लीजिए और उन्हें निकाल बाहर करने में जुट जाइए। दुर्गुणों को हटकर उनके स्थान पर आप सद्गुणों को अपने अन्दर जितना स्थान देते जाएँगे, उसी अनुपात के अनुसार आपका जीवन विपत्ति से छुटकर सम्पत्ति की ओर अग्रसर होता जाएगा।

—जेम्स ऐलन

- भयभीत होना एक अप्राकृतिक बात है। प्रकृति नहीं चाहती कि मनुष्य डरकर अपनी आत्मा पर बोझ डालें। तुम्हारे सब, भय, दुःख, तुम्हारी नित्यप्रति की चिन्ताएँ तुम्हारे स्वयं उत्पन्न कर ली

हैं। यदि तुम चाहो तो अन्तःकरण को भूत, प्रेत, पिशाचों की श्मशान भूमि बना सकते हो। इसके विपरीत यदि तुम चाहो तो अपने अन्तःकरण को निर्भयता, श्रद्धा, उत्साह के सद्गुणों से परिपूर्ण कर सकते हो। अनुकूलता या प्रतिकूलता उत्पन्न करने वाले तुम स्वयं ही हो। तुम्हें दूसरा कोई हानि नहीं पहुँचा सकता, बाल भी बौका नहीं कर सकता। तुम चाहो तो निर्भय, परम निश्चिन्त बन सकते हो। तुम्हारी शुभ-अशुभ वृत्तियाँ, यज्ञ-अपयज्ञ के विचार विवेक-बुद्धि ही तुम्हारा भाग्य निर्माण करती हैं। भय की एक शंका मन में प्रवेश करते ही, वातावरण को सन्देहपूर्ण बना देती है। हमें चारों ओर वही चीज नजर आने लगती है, जिससे हम डरते हैं। यदि हम भय की भावनाएँ हमेशा के लिए मनोमन्दिर से निकाल डालें, तो उचित रूप से तृप्त और सुखी रह सकते हैं। आनन्दित रहने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि अन्तःकरण भय की कल्पनाओं से सर्वथा मुक्त रहे। आइये, हम आज से ही प्रतिज्ञा करें कि हम अभय हैं। भय के पिशाच को अपने निकट न आने देंगे। श्रद्धा और विश्वास के दीपक से अन्तःकरण में आलोकित रहेंगे और निर्भयतापूर्वक परमात्मा की इस पुनीत सृष्टि में विचरण करेंगे। —नेपोलियन

- जीवन कितनी अमूल्य वस्तु है, इसका महत्त्व वह तब समझता है, जब मृत्यु की गोद में पहुँचता है। अपने बचपन से मृत्यु तक के लम्बे समय को हल्के दृष्टिकोण के साथ गँवा दिया, जब अपनी इस भूल का उसे पता चलता है तो पश्चात्ताप की वेदना उसे हजार बिच्छुओं के काटने की बराबर दुःख देती है। मृत्यु के समय मनुष्य के दुःखी होने का यही कारण है।

आप उस विषम वेदना से बचना चाहते हो तो आज पूरा-पूरा अवसर आपके हाथ में है। जीवन की घड़ी के ऊपर कड़ी नजर रखिए और देखते चलिए कि हर एक क्षण का सदुपयोग हो रहा है या नहीं ? यदि न हो रहा हो तो सारी बुद्धिमत्ता को खर्च करके ऐसी योजना बनाइए जिनके द्वारा आपके समय का उचित रीति से सदुपयोग होता चले।

—स्टेफ पार्सन



वेदों की दिव्य सूक्तियाँ

परमात्मा और उसकी उपासना

- सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स धूमि ऽंशु सर्वत स्तृवास्तपस्विच्छास्त्राद्गुप्तम् ॥

—यजु. ५१/१९

जो परमात्मा असंख्य सिर, आँख और पैर वाला है, जो पाँच स्थूल और पाँच सूक्ष्मभूतों से युक्त सम्पूर्ण-विश्व में व्याप्त है। उस नित्य शुद्ध, बुद्ध और मुक्त स्वभाव परमात्मा की ही हम उपासना करें। इसी से हमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होगी।

- यस्येमे हिमवन्तो मन्दिरा यस्य समुद्रं सप्तमं समुद्रः ।
यस्येमाः प्रविशन्ते यस्य वायु कस्मि देवस्य हस्तिना विभेन ॥

—ऋ. १०/१२१/१४

बर्फ से आच्छादित पहाड़, नदियाँ और समुद्र जिसकी महिमा का गान करते हैं। दिशायें जिसकी भुजाएँ हैं हम उस विराट विश्वपुरुष का ध्यान करते रहे हैं।

- इन्द्रं भिन्नं बरुणमग्निमाहुरयो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।

एकं सद् विद्वा बहुधा ब्रह्मवर्णिं यमं भस्तरिस्त्वानमस्तुः ॥

—अथर्व. ६/१५/१८

परमात्मा की विभिन्न शक्तियाँ ही अनेक देवताओं के नाम से पुकारी जाती हैं। पर वह है एक ही, इसलिए गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार उस परमात्मा की उपासना करें।

- बस्योभूषाय बभ्रुमान् यत्नी वसु वंश्मिनीय वसुमान्
भूयासं वसु मयि धेहि ॥

—अथर्व. १७/६/१४/११

मनुष्यों। ईश्वर पर आस्था रखो और परोपकार करते हुए श्रेष्ठ पद प्राप्त करो।

- स्वामने पुष्करावप्यर्षा निरमन्सत ।

मूर्ध्नी विश्वस्य वाक्मः ॥ —साम. ६/११

परमात्मा ज्ञानियों के हृदय में प्रकाश रूप और मस्तिष्क में विचार रूप में प्रकट होता है।

- अया नो देव सविताः प्रजावत्सावीः सौमगम् ।

परा शुश्रूष्यं सुव ॥

—ऋ. ५/६२/१४/११

जो ईश्वर की आराधना के साथ-साथ पुरुषार्थ करते हैं उनके दुःख और दारिद्र्य दूर होते हैं और ऐश्वर्य बढ़ता है।

- तवस्तुरीयमय वीर्यसिन्धु देव सवर्षिं सत्पुं सत्यम् ।
यत्नी वीरः कर्मण्यः सुवतो युताग्रमय वायवी देवदायः ॥

—ऋ. ७/१२/१६

ईश्वर-उपासना के द्वारा हमें बल और वीर्य प्राप्त हो और पराक्रम में वृद्धि हो।

- सुमायामं पृथिवीं धामनेभ्यं सुवर्णमयिनीं सुमयिनीम् ।

देवीं नमं स्मरिष्यामन्मन्त्रमूत्रमन्त्रोपां सोमं सवामे ॥

—ऋ. १०/६३/१७०

दुःखरहित, छिद्ररहित और निरपराध जीवन जीने के लिए हम सदैव अपने आपको परमात्मन के चरणों में समर्पित किए रहें।

दिव्यो नो विश्वतोमुद्याति नायैव पराव ।

अथ नः कोऽनुपयम् ॥

—ऋ. १९/६७/१०१

अधिकारीजन जिस प्रकार कठिन जंगलों में जाकर दस्यु-जनों को दण्ड देकर प्रजा की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार परमात्मा अपने उपासकों के क्रम, क्रोध, लोभ, मोह, भय शोक सभी शत्रुओं को धारकर उसे जितेन्द्रिय बनाता है।

- अग्निस्त्वमेव शोचिष्य यं ऽंशु सदिश्वं व्यहमिष्यम् ।

अग्निर्नो यं ऽंशु सतो हविम् ॥

—साम. २२/११

परमात्मा सदैव सबके साथ न्याय करता है। वह दुष्ट-दुराचारी पुरुषों को दण्ड देता है और धर्मात्माओं को उनके कर्मानुसार सुख बाँटता है।

- सुहृन्मनुजानामे सुहृन्मनि नोदुहे ।

सुहृन्मि पविषमि ॥

—ऋ. १४/१९

ज्ञानवान, धर्मीनिष्ठ पुरुष परमात्मा की उपासना से वैसे ही श्रेष्ठ तत्त्व प्राप्त करते हैं, जिस प्रकार मनुष्य गाय के दूध से अपना प्रयोजन पूरा करते हैं।

- कथं वन सतीरसि नैव सवर्षिं यदुह्ये ।

उपेयेन्मु मयमन्मूय इमु ते वानं देवस्य पृथ्वी ॥

—साम. ४००/१

ईश्वर किसी के कर्म को निष्फल नहीं रखता, न ही कभी निरपराधी को दण्ड देता है। इस

जन्म में और पुनर्जन्म में प्रत्येक मनुष्य के लिए कर्मानुसार फल की व्यवस्था कर दी है।

- गूढता गुह्यं तयो वि यात विश्वमग्निम् ।
ज्योतिष्कर्ता यदुष्मसि ।।

—ऋ. १/८६/१०/

हे ईश्वर ! अन्धकार का नाश करो और हमें प्रकाश का दान दो। स्वार्थपूर्ण भावनाओं से हम विमुक्त रहें।

- अच्छा व इन्द्रं मतयः स्वर्गुवः

सभीधीर्विश्वा उश्चतीरनुधत ।

परिध्वजन्त जनयो यथा पतिं

मयं न शुश्रुं मधवानमूत्स्ये ।।

—साम. १/३७५/

मनुष्य का जितना लौकिक कामनाओं, धन आदि के लिए तथा स्त्री आदि के प्रति प्रेम होता है, उतना ही यदि वह ईश्वर से प्रेम करे तो निःसन्देह संसार से रक्षा और परमानन्द की प्राप्ति हो सकती है।

- तेजोसि तेजो मयि वेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि वेहि
बलमसि बलं मयि वेहयोजोस्योजो मयि वेहि
मयुरसि मयुं मयि वेहि सद्योसि सद्यो
मयि वेहि ।।

—ऋ. १/८६/१८

हे परमेश्वर ! तू प्रकाशस्वरूप है मुझे प्रकाश दे। पराक्रमवान है, मुझे वीर्य दे। तू बलवान है, मुझे बल प्रदान कर। तू ओजस्वी है, मुझे भी ओजस्वी बना। दुष्टों पर क्रोध करता है मैं भी वैसा ही कहूँ। आप में सहनशीलता है मुझे भी सहनशील बनाओ।

आत्म-शक्ति का विकास

- उदुत्तमं मुमुक्षि नो वि पाशं मध्यमं कृत ।

अवाधमानि

जीवसे ।।

—ऋ. १/२५/२१

पुत्रेषणा, वितेषणा तथा लोकेषणा की भावना से हम उन्मुक्त हों, क्योंकि इनसे हमारा आत्मा पतित होकर दुःख पाता है।

- को ददर्श प्रथमं जायमानमस्यन्वन्तं यदनस्था विभर्ति ।

भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित्को विद्वांसमुप
गात्यष्टुमेतत् ।।

—ऋ. १/१९४/१८

आत्म-ज्ञान प्राप्त करना मानव जीवन का मूल लक्ष्य है। यह संसार कैसे बना ? पदार्थों का आदि कारण क्या है ? शरीर और उसमें

शोणित, मांस, अस्थि आदि की विचित्रता और उसकी आत्मा से विलगता आदि का ज्ञान मनुष्य को अवश्य प्राप्त करना चाहिए। इसके लिए विद्वानों का सात्रिध्य प्राप्त करें। इसी से मनुष्य का उद्धार होता है।

- अधिकिराग्निकितुषन्निवदध कवीमृच्छामि विदुमने न
विद्वान् ।

वि यस्तस्तस्य षष्ठिमा स्वांस्यजस्य रूपे किमपि
स्विवेकम् ।।

—ऋ. १/१९४/६॥

मनुष्य विभिन्न लोकों तथा संसार के अन्य रहस्यों को जानने का प्रयत्न अवश्य करे। जब तक वह संसार का आत्मिक और पारमार्थिक ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेता तब तक मनुष्य जीवन् का उद्देश्य पूरा नहीं होता है।

- न वि जानामि यदिवेदमस्मि निष्पः सन्नद्यो मनसा
चरामि ।

यदा यागमयजमजा ऋतस्यादिद्वान्ते अश्रुवे
भागमस्ताः ।।

—ऋ. १/१९४/३७/

मनुष्य अपने आपको भी नहीं जानता, यह कितनी बड़ी भूल है ? उसे भाषा, साहित्य आदि की जो क्षमता प्राप्त है उससे शरीर और जीवात्मा का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

- अपाङ्ग्राडेति स्वयया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना
सयोनिः ।

ता अश्वन्ता विबुधीना वियन्ता न्यग्र्यं विव्युर्न
नि विव्युरग्नम् ।

—ऋ. १/१९४/१८

जीवात्मा अमर है और शरीर प्रत्यक्ष नाशवान। सम्पूर्ण शारीरिक क्रियाओं का अधिष्ठाता आत्मा है क्योंकि जब तक शरीर में प्राण रहता है, तब तक वह क्रियाशील रहता है। इस आत्मा के सम्बन्ध में बड़े-बड़े पंडित व मेधावी पुरुष भी नहीं जानते। इसे ही जानना मानव जीवन का प्रमुख लक्ष्य है।

- अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समधयस्व बहु ते
वसधम् ।

इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु घृन्मृदददेम विवधे सुवीराः ।।

—ऋ. २/१३/१३

न्याय और परिश्रम की कमायी ही मनुष्य को सुख देती, फलती-फूलती और मन को प्रसन्न रखती है। इससे आत्मा निर्मल व पवित्र रहता

है, पौरुष बढ़ता है और सत्कर्मों की प्रेरणा मिलती है। चोरी, छल व कपट से कमाया हुआ धन सदैव दुःख देता है।

- अभ्रतरो न योचनो व्यन्तः पतिरिषो न जनयो दुरेवाः ।
पापासः सन्तो अनृता असत्या इदं पदमजनता
नभीरम् ॥

—ऋ. ४/१५/१५

जो मनुष्य छल और कपटपूर्ण आचरण करते हैं, वही संसार में धृणा और निन्दा फैलाते हैं। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह सदैव सत्य का ही अनुसरण करे।

- इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुषात् यामनि जीवा
ज्योतिरस्मीमहि ॥

—ऋ. ७/१३२/१६

जिस प्रकार पिता अपने पुत्र को ज्ञान और कर्म की ओर प्रेरित करता है, उसी प्रकार हे परमात्मा ! तू भी हमें क्रियाशील और ज्ञानवान बना ताकि हम जीवन-लक्ष्य पूरा कर सकें।

- पृष्ठे तदेनो वरुण विवृणुषो एमि चिकित्तुषो विपृच्छम् ।
समानमिन्धे कवयश्चिदाहुरयं ह तुभ्यं वरुणो हृणीते ॥

—ऋ. ७/१६६/१३

सच्ची भक्ति की कसौटी यह है कि अपना छोटा-सा दोष-दुर्गुण भी बहुत बड़ा दिखाई दे। पूर्ण आन्तरिक निर्मलता से ईश्वर-दर्शन सम्भव है।

- अपां मध्ये तस्मिन्वांसं तृणाविदम्प्रतिस्तारम् ।
मृता सु क्षत्र मृत्यय ॥

—ऋ. ७/१८६/१४

दुःख का प्रमुख कारण मनुष्य का अज्ञान। इसलिए उसे ऊँचे उठकर आत्म-ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, इसी से सम्पूर्ण कामनाएँ शान्त होती हैं।

- महे चन त्वाग्निवः परा शुल्काय देयाम् ।
न सहस्राय नायुताय बज्रिवो न शताय शतामय ॥

—ऋ. ८/११/१५

हे जगदीश्वर ! मुझे ऐसी शक्ति दो कि मैं आपको किसी भी मूल्य पर छोड़ूँ नहीं। मुझे कोई प्रलोभन जीवन-लक्ष्य से विचलित न करे।

- न पापासो मनामहे नारायासो न जल्लवः ।
यद्विन्विन्द्रं वृषणं सथा सुते सखायं कृणवामहे ॥

—ऋ. ८/६१/११

अन्तःकरण यदि मलिन और अपवित्र बना रहे तो परमात्मा की उपासना भी फलवती न

होगी। अतः ईश्वर की उपासना निष्पाप हृदय से करें।

- न वा उ मां वृजने वारयन्ते न पर्वतासो यदहं मनस्ये ।
मम स्वनात्कृष्णकर्णो भयात् एवेदनु धूमिकरणः
समेजात् ॥

—ऋ. १०/१२७/१५

हे मनुष्यो ! तुम्हारी आत्म-विश्वास की शक्ति बड़ी प्रबल है। तुम्हारे निश्चय को कोई मिटा नहीं सकता। साधारण विघ्नों की तो बात ही क्या बड़े-बड़े पर्वत तक तेरी राह रोक नहीं सकते। तू सूर्य से भी अधिक बलवान है।

- पृथीयाविश्वामानात्र तस्याभ्राधीयांसमनु पश्येत पन्चाम् ।
ओ हि कर्त्तव्ये रथ्ये चक्रान्यमन्यपुष तिष्ठन्त रायः ॥

—ऋ. १०/११७/१५

हम दूरदर्शी बनें। हमारे ऊपर भी दुःख पड़ सकते हैं, धन-सम्पत्ति का नाश हो सकता है इसलिए आत्मिक आनन्द की प्राप्ति के लिए हमें सदैव निर्बल दीन-दुखियों की सहायता किया करें।

- अक्षां देवा अजमाना वायुणोपा उपास्ते ।
अक्षां हव्यश्याक्नूषा अक्षया विन्धते वसु ॥

—ऋ. १०/११९/१४

श्रद्धा हृदय की उच्च भावना का प्रतीक है। इससे मनुष्य का आध्यात्मिक जीवन सफल होता है और धन प्राप्त कर सुखी होता है।

- पृथिव्या ऽ अहमुदन्तरिक्षमारुह्यन्तरिक्षाद्विदमार्कम् ।
दिवो नाकस्य पृष्ठस्य स्वर्णोत्तिरामहम् ॥

—यजु. १०/६७

हे मनुष्यो ! ध्यान और धारणा आदि से ऊर्ध्वगामी बनें और पृथ्वीलोक से ऊपर उठकर सूर्यलोक से भी आगे जाकर ज्योतिस्वरूप परमात्मा के दर्शन करो।

- यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपास्ते ।
तया मामद्य मेधयान्ते मेधाविनं कुठ स्वाहा ॥

—यजु. ३२/१४

विद्वान्, तत्त्वदर्शी तथा आत्मज्ञानी जन किस मेधावी बुद्धि के द्वारा संसार में श्रेष्ठ कर्मों का सम्पादन करते हैं, हे ईश्वर ! हमें भी वह मेधा बुद्धि प्रदान कर।

- येन देवाः पवित्रेणत्मानं पुनते सदा ।
तेन सहस्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः ॥

—साम. १३०२

मनुष्य जीवन की सफलता इस बात में है कि वह आत्मिक और मानसिक दोषों को

त्याग कर निर्मल और पवित्र बने। आत्मा मलविक्षेप और आधाररहित बने, इसके अनेक उपाय वेदों में वर्णित हैं। अतः वे पठनीय हैं।

- इयं विद्वानाञ्जन सत्यं वक्ष्यमि नानृतम् ।
सन्नेयमश्वम् भायहमश्वानं तव पुरुष ॥

—अथर्व. ४१८/१०।

संसार की विचित्रता को ध्यान में रखकर सदैव सत्य बोलें और आत्मबल प्राप्त करें।

- सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोऽन्तरिक्षस्तथा पृथिवी वरीत्यु ।
अस्तुतो नामाहमयमस्मि स अस्मान्नं नि दधे
धावापृथिवीर्ध्यां नोऽपिनाय ॥

—अथर्व. ५१८/१०

सूर्य मेरी आँख है, वायु मेरा प्राण है, पृथिवी मेरा शरीर और अन्तरिक्ष मेरी आत्मा है। इसलिए अभी तक मेरा कुछ भी विकृत नहीं हुआ है। आगे भी इनका संरक्षण बना रहे इसलिए मैं परमार्थ के कार्यों में संलग्न होता हूँ।

- उन्मदयत मरुत उयन्तरिक्ष मादय ।
अन्न उन्मादया त्वमस्ती ममनु श्लोक्यु ॥

—अथर्व. ६१३०/१४।

हे परमात्मा ! तू मुझ में ऐसा प्राण भर दे कि मैं मस्ती में झूमता रहूँ। मुझे किसी प्रकार का भय न रहे।

- मृत्युरीशो द्विषदां मृत्युरीशो ष्ठुष्यवाम् ।
तस्मात् त्वं मृत्योर्नोपतेरुभूतमस्मि स मा विभेः ॥

—अथर्व. ८१२/२३।

यह मृत्यु मनुष्य, जीव-जन्तु किसी को भी नहीं छोड़ती। वह सबसे ऊपर है। यदि तू इससे बचना चाहता है तो अपनी आत्मा को जान और ज्ञानवान होकर मृत्यु से डरता रहे।

- त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी ।
त्वं जीर्णो दण्डेन दण्ड्यसि त्वं जल्लो भयसि
विश्वरुतेभ्यः ॥

—अथर्व. १०१८/२७।

जिस प्रकार परमात्मा में कोई लिंग भेद नहीं है, उसी प्रकार आत्मा की दृष्टि से स्त्री-पुरुष दोनों समान विशुद्ध तत्त्वरूप हैं। भेद केवल शरीरगत है।

- ब्रह्मर्षी अस्ति सूर्यं बडादित्य मर्षी अस्ति ।
महांस्ते महस्ते महिमा त्वमादित्य मर्षी अस्ति ॥

—अथर्व. १११२/२६।

हे मनुष्यो ! तुम्हारी आत्मा सूर्य के समान तेजस्वी, प्रकाशमान एवं महान है। अपनी शक्ति को तो पहचानो। देखो तुम्हारी महिमा कितनी विशाल है ?

- अनुद्धं परिह्वं परित्वं परित्वम् ।
सर्वैर् रिक्तकुम्भम् परा तान्तवितः सुवः ॥

—अथर्व. १६१८/१४।

हे मनुष्यो ! शारीरिक और आत्मिक दोषों का संशोधन करते हुए ईश्वर की उपासना करो।

- गद्यमिच्छन्त ऋषयः स्वर्गिदस्तपो दीक्षामुपनिवेदुरग्रे ।
तत्ते राष्ट्रं बलमोजय्य जातं तदस्मी देवा उपसंनमन् ॥

—अथर्व. १६१८/१९।

आत्मकल्याण की इच्छा करने वाले पुरुष को पहले तप की दीक्षा दी जाती है। इससे शरीर-बल, मनोबल तथा पद-प्रतिष्ठा मिलती है और सुख प्राप्त होता है।

- अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुतं मे चक्षुर्वातं मे
श्रोत्रमयुतं मे ।
प्राणोऽयुतो मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयुतोऽहं सर्वः ॥

—अथर्व. १६१८/१९।

मैं अकेला ही दस हजार के बराबर हूँ। मेरा आत्मबल, प्राणबल, दृष्टि और श्रवण-शक्ति भी दस हजार मनुष्यों के बराबर है। मेरा अपान और व्यान भी दस हजार के बराबर है। मैं सारा का सा दस हजार मनुष्यों के बराबर हूँ।

- ऊर्बोरीजो जङ्घयोर्जवः पादयोः ।
प्रतिष्ठ्य अस्तिष्ठानि मे सर्वात्मनिष्ठः ॥

—अथर्व. १६१८/१२।

मेरी जंघाएँ बलिष्ठ हों, टँगों में गतिशीलता रहे। पैर सशक्त और सम्पूर्ण अंग पीड़ारहित हों। हमारा आत्मा अधोगामी न हो।

सद्व्यवहार और श्रेष्ठता

- त्वमं प्र शंसिषो देवः श्रविष्ठ मर्यम् ।
न त्वदण्यो मयवमस्ति मडितेन ब्रवीमि ते वयः ॥

—ऋ. १८४/१६।

मनुष्यों को चाहिए कि वे ऐसे पुरुषों को अपना मित्र बनाएँ जो सदैव श्रेष्ठ कर्म करते हों। जो विश्वकल्याण की कामना रखते हों और सभी को सुखी देखना अपना कर्तव्य समझते हों।

- ते अस्मभ्यं शर्म यंसंनृता मर्त्येभ्यः ।
बाधमाना अप द्विषः ॥
—अ. १/१८०/१॥
- शिक्षाएँ उनकी ग्रहण करें जो विद्वान् हैं और श्रेष्ठ कर्म करते हैं। छोटे स्वभाव के व्यक्तियों को सदैव दूर ही रखना चाहिए। इसी में मनुष्य मात्र का कल्याण निहित है।
- म यन्मन्दिष्ठ एषां प्रात्माकासश्च सूर्यः ।
अप नः कोऽनुवचम् ॥
—अ. १/१८७/१२
- मनुष्य परमात्मा की उपासना करे, सम्मार्ग पर चले, पर इसका फल तभी है, जब औरों को भी ईश्वर-आराधना तथा सम्मार्ग में लगावे।
- उदीर्घ्य जीवो असुनं आनादप प्राणतत्त्व आ ज्योतिरेति ।
अरिकपन्थां यस्तथे सूर्यायामन्य यत्र प्रसिन्नत आयुः ॥
—अ. १/१९२/१६ ॥
- अब अन्धकार समाप्त हो रहा है। अतः नव-जीवन के प्रकाश में ऊपर उठने का प्रयत्न करो। देखो तुम्हारे चारों ओर क्या हो रहा है? ज्ञान सूर्य चारों ओर अपना प्रकाश फैला रहा है। आओ हम भी अपनी प्रगति के मार्ग प्रशस्त करें। अब हम धर्मानुष्ठान करेंगे और यश प्राप्त करेंगे।
- गम्भीरी उद्यर्शीरिव क्रतुं पुण्यसि नाहव ।
म सुनोषा वयसं धेनवो यथा ह्यं दुग्धं ददात ॥
—अ. १/१८५/१२
- सुख उन्हें मिलता है जो समुद्र के समान अचल गम्भीर बुद्धि वाले होते हैं, जिनमें पृथ्वी के समान क्षमता और पालन की सामर्थ्य होती है। जो गौ के समान दानी और नदी के जैसे निरन्तर क्रियाशील होते हैं।
- मधुमतीरोवधीर्वाव आपो मधुमजो भवत्सन्निधय ।
क्षेत्रस्य पतिर्नमुमानो अस्तवरिष्यन्तो अर्धेनं चोम ॥
—अ. ४/१८७/१२
- दूसरों के साथ भी हम वैसा ही उत्तम व्यवहार करें जैसी हम स्वयं जीरों से अपेक्षा करते हैं। उत्तम पदार्थों का विनिमय ही सच्ची नीति है।
- भुनक्षिष्येऽपि निश्चितं सहस्रापूपान्मुज्यो अक्षयिष्ठ द्विषः ।
एवास्मदग्ने वि मुमुग्धि पाशान्दोहस्तविषिद्विष इह तु निष्य ॥
—अ. ५/१२/१०
- विद्वान् कहलाने का सौभाग्य उन्हें मिलता है जो सभी मनुष्यों को अविद्या से छुड़ाते और

- धर्म मार्ग पर चलते हैं इससे दूसरों के भी भव-बन्धन टूटते हैं।
- वि द्वेषांसीनुहि वधियेसां मयेव वसतिमाः सुवीतः ॥
—अ. ६/१९०/१०
- विद्वान् पुरुषों का यह कर्तव्य है कि श्रेष्ठ कर्म करें और दूसरों से भी करावें। इससे दोनों की निवृत्ति और बल, बुद्धि, विद्या तथा आयु में वृद्धि होती है।
- स नो बोधि पुरस्तात्तुनेष्टा तुनेषु पथिकृष्टिमानः ।
ये अन्नमास उरवो वहिष्यस्तेभिर्न वृक्षानि वधि कल्पय ॥
—अ. ६/१२१/१२
- जो सबका मंगल करता हो, स्वयं धर्म पथ पर चले और दूसरों को भी सम्मार्ग की ओर अग्रसर करे वही विद्वान् है। यह वृत्ति सत्संग से जाग्रत होती है।
- मा पापत्वाय नो नरेन्द्रान्नी माभिषस्तये ।
मा नो रीरधतां विदे ॥
—अ. ७/१८४/१२
- श्रेष्ठ पुरुषों का यह कर्तव्य है कि दूसरे लोगों को दुष्कर्मों, निन्दित कार्यों और पाप कर्मों की ओर न जाने दें।
- त्वां शुष्मिन् पुरुषा वाक्यन्तमुप हुवे वसतः ।
स नो रास्व सुवीर्यम् ॥
—अ. ८/८८ (८८) १२
- हे परमेश्वर ! आप उन्हें अधिक प्यार करते हैं, जो शक्तिशाली होते हैं अतः हम भी शक्तिशाली तथा बलवान् बनेंगे।
- मित्रं कृणुष्वं छत्रं मृशता नो मा नो धीरेण वसतामि भूम्नु ।
नि वी नु मनुर्विशतामरातिरन्यो बध्नां प्रसिती चस्तु ॥
—अ. १०/१४४/१४
- संसार के सभी लोग परस्पर मित्रता का व्यवहार करें। कोई क्रोध न करे। लड़ाई-झगड़ा न बढ़ावें। शान्ति से अपने काम पूरे करें और सम्पूर्ण विकारों को वशवर्ती रखें।
- सत्तुमिव सितउमा पुनन्ती यत्र धीरा मनसा वाक्यमन्न ।
जना सखायः सख्यन्नि जानते पथिषां कल्पीर्निष्ठितामि कथि ॥
—अ. १०/१४१/१२
- वार्तालाप करते समय सदैव मधुर और संयमित शब्दों का ही प्रयोग करो। आपके शब्द सरल हों और उनसे कटुता उत्पन्न न होती हो।

- श्रद्धयाग्निः समिधते श्रद्धया हूयते हविः ।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वक्षता वेदयामसि ॥

—श्रु. १०/१५१/११

श्रद्धापूर्वक किये गये लोकोपकारी कर्म ही ध्येय सिद्धि की सामर्थ्य रखते हैं अतः मनुष्य को श्रद्धा से भरपूर होना चाहिए ।

- यथा देवा असुरेषु श्रद्धागुणेषु चक्षिरे ।
एवं भोजेषु यज्यस्वस्माकमुचितं कृषि ॥

—श्रु. १०/१५१/१३

देश जाति, धर्म और संस्कृति के प्रति त्याग और उत्सर्ग की भावना तब पैदा होती है, जब हृदय में इनके प्रति श्रद्धा हो । श्रद्धा में ही वह बल है, जो किसी कर्तव्य के प्रति गहन निष्ठा उत्पन्न करती है ।

- श्रद्धां प्राप्तर्हवामहे श्रद्धां मर्ष्येविनं परि ।
श्रद्धां सूर्यस्य निमृषि श्रद्धे श्रद्धापथेऽ नः ॥

—श्रु. १०/१५१/१५

श्रद्धा के द्वारा लोग शुभ व पवित्र कर्म करते हैं इसलिये आत्म-चिन्तन, ईश्वर-आराधना आदि के कार्य श्रद्धापूर्वक करने चाहिए ।

सांसारिक और पारमार्थिक व्यवहार में सफलता का आधार है इसलिये अपना जीवन श्रद्धा से ओत-प्रोत हो ।

- आशस्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम् ।
यथेह पुरुषोत्तम् ॥

—श्रु. २/३३/

हे आचार्य ! मेरे इस किशोर बालक को अपने विद्यालय में प्रविष्ट कीजिये और इसे पूर्ण विद्वान बनने तक अपने समीप रखिये ।

- नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय
चापस्तत्राय च नमो मध्यमाय चापगस्ताय च नमो जघन्याय च
बुध्याय च ॥

—श्रु. १६/३२/

ऊँच-नीच, छोटे-बड़े सभी परस्पर मिलते समय 'नमस्ते' कहकर एक-दूसरे का आदर-अभिवादन किया करें । इससे पारस्परिक प्रसन्नता का और मेल-जोल का व्यवहार बना रहता है ।

- ब्रतं च म उग्रतवश्च मे सपश्च मे संवत्सरश्च मेक्षोरात्रे ।
ऊर्जस्वीवे बृहद्वयन्तरे च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥

—श्रु. १८/२३/

हम नियमपूर्वक कर्म और धर्म का आचरण करें । हमारा सम्पूर्ण जीवन यज्ञीय अर्थात् परोपकाराय, क्रियाशील और प्रकाशमान हो ।

- उपद्रे गिरीणां संगमे च पदीनाम् ।
धिया विप्रो मजायत ॥

—श्रु. २६/१५५/

विद्वान लोग जो स्वाध्याय करते हैं, एकान्त मन से उसी का मनन-चिन्तन करते रहते हैं । इससे योगियों के समान उनकी बुद्धि प्रखर होती है ।

- केतुं कृष्णकेतवे पेक्षो मर्याऽ अपेक्षते ।

समुषमिवस्त्रावकाः ॥

—श्रु. २६/१५७/

जो पुरुष अपने ही समान दूसरों को भी सुखी देखने की कामना रखते हैं, उनके पास रहने से-विद्या प्राप्त होती है और अज्ञान का अन्धकार दूर होता है । धन प्राप्त होता है और दरिद्रता का विनाश होता है । अतएव हम सदैव आत्मदर्शी महापुरुषों के समीप रहें ।

- भग प्रभेतर्भग सत्सराधो भगेमां धिक्मुदका दवजः ।
भग प्र-नो जनय गोभिरस्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥

—श्रु. ३४/३६/

परमात्मा और महापुरुषों से यदि कुछ प्राप्त करने योग्य है तो वह सदबुद्धि ही है ।

- अग्नऽग्न्यायुष्टं चि पवसऽ आ सुवोऽभिषं च नः ।
आरे वाधस्व पुष्पुनाम् ॥

—श्रु. ३५/१६/

हे मनुष्यो ! सदैव ईश्वर आराधना और सन्तजनों का सत्संग पाने का प्रयास करो और दुराचरण त्याग दो । इससे धन-धान्य से युक्त होकर दीर्घायु बनेंगे ।

- इ ते इष्टं वा मित्रस्य वा वक्षुषा
सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।
मित्रस्वार्थं वक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।
मित्रस्य वक्षुषा समीक्षामहे ॥

—श्रु. ३६/१८/

हे परमेश्वर ! हम सम्पूर्ण प्राणियों में अपना ही आत्मा समाया हुआ देखें, किसी से द्वेष न करें और जिस प्रकार एक मित्र दूसरे मित्र का आदर करता है वैसे ही हम भी सदैव सभी का सत्कार करें ।

- धर्मतते पुरीषं तेन वर्धस्व चा च ध्यावस्व ।
वर्धिधीमहि च वयमा च प्यासिधीमहि ॥

—श्रु. ३८/२१/

जिस प्रकार परमात्मा सर्वत्र व्याप्त होकर सबकी रक्षा व पुष्टि करता है मनुष्यो ! उसी प्रकार तुम भी श्रेष्ठता प्राप्त कर सम्पूर्ण जीवों की रक्षा और पुष्टि करो ।

- पावमानीः स्वस्त्ययनीस्ताभिर्गच्छति नान्दनम् ।
पुण्यौ श्व भक्षान्भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति ॥

—साम. १३०

जिसमें मनुष्यों के विचार सत्कर्म की ओर प्रेरित होते हों ऐसे साहित्य के स्वाध्याय से स्त्री-पुरुषों को आनन्द मिलता है, वे जीवन भर उत्तम पदार्थों का सेवन करते हुए अन्त में मोक्ष लाभ प्राप्त करते हैं।

- इमा उ त्वा पुरुषसोऽभि प्र नोनुवर्गिरः ।
गाथो वत्सं न धेनवः ॥

—साम. १४६

जैसे दुधारी गायें दिन भर वन में विचरकर शाम को अपने बछड़ों के पास दौड़ती हैं, उसी प्रकार गुणी व्यक्ति की सर्वत्र प्रशंसा होती है।

- मधुमन्वे निष्क्रमणं मधुमन्वे परायणम् ।
वाचा बबामि मधुमद् भूवासं मधुसन्मृशः ॥

—अथर्व. १३४/३

जिसके व्यवहार, क्रिया और सम्भाषण में मधुरता होती है, उन्हें सभी प्यार करते हैं। संसार में शुभकर्म व उपकार वही करते हैं जिनका स्वभाव मधुर होता है।

- समास्ताग्नं ऋतवो वर्षयन्तु संवत्सरा ऋषियो यानि सत्या ।
सं दिव्येन दीविहि रोचनेन विश्वा आ भाहि प्रविशन्वत्ततः ॥

—अथर्व. २१६/११

मनुष्यों को चाहिए कि श्रेष्ठजनों से उत्तम शिक्षा प्राप्त कर संकल्पवान्, सत्यवान और सत्कर्मशील बनें। इस प्रकार संसार में उन्नति और कीर्ति प्राप्त करते हुए सदैव प्रसन्नचित्त रहें।

- सूरिरसि वर्चोऽसि तनूपानोऽसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमसि समं क्राम ॥

—अथर्व. २११/१४

मानव जीवन को सार्थक बनाने के लिये हे मनुष्यो ! ज्ञान प्राप्त करो, तेजस्वी बनो और शारीरिक दृष्टि से बलवान बनो। अपनी वर्तमान स्थिति से सन्तुष्ट न होकर आगे बढ़ने का प्रयास करते रहो।

- येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः ।
तत् कृष्णो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥

—अथर्व. ३१३०/१४

विद्वान् पुरुष कभी परस्पर लड़ते-झगड़ते या ईर्ष्या-द्वेष नहीं करते। मनुष्यों के विचार समान

हों इसलिये सदसाहित्य के स्वाध्याय की आवश्यकता है।

- ईर्ष्याया घ्राजिं प्रयमां प्रयमस्या उतापराम् ।
अग्निं हृदयं शोकं तं ते निर्वापयामसि ॥

—अथर्व. ६१८/११

सबकी उन्नति में ही अपनी उन्नति जानकर कभी-किसी के साथ ईर्ष्या न करें।

- सिद्धिं व्याप्त उत या पृथग्वी त्विधिरन्तौ ब्राह्मणे सूर्ये या ।
इन्द्रं या देवो शुभगा जजान सा न ऐतु वर्धता सविदान ॥

—अथर्व. ६१८/११

संसार के जिस प्राणी में जो भी तेजस्वी गुण दिखाई दे वह मैं अपने में धारण करूँ।

- सं जानीध्वं सं पृथग्व्यं सं वो मनोसि जानताम् ।
देवा भागं बधा पूर्वं संजानन्ता उपास्तते ॥

—अथर्व. ६१६/११

प्रत्येक मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह ज्ञान प्राप्त कर परस्पर मिल-जुलकर रहे। सभी उत्तम संस्कारवान हों। जिस तरह हमारे पुरखे अपने कर्तव्यों का पालन करते रहे हैं, उसी प्रकार हम भी सदैव अपना कर्तव्य पूरा करते रहें।

- मा नो हिंसीरथि नो ब्रूहि परि नो वृद्धिमा कृषः ।
मा त्वया तन्मरामहि ॥

—अथर्व. १११/२०

हम क्रोध न करें, किसी को कष्ट न दें। हे परमेश्वर ! हमें पाप कर्मों से सदैव दूर रखना।

- आकूतिं देवीं शुभगां पुरो बधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
यामाश्चामेभि केवली ता मे अस्तु विदेवमेनां मनसि प्रविष्टाम् ॥

—अथर्व. १६१४/२

मनुष्य जितना ही अधिक ज्ञानवान और संकल्पवान बनेगा उसकी इच्छाएँ भी उसी अनुपात से पूर्ण होंगी।

- इयं या परमेष्ठिनी वायु देवी ब्रह्मसंज्ञिता ।
यथैव ससृजे चोरं तथैव शान्तिरस्तु नः ॥

—अथर्व. १६१६/३

वाणी की कठोरता से उत्पात खड़े हो जाते हैं इसलिये भले आदमी सदैव शिष्ट वाणी ही बोलते हैं। संयमित वाणी से अनिष्ट की, उत्पात की कोई आशंका शेष नहीं रहती।

- इदमुच्येयोज्वसानामाणां शिवे मे धावापृथिवी अभूताम् ।
असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु न वै त्वा द्विष्यो अघर्ष्य नो
मस्तु ॥

—अध्व. १८/१४/११

जिस मनुष्य का व्यवहार मधुर होता है, उसका कोई
विरोध नहीं करता। जो किसी से द्वेष नहीं करता
उसे किसी प्रकार का भय नहीं होता। ऐसे मनुष्यों
को अनेक सुख स्वयमेव मिलते रहते हैं।

- प्रियं मा कृणु देवेभ्यु प्रियं राक्षस्यु ना कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत क्षुद्र उतायै ॥

—अध्व. १८/१५/११

परमात्मा निष्काम भाव से सभी से प्रेम रखता
है, हम भी परस्पर प्रीतिपूर्वक रहें।

- इन्द्र प्रेति पुरस्त्वं विश्वस्येशान भोजसा ।
वृषाणि वृषहज्जहि ॥

—अध्व. २०/१५/१२

हम शक्तिशाली बनें ताकि उन्नति के मार्ग पर
जो भी विघ्न आएँ उनसे लड़ सकें।

चरित्र-निर्माण और सदाचार

- विष्णोः कर्मणि पश्यत यतो व्रतानि पश्यन्ते ॥

—अ. १/२२/१८/१

किसी धार्मिक ग्रन्थ या वेद मन्त्रों के तोता की भाँति
रटने से कुछ लाभ नहीं हो सकता। हमें उन नियमों
को अपने जीवन में धारण करना चाहिए।

- द्युतायं द्युमुषि नो वि पाशं मध्यमं कृत ।
अवाधमानि जीवते ॥

—अ. १/२४/२१/१

श्रेष्ठ पुरुष परमात्मा की उपासना द्वारा अपने
दुःख और भय-बन्धनों को काटकर सुख प्राप्त
करते हैं। हमें भी परोपकारी कर्मों के द्वारा
सुख प्राप्त करने और बन्धनों से छुटकारा पाने
का प्रयत्न करना चाहिए।

- सुगः क्वा अनृक्षर अक्षित्वस क्वा यते ।
नावाधस्यो अस्ति वः ॥

—अ. १/४१/१४/१

सत्य का मार्ग ही कष्टकरहित, सरल और
सुगम होता है अतएव सभी को सत्य का
आचरण करना चाहिए।

- वा की व्यस्तं वा क्षयस्तं प्रति बोधे देवयन्तम् ।
सुनैरिह आ विवासे ॥

—अ. १/४१/१८/१

जो लोग धर्मनिष्ठ सदाचारी पुरुषों की मित्रता
करते हैं और उनकी रक्षा, सद् व्यवहार, भोजन,

बस्त्र आदि के द्वारा उनका सम्मान करते हैं
उन्हें सदैव सुख प्राप्त होता है। दुष्ट-दुर्जनों के
प्रभाव से सदैव दूर रहना चाहिए। वे विद्वान
हैं जो धर्मात्माओं की मैत्री करते हैं।

- मधु नक्तमुत्तमसो मधुनस्पर्धिवं स्वः ।
मधु वीरसु नः पिता ॥

—अ. १/४०/११/१

संसार में ऐसे कार्य करने चाहिए, जिससे सभी
को सुख-शान्ति और प्रसन्नता मिले।

- ये पायवो मामतेयं ते अन्ये पश्यन्ते अन्यं
दुस्तिगवस्तम् ।
ररक्ष तान्सुकृते विश्वदेवा विस्तन्त इमिष्ये नक्त
देवुः ॥

—अ. १/१४/१२/१

परोपकार और परमार्थ के कार्यों में निन्दा,
लांछन, उपहास आदि का भय नहीं करना
चाहिए। ऐसे मनुष्यों की रक्षा स्वयं परमात्मा
करता है अतः निश्चिन्त होकर लोक-कल्याण में
लगे रहना चाहिए।

- सुषो हि वो अयनमिन्द्र पन्था

अनृक्षते वरुण साधुरस्ति ।

तैन्मवित्या अथि बोक्ता नो

यच्छता नो पुष्परिहन्तु धर्ष्य ॥ —अ. २/२४/१८/१

जिस मार्ग पर धर्मात्मा व विद्वान पुरुष चले हैं
मनुष्यों को उसी वेदोक्त सत्य मार्ग पर चलना
चाहिए। जिनसे सत्य की प्रतिष्ठा होती ही ऐसे
ही कर्म मनुष्यों को करना चाहिए।

- सुष्यं वक्ष कविक्रतो यानीना देव

मर्तस्तो अघ्वरे अङ्कम् ।

त्वं विश्वस्य सुरषस्य बोधि

सर्वं तवन्ने अमृतं स्वदेह ॥ —अ. २/१४/११/१

विद्वान लोग जो धर्माचरण नियुक्त करें मनुष्य
उसका पालन करें अर्थात् महापुरुषों की
शिक्षाओं का अनुसरण करना चाहिए। सभी
लोगों के एक जैसे विचार हों और सभी लोग
मिलकर विद्या और सुख की वृद्धि करें।

- अ नो अन्नेऽमृतये मावीरतायै शिरसः ।

अन्नेस्तथै सहससुभ मा निदेऽप देवास्या कृषि ॥

—अ. २/१४/१५/१

हमारा मानव जीवन सफल हो इसलिये हम
बुद्धिमान, वीर तथा धनी बनें। निन्दक, धूर्त
पिशुन और अपकारी न हों। हमारा जीवन-
शोधन का कार्य सदैव चलता रहे और बुराईयों

को छोड़ने में हम दृढ़ बने रहें। हम कभी भी मतिहीन न हों ताकि जीवनपर्यन्त सुखी रहकर परमात्मा की उपासना करते रहें।

- एकद्वे दे वसुमती समीची इन्द्र आ पृथ्वी पृथिवी
कृतायाम् ।

—अ. ३/३०/११/

पृथिवी और द्यौलोक धन देते हैं। जब वर्षा होती है तो पृथ्वी अन्न देती है किन्तु मनुष्य को चाहिए कि वह अन्य साधनों से भी अन्न प्राप्त करे केवल दैव पर ही निर्भर न रहे।

- इन्द्रा युवं वरुणा भूतस्य धियः प्रेतस्त वृषभेव वेनोः ।
स्त नो बुद्धियधमचेव तस्मी ऋतञ्चक्रात् पयस्त
महि नीः ॥

—अ. ४/४१/१५/

हमारी प्रार्थना में बल हो, भावना हो ताकि देवता हमारी अभीष्ट कामना पूरी करें।

- तस्मिन् पयसायु चरेम सूर्यायन्नमस्तस्मिन् ।
पुनर्वसतामस्त जगन्त स नमेमहि ॥

—अ. ५/५१/१५/

हे मानवो ! सूर्य और चन्द्रमा जिस प्रकार नियमित रूप से अपने निर्धारित पथ पर चलते रहते हैं, उसी प्रकार तुम्हें भी न्याय का मार्ग नहीं छोड़ना चाहिए। सज्जनों के साथ सम्मान करने में कभी आलस्य न करें।

- यस्तो यज्ञेन सन्निवृत्त य उद्वैर्यज्ञेयः सुतो सद्यो
वयायाम् ।

य मर्येवमृत प्रवेत्त राया मुनेन वयस्य वि पाति ॥

—अ. ६/६१/१५/

जो अपने सद्गुणों के आधार पर श्रेष्ठ कर्म करने का प्रयत्न करते हैं, उन्हें संसार में विद्या, धन और यश मिलता है।

- मा नो निवे य वरुणैर्ज्यो रन्धिराग्ने ।
त्वे अग्नि कृतुर्मय ॥

—अ. ७/७१/१५/

हे मनुष्यो ! तुम कभी किसी को कटुवचन मत बोलना। किसी की निन्दा न करना, कृतघ्न न बनना। दुखी लोगों की सहायता करते रहना। तुम्हारा प्रत्येक शुभ कर्म परमेश्वर को समर्पित हो।

- अतस्तन्न चतस्रस्त चतस्रुषो वीरसो अमृतमिवः ।
तेषां वः सुप्ते सुन्दरिचये नरः स्वप्न ये च सूर्यः ।

—अ. ७/८६/१३/

हम सत्यमानी, सत्यवादी और सत्यचरण करने वाले हैं। ऐसे ही व्यक्तियों की सदैव संचति प्राप्त हो।

- मृत्योः पवं योपयन्तो यक्षत प्राचीय आयुः प्रतरं वधानाः ।
आप्यायमनाः प्रजया धनेन शुद्धाः पुत्रा पवत
यस्मिन्नासः ॥

—अ. १०/१२/१२/

जो लोग दुराचार को भिटाकर सदाचार पर स्थिर रहते हैं, वे उत्तम जीवन और दीर्घ आयु प्राप्त करते हैं। धन और संतानयुक्त होकर शारीरिक और मानसिक पवित्रता प्राप्त करते हैं।

- इयं जीवेभ्यः परिधिं वयापि कैषां नु नावपतो अयमेतन्म ।
स्तं जीवन्तु शरवः पुत्रवीर्यमर्षुं वयसां पयसिन् ॥

—अ. १०/१२/१४/

मनुष्य का जीवन बहुत महत्वपूर्ण है, इसे नीचतापूर्ण कर्मों में गँवाना अच्छी बात नहीं। इसलिए पुरुषार्थी बनकर सौ वर्ष तक जिएँ अर्थात् दुराचार त्यागकर सदाचारी हों इससे मनुष्य पूर्ण आयु प्राप्त करता है।

- तन्म तन्वज्जस्तो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पयो रथ
धिया कृतान् ।

अनुस्मर्य वयस जेनुकाम्यो मनुर्नव जनया ऐव्यं
जन्म ॥

—अ. १०/१३/१५/

मनुष्य को चाहिए कि वह ज्ञान और सदाचार के प्रकाश में उलझनरहित कर्म करें और मानवत्व को प्राप्त करें। स्वयं श्रेष्ठ बनें और अपने पीछे श्रेष्ठ सन्तान छोड़ते हुए जाएँ।

- अस्त त्वः पयसा इवार्थ वाचयुत त्वः क्षुण्वन्
क्षुणोत्येवाम् ।

—अ. १०/१३/१४/

जो सद्गुणों से सुनें तो किन्तु अपने जीवन में धारण न करें वह अन्धे, बहरे के ही समान हैं।

- अवेन्वा वरति माययैव वायं शुभुर्वा अकृतापुष्पम् ॥

—अ. १०/१३/१५/

जो सदाचरण का पालन नहीं करते, उन्हें शिक्षित होने पर भी उसी प्रकार लाभ नहीं मिलता जैसे जादू की गाय दूध नहीं देती।

- सर्वं नन्दति यस्तस्मिन्नेव सचात्ताडेव सख्या सखायः ।
किस्विपस्पृत्सिमुक्निर्त्येवामं हितो भवति
वाजिपाय ॥

—अ. १०/१३/१०/

जीवन-विद्या से कोई भी सुख विमुख न हो। सद्विद्या से ही हम सदैव अपने मित्रों, परिजनों और समाज की सेवा करते रहें।

- यन्मा कृणुष्वं यिय आ तनुष्वं नवमस्त्रिपरणीं
कृणुष्वम् ।
इष्कृणुष्वमायुधारं कृणुष्वं प्राञ्चं यज्ञं प्र णयता
सखायः ।।

—ऋ. १०/१०१/२।

जातीय उत्थान के लिए हम समान भावना
वाले होकर ज्ञान और कर्म का सर्वत्र प्रसार
करें। शत्रुओं से अपनी रक्षा करें और पर्याप्त
अन्न स्वयं तैयार करें। परोपकारी कार्यों की
शृंखला टूटने न पावे।

- न स सखा यो न वदति सख्ये सचाभुवे
सचमानाय पितृः ।
अमरस्यादौयज्ञं तदोक्तो अस्ति
पृथन्तमन्वमरणं चिदिच्छेत् ।।

—ऋ. १०/१११/१४

जो कृतज्ञता का बदला नहीं चुकाते, अपनी
सेवा देने में कृपणता दिखाते हैं, उनका संसार
में कोई भी हितैषी नहीं होता। इसलिए मनुष्य
को सदैव उदार स्वभाव का होना चाहिए।

- एकपाभुवो द्विपदो वि चक्रमे द्विपदमिपादमध्येति
पश्चात् ।
यदुष्मदेति द्विपदमभिस्वरे सम्पश्यन्कृतीरुप-
तिष्ठमानः ।।

—ऋ. १०/१११/५

इस संसार में सभी एक समान नहीं। सब श्रेणीबद्ध
हैं। एक से एक बढ़कर धनी, विद्वान आदि हैं।
अपनी तुलना अधिक क्षमतावान व्यक्ति से करना
दुःखदायी होता है इसलिए जो कुछ भी हमें मिला है,
उसे ही परमात्मा का प्रसाद मानकर अपना
कर्तव्यपालन करते रहना चाहिए।

- नकिरेव्य पिनीचसि नकिस्व बोपयापसि मन्वशुत्यं
चरामसि ।
पस्तेभित्तिपिद्वेधित्स्वाधि सं रभामहे ।।

—ऋ. १०/११३/१०

हिंसा तथा फूट मनुष्य की अवनति के कारण
है। इसलिये मनुष्य को चाहिए प्रत्येक छोटे-से
छोटे कार्य में भी एक-दूसरे को सहायता
दिया करें।

- परि मान्ने दुश्चरिताद्वापस्या या शुचरिते भज ।
उवायुषा स्वायुषोवस्याममृतौ २५अनु ।।

—ऋ. ४/१८

“हम परमात्मा से सच्चे हृदय से प्रार्थना करें।
प्रभो ! हमें दुराचार से मुड़ाकर सदाचार की

ओर बढ़ाओ। अधर्म से बचकर धर्मशील
बनाओ।” सच्चे मन की प्रार्थना भगवान सुनेंगे
और तुम्हें नेक पथ पर लगा देंगे।

- सत्यं च मे ब्रह्मा च मे जगज्ज्व मे धनं च मे
विश्वं च मे महश्च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे ।।
जस्तं च मे जनिष्यमाणं च मे सुक्तं च मे सुकृतं
च मे यज्ञेन कस्यन्ताम् ।।

—ऋ. १८/५

मैं ऐसे कर्म करूँ जिससे मेरा सत्य, श्रद्धा,
मित्रता, धन, व्यापकता क्रीडा, विनोद, वचन
और भुम्भकर्म समुन्नत हों।

- यऽ अत्तनवा कस्य यस्य विश्वऽ उज्जस्तो प्रशिषं
यस्य देवाः ।
यस्यवेत्तायाऽमृतं यस्यमृत्युः कस्मै देवाय हविषा
विभेन ।।

—ऋ. २५/१३

आत्मा मन और शरीर के अधिष्ठता परमेश्वर !
हम जब आपके अनुशासन अर्थात् सत्कार्य
करते हैं, तब जीवित रहते हैं, दुष्कर्मों से
हमारा विनाश होता है, इसलिए हम सदैव
सुमार्ग पर ही चलें।

- पूषन् तव ऋते बवं न रिष्येम कदा चन ।
स्तोतस्वस्तऽ इह स्मृतिः ।।

—ऋ. ३४/१४

जो परमात्मा और महापुरुषों के गुण, कर्म,
स्वभाव का अनुसरण करते हैं, उनका सुख
नष्ट नहीं होता।

- अक्षयमय किस्विचमप कृत्यामपो रपः ।
अपामार्ग स्वमस्वदप दुःश्वन्य सुव ।।

—ऋ. ३५/११

जो मनुष्य अपना आचरण शुद्ध बनाते हैं और
दूसरों को शुद्ध बनाते हैं, हमें उनका सामीप्य
मिले ताकि मन की मलिनता, दुष्ट-दुरितों का
क्षय हो।

- सप्तीवीचान् बः संमनस्कृनोम्येकऽनुष्टीप्संमननेनसर्वाङ् ।
देवा इवामृतं सखायाः सायंयातः सौमनसो वो अस्तु ।।

—अथर्व. ३/१०/१०

एक ही आचार-विचार वाले व्यक्ति खान-पान में
कभी भेदभाव न करें। बुराईयों से अपना
जीवन वैसे ही बचावें जैसे विषयों की उत्तेजना
से इन्द्रियों को। इसी से हमारा हित है
मानवमात्र की भलाई है।

- नमः प्राणाग्रबधिः सं मिमीते दीर्घायुत्वाय व्रतशारदाय ।
हस्तिं श्रीणि रज्जते श्रीण्यसि श्रीणि तप्ततपिष्ठितानि ।।
—अथर्व. ५/१८/१९
- जिस परमात्मा ने नौ शक्तियों से मनुष्य शरीर का निर्माण किया और सौ वर्ष सुखपूर्वक जीने की व्यवस्था की है, हम उसी की प्रेरणा से कर्म और पुरुषार्थ द्वारा अन्न, जन, धन की वृद्धि करें।
- अकम्पो धीरो अमृतः स्वयंभू रत्नेन तुप्तो न
कुतश्चनोनः ।
तमेव विद्वान् न विद्याय धृत्वोत्तमानं धीरफलं
युवानम् ।।
—अथर्व. १०/१८/१४
- परमात्मा निःस्वार्थ भाव से धैर्यपूर्वक प्राणियों की सेवा करता है। जो परमात्मा के इन गुणों का अनुसरण करता है, वह निर्भय होकर सदैव आनन्द पाता है।
- वैश्वदेवीं कर्षस आ रथध्वं शुद्धा भवन्तः शुषयः
पायकाः ।
अतिश्रमन्तो दुर्गिता पवानि शतं हिमः सर्वधारा
भवेयुः ।।
—अथर्व. १२/१२/१८
- हमारे विचार सदैव शुद्ध व पवित्र रहें। हम दूसरों को भी कुमार्ग से बचाकर सन्मार्ग की ओर ले जाएं ताकि सभी मिलकर पूर्ण आयुष्य प्राप्त करें।
- सुमुती कर्णो भद्रमुती कर्णो भद्रं श्लोकं भूतसम् ।।
—अथर्व. १६/१२/१४
- हम सदैव मंगल वचन सुनें और श्रेष्ठ कर्मों का ही उत्पादन करें।
- श्रुतेन गुप्तं श्रुतमिष्य सर्वभूतिन गुप्तो भवेन चाहम् ।
मा मा प्राप्सु पाप्मा मोत मृषुत्सर्वभेजं
सस्तिनं वायः ।।
—अथर्व. १७/१२/१८
- सत्यकर्म और धर्माचरण से ही मनुष्य जीवन सुरक्षित रहेगा इसलिए हम निष्पाप और यशस्वी बनें और सदैव उच्च ज्ञान प्राप्त करते रहें।
- कास्तो अश्वो बहति सप्तरश्मिः सहसाधो अजरो
चुरिस्ताः ।
तया रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि
विश्या ।।
—अथर्व. १८/१५/३/१९
- जो समय आज निकल जाएगा वह फिर आने का नहीं। समय बड़ा बलशाली है। यह जान कर ज्ञानी लोग सदैव समय का सदुपयोग करते हैं।

मनोनिग्रह—इन्द्रियनिग्रह

- बहं वेहि तनूषु नो बलमिन्द्राननुत्तु नः ।
बहं लोकस्य तन्वात् जीयते त्वं हि बलवा असि ।।
—ऋ. ३/१५/३/१८
- हे मनुष्यो ! अपना शरीर, अपनी इन्द्रियों को शक्तिशाली बनाये रहो। निर्बल व्यक्ति सदैव असफल रहता है। दुर्बल देह वाले को परिवार वाले भी घृणा की दृष्टि से देखते हैं। अपने जीवन के कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिए सभी को पुष्ट एवं बलवान बनना चाहिए।
- वि मे कर्मा फलस्यो वि चक्षुर्वीश्वं ज्योतिर्हव्य
आक्षिप्तं यत् ।
वि मे मनश्चरति दूरआयीः किं विद्वद्व्यामि
किमु नू मनिष्ये ।।
—ऋ. ६/१८/१६
- मनुष्य की इन्द्रियाँ कभी एक ही दिशा में स्थिर नहीं रहती। अवसर मिलते ही अपने विषयों की ओर दौड़ती हैं इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि वे इन्द्रियों की विषय-लोलुपता के प्रति सदैव सावधान रहें।
- पवित्रं ते चित्तं ब्रह्मणस्पते प्रधुर्माश्रानि पर्येषि
विश्वतः ।
अतस्तनूनं तवामो अस्तुते शृतास
इदहन्तस्तत्तन्माश्रत ।।
—ऋ. ६/१८/३/१९
- वह प्रकाशस्वरूप, सर्वव्यापी एवं अतुल सामर्थ्यवान है। उसे प्राप्त करने के लिए तप आवश्यक है। जिसने अपना शरीर, मन तपाया नहीं वह उसे प्राप्त नहीं कर सकता।
- समानी व आकृतिः समाना हृदयानि वः ।
सप्तान्यस्तु वो मनो यथा वः सुसहसति ।।
—ऋ. १०/१९/६/१४
- सभी लोग एक संकल्प वाले हों। सभी के हृदय एक हों मन एक हो, ताकि कोई दुःखी न रहे।
- यज्जाग्रतो दूरयुवेति देवं तनु सुप्तस्य तथैवेति ।
दूरक्यं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः
शिवसंकल्पमस्तु ।।
—यजु. ३४/१९
- हमारे मन की शक्ति अनन्त है, वह जाग्रत और सुप्त अवस्था में भी सदैव क्रियाशील रहता है।

वह ज्योतिस्वरूप है किन्तु मलाचरण से ग्रसित है। इसलिए हमारा मन शुभ एवं कल्याणकारी विचारों वाला हो।

- वेन कर्माण्यस्तौ मनीषिणो यत्ने कृष्यन्ति विदवेधु पीतः।

यत्पूर्वं यत्कर्मणः प्रयत्नं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

—अथर्व. ३४/१२

मन से ही पारलौकिक साधन तथा लौकिक सुख प्राप्त होता है। यह प्राणिमात्र के भीतर रहता है। इसलिए हमारा मन शुभ और कल्याणकारी विचारों में सदैव रत रहे।

- वेनेहं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
वेन कष्टस्तयते सन्तुष्टोस्त तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

—अथर्व. ३४/४

जो नाशरहित भूत, भविष्यत और वर्तमान का योग-साधन द्वारा ज्ञान प्राप्त करता है। जिससे जीवन-यज्ञ के सम्पूर्ण कार्य विधिवत पूरे होते हैं, वह हमारा मन शुभ और कल्याणकारी विचारों से युक्त हो।

- यस्मिन्मृत्युः क्षम यन् वि यस्मिन् प्रतिच्छा रयनाभाविचाराः।

यस्मिन्मृत्युः सर्वभोतं प्रजानां तन्मे मनः शिव-संकल्पमस्तु।।

—अथर्व. ३४/१५

हे मनुष्यो ! तुम्हारा मन स्वच्छ हो, अन्तःकरण धर्म और सदाचरण से पवित्र हो ताकि ब्रह्मविद्या और व्यावहारिक ज्ञान उपलब्ध कर सको।

- यत्नं धुनिर्गुणमना मृतामृतमनस्तथा।
यत्नेन मनुष्यो मन एवेष्टोमृत मनः।।

—अथर्व. ६/१८/१२

ईर्ष्या, द्वेष और घृणा करने वालों का मन वैसे ही मर-सा जाता है, जिस प्रकार मृत मनुष्य का मन मर जाता है या जिस प्रकार भूमि जड़ होती है। यह विचार कर कभी किसी से घृणा न करें।

- यथा सूर्यो नक्षत्राणामुग्रंस्तोऽज्ञायादवे।
एवा स्त्रीणां च पुंसां च द्विस्तं बर्षं आ दवे।।

—अथर्व. ७/१३/१२

सूर्य भगवान के प्रकाशित होते ही जिस प्रकार नक्षत्र-गण धूमिल पड़ जाते हैं वैसे ही हम भी द्वेष रखने वाले स्त्री-पुरुषों के प्रभाव को बढ़ने नहीं देंगे।

- शुष्मनी धावापृथिवी अन्तिमुने महिषते।
आयः सप्त सुसुवर्षीस्त नो मुष्यन्वर्षसः।।

—अथर्व. ७/१९७/१९

जिस प्रकार सूर्य, पृथिवी एक नियत व्यवस्था से वर्षा, प्रकाश और अन्न द्वारा प्रजा का हित सम्पादन करते हैं वैसे ही मनुष्यों को भी चाहिए कि वे इन्द्रियों को नियमित बनाकर अपराधों से बचने का प्रयत्न करते रहें।

- उल्लूक्यातुं शुश्रूक्यातुं जहि श्वयातुमुत कोक्यातुम्।
सुपर्णस्यातुम् नृपस्यातुं वृष्येव प्र मृण रक्ष इन्द्र।।

—अथर्व. ८/४/१२२

उल्लू के समान अज्ञानी, मोहग्रस्त, भेड़िये जैसा राग-द्वेष से युक्त, कोक जैसा कामातुर और गृध्र जिस प्रकार लालची होता है हे मनुष्यो ! तुम वैसा मत बनो। इनको कुचलकर रख दे तभी तेरा उत्कर्ष होगा।

- दूरे पूर्वैव वसति दूर ऊनेन हीयते।
मन्त्रं यत्नं भुवनस्य मध्ये तस्मै बलिं राष्ट्रं भूतोवरन्ति।।

—अथर्व. १०/६/१९५

विद्वान्, चरित्रवान् श्रेष्ठ पुरुषों के सत्संग से मनुष्य की उन्नति होती है, किन्तु मूर्ख, पतित मनुष्यों के पास रहने से दूसरों का भी पतन हो जाता है।

- इदं यत् पत्वेष्टिन् मनो वां ब्रह्मसंशितम्।
वेदैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः।।

—अथर्व. १६/६/१४

मन से कभी बुरे विचार न करो। स्वेच्छाचारी मन बड़े भयंकर दुष्परिणाम पैदा करता है अतः इसे सदैव वश में रखो और उन्नति प्राप्त करो। अच्छे विचारों से श्रेष्ठ जीवन का निर्माण होता है। इसलिये मन से अच्छे विचार ही किया करो।

- आद्युक्त्युः कृतां जीवायुष्मान् जीव मा मृयाः।
प्रानेयान्मनस्तां जीव मा मृत्योरुदगा वक्षम्।।

—अथर्व. १६/१२/१६

जितेन्द्रिय बनें और महापुरुषों के समान पुरुषार्थ द्वारा जीवन को सफल बनाओ।

- इदं आ धेहि मे तन्वां सह ओजो बयो वक्षम्।

इन्द्रियस्य त्वा कर्षणे दीर्याय प्रतिगृह्णामि शतवारवाय।।

—अथर्व. १६/१७/१२

हमारी इन्द्रियाँ शक्तिशाली रहें हम पराक्रमी हों इसके लिये शरीर में ओज, कान्ति, जीवन-शक्ति,

सहनशीलता आदि को धारण किये रहें। इस प्रकार हम सौ वर्ष तक जिएँ।

ईमानदारी और परिश्रम की कमाई

- अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे। यज्ञस्तं वीरवत्तमम् ॥

—ऋ. १/११/३

हम ईश्वर के बनाये नियमों से ही धन कमाएँ। बेईमानी का धन हमसे दूर रहे। अनुचित रीति से कमाया धन हम न रखें। धर्म से कमाओ और धर्म में खर्च करो।

- प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वा न्यति गृह्या नि धत्ते।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्योवेण सधत्ते सुवीरः ॥

—ऋ. १/१२५/१९

जो निरालस्यपूर्वक धर्माचरण द्वारा धन उपार्जित करता, उसकी रक्षा और उपभोग करता है तथा दूसरों के हित में भी उसी प्रकार लगता है, वह व्यक्ति इस संसार में सदैव सुखी रहता है।

- अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।

गुयोष्य ऋष्यजुहुराणमेनो भूयिष्ठां तेनमउक्तिविधेम।

—ऋ. १/१८६/१९

हम कुटिल कुटेवों को त्यागकर सदैव अच्छे मार्ग में चलकर धनधान्य की प्राप्ति करें।

- ये त्वा देवोन्निकं मन्यमानाः पापा भद्र भुक्जीवन्ति पत्राः।

न द्वद्वये अनु ददाति वामं बृहस्पते वयस इत्यियारुम् ॥

—ऋ. १/१९०/१६

जो मनुष्य ईश्वर-आराधना और शुभकर्म नहीं करते वे स्वभावतया बुद्धिहीन होते हैं इसीलिये वे स्वतः ही धन से वंचित बने रहते हैं।

- पर ऋणा सावीरय मत्कृतानि माहं राजन्नन्यकृतेन भोजम्।
अव्युष्टा इजु भूयसीरुषास आ नो जीवान्वरुण तासु शायि ॥

—ऋ. २/२८/१६

हे परमात्मन् मुझे शक्ति दो ताकि मैं पितृऋण, देवऋण तथा ऋषिऋण चुका सकूँ और भी जो ऋण लूँ उनको भी चुका दूँ। हे ईश्वर ! मैं और की कमाई न खाऊँ। मेरा जीवन भलीप्रकार अनुशासित रहे।

- शतहस्तः समाहर सहस्रहस्त तं किर।
कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह ॥

—अथर्व. ३/२४/१५

मनुष्य विद्या, बुद्धि, धर्म, गुण आदि के माध्यम से उत्साहपूर्वक धन पैदा करे, पर उसे लोक कल्याणकारी कार्यों में लगा दे।

- यद्विन्न यावत्तत्त्वमेतावदहमीशीय।
स्तोतारमिद्विधिषेय रदावतो न पापत्वाय रासीय ॥

—ऋ. ७/३२/१८

उचित रीति से कमाया धन, सत्कार्यों में लगाने से सद्गति प्रदान करता है। जो उसे पाप के कामों में लगाता है उसका नाश हो जाता है।

- न दुष्टुती मर्त्यो विन्दते वसु न श्रेयन्तं रयिर्नश्नत्।
शुशक्तिरिन्मघवन्नुष्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि ॥

—ऋ. ७/३२/२९

धन, पद, श्री और समृद्धि की प्राप्ति न्यायपूर्ण आचरण से होती है। अधर्म से कमाया धन विनाशकारी होता है।

- मो षु वरुण मृम्यं गृहं राजगृहं गमम्।
मुत्ता मुत्ता मुत्ता ॥

—ऋ. ७/८६/१९

मनुष्य को चाहिए कि अधिक परिश्रम और निरन्तर पुरुषार्थ द्वारा अपनी आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाये ताकि अपना समाज समुन्नत हो

- त्वं नो अस्या अमतेरुत शुषोश्मिन्नस्तेरव स्पृधि।
त्वं न उज्जी तव चित्रया धिया शिक्षा शविष्ठ गातुवित् ॥

—ऋ. ८/६६/१४

हम भिक्षावृत्ति के निन्दित कर्म से बचे रहें। हम विश्व-रहस्य का विचित्र ज्ञान प्राप्त करें और सदैव सन्मार्ग पर चलें।

- न वा देवाः शुषमिद्वर्धं वपुस्ताक्षितमुप गच्छन्ति मृत्यवः।

उतो रयिः पृणतो नोप वस्यस्युतापृणन्मर्द्धितारं न विन्दते ॥

—ऋ. १०/११७/१९

धन की उपयोगिता दुःखियों के अभाव दूर करने से है, इसलिए उसे सदैव चलते रहना चाहिए। अदानी, कंजूस और संग्रहवृत्ति के मनुष्य सदैव कष्ट ही पाते हैं। भय और आशंका बनी रहती है। इसलिए अपनी आवश्यकताओं से बचा हुआ धन समाज को दे देना चाहिए।

□ य आधाय चकमानाय पित्वोऽब्रवानुस्त्र
फितायोपजम्बुवे ।

स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरोतो चित्स मर्जितारं न
विन्दते ।।

—ऋ. १०/११७/१२

जो धन-धान्य से सम्पन्न होकर भी निकृष्ट
स्वार्थों में फँसा रहता है दुःखी और विपदाग्रस्त
लोगों की कुछ सहायता नहीं करता, ऐसे
अदानी पुरुष को घर वाले भी नहीं चाहते।
उससे सभी घृणा करते हैं।

□ मोघमत्रं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वय इत्स
तस्य ।

नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवसापो भवति
केवसादी ।।

—ऋ. १०/११७/६

दुर्बुद्धि मनुष्य के पास धन-संग्रह न होने पावे।
इससे वह अपने साथियों का हित नहीं करता।
जो इस प्रकार अकेला भोग भोगता है वह
निश्चय ही चोर है, पाप भोगता है।

□ परोऽपेक्ष्यसमृद्धे विते हेतं नयामसि ।

वेद त्वाहं निमीवन्तीं नितुदन्तीमराते ।।

—अथर्व. ५/१७/१७

निर्धनता मनुष्य को निर्बल बनाती है और दुःख
देती है इसलिये प्रयत्नपूर्वक इसे दूर भगावें।

□ ऊर्जं विभ्रद् वसुवनिः सुमेधा अघोरिण चक्षुषा
मित्रियेण ।

गृहानेमि सुमना वन्दमानो रमध्वं मा विभीत मत् ।।

—अथर्व. ७/६०/१७

हम सभी परिवार के सदस्य एक-दूसरे की
वन्दना करते हुए आनन्द से रहें। एक-दूसरे से
डरें नहीं। स्वार्थी बनकर किसी को कष्ट न दें।
जो धन कमाता है, उसकी नियत खराब न हो
अर्थात् वह अपने स्वार्थ को प्रमुख न माने।
सभी को समान भाव से देखे। सभी को
सुख दे।

□ प्र पतेतः पापि सखि नश्येतः प्रामुतः पत ।

अयस्मयेनाङ्गेन दिषते त्वा सजामसि ।।

—अथर्व. ७/११५/१९

हम पाप की कमाई अपने पास नहीं रखेंगे।
उसे सदैव अपने से दूर शत्रुओं के पास ही
रखेंगे।

ब्राह्मण, समाज और राष्ट्र

□ याभिः शचीभिर्वृषणा पराकृजं ग्रान्धं
श्रोणं चक्षस एतवे कृयः ।
याभिर्वर्तिकां प्रसिताममुज्यस्तं ताभिरु पु
ऊतिभिरश्विना गतम् ।।

—ऋ. १/११२/६

समाज में जो भी अपाहिज, अन्धे, लँगड़े, लूले
आदि हों वे घृणा के पात्र नहीं। उनके साथ
भी मानवता का व्यवहार करना चाहिए।

□ शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं वक्षस्यसम् ।
मा वां रातिरुप वसत्कदा चनास्मद्वातिः कदा चन ।।

—ऋ. १/१३६/१५

अध्यापक तथा उपदेशक उत्तम सदाचार की
लोगों को शिक्षा दिया करें ताकि किसी की
उदारता नष्ट होने न पाये।

□ नराशंसः सुबुदतीर्षं यज्ञमदाभ्यः ।
कविर्हि मधुहस्त्यः ।।

विद्वान् पुरुषों को चाहिए कि वे सत्य और
ज्ञान के सदुपदेश से लोगों को ऐसे ही सुखी
बनावें जैसे गाय अपने दूध से अपने पालक
को सुखी बनाती है।

□ यादृगेव ददृक्षे तादृगुच्यते सं छायाया दधिरे सिधयाप्सवा ।
यहीमस्मभ्यमुरुवापुर्न ज्ञयो बृहस्तुवीरमनपथ्युतं सहः ।।

—ऋ. ५/१४४/६

सच्चे वक्ता का लक्षण यह है कि जैसा आत्मा
में हो वही मन में, जो मन में हो वही वाणी
के द्वारा व्यक्त करें, अर्थात् जो स्वयं आचरण में
लाएँ वही उपदेश करें। जिससे सभी लोगों में
विद्या, बल और धन का सञ्चय स्थापित हो,
वही सदुपदेश है। उपदेशकर्ता अपना यही
कर्तव्य निर्वाह करें।

□ न ता नञ्जन्ति न दधाति तत्करो
नासामाभिज्ञो व्यथिरा दधर्षति ।
देवौश्व याभिर्यजते दाति च ज्योगिस्ताभिः
सधते गोपतिः सह ।।

—ऋ. ६/२८/१३

संसार का सर्वश्रेष्ठ दान ज्ञान-दान है, क्योंकि
चोर इसे चुरा नहीं सकते, न ही कोई इसे नष्ट
कर सकता है। यह निरन्तर बढ़ता रहता है
और लोगों को स्थायी सुख देता है।

- स्वधरा करति जातवेदा यज्ञदेवो अमृताम्भिष्यञ्च ।

—अ. ७/१७/१४

जो अपने शिष्यों को विद्वान, सुशील और सदाचारी बनाता है, वह शिक्षक सर्वथा प्रशंसा के योग्य है।

- ब्राह्मणासः सोमिनो वाचस्पकृत ब्रह्म कृष्णतः परिवर्त्तरीणम् ।

अध्वर्यवो धर्मिणः सिध्दियाना आधिर्षवन्ति गुह्या न के चित् ।।

—अ. ७/१०/३५

ब्राह्मण वह है जो शान्त, तपस्वी और यजनशील हो, जो स्वयं ब्रह्मवेत्ता हो और संसार को ज्ञान देकर भूले-भटके हुआ को राह लगाता हो ऐसे ब्राह्मण छुपकर न रहे। संसार के समक्ष आकर लोगों का उपकार करें।

- उदुबुध्यध्वं समनसः सखायः सपग्निमिन्ध्वं बह्वः सनीताः ।

वधिकापग्निमुपसं च देवीमिन्ध्वतोऽवसे नि ह्ये वः ।।

—अ. १०/१०/११

जिस समाज में अधिक से अधिक लोग एक मन, विचार और संकल्प वाले होते हैं, वह समाज उन्नतशील होता है। वहाँ के लोग तेजस्वी होते हैं।

- निराह्वानकृणोतन सं वरत्रा दधातन । सिन्ध्यामह्य अकृतमुद्रिणं वयं कुपेकमनुपक्षितम् ।।

—अ. १०/१०/१५

भूमि पर पेट पालन करने वाला किसान होता है। अतः समाज में उसको श्रेष्ठ स्थान मिले। शिक्षित जन ही अच्छे किसान हो सकते हैं।

- समानो मंत्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेवाम् ।

समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ।।

—अ. १०/१९/१३

सभी मनुष्यों के विचार समान हों सब संगठित होकर रहें। तुम्हारे मन, चित्त तथा यज्ञ कार्य समान हों अर्थात् मिल-जुलकर रहें।

- संक्षितं य इव ब्रह्म संक्षितं वीर्यं १ बलम् । संक्षितं क्षत्रमजरमस्तु जिष्णुर्येवामस्मि पुरोहितः ।।

—अध्व. ३/१९/१७

जिनका ज्ञान और दुरित निवारण की शक्ति बिलकुल क्षीण हो गई है। हम पुरोहित उन्हें फिर जाग्रत करेंगे।

- नीचैः पयन्तामबरे भवन्तु ये नः सूरि मयवानं पूतन्मान् । सिनामि ब्रह्मनामिमानुभवामि स्नानहम् ।।

—अध्व. ३/१९/१३

मैं स्वयं ज्ञान से सम्पन्न होकर मनोनिग्रहपूर्वक अपने यजमानों को ऊँचा उठाने का प्रयत्न करता रहूँगा। वे दुष्कर्मों की ओर न बढ़ें, किसी के हितों को अपहरण न करें, इसका ध्यान रखूँगा।

- तीक्ष्णीयांसः परशोरग्नेस्तीक्ष्णतरा जत । इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसो येचामस्मि पुरोहितः ।।

—अध्व. ३/१९/१४

हम पुरोहित अपने यजमानों को क्रियाशील, तेजस्वी, परोपकारी और शक्तिवान रखेंगे। उन्हें अधोगामी न होने देंगे।

- एषामहमायुषा सं स्याम्येषां राष्ट्रं तुवीरं बर्धयामि । एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्णुर्देव्यां चित्तं विष्णोऽजन्तु देवाः ।।

—अध्व. ३/१९/१५

हम पुरोहित राष्ट्र के नागरिकों की शक्ति निर्बल न होने देंगे। राष्ट्र में वीरों का अनुभव न हो यह हमारा उत्तरदायित्व है, उनकी विजय कामना को मैं गिरने नहीं दूँगा।

- त्वया मय्यो सरयमारुजन्तो हर्मयान्त हवितासो मरुत्वम् ।

सिन्धेयव आयुषा संक्षिप्ताना उप प्र वन्तु नरो अग्निस्तपाः ।।

—अध्व. ४/११/१९

हमारे सैनिक बलशाली और शत्रु-मर्दन की योग्यता रखते हों और सदैव प्रसन्न रहने वाले हों। उनके अस्त्र कुण्ठित न हों। राष्ट्र रक्षा में वे अपने हितों को होम देने को तत्पर रहें।

- अति पावतास्तिरा इन्द्रस्य वधता हत । अविं वृक इव मन्वीत स वो जीवन् मा नोपि प्राणामस्यापि नश्यत ।।

—अध्व. ५/१८/१४

उठो, दौड़ो और युद्ध में जाकर राष्ट्र के शत्रुओं का विनाश करो। जैसे भेड़िया भेड़ों को मारता-दबोचता है उसी प्रकार तुम भी दुश्मनों की सेना को अस्त-व्यस्त कर डालो, कुचल डालो, मार डालो।

- ब्रह्मगवी पथ्यमाना यावत् तापि विजङ्गहे । तेजो राष्ट्रस्य निर्हन्ति न वीरो जायते वृषा ।।

—अध्व. ५/१९/१४

जहाँ ब्रह्मवेत्ताओं का अपमान होता है, वहाँ कोई तेजस्वी तथा वीर नहीं होता। वह राज्य नष्ट हो जाता है।

- उग्रो राजा मन्यमानो ब्राह्मणं यो जिघत्सति ।
परा तत् तिष्ठते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते ॥

—अथर्व. ५/१९/६

जिस राष्ट्र में ब्राह्मणों का निरादर किया जाता है वह राज्य ज्ञानहीन होकर नष्ट हो जाते हैं।

- योऽस्मान् द्रष्टि यं वयं द्विष्मस्तस्य त्वं प्राणेना
प्यायस्व ।

आ वयं प्याशिषीमहि गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृ-
हैर्धनेन ॥

—अथर्व. ७/८/१५

हे ईश्वर ! जो हमसे बैर-विरोध रखते हैं, उन्हें भी लक्ष्मी उग्र प्रदान कर। उनकी भी उन्नति हो। वे भी पुत्र-पौत्र, पशु और धन-धान्य से परिपूर्ण हों।

- इदमिन्द्र शृणुहि सोमय यत् वा इदा शोचता
जोहवीभिः ।

वृश्चामि तं कुत्तिशेनेव वृक्षं यो अस्माकं मन इदं
हिनस्ति ॥

—अथर्व. २/१२/१३

कई व्यक्ति ऐसे होते हैं जो लोगों को अकारण भयभीत बनाकर उनका मनोबल गिरा देते हैं। लोग घबराये हुए से रहते हैं, जिससे उनका उत्साह गिर जाता है और साहसहीन हो जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों को कठोर दण्ड देना राष्ट्र के लिये हितकारक होता है।

- आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः ।
प्रजापतिर्वि राजति विराडिन्द्रोऽम्बवद्वशी ॥

—अथर्व. ११/१७/१६

हमारे शिक्षक, नेता और अधिकारी ब्रह्मचारी हों। वे चरित्रभ्रष्ट न हों, अनर्थमूलक असामाजिक तत्वों का विकास होगा और राष्ट्र पतित हो जाएगा।

- यस्यां पूर्वं पूर्वजना विचक्रे यस्यां देवा
असुरानभ्यवर्तयन् ।

गवामश्वानां वयसश्च विष्टा भगं बर्चः पृथिवी नो
वपातु ॥

—अथर्व. १२/११/५

जिस राष्ट्र का हमारे पूर्वजों ने निर्माण किया है और दुष्टों से रक्षा की है, उसके निर्माण के लिए हम अपना त्याग और बलिदान करने को तैयार रहें।

- यां रक्षन्त्यस्वन्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमग्रमादम् ।
सा नो मधु प्रियं दुहामयो उन्नतु बर्चसा ॥

—अथर्व. १२/१७/१७

राष्ट्र के निर्माण के लिए हम सब नागरिक कर्मशील और जागरूक हों। आलसी और प्रमादी व्यक्ति जिस देश में होते हैं, वह देश गुलाम हो जाता है।

- उपस्थास्ते अन्मीवा अयन्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि
प्रसूताः ।

दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः
स्याम ॥

—अथर्व. १२/१७/१८

मातृभूमे ! हम तुम्हारी गोद में पलते हैं और तेरी ही गोद में आरोग्यकारक पदार्थ प्राप्त करते हैं। इसलिये समय आने पर तेरे लिये बलिदान देने से भी पीछे न हटें।

- उत् तिष्ठ ब्राह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय ।
आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं च बर्धय ।

—अथर्व. १८/६३/१७

ब्राह्मण को चाहिए कि वह स्वयं सावधान होकर दूसरों को दुष्कर्मों की ओर जाने से रोके और यजमानों का कल्याण करे।

- अनु प्रत्नस्यौकतो हुवे तुष्यति नरम् ।
यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥

—साम. ७/४४

गुरु अपने शिष्यों को ईश्वर उपासना में लगावें। यह परम्परा सदैव ही चलती रहे।

- शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमगिरिः ।
या धावापृथिवी अधि शोषीर्मात्सरिर्वा या वनस्पतीन् ॥

—यजु. ११/४५

हे अगिरा ! तू पृथ्वी और आकाश में रहने वाले सम्पूर्ण जीवधारियों की रक्षा कर। किसी को कष्ट न दे। जो वृक्ष-वनस्पति हैं, उन्हें भी बेकार बर्बाद न करो।

- यत्र ब्रह्म च वज्रं च सम्यज्जी चरतः सह ।
तैस्तोक्तं पुण्यं प्रक्षेपं यत्र देवाः सहाग्निना ॥

—यजु. २०/१५

जहाँ ज्ञान द्वारा सत्कर्मों का जाग्रत रखना जरूरी है, वहाँ शस्त्र द्वारा दुष्टों का संहार भी आवश्यक है। ज्ञान और कर्म के संयोग से ही सर्वांगपूर्ण आध्यात्मिक जीवन बनता है। जहाँ यह व्यवस्था रहेगी वह समाज सदैव फूलता-फलता रहेगा।

□ रुचन्नो वेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु
नस्कृषि ।

रुचं विन्त्येषु भूदेषु मयि वेहि रुचा रुचम् ।।

—यजु. १८/१८

हमारे ब्राह्मण तेजस्वी हों, क्षत्रिय तेजस्वी हों,
वैश्य और शूद्र सभी तेजस्वी हों ।

□ यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि चिकित्सति ।।

—यजु. ४०/१६

जो सम्पूर्ण प्राणियों के दुःख-सुख, हानि और
लाभ को ऐसे देखता है जैसे अपने दुःख-सुख
देखता है, उसकी सभी द्विविधाएँ मिट जाती
हैं। वह सभी में एक परमात्मा ही रमा हुआ
देखता है ।

□ आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्षसी जायतामा
राष्ट्रे राजन्यः शूर ५ इष्योतिष्याधी महारथी
जायतां वोष्ठी धेनुर्वायनद्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा
जिष्णू रवेष्टाः सभेयो युवास्त्य यजमानस्य
वीरो जायतां निक्रमे-निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु
फलवत्यो नऽ ओषधयः पथ्यन्ताम् योगक्षेमो नः
कल्पताम् ।

—यजु. २२/२२

हे परमात्मा ! हमारा देश महान हो । इसमें ब्रह्मवेत्ता
पुरुषों की कमी न रहे । शस्त्र विद्या में पारंगत
योद्धाओं से भरा-पूरा रहे । राष्ट्र की रक्षा करने वाले
क्षत्रियों का भी अभाव न हो । दूध देने वाली गाएँ
बैल आदि पशुधन की उन्नति होती रहे, माताएँ
विदुषी हों । संतान तेजस्वी वीर और चतुर हो ।
समय पर वर्षा हो । हमारी धरती में फल-फूल और
औषधियों की कमी न रहे ।

□ न पञ्चभिर्दक्षभिर्दध्यारभं नासुम्बता सक्तो
पुष्यता घन ।

जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनिरा देव्युं भजति
गोमति ब्रजे ।।

—ऋ. ५/१४/१५

आलसी मनुष्य अपना पुरुषार्थ गँवा देते हैं, जिससे
उन्हें कहीं भी सफलता नहीं मिलती । उन्हें सभी
ओर निराशा के ही दर्शन करने पड़ते हैं ।

□ यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु
सामानि यन्ति ।

यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये
न्योकाः ।।

—ऋ. ५/१४/१४

आलस और प्रमाद से जो सदैव सावधान रहता
है, उन्हीं को इस संसार में ज्ञान और विज्ञान

प्राप्त होता है, उन्हें ही शान्ति मिलती है । वे
ही महापुरुष कहलाते हैं ।

□ धृतव्रतो धनदाः सोमवृद्धः स हि वामत्स्य वसुनः
पुरुषः ।

सं जग्मिरे पथ्या ३ रायो अस्मिन्समुद्रे न सिन्धवो
यादमानाः ।।

—ऋ. ६/१९/१५

समुद्र को यद्यपि कोई कामना नहीं होती तो
भी अनेकों नदियाँ उसमें लीन होती रहती हैं,
उसी प्रकार उद्योगी पुरुषों की सेवा सदैव लक्ष्मी
करती है अर्थात् जो सदैव उद्योग करते हैं,
उन्हें कभी धन का अभाव नहीं सताता ।

□ इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।
यन्ति प्रमादमत्तन्त्राः ।।

—ऋ. ८/२/१८

आलसी व्यक्ति सदैव दुःखदायी होते हैं इसलिए
हम सबको कर्मनिष्ठ और उद्योगी बनना
चाहिए ।

□ त्रातारो देवा अथि बोक्षता नो मा नो निद्रा ईक्षत
मोत जस्यिः ।

वयं सोमस्य विश्वह प्रियासः सुवीरातो विवक्षमा बदेम ।।

—ऋ. ८/४८/१४

आलस्य और व्यर्थ वार्तालाप से बचने के लिए
सदैव क्रियाशील रहना चाहिए । हम दुर्गुणों से
दूर रहें । श्रेष्ठ सन्तान को जन्म दें और सर्वत्र
हमारे ज्ञान की चर्चा हो ।

□ सक्तथोऽसि प्रतिसरोऽसि प्रत्यभिचरणोऽसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमिति समं काम ।।

—अथर्व. २/११/२

पुरुषार्थवान व्यक्ति अपने सरल और निष्कपट
स्वभाव के कारण सदैव अग्रगामी होकर अपने
संकट मिटा डालते हैं और सफलता प्राप्त
करते हैं ।

□ ज्ञायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यीष्ट संराधयन्तः
सधुराश्चरन्तः ।

अन्यो अन्यस्मै बल्य बवन्त एत सग्रीचीनान्
वः संमनसस्तृणोमि ।।

—अथर्व. ३/३०/१५

सभी मनुष्य अपनी-अपनी शक्ति योग्यता और
सामर्थ्य के अनुरूप कार्य करते हुए, समृद्धि
प्राप्त करते हुए भी एक मन वाले बने रहें ।
उनके विचार एक-दूसरे से विपरीत न हों । सब

१८-१८ विचारसार एवं सुक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

एक स्थान पर रहें और सभी की एक-सी चित्तवृत्तियाँ बनी रहें।

- अक्षी च ते मुखं च ते व्याघ्र जम्भयामसि ।
आत् सर्वां विंशतिं नखान् ॥

—अथर्व. ४/१३/१३

हे व्याघ्र ! तू मेरे सामने तो आ। मैं तेरी आँखें फोड़ डालूँगा और तेरे सारे नख उखाड़ कर फेंक दूँगा।

- ममान्ने बर्षो विहवेष्टस्तु बर्षं त्वेयानास्तन्वं पुष्ये ।
मस्यं नमन्तां प्रविशन्त्यस्तस्त्वयाव्यखेन पूतना जयेम ॥

—अथर्व. ५/१३/१९

मनुष्य को चाहिए कि वे संघर्ष से विचलित न हों और परमात्मा की उपासना करते हुए अपनी आत्मा और शरीर को बलवान और पुष्ट बनावें ताकि संसार में उन्हें कोई पद-दलित न कर सके।

- अनुकूलः पुनरेहि विद्वानुदयनं पथः ।
आरोहणमक्रमणं जीवतोऽजीवतोऽप्यनम् ॥

—अथर्व. ५/१३/१०

मनुष्य ! तू सदैव ऊँचा उठ। यही तेरा धर्म है।

- पथमानः पुनातु मा क्रत्वे दत्ताय जीवते ।
अथो अरिष्टतातये ॥

—अथर्व. ६/१९६/१२

हे परमात्मा मेरे हृदय में भक्तिभाव और कर्मण्यता का विकास हो। जीवन और आरोग्य प्राप्त हो। मुझे सभी ओर से पवित्र बनाइये।

- अब मा पाप्मन्सृज बशी सन् मृडयासि नः ।
आ मा भद्रस्य लोके पाप्मन् वेष्टयविहृतम् ॥

—अथर्व. ६/१२६/१९

जीवन में अनेकों विघ्न-बाधाएँ आती हैं, जो इन्हें प्रयत्नपूर्वक हटाते हैं पर विचलित नहीं होते वही पुरुषार्थी आनन्द पाते हैं।

- भद्रावधि मेयः प्रेहि बृहस्पतिः पुरस्ता ते अस्तु ।
भद्रावधि मेयः प्रेहि बृहस्पतिः पुरस्ता ते अस्तु ।
सर्ववीरम् ॥

—अथर्व. ७/१८/१९

जो लोग पुरुषार्थ करते हुए परमात्मा की शरण नहीं छोड़ते वे—निर्विघ्नतापूर्वक अपना लक्ष्य पूरा कर लेते हैं।

- कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः ।
गोविद् भूयासमश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित् ॥

—अथर्व. ७/१५०/८

हे मनुष्यो ! सुख प्राप्ति के लिए तुम्हें पराक्रम करना ही होगा।

- उत् क्रामातः पुरुष माव पत्या मृत्योः
पद्मीशमवमुष्यमानः ।

मा चित्वा अस्मात्सोकादग्नेः सूर्यस्य संवृक्षः ॥

—अथर्व. ८/११/४

हे मनुष्यो ! तुम्हें अपनी वर्तमान अवस्था से ही सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। तुम आगे बढ़ो और शरीर तथा आत्मबल के द्वारा पुरुषार्थ सम्पन्न करो।

- उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवानां ते दक्षतातिं कृणोमि ।
आ हि रोहेमममृतं सुखं रथमथ जिर्विद्वद्यमा बदासि ॥

—अथर्व. ८/१९/६

समाज में सम्मान उन्हें मिलता है, जो दैवेच्छा और गुरुजनों की शिक्षा मानकर कठिनाइयों में भी आगे बढ़ते रहते हैं। उन्हीं की सर्वत्र प्रशंसा होती है।

- सत्यं बृहदृतमुग्रं वीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं
धारयन्ति ।

सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युक्तं लोकं पृथिवी नः
कृणोतु ॥

—अथर्व. १२/१९/१९

इस संसार में उन्नति वे लोग करते हैं, जो परमात्मा तथा विद्वानों से प्रेम करते, सत्यकर्म, ज्ञानी और जितेन्द्रिय होते हैं। अभी तक ऐसा ही हुआ है और आगे भी ऐसा ही होगा।

- अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह बाचा मयोभुवा ।

देवेभ्यः कर्म कृत्वास्तं प्रेत सचाभुवः ॥

—यजु. ३/४७

आलस्य का त्याग करके पुरुषार्थी बने, मूर्खता त्यागकर वेदज्ञान प्राप्त करो, मधुर बोलो और परस्पर मिल-जुलकर एक-दूसरे की सहायता करो आपको इसी से इहलौकिक और पारलौकिक सुखों की प्राप्ति होगी। आलसी और काहिल व्यक्ति कहीं भी आनन्द नहीं पाते।

- उक्ताम महते सौभगायास्मादास्थानाद् ब्रविणोवा
वाजिनः ।

वय स्याम सुमती पृथिव्या ऽ अग्निं खनन्त ऽ उपस्थे
अस्याः ॥

—यजु. ११/२९

ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये हे मनुष्यो ! निरन्तर उद्यत रहो और आपस में सभी लोग मिल-जुलकर पदार्थ, धन और रत्न आदि प्राप्त करो।

सत्संग से दुरित निवारण

- विश्वा उत त्वया वयं धारा उदय्याद्वय ।
अति गाहेमहि द्विषः ।।
—ऋ. २/१७/१३
- पानी की धारा एक जगह नहीं टिकती। ऐसे ही बैर की भावनाएँ भी एक स्थान पर रुकने न पावें। शत्रुभाव त्यागकर मित्रभाव जाग्रत करना चाहिए।
- एषा त इन्द्रोचयमहेम श्रवस्या न त्वना बाजयन्तः ।
अस्याम तत्साप्तमाशुषाणा ननमो बधरदेवस्य पीयोः ।।
—ऋ. २/१९६/१०
- जो मनुष्य अनुचित शब्द नहीं बोलते, बुरी वस्तुओं को ग्रहण नहीं करते, श्रेष्ठता की पूजा करते और असत तत्वों को निकालकर बाहर भगा देते हैं और जिनका ज्ञान सात्त्विक हो वहीं आप्त-पुरुष कहे जाते हैं।
- अग्ने शक्नेम ते वयं यमं देवस्य बाजिनः ।
अति देवांसि तरेमः ।।
—ऋ. ३/१२७/१३
- जिन्हें मोक्ष-प्राप्ति की कामना हो उन्हें चाहिए कि वे द्वेष और दुर्गुणों से बचकर जीवन-पथ पर चलें। इसके लिये उन्हें विद्वान् पुरुषों का सत्संग करना और उत्तम रीतियों को धारण करना चाहिए।
- एतो न्वग्र्य सुष्योः भवाम प्र दुष्पुना भिनवाना बरीयः ।
आरे देवांसि सनुतर्दधाभायाम प्राज्यो यजमानमच्छः ।।
—ऋ. ५/१४५/१५
- सच्ची प्रशंसा के पात्र वे हैं जो द्वेष-दुर्भावनाओं से रहित सनातन सत्य का अनुशीलन करते हैं। दुष्ट का निवारण करने और विज्ञान को बढ़ाने वाले पुरुष ही सम्मान के अधिकारी होते हैं।
- ईशे ह्य ऋग्निनरमृतस्य भूरीशे रायः सुवीर्यस्य दत्तोः ।
मा त्वा वयं सहसावब्रवीरा माप्सवः परि भवाम मापुवः ।।
—ऋ. ७/१४/१६
- हे मनुष्यो ! जो परमात्मा ज्ञान, विज्ञान और लक्ष्मी से तुम्हें तृप्त करता है, उसके समीप रहकर वीरता, सुन्दरता और सेवावृत्ति से विमुक्त होकर कभी कृतघ्न न बनना।

- यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथ ऋतव ऋतुभिर्यन्ति साधु ।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूषि कल्पयेवाम् ।।
—ऋ. १०/१९८/१५
- हमारा जीवन-क्रम इस प्रकार से हो जैसे दिन के बाद दिन और ऋतु के बाद दूसरी ऋतु आती है। कभी कोई छोटी आयु वाला बड़ी आयु वाले के समक्ष न मरे।
- आदित्यासो अदितयः स्याम पूर्ववद्वा वसवो मर्यावा ।
सनेम मित्रावरुणा सनन्तो भवेम धावापृथिवी भवन्तः ।।
—ऋ. ७/१५२/१९
- मनुष्य को चाहिए कि वह सदैव विद्वानों के सम्पर्क में वास करे, सत्य और असत्य का विवेक भाव जाग्रत रखे। सूर्य और पृथ्वी के समान परोपकारी और प्राण व उदान के समान कल्याण करने वाला व्यक्ति ही महान कहलाने का अधिकारी होता है।
- आ रोहतायुर्वरसं वृणाना अनुपूर्वं यत्माना यतिष्ठ ।
इह त्वष्टा सुजनिमा सजोषा दीर्घमायुः करति जीवसे वः ।।
—ऋ. १०/१९८/१६
- जिन्हें दीर्घजीवन की कामना है, वे संयमित जीवन द्वारा स्वास्थ्य बनाये रखें, सन्तोष और प्रीतिपूर्वक जीवन जीएँ, सदैव कर्मशील बने रहें। उत्तम सन्तान उत्पन्न करें और कुशलता प्राप्त करें।
- आ नो वयो वयश्चर्यं महान्तं गद्रेष्वायुः ।
महान्तं पूर्वग्रेष्वायुं वयो अपावयीः ।।
—साम. ३५३/१
- हमें विद्वान् पुरुषों के सदुपदेश ग्रहण कर अपनी आत्मा और मन को निर्मल एवं पवित्र बनाना चाहिए। दोष और दुर्गुणों का नाश इसी प्रकार से होगा।
- यथा धीमन् पृथिवी च न विधीते न रिच्यते ।
एषा मे प्राण या विरेः ।।
—अथर्व. २/१५१/१९
- पृथिवी, आकाश आदि लोक परमात्मा की इच्छानुसार सदैव जगत् का उपकार करते हैं वैसे ही मनुष्य को भी चाहिए कि वह पापों को त्यागकर सुकर्माँ द्वारा लोकोपकार करे। निर्मय और सुखी रहे।
- उत देवा अवहितं देवा उग्रयथा पुनः ।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः ।।
—अथर्व. ४/१३१/१९
- जो पददलितों को ऊपर उठाते हैं, अपराधियों को पापों से विमुक्त बनाते हैं। सन्तजन महान

- हैं। ऐसे महापुरुषों के समीप रहकर अपने दोष-दुर्गुण त्यागकर जीवन-शोधन करें।
- यस्तिष्ठति चरति यश्च ब्रजति
यो नित्यं चरति यः प्रतङ्गम्।
द्वौ संनिष्य यन्मंत्रयेते
राजा तद वेद वरुणस्तृतीयः॥
—अथर्व. ४/१६/१२
- मनुष्य कितना ही छुपकर पाप क्यों न करे परमात्मा उसे जान लेता है और उसका उचित दण्ड देता है। इसलिए पाप से सदैव बचते रहना चाहिए।
- असद् भूम्याः समभवत् तद् यामेति महद् व्यथः।
तद् वै ततो विधूपायत प्रत्यक् कर्तारमृच्छतु॥
—अथर्व. ४/१६/१६
- दुष्टतापूर्ण कर्म चाहे छोटे हों अथवा बड़े अन्त में करने वाले का ही सर्वनाश करते हैं। उनका प्रतिफल उन्हें ही भोगना पड़ता है।
- मह्यं यजन्तां मम यानीष्टाकृतिः सत्या मनसो मे अस्तु।
एनो मा नि गां क्तमध्वनाहं विश्वे देवा अभि
रक्षन्तु मेह॥
—अथर्व. ५/१३/१४
- विशुद्ध अन्तःकरण से विचारपूर्वक नेक कर्म करने का संकल्प लिया करें और उसे पूरा किया करें। दुष्कर्म का त्याग और सद्गुणों को विकसित करना ही मनुष्य जीवन का लक्ष्य है।
- अब जहि यत्तुधानानव कृत्याकृतं जहि।
अथो यो अस्मान् दिप्सति तमु त्वं जह्योसथे॥
—अथर्व. ५/१४/१२
- अब जिस तरह भूख मिटाता है वैसे सद्गुणों को अपने जीवन में धारण कर हम दोष-दुर्गुणों को दूर भगावें।
- ह्रुपदादिव मुमुक्षानः स्विन्नः स्नात्वा मलादिव।
पूतं पवित्रेणेवाप्यं विश्वे शुम्भन्तु मैनसः॥
—अथर्व. ६/११५/१३/१
- पाप और मल-विकारों से शुद्ध रहने वाले व्यक्ति ही इस जीवन का आनन्द प्राप्त करते हैं।
- सुविज्ञान चिकितुषे जनाय सच्चासम्ब वचसी पस्पृधाते।
तयोयत् सत्यं यतरद्वृजीयस्त्वित् सोमोज्जति ह्यस्यासत्॥
—अथर्व. ८/१४/१२/१
- विवेकवान् पुरुष उसे कहते हैं, जो सत्य को ग्रहण करता है और असत्य का त्याग करता है।

- यथा मक्षा इदं मधु न्यञ्जयन्ति मथावधि।
एवा मे अश्विना वर्धस्तेजो बलमोजश्वध्रयताम्॥
—अथर्व. ६/११/१०
- बुद्धिमान् व्यक्ति विद्वानों की शिक्षाएँ ग्रहण कर लेते हैं, भौरा फूलों से रस लेता है, वैसे ही माता-पिता अपनी सन्तान को उच्च शिक्षा देकर बलशाली और पराक्रमी बनावें।
- यथा वातश्च्यवयति भूम्या रेणुमन्तरिक्षाध्याग्रम्।
एवा मत् सर्वं दुर्भूतं ब्रह्मनुत्तमपायति।
—अथर्व. १०/११/१३
- मनुष्य सदुपदेश ग्रहण करने में देर न करे और दुष्कर्मों का त्याग शीघ्रता से करे।
- यश्च गां पदा स्फुरति प्रत्यङ् सूर्य च मेष्ठति।
तस्य वृश्वाभि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम्॥
—अथर्व. १३/११/१६
- जो सत्य और ज्ञान का बहिष्कार कर विद्वानों को कष्ट देता है वह दण्डनीय है।
- प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टाः अरातयो निष्पत्तं रक्षो
निष्पत्ताः अरातयः। उर्वन्तरिक्षमन्वेमि॥
—यजु. १/१०
- मनुष्यों का यह कर्तव्य है कि वह अपना दुष्ट स्वभाव त्यागकर, विद्या और धर्म के प्रसार के द्वारा दूसरों को भी अधर्म और दुष्टता के व्यवहार से बचाने का प्रयत्न करे। ज्ञान और सुख देकर सभी व्यक्तियों को विद्यावान्, धर्मशील और पुरुषार्थवान् बनाना ही हमारा परम कर्तव्य है।
- तद्विष्णोः परमं पदं रक्षः सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम्॥
—यजु. ६/१५
- अपने जीवन के मल-विकारों को त्यागकर विद्वान् पुरुष अपने ज्ञान से ईश्वर को प्राप्त कर लेते हैं, तब उनके कर्म भी धर्म और सत्य से आविर्भूत होते हैं। हम भी परमात्मा के दर्शन प्राप्त करने के लिये अपने दोष-दुर्गुणों का निवारण करते रहें।
- भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यज्ञज्ञाः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाग्ँ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं
यदायुः॥
—यजु. २५/२१
- हम विद्वान् पुरुषों के साथ रहकर—सुन्दर शब्द सुनें, सत्य देखें और परमात्मा की उपासना करें ताकि हमारी आयु लम्बी हो। हम असत्य सम्भाषण न करें,

झूठी प्रशंसा न सुनें, खोटा न देखें और व्यभिचार की ओर हमारी प्रवृत्ति न हो।

- अश्मन्वती रीयते स२३ रमन्वमुत्तिष्ठत प्र तरता
सखायः।

अत्रा जहीमोशिवा ये अतश्छिवान्वयमुत्तरेमाभि
वाजान्।।

—यजु. ३५/१०

अशुभ आचरणों और दुष्टजनों से बचने के लिए उद्यम और सदाचरण का आश्रय लेना वैसा ही है जैसे किसी जहाज (बड़ी नाव) में बैठकर सागर पार करते हैं।

- उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च।
सास्त्रद्वैश्चाभियुग्वा च विक्षिपः स्वाहा।।

—यजु. ३६/१०

धर्मात्मा इस संसार में शान्त रहते हैं, जो किसी को सताते नहीं वे निर्भय, योगी, प्रकाशयुक्त, जितेन्द्रिय, चञ्चलतारहित होकर सुख पाते हैं। किन्तु पापाचारी पुरुष, कठोर, भय देने वाले भयभीत, मूर्ख और इन्द्रियों के दास दुःखी व विक्षिप्त होकर विविध योनियों में भ्रमण करते रहते हैं।

स्वास्थ्य और आरोग्य

- जुषस्व सप्रयस्तमं वधो देवप्सरस्तमम्।
हव्या जुह्वन आसनि।।

—ऋ. १/१०५/१९

शारीरिक और आत्मिक सुख प्राप्त करना चाहते हो तो अपने आहार, विहार और चेष्टाओं में सादगी रखो। ब्रह्मचारी बनो।

- स्वादो पितो मधो पितो वयं त्वा ववृमहे।
अस्माकमविता भव।।

—ऋ. १/१८७/१२

मनुष्य को ऐसा आहार करना चाहिए जो मधुर, रसयुक्त स्वादिष्ट अन्न से आयुर्वेद की रीति से बनाया गया हो। जो रोग नष्ट कर आयुबल की रक्षा करता हो वही आहार ग्रहण करना चाहिए। तीखे, कसैले, वासीबुसा और मांस आदि का प्रयोग घृणित होता है।

- वधिष्या जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम्
तव युक्तास इन्दवः।।

—ऋ. ३/१०/१५

हमारा आहार ऐसा हो जिससे हमारी बुद्धि, अवस्था और बल में निरन्तर वृद्धि होती रहे।

- मा नो हेतिर्विवस्वत आदित्या कृत्रिणा शरुः।
पुरा नु जरसो बधीत्।।

—ऋ. ८/६७/२०

हमारा जीवन इस प्रकार हो कि पूर्ण आयु प्राप्त करें। हमारी अकाल मृत्यु न हो इसलिये हम संयमित जीवन जिएँ।

- यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।
उञ्जतीरिव मातरः।।

—ऋ. १०/१६/१२

जल मनुष्य के लिये कल्याणकारी होता है इसके सेवन से बाह्य और आन्तरिक मल-विक्षेप दूर होते हैं।

- आपो अस्मान्मातरः शुच्यन्तु घृतेन नो घृतपः पुनन्तु।
विश्वं हि रिं प्रवहन्ति देवीरुविदाभ्यः।
शुचिरा पूत एमि।।

—ऋ. १०/१७/१०

जल से मनुष्य को जीवन प्राप्त होता है। मल-शोधन होता है शरीर पवित्र होता है, अतः हम शारीरिक निर्मलता और मानसिक प्रसन्नता के लिये स्नानादि के द्वारा जल का प्रयोग करते रहें।

- यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा।
सुवाति सविता भगः।।

—साम. १३५/१

प्रातःकालीन प्राणादि वायु सूर्योदय के पूर्व तक निर्दोष रहती है। अतः प्रातःकाल जल्दी उठकर इस प्राणवायु का सेवन करना चाहिए। इससे स्वास्थ्य और आरोग्य स्थिर रहता है तथा धन प्राप्ति होती है।

- तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय त्विन्दवः।
आपो जनयथा च नः।।

—साम. १८३६/१

जल के विधिवत और नियमपूर्वक सेवन से सर्वांग नीरोगिता की प्राप्ति होती है और पुत्र आदि की भी प्राप्ति होती है।

- उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा।
स नो जीवात्तवे कृषि।।

—साम. १८४१/१

वायु जीवन है, आरोग्यदाता है अतः प्रातःकाल उठकर प्राणदायक वायु नियमित सेवन करें। यह पिता, भाई और मित्र के समान सुख देता है।

- अन्नपतेन्नस्य नो देस्यनमीवस्य शुष्णिगः ।
प्रप्र दातारं तारिष उज्जं नो वेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥

—यजु. ११/८३

हे मनुष्यो ! सदैव पुष्टिदायक और आरोग्यकारी अन्न का ही सेवन करें। दान में भी ऐसा ही अन्न प्रदान करें। इससे तुम्हारा बल बढ़ेगा। पशु, धन और सुख की प्राप्ति होगी और उन्नति की सम्भावनाएँ बढ़ेंगी।

- शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः ।
अथा शतक्रत्वो यूयमिधं मे अगदं कृत ॥

—यजु. १२/१०६

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का प्रमुख साधन मनुष्य का शरीर है। इसीलिये उचित आहार, संयमित विहार और आचरण में पथ्य का ध्यान रखकर अपना आरोग्य स्थिर रखना चाहिए। रोगरहित शरीर ही सर्व सुखों का मूल है।

- ऋचीते परि वृद्धिर्नोश्मा भवतु नस्तनूः ।
सोमो अथि ब्रवीतु नोदितिः शर्म यच्छतु ॥

—यजु. २६/१८६

जिस प्रकार मनुष्य पृथ्वी में अपना घर बनाकर निवास करता है, उसी प्रकार शरीर भी जीवात्मा का घर है। अतः इसे ब्रह्मचर्य, सात्विक अन्न, पथ्य और संयम द्वारा सदैव स्वस्थ व नीरोग रखें।

- देवैर्दत्तेन मणिना जङ्घिनेन मयोधुवा ।
विष्कन्धं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे ॥

—अथर्व. २/४/४

मैं व्यायाम के द्वारा रक्तशोषण करने वाले सभी रोगों के कीटाणुओं को और बुरे विचारों को दूर रखूँगा और ब्रह्मचर्य, संयम अपनी शक्तियों को अपने शरीर में प्रयुक्त करूँगा। अर्थात् स्वास्थ्य रक्षा के लिये ब्रह्मचर्य और व्यायाम दोनों आवश्यक हैं।

- एय्यश्मानमा तिष्ठाश्मा भवतु ते तनूः ।
कृष्णन्तु विश्वे देवा आयुष्टे श्रवः शतम् ॥

—अथर्व. २/१३/४

ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए नियमित आहार, व्यायाम और श्रम द्वारा अपना शरीर दृढ़ और मजबूत बनावें और सदैव स्वस्थ रहें। उत्तम पदार्थों के सेवन और श्रेष्ठ पुरुषों का सान्निध्य प्राप्त कर पूर्ण आयुष्य भोग करें और संसार का उपकार करें।

- अयं लोकः प्रियतमो देवानामपराजितः ।
यस्मै त्वमिह मृत्यवे दिष्टः पुरुष जज्ञिषे ।
स च त्वानु ह्यामसि मा पुरा जरसो मृषाः ।

—अथर्व. ६/३०/१७

मानवदेह अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है। बन्धनमुक्ति की सम्पूर्ण शक्तियाँ और साधन इसमें विद्यमान हैं। इसलिए मनुष्य को ऐसा आहार-विहार, विचार और व्यवहार बनाना चाहिए जिसमें पूर्ण आयुष्य का उपभोग कर सके।

- शिवी ते स्तां ब्रीहियबाववसासावबोमथौ ।
एतौ यत्नं वि बाधेते एतौ मुञ्चतो अंहसः ॥

—अथर्व. ८/२/१८

जो लोग चावल तथा जौ आदि सात्विक अन्न का भोजन प्रसन्नचित्त होकर करते हैं, उनका शरीर पुष्ट होता है और रोग पास नहीं आते।

- सुयवसाद् भगवती हि भूया अथा दयं भगवन्तः स्याम ।
अथि तृणमन्ये विश्वदानीं पिब शुखमुदकमाचरन्ती ॥

—अथर्व. ६/१५/२०

जिस प्रकार गायें घास खाकर और स्वच्छ जल पीकर संसार को दूध, घी आदि उत्तम पदार्थ देती हैं, हे मनुष्यो ! उसी प्रकार तुम भी सात्विक आहार ग्रहण कर सदैव संसार का उपकार करो।

- यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अंगे गात्रा विभेजिरे ।
तान् वै त्रयस्त्रिंशद् देवानेके ब्रह्मविदो विदुः ॥

—अथर्व. १०/१७/२७

तैत्तिरीय देवताओं की शक्तियाँ इस मानव शरीर में ही विद्यमान हैं, इन्हें बहुत कम लोग जानते हैं। इन्हें जानने वाला बड़ा बलशाली होता है।

- ब्रह्मचारी ब्रह्म ब्राह्मद् विपतिं तस्मिन् देवा अथि विश्वे
समोत्ताः ।

प्राणापायी जनयन्ताद् ध्यानं बाधं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम् ॥

चक्षुः श्रोत्रं यश्चो अस्मासु धेस्यन्न रेतो लोहितमुदरम् ॥

—अथर्व. ११/५ (७) २४/२५

ब्रह्मचर्य से प्राणशक्ति बढ़ती है। प्राण, अपान, व्यान आदि पर नियन्त्रण होने लगता है, जिससे वाणी, मन, हृदय, ज्ञान, बुद्धि सभी का विकास होता है। इन्द्रियों की शक्ति बढ़ती है। पुरुष के शरीर में वीर्य और स्त्रियों के शरीर में रज बढ़ता है। इससे स्वास्थ्य, आरोग्य और मानसिक प्रसन्नता स्थिर रहती है।

- वाङ् म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरङ्गोः श्रोत्रं कर्णयोः ।
अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम् ।।
—अथर्व. १६/६०/१९
- मेरे मुख से वायुशक्ति, नासिका से प्राणशक्ति, आँखों से दृष्टि, कानों से श्रवण-शक्ति नष्ट न हो। बाल श्वेत न हों। दाँत शुभ्र बने रहें। भुजाओं में बल हो।

नारी-गौरव

- विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि युच्छति सूनरि ।
सा नो रयेन वृहता विभावरि शुभि चित्रामये ह्यम् ।।
—ऋ. १/४८/१०
- उषा के उदय से जैसे सम्पूर्ण प्राणियों को सुख मिलता है वैसे ही पतिव्रता स्त्री से पुरुष को आनन्द मिलता है।
- नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे वृहीयद्विन्द्र वक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धम्मगो नो वृहद्वदेम विदये सुवीराः ।।
—ऋ. २/१७/१६

हे विद्वानो ! विद्वान् धर्मात्मा विदुषी स्त्रियों अध्यापन कार्य करें। उनसे कन्याएँ उत्तम शिक्षा प्राप्त करें जिससे कार्य विनाश न हो।

- यूयं हि देवीर्ज्ञतयुग्मिरस्यैः ।
परिप्रयाथ भुवनानि सद्यः ।।
प्रबोधयन्तीरुभसः सततम्
दिपायन्तुष्याच्चरथाय जीवम् ।।
—ऋ. ४/५१/१६

उत्तम गुणों से युक्त, विदुषी और सुशील स्त्री प्राप्त करने वाले सदैव सुखी होते हैं अर्थात् कर्म-स्वभाव के अनुसार विवाह करने चाहिए।

- उत त्वा स्त्री शचीयसी पुंसो भवति कण्वती ।
अदेवत्रादराभसः ।।
—ऋ. ५/६१/१६
- नास्तिक व्यक्ति अपने स्वामी ईश्वर की सत्ता को ही इनकार कर देता है किन्तु पतिव्रता स्त्री अपने पति की इच्छा के अनुकूल आचरण करती है, इसलिये पतिव्रता स्त्री नास्तिक पुरुष से कहीं श्रेष्ठ होती है।

- अथः पश्यस्व मोपरि सन्तरां पादकौ हर ।
मा ते कञ्जस्तकौ दृशन्स्त्री हि ब्रह्मा बभूविष ।।
—ऋ. ८/३३/१६

स्त्रियों को चाहिए कि वे नीचे की ओर देखा करें। ठीक प्रकार चला करें। सारे अंग ढँककर

- रखें। इस प्रकार नम्र और विनयशील स्त्रियाँ भी वेदज्ञान प्राप्त कर पूजनीय हो सकती हैं।
- सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रूवां भव ।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अपि देवेषु ।।
—ऋ. १०/८५/१६

हे वधू ! तू अपने परिवार में इस प्रकार जीवनयापन करे, जिससे सास-श्वसुर नन्द तथा देवर सभी तेरा सम्मान करें।

- यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुपुत्रे वृषा ।
एवा त्वं सम्राज्ञयेषि पत्युरस्तं पतेत्य ।।
—अथर्व. १४/११/४३

समुद्र वृष्टि करता है तब नदियाँ जल प्राप्त करती हैं अर्थात् जिस प्रकार नदियों का नियन्त्रण समुद्र करता है, उसी प्रकार हे वधू ! तू भी अपने घर की मालकिन होकर सम्पूर्ण परिवार को सुखी करे।

- अघोरचक्षुरपतिन्नी स्योना श्रम्या सुजेवा सुयमा गृहेभ्यः ।
वीरसुर्वैवृकामा सं त्वयेधिषीमहि सुमनस्यमाना ।।
—अथर्व. १४/१२/१७

हे वधू ! तू प्रियदर्शनी होकर शुद्ध अन्तःकरण से परिवारीजनों का हित कर। इससे घर में सुख-सम्पत्ति की वृद्धि होगी।

- लोकं पृण छिन्नं पृणायो सीद ध्रुवा त्वम् ।
इन्द्राग्नी त्वा वृहस्पतिरस्मिन्योनावसीषवन् ।।
—यजु. १५/५६

भली स्त्रियाँ घर का प्रत्येक कार्य रुचिपूर्वक पूरा करती हैं। किसी कार्य में आलस्य नहीं दिखाती। प्रत्येक विदुषी और श्रेष्ठ नारी द्वारा गृहधर्म का जैसा पालन होना चाहिए, उसी की शिक्षा वे दूसरी स्त्रियों को भी देती हैं।

- पिता नोसि पिता नो बोधि नमस्ते अस्तु मा मा हिं सीः ।
त्वष्टमन्तस्त्वा सपेम पुत्रान्यश्रुन्ययि वेहि प्रजामस्मासु वेत्यरिष्टाह २१ सह पत्या भूयासम् ।।
—यजु. ३७/१२०

परमात्मा ही हमारा इष्ट, बन्धु, मित्र और रक्षक है इसलिये हम उसी की उपासना करें। हे स्त्रियो ! तुम भी सुख प्राप्ति की कामना से ईश्वर की नित्य उपासना किया करो।

- अदित्यै रास्नासीन्द्राण्याऽ उष्णीषः ।
पूषासि बर्माय दीव्य ॥

—यजु. ३८/३

जिस प्रकार पगड़ी से सिर सुखी रहता है, हे नारियो ! तुम भी वैसे ही अपने पतियों को सेवा द्वारा सुख दिया करो ।

विवाह

- तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्त्यमानाः परि यन्त्यापः ।
स शुक्रेभिः शिक्वभी रेवदस्मे दीदायानिष्णो
धृतनिर्णिगप्सु ॥

—ऋ. २/३५/४

जिनके हृदय शुद्ध, निर्मल व पवित्र हों उन युवा और युवतियों को पाणिग्रहण करना चाहिए । शारीरिक शक्तिधारी पुरुष विवाह करके परिवार को सतेज बनाये रखें ।

- कियती योषा मर्यतो बधूयोः परिधीता पन्यसा वार्येण ।
भद्रा बधूर्भवति यत्सुपेक्षाः स्वयं सा मित्रं वनुते जने
चित् ॥

—ऋ. १०/२७/१२

सुन्दर बुद्धिमान पुत्रियाँ युवावस्था में स्वेच्छा से शुभ-गुण सम्पन्न वर चुनें ।

- उषै धुरी बद्धिरापिब्यमानोऽन्तर्योनिव चरित द्विजानिः ।
वनस्पतिं वन आस्थापयध्वं नि धू बधिध्वमखनन्त
उत्सम् ॥

—ऋ. १०/१०१/११

एक साथ दो विवाह करने वाले की ऐसी ही दुर्दशा होती है जैसे दो धुरों का भार ढोने वाले घोड़े की होती है । अतः दो विवाह कभी न करें । इससे अच्छा है कि वृक्ष लगाकर, कुएँ खोदकर संसार का कुछ हित करें ।

- अभित्वा मनुजातेन वधामि मम वाससा ।
यथासो मम केवलो नाग्यासां कीर्तयास्वन ॥

—अथर्व. ७/३७/११

प्राचीन परम्परा के अनुसार मैं तुझे अपना वस्त्र देती हूँ । तुम सदैव मेरे बने रहो । किसी अन्य स्त्री से प्रेम न करना ।

- अश्लीला तनूर्भवति रुक्षती पापयामुया ।
पतिर्यद् वधोऽ वाससः स्वमङ्गमभ्युनृते ॥

—अथर्व. १४/१/२७

जो पुरुष स्त्री द्वारा लाये हुये द्रव्य का उपभोग करता है वह अपवित्र हो जाता है । अर्थात् देहेज लेना महान पाप है ।

- ममेयमस्तु पोष्या मर्यं त्वादाद् बृहस्पतिः ।
मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः श्रतम् ॥

—अथर्व. १४/१/५२

हे पत्नी ! ईश्वर ने तुम्हें मुझको सौंपा है । तुम्हारे पालन-पोषण का उत्तरदायित्व मुझ पर है । हम तुम सन्तानयुक्त होकर सौ वर्ष तक जिएँ ।

सुखी दाम्पत्य, समुन्नत गृहस्थ

- ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन्मुच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः ।
अस्माभिरु नु प्रतिचक्ष्याभूदो ते यन्ति ये अपरीषु
पस्यान् ॥

—ऋ. १/११३/११

जो मनुष्य ऊषाकाल में शयन से उठकर परमात्मा का ध्यान करते हैं, ईश्वर उन्हें बुद्धिमान और धार्मिक बनाता है । जो स्त्री-पुरुष परमात्मा की साक्षी में मधुर सम्बन्ध बनाये रखते हैं, उन्हें भगवान सदैव सुखी रखते हैं ।

- ऋतस्य रश्मिमुपयच्छमाना भद्रम्भद्रं ऋतुमस्मासु वेति ।
उषो नो अद्य सुहृवा श्रुच्छास्मासु रायो मघवत्सु
च स्युः ॥

—ऋ. १/१२३/१३

जिस प्रकार प्रातःकालीन बेला प्राणवर्द्धक होती है उसी प्रकार की स्त्रियाँ पति की यथावत सेवा करके घर में सुख-शान्ति एवं सुव्यवस्था को बनाए रहें ।

- यास्ते राके सुमत्तयः सुपेशसो याभिर्ववांसि वाशुधे
वसूनि ।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे
रराणा ॥

—ऋ. २/३२/५

सुलक्षणा साध्वी स्त्री और श्रेष्ठ विद्वान पुरुष के संयोग से घर स्वर्ग में बदल जाते हैं । उन्हें धन और सुख की कोई कमी नहीं रहती ।

- न यस्य सातुर्जनितोरवारि न मातरापितरः नू चिदिष्टी ।
अथा मित्रो न सुषितः पावको ऋग्निर्दीवाय
मानुषीषु विभु ॥

—ऋ. ४/६/१३

जिस पुत्र के विद्यमान रहते हुए भी माता और पिता को दुःख मिलता है और सत्कार नहीं होता है वह अभागा सदैव दुःख व पीड़ाएँ ही पाता है । माता-पिता के आशीर्वाद से पुत्र सुखी

व चिरंजीवी होते हैं अतः माता-पिता की सेवा करना ही अपना धर्म हो।

- इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुष्यं शुतम् ।
क्रीलन्तौ पुत्रैर्नृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥

—यजु. १०/८५/४२

पति-पत्नी सदैव साथ-साथ घर में रहें। उनमें कभी अनबन या द्वेष-भाव उत्पन्न न हो। वे सदा अपने पुत्र-पौत्रों के साथ अपने घर में मोद आनन्द करें।

- ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलासं परिहृतम् ।
स्वधा स्थ तर्पयत मे पितुन् ॥

—यजु. २/३४

हम जब बालक थे तो माता-पिता ने जिस तरह हमारी सेवा-सुश्रूषा की थी हमें भी अपने माता-पिता की वैसी ही सेवा करनी चाहिए। जो ऐसा नहीं करते उनकी विद्या का नाश हो जाता है और वे कृतघ्न कहलाते हैं।

- मा भर्मा सं विख्या ऊर्जं छत्स्व विषणे वीद्वी सती
वीद्वेयायूर्जं दधायाम् ।

पाप्मा हतो न सोमः ॥

—यजु. ६/३५

पति-पत्नी आपस में ऐसा व्यवहार करें, जिससे उनका पारस्परिक भय और उद्वेग का भाव नष्ट हो जाए, आत्मा की एकता बढ़े, विश्वास, दृढ़ता और उत्साह बना रहे। इससे गृहस्थाश्रम में ही स्वर्गीय सुख की अनुभूति होती है। दोष-दर्शन की भावना दाम्पत्य जीवन का विष है।

- आ पवस्व हिरण्यवदश्ववत्सोम वीरवत् ।
बाजं गोमन्तमा भर स्वाहा ॥

—यजु. ८/६३

गृहस्थी के ठीक ढंग से संचालन के लिये मनुष्यों को चाहिए कि वे अपने पुरुषार्थ के द्वारा स्वर्ण, पशु और धन कमाएँ। इनके बिना गृहस्थ जीवन परिपूर्ण नहीं बनता। गृहस्थाश्रम की उन्नति पुरुषार्थ में सन्निहित है।

- स्थितो भव वीद्वं ५ आशुर्भव वात्सर्वन् ।
पृथुर्भव सुषदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहणः ॥

—यजु. ११/४४

हमारी उत्तम सन्तानें ब्रह्मचर्य के सेवन से शरीरबल, विद्याबल और आत्मबल प्राप्त करें। चरित्र की रक्षा करें और अस्त्र-शस्त्रादि से

शत्रुओं का विनाश करें। यह शिक्षा प्रत्येक अभिभावक अपने बच्चों को दिया करें।

- यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।
उन्नतीरिव मातरः ॥

—यजु. ११/५१

माता-पिता जिस प्रीतिभाव से अपने बच्चों की सेवा करते हैं वैसी ही प्रीतिपूर्वक सेवा स्त्रियाँ अपने पतियों की किया करें। शीतल जल से जैसे प्यासे व्यक्ति को तृप्ति मिलती है वैसे ही प्रेम-पूर्ण व्यवहार से दाम्पत्य जीवन सन्तुष्ट बना रहता है।

- समितं संकल्पेयां संप्रियौ रोचिष्णु सुमनस्य मानौ ।
इषमूर्जमपि संवसानौ ॥

—यजु. १२/५७

दाम्पत्य जीवन की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि स्त्री-पुरुष प्रीतिपूर्वक सद् विचारवान अच्छे-अच्छे वस्त्र और आभूषणों को धारण किया करें। इससे आरोग्य बढ़कर कल्याणकारी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। विरोधी विचारों से कलह और कटुता पैदा होती है।

- पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः ।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥

—यजु. १८/३६

अपने पुत्र और पुत्रियों को ब्रह्मचर्य, सदाचार व विद्या के द्वारा विद्वान, विदुषी सुन्दर और शीलयुक्त बनाने का पुनीत कर्तव्य प्रत्येक सद्गृहस्थ निभाएँ।

- स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी ।
यच्छा नः शर्म सप्रधाः अपः नः शोशुचवधम् ॥

—यजु. ३५/२१

गृह-कार्य योग्य वह स्त्री होती है, जिसमें पृथ्वी के समान क्षमाभाव हो, क्रूरता से रहित जो दूसरों के दोष-निवारण करने वाली हो।

- अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा पवतु संभवाः ।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं ववतु शन्तिवाम् ॥

—अथर्व. ३/३०/१२

आदर्श गृहस्थी वह है जिसमें बेटे माता-पिता के आज्ञाकारी हों। माता-पिता बच्चों के हितकारी हों। पति और पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध सुमधुर और सुखदाई हों। ऐसे ही परिवार सदैव फलते-फूलते और सुखी रहते हैं।

- मा भ्राता भ्रातर द्विद्वय स्वसारमुत स्वता ।
सम्यग्भ्यः स्तुतं भूत्वा वाचं वदत भद्रम् ॥

—अथर्व. ३/३०/१३

भाई-भाई में प्रेम हो, भाई-बहिनें परस्पर मिल-जुलकर स्नेहपूर्वक रहें और सुन्दर शब्द बोलें ।

- धाता दधातु नो रयिमीशानो जगत्सत्पतिः ।
स नः पूर्णेन वञ्चतु ॥

—अथर्व. ७/१७०

गृहस्थ लोग अपने पुरुषार्थ द्वारा परमात्मा की कृपा से धन और बल का संचय कर सुख प्राप्त करें ।

- स्वात्तं मे धावापृथिवी स्वात्तं मित्रो अकरयम् ।
स्वात्तं मे ब्रह्मणस्पतिः स्वात्तं सविता कर्तु ॥

—अथर्व. ७/३०/१९

मनुष्य ऐसे शुभ कर्म करे जिससे माता-पिता तथा गुरुजनों का प्यार उसे मिलता रहे ।

- इमे गृह्य मयोधुव ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः ।
पूर्णा वामेन तिष्ठन्तस्ते नो जानन्त्यायतः ॥

—अथर्व. ७/६०/१८

हमारे घरों में सुख, शक्ति और दूध की कमी न रहे । वे उत्तम पदार्थों से भरपूर रहें । सभी स्वजन उदार हों । परिश्रमी, उदार और पारस्परिक मेलजोल से ही धन-धान्य, दूध-दही प्राप्त करना सम्भव है । कृपण, कंजूस, निकम्मे, आलसी व्यक्तियों के घर सम्पन्न नहीं रहते ।

- यद्वा अतिथिपतिरतिथीन् प्रतियथ्यति देवयजनं प्रेक्षते ॥
—अथर्व. ६/६ (१)/१३

द्वार आये हुए मेहमान का स्वागत करना देवताओं को आहुतियाँ देने के समान है ।

- उपहृता भूरिषणाः सखायः स्वादुसंभुवः ।
अशुद्ध्या अतुष्ट्या त्त गृह्य मास्मद् विभीतन ॥

—अथर्व. ७/६०/१८

परिवार के सभी सदस्य धन कमाने वाले, आस्तिक और विनोदप्रिय हों । वे भूख-प्यास से व्याकुल न हों । एक-दूसरे डरें भी नहीं !

- इष्टं च वा एष पूर्तं च गृह्याणामस्नाति यः
पूर्वोऽतिथेरस्नाति ॥

—अथर्व. ६/६ (२)/१९

जो गृहस्थ मेहमान को खिलाये बिना पहले ही खा लेता है उसकी भलाई और समृद्धि नष्ट हो जाती है ।

- एषा वा अतिथिर्यज्ञोभियस्तस्मात् पूर्वो
नास्मीयात् ॥

—अथर्व. ६/६ (२)/१९

हे सदगृहस्थ पुरुषो ! पहले द्वार पर आये अतिथि को भोजन कराना पीछे आप करना ।

- अक्षितायत्यतिथिवाचमनीयाद् यज्ञस्य
यज्ञस्याविच्छेदाय तद् यज्ञम् ॥

—अथर्व. ६/६/१६

अतिथि-सत्कार एक महान पारमार्थिक कार्य है । इस यज्ञीय परम्परा को जीवित रखने के लिये अतिथि के भोजन ग्रहण करने के पूर्व अन्न कदापि ग्रहण न करें ।

- अर्वत प्रार्वत प्रियमेपासो अर्वत ।
अर्वन्तु पुत्रका उत्त पुरं न वृन्वर्वत ॥

—अथर्व. २०/६२/१५

हे ईश्वर ! हम अपने पुत्र-पुत्रियों, बन्धु-बान्धवों समेत सदैव आत्मोन्नति के कार्यों में लगे रहें ।

द्वेष-निवारण

- अत वा यः सहस्य प्रविद्यान्तर्तो मत्तं नर्वयति द्वयेन ।
अतः पाहि स्तवमानं सुखन्तमन्ने माकिर्नो दुरिताय
धायीः ॥

—ऋ. १/१५/७/१५

जो लोग सदैव दूसरों की निन्दा और पर छिद्धान्वेषण में लगे रहते हैं, उनसे बचना चाहिए क्योंकि उनके पास रहने से अपना स्वभाव भी वैसा ही बनता है ।

- दीर्घतमा माम्मतेयो जुषुर्वाचमन्ने युने ।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवतिः सारथिः ॥

—ऋ. १/१५/७/१६

अज्ञानी व्यक्ति लोभातुर होकर रोग-शोक से दुःख पाते हैं, किन्तु धर्मानिष्ठ पुरुष ज्ञान और विज्ञान बढ़ाकर स्वयं बन्धनमुक्त होते दूसरों को भी संसार सागर से पार ले जाते हैं ।

- मा नो अग्नेऽयं सृजो अघायाविष्ये रिषे वुच्युनायै ।
मा वस्ते वस्ते मावसे नो मा रीषते सहसावम्परा वाः ॥

—ऋ. १/१८/६/१५

इस संसार में अच्छे-बुरे सभी प्रकार के प्राणी हैं । यहाँ मंगल मृदु स्वभाव वाले सज्जन पुरुष भी हैं और वाघ, सर्प, बिच्छू आदि हिंसक विषैले जीव-जन्तु भी हैं । इसलिये मनुष्य को चाहिए कि दुष्टों से बचकर साधु पुरुषों का साथ करें अर्थात् शुभ कर्मों को ग्रहण करें और दुष्कर्मों से दूर रहें ।

- ते स्याम देव वरुण ते मित्र सुरिभिः सह ।
इवं स्वश्व भीमहि ॥
—ऋ. ७/६६/६
- संसार के सभी पदार्थों में अच्छे-बुरे की विवेचना करने के बाद जो शुभ हो वही ग्रहण करें। दुरितों और क्लेशों से छुटकारा पाने का यही उपाय है।
- यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिषष्टे अनृतेभिर्वचोभिः ।
आपइव काशिना सङ्गृभीता असजस्त्वास्त इन्द्र वक्ता ॥
—ऋ. ७/१०४/६
- मिथ्यावादी और असत्य भाषण करने वाले से घृणा करनी चाहिए।
- अपामीवामप स्त्रियमप सेषत दुर्मितिम् ।
आदित्यास्तो युयोतना नो अंहसः ॥
—ऋ. ८/१८/१०
- रोग हम से दूर रहें। शुभ कर्मों के बाधक दुष्ट जन हमसे दूर रहें। हम भी पापों से दूर रहें।
- यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृषि ।
मघवञ्छिषि तव तत्र ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृषो जहि ॥
—ऋ. ८/६१/१३
- वैसे तो भय के कई कारण हैं पर द्वेष भावना उनमें प्रमुख है। इसलिये ईश्वर से प्रार्थना करते रहें कि वह हमें इन भावनाओं से विमुक्त रखे।
- ये भूर्भानः क्षितीनामवस्थासः स्वयभ्रसः ।
ब्रता रक्षन्ते अदुहः ॥
—ऋ. ८/६७/१३
- यश की कामना वाले पुरुषो ! कभी किसी से द्वेष मत रखना। सत्य आदि सत्कर्मों का पालन करना, इससे तुम्हारा भय समाप्त हो जाएगा और मनुष्यों में श्रेष्ठ कहलाओगे।
- अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विद्वान्मघायतः ।
आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोनोमृक णः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥
—ऋ. १०/६३/१२
- हम रोगों से दूर रहें। शरीर निर्बल न हो। किसी से शत्रुता न करें। हमारी हानि न हो और हमारा जीवन सदैव सुख से व्यतीत हो।
- यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति ।
यवीं शृणोत्यत्तकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ॥
—ऋ. १०/१७१/६
- कई लोग अपने स्वार्थवश किसी से मित्रता कर लेते हैं। फिर जब स्वार्थ पूरा हो जाता है तो

उसे त्याग देते हैं। ऐसे लोगों पर कोई विश्वास नहीं करता। उन्हें निन्दा और अपयश का भागी बनना पड़ता है।

- प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिवास्तः ।
प्रियं भोजेषु यज्जस्त्विदं न उदितं कृषि ॥
—ऋ. १०/१५१/१२
- इस संसार में श्रम उन्हीं व्यक्तियों का सफल होता है, जो सदैव श्रद्धापूर्वक लोक-हितार्थ दान-कर्म और पुरुषार्थ करते हैं।
- इन्द्रः सुभ्रामा स्वर्वा अबोभिः सुमृलीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥
—ऋ. १०/१३१/६
- भय के कारण सम्पूर्ण शक्तियों का नाश होता है। भय का कारण ईर्ष्या और द्वेष पूर्ण विचार हैं इसलिये निर्भयता प्राप्त करने के लिये हमें किसी से द्वेष न रखें।
- स नः पवस्व शं गवे शं जनाय श्रमवते ।
श २३ राजबोधधीन्यः ॥
—साम. ६६३
- हे ईश्वर ! हमें ऐसी प्रेरणा दीजिये कि हम गाय, नौकर, घोड़े, वृक्ष, लताओं, पौधों आदि सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति सदैव शुभ कर्म ही करें।
- यदि नो गां हस्ति ययश्च पुरुषम् ।
तं त्वा सीतेन विध्यामो यया नोऽसौ अवीरह ॥
—अथर्व. १/१६/१४
- जो हमारे गाय आदि पशुधनों को नष्ट करता है वह दण्डनीय है अर्थात् जो मानवीय हितों का अतिक्रमण करे, उसका वीरतापूर्वक प्रतिरोध करना चाहिए।
- यः सप्तलो योऽसप्तलो यश्च द्विषञ्छपाति नः ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म मभान्तरम् ॥
—अथर्व. १/१६/१४
- जो हमारे हितों को नष्ट करना चाहता हो हम उसे नष्ट कर दें। दुष्ट पुरुषों से सदैव आत्म-रक्षा करनी चाहिए। बुरे लोगों की ठीक पहचान न कर पाने से ही प्रायः लोगों का अहित होता इसलिये भले-बुरे का विवेक सदैव बनाये रहें।
- दूष्या दूषिरसि हेत्या हेतिरसि मेन्या मेनिरसि ।
आञ्जुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥
—अथर्व. २/१११/१९
- अच्छे-बुरे सभी कर्म मनुष्य से ही होते हैं। दुर्बलता मनुष्य के अज्ञान का प्रतीक है।

श्रेष्ठता प्रदान करने को आत्मबल प्राप्त करना चाहिए। यह तभी सम्भव है, जब मनुष्य बुराईयों को त्याग कर सन्मार्ग पर चले।

- यथा सत्त्वं चानृतं च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः॥

—अथर्व. २/१५/१५

जिस प्रकार परमात्मा और अन्य देव शक्तियाँ भयभीत नहीं होतीं उसी प्रकार हम भी किसी से डरे नहीं।

- सहृदयं सांमनस्यमविद्वेहं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमपि हर्यत वत्सं जातमिवाध्या॥

—अथर्व. ३/३०/१९

हम पारस्परिक बैर-भाव को त्यागकर सहृदय, मनस्वी तथा उत्तम स्वभाव वाले हों। एक-दूसरे को सदैव प्यार की दृष्टि से देखें। तभी हम सुखी रह सकेंगे।

- व्याघ्रं दत्ततां वयं प्रथमं जम्भयामसि।

आदु घ्टेनमथो अहिं यातुधानमथो वृकम्॥

—अथर्व. ४/३/१४

दुष्ट स्वभाव वाले हिंसक-जन्तुओं तथा चोर, बदमाशों को नष्ट करना धर्म है। रोग और दोषों का निवारण सदैव करते रहना चाहिए।

- सर्वेषां च क्रिमीणां सर्वासां च क्रिमीणाम्।
भिनद्धमयश्मना शिरो दहाम्यग्निना मुखम्॥

—अथर्व. ५/२३/१३

अपने बाह्य और आन्तरिक द्वेष ऐसे ही नष्ट करें जैसे आग में जलाकर या पत्थर से कुचलकर कोई चीज नष्ट कर डालते हैं।

- यो नः सोमाभिदासति सनाभिर्यश्च निष्ट्यः
अप तस्य बलं तिर महीव धीर्वधत्सना॥

—अथर्व. ६/६/१३

जो लोग निरपराध व्यक्तियों को सताते हैं। आक्रमण, चोरी, लूट-पाट करते हैं, उन्हें दण्ड देने से नहीं हिचकना चाहिए।

- यथा वृक्षं लिबुजा समन्तं परिष्वजे।
एवा परि सण्डजस्व मां यथा मां कामिन्यसो यथा
मन्नापगा असः॥

—अथर्व. ६/६/१९

जिस प्रकार वृक्ष से बेल लिपट जाती है, उसी प्रकार हम विद्या से ओत-प्रोत रहें। अविद्या का अँधियारा हमसे सदैव दूर रहे।

- यज्ञा इन्द्रो यज्ञा अग्निर्यज्ञाः सोमो अजायत।
यज्ञा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यज्ञस्तमः॥

—अथर्व. ६/३६/१३

संसार में मेरा यज्ञ उसी प्रकार फैले जिस प्रकार सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि का। मैं सभी प्राणियों से बढ़कर यज्ञस्वी होऊँ।

- अनमित्रं नो अपरादनमित्रं न उत्तरात्।
इन्द्रानमित्रं नः पश्चादनमित्रं पुरस्कृषि॥

—अथर्व. ६/४०/१३

हम भूत, भविष्य, वर्तमान में कभी किसी से बैर न करें।

- यदवदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोषतः॥

—अथर्व. १२/१९/५८

मैं सदैव सुख से मीठे वचन बोलूँ। सभी मुझसे प्यार करें। प्रकाश को अपने हृदय में धारण करूँ। जो बुरे तत्व हमारे समीप आएँ उनका उन्मूलन करूँ।

- मूर्धाहं रयीणां मूर्षा समानानां भूयासम्॥

—अथर्व. १६/३/१९

शरीर का स्वामी जिस प्रकार मस्तिष्क है, उसी प्रकार उद्योग, विद्या, धन आदि से युक्त होकर हम समाज में अग्रगामी बनें।

- शं तप माति तपो अने मा तन्वं१ तपः।
वनेषु शुण्यो अस्तु ते पृथिव्यामस्तु यद्धरः॥

—अथर्व. १८/१२/३६

स्वयं शमदम आदि तप द्वारा शक्तिवान बनें पर दूसरों को न सतावें। इसी से तुम्हारा प्रताप बढ़ेगा।

- बलविज्ञायः स्यविरः प्रवीरः सहस्वान् बाजी
सहमान उग्रः।

अभिवीरो अभिषत्वा सहोजिज्वैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ
गोविदन्॥

—अथर्व. १९/१३/१५

सफलता प्राप्त करना चाहते हो तो अपनी शक्तियों को पहचानो। जीवन में अनेकों विघ्न-बाधाएँ आती हैं, इनसे संघर्ष करने के लिये आत्मविश्वासी होना चाहिए।

- यो जाम्या अप्रथयस्तद् यत् सखायं दुष्पृषति।
ज्येष्ठो यदप्रथेतास्तदाहुरधरागिति॥

—अथर्व. २०/१२८/१२

जो मनुष्य स्त्रियों का सतीत्व अपहरण करता है, मित्र घात करता है और वृद्ध होने पर भी ज्ञान प्राप्त नहीं करता वह अधोगति को जाता है।

दोष और दुर्गुणों का निषेध

- शुची वो हव्या मरुतः शुचीनां शुचिं हिनोम्यध्वरं शुचिप्यः ।
ऋतेन सत्यमृत्यस्ताप आयञ्छुविजन्मानः शुचयः पावकाः ।

—ऋ. ७/१६/१२

हमारा अन्तर-बाह्य सभी कुछ शुद्ध हो। धर्म से कमाये हुए शुद्ध धन द्वारा परोपकार करें। रिश्वत लेना, जुआ खेलना, बेईमानी तथा अनधिकारपूर्वक छीना हुआ धन घर को तथा राष्ट्रों को बरबाद कर देता है।

- न स स्वो वक्षो वरुण धृतिः सा सुरा मनुर्विभीदको अधितिः ।
अस्ति ज्यायान्कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता ।।

—ऋ. ७/१६/१६

हे मनुष्यो ! कभी मद्यपान न करना, कभी जुआ न खेलना, दुष्कर्मों को मिटाते रहना। जो सुकुमार बालकों को बहकावे उन्हें दण्ड दिलाने में पीछे न हटे। नहीं तो संसार में सर्वत्र विनाशकारी परिस्थितियाँ उठ खड़ी होंगी।

- हस्तु पीतासो पुष्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम् ।
ऊर्ध्वं नन्वा जन्ते ।।

—ऋ. ८/१२/१२

दुष्ट बुद्धि के लोग मनमानी शराब पीकर आपस में लड़ते रहते और नंगे होकर रात भर इधर-उधर घूमते रहते हैं। इसलिये सज्जन पुरुष कभी भूलकर भी शराब न पिएँ।

- जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरतः क्व स्थित् ।

ऋणावा विभ्यद्वनच्छिमानोऽन्येषामस्तपुष नक्तमेति ।।

—ऋ. १०/३४/१०

जुयेबाज की स्त्री घोर कष्ट भोगती है। उसकी माता रोती रहती है। यह सदा कर्जे में डूबा रहता है और धन की इच्छा से दूसरों के घर में जाकर चोरी करता है। जुआ महान अश्लील व्यसन है। इससे सदैव बचना चाहिए।

- अक्षैर्मा दीव्यः कृषिर्मित्कृषस्व वित्ते रमस्य बहु मन्यमानः ।

तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्थः ।।

—ऋ. १०/३४/१३

हे मनुष्यो ! खेती कर लो, जो कुछ हो उसे ही यथेष्ट समझकर निर्वाह करो किन्तु जुआ

मत खेलो। अपने धर्म, कर्म और सहधर्मिणी के प्रति निष्ठावान बने रहो।

- उत्सवध्या अब गुदं वेहि समञ्जं चारया वृषन् ।
य स्त्रीणां जीवभोजनः ।।
—यजु. २३/२१

जो स्त्री या पुरुष विषयसेवन द्वारा व्यभिचार को बढ़ावा देते हैं, उन्हें कठोर दण्ड दिया जाना चाहिए। मांससेवन करने वाले भी दण्ड से वंचित न रहें। ये समाज के अपराधी हैं।

- देवं वो देवयज्ययाग्निमीलीय मर्त्यः ।
समिद्धः शुक्र दीदित्यनतस्य योनिमासदः ससस्य योनिमासदः ।।

—ऋ. ५.२१.४

मनुष्यों को चाहिए कि वे परमार्थ की भावना से श्रद्धापूर्वक प्रतिदिन हवन किया करें ताकि घर का वातावरण शुद्ध रहे।

- तनूपाऽअग्नेसि तन्वं मे पात्स्यायुर्वाऽअग्नेस्यायुर्मे देहि वक्ष्वावा ऽ अग्नेसि वक्षो मे देहि । अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्मऽआपृण ।।

—यजु. ३/१०

हे अग्ने ! तुम शरीररक्षक हो, हमारे शरीर की रक्षा करो। आयु देने वाले हो, मुझे आयु दो। तेजवान हो हमें तेज दो हमारे शरीरों में जो कमी हो उसे पूरा करो।

- अहरहरप्रयावं भरन्तोश्वायेव तिष्ठते घासमस्यै ।
रायस्योषेण समिधा मदन्तोऽग्ने मा ते प्रतिवेशा रिषाम ।।

—यजु. ११/१५

घोड़े तभी पुष्ट रहते हैं जब उन्हें प्रतिदिन घास खिलायी जाती है। उसी प्रकार शारीरिक और आत्मिक शक्ति के लिये प्रतिदिन यज्ञ करना चाहिए।

- स्वर्धन्तो नापेक्षन्त आ धां रोहन्ति रोवसी ।
यज्ञं ये विश्वतोषारं सुविदांसो वितेन्नि ।।

—अथर्व. ४/१४/१४

श्रेष्ठ पुरुष मुक्ति प्राप्ति के लिये यज्ञीय जीवन का अनुष्ठान करते हैं। इसके लिये उन्हें परावलम्बी नहीं होना पड़ता। वे मित्र शत्रु का भाव मिटाकर समान बताव करते हुये महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ प्राप्त कर लेते हैं।

- आ बं सते मषवा वीरवधश्चः समिद्धो धुन्याहुतः ।
कुवित्रो अस्य सुमतिर्नवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत् ॥
—साम. ८७६/१
जो मनुष्य अग्नि में भलीप्रकार होम करते हैं,
उन्हें उत्तम सन्तान, सद्बुद्धि, धन और धान्य
की प्राप्ति होती है।
- ब्रह्म प्रजाब्रह्म भर जातदेवो विषर्षणे ।
अग्ने यदीदयिषि ॥
—साम. १३६८
अग्नि के समीप बैठकर होम करने वालों को
धन-धान्य और सन्तान की प्राप्ति होती है।
- आग्ने स्यूरं रथिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम् ।
अक्षिष्वं वर्तया पविष् ॥
—साम. १५२६
होम की हुई अग्नि से धन-धान्य की प्राप्ति
होती है। आकाश स्वच्छ रहता है धूप, वर्षा
और प्राणवायु निर्दोष बर्ताव करते हैं।
- परि चिन्मूर्तो ब्रविणं ममन्यादृतस्य
पथा नमसा विवासेत् ।
उत स्वेन क्रुणुना सं बदेत्
श्रेयांसं दक्षं मनसा जगृम्यात् ॥
—ऋ. १०/३१/२
सांसारिक सुख और कल्याण की अभिलाषा
रखने वाले को उचित है कि मनसा-वाचा-कर्मणा
सत्य-व्यवहार करके कल्याण का भागी हो। यही
स्थायी सुख मिलने का एकमात्र साधन है।
- ## आत्मा और परमात्मा
- एकं सद्भिद्रा बहुधा बदन्ति —ऋ. १/१६४/४६
एक ही परमात्मा को ज्ञानी लोग अनेक नामों
से पुकारते हैं।
अनेक नामों के देवता ईश्वर के ही विभिन्न नाम हैं।
- पुरुष एवेदं सर्वम् । —ऋ. १०/६०/२
यह सम्पूर्ण विश्व परमात्मा का ही रूप है।
संसार को परमात्मा का प्रत्यक्ष स्वरूप मानकर
इसकी सेवा करनी चाहिए।
- प्रजापतिः बहुधा वि जायते । —अथर्व. १०/८/१३
इस विश्व में परमात्मा ही अनेक रूपों से
जन्म ले रहा है।
संसार के सब प्राणधारी परमात्मा की
प्रति-मूर्तियाँ हैं।

- न वा उ एतन्निग्रसे न रिष्यसि । —यजु. २३/१६
आत्मा न कभी मरती है, न कभी क्षति होती है।
सन्मार्ग पर चलते हुए मरने से मत डरो, हानि
की भी चिन्ता न करो।
- ईशानः बधं यवय । —ऋ. १/२/५
मनुष्य अपनी परिस्थितियों का निर्माता आप है।
जो जैसा सोचता और करता है वह वैसा ही
बन जाता है।
- अजायमानो बहुधा वि जायते । —यजु. ३१/१६
वह अजन्मा अनेक रूपों में जन्म लेता है।
वह निराकार परमात्मा, चराचर जगत् में साकार है।
- अग्निनाग्निः समिष्यते । —ऋ. १/१२/६
अग्नि से अग्नि और आत्मा से आत्मा प्रदीप्त
होती है।
दीप्तमान आत्माओं के सम्पर्क में रहकर अपनी
आत्माओं को प्रदीप्त करो।
- मर्त्या हवाअग्ने देवा आसुः ।
—शत. ब्रा. ११/१/२/१२
मनुष्य शुभ कार्य करके देव बनते हैं।
शुभ कर्म करो और इसी शरीर से भूसुर का
पद प्राप्त करो।
- आर्या व्रता विसृजन्तो अथि क्षमि ।
—ऋ. १०/६५/११
धर्म कर्तव्यों का पालन करने वाले ही देव हैं।
वे प्रत्यक्ष देवता हैं जो कर्तव्य-पालन के लिए
मर मिटते हैं।
- शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि । —अथर्व.
तू शुद्ध, तेजस्वी, आनन्दमय एवं प्रकाशवान है।
इसलिए हे जीव, पतित होकर कुमार्गगामी मत बन।
- देवाः सदा बसिं प्रयच्छन्ति ।
—अथर्व. १०/७/३६
देवता सदा बलिदान से प्रसन्न होते हैं।
त्याग करने वाला मनुष्यों का ही नहीं देवताओं
का भी आदर पाता है।
- ## सत्य और सद्विचार
- त्वं नो मेधे प्रथमा । —अथर्व. ६/१०८/१
सद्बुद्धि ही संसार में सर्वश्रेष्ठ वस्तु है।
जिसने अपनी विचारधारा शुद्ध कर ली उसने
सब कुछ प्राप्त कर लिया।

- मृतं वदन्तो अनृतं रपेम । —अथर्व. १८/१/४
सत्यवादियो, असत्य को मत अपनाओ।
जो असत्य को अपनाता है, वह सब कुछ खो बैठता है।
- यदन्तरं तद् बाह्यं यद् बाह्यं तदन्तरम् । —अथर्व.
जो अन्दर हो वही बाहर प्रकट करो, जो बाहर कहते हो वही भीतर रखो।
जिसके भीतर बाहर एक ही बात है, वही निष्कपट व्यक्ति धन्य है।
- ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्ध कर्णा । —ऋ.
सत्य की पुकार बहरे कानों में पहुँचती है।
जो सच्चाई है, उसे आज नहीं तो कल लोग स्वीकार करेंगे ही।
- शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु । —अथर्व. १६/११/१
सत्य व्रतधारी ही सर्वत्र सुख-शान्ति उत्पन्न करते हैं।
स्वयं सुखी रहना और दूसरों को सुख देना केवल सत्य मार्ग द्वारा ही सम्भव है।
- भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम । —यजु. ३०
कानों से अच्छे विचार ही सुनो।
दूसरों की निन्दा और त्रुटियाँ सुनने में अपना समय नष्ट न करो।
- तमो व्यस्य । —अथर्व. १२/३/१२
अन्धेरे में मत पड़े रहो।
जो अज्ञान और आलस में डूबा है, वह अँधेरे में भटकेंगा।
- जीवितां ज्योतिरभ्येक्ष्य । —अथर्व. ८/२/२
जीवित लोग प्रकाश की ओर चलते हैं।
विवेक और पुरुषार्थ जिसके साथी हैं, वही प्रकाश प्राप्त करेंगे।
- श्वसित्यप्सु हंसो न सीबन् । —ऋ. १/६१/६६
हंस की तरह गुणग्राहक बनो।
बेकार और बुरी बातों को छोड़कर केवल उपयोगी को ही ग्रहण करो।

- ये ऽश्रद्धा धनकाम्या क्रव्यादा समासते । —अथर्व. १२/२/५१
जो श्रद्धा को छोड़कर तृष्णा में फँसे हैं, वे नाश की तैयारी कर रहे हैं।
आत्मोन्नति से विमुख होकर मृगतृष्णा में भटकने की मूर्खता न करो।
- अचेतानस्य मा पथो वि दुस्तः । —ऋ. ७/४/७
उस मार्ग पर मत चलो जिस पर अज्ञानी चलते हैं।
अज्ञानी वे हैं जो कुमार्ग पर चलकर सुख की आशा करते हैं।
- मा गतानामा दीधीषाः । —अथर्व. ८/१/८
गुजरे हुआओं के लिए शोक मत करो।
संसार की हर वस्तु नाशवान है, अवश्यंभावी के लिए रोना क्या ?
- मा क्रुषः । —अथर्व. ११/२/२०
क्रोध मत करो।
क्रोध एक प्रकार का पागलपन है। उससे उलझने घटती नहीं बढ़ती है।
- मा विदीष्यः । —अथर्व. ८/१६
चिन्ता करना व्यर्थ है।
चिन्ता में खून सुखाने और समय नष्ट करने की अपेक्षा कठिनाई का हल सोचो।
- अग्निर्ब्रह्मिः पवमानः पाय्वज्रस्य पुरोहितः । —ऋ.
तेजस्वी, ज्ञानी, पवित्र तथा संयमी ही पुरोहित हों।
पुरोहित की पवित्र जिम्मेदारी केवल वे लोग उठावें जिनमें आवश्यक गुण हों।
- वदन्ब्रह्मावदतो बनीयान् । —ऋ. १०/११७/७
मीन रहने वाले से धर्मोपदेश करने वाला प्रशंसनीय हैं।
ज्ञानवान लोग लोकशिक्षण को अपना कर्तव्य समझें।
- तमेव ऋषिं तमु ब्रह्माणमाहुर्ब्रह्मस्य सामगा । —ऋ. १०/१०७/६
वही ऋषि और ब्राह्मण है जो अपने ज्ञान से दूसरों को सन्मार्ग पर लगाता है।
निरन्तर ज्ञानदान करते रहना ब्राह्मण की पवित्र जिम्मेदारी है।

□ विवमारुह्य तपसा तपस्वी । —अथर्व. १३/२/२५
जैचा वह उठता है जो तप करता है।
तप किये बिना किसी की आत्मोन्नति नहीं हो सकती।

□ बयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः । —यजु.
पुरोहित लोग राष्ट्र को जाग्रत रखें।
राष्ट्र को बुराइयों से बचाये रखने का उत्तरदायित्व पुरोहितों का है।

□ आ देवानामभवः केतुरग्ने । —ऋ. ३/१/१०
केवल श्रेष्ठ व्यक्ति ही जनता के नेता बनें।
चरित्रहीन लोगों के हाथों में नेतृत्व न पहुँचने दो।

□ ब्राह्मणं यत्र हिंसन्ति तद् राष्ट्रं हन्ति बुधुना ।
—अथर्व. ५/१६/८
जहाँ ब्राह्मण की उपेक्षा होती है वह राष्ट्र दुःख पाता है।

सच्चे समाजसेवियों को सम्मान और समुचित पोषण मिलना चाहिए।

□ न ब्राह्मणस्य गां जग्धा राष्ट्रे जागर कश्चन ।
—अथर्व. ५/१६/१०
जहाँ ब्राह्मण का तिरस्कार होता है, वहाँ से सुख-शान्ति चली जाती है।

त्यागी लोक-सेवकों का गौरव बढ़ाना जनता का कर्तव्य है।

□ धिप्रति पान्ति मर्त्यं रिषः । अरिष्टः सर्वं पश्यते ।
—ऋ. १/४१/१/१
ज्ञानी जिसकी रक्षा करते हैं उसका पराभव नहीं होता।

पराजय न चाहने वाले ज्ञानियों के संरक्षण में रहें।

□ अकेतये केतुं कृण्वन् । —ऋ. १/२/६
अज्ञानियों को ज्ञानवान बनाओ।

ज्ञानदान से बढ़कर संसार में और कोई पुण्य नहीं है।

□ बन्धान्मुञ्चति बद्धकम् । —अथर्व. ६/१२१/४
बन्धन में पड़े हुएों को मुक्त करो।

अज्ञान और कुसंस्कारों से छूटना ही मुक्ति है।

□ देवा उग्रयया पुनः । —ऋ. १०/१३७/१
हे देवो [सत्पुरुषों] ! गिरे हुएों को फिर उठाओ।

गिरे हुएों को उठाने का विरोध करना परले सिरे की असुरता है।

□ स्वयतो धिया विबुम् । —यजु.
सद्बुद्धि से ही स्वर्ग प्राप्त होता है।

जिसकी बुद्धि शुद्ध नहीं हुई, उसे स्वर्गीय सुख नहीं मिल सकता।

□ कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण । —अथर्व. १६/७२/१
वेद ज्ञान से ही हमारा भला होता है।

ज्ञान और विज्ञान का अजस्र भण्डार वेद में भरा पड़ा है।

□ प्रियं अतिथि गृणीषणि । —ऋ. ६/११२
वे प्रशंसनीय हैं जो धूम-धूमकर धर्मोपदेश करते हैं।

सद्ज्ञान प्रसार के लिए भ्रमण करते रहना संसार का सर्वश्रेष्ठ परमार्थ है।

□ अवेत्यवधितो देवो अर्यो । —ऋ. ७/८६/७
ज्ञानी लोग अज्ञानियों को भी ज्ञानवान बनाते हैं।

ज्ञान उसी का सफल है, जो दूसरों को ज्ञानवान बनाने में काम आये।

सज्जनता और सद्ब्यवहार

□ यथा नः सर्वऽ इष्मनोनभीवः । —यजु. ३३/८६
हम सब परस्पर सज्जनता का व्यवहार करें।

सज्जनों का व्यवहार, उदारता, सहायता एवं स्नेहपूर्ण होता है।

□ आवेवानामपि पन्थामगम् । —अथर्व. १६/५६/३
उस मार्ग पर चलो, जिस मार्ग पर सज्जन चलते हैं।

उद्दंडता और अनीति के मार्ग पर चलने वाला दुःख पाता है।

□ भवं भवति नः पुरः । —अथर्व.
सज्जनता हमारी प्रधान नीति हो।

सज्जन अपने स्वार्थ से पहले दूसरों के स्वार्थ का ध्यान रखते हैं।

- दम्पतकृणोष्यधरम् । —ऋ. १/७४/४
सज्जन सत्कर्मों में सहायता करते हैं।
सत्कार्यों में सहायता करना सज्जनों का आवश्यक कर्तव्य है।
- मधुमतीर्मधुमतीभिः पृथ्यन्तां । —यजु. १/२१
मीठा बोलो, मधुरभाषियों के साथ रहो।
जो मधुरता अपनाता है उसके लिए सभी अपने बन जाते हैं।
- घृतात् स्वादीयो मधुनश्च बोधत । —अथर्व. २०/६५/२
घृत-सी लाभदायक और शहद-सी मीठी वाणी बोलो।
जिसने मीठी वाणी का महत्त्व समझ लिया वह सर्वत्र सफल होगा।
- अस्य सुनुता विरप्सी गोप्सी मही । —ऋ. १/३/८/८
ऐसी वाणी बोलो जिससे सबका हित हो।
किसी को गलत मार्ग पर ले जाने वाली सलाह न दो।
- भूयासं मधु संदृशः । —यजु.
मधुरता की भूर्तिमान प्रतिमा बनो।
वाणी ही नहीं व्यवहार में भी मधुरता का समावेश रखो।
- मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । —यजु. ३६/१८
सब प्राणियों को मित्रता की दृष्टि से देखना चाहिए।
किसी प्राणी से नहीं, केवल उनके दुष्कर्मों से शत्रुता रखो।
- ते हेतो बरुण नमोधि । —ऋ. १/२४/१४
क्रोध को नम्रता से शान्त करो।
क्रोधी एक प्रकार का रोगी है। उस पर बिगड़ो नहीं दया करो।
- अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो । —ऋ. ५/६०/५
मनुष्यों में कोई नीच-ऊँच नहीं, सब भाई-भाई हैं।
जाति-पाँति के आधार पर किसी को ऊँच-नीच न समझो।

- वयस्कृतव तव जामयो वयम् । —ऋ. १/३१/७/१०
एक ही परमपिता के पुत्र हम सब भाई-भाई हैं।
आपस में ऐसे बरतो—जैसे भाई से भाई बरतते हैं।

उन्नतशील जीवन

- जैह्व्याय वृद्धः अजाययाः । —ऋ.
मनुष्य जीवन श्रेष्ठ और बड़ा बनने के लिए है।
जीवन दिन काटने के लिए नहीं, कुछ महान कार्य करने के लिए है।
- उच्च तिष्ठ महते सौभाग्या । —अथर्व. २/६/२
श्रेष्ठ बनना ही महान सौभाग्य है।
जो महापुरुष बनने के लिए प्रयत्नशील हैं, वे धन्य हैं।
- रुहो रुहो रोहितः । —अथर्व. १३/३/२६
उन्नति उसकी होती है जो प्रयत्नशील हैं।
भाग्य भरोसे बैठे रहने वाले आलसी सदा दीन हीन ही रहेंगे।
- सुकर्माणः सुखः । —अथर्व. १८/३/२२
यश उसे मिलता है, जो सत्कर्म करता है।
कीर्ति वही स्थायी है जो सत्कार्यों द्वारा प्राप्त की जाती है।
- मूर्धानं राय आरभे । —ऋ. १/२४/५
ऐश्वर्य को प्राप्त कर बड़े काम करो।
ओछे विचार और ओछे काम करने वाले अन्त में ओछे ही रह जाते हैं।
- अहमुत्तरोज्जानि । —अथर्व. ३/५५
साधारण लोगों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ बनो।
जनता की भेड़चाल से बँधे न रहो, श्रेष्ठता को अपनाओ।
- प्राञ्चो अगाम्य नृतये हसाय । —अथर्व. १२/२/२२
जिन्दगी हैंसते-खेलते जीने के लिए है।
चिन्ता, भय, शोक, क्रोध, निराशा, ईर्ष्या, तृष्णा एवं वासना में बिलखते रहना मूर्खता है।
- जहानो हव्यो बभूय । —ऋ. १०/६/७
जो गुणवान हैं उनकी प्रशंसा होती है।
गुणविहीन व्यक्ति का कहीं आदर नहीं होता।

- शनिष पूर्धि प्र यंसि च शिशीहि प्रास्युदरम् ।
—ऋ. १/४२/६
समर्थ बनो, काम को पूरा करो, खरे बनो और पेट भरो।
बलवान, कर्तव्यपरायण, ईमानदार और सम्पन्न व्यक्तियों को ही जीवन लाभ मिलता है।
- उग्राय तवसे सुवृत्तिं प्रेरय । —यजु.
शक्तिशाली बनना हो तो वक्ता और कर्मवीर बनो।
संकोच और भय छोड़कर उचित विचारों को निधड़क प्रकट किया करो।
- प्रति यः शासमिच्छति । —ऋ. १/५४/७
जो अनुशासन पालता है, वही शासन करता है। दूसरों पर शासन करना चाहते हो तो स्वयं अनुशासन सीखो।
जो आत्म-निर्भर है, उन्हीं को दूसरों की भी सहायता मिलती है।
- दृक्से संजग्मानो अभिभूषा । —ऋ. १/२/७
उनके साथ रहो जो निडर और वीर हैं।
कायर, डरपोक, ओछे और दुर्गुणी लोगों का संग करना अपनी ही हानि करना है।
- इच्छं वर्षन्तो अपुरः । —ऋ. ६/६३/६
सावन में स्फूर्ति, उत्साह और साहस बढ़ता रहे।
आलसी, प्रमादी, भीरु और सन्देही मनुष्य उन्नति नहीं कर सकते।
- असमं क्षत्रं असमं मनीषा । —यजु.
अतुलित शौर्य और असीम बुद्धि धारण करो।
जहाँ अदम्य साहस और दूरदर्शिता है, वहाँ सब कुछ है।
- अथि तनुषु बाशी । —ऋ. १/८८/३
वीरो, शस्त्रों से सुसज्जित रहो।
शस्त्रों और साधनों से सफलता का मार्ग प्रशस्त होता है।
- अग्ने शर्ष महते सौमगाय । —अथर्व. ७/७३/१०
ऐश्वर्य उत्साही के पैर चूमता है।
जो उत्साही और कर्मनिष्ठ है, उसके पास दरिद्रता न फटकेगी।

- मा त्वा के चिद् वि यमन् । —अथर्व. ७/११७/१
पराधीनता के बन्धन में मत बँधो।
रुद्धिवादिता रूपी मानसिक गुलामी संसार की सबसे भयंकर गुलामी है।
- मात्र तिष्ठः पराङ्मनाः । —अथर्व. ८/१/६
शिथिलता और अनुत्साह ठीक नहीं।
अकर्मण्यता और निराशा एक प्रकार की नास्तिकता है।
- वीरयध्वं प्र तरता । —अथर्व. १२/२/२६
उद्योगी ही पार होते हैं।
पुरुष अर्थविहीन व्यक्तियों की नाव बीच में ही डूबती है।
- अमृतं विवासत । —ऋ. ६/११२
उत्साही और आशावादी का ही साथ करो।
उनसे दूर रहो जो भविष्य को निराशाजनक बताते हैं।
- शुचिं पावकं ध्रुवं । —ऋ. ७/११३
उनकी प्रशंसा करो जो धर्म पर दृढ़ हैं।
उनके गुण-गान न करो जिन्होंने अनीति से सफलता प्राप्त की।

द्वेष नहीं प्रेम करो

- मा युष्महि मनसा दैव्येन । —अथर्व. ७/५२/२
दिव्य मन को लड़ाई-झगड़े में न फँसाओ।
मन की दिव्यता का उपयोग द्वेष नहीं प्रेम ही है।
- असंवाध्यं मय्यतो मानवानाम् । —यजु. ३०
मनुष्य आपस में लड़ाई-झगड़ा न करें।
प्रेमभाव ही मनुष्य के सुदृढ़ सम्बन्धों का आधार है।
- मा नो द्विषत कश्चन । —अथर्व. १२/१/१८
किसी से भी हमारी शत्रुता न हो।
शत्रुता का भाव जहाँ रहता है, वही अग्नि की तरह जलता है।
- बिश्वा देवां सि प्र मुमुग्ध्यस्मत् । —यजु. २१/३
संसार में किसी से द्वेष मत करो।
बुराईयों को द्वेष की अपेक्षा प्रेम से दूर करना सरल है।

- सं जानामहे मनसा सं चिकित्वा ।
—अथर्व. ७/५२/२
वैसे कार्य करो जिनसे द्वेष नहीं प्रेम बढ़े।
जिन कार्यो के करने से विरोध बढ़े, उन्हें मत करो।
- संगच्छन् सं वदन् सं वो मनोसि जानताम् ।
—ऋ. १०/१६१/२
साथ-साथ बढ़ो, मिलकर बोलो, हृदयों में एका रखो।
स्वार्थ एवं अहंकार से प्रेरित होकर अपनी खिचड़ी अलग न पकाओ।
- समानी प्रपा सह बोऽज्जभागः ।
—अथर्व. ३/३०/६
सब परस्पर मिलकर खान-पान किया करो।
सहयोग और प्रीतिभोज से प्रेमभाव बढ़ता है।
- ब्रजं कृणुष्वं स हि वो नृपाणः ।
—अथर्व. १६/५८/४
संगठन करो और उसी से तुम्हारी रक्षा होगी।
आत्म-रक्षा के लिए संगठन सर्वोपरि शस्त्र है।
- सहभक्षः स्यात् ।
—अथर्व. ६/४७/१
भोजन मिल-जुलकर करो।
चौके-चूल्हे की पृथकता ओछेपन का चिह्न है।
- सख्याविब सचाबहे ।
—अथर्व. ६/४२/१
परस्पर मित्रों की तरह रहो।
साथियों के साथ आत्मीयतापूर्ण व्यवहार करो।
- युवाकु हि शचीनां युवाकु सुमतीनाम् ।
—ऋ. १/१०/४
शक्तियों का संगठन करो, सद्विचारों का संगठन करो।
संगठन से बढ़कर शक्तिशाली तत्व इस पृथ्वी पर दूसरा नहीं।

कर्तव्य के पथ पर

- कद ऋतं कदनुत्वं न्व प्रत्ना ।
—ऋ. १/१०५/५
क्या उचित है या अनुचित, यह निरन्तर विचारते रहो।
अन्धपरम्परा को छोड़कर तर्क और विवेक का आश्रय ग्रहण करो।

- दैव्याय कर्मणे शुन्धधम् ।
—यजु. १/१३
पवित्र बनो और शुभ कर्म करो।
शुभ कार्य करने वाले का जीवन ही पवित्र बनता है।
- ब्रह्मभ्यः कृणुता प्रियम् ।
—अथर्व. १२/२/३४
बुजुगों से शिष्टाचार बरतो।
जो बड़ों का मान नहीं करते, वे उन्नति नहीं करते।
- आदरणीय सज्जनो ।
—ऋ. ३/३०/५
आदरणीय सज्जनों का सम्मान करो।
जो दूसरों का सम्मान नहीं करते, उन्हें स्वयं भी मान नहीं मिलता।
- प्र सुव यत्नम् ।
—यजु. ३०/१
सत्कर्म ही किया करो।
दुष्कर्मों से दूर रहो।
- दुरितानि परा सुव ।
—यजु. ३०/३
दुष्कर्मों से दूर रहो।
सत्कर्म ही मनुष्य का कर्तव्य है।
- ईजानानां सुकृतां प्रेहि मध्यम् ।
—यजु. ३२
सदाचारी लोगों के साथ रहो।
साँप की तरह दुराचारियों से भी दूर रहो।
- सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु ।
—अथर्व. ७/५१/१
मित्र वह है जो मित्र की भलाई करे।
कुमार्ग से बचाकर सन्मार्ग पर ले चलना सबसे बड़ी नेकी है।
- पावका नः सरस्वती ।
—ऋ. १/३/१०/१
विद्या से मनुष्य पवित्र बनते हैं।
विद्याविहीन मनुष्य अन्धकार में डूबा हुआ पशु है।
- उद्यन्सूर्य इव सुप्तानां द्विषतां वर्ध आ वदे ।
—अथर्व. ७/१३/२
सूर्योदय तक भी जो नहीं जागते उनका तेज नष्ट हो जाता है।
जल्दी सोना, जल्दी उठना, शरीर और मन की स्वस्थता को बढ़ाता है।
- नेमा इन्द्र गाबो रिषन् ।
—अथर्व. २०/१२७/१३
गायें सताई न जाएँ।
जो गाय को दुःख देगा सो स्वयं भी सुखी न रहेगा।

- वशां देवा उप जीवन्ति वशां मनुष्या उत ।

—अथर्व. १०/१०/३४

देवता और मनुष्य दोनों गौ के आश्रित जीते हैं।
गौ के नष्ट होने पर न मनुष्य जीवित रहेंगे
और न देवता ।

दुष्प्रवृत्तियों का शमन

- पिपेश नाकं स्तुभिर्द्यूनाः । —ऋ. १/६८/१०

संयमी मनुष्य स्वर्ग को भी जीत लेता है।
शक्ति संग्रह का मूल स्रोत संयम है।

- भूताय त्वा नारातये । —यजु. १/११

तुम्हें प्राणियों की सेवा के लिए पैदा किया
गया है, दुःख देने के लिए नहीं।
दण्ड की अनधिकार चेष्टा न करो, तुम्हारा
कर्तव्य केवल सेवा तक सीमित है।

- इदमहमनृतात्सत्यमुपैषि । —यजु. १/५

असत्य को त्यागकर सत्य ही ग्रहण करना
चाहिए।
जो सत्य को त्यागकर असत्य अपनाते हैं, उन्हें
अपयश ही मिलता है।

- अपवक्ता हृदयाविधिशिवत् । —ऋ. १/२४/८

उन विचारों को त्याग दो जो आत्मा को नष्ट
कर दें।
अनीति और अधर्म के कुविचार सर्वथा त्यागने
योग्य हैं।

- निऋतिर्दुर्हणा बधीत् पदीष्ट तृणया सह । —ऋ. १/६

तृष्णा नष्ट होने के साथ ही विपत्तियाँ भी
नष्ट होती हैं।
जिसे जितनी अधिक तृष्णा है, वह उतना ही
बड़ा आपत्तिग्रस्त है।

- अप दुष्कृतान्य जुष्टान्यारे । —ऋ०

कुविचारों और कुकर्मों से दूर रहो।
ये अपने धारण करने वालों को ही नष्ट
करते हैं।

- अपास्मत् सर्वं दुर्भूतमप । —अथर्व. ३/७/७

अन्दर के सब दुर्भावों को निकाल बाहर करो।
बाहरी शत्रु उतनी हानि नहीं कर सकते जितनी
अन्तःशत्रु करते हैं।

- अपेतु सर्वं मत् पापम् । —अथर्व. १०/१/१०

सब प्रकार के दुष्कर्मों से बचो।
दुष्कर्म किसी भी प्रकार का हो—त्याज्य है।

- अपेहि मनसस्यतेऽप क्राम परश्चर । —अथर्व. २०/६६/२४

मानसिक पापों का परित्याग करो।
मन में जमी हुई वासना ही दुष्कर्म
कराती है।

- मा ते हृदयमर्पिषम् । —अथर्व. १२/१/३५

किसी का दिल न दुखाओ।
अन्यायपूर्वक किसी को सताने की दुष्टता न
करो।

- एतामेतस्येष्वामुद्रनाग्निमिव शमय । —अथर्व. ७/४५/२

ईर्ष्या की अग्नि को शान्त करो।
ईर्ष्या अपनी कुद्रन में आप ही जलता है।
□ अश्विन्त्रो अभयं नः कृणोतु ।

—अथर्व. ६/४०/२
मत किसी से शत्रुता करो, मत किसी से डरो।
सबको अपना समझने वाला सदा निर्भय रहेगा।

- उपप्रयन्तो अध्वरं । —ऋ. १/७४/१

वह कार्य करो जिससे दूसरों को कष्ट न हो।
उन कर्मों को न करो जिनसे दूसरे दुःख पावें।

- अपतस्य हतं तमो व्यावृतः स पाप्मना । —यजु.

जिसका अज्ञान दूर होगा वही पाप से छूटेगा।
पाप का प्रधान कारण आत्म-ज्ञान का अभाव
ही है।

अर्थ-व्यवस्था

- परोऽपेक्ष्यसमृद्धे । —अथर्व. ५/७/७

दरिद्रता को मार भगाओ।
गरीबी अनेक बुराइयों की जननी है।

- पृणन्नापिरपृणन्तमपि प्यात् । —ऋ. १०/११७/७

न कमाने वाले त्यागी से कमाकर दान करने
वाला श्रेष्ठ है।
सौ हाथों से कमाओ, हजार हाथों से दान
करो।

- देवः वीर्यं बनते। —ऋ. ६/११२
धन उन्हीं के पास ठहरता है जो सद्गुणी हैं।
दुर्गुणी की विपुल सम्पदा भी स्वल्पकाल में नष्ट हो जाती है।
- रमन्तां पुण्या लक्ष्मीः। —अथर्व. ७/११५/४
ईमानदारी से कमाया धन ही ठहरता है।
बेईमानी की कमाई से कोई फलता-फूलता नहीं।
- रयिं दानाय चोदय। —अथर्व. ३/२०/५
दान देने के लिए धन कमाओ।
संग्रह करने एवं विलासिता के लिए धन नहीं है।
- अनृणो भवामि। —अथर्व. ६/११७/१
किसी के ऋणी मत रहो।
अपनी स्थिति से बाहर खर्च न करो।
- अनृणाः स्याम। —यजु. ३२
कर्जदार मत बनो।
ऐसे काम न करो जिनके लिए कर्ज लेना पड़े।
- सर्वान् पथो अनृणा आक्षिपेम। —यजु. ३२
जो ऋण मुक्त है उसी की उन्नति होती है।
ऋणग्रस्त व्यक्ति दिन-दिन घुलता ही जाता है।
- इमां मात्रां भिमीमहे यथापरं न मासातै। —अथर्व. १८/२/३८
वस्तुस्थिति एवं नाप-तौल में गड़बड़ी न करो।
बेईमानी का व्यापार जड़-मूल से नष्ट हो जाता।
- केवलाद्यो भवति केवलादी। —ऋ. १०/११७/६
जो अकेला खाता है सो पाप खाता है।
अपनी रोटी मिल-बाँटकर खाओ।
- न स्तेयमद्रिम। —अथर्व. १४/१/५७
चोरी का धन न खाओ।
जो न्यायोपार्जित नहीं वह चोरी का धन है उसे त्याग दो।
- राया वयं सुमनसः स्याम। —अथर्व. १४/२/३६
ऐश्वर्य पाकर इतराओ मत।
इतराने में नहीं, श्रेष्ठ कार्यों में ऐश्वर्य का उपयोग करो।

- कस्य स्विद्धनम् ? —यजु. ४०/१
धन किसी व्यक्ति का नहीं, सम्पूर्ण राष्ट्र का है।
धन पर कब्जा जमाकर मत बैठो उसका सदुपयोग करो।
- उत्तो रयिः पृणतो नोप दस्यति। —ऋ. १०/११७/१
दान देने वाले की सम्पदा घटती नहीं बढ़ती है।
सत्कार्यों में लगाया धन, बैंक में जमा पूँजी के समान सुरक्षित है।
- उतादित्सन्तं दापयतु प्रजानन्। —अथर्व. ३/२०/८
कंजूसों को दान करने की प्रेरणा करो।
उन बेवकूफों को समझाओ कि धन जमा करते जाने की नहीं, सदुपयोग करने की वस्तु है।
- रयिं धत्त दाशुषे मत्पयि। —अथर्व. १२/३/४३
सत्पात्रों को ही दान करो।
कुपात्रों को दिया दान, दाता को नरक ले जाता है।
- दत्तान्मा यूषम्। —अथर्व. ६/१२३/४
दान देने की परम्परा बन्द करो।
अपने पास ज्ञान, बल, योग्यता, धन जो कुछ है, उसे दूसरों के हित में लगाते रहो।
- न पाबत्वाय रासीय। —अथर्व. २०/८२/१
कुपात्रों को दान मत दो।
सर्प को दूध पिलाने की भाँति कुपात्रता में और भी वृद्धि न करो।

परिवार-व्यवस्था

- जग्धपाप्मा यस्यान्न मश्नन्ति। —अथर्व. ६/६/१
अतिथि-सत्कार करने वाले के पाप धुल जाते हैं।
सद्उद्देश्य के लिए निस्पृह विचरण करने वाले लोक-सेवी ही सच्चे अतिथि हैं।
- ब्रह्मणस्पते पतिमस्यै रोचय। —अथर्व. १४/१/३१
पति, पत्नी का प्यार बने।
पति अपना आचरण और व्यवहार ऐसा रखे जिससे उसे पत्नी का प्यार प्राप्त हो।
- इहैव त्तं मा वि योष्टम्। —अथर्व. १४/१/२२
पति-पत्नी अविच्छिन्न प्रेम-सूत्र में बँधे रहें।
सन्तोष, क्षमा, सहिष्णुता, प्रसन्नता और निबाहने की भावना से ही दाम्पत्य प्रेम स्थिर रह सकता है।

- **इह पुष्यतं रयिम् ।** —अथर्व. १४/ २/ ३७
पति-पत्नी दोनों मिलकर कमाई करें।
पत्नी को उपार्जन क्षमता वाली स्वावलम्बी बनाओ।
- **चक्रवाकेव दम्पती ।** —अथर्व. १४/ २/ ६४
पति-पत्नी, चक्रवा-चक्रवी की तरह प्रेम करें।
एक-दूसरे को छोड़कर अन्यत्र दाम्पत्य प्रेम को बिखरने न दें।
- **मन इवौ सहासति ।** —अथर्व.
पति-पत्नी का हृदय एक रहे।
दोनों एक-दूसरे को प्रसन्न और सन्तुष्ट रखने का प्रयत्न करें।
- **ममेदसस्त्वं केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन ।**
—अथर्व. ७/ ३८/ ४
अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य नारी का स्मरण भी न करो।
पतिव्रत की भाँति पुरुष के लिए भी पत्नीव्रत नितान्त आवश्यक है।
- **सं मा तपन्यभितः सपत्नीरिव पर्ववः ।**
—ऋ. १/ १०५/ ८
जो बहुत पत्नी करते हैं वे दुःख पाते हैं।
अनेक नारियों की इच्छा करने वालों का गृहस्थ जीवन नरक बन जाता है।
- **साधुं पुत्रं हिरण्यम् ।** —अथर्व. २०/ १२६
सन्तान को बलवान और सज्जन बनाओ।
सन्तान उत्पन्न कर्ता बच्चों के समुचित विकास की जिम्मेदारी को समझे।
- **पुमांस पुत्रं जनय ।** —अथर्व. ३/ २३/ ३
सुयोग्य सन्तान ही पैदा करो।
सुयोग्य माता-पिता ही अच्छी सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं।
- **शिशूला न क्रीलयः सुमातरो ।** —ऋ. १०/ ७८/ ६
उत्तम माताएँ ही उत्तम सन्तान उत्पन्न करती हैं।
फूहड़ नारियों से दुर्गुणी सन्तान ही सम्भव है।
- **जायाः पुत्राः सुमनसो भवन्तु ।** —अथर्व. ३/ ४/ ३
अपने स्त्री-पुत्रों को सद्विचारवान बनाओ।
परिवार के लोगों को सद्गुणों से सुसज्जित एवं शोभायमान करो।

शरीर की सुरक्षा

- **द्वं हस्व मा काः** —यजु. १/ ६
सुदृढ़ तो बनो पर उदृण्ड नहीं।
स्वास्थ्य को सुधारो पर अकड़कर मत चलो।
- **स्वयं तन्वं वर्धस्व ।** —ऋ. ७/ ८/ ५
शरीर को बलवान बनाओ।
बलवान शरीर में ही बलवान आत्मा रहती है।
- **ध्वस्मन्वत् पायः त्वा समन्वेतु ।** —ऋ. १२/ ११८
वह अन्न खाओ जो पाप की कमाई का न हो।
पाप की कमाई का अन्न बुद्धि को बिगाड़ता है।
- **वि यात विश्वमग्निम् ।** —ऋ. १/ ८६/ १०
चटोरे लोग बेमौत मरते हैं।
जीभ पर काबू रखो, स्वाद के लिए नहीं स्वास्थ्य के लिए खाओ।
- **विश्वं समग्निं दह ।** —ऋ. १/ ३६/ १४
सर्वभक्षी लोग रोगों की अग्नि में जलते हैं।
भक्ष-अभक्ष का विचार न करने वाले लोग बीमारी और अल्पायु पाते हैं।
- **अनुष्यं भीम आ बावृषे शबः ।** —ऋ. १/ ८१/ ४
जैसा अन्न खाते हैं वैसा मन बनता है।
सतोगुणी भोजन से ही मन की सात्विकता स्थिर रहती है।
- **शतं जीव श्रदो वर्धमानः ।** —अथर्व. ३/ ११/ ४
सौ वर्ष तक उन्नतिशील जीवन जिओ।
जीवन शक्ति को ऐसे संयम से खर्च करो कि सौ वर्ष जी सको।
- **आश्मानं तन्वं कृषि ।** —अथर्व. १/ २/ २
शरीर को पत्थर जैसा सुदृढ़ बनाओ।
श्रम और तितिक्षा से शरीर मजबूत बनता है।
- दुष्टता से कैसे निपटें ?**
- **वयमादित्य व्रते तवानागसो ।** —ऋ. १/ २४/ १५
जो मर्यादाओं का पालन करता है, वही पाप से बचता है।
बुराईयों की ओर ढीला मन रखने से फिसलने का भय है।
- **न रिष्येम कदा घन ।** —अथर्व. २०/ १२७/ १४
अनीति के आगे सिर न झुकाओ।
बुराई के आगे आत्म-समर्पण न करो।

- मा वयं रिषाम । —अथर्व. १४/२/५०
किसी का अन्याय सहन न करो।
स्थिति के अनुसार अनीति के प्रतिकार का मार्ग ढूँढो।
- सर्वान् दुरस्यतो हन्मि । —अथर्व. ४/३६/४
दुष्टता करने वालों से संघर्ष करो।
दुष्टों के साथ असहयोग, विरोध और संघर्ष की नीति अपनाओ।
- इन्द्राग्नी रक्ष उब्जतम् । —ऋ. १/२१/५
पराक्रम और ज्ञान से दुष्टों को सुधारो।
दुष्टों को पराक्रम और चतुरता से काबू में लाया जाता है।

यज्ञ का महत्त्व

- अग्नेर्होत्रेण प्र णुदे सपस्तान् । —अथर्व. ६/२/६
यज्ञ करने से शत्रु नष्ट हो जाते हैं।
शत्रुता को मित्रता में बदल देने का सर्वोत्तम उपाय यज्ञ है।
- सम्यज्बोर्जिनि सपर्यतारा । —अथर्व. ३/३०/६
सबको मिलकर यज्ञानुष्ठान करना चाहिए।
सामूहिक उपासना का महत्त्व असंख्य गुना अधिक है।
- यज्ञं जनयन्त सूरयः । —ऋ. १०/६६/२
हे विद्वानो, संसार में यज्ञ का प्रचार करो।
विश्व-कल्याण करने वाले साधनों में यज्ञ सर्वश्रेष्ठ है।
- ईजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम् । —अथर्व. १८/४/२
यज्ञ करने वाले को स्वर्ग का सुख प्राप्त होता है।
जिन्हें स्वर्गीय सुख प्राप्त करना अभीष्ट हो, वे यज्ञ किया करें।
- प्राज्वं यज्ञं प्र णतया सखायः । —ऋ. १०/१०१/२
प्रत्येक शुभ कार्य यज्ञ के साथ आरम्भ करो।
यज्ञ के साथ आरम्भ किये हुए कार्य सफल और सुखदायक होते हैं।
- अयज्ञियो हतवर्चा भवति । —अथर्व
यज्ञरहित मनुष्य का तेज नष्ट हो जाता है।
यदि तेजस्वी रहना है तो यज्ञ करते रहना चाहिए।

- भद्रो नो अग्नि राहुतः । —यजु. १५/३२
यज्ञ में दी हुई आहुतियों कल्याणकारक होती हैं।
जो अपना कल्याण चाहते हैं, वे यज्ञ किया करें।
- मा सुनोतेति सोमम् । —ऋ. २/३०/७
यज्ञानुष्ठान की महान उपासना बन्द न करो।
जहाँ यज्ञ बन्द हो जाते हैं, वहाँ से सुख-शान्ति चली जाती है।
- कस्मै त्वं विमुञ्चति तस्मै त्वं विमुञ्चति । —यजु.
जो यज्ञ को त्यागता है उसे परमात्मा त्याग देता है।

जिन्हें परमात्मा का अनुग्रह अभीष्ट हो, वे यज्ञ करना न त्यागें।

गायत्री माहात्म्य

- गायत्री वेदमातरम् । —महाभारत
गायत्री चारों वेदों की माता है।
वेदों का समस्त ज्ञान-विज्ञान गायत्री में सन्निहित है।
- गायत्रीच्छन्दसामहम् । —गीता
वेद मन्त्रों में गायत्री साक्षात् ब्रह्म है।
ब्रह्म का साक्षात् करने के इच्छुक गायत्री-उपासना करें।
- न गायत्री त्वं जायं । —वसिष्ठ
गायत्री के समान और कोई जप श्रेष्ठ नहीं।
सकाम-निष्काम उद्देश्यों के लिए सर्वश्रेष्ठ मन्त्र गायत्री ही है।
- गायत्री पापनाशिनी । —विश्वामित्र
गायत्री-उपासना से पाप नष्ट होते हैं।
आत्मा को निष्पाप बनाने के लिए गायत्री का आश्रय लेना चाहिए।
- गायत्री सर्व कामधुक् । —याज्ञवल्क्य
गायत्री सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली है।
गायत्री उपासक की कोई कामना अपूर्ण नहीं रहती।



परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँच स्थापनाएँ

युगदृष्टा के स्तर की अवतारी सत्ता के रूप में परमपूज्य गुरुदेव ने अपने अस्सी वर्ष के जीवनकाल में जितना भी कुछ किया, उसकी मिसाल कहीं देखने को नहीं मिलती। करोड़ों व्यक्तियों के मनो का निर्माण, उनके सोचने के तरीके में बदलाव एवं युग निर्माण की पृष्ठभूमि बनाकर रख देने का कार्य इन्हीं के स्तर की सत्ता कर सकती थी, जो लाखों वर्षों में कभी-कभी धरती पर आती है। उनके द्वारा की गयी स्थापनाओं का जब प्रसंग आता है तब ईट-गारे-चूने-सीमेंट से बने भवनों से पहले उनकी स्नेह-संवेदना से सिक्त हुए, ममत्व में स्नानकर उनके अपने हो गये लाखों व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं, जिनने उनके एक इशारे पर अपना सब कुछ उनको अर्पित कर दिया। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में कभी ऐसा ही वातावरण भारत के कोने-कोने में दिखाई देता था, जब हर घर से सत्याग्रही निकलकर आ रहे थे। भावनाओं का आवेग चिरस्थायी नहीं रहता। वे ही लोग जो कभी राष्ट्र निर्माण के लिए अपना सब कुछ छोड़, पढ़ना-लिखना छोड़ देश को आजाद बनाने के लिए कूद पड़े थे, कभी गड़बड़ाने न पाएँ, उसी के लिए बापू ने आजादी के बाद काँग्रेस भंग कर देने व सभी को एक आदर्श स्वयं-सेवक की तरह दरिद्र नारायण का उत्थान कर राष्ट्र निर्माण में लग जाने की सलाह दी थी।

सभी इस तथ्य को जानते हैं कि ऐसा नहीं हुआ, राष्ट्र का कीर्ति-स्तम्भ रूपी वह महापुरुष भी एक वर्ष के अंदर ही शहादत को प्राप्त हो चला गया। गिने-चुने उनके आदर्शों पर चलने वाले रह गये, अवसरवादियों को राजनेतृत्व भाने लगा एवं राष्ट्र अजाद होकर भी उनके हाथ में आ गया जो ब्रिटिश तो नहीं थे किन्तु, उसी रंग में रंगे सत्ता के उन्माद में काम करने वाले शासक थे- सृजेता नहीं। जिंदा रहा तो मात्र बापू का दर्शन बुनियादी आधार पर टिका- मानव को बनाने का तंत्र-आश्रम तंत्र जो सेवाग्राम-साबरमती आश्रम के रूप में कार्य करता रहा और वह भी शीर्ष-पुरुष के न रहने, बिनोवाजी के चले जाने के बाद अस्तित्व व महत्व की दृष्टि से गौण हो गया। परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी दिव्य-दृष्टि से यह सब पूर्व में ही देख लिया था कि कोई भी भव्य निर्माण, आश्रम या तंत्र बनाने से पूर्व राष्ट्र को सांस्कृतिक, भौतिक, आध्यात्मिक आजादी दिलाने वाले अगणित व्यक्ति तैयार करने पड़ेंगे। १९११ में आज से ८४ वर्ष पूर्व वि.संवत् २०८६ में जन्मे, राष्ट्र की आजादी में उन्मत्त बने श्रीराममत्त कहलाने वाले, आचार्यश्री ने पहले स्वयं को तपाया, वैचारिक क्रान्ति के निर्माण का आधारभूत तंत्र स्वयं व परमवंदनीया माताजी के रूप में खड़ा किया, 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका अपनी लेखनी से लिखी, ममत्व भरी चिट्ठियों व छोटी-छोटी एक आने की किताबों से जन-जन के मन को छुआ, तब जाकर अपने एक लक्ष के २४ गायत्री महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर उन्होंने गायत्री तपोभूमि, मथुरा की स्थापना की बात १९५२-५३ में सोची। सबसे पहली मंत्र दीक्षा वहीं पर १९५३ में दी व यह मानते हुए कि बिना आध्यात्मिक आधार बनाये, मनोभूमि में, भावनाओं के स्तर पर बदलाव लाये कोई क्रान्ति सफल नहीं हो सकती, धीमी खुराक देते हुए हर व्यक्ति को गायत्री व यज्ञ के तत्त्वदर्शन से जोड़ते हुए चले गये। गायत्री परिवार रूपी विराट वृक्ष का मूल आधार वह स्थापना है जो जन-जन के मनो में पहले हुई- उनकी भाव संवेदनाओं के उदात्तीकरण के रूप में सम्पन्न हुई व उनके अंदर अपनी गुरुसत्ता को त्याग करने की, यज्ञीय जीवन अपनाने की प्रेरणा बलवती होने लगी। उन्होंने सर्वमेध के रूप में अपना सर्वस्व बलिदान एवं नरमेध के रूप में अपने आप को समाज के हित न्यौछावर करने की भावना से दो यज्ञ किये। अपनी जमींदारी के बाण्ड बेचकर एवं परमवंदनीया माताजी के कीमती सोने के जेवर (ढाई सौ तोले) बेचकर जो स्वेच्छा से सम्पन्न हुआ, एक स्थापना भवन के रूप में जो हुई- वह थी गायत्री तपोभूमि, मथुरा जो वृन्दावन रोड पर ऋषि दुर्वासा की जन्मस्थली पर बनी आज से ४२ वर्ष पूर्व १९५३ में। प्रारंभिक स्थापना यों अखण्ड ज्योति संस्थान को माना जा सकता है जहाँ अखण्ड दीपक अपनी जन्मभूमि आँबलखेड़ा से जो वहाँ से मात्र ४० मील दूर थी, स्थापित किया गया था एवं प्रारंभिक तप-तितिक्षा वहीं पर १९४१ से, तपोभूमि की स्थापना से भी १२ वर्ष पूर्व आरम्भ हो गयी थी। इस प्रकार जन-जन के मनो का निर्माण उनके अंतःस्थल में प्रवेश कर उनके अंदर देवत्व के जागरण की ललक पैदा करने वाली पृष्ठभूमि पर स्थापनाओं का क्रम बना। किराये की ऐसी हवेली जिसे भुतहा हवेली कहा

जाता था, में अखण्ड दीपक की स्थापना, उसके समक्ष तप, अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा के रूप में विकसित हुआ एवं एक और दूसरा निर्माण मथुरा में ही गायत्री तपोभूमि के रूप में हुआ जो कि ३ मील दूर वृन्दावन रोड पर १९५३ में बनाई गई। १९५३ में क्रमशः सुसंगठित गायत्री परिवार के बनने की प्रक्रिया चल पड़ी।

इस प्रारंभिक भूमिका को समझने के बाद ही परमपूज्य गुरुदेव की पाँच मूल स्थापनाओं एवं बाद में देश के कोने-कोने में बनी भव्य इमारतों के रूप में शक्तिपीठों, प्रज्ञा संस्थानों, भारत व विश्वभर में घर-घर में स्थापित स्वाध्याय मण्डलों व गायत्री परिवार की शाखाओं, प्रज्ञापीठों, चरणपीठों का महत्त्व समझा जा सकता है। नहीं तो जैसे अन्यान्य आश्रम-संस्थान बनते हैं, ऐसे इनका भी वर्णन किया जा सकता था व यह कहा जा सकता था कि यह वैभवपूर्ण स्थापनाएँ पूज्यवर ने कीं। उनमें यदि प्राण फूँके गये हों, प्राणवान व्यक्ति वहाँ रहते हों व उस शक्ति के महा-अवसान के बाद भी वे सतत् उसी दिशा में चल रहे हों तो माना जाना चाहिए कि प्रारंभिक पुरुषार्थ जो किया गया, वह औचित्यपूर्ण था।

परमपूज्य गुरुदेव की महत्त्वपूर्ण पाँच स्थापनाएँ इस प्रकार हैं—

(१) युगतीर्थ आँवलखेड़ा (२) अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा (३) गायत्री तपोभूमि, मथुरा (४) शान्तिकुंज, गायत्री तीर्थ, सप्तसरोवर, हरिद्वार तथा (५) ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान, सप्तसरोवर, हरिद्वार।

युगतीर्थ आँवलखेड़ा का नाम सबसे पहले इसलिए लिखा कि यहीं पर वह युगपुरुष संवत् १९६८ की आश्विन कृष्ण त्रयोदशी तिथि के दिन, ब्राह्ममुहूर्त में, जो अंग्रेजी तारीख से २० सितम्बर, १९११ के दिन आती थी, में जन्मा। एक श्रीमंत ब्राह्मण परिवार में, जहाँ धन की कोई कमी नहीं थी, पूरा परिवार संस्कारों से अनुप्राणित, पिता भागवत के प्रकाण्ड पंडित, बहुत बड़ी जागीर के मालिक। आज जहाँ पूज्यवर की स्मृति में एक विराट स्तंभ की, एक चबूतरे की तथा उनके कर्तृत्व रूपी शिलालेखों की स्थापना हुई है— वहाँ पूज्यवर ने शरीर से जन्म लिया था। समीप बनी दो कोठरियाँ जो काल प्रवाह के क्रम में गिर सी गयी थीं, जीर्णोद्धार कर वैसी ही निर्मित कर दी गयी हैं— जैसी उनके समय में थीं। जन्मभूमि का कण-कण उस दैवीसत्ता की चेतना से अनुप्राणित है। उनके हाथ से खोदा कुँआ जिसे पूरे गाँव का एकमात्र मीठे जल वाला कुँआ माना गया— वह अभी भी है, उनके हाथ से रोपा नीम का पेड़ एवं वह बैठक जहाँ स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में सब बैठकर चर्चा करते थे, आज भी उन दिनों की याद दिलाते हैं। पास में ही दो कोठरियाँ हैं जिनमें से एक कक्ष में वह स्थान है जहाँ दीपक के प्रकाश में से सूक्ष्म शरीरधारी गुरुसत्ता प्रकट हुई थी तथा जिसने उनके जीवन की दिशाधारा का १९२६ के बाद के क्रम का निर्धारण कर दिया था। यह सब देखकर मस्तिष्क-पटल पर वह दृश्य उभर आता था, जिसे गुरुसत्ता ने कभी देखा था व जो गायत्री परिवार की स्थापना का मूल आधार बना। आँवलखेड़ा में ही उनकी माताजी की स्मृति में स्थापित माता दानकुँवरि इण्टर कालेज है जो उनके द्वारा दान दी गयी जमीन में प्रदत्त धनराशि द्वारा विनिर्मित है। १९६३ से चल रहे इस इण्टर कालेज से कई मेधावी छात्र निकल कर आत्म-निर्भर बने हैं व उच्च पदों पर पहुँचे हैं।

१९७९-८० में गायत्री शक्तिपीठ एवं कन्या इण्टर कॉलेज की स्थापना का ताना-बाना बुना जाने लगा जो एक विशाल शक्तिपीठ तथा आसपास के दो सौ ग्रामों की बालिकाओं के पठन-पाठन की व्यवस्था करने वाले, उन्हें सुशिक्षित, संस्कारवान, आत्मावलम्बी बनाने वाले कन्या महाविद्यालय का अब रूप ले चुका है। प्रथम पूर्णाहुति हेतु इसी भूमि को जो शक्तिपीठ-जन्मभूमि-ग्रामीण क्षेत्र के चारों ओर है, इसीलिए चुना गया कि यहाँ से उद्भूत प्राण ऊर्जा से यहाँ आने वाला हर संकल्पित साधक अनुप्राणित होकर जाए व राष्ट्र के नव-निर्माण की सांस्कृतिक व भावनात्मक क्रान्ति की पृष्ठभूमि रख सके। यहाँ पूज्यवर १९३६-३७ तक ही रहे, कुछ दिन आगरा रहकर १९४०-४१ में मथुरा चले गये, जहाँ दो-तीन मकान बदलने के बाद वर्तमान मकान किराये पर लिया जिसे आज अखण्ड-ज्योति संस्थान कहते हैं।

अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा में स्थित है। परमपूज्य गुरुदेव सीमित साधनों में अपने अखण्ड दीपक के साथ यहीं रहने लगे एवं यहीं से क्रमशः आत्मीयता विस्तार की जन-जन तक अपने क्रान्तिकारी चिंतन के विस्तार की प्रक्रिया 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका, जो आगरा से ही आरम्भ कर दी गयी थी, की 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ व अन्यान्य लेखों की पंक्तियों के माध्यम से सम्पन्न होने लगी। व्यक्तिगत पत्रों द्वारा उनके अंतःस्थल को स्पर्श कर एक महान स्थापना का बीजारोपण होने लगा। यहीं पर अगणित दुःखी, तनावग्रस्त

व्यक्तियों ने आकर उनके स्पर्श से नये प्राण पाये तथा उनके व परमवंदनीया माताजी के हाथों से भोजन-प्रसाद पाकर उनके अपने होते चले गये। हाथ से बने कागज पर छोटी ट्रेडिल मशीनों द्वारा यहाँ पर अखण्ड ज्योति पत्रिका छापी जाती थी व छोटी-छोटी किताबों द्वारा लागत मूल्य पर उसे निकालने योग्य खर्च निकलता था। बगल की एक छोटी-सी कोठरी में जहाँ अखण्ड दीपक जलता था, आज पूजाघर विनिर्मित है। पूरी बिल्डिंग को खरीद कर उनके सुपुत्र ने एक नया आकार व मजबूत आधार दे दिया है किन्तु यह कोठरी अंदर से वैसी ही रखी गयी है जैसी पूज्यवर के समय में १९४२-४३ में रही होगी। तब से लेकर आगामी ३० वर्ष का साधनाकाल-लेखनकाल पूज्यवर का इसी धीयामण्डि के भवन में छोटी-छोटी दो कोठरियों में गहन तपश्चर्या के साथ बीता। तपोभूमि निर्माण की पृष्ठभूमि यहीं बनी, १९५८ में सहस्र कुण्डी यज्ञ की आधारशिला यहीं रखी गयी, यहीं सारी योजना बनी एवं विधिवत-गायत्री परिवार बनता चला गया। रोज आने वाले पत्रों को स्वयं परमवंदनीया माताजी पढ़ती जाती एवं पूज्यवर इतनी ही देर में जवाब लिखते जाते, यही सूत्र संबंधों के सुदृढ़ बनने का आधार बना। हर परिजन को तीन दिन में जवाब मिल जाता, शंका-समाधान होता चला जाता एवं देखते-देखते एक विराट गायत्री परिवार बनता चला गया। गायत्री महाविज्ञान के तीनों खण्ड, युग निर्माण परक साहित्य, आर्ष-ग्रन्थों के भाष्य को अंतिम आकार देने का कार्य यहीं सम्पन्न हुआ। जनसम्मेलनों, छोटे-बड़े यज्ञों एवं १००८ कुण्डी पाँच विराट् यज्ञों में पूज्यवर यहीं से गये एवं विदाई सम्मेलन की रूपरेखा बनाकर स्थायी रूप से इस घर से १९७१ की २० जून को विदा लेकर चले गये। इस संस्थान के कण-कण में जहाँ आज १० लाख से अधिक संख्या में हिन्दी सहित सभी भाषाओं में अखण्ड ज्योति पत्रिका के प्रकाशन, विस्तार, डिस्पैच आदि का एक विराट तंत्र स्थापित है, परमपूज्य गुरुदेव की चेतना संव्याप्त अनुभव की जा सकती है। भले ही बहिरंग का कलेवर बदल गया हो, अंदर प्रवेश करते ही परमपूज्य गुरुदेव व परमवंदनीया माताजी की सतत विद्यमान प्राणचेतना के स्पन्दन वहाँ विद्यमान हैं, यह प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है।

गायत्री तपोभूमि, मथुरा को परमपूज्य गुरुदेव की चौबीस महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर की गयी स्थापना माना जा सकता है, जिसे विनिर्मित ही गायत्री परिवार रूपी संगठन के विस्तार के लिए किया गया था। इसकी स्थापना से पूर्व चौबीस सौ तीर्थों के जल व रज को संग्रहीत करके यहाँ उनका पूजन किया गया, एक छोटी किन्तु भव्य यज्ञशाला में अखण्ड अग्नि स्थापित की गयी तथा एक गायत्री महाशक्ति का मन्दिर विनिर्मित किया गया। चौबीस सौ करोड़ गायत्री मंत्रों का लेखन जो श्रद्धापूर्वक नैष्ठिक साधकों द्वारा किया गया था, यहाँ पर संरक्षित कर रखा गया है। पू. गुरुदेव की साधनास्थली व प्रातःकाल की लेखनी की साधना की कोठरी यदि अखण्ड ज्योति संस्थान में थी तो उनकी जन-जन से मिलने, साधनाओं द्वारा मार्गदर्शन देने की कर्म-भूमि गायत्री तपोभूमि थी। यहीं पर १०८ कुण्डी गायत्री महायज्ञ में १९५३ में पहली बार पूज्यवर ने साधकों को मंत्र दीक्षा दी। यहीं पर १९५६ में नरमेध यज्ञ तथा १९५८ में विराट सहस्रकुण्डी यज्ञांशोत्सव सम्पन्न हुए। श्रेष्ठ नररत्नों का चयन कर गायत्री परिवार को विनिर्मित करने का कार्य यहीं व्यक्तिगत मार्गदर्शन द्वारा सम्पन्न हुआ। हिमालय प्रवास से लौटकर पूज्य आचार्यश्री ने युग निर्माण योजना के शत-सूत्री कार्यक्रम एवं सत्संकल्प की तथा युग निर्माण विद्यालय के एक स्वावलम्बन प्रधान शिक्षा देने वाले तंत्र के आरम्भ होने की घोषणा की। यह विधिवत् १९६४ से आरम्भ किया गया एवं अभी भी सफलतापूर्वक चल रहा है। जिस कक्ष में परमपूज्य गुरुदेव सभी से मिला करते थे, अभी भी यहाँ देखा जा सकता है। भव्य निर्माण परमपूज्य गुरुदेव की १९७१ की विदाई के बाद यहाँ हो गया है किन्तु, कण-कण में उनकी प्राणचेतना का दर्शन किया जा सकता है। विराट प्रज्ञानगर, युग निर्माण विद्यालय, साहित्य की छपाई हेतु बड़ी-बड़ी ऑफसेट मशीनें तथा युग निर्माण साहित्य जो पूज्यवर ने जीवन भर लिखा, उसका वितरण-विस्तार तंत्र यहाँ पर देखा जा सकता है।

शान्तिकुंज, हरिद्वार ऋषि परम्परा के बीजारोपण केन्द्र के रूप में १९७१ में स्थापित किया गया था, जब परमपूज्य गुरुदेव मथुरा स्थायी रूप से छोड़कर परमवंदनीया माताजी को अखण्ड ज्योति दीपक की रखवाली हेतु यहाँ छोड़कर हिमालय में चले गये। गुरुसत्ता के निर्देश पर वे पुनः एक वर्ष बाद लौटे व तब शान्तिकुंज को उनसे एक बड़ा विराट रूप देने, सभी ऋषिगणों की मूलभूत स्थापनाओं को यहाँ साकार बनाने का निश्चय किया। इससे पूर्व परमवंदनीया माताजी ने २४ कुमारी कन्याओं के साथ अखण्ड दीपक के समक्ष २४० करोड़

गायत्री मंत्र का अखण्ड अनुष्ठान आरंभ कर दिया था। पूज्यवर ने प्राण प्रत्यावर्तन सत्र, जीवन साधना सत्र, वानप्रस्थ सत्र आदि के माध्यम से विभिन्न क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने वाले कार्यकर्ता यहाँ गढ़े। यह सत्र शृंखला कल्प साधना, संजीवनी साधना सत्रों के रूप में तब से ही ९ दिवसीय सत्रों व एक माह के युग शिल्पी प्रशिक्षण सत्रों के रूप में चल रही है, अभी भी अनवरत उसमें आने वालों का ताँता लगा रहता है। पहले से ही सब अपनी बुकिंग इसमें करा लेते हैं।

शांतिकुंज को गायत्री तीर्थ का रूप देकर सप्तऋषियों की मूर्तियों की स्थापना १९७८-७९ में की गयी, एक देवात्मा हिमालय विनिर्मित किया गया एवं यहाँ सभी संस्कारों को सम्पन्न करते रहने का क्रम बन गया जो सतत् चल रहा है। नित्य यहाँ दीक्षा, पुंसवन, नामकरण, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत, विवाह, श्राद्ध-तर्पण आदि संस्कार सम्पन्न होते हैं। इस बीच परमबंदनीया माताजी ने जागरण सत्र शृंखलाएँ सम्पन्न करना आरम्भ रखा। देव कन्याओं को प्रशिक्षित कर पूरे भारत में जीप टोलियों में भेजा गया। इनके माध्यम से तीन वर्ष तक भारत के कोने-कोने में तुमुलनाद होता रहा।

शांतिकुंज का गायत्री नगर जो आज एक विराट स्थापना के रूप में, एक एकेडमी के रूप में नजर आता है व जिसमें एक बार में एक साथ दस हजार व्यक्ति एक साथ ठहर सकते हैं, १९८१-८२ में बनना आरम्भ हुआ। विलक्षण, दुर्लभ जड़ी-बूटियों के पौधे यहाँ लगाये गये तथा प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा रूपी तीर्थस्थली का पूज्यवर ने अपने सामने निर्माण कराया। यहाँ उनके निर्देशानुसार उनके शरीर छोड़ने पर दोनों सत्ताओं को अग्नि समर्पित की जानी थी। स्वावलम्बन विद्यालय से लेकर एक विशाल चौके का निर्माण एवं गायत्री विद्यापीठ से लेकर भारत के सभी सरकारी विभागों के प्रशिक्षण के तंत्र की स्थापना यहाँ पर की गयी है एवं यह एक जीता-जागता तीर्थ अब बन गया है, जहाँ पर उज्ज्वल भविष्य की पूर्व झलक देखी जा सकती है। कम्प्यूटरों से सज्जित विशाल कार्यालय से लेकर पत्राचार विद्यालय जहाँ नित्य हजारों पत्रों के द्वारा पूरे तंत्र का मार्गदर्शन किया जाता है, यहाँ की विशेषता है।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँचवीं स्थापना है, जहाँ पर विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय का अभिनव शोध कार्य चल रहा है। इसे १९७१ की गायत्री जयंती पर आरम्भ किया गया था। वर्तमान शांतिकुंज- गायत्री तीर्थ से आधा किलोमीटर दूरी पर गंगातट पर स्थित यह संस्थान अपनी आकर्षक बनावट के कारण सहज ही सबके मनो को मोहकर आमंत्रित करता रहता है। इसमें तीन मंजिलों में प्रथम तल पर एक विज्ञान के उपकरणों से सुसज्जित यज्ञशाला विनिर्मित है तथा चौबीस कक्षों में गायत्री महाशक्ति की चौबीस मूर्तियाँ बीजमंत्रों व उनकी फलश्रुतियों सहित स्थापित हैं। द्वितीय तल पर एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला है, जहाँ ऐसे उपकरण स्थापित हैं जो यह जाँच-पड़ताल करते हैं कि साधना से पूर्व व पश्चात्, यज्ञादि मंत्रोच्चारण के पूर्व व पश्चात् क्या-क्या परिवर्तन शरीर-मन की गतिविधियों व रक्त आदि संघटकों में देखने में आये। इनके आधार पर साधकों को साधना संबंधी परामर्श दिया जाता है। यहाँ पर वनौषधियों का विश्लेषण भी किया जाता है तथा यज्ञ ऊर्जा-मंत्र शक्ति का क्या प्रभाव साधक की मस्तिष्कीय तरंगों, जैव विद्युत आदि पर पड़ा, यह देखा जाता है। विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी यहाँ किये जाते हैं। तृतीय तल पर एक विशाल ग्रंथागार स्थापित है, जहाँ विश्वभर के शोध प्रबंध वैज्ञानिक अध्यात्मवाद पर एकत्रित किये गये हैं। यहाँ प्रायः ४५००० से अधिक ग्रंथ हैं, जिनमें कई पुरातन पाण्डुलिपियाँ हैं। यह अपने आप में एक अनूठा संकलन है जो और कहीं एक साथ देखने में नहीं मिलता।

परमपूज्य गुरुदेव की उपरोक्त पाँच स्थापनाएँ किसी को भी यह परिचय दे सकती हैं कि किस विलक्षण दृष्टांतर की वह महासत्ता थी जो हम सबके बीच अपना लीली संदोह रचकर चली गयी। प्रत्यक्ष तो यह केन्द्रीय पाँच स्थापनाएँ नजर आती हैं किन्तु ४८०० से अधिक अपने भवनों वाले प्रज्ञा संस्थान ४०००० से अधिक प्रज्ञामण्डल व स्वाध्याय मण्डल तथा अगणित गायत्री परिवार की शाखाएँ यदि इनमें मिलाई जाएँ तो इनका मूल्य राशि में आँका नहीं जा सकता। यही वह सब है जो उस महापुरुष को एक अवतारी स्तर की सत्ता के रूप में प्रतिष्ठापित करता है व जिसके कर्तृत्व पर ब्रह्मवन्त होने का मन करता है।

□□□

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवनदर्शन : समग्र वाङ्मय

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने जीवन भर जो अपनी लेखनी से लिखा, औरों को प्रेरित कर उनसे सृजनात्मक लेखन करवाया, पुस्तकों-पत्रिकाओं में जो प्रकाशित हुआ, समय-समय पर उनसे अमृतवाणी के माध्यम से जो विचारों की अभिव्यक्ति की, विचारेसार व सूक्तियाँ जो वे लिख गये या अनायास कभी कह गये तथा पत्रों के माध्यम से जो अंतरंग स्पर्श जन-जन को दिया, वह समग्र इस वाङ्मय के खण्डों में है। जिनके नाम इस प्रकार हैं :-

१. युगद्रष्टा का जीवन-दर्शन

समग्र वाङ्मय का परिचय

२. जीवन देवता की साधना-आराधना
३. उपासना-समर्पण योग
४. साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान
५. साधना से सिद्धि-१
६. साधना से सिद्धि-२
७. प्रसुप्ति से जाग्रति की ओर
८. ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है ?
९. गायत्री महाविद्या का तत्त्वदर्शन
१०. गायत्री साधना का गुह्य विवेचन
११. गायत्री साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार
१२. गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठान-परक साधनाएँ
१३. गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ
१४. गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि
१५. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र
१६. मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य
१७. प्राणशक्ति : एक दिव्य विभूति
१८. चमत्कारी विशेषताओं से भरा मानवी मस्तिष्क
१९. शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
२०. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ
२१. अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व
२२. चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन
२३. विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक
२४. भविष्य का धर्म : वैज्ञानिक धर्म
२५. यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान
२६. यज्ञ : एक समग्र उपचार प्रक्रिया
२७. युग-परिवर्तन कैसे और कब ?
२८. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-१
२९. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-२ (सतयुग की वापसी)
३०. मर्यादा पुरुषोत्तम राम
३१. संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत एवं गीता
३२. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ
३३. षोडश संस्कार विवेचन
३४. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व
३५. समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान
३६. धर्मचक्र प्रवर्तन एवं लोकमानस का शिक्षण

३७. तीर्थ सेवन : क्यों और कैसे ?

३८. प्रज्ञोपनिषद्
 ३९. नीरोग जीवन के महत्वपूर्ण सूत्र
 ४०. चिकित्सा उपचार के विविध आयाम
 ४१. जीवेम शरदः शतम्
 ४२. चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य
 ४३. हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्ति स्तम्भ
 ४४. मरकर भी अमर हो गये जो
 ४५. सांस्कृतिक चेतना के उन्नायक : सेवाधर्म के उपासक
 ४६. भव्य समाज का अभिनव निर्माण
 ४७. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता
 ४८. समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र
 ४९. शिक्षा एवं विद्या
 ५०. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-१
 ५१. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-२
 ५२. विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी
 ५३. धर्मतत्त्व का दर्शन व मर्म
 ५४. मनुष्य में देवत्व का उदय
 ५५. दुश्य जगत् की अदृश्य पहेलियाँ
 ५६. ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ
 ५७. मनस्विता प्रखरता और तेजस्विता
 ५८. आत्मोत्कर्ष का आधार- ज्ञान
 ५९. प्रतिगामिता का कुचक्र ऐसे टूटेगा
 ६०. विवाहोन्माद : समस्या और समाधान
 ६१. गृहस्थ : एक तपोवन
 ६२. इक्कीसवीं सदी : नारी सदी
 ६३. हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण
 ६४. राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?
 ६५. सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे ?
 ६६. युग निर्माण योजना-दर्शन, स्वरूप व कार्यक्रम
 ६७. प्रेरणाप्रद दृष्टान्त
 ६८. पूज्यवर की अमृतवाणी (भाग एक)
 ६९. विचारसार एवं सूक्तियाँ (प्रथम खण्ड)
 ७०. विचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)
- वाङ्मय के आगे प्रकाशित होने वाले ३८ खण्ड निम्न विषयों पर होंगे-**
७१. मनोविकारों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि
 ७२. तनाव के कारण एवं उनके निवारण के उपाय

७३. चिन्तन का विधेयात्मक-

निषेधात्मक स्वरूप

७४. पुरुषार्थ और मानवी जिजीविषा
७५. संकल्प बल का अनुठा प्रभाव
७६. बाल-विकास के विविध सोपान
७७. बाल मनोविज्ञान का सही उपयोग
७८. पारिवारिकता में सुसंस्कारों का योगदान
७९. पारिवारिक पंचशील और परिवार-निर्माण
८०. व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया
८१. विचार-विज्ञान का महत्त्व
८२. सामाजिक समस्याएँ और उनका समाधान
८३. समाज-निर्माण के विभिन्न चरण
८४. सामाजिक जीवन में सद्गुणों की भूमिका
८५. नर-नारी की सामान्य समस्याएँ और उनका समाधान
८६. नारी जागृति की बाधाएँ एवं उनके निराकरण के उपाय
८७. पारिवारिक जीवन : एक तप-साधना
८८. दाम्पत्य जीवन के संयुक्त दायित्व
८९. नीति-विज्ञान और नैतिकता
९०. कृषि, व्यवसाय और उद्योग की उन्नति के आधार
९१. पूज्य गुरुदेव के स्फुट विचार
९२. पूज्यवर की अमृतवाणी-२
९३. पूज्य गुरुदेव की दिव्य अनुभूतियाँ
९४. पूज्य गुरुदेव के लिखे स्मरणीय पत्र
९५. तंत्र महाविज्ञान विवेचन
९६. मंत्र महाविज्ञान विवेचन
९७. महापुरुषों के प्रेरक जीवन-प्रसंग
९८. प्रेरणाप्रद कथा एवं गाथाएँ
९९. हृदयस्पर्शी विविध कथाएँ
१००. शान्तिकुंज का प्रज्ञा अभियान
१०१. युग निर्माण मिशन का क्रमिक इतिहास
१०२. वेद-सार-चिन्तन
१०३. पुराण-शोध-सार
१०४. उपनिषद् और आरण्यकों की दार्शनिक विषयवस्तु
१०५. काव्य-गीत-मंजूषा
१०६. मिशन के रचनात्मक कार्यक्रमों का क्रमिक इतिहास
१०७. मिशन की लोक-व्यवहार संहिता
१०८. गुरुदेव की अपने आत्मीय जनों से अपनी बातें

